

मुद्रक और प्रकाशक-

खेमराज श्रीकृष्णदास,

अध्यक्ष-"श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम्-प्रेस, बम्बई.



CHAKRADATTA

BY

CHAKRAPANI DATTA.

TRANSLATED AND MADE EASY.

BY

AVURVEDACHARYA PANDIT JAGANNATHASHARMA BAJPEYEE,

Professor,

Ayurveda College, Benares Hindu University.

SECOND EDITION.

PUBLISHED BY

THE PROPRIETOR,

SHRI VENKATESHWAR STEAM PRESS.

BOMBAY.

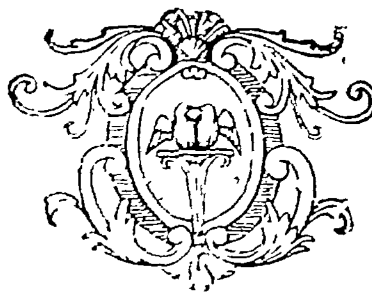
द्वितीय संस्करणके विषयमें दो शब्द ।



उस परम पिता परमात्माको कोटिशः धन्यवाद है कि जिसकी असीम अनुकम्पासे " सुबोधिनी सहित चक्रदत्त " के द्वितीय संस्करण प्रकाशित करनेका सुअवसर समुपलब्ध हुआ । अनेक त्रुटियोंके रहते हुए भी प्रथम संस्करणको पाठकोंने जिस प्रकार अपनाया उससे परम सन्तोष हुआ । इस संस्करणमें पहिलेकी प्रायः सभी त्रुटियां दूर कर दी गई हैं, फिर भी भूल होना मनुष्यमें स्वाभाविक है अतः सहृदय महानुभावोंसे सादर निवेदन है कि यदि कोई त्रुटि उनकी दृष्टिमें आवे तो उसे कृपया लेखक या प्रकाशकके पास लिखकर भेज दें । उनके प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हुए तीसरे संस्करणमें उन त्रुटियोंका सुधार कर दिया जायगा ।

विनम्र निवेदकः—

जगन्नाथ शर्मा वाजपेयी.



विनम्र-निवेदनम् ।

मानैनीय-वाचक-महोदयाः !

मनुष्य जीवनका फल धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी चारों पदार्थोंका प्राप्त करना है, पर शरीरकी आरोग्यता विना उनमेंसे एक भी नही सम्पादन किया जा सकता। जैसा कि महर्षि अग्निवेशने कहा है-"धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्। रोगास्तस्यापहर्तारः श्रेयसो जीवितस्य च ॥" उस आरोग्य शरीरकी रक्षा तथा रोग उत्पन्न हो जानेपर उनके विनाशके उपायोंका वर्णन ही आयुर्वेद है। अतएव परम कुशल वाग्भटने लिखा है-"आयुष्कामयमानेन धर्मार्थसुखसाधनम्। आयुर्वेदोपदेशेषु विधेयः परमादरः ॥" उस आयुर्वेदके आचार्य सर्व प्रथम देवाधिदेव ब्रह्मा ततः प्रजापति ततः अश्विनीकुमार ततः इन्द्र ततः भरद्वाज ततः अग्निवेशादि हुए। उन आचार्योंने अपनी अपनी विस्तृत संहिताएँ सर्व साधारणके उपकारार्थ बनायी। पर समयके परिवर्तनसे नातिदीर्घायु हुए तथा सामान्यबुद्धियुक्त मनुष्यमात्रको उन संहिताओंसे सार निकालना कठिन समझ, करुणार्द्र महर्षियों तथा सामयिक विद्वानोंने उन संहिताओंको अनेक अङ्गोंमें विभक्त कर दिया। अतः साधारण रीतिसे उसके दो विभाग हुए । १ रोगचिकित्सा, २ स्वास्थ्यरक्षा। जैसा कि श्रीमान् सुश्रुतने लिखा है-"इह खल्वायुर्वेदप्रयोजनम्, व्याध्युपसृष्टानां व्याधिपरिमोक्षः स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम्" इति। उसमें रोगविनाशार्थ शीघ्र क्रियाकी आवश्यकताका अनुभव कर रोगविनाशमें प्रथम ज्ञेय विषय रोगको जानना चाहिये। तदुक्तं चरके-"रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्। ततः कर्म भिषक्पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥" श्रीमान् माधवकारने "माधवनिदान" नामक रोगनिर्णायक-ग्रन्थका संग्रह किया। इसके कुछ समयानन्तर ही श्रीमान् चरकचतुरानन दत्तोपाह्व चक्रपाणिजीने इस चिकित्सासारसंग्रह "चक्रदत्त" की रचना की। माधवनिदानके अनन्तर ही इसकी रचना हुई, इसमें कुछ भी सन्देह नही। क्योंकि जिस क्रमसे रोगोंका वर्णन श्रीमान् माधवकारने किया है उसी क्रमसे चिकित्सा विधान इस ग्रन्थमें वर्णित है। इस ग्रन्थके रचयिता नयपाल नामक वङ्गदेशीय नरेन्द्रके प्रधान वैद्य थे, जैसा कि उन्होंने अपना परिचय इसी ग्रन्थके अन्तमें दिया है। इस ग्रन्थकी रचनाके साथ ही उन्होंने चरकसंहिताकी आयुर्वेददीपिका नामक व्याख्या भी की थी। इसी लिये उन्हें चरकचतुराननकी उपाधि भी प्राप्त हुई थी, जैसा कि उनकी चरकसंहिताव्याख्याकी समाप्तिके परिचयसे विदित होता है। इनके आविर्भावका समय ईसवीय ११००का मध्यकाल है जैसा कि श्रीमान् वर्तमान धन्वन्तरि महामहोपाध्याय कविराज गणनाथसेनजीने प्रत्यक्ष शारीरके उपोद्घातमें लिखा है:-

"ततश्च परमेकादशशतके चक्रपाणिर्नाम नयपालराजस्य वैद्यवरः प्रादुर्बभूव" पुनश्च "चक्रपाणिकालश्च खीस्तीयैकादशशतकमध्यभाग इति सर्ववादिसम्मतः सिद्धान्तः पूर्वोक्तहेतुः"।

इसकी उपयोगिता तथा सारवत्ताका अनुभव कर ही चरकसंहिताके टीकाकार श्रीयुत शिवदाससेनजीने इसकी तत्त्वचन्द्रिका नामक संस्कृत व्याख्या की। श्रीशिवदाससेनजीका जन्मकाल १५०० ई० के लगभग माना जाता है। यह ग्रन्थ बंगालमें बना था अतएव प्रथम बङ्गालमें ही इसका प्रचार भी अधिक हुआ और अबतक बङ्गालमें चिकित्साग्रन्थोंमें चक्रदत्त श्रेष्ठ समझा जाता है। इस ग्रन्थमें आर्ष प्रणालीके अनुसार स्वल्पमूल्यमें तैयार होने और पूर्ण लाभ पहुँचानेवाले क्वाथ, कल्क, चूर्ण, अवलेह, घृत, तैल, आसव, अरिष्ट आदि लिखे गये हैं और उनके बनानेकी विधिका विवेचन इसमें पूर्णरूपसे किया गया है। इसकी उपयोगिताको स्वीकार कर ही अन्य प्रान्तोंके विभिन्न विद्यालयोंने अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें रक्खा, यहाँतक कि हिन्दू विश्वविद्यालयमें प्रोफेसर नियत होनेपर मुझे भी सर्व प्रथम इसी ग्रन्थके पढ़ानेकी आज्ञा मिली। यह सन् १९२५ ई० के अगस्त मासका अवसर था। उस समय बाजारमें जो चक्रदत्त मिलता था वह अत्यन्त विकृतावस्थामें था, अतएव मेरे हृदयमें यह भाव उत्पन्न हुआ कि इस ग्रन्थपर सरल हिन्दी टीका लिख तथा इसे संशुद्ध कर प्रकाशित करना चाहिये। अतः मैंने इस सुबोधिनीनामक टीकाका लिखना प्रारम्भ किया और वह श्रीगुरुपूर्णिमा संवत् १९८३ को समाप्त हुई, अतएव श्रीगुरुजीके करकमलोंमें अर्पित है। यद्यपि सन् १९२६ ई० में कुछ संस्करण विशेष सुधारके साथ निकल चुके हैं, पर मुझे विश्वास है कि आप इस सुबोधिनी टीकाको विवेचनात्मक बुद्धिसे पढ़कर इसकी उपयोगिता अवश्य स्वीकार करेंगे। इस स्वल्प सेवासे यदि सर्वसाधारणको कुछ भी लाभ हुआ तो परिश्रम सफल समझूंगा। इस पुस्तकके छापने प्रकाशित करने और दुबारा छापनेका अधिकार सब स्वत्व सहित श्रीमान् "श्रीवेंकटेश्वर" स्टीम्-मुद्रणयन्त्रालयाध्यक्ष श्रीसेठ खेमराजजी श्रीकृष्णदासजीको समर्पण कर दिया है।

विनम्र-निवेदकः-

जगन्नाथशर्मा वाजपेयी आयुर्वेदाचार्यः

प्रोफेसर आयुर्वेद-हिन्दूविश्वविद्यालय-वाराणसीस्थः।



अथ चक्रदत्तस्थविषयानुक्रमणिका।



विषयाः	पृष्ठांकाः
अथ ज्वराधिकारः।	
मंगलाचरणम् ...	१
अभिधेयादिप्रतिज्ञा ...	,,
चिकित्साविधिः ...	,,
नवज्वरे त्याज्यानि ...	,,
लंघनस्य प्राधान्यं विधिः फल मर्यादा च ..	,,
लंघननिषेधः ...	२
सम्यग्लंघितलक्षणम्	,,
अतिलंघितदोषाः ...	,,
वमनावस्थामाह ...	,,
अनुचितवमनदोषाः ...	,,
जलनियमः ...	,,
षडङ्गजलम् ...	,,
पूर्वापरग्रन्थविरोधपरिहारमाह	३
जलपाकविधिः ...	,,
पथ्यविधिः ...	,,
विशिष्टपथ्यम् ...	,,
द्वन्द्वसन्निपातज्वरेषु पथ्यम् ...	,,
व्याध्यादियवागूः ...	,,
कल्कसाध्ययवाग्वादिपरिभाषा ...	,,
पेयादिसाधनार्थं क्वाथादिपरिभाषा ..	,,
मण्डादिलक्षणम् ...	४
मण्डादिसाधनार्थं जलमानम्	,,
यवागूनिषेधः ...	,,
तर्पणपरिभाषा ...	,,
ज्वरविशेषे पथ्यविशेषः	,,
ज्वरनाशकयूषद्रव्याणि	,,
ज्वरहरशाकद्रव्याणि	५
पथ्यावश्यकता ...	,,
अरुचिचिकित्सा ...	,,
भोजनसमयः ...	,,
अपथ्यभक्षणनिषेधः ...	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
ज्वरपाचनानि ...	५
ज्वरस्य तारुण्यादिनिश्चयः ...	,,
तत्र चिकित्सा ...	,,
आमज्वरलक्षणम् ..	,,
निरामलक्षणम् ...	६
सर्वज्वरपाचनकषायः	,,
औषधनिषेधः ...	,,
अन्नसंयुक्तासंयुक्तौषधफलम् ...	,,
औषधपाकलक्षणम् ...	,,
अजीर्णौषधलक्षणम्	,,
अजीर्णान्नौषधयोरौषधान्नसेवने दोषाः ...	,,
भोजनावृतभेषजगुणाः	,,
मात्रानिश्चयः ...	,,
सामान्यमात्रा ...	,,
क्वाथे जलमानम् ...	७
मानपरिभाषा ...	,,
वातज्वरचिकित्सा ...	८
प्रक्षेपानुपानमानम् ...	,,
विभिन्नक्वाथाः ...	,,
पित्तज्वरचिकित्सा ...	,,
त्रायमाणादिक्वाथः ...	९
मृद्वीकादिक्वाथः ...	,,
पर्पटादिक्वाथः ...	,,
विश्वादिक्वाथः ...	,,
अपरः पर्पटादिः ...	,,
द्राक्षादिक्वाथः ...	,,
अन्तर्दाहचिकित्सा ...	,,
शीतक्रियाविधानम् ...	,,
विदार्यादिलेपः .	,,
अन्ये लेपाः ...	,,
जलधारा ...	१०
कफज्वरचिकित्सा ...	,,
पिप्पल्यादिक्वाथः ...	,,
कटुकादिक्वाथः ...	,,
निम्बादिक्वाथः ...	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
सिन्दुवारक्वाथः ..	१०
आमलक्यादिक्वाथः ...	,,
त्रिफलादिक्वाथः ...	११
मुस्तादिक्वाथः ...	,,
चातुर्भद्रावलेहिका ...	,,
चूर्णादिमानम् ...	,,
अवलेहसेवनसमयः ...	,,
पिप्पल्यवलेहः .	,,
द्वन्द्वजचिकित्सा ...	,,
वातपित्तज्वरचिकित्सा	१२
त्रिफलादिक्वाथः ...	,,
किरातादिक्वाथः ...	,,
निदिग्धिकादिक्वाथः ...	,,
पञ्चभद्रक्वाथः ..	,,
मधुकादिशीतकषायः	,,
पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा	,,
पटोलादिक्वाथः ...	,,
गुडूच्यादिक्वाथः ...	,,
किरातपाठादी ...	,,
कण्टकार्यादिक्वाथः ...	,,
वासारसः ...	,,
पटोलादिक्वाथः ...	,,
अमृताष्टकक्वाथः ...	,,
अपरः पटोलादिः ...	१३
पञ्चतिक्तकषायः ...	,,
कटुकीचूर्णम् ...	,,
धान्यादिः ...	,,
वातश्लेष्मज्वरचिकित्सा	,,
वालुकास्वेदः ...	,,
मुस्तादिक्वाथः ...	,,
पञ्चकोलम् ...	,,
पिप्पलीक्वाथः ...	,,
आरग्वधादिक्वाथः ...	.
क्षुद्रादिक्वाथः ...	,,
दशमूलक्वाथः ...	१४
मुस्तादिक्वाथः ...	,,
दार्वादिक्वाथः ...	,,
हिंग्वादिमानम् ...	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
मुखवैरस्यनाशनम् ...	१४
सन्निपातज्वरचिकित्सा	,,
लंघनम् ...	,,
लंघनसहिष्णुता ...	,,
निष्ठीवनम् ...	,,
नस्यम्	१५
संज्ञाकारकं नस्यम् ...	,,
अञ्जनम्	,,
अष्टांगावलेहिका ...	,,
मधुव्यवस्था ...	,,
पञ्चमुष्टिकः ...	१६
पञ्चमूल्यादिक्काथः ...	,,
दशमूलम् ...	,,
चतुर्दशांगक्काथः ...	,,
अष्टादशांगक्काथः ...	,,
अपरोऽष्टादशांगः ...	,,
मुस्तादिक्काथः ..	,,
शट्यादिक्काथः ...	१७
बृहत्यादिक्काथः ...	,,
भाङ्ग्यादिक्काथः ...	,,
द्विपञ्चमूल्यादिक्वाथः	,,
अभिन्यासचिकित्सा ..	,,
(कारव्यादिकषायः)	
मातुलुंगादिक्वाथः	,,
अभिन्यासलक्षणम् ...	,,
कण्ठरोधादिचिकित्सा	,,
व्योषादिक्वाथः ...	,,
त्रिवृतादिक्वाथः ..	१८
स्वेदबाहुल्यचिकित्सा	,,
जिह्वादोषचिकित्सा ...	,,
निद्रानाशचिकित्सा ...	,,
सन्निपाते विशेषव्यवस्था	,,
कर्णमूललक्षणम् ...	,,
तच्चिकित्सा ...	,,
गैरिकादिलेपः ..	,,
कुलत्थादिलेपः ...	,,
जीर्णज्वरचिकित्सा ...	,,
अस्य समयः .	१९
गुडूचीक्वाथः ..	,,
गुडपिप्पलीगुणाः ...	,,
विषमज्वरचिकित्सा	,,
त्रिफलाक्वाथः ..	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
गुडूच्यादिक्वाथः ...	१९
योगान्तरम् ...	,,
मुस्तादिक्वाथः ..	,,
महौषधादिक्वाथः ...	,,
वासादिक्वाथः ...	,,
सामान्यचिकित्सा ...	,,
विषमज्वरहरविरेचनम्	२०
विषमज्वरे पथ्यम् ...	,,
विषमज्वरहरमञ्जनम्	,,
नस्यम् ...	,,
धूपः	,,
नस्यान्तरम् ...	,,
धूपान्तरम् ...	,,
अपरे योगाः ...	२१
विशिष्टचिकित्सा ..	,,
दैवव्यपाश्रय कर्म ...	,,
सर्पिष्पानावस्था ...	,,
सर्पिर्निषेधः ...	,,
निर्दशाहे कफोत्तरे शमनमशनम् ...	,,
पिप्पल्याद्यं घृतम् ..	,,
सिद्धस्नेहपरीक्षा ...	२२
क्षीरषट्पलकं घृतम् ..	२३
दशमूलषट्पलकं घृतम्	,,
स्नेहे क्वाथ्यादिनियामिका परिभाषा ...	,,
वासाद्यं घृतम्	२४
गुडूच्यादिघृतपञ्चकम्	,,
पेयादिदानसमयः .	,,
क्षीरदानसमयः ...	,,
पञ्चमूलीपयः .	,,
क्षीरपाकविधिः ...	,,
त्रिकण्टकादिक्षीरम् ..	,,
वृश्चीराद्यं क्षीरम्	,,
क्षीरविनिश्चयः ...	,,
संशोधननिश्चयः ...	,,
वमनम् ...	२५
विरेचनम् ...	,,
संशोधननिषेधः ...	,,
वस्तिविधानम् .	,,
विरेचननस्यम ...	,,
अभ्यंगादिविभाग. ...	,,
षट्कट्वरतैलम् ...	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
अंगारकतैलम् ...	२६
लाक्षादितैलम् ...	,,
यवचूर्णादितैलम् ...	,,
सर्जादितैलम् ...	,,
तैलान्तरम्	,,
आगन्तुकज्वरचिकित्सा	,,
क्रोधकामादिज्वरचिकित्सा	२७
भूतज्वरचिकित्सा ...	,,
ज्वरमुक्ते वर्ज्यानि ...	,,
विगतज्वरलक्षणम् ...	,,

अथ ज्वरातिसाराधिकारः।

ज्वरातिसारे चिकित्सा	२७
पाठादिक्काथः ..	,,
नागरादिक्काथः ...	,,
ह्रीवेरादिक्वाथः ...	,,
गुडूच्यादिक्वाथः ...	२८
उशीरादिक्वाथः ..	,,
पञ्चमूल्यादिक्वाथः ..	,,
कलिङ्गादिक्वाथः .	,,
वत्सकादिक्वाथः ...	,,
नागरादिक्वाथः ...	,,
मुस्तकादिक्वाथः ...	,,
घनादिक्वाथः ...	,,
कलिङ्गादिगुटिका ..	,,
उत्पलादिचूर्णम् ...	२९
व्योषादिचूर्णम् ...	,,
दशमूलीकषायः ..	,,
विडङ्गादिचूर्णं क्वाथो वा	,,
किरातादिचूर्णद्वयम् क्वाथद्वयं च .	,,

अथातिसाराधिकारः ।

अतीसारविशेषज्ञानम्	३०
आमचिकित्सा ...	,,
अतिसारे जलविधानम्	,,
अतिसारेऽन्नविधानम्	,,
आहारसंयोगिशालिपर्ण्यादिः ...	,,
अपरः शालिपर्ण्यादिः	,,
व्यञ्जननिषेधः ...	,,
विशिष्टाहारविधानम्	३१
सञ्चितदोषहरणम् ...	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
स्तम्भनावस्था ...	२१
विरेचनावस्था ...	,,
धान्यपञ्चकम् ...	,,
प्रमथ्याः ...	,,
आमातिसारघ्नचूर्णम्...	,,
पिप्पलीमूलादिचूर्णम्	२२
हरिद्रादिचूर्णम् ...	,,
खडयूषकाम्बलिकौ ...	,,
नागरादिपानीयम् ...	,,
पाठादिक्वाथश्चूर्णं वा	,,
मुस्ताक्षीरम् ...	,,
संग्रहणावस्था ...	,,
पञ्चमूल्यादिक्वाथश्चूर्णं वा	,,
कञ्चटादिक्वाथः ...	,,
नाभिपूरणम् ...	२३
किराततिक्तादिक्वाथः	,,
वत्सकबीजक्वाथः ...	,,
मधुकादिचूर्णम् ...	,,
कुटजादिचूर्णं क्वाथो वा	,,
क्वाथान्तरम् ...	,,
बिल्वादिक्वाथः ...	,,
पटोलादिक्वाथः ...	,,
प्रियङ्ग्वादिचूर्णम् ..	,,
वातपित्तातिसारे कल्कः	,,
कुटजादिक्वाथः ...	,,
समङ्गादिक्वाथः ..	२४
हिज्जलस्वरस ..	,,
वटारोहकल्कः ..	,,
अङ्कोटमूलकल्कः ...	,,
बब्बूलदलकल्कः .	,,
कुटजावलेहः ...	,,
अङ्कोटवटकः .	,,
रक्तातिसारचिकित्सा	,,
रसांजनादिकल्कः ...	,,
विडंगादिचूर्णं क्वाथो वा	२५
वत्सकादिकषायः ...	,,
दाडिमादिकषायः ...	,,
बिल्वकल्कः ...	,,
बिल्वादिकल्कः ...	,,
शल्लक्यादिकल्कः ...	,,
जम्ब्वादिस्वरसः ...	,,
तण्डुलीयकल्कः ...	,,
कुटजावलेहः ...	,,
तिलकल्कः ...	२६
गुदभ्रंशपाकादिचिकित्सा	,,
पुटपाकयोग्यावस्था ...	,,
कुटजपुटपाकः ...	,,
श्योनाकपुटपाकः ...	,,
कुटजलेहः ...	,,
कुटजाष्टकः ...	२७
अनुक्तजलमानपरिभाषा	,,
षडङ्गघृतम् ...	,,
क्षीरद्विमात्रं घृतम् .	,,
क्षीरपानावस्था ...	,,
वातशुद्ध्युपायः ...	,,
प्रवाहिकाचिकित्सा ...	२८
अतिसारासाध्यलक्षणम्	,,
अतीसारे वर्जनीयानि	,,

अथ ग्रहण्यधिकारः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः
ग्रहणीप्रतिक्रियाक्रमः	२८
ग्रहण्यां पेया ...	,,
तक्रस्यात्र वैशिष्ट्यम् ..	२९
शुण्ठ्यादिक्वाथः ...	,,
धान्यकादिक्वाथः ...	,,
चित्रकादिगुटिका ..	,,
पञ्चलवणगणना ...	,,
श्रीफलकल्कः ...	,,
श्रीफलपुटपाकः ...	,,
नागरादिक्वाथः ...	,,
भूनिम्बाद्यं चूर्णम् ..	४०
नागरादिचूर्णम् ...	,,
कफग्रहण्याश्चिकित्सा	,,
ग्रन्थिकादिचूर्णम् ...	,,
भल्लातकक्षारः	,,
सन्निपातग्रहणीचिकित्सा	,,
द्विगुणोत्तरचूर्णम् ...	,,
पाठादिचूर्णम्	,,
कपित्थाष्टकचूर्णम् ...	४१
दाडिमाष्टकचूर्णम् ...	,,
वार्ताकुगुटिका ...	,,
त्र्यूषणादिघृतम् .	,,
मसूरघृतम् ...	,,
शुण्ठीघृतम् ...	४२
चित्रकघृतम् ...	,,
बिल्वादिघृतम् ...	४२
चांगेरीघृतम् ...	,,
मरिचाद्यं घृतम् ...	,,
महाषट्पलकं घृतम् ...	,,
चुक्रनिर्माणविधिः ...	४३
बृहच्चुक्रविधानम् ...	,,
तक्रारिष्टम् ...	,,
कांजीसन्धानम् ...	,,
कल्याणकगुडः ...	४४
कूष्माण्डगुडकल्याणकः	,,
रसपर्पटी ...	४५
ताम्रयोगः ...	४६

अथार्शोऽधिकारः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः
अर्शश्चिकित्साभेदः ...	४६
अर्शोघ्नलेपाः ..	,,
लिङ्गार्शसि लेपः ...	४७
अपरो लेपः ...	,,
विशेषव्यवस्था ...	,,
तक्रप्राधान्यम्	,,
विशेषतक्रविधानम् ...	,,
अभयाप्रयोगाः ...	,,
अन्ये योगाः ...	,,
दन्त्यरिष्टः ...	४८
नागराद्यो मोदकः ...	,,
गुडमानम् ..	,,
प्राणदा गुटिका ...	,,
कांकायनगुटिका ..	४९
माणिभद्रमोदकः ...	,,
स्वल्पशूरणमोदकः ...	५०
बृहच्छूरणमोदकः ...	,,
शूरणपिण्डी ...	,,
व्योषाद्यं चूर्णम् ...	,,
समशर्करचूर्णम् ...	,,
लवणोत्तमाद्यं चूर्णम्	५१
नागार्जुनयोगः ...	,,
विजयचूर्णम् ...	,,
श्रीबाहुशालगुडः ..	५२
गुडपाकपरीक्षा ...	,,
गुडभल्लातकः ...	,,
द्वितीयगुडभल्लातकः	५३

विषयाः	पृष्ठांकाः
चव्यादिघृतम् ...	५३
पलाशक्षारघृतम् ...	"
उदकषट्पलक घृतम्	"
सिद्धमृत घृतम् ..	५४
पिप्पल्याद्यं तैलम् ...	"
रक्तार्शश्चिकित्सा	"
रक्तस्रावघ्नी पेया ...	"
रक्तार्शोनाशकसामान्य-योगाः ..	"
कुटजावलेहः ...	५५
कुटजरसक्रिया ...	"
कुटजाद्यं घृतम् ..	"
सुनिषण्णकचांगेरीघृतम्	५६
क्षारविधिः ...	"
प्रतिसारणीयक्षारविधिः	"
क्षारपाकनिश्चयः ...	५७
क्षारसूत्रम् ...	"
क्षारपातनविधिः ...	"
क्षारेण सम्यग्दग्धस्य लक्षणम् ...	५८
क्षारदग्ध उत्तरकर्म ..	"
अग्निदग्धलक्षणम् .	"
अग्निदग्धे उत्तरं कर्म ..	"
उपद्रवचिकित्सा ..	"
पथ्यम् ..	"
अनुवासनावस्था ..	"
अग्निमुख लौहम् ...	"
भल्लातकलौहम् ..	५९
अर्शोघ्नी वटी ...	"
परिवर्जनीयानि ...	६०

अथाग्निमान्द्याधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
चिकित्साविचारः ..	६०
हिंग्वष्टकचूर्णम् ...	"
अग्निदीपका. सामान्ययोगाः ...	"
मण्डगुणाः ...	"
अत्यग्निचिकित्सा ...	"
विश्वादिक्वाथः ...	६१
अग्निदीपका योगाः ...	६१
कपित्थादिखडः ...	"
शार्दूलकांजिकः ...	"
अग्निमुखचूर्णम् ...	६२
पानीयभक्तगुटिका ...	"
बृहदग्निमुखचूर्णम् ..	"
भास्करलवणम् ...	६३
अग्निघृतम् ...	"
मस्तुष पलक घृतम्	६४
बृहदग्निघृतम् ...	"
क्षारगुडः ...	"
चित्रकगुडः ...	६५
आमाजीर्णचिकित्सा...	"
विदग्धाजीर्णचिकित्सा	"
विष्टब्धाजीर्णरसशेषाजीर्णचिकित्सा ...	"
दिवा स्वप्नयोग्याः .	"
अजीर्णस्य सामान्यचिकित्सा ...	६६
विसूचिकाचिकित्सा	"
मर्दनम् ...	"
वमनम् ...	"
अञ्जनम् ...	"
अपरमञ्जनम् ...	"
उद्वर्तन तैलमर्दनं वा	"
उपद्रवचिकित्सा ...	"

अथ क्रिमिरोगाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
पारसीकयवानिकाचूर्णम्	६७
मुस्तादिक्वाथः ...	"
पिष्टकपूपिकायोगः	"
पलाशवीजयोगः ...	"
सुरसादिगणक्वाथः विडंगादिचूर्णं च ...	"
विडंगादियवागूः ...	६८
बिम्बीघृतम् ...	"
त्रिफलादिघृतम् ...	"
विडंगघृतम् ..	"
यूकाचिकित्सा ...	"
विडंगादितैलम् .	"

अथ पाण्डुरोगाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
चिकित्साविचारः ...	६९
पाण्डुनाशकाः केचन योगाः	"
फलत्रिकादिक्वाथः ...	"
अपरस्तिलादिमोदकः	"
मण्डूरविधिः ...	७०
नवायसं चूर्णम् ...	"
योगराजः ...	"
त्रिशालाद्य चूर्णम् ...	"
लौहक्षीरम् ...	"
कामलाचिकित्सा ...	"
कामलानाशका योगाः	७१
अञ्जनम् ...	"
अपरमञ्जनं नस्य च ...	"
लेहाः ..	"
कुम्भकामलाचिकित्सा	"
हलीमकचिकित्सा ...	"
विडगाद्य लौहम् ...	"
मण्डूरवटकाः ...	७२
पुनर्नवामण्डूरम् ...	"
मण्डूरवज्रवटकः ...	"
धात्र्यरिष्टः ...	"
द्राक्षाघृतम् ...	७३
हरिद्रादिघृतम् ...	"
मूर्वाद्य घृतम् ...	"
व्योषाद्य घृतम् ...	"

अथ रक्तपित्ताधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
रक्तपित्तचिकित्साविचारः ...	७३
त्रिवृतादिमोदकः ...	"
अधोगामिरक्तपित्तचिकित्सा .	७४
पथ्यम् ...	"
स्तम्भनावस्था ...	"
स्तम्भकयोगाः ..	"
वासाप्राधान्यम् ...	"
अन्ये योगाः ...	"
क्षीरविधानम् ..	७५
केचन लेहाः ...	"
द्रवमानम् ...	"

विषयाः	पृष्ठांकाः
एलादिगुटिका ...	७५
पृथ्वीकायोगः ...	७६
मूर्ध्नि लेपः ...	"
नस्यम् ...	"
उत्तरवस्तिः ...	"
दूर्वाद्यं घृतम् ...	"
शतावरीघृतम् ...	"
महाशतावरीघृतम् ...	७७
प्रक्षेपमानम् ...	"
वासाघृतम् ...	"
पुष्पकल्कमानम् ..	"
कामदेवघृतम् ...	"
सप्तप्रस्थघृतम् ...	७८
कूष्माण्डकरसायनम्...	"
कूष्माण्डकरसायने द्रवमानम् ...	"
वासाकूष्माण्डखण्डः	७९
वासाखण्डः ...	"
खण्डकाद्यो लौहः ...	"
पथ्यापथ्यम् ...	८०
परिशिष्टम् ...	"

अथ राजयक्ष्माधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
राजयक्ष्मणि पथ्यम्...	८०
शोधनम् ...	"
राजयक्ष्मणि मलरक्षणप्रयोजनम् ...	"
षडङ्गयूषः ...	८१
धान्यकादिक्वाथः ...	"
अश्वगन्धादिक्वाथः ...	"
दशमूलादिक्वाथः ...	"
ककुभत्वगाद्युत्कारिका	"
मांसचूर्णम् ...	"
नागबलावलेहः ...	"
लेहद्वयम् ...	"
नवनीतप्रयोगः ...	"
सितोपलादिचूर्णम् ...	"
लवङ्गाद्यं चूर्णम् ...	८२
तालीशाद्यं चूर्णं मोदकश्च	"
शृंग्यादिचूर्णम् ...	"
ताप्यादिलोहम् ...	"
विन्ध्यवासियोगः ...	८३
रसेन्द्रगुटिका ...	"
एलादिमन्थः ...	"
सर्पिर्गुडः ...	"
च्यवनप्राशः ...	८४
च्यवनप्राशस्य गुणाः	"
जीवन्त्याद्यं घृतम् ...	८५
पिप्पलीघृतम् ...	"
पाराशरं घृतम् ...	"
छागलाद्यं घृतम् ...	"
छागघृतम् ...	८६
अजापञ्चकं घृतम् ...	"
बलागर्भं घृतम् ...	"
नागबलाघृतम् ...	"
निर्गुण्डीघृतम्	"
बलाद्यं घृतम् ...	८७
चन्दनाद्यं तैलम् ...	"
छागसेवोत्कृष्टता ...	"
उरःक्षतचिकित्सा ...	"
बलाद्यं घृतम् ...	८८

अथ कासरोगाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
वातजन्यकासे सामान्यतः पथ्याद्युपायाः ...	"
पञ्चमूलीक्वाथः ...	"
शृंग्यादिलेहः ...	"
विश्वादिलेहः	"
भार्ङ्ग्यादिलेहः ...	८९
पित्तजकासचिकित्सा	"
पथ्यम् ...	"
बलादिक्वाथः ...	"
शरादिक्षीरम् ...	"
विशिष्टरसादिविधानम्	"
द्राक्षादिलेहः ...	"
खर्जूरादिलेहः ...	"
शट्यादिरसः ...	"
कफकासचिकित्सा ...	"
*पञ्चकोलसाधित क्षीरम्	"
पौष्करादिक्वाथः ...	९०
शृङ्गवेरस्वरसः ...	"
नवांगयूषः ...	"
दशमूलक्वाथः ...	९०
कट्फलादिक्वाथः ...	"
अन्ये योगाः ...	"
हरीतक्यादिगुटिका ...	"
मरिचादिगुटिका ...	"
समशर्करचूर्णम् ...	९१
हरीतक्यादिमोदकः ...	"
व्योषांतिकागुटिका ...	"
मनःशिलादिधूमः ...	"
अपरो धूमः ...	"
अन्यो धूमः ...	"
वार्ताकीधूमः ...	"
दशमूलघृतम् ...	"
अपरं दशमूलघृतम् ...	९२
दशमूलषट्पलकं घृतम्	"
कण्टकारीघृतद्वयम्...	"
बृहत्कण्टकारीघृतम्...	"
रास्नाद्यं घृतम् ...	"
अगस्त्यहरीतकी ..	"
भृगुहरीतकी ...	९३

अथ हिक्काश्वासाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
हिक्काश्वासयोश्चिकित्सोपायाः ...	"
केचन लेहाः ...	"
नस्यानि ...	९४
केचन योगाः ...	"
शृंग्यादिचूर्णम् ...	"
कल्कद्वयम् ...	"
अमृतादिक्वाथः ...	"
दशमूलक्वाथः ...	"
कुलत्थादिक्वाथः ...	"
गुडप्रयोगः ...	"
शृंग्यादिचूर्णम् ...	"
हरिद्रादिलेहः ...	९५
मयूरपिच्छभूतिः ...	"
विभीतकचूर्णम् ...	"
हिंस्राद्यं घृतम् ...	"
तेजोवत्याद्यं घृतम् ...	"
भार्गीगुडः ...	"
कुलत्थगुडः ...	

विषयाः	पृष्ठांकाः
अथ स्वरभेदाधिकारः ।	
स्वरभेदे चिकित्साभेदाः	९६
चव्यादिचूर्णम् ...	,,
केचन योगाः ...	,,
उच्चैर्व्याहरणजस्वरभेदचिकित्सा ...	,,
कण्टकारीघृतम् ...	९७
स्वरसाभावे ग्राह्यद्रव्यम्	,,
भृङ्गराजघृतम् ...	,,
अथारोचकाधिकारः ।	
अरोचके चिकित्सोपायाः	९७
कवलग्रहाः ...	,,
अम्लिकादिकवलः ...	,,
कारव्यादिकवलः ...	९८
त्र्यूषणादिकवलः ...	,,
दाडिमरसः ...	,,
यमानीषाडवम् ...	,,
कलहसकः ...	,,
अथ छर्द्यधिकारः ।	
लघनप्राशस्त्यम् ...	९८
वातच्छर्दिचिकित्सा...	९९
पित्तच्छर्दिचिकित्सा...	,,
कफच्छर्दिचिकित्सा...	,,
सन्निपातजच्छर्दिचिकित्सा ...	,,
शीतकषायविधानम् ..	१००
श्रीफलादिशीतकषायाः	,,
एलादिचूर्णम् ...	,,
कोलमज्जादिलेहः ...	,,
पेय जलम् ...	,,
रक्तच्छर्दिचिकित्सा...	,,
त्रयो लेहाः ...	,,
पद्मकाद्यं घृतम्	,,
अथ तृष्णाधिकारः ।	
वातजतृष्णाचिकित्सा	१०१
पित्तजतृष्णाचिकित्सा	,,
कफजतृष्णाचिकित्सा	,,
क्षतक्षयजचिकित्सा...	,,
सर्वजतृष्णाचिकित्सा	१०१
सामान्यचिकित्सा ...	१०२
गण्डूषस्तालुशोषे ...	,,
अन्ये योगाः ...	,,
मुखालेपः ...	,,
वारिणा वमनम् ...	,,
वटशुङ्गादिगुटी ...	,,
चिरोत्थतृष्णाचिकित्सा	,,
जलदानावश्यकता ...	,,
अथ मूर्छाधिकारः ।	
सामान्यचिकित्सा ...	१०३
यथादोषं चिकित्साक्रमः	,,
कोलादिचूर्णम् ...	,,
महौषधादिक्वाथः ...	,,
भ्रमचिकित्सा ...	,,
त्रिफलाप्रयोगः ...	,,
सन्यासचिकित्सा ...	,,
अथ मदात्ययाधिकारः ।	
खर्जूरादिमन्थः ...	१०४
मन्थविधिः ...	,,
तर्पणम् ...	,,
सर्वमदात्ययचिकित्सा	,,
दुग्धप्रयोगः ...	,,
पुनर्नवाद्य घृतम् ...	,,
अष्टांगलवणम् ...	,,
चव्यादिचूर्णम् ...	,,
मद्यपानविधिः ...	,,
पानविभ्रमचिकित्सा	१०५
पथ्याघृतम् ...	,,
पूगमदचिकित्सा ...	,,
कोद्रवधुस्तूरमदचिकित्सा	,,
अथ दाहाधिकारः ।	
दाहे सामान्यक्रमः ...	१०५
कुशाद्यं तैलं घृतं च ...	,,
फलिन्यादिप्रलेपः ...	१०६
ह्रीबेराद्यवगाहः ...	,,
अथोन्मादाधिकारः ।	
सामान्यत उन्मादचिकित्सोपायाः ...	१०६
स्वरसप्रयोगाः ...	१०६
दशमूलक्वाथः ...	,,
पुराणघृतलक्षणम् ...	,,
पायसः ...	,,
उन्मादनाशकनस्यादि	,,
सिद्धार्थकाद्यगदः ...	,,
त्र्यूषणाद्या वार्तिः ...	१०७
सामान्यप्रयोगाः ...	,,
कल्याणकं घृतं क्षीरकल्याणकं च ...	,,
महाकल्याणकंघृतम्...	१०८
चैतस घृतम् ...	,,
महापैशाचिकं घृतम्...	,,
हिंग्वाद्य घृतम् ...	,,
लशुनाद्यं घृतम् ..	,,
आगन्तुकोन्मादचिकित्सा	१०९
अञ्जनम् ...	,,
धूपाः ...	,,
नस्यम् ...	,,
तीक्ष्णौषधनिषेधः ...	,,
विगतोन्मादलक्षणम् ..	,,
अथापस्माराधिकारः ।	
वातिकादिक्रमेण सामान्यतश्चिकित्सा ...	१०९
अञ्जनानि ...	,,
धूपोत्सादनलेपाः ...	११०
वचाचूर्णम् ...	,,
अन्ये योगाः ...	,,
स्वल्पपञ्चगव्य घृतम्	,,
बृहत्पञ्चगव्य घृतम्...	,,
महाचैतसं घृतम् ...	१११
कूष्माण्डकघृतम् ...	,,
ब्राह्मीघृतम् ...	,,
पलकषाद्यं तैलम् ...	,,
अभ्यगः ...	,,
अथ वातव्याध्यधिकारः ।	
तत्र सामान्यतश्चिकित्साभेदाः ...	,,
भिन्नभिन्नस्थानस्थवातचिकित्सा ...	११२

विषयाः	पृष्ठांकाः
पङ्गुधरणयोगः ...	११२
पक्वाशयगतवातचिकित्सा	"
स्नेहलवणम् ...	"
विभिन्नस्थानस्थवात-चिकित्सा ...	"
शुष्कगर्भचिकित्सा	"
शिरोगतवातचिकित्सा	"
हनुस्तम्भचिकित्सा ...	"
अर्दितचिकित्सा ...	"
मन्यास्तम्भचिकित्सा	११३
जिह्वास्तम्भचिकित्सा	"
कल्याणको लेहः ...	"
त्रिकस्कन्धादिगतवायुचि-कित्सा ...	"
माषबलादिक्वाथनस्यम्	"
विश्वाचीचिकित्सा .	"
पक्षाघातचिकित्सा ...	"
हरीतक्यादिचूर्णम् ...	"
स्वल्परसोनपिण्डः ..	११४
विविधा योगाः ...	"
गृध्रसीचिकित्सा ...	"
रास्नागुग्गुलुः ...	११५
गृध्रस्या विशेषचिकित्सा	"
वंक्षणशूलादिनाशका योगाः	"
शिराव्यधः ..	"
पाददाहचिकित्सा ...	"
पादहर्षचिकित्सा ...	"
झिञ्झिनिवातचिकित्सा	"
क्रोष्टुकशीर्षवातकण्टक-खल्लीचिकित्सा ...	"
आदित्यपाकगुग्गुलुः	११६
भावनाविधिः ...	"
आभादिगुग्गुलुः ...	"
मिश्रितवातचिकित्सा	"
आहारविहाराः ...	"
वातनाशकगणः ...	११७
कोलादिप्रदेहः ...	"
वेशवारः ...	"
शाल्वणस्वेदः ...	"
अश्वगन्धाघृतम् ..	"
दशमूलघृतम् ...	११८
आजघृतम् ...	११८
एलादितैलम् ...	"
बलाशैरीयकतैले ...	"
महाबलातैलम् ...	"
नारायणतैलम् ...	११९
महानारायणतैलम् ...	"
अश्वगन्धातैलम् ...	१२०
मूलकाद्यं तैलम् ...	"
रसोनतैलम् ...	"
केतक्याद्यं तैलम् ...	१२१
सैन्धवाद्यं तैलम् ...	"
माषसैन्धवतैलम् ...	"
माषादितैलम् ...	"
द्वितीय माषतैलम् ...	"
तृतीय माषतैलम् .	"
चतुर्थ माषतैलम् ...	१२२
पञ्चम माषतैलम् ...	"
षष्ठ महामाषतैलम् ...	"
मज्जस्नेहः ...	१२३
महास्नेहः ...	"
कुब्जप्रसारणीतैलम्...	१२४
त्रिशतीप्रसारणीतैलम्	"
सप्तशतिकप्रसारणीतैलम्	१२५
एकादशशतिक प्रसारणी-तैलम् ...	"
अष्टादशशतिक प्रसारणी-तैलम् ..	१२६
महाराजप्रसारणीतैलम्	१२७
शुक्तविधिः ...	१२८
गन्धानां क्षालनम् ...	"
पञ्चपल्लवम् ...	१२९
नखशुद्धिः	"
वचाहरिद्रादिशोधनम्	"
पूतिशोधनम् ..	"
तुरुष्कादिशोधनम् ...	"
कस्तूरीपरीक्षा	"
कर्पूरश्रेष्ठता ...	"
कुष्ठादिश्रेष्ठता ...	१३०
महासुगन्धितैलम् ...	"
पत्रकल्कविधिः ...	"
लक्ष्मीविलासतैलम् .	"
द्रवदानपरिभाषा ...	"
अनयोर्गुणाः ...	"
विष्णुतैलम् ...	१३१

अथ वातरक्ताधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
बाह्यगम्भीरादिचिकित्सा	१३१
अमृतादिक्काथद्वयम्	"
वासादिक्काथः ...	"
मुण्डितिकाचूर्णम् ...	"
पथ्याप्रयोगः ...	१३२
गुडूचीप्रयोगः ...	"
गुडूच्याश्चत्वारो योगाः	"
वातप्रधानचिकित्सा	"
पित्तरक्ताधिक्ये पटोलादि-क्काथः ...	"
लेपसेकाः ...	"
कफाधिक्यचिकित्सा	"
संसर्गसन्निपातजचि-कित्सा ...	"
*गुडूचीतैलम् ...	"
नवकार्षिकक्काथः ...	१३३
गुडूचीघृतम् ...	"
शतावरीघृतम् ...	"
अमृताद्यं घृतम् ...	"
दशपाकबलातैलम् ...	"
गुडूच्यादितैलम् ...	१३४
खुड्डाकपद्मकतैलम् ...	"
नागबलातैलम् ..	"
पिण्डतैलत्रयम् ...	"
कैशोरगुग्गुलुः ...	"
अमृताद्यो गुग्गुलुः ...	१३५
अमृताख्यो गुग्गुलुः ...	"
योगसारामृतः ...	"
बृहद्गुडूचीतैलम् ...	१३६

अथोरुस्तम्भाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यतश्चिकित्साविचारः ...	१३६
केचन योगाः ...	"
लेपद्वयम् ...	१३७
विहारव्यवस्था ...	"
अष्टकट्वरतैलम् ...	"
कुष्ठादितैलम् ...	"

विषयाः	पृष्ठांकाः
अथामवाताधिकारः ।	
सामान्यतश्चिकित्साभेदाः	१३७
शट्यादिपाचनम् ...	,,
शट्यादिकल्कः ...	१३८
रास्नादशमूलक्वाथः ...	,,
एरण्डतैलयोगः ..	,,
रास्नापञ्चकम् ...	,,
रास्नासप्तकम् ...	,,
विविधा योगाः ...	,,
अमृतादिचूर्णम् ...	,,
वैश्वानरचूर्णम् ..	,,
अलम्बुषादिचूर्णम् ...	१३९
शतपुष्पादिचूर्णम् ...	,,
भागोत्तरचूर्णम् ...	,,
योगराजगुग्गुलुः ...	,,
सिंहनादगुग्गुलुः ...	,,
*बृहत्सिंहनादगुग्गुलुः	१४०
भागोत्तरमलम्बुषादिचूर्णम् ...	,,
त्रिफलापथ्यादिचूर्णम्	,,
*बृहत्सैन्धवतैलम्	,,
अजमोदाद्यवटकः .	१४१
नागरघृतम् ...	,,
अमृताघृतम् ...	,,
हिंग्वादिघृतम् ...	,,
शुण्ठीघृतानि ...	,,
रसोनपिण्डः ...	,,
प्रसारणीरसोनपिण्डः	१४२
रसोनसुरा ...	,,
शिण्डाकी ..	,,
सिध्मला ...	,,
आमवाते वर्ज्यानि ...	१४३
अथ शूलाधिकारः ।	
शूले वमनलङ्घनाद्युपायाः	१४३
वातशूलचिकित्सा ...	,,
बलादिक्वाथः ...	,,
हिंग्वादिचूर्णम्	,,
तुम्बुर्वादिचूर्णम् ..	,,
श्यामादिकल्कः ..	१४४
यमान्यादिचूर्णम् .	,,
विविधा योगाः ...	,,
द्वितीयं हिंग्वादिचूर्णम्	१४४
*नारिकेलखण्डः ...	,,
सौवर्चलादिगुटिका ...	,,
हिंग्वादिगुटिका ...	,,
बीजपूरमूलयोगः ...	१४५
स्वेदनप्रयोगाः ...	,,
पित्तशूलचिकित्सा ...	,,
बृहत्यादिक्वाथः ...	,,
शतावर्यादिजलम् ...	,,
त्रिफलादिक्वाथः ...	,,
एरण्डतैलयोगः ...	१४६
अपरस्त्रिफलादिक्वाथः	,,
धात्रीचूर्णम् ...	,,
*अपरो नारिकेलखण्डः	,,
कफजशूलचिकित्सा	,,
पञ्चकोलयवागूः .	,,
पञ्चकोलचूर्णम् ...	,,
बिल्वमूलादिचूर्णम् ...	,,
मुस्तादिचूर्णम् ...	,,
वचादिचूर्णम् ...	१४७
योगद्वयम् ..	,,
आमशूलचिकित्सा ...	,,
हिंग्वादिचूर्णम् ...	,,
*धात्रीलौहम् ...	,,
चित्रकादिक्वाथः ...	,,
दीप्यकादिचूर्णम् ..	,,
पित्तानिलात्मशूलचिकित्सा ...	१४८
कफपित्तजशूलचिकित्सा	,,
पटोलादिक्वाथः ...	,,
वातश्लेष्मजचिकित्सा	,,
विश्वादिक्वाथः ...	,,
रुचकादिचूर्णम् ...	,,
हिंग्वादिचूर्णम् ..	,,
एरण्डादिक्वाथः ...	१४९
हिंग्वादिचूर्णमपरम् ...	,,
मृगशृङ्गभस्म ...	,,
विडङ्गचूर्णम् ...	,,
सन्निपातजशूलचिकित्सा ...	,,
विदार्यादिरसः ...	,,
एरण्डद्वादशकक्वाथः	,,
गोमूत्रमण्डूरम् ...	१४९
शंखचूर्णम् ...	,,
लोहप्रयोगः ...	,,
मूत्राभयायोगः ...	,,
दाधिकं घृतम् ...	,,
शूलहरधूपः ...	१५०
अपथ्यम् ...	,,
अथ परिणामशूलाधिकारः ।	
सामान्यचिकित्साविचारः	१५०
विडंगादिगुटिका ...	,,
नागरादिलेहः ...	,,
शम्बूकभस्मयोगः ...	,,
विभीतकादिचूर्णम् ...	,,
तिलादिगुटिका ...	,,
शम्बूकादिवटी ..	,,
सक्तुप्रयोगः ...	१५१
लौहप्रयोगाः ...	,,
सामुद्राद्यं चूर्णम् ...	,,
नारिकेलामृतम् .	,,
सप्तामृत लौहम् .	,,
गुडपिप्पलीघृतम् ...	१५२
पिप्पलीघृतम् ...	,,
कोलादिमण्डूरम् ...	,,
भीमवटकमण्डूरम् ...	,,
क्षीरमण्डूरम् ...	,,
चविकादिमण्डूरम् .	,,
गुडमण्डूरप्रयोगः ..	,,
शतावरीमण्डूरम् ...	,,
तारामण्डूरगुडः ..	,,
राममण्डूरम् .	१५३
*बृहच्छतावरीमण्डूरम्	,,
रसमण्डूरम् ...	,,
त्रिफलालौहम् ...	१५४
लोहावलेहः ...	,,
धात्रीलौहम् ...	,,
लौहामृतम् ...	,,
खण्डामलकी ...	१५५
नारिकेलखण्डः ...	,,
कलायचूर्णादिगुटी	,,
त्रिफलायोगौ ..	,,
अन्नद्रवशूलचिकित्सा	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
विविधा योगाः ...	१५५
पथ्यविचारः ...	१५६
अथोदावर्ताधिकारः।	
सामान्यक्रमः ...	१५६
कारणभेदेन चिकित्सा-भेदः ...	,,
श्यामादिगणः ...	,,
त्रिवृतादिगुटिका ...	,,
हरीतक्यादिचूर्णम् ...	,,
हिंग्वादिचूर्णम् ..	,,
नाराचचूर्णम् ...	,,
लशुनप्रयोगः ...	१५७
फलवर्तयः ...	,,
मूत्रजोदावर्तचिकित्सा	,,
जृम्भजाद्युदावर्त-चिकित्सा ...	,,
शुक्रजोदावर्त-चिकित्सा	,,
क्षुद्विघातादिज-चिकित्सा ...	,,
अथानाहाधिकारः।	
चिकित्साक्रमः ...	१५८
द्विरुत्तरं चूर्णम् .	,,
वचादिचूर्णम् ...	,,
त्रिवृतादिगुटिका ...	,,
क्षारलवम् ...	,,
राठादिवर्तिः .	,,
त्रिकटुकादिवर्तिः ...	१५९
शुष्कमूलकाद्य घृतम्	,,
स्थिराद्यं घृतम् ...	,,
अथ गुल्माधिकारः।	
चिकित्साक्रमः ...	१५९
वातगुल्मचिकित्सा ...	,,
एरण्डतैलयोगः ...	१६०
लशुनक्षीरम् ...	,,
उत्पत्तिभेदेन चिकित्साभेदः	,,
विदह्यमानगुल्मचिकित्सा	,,
रोहिण्यादियोगः ...	,,
दीप्ताग्न्यादिषु स्नेहमात्रा	१६१
कफजगुल्मचिकित्सा	,,
वमनयोग्यता ...	१६१
गुटिकादियोग्यता ...	,,
लेपस्वेदौ ...	,,
तक्रप्रयोगः ...	,,
द्वन्द्वजचिकित्सा ...	,,
सन्निपातजचिकित्सा	,,
वचादिचूर्णम् ...	,,
यमान्यादिचूर्णम् ...	१६२
हिंग्वाद्य चूर्णं गुटिका वा	,,
वचादिचूर्णम् ...	,,
सुराप्रयोगः ...	,,
नादेय्यादिक्षारः ...	१६३
हिंग्वादिभागोत्तरचूर्णम्	,,
त्रिफलादिचूर्णम् ...	,,
कांकायनगुटिका ...	,,
हपुषाद्यं घृतम् ...	१६४
पञ्चपलकं घृतम् ...	,,
त्र्यूषणाद्यं घृतम् ...	,,
त्रायमाणाद्यं घृतम् ...	,,
द्राक्षाद्यं घृतम् .	,,
धात्रीषट्पलकघृ० ...	१६५
भार्गीषट्पलकं घृतम्	,,
क्षीरषट्पलकं घृतम्...	,,
भल्लातकघृतम् ..	,,
रसोनाद्यं घृतम् ...	,,
दन्तीहरीतकी ...	,,
वृश्चीराद्यरिष्टः .	१६६
रक्तगुल्मचिकित्सा ...	,,
शताह्वादिकल्कः ...	,,
तिलक्वाथः ..	,,
विविधा योगाः ...	,,
भल्लातकघृतम् ...	,,
अपथ्यम् ...	१६७
अथ हृद्रोगाधिकारः।	
वातजहृद्रोगचिकित्सा	१६७
पिप्पल्यादिचूर्णम् ...	,,
नागरक्वाथः ...	,,
पित्तजहृद्रोगचिकित्सा	,,
अन्ये उपायाः ...	१६७
क्षीरप्रयोगः ...	,,
ककुभचूर्णम् ...	,,
कफजहृद्रोगचिकित्सा	१६८
त्रिदोषजहृद्रोगचिकित्सा	,,
पुष्करमूलचूर्णम् ...	,,
गोधूमपार्थप्रयोगः ...	,,
गोधूमादिलप्सिका ...	,,
नागबलादिचूर्णम् ...	,,
हिंग्वादिचूर्णम् ...	,,
दशमूलक्वाथः ...	,,
पाठादिचूर्णम् ...	,,
मृगशृङ्गभस्म ...	,,
क्रिमिहृद्रोगचिकित्सा	१६९
वल्लभकं घृतम् ...	,,
श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् ...	,,
बलार्जुनघृतद्वयम् ...	,,
अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः।	
वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा	,,
अमृतादिक्वाथः ...	,,
पित्तजकृच्छ्रचिकित्सा...	१७०
तृणपञ्चमूलम् ...	,,
शतावर्यादिक्वाथः ...	,,
हरीतक्यादिक्वाथः ...	,,
गुडामलकयोगः ...	,,
एर्वारुबीजादिचूर्णम्...	,,
कफजचिकित्सा ...	,,
त्रिदोषजचिकित्सा ...	,,
बृहत्यादिक्वाथः ...	१७१
उत्पत्तिभेदेन चिकित्सा-भेदः ...	,,
एलादिक्षीरम् ...	,,
रक्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा	,,
त्रिकण्टकादिक्वाथः...	,,
एलादिचूर्णम् .	,,
लौहयोगः ...	,,
यवक्षारयोगः ...	,,
शतावर्यादिघृतं क्षीरं वा	,,
त्रिकण्टकादिसर्पिः ..	१७२
सुकुमारकुमारकं घृतम्	,,

विषयाः पृष्ठांकाः

अथ मूत्राघाताधिकारः ।

सामान्यक्रमः ... १७२
विविधा योगाः ... ,,
त्रिकण्टकादिक्षीरम् ... १७३
नलादिक्वाथः ... ,,
पाषाणभेदक्वाथः ... ,,
उपायान्तरम् ... ,,
अतिव्यवायजमूत्राघातचिकित्सा ... ,,
चित्रकाद्यं घृतम् ... ,,

अथाश्मर्यधिकारः ।

वरुणादिक्वाथः ... १७४
वीरतरादिक्वाथः ... ,,
शुण्ठ्यादिक्वाथः ... ,,
पाषाणभेदाद्यं घृतम् ... ,,
ऊषकादिगणः ... १७५
कुशाद्यं घृतम् ... ,,
कफजाश्मरीचिकित्सा ,,
वरुणादिगणः ... ,,
विविधा योगाः .. ,,
नागरादिक्वाथः ... ,,
वरुणादिक्वाथः ... १७६
श्वदंष्ट्रादिक्वाथः ... ,,
श्वदंष्ट्रादिकल्कः ... ,,
अन्ये योगाः ... ,,
एलादिक्वाथः ... ,,
त्रिकण्टकचूर्णम् ... ,,
पाषाणभेदादिचूर्णम् ... ,,
कुलत्थाद्यं घृतम् ... ,,
तृणपञ्चमूलघृतम् ... १७७
वरुणाद्यं घृतम् ... ,,
सैन्धववीरतर्वादितैलम् ,,
वरुणाद्यं तैलम् ... ,,
शस्त्रचिकित्सा ... ,,

अथ प्रमेहाधिकारः ।

पथ्यम् ... १७८
अष्टमेहापहा अष्टौ क्वाथाः ,,
शुक्रमेहहरः क्वाथः ... ,,
फेनमेहहरः क्वाथः ... ,,
कषायचतुष्टयी ... ,,
षण्मेहनाशकाः षट् क्वाथाः १७९
कषायचतुष्टयी ... ,,
वातजमेहचिकित्सा .. ,,
कफपित्तमेहचिकित्सा ,,
त्रिदोषजमेहचिकित्सा ,,
विविधाः क्वाथाः ... ,,
चूर्णकल्कः ... ,,
न्यग्रोधाद्यं चूर्णम् ... १८०
त्रिकण्टकाद्याः स्नेहाः ,,
कफपित्तमेहयोः सर्पिषी ,,
धान्वन्तरं घृतम् ... ,,
* महादाडिमाद्यं घृतम् ,,
त्र्यूषणादिगुग्गुलुः ... १८१
शिलाजतुप्रयोगः ... ,,
विडङ्गादिलौहम् ... ,,
माक्षिकादियोगः ... ,,
मेहनाशकविहाराः ... १८२
प्रमेहपिडकाचिकित्सा ,,
वर्ज्यानि ... ,,
*प्रमेहमुक्तिलक्षणम् ... ,,

अथ स्थौल्यचिकित्सा ।

स्थौल्ये पथ्यानि . १८२
केचनोपायाः ... ,,
*विडङ्गाद्यं लौहम् ... ,,
व्योषादिसक्तुयोगः ... १८३
प्रयोगद्वयम् .. ,,
अमृतादिगुग्गुलुः ... ,,
नवकगुग्गुलुः ... ,,
लौहरसायनम् ... ,,
त्रिफलाद्यं तैलम् ... १८४
प्रघर्षप्रदेहाः .. ,,
अङ्गरागः ... ,,
दलादिलेपः . ,,
चिञ्चाहरिद्रोद्वर्तनम् ... १८५
हस्तपादस्वेदाधिक्यचिकित्सा ... ,,

अथोदराधिकारः ।

सामान्यतश्चिकित्साविचारः ... १८५
वातोदरचिकित्सा ... ,,
सर्वोदराणां सामान्यचि० ,,
तक्रविधानम् ... १८५
दुग्धप्रयोगः ... १८६
सामुद्राद्यं चूर्णम् ... ,,
पित्तोदरचिकित्सा ... ,,
कफोदरचिकित्सा ... ,,
सन्निपातोदरचिकित्सा ,,
लेपः ... ,,
विविधा योगाः ... ,,
पटोलाद्यं चूर्णम् ... १८७
नारायणचूर्णम् ... ,,
दन्त्यादिकल्कः ... ,,
माहिषमूत्रयोगः ... ,,
गोमूत्रयोगः ... १८८
अर्कलवणम् ... ,,
शि क्वाथः ... ,,
इन्द्रवारुणीमूलोत्पाटनम् ,,
रोहितकयोगः ... ,,
देवद्रुमादिचूर्णम् ... ,,
दशमूलादिक्वाथः ... ,,
हरीतक्यादिक्वाथः ... ,,
एरण्डतैलादियोगत्रयी ,,
पुनर्नवाष्टकः क्वाथः ... ,,
पुनर्नवागुग्गुलुयोगः... ,,
गोमूत्रादियोगाः .. १८९
पुनर्नवादिचूर्णम् ... ,,
माणपायसम् ... ,,
दशमूलषट्पलकं घृतम् ,,
चित्रकघृतम् ... ,,
बिन्दुघृतम् .. ,,
स्नुहीक्षीरघृतद्वयम् ... ,,
नाराचघृतम् . ,,

अथ प्लीहाधिकारः ।

यमान्यादिचूर्णम् ... १९०
विविधा योगाः ... ,,
भल्लातकमोदकः ... ,,
प्रयोगद्वयम् ... ,,
यकृच्चिकित्सा ... ,,
विविधा योगाः . ,,
अत्र शिराव्यधविधिः १९१
परिकरो योगः ... ,,
रोहीतकचूर्णम् ... ,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
पिप्पल्यादिचूर्णम् ...	१९१
वर्द्धमानपिप्पलीयोगः	"
पिप्पलीचित्रकघृतम् ...	"
पिप्पलीघृतम् ...	१९२
*लोकनाथरसः ...	"
चित्रकघृतम् ...	"
रोहीतकघृतम् ...	"
महारोहीतकघृतम् ...	"

अथ शोथाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
वातशोथचिकित्सा ...	१९३
पित्तजशोथचिकित्सा	"
कफजशोथचिकित्सा	"
सन्निपातजशोथचिकित्सा	१९४
पुनर्नवाष्टकः क्वाथः...	"
विविधा योगाः ...	"
गुडयोगाः ...	"
अन्ये योगाः ...	"
पुनर्नवादिरसादयः ...	१९५
क्षारगुटिका ...	"
पुनर्नवाद्यं घृतम् ...	"
पुनर्नवाशुण्ठीदशमूलघृते	"
चित्रकाद्यं घृतम् ...	"
पञ्चकोलादिघृतम् ...	१९६
चित्रकघृतम् ...	"
माणकघृतम् ...	"
स्थलपद्मघृतम् ..	"
शैलेयाद्यं तैलं प्रदेहो वा	"
शुष्कमूलाद्यं तैलम् ...	"
पुनर्नवावलेहः ...	"
दशमूलहरीतकी ...	"
कंसहरीतकी ...	१९७
अरुष्करशोथचिकित्सा	"
विषजशोथचिकित्सा	"
शोथे वर्ज्यानि ...	"

अथ वृद्ध्यधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
वातवृद्धिचिकित्सा ...	१९७
पित्तरक्तवृद्धिचि० ...	"
श्लेष्ममेदोमूत्रजवृद्धिचिकित्सा ...	१९८
शिराव्यधदाहविधिः	१९८
रास्नादिक्वाथः ...	"
बलाक्षीरम् ...	"
हरीतकीयोगौ ...	"
त्रिफलाक्वाथः ...	"
सरलादिचूर्णम् ...	"
पथ्यायोगः ...	"
आदित्यपाकघृतम् ...	१९९
ऐन्द्रीचूर्णम् ...	"
रुद्रजटालेपः ...	"
अन्ये लेपाः ...	"
बिल्वमूलादिचूर्णम् ...	"
ब्रध्नरोगस्य विशिष्टचिकित्सा ...	"
सैन्धवाद्यं तैलम् ...	"
शतपुष्पाद्यं घृतम् ...	२००

अथ गलगण्डाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
पथ्यम् ...	२००
लेपाः ...	"
नस्यम् ...	"
जलकुम्भीभस्मयोगः	"
उपनाहः ...	"
उषितजलादियोगौ ...	"
अपरे योगाः ...	"
शस्त्रचिकित्सा ...	२०१
नस्यतैलम् ...	"
अमृतादि तैलम् ...	"
वरुणमूलक्वाथः ...	"
काञ्चनारकल्कः ...	"
आरग्वधशिफायोगः ...	"
निर्गुण्डीनस्यम् .	"
विविधानि पानानि ..	"
लेपः ...	२०२
छुछुन्दरीतैलम् ...	"
शाखोटकत्वगादितैलद्वयम् ...	"
निर्गुण्डीतैलम् ...	"
कार्पासपूपिकाः .	"
लेपाः ...	"
शस्त्रचिकित्सा ...	"
व्योषादितैलम् ...	२०२
चन्दनाद्यं तैलम् ...	"
गुञ्जाद्यं तैलम् ...	"
ग्रन्थिचिकित्सा ...	२०३
पित्तजग्रन्थिचिकित्सा	"
श्लेष्मजग्रन्थिचिकित्सा	"
लेपाः ...	"
शस्त्रचिकित्सा ...	"
अर्बुदचिकित्सा ...	"
वातार्बुदचिकित्सा ...	२०४
पित्तार्बुदचिकित्सा ...	"
कफजार्बुदचिकित्सा	"
विशेषचिकित्सा ...	"
उपोदिकाप्रयोगाः ...	"
अन्ये लेपाः ...	"

अथ श्लीपदाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यतश्चिकित्सोपायाः	२०५
लेपद्वयम् ...	"
प्रयोगान्तरम् ...	"
अन्ये लेपाः ...	"
शस्त्रचिकित्सा ...	"
पित्तजश्लीपदे लेपः ...	"
कफजश्लीपदचिकित्सा	"
वातकफजश्लीपदचिकित्सा ...	२०६
त्रिकट्वादिचूर्णम् ...	"
पिप्पल्यादिचूर्णम् ..	"
कृष्णाद्यो मोदकः ..	"
सौरेश्वरं घृतम् ...	"
विडगाद्यं तैलम् ...	२०७

अथ विद्रध्यधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यक्रमः ...	२०७
वातविद्रधिचिकित्सा	"
पित्तविद्रधिचिकित्सा	"
श्लेष्मजविद्रधिचिकित्सा	"
रक्तागन्तुविद्रधिचिकित्सा ...	"
अपक्वान्तर्विद्रधिचिकित्सा ...	२०८

विषया. पृष्ठाङ्काः

पक्वविद्रधिचिकित्सा २०८
रोपणं तैलम् ”

अथ व्रणशोथाधिकारः।

सामान्यक्रमः ... ”
वातशोथे लेपः ... ”
अपरो लेपः ... ”
पित्तागन्तुजशोथलेपः ”
कफजशोथचिकित्सा २०९
कफवातजशोथचिकित्सा ”
लेपव्यवस्था ... ”
विम्लापनम् ... ”
रक्तावसेचनम् ... ”
पाटनम् ... ”
उपनाहाः . ”
गोदन्तप्रयोगः . ”
सर्पनिर्मोकयोगः ... ”
दारणप्रयोगाः ... २१०
प्रक्षालनम् ... ”
तिलादिलेपः ... ”
व्रणशोधनलेपः . ”
शोधनरोपणयोगाः ... ”
रोपणयोगाः . ”
सूक्ष्मास्यव्रणचिकित्सा ”
दाहादिचिकित्सा .. २११
यवादिधूपः ... ”
व्रणदाहघ्नो लेपः ... ”
अग्निदग्धव्रणचिकित्सा ”
जीरकघृतम् ... ”
विविधा योगाः ... ”
सद्योव्रणचिकित्सा ... ”
नष्टशल्यचिकित्सा ... २१२
विशेषचिकित्सा ... ”
व्रणक्रिमिचिकित्सा ... ”
त्रिफलागुग्गुलुवटकः... ”
त्रिफलागुग्गुलुरसः ... २१३
विडङ्गादिगुग्गुलुः ... ”
अमृतागुग्गुलु. ... ”
जात्याद्यं घृतम् ... ”
गौराद्यं घृतं तैलं च ... ”
करञ्जाद्यं घृतम् ... ”
प्रपौण्डरीकाद्यं घृतम् २१४

विषयाः पृष्ठांकाः

तिक्ताद्यं घृतम् ... २१४
विपरीतमल्लतैलम् ... ”
अङ्गारक तैलम् ... ”
प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ”
दूर्वाद्यं तैलं घृत च ... ”
मञ्जिष्ठाद्यं घृतम् ... ”
पाटलीतैलम् ... ”
चन्दनाद्यं यमकम् ... ”
मनःशिलादिलेपः ... २१५
अयोरजसादिलेपः ... ”
सवर्णकरणो लेपः ... ”
रोमसञ्जननो लेपः . ”
व्रणग्रन्थिचिकित्सा ”

अथ नाडीव्रणाधिकारः।

नाडीव्रणचिकित्साभेदाः २१५
वातजचिकित्सा ... ”
पित्तकफशल्यजचिकित्सा ”
सूत्रवर्तिः ... ”
वर्तयः ... ”
कंगुनिकामूलचूर्णम् ... २१६
क्षारप्रयोगः ... ”
सप्ताङ्गगुग्गुलुः ... ”
सर्जिकाद्यं तैलम् ... ”
कुम्भीकाद्यं तैलम् ... ”
भल्लातकाद्यं तैलम् ... ”
निर्गुण्डीतैलम् ... ”
हंसपादादितैलम् ... २१७

अथ भगन्दराधिकारः।

रक्तमोक्षणम् ... २१७
वटपत्रादिलेपः ... ”
पक्वापक्वपिडकाविशेषः ”
त्रिवृदाद्युत्सादनम् ... ”
रसाञ्जनादिकल्कः ... ”
कुष्ठादिलेपः ... ”
स्नुहीदुग्धादिवर्तिः ... ”
तिलादिलेपः ... ”
विविधा लेपाः ... ”
नवांशको गुग्गुलुः ... २१८
सप्तविंशतिको गुग्गुलुः ”
विविधा योगाः ... ”

विषयाः पृष्ठांकाः

विष्यन्दनतैलम् ... २१८
करवीराद्यं तैलम् ... ”
निशाद्यं तैलम् ... ”
वर्ज्यानि ... ”

अथोपदंशाधिकारः।

सामान्यक्रमः ... २१९
पटोलादिक्वाथः ... ”
वातिके लेपसेकौ ... ”
पैत्तिके लेपः ... ”
पित्तरक्तजे ... ”
प्रक्षालनम् ... ”
त्रिफलामसीलेपः ... ”
रसाञ्जनलेपः ... ”
बब्बूलदलादियोगाः .. ”
सामान्योपायाः ... ”
पाकप्रक्षालनक्वाथः ... ”
भूनिम्बकाद्यं घृतम् ... २२०
करञ्जाद्यं घृतम् ... ”
अगारधूमाद्यं तैलम् . ”
लिङ्गार्शश्चिकित्सा .. ”

अथ शूकदोषाधिकारः।

सामान्यक्रमः ... २२०
प्रतिभेदचिकित्सा ... ”
प्रत्याख्येयाः ... २२१

अथ भग्नाधिकारः।

सामान्यक्रमः ... २२१
स्थानापन्नताकरणम् ... ”
लेपः ... ”
बन्धमोक्षणविधिः ... ”
सेकादिकम् ... ”
पथ्यम् ... ”
अस्थिसंहारयोगः ... ”
रसोनोपयोगः ... ”
वराटिकायोगः ... ”
विविधा योगाः ... २२२
लाक्षागुग्गुलुः ... ”
आभागुग्गुलुः ... ”
सव्रणभग्नचिकित्सा ... ”

विषयाः	पृष्ठांकाः
गन्धतैलम् ...	२२२
भग्ने वर्ज्यानि ...	२२३

अथ कुष्ठाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यक्रमः ...	२२३
वमनम् ...	"
विरेचनम्	"
लेपयोग्यता ...	"
लेपाः ..	"
मनःशिलादिलेपः ...	२२४
कुष्ठादिलेपः .	"
त्रिफलादिलेपः ...	"
विडंगादिलेपः	"
अपरो विडंगादिः .	"
दूर्वादिलेप' .	"
दद्रुगजेन्द्रसिंहो लेपः	२२५
विविधा लेपाः ...	"
सिध्मे लेपाः .	"
किटिभादिनाशका लेपाः	"
अन्ये लेपाः ...	"
उन्मत्तकतैलम ..	२२६
तण्डुललेपाः ...	"
पादस्फुटननाशको लेपः	"
कच्छूहरलेपौ ...	"
पानम् ...	"
पथ्यायोगः .	"
गन्धकयोग. ...	"
उद्वर्तनम् ...	"
सिन्दूरयोगः ...	"
कुष्ठहरो गणः ...	२२७
भल्लातकादिलेपः ..	"
विषादिलेपः ...	"
शशांकलेखादिलेहः ...	"
सोमराजीप्रयोगः ...	"
अवल्गुजायोगः ...	"
त्रिफलादिक्काथः ...	"
छिन्नाप्रयोगः ...	"
पटोलादिक्काथः ...	"
सप्तसमो योगः ...	२२८
विडंगादिचूर्णम् ...	"
विजयामूलयोगः ...	"
विविधा योगाः ..	२२८
वायस्यादिलेपः ...	"
पूतीकादिलेपः ...	"
गजादिचर्ममसीलेपः...	"
अवल्गुजहरिताललेपः	"
धान्यादिक्काथः ...	"
गजलेण्डजक्षारयोगः	"
जयन्तीयोग' ...	२२९
पञ्चनिम्बचूर्णम् ...	"
चित्रकादिगुग्गुलुः ...	"
भल्लातकप्रयोगः ...	२३०
भल्लातकतैलप्रयोगः	"
खदिरप्रयोगः	"
तिक्तषट्पलक घृतम्	"
पञ्चतिक्तक घृतम्	"
तिक्तक घृतम् ..	"
महातिक्तक घृतम् ...	२३१
महाखादिरं घृतम् ...	"
पञ्चतिक्तकगुग्गुलुः ...	"
वज्रकं घृतम् ..	२३२
आरग्वधादितैलम् ..	"
तृणकतैलम् ...	"
महातृणकतैलम् .	"
वज्रकतैलम्	"
मरिचाद्यं तैलम् ...	२३३
बृहन्मरिचाद्यं तैलम्	"
विषतैलम् ...	"
करवीराद्यं तैलम् ...	२३४
अपरं करवीराद्यं तैलम्	"
सिन्दूराद्यं तैलम् ..	"
महासिंदूराद्यं तैलम्...	"
आदित्यपाकं तैलम् ...	"
दूर्वाद्यं तैलम् ...	"
अर्कतैलम् ..	"
गण्डीराद्यं तैलम् ...	"
चित्रकादितैलम् ...	"
सोमराजीतैलम् ...	"
सामान्यनियमः ..	२३५
पथ्यम् ...	"

अथोदर्दकोठशीतपित्ताधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
साधारणः क्रमः ...	२३५
विरेचनयोगः ...	"
केचन योगाः ..	२३५
उद्वर्तनं लेपश्च .	"
अग्निमन्थमूललेपः ...	"
कोठसामान्यचिकित्सा	"
निम्बपत्रयोगः ...	"
विविधा योगाः ..	२३६
सामान्यचिकित्सा ...	"

अथाम्लपित्ताधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यचिकित्सोपायाः	२३६
यवादिक्काथः ...	"
शृङ्गवेरादिक्काथः ...	"
पटोलादिक्वाथः ...	"
अपरः पटोलादि' ...	"
अपरो यवादिः	२३७
वासादिक्वाथः ...	"
फलत्रिकादिक्वाथः ...	"
पथ्यादिचूर्णम् ...	"
वासादिगुग्गुलुः ..	"
विविधा योगाः ...	"
अपरः पटोलादिः ...	"
गुडूच्यादिक्वाथः ..	"
अन्ये योगाः ...	"
गुडादिमोदकः ...	२३८
हिंग्वादिपुटपाकः ..	"
वरायोगः ...	"
पञ्चनिम्बादिचूर्णम् ..	"
अभ्रादिशोधनमारणम्	"
क्षुधावती गुटी ...	२३९
जीरकाद्यं घृतम् ...	"
पटोलशुण्ठीघृतम् ...	"
पिप्पलीघृतम् .	"
द्राक्षाद्यं घृतम् ...	"
शतावरीघृतम् ..	२४०

अथविसर्पविस्फोटाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
विसर्पे सामान्यतश्चिकित्सोपायाः ..	२४०
वमनम् ...	"
विरेचनम् ...	"
वातविसर्पचिकित्सा	"
कुष्ठादिगणः ...	"
पित्तजविसर्पचिकित्सा	"

विषयाः — पृष्ठांकाः

विरेचनम् ... २४१
श्लेष्मजविसर्पचिकित्सा ,,
वमनम् ... ,,
अन्ये योगाः ... ,,
त्रिदोषजविसर्पचिकित्सा ,,
अमृतादिगुग्गुलु ,,
अमृतादिक्वाथद्वयम् ,,
पटोलादिक्वाथः .. २४२
भूनिम्बादिक्वाथः ... ,,
अन्ये योगाः ... ,,
चन्दनादिलेप ... ,,
शुकतर्वादिलेपः ... ,,
कवलग्रहाः ... ,,
शिरीषादिलेपाः .. ,,
दशाङ्गलेपः ... ,,
शिरीषादिलेपः ... ,,
वृषाद्य घृतम् .. ,,
पञ्चतिक्तघृतम् ... २४३
महापद्मकं घृतम् .. ,,
स्नायुकचिकित्सा ... ,,
लेपः . ,,

अथ मसूर्यधिकारः ।

सामान्यक्रमः ... २४३
शमनम् ... ,,
वमनविरेचनफलम् ... ,,
विविधा योगाः ... ,,
मुष्टियोगपरिभाषा . २४४
विविधा योगाः ... ,,
धूप ... ,,
वातजचिकित्सा .. ,,
पित्तजचिकित्सा ,,
निम्बादिक्वाथः .. ,,
पटोलादिक्वाथः ... २४५
अन्यत्पटोलादिद्वयम् ,,
खदिराष्टकः ... ,,
अमृतादिक्वाथः ... ,,
प्रलेप. ... ,,
पादपिडकाचिकित्सा ,,
पाकावस्थाप्रयोगाः .. ,,
विविधावस्थासु विविधा योगाः ... ,,

विषयाः — पृष्ठांकाः

निशादिलेपः ... २४६
बिम्ब्यादिक्वाथः .. ,,
*कर्पूरादिशोथचिकित्साप्रभावः ,,

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः ।

अजगल्लिकादिचिकित्सा २४७
वल्मीकचिकित्सा .. ,,
पाददारीचिकित्सा ... ,,
उपोदिकादिक्षारतैलम् ,,
अलसकचिकित्सा .. ,,
कदरचिप्पचिकित्सा... २४८
पद्मिनीकण्टकचिकित्सा ,,
जालगर्दभचिकित्सा ,,
अहिपूतनकचिकित्सा ,,
गुदभ्रंशचिकित्सा ... ,,
चांगेरीघृतम् ... ,,
मूषिकातैलम् ,,
परिवर्तिकाचिकित्सा २४९
अवपाटिकादिचिकित्सा ,,
युवानपिडकादिचिकित्सा ,,
मुखकान्तिकरा लेपाः ,,
कालीयकादिलेपः ... २५०
यवादिलेपः ... ,,
रक्षोघ्नादिलेपः ... ,,
दध्यादिलेपः ,,
हरिद्रादिलेपः ... ,,
कनकतैलम् ... ,,
मञ्जिष्ठादितैलम् ... ,,
कुंकुमादितैलम् ... ,,
द्वितीयकुंकुमादितैलम् २५१
वर्णकं घृतम् ... ,,
अरुंषिकाचिकित्सा ... ,,
हरिद्राद्यतैलम् . ,,
दारुणचिकित्सा ... ,,
नीलोत्पलादिलेपः .. २५२
त्रिफलादितैलम् .. ,,
चित्रकादितैलम् . ,,
भृंगराजतैलम् ... ,,
प्रतिमर्शतैलम् .... ,,
इन्द्रलुप्तचिकित्सा .. ,,

विषयाः — पृष्ठांकाः

छागीक्षीरादिलेपद्वयम् २५३
स्नुह्याद्य तैलम् ... ,,
आदित्यपाकतैलम् . ,,
चन्दनादितैलम् ... ,,
यष्टीमधुकतैलम् ... ,,
कृष्णीकरणम् ... ,,
अपरं कृष्णीकरणम् .. ,,
अपरे योगाः ... २५४
शंखचूर्णप्रयोग. ... ,,
स्नानम् ... ,,
निम्बबीजयोगः . ,,
निम्बतैलयोगः ... ,,
क्षीरादितैलम् . ,,
महानील तैलम् .. ,,
पलितघ्न घृतम् .. २५५
शैलुकतैलम् .. ,,
वृषणकच्छ्वादिचिकित्सा .. ,,
पटोलादिघृतम् ... ,,
शूकरदंष्ट्रकचिकित्सा .. ,,
पाददाहचिकित्सा ... ,,

अथ मुखरोगाधिकारः ।

वातजौष्ठरोगचिकित्सा २५५
श्रीवेष्टकादिलेपः ... ,,
पित्तजचिकित्सा . २५६
कफजचिकित्सा ... ,,
मेदोजचिकित्सा ,,
शीतादचिकित्सा .. ,,
रक्तस्रावचिकित्सा ... ,,
चलदन्तस्थिरीकरणम् ,,
दन्तशूलचिकित्सा ... ,,
शैशिरचिकित्सा .. २५७
परिदरोपकुशचिकित्सा ,,
दन्तवैदर्भचिकित्सा .. ,,
अधिकदन्तचिकित्सा ,,
अधिमांसचिकित्सा . ,,
दन्तनाडीचिकित्सा ... ,,
अधिमांसादिचिकित्सा ,,
कपालिकाकृमिदन्तचिकित्सा ... २५८

विषयाः	पृष्ठांकाः
बृहत्यादिक्वाथः ..	२५८
नील्यादिचर्वणम् ..	”
हनुमोक्षादिचिकित्सा	”
जिह्वारोगचिकित्सा .	”
कण्टकचिकित्सा ..	२५९
जिह्वाजाड्यचिकित्सा	”
दन्तशब्दचिकित्सा ..	”
उपजिह्वाचिकित्सा ...	”
गलशुण्डीचिकित्सा ..	”
तुण्डिकेर्य्यादिचिकित्सा	”
रोहिणीचिकित्सा ...	”
कण्ठशालूकादिचिकित्सा	२६०
कण्ठरोगचिकित्सा .	”
कटुकादिक्वाथः ..	”
कालकचूर्णम् ...	”
पञ्चकोलकक्षारचूर्णम्	”
पीतकचूर्णम् ...	”
यवाग्रजादिगुटिका ...	२६१
सामान्ययोगाः ...	”
पञ्चकोलादिक्षारगुटिका	”
मुखरोगचिकित्सा ...	”
सर्वसरचिकित्सा ...	”
मुखपाकचिकित्सा ...	”
जातीपत्रादिक्वाथगण्डूषः ...	”
कृष्णजीरकादिचूर्णम्	”
रसाञ्जनादिचूर्णम् ...	”
पटोलादिधावनकषाया.	२६२
दार्व्या रसक्रिया ...	”
सप्तच्छदादिक्वाथः ...	”
पटोलादिक्वाथः	”
त्रिफलादियोगाः ...	”
दग्धमुखचिकित्सा	”
दौर्गन्ध्यहरो योग.	”
सहचरतैलम् ...	”
इरिमेदादितैलम् ...	”
लाक्षादितैलम् .	२६३
बकुलादितैलम् ..	”
वदनसौरभदा गुटी ..	”
लघुखदिरवटिका ..	”
बृहत्खदिरगुटिका ...	”

विषयाः	पृष्ठांकाः
अथ कर्णरोगाधिकारः ।	
कर्णशूलचिकित्सा	२६४
दीपिकातैलम् .	”
अर्कपत्रयोग ...	२६५
अन्ये योगा ...	”
क्षारतैलम् ..	”
कर्णनादचिकित्सा ..	”
अपामार्गक्षारतैलम् ..	”
सर्जिकादितैलम् .	”
दशमूलीतैलम् ..	”
बिल्वतैलम्	२६६
कर्णस्रावचिकित्सा	”
जम्ब्वादिरसाः ..	”
कर्णनाडीचिकित्सा ...	”
कर्णप्रतीनाहचिकित्सा	”
विविधा उपायाः ...	”
वरुणादितैलम् ...	”
कर्णक्रिमिचिकित्सा ...	२६७
धावनादिविधि ...	”
कुष्ठादितैलम् ...	”
कर्णविद्रधिचिकित्सा	”
कर्णपालीपोषणम् ..	”
दुर्गन्धादिचिकित्सा ...	”
अथ नासारोगाधिकारः	
पीनसचिकित्सा ...	२६८
व्योषादिचूर्णम् .	”
पाठादितैलम् ...	”
व्याघ्र्यादितैलम् ..	”
त्रिकट्वादितैलम्	”
कलिङ्गादिनस्यम् ..	”
नासापाकचिकित्सा ..	”
शुण्ठ्यादितैलं घृतं वा	”
दीप्तानाहचिकित्सा .	”
प्रतिश्यायचिकित्सा .	२६९
धूमयोग.	”
शीतलजलयोगः ..	”
जयापत्रयोगः .	”
अन्ये उपायाः ..	”
माषयोगः	”

विषयाः	पृष्ठांकाः
अवपीडः	२६९
क्रिमिचिकित्सा ...	”
करवीरतैलम् ...	”
गृहधूमादितैलम् ..	२७०
चित्रकादितैलम् ...	”
चित्रकहरीतकी ...	”
अथ नेत्ररोगाधिकारः ।	
सामान्यतश्चिकित्साक्रमः ..	२७०
श्रीवासादिगुण्डनम् ...	”
लघनप्राधान्यम् ...	”
पाचनानि ...	”
पूरणम्	”
करवीरजलसेकः ...	”
शिखरियोगः ...	२७१
लेपाः	”
आश्च्योतनम् ...	”
अञ्जनादिसमयनिश्चयः	”
बृहत्यादिवर्तिः ...	”
हरिद्राद्यञ्जनम् ...	”
गैरिकाद्यञ्जनम् ...	”
पित्तजनेत्ररोगे आश्च्योतनम् ...	”
लोध्रपुटपाकः ..	२७२
कफजचिकित्सा ...	”
सैन्धवाद्याश्च्योतनम्	”
सामान्यनियमाः ...	”
रक्ताभिष्यन्दचिकित्सा	”
दार्व्यादिरसक्रिया	”
विशेषचिकित्सा	”
धूप.	२७३
निम्बपत्रगुटिका	”
बिल्वपत्ररसपूरणम् ...	”
लवणादिसिञ्चनम् ...	”
अन्ये उपायाः ..	”
नेत्रपाकचिकित्सा	”
बिभीतकादिक्वाथः ..	”
वासकादिक्वाथः ...	”
वृहद्वासादिः ...	”
त्रिफलाक्वाथः ...	२७४
आगन्तुजचिकित्सा ...	”

विषयाः	पृष्ठांकाः
सूर्याद्युपहतदृष्टिचिकित्सा	२७४
निशादिपूरणम् ...	,,
नेत्राभिघातघ्नं घृतम् ...	,,
शुष्कपाकघ्नमञ्जनम् ...	,,
अन्यद्वातमारुतपर्ययचिकित्सा ..	,,
शिराव्यधव्यवस्था ...	२७५
अम्लाध्युषितचिकित्सा	,,
शिरोत्पातचिकित्सा	,,
शिराहर्षचिकित्सा	,,
व्रणशुक्रचिकित्सा ..	,,
फेनादिवर्त्तिः ...	,,
आश्च्योतनम् ..	,,
पुष्पचिकित्सा ...	,,
करञ्जवर्ति ...	२७६
सैन्धवादिवर्तिः	,,
चन्दनादिचूर्णाञ्जनम्	,,
दन्तवर्तिः ...	,,
शंखाद्यञ्जनम् ...	,,
अन्यान्यञ्जनानि	,,
क्षाराञ्जनम् ...	,,
पटोलाद्यं घृतम् ...	,,
कृष्णादितैलम् ...	२७७
अजकाचिकित्सा ..	,,
शशकघृतद्वयम् ...	,,
पथ्यम्	,,
तिमिरे त्रिफलाविधिः	,,
जलप्रयोग ..	२७८
सुखावतीवर्ति ...	,,
चन्द्रोदयावर्तिः ..	,,
हरीतक्यादिवर्ति ..	,,
कुमारिकावर्तिः ..	,,
त्रिफलादिवर्तिः ...	,,
अन्या वर्तय	,,
चन्द्रप्रभावर्ति ...	२७९
श्रीनागार्जुनीयवर्तिः	,,
पिप्पल्यादिवर्तिः ..	,,
व्योषादिवर्ति	,,
अपरा व्योषादि	,,
नीलोत्पलाद्यञ्जनम्	२८०
पत्राद्यञ्जनम् ...	,,
शृगाल्यञ्जनम् ...	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
हरिद्रादिगुटिका ...	२८०
गण्डूपदकज्जलम्	,,
अंगुलियोगः	,,
नागयोगः ...	,,
शलाकाः ..	,,
गौञ्जाञ्जनम् ...	२८१
सैन्धवयोगः ..	,,
उशीराञ्जनम्	,,
धात्र्यादिरसक्रिया ...	,,
शृंगवेरादिनस्यम्	,,
लिङ्गनाशचिकित्सा ..	,,
रुजाहरलेपाः ..	,,
घृतम् ...	२८२
शिराव्यधः ...	,,
मेषशृंगाद्यञ्जनम् ...	,,
स्रोतोजाञ्जनम् ...	,,
रसाञ्जनाञ्जनम् ...	,,
नलिन्यञ्जनम्	,,
नदीजाञ्जनम् ...	,,
कणायोगाः	,,
गोधियकृद्योगः	,,
नक्तान्ध्यहरा विविधा योगाः	,,
त्रिफलाघृतम्	२८३
महात्रिफलाघृतम् ...	,,
काश्यपत्रैफलं घृतम् ...	,,
तिमिरघ्नत्रैफलं घृतम्	,,
शृंगराजतैलम्	२८४
गोशकृत्तैलम्	,,
नृपवल्लभतैलम्	,,
अभिजित्तैलम् ...	,,
अर्मचिकित्सा ...	,,
पुष्पादिरसक्रिया ...	,,
शुक्तिकाचिकित्सा ...	२८५
अर्जुनचिकित्सा ..	,,
पिष्टिकाचिकित्सा ...	,,
उपनाहचिकित्सा ...	,,
फलबीजवर्तिः ...	,,
त्रिफलायोगा ...	,,
अञ्जननामिकाचिकित्सा	,,
निमिषे विसग्रन्थिचि०	,,
पिल्लचिकित्सा ...	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
धूपः ...	२८६
प्रक्लिन्नवर्त्मचिकित्सा	,,
हरिद्रादिवर्तिः ..	,,
मञ्जिष्ठाद्यञ्जनम् ...	,,
तुत्थकादिसेकः	,,
पक्ष्मोपरोधचिकित्सा	,,
लेख्यभेद्यरोगाः ...	२८७
कफानाहादिचिकित्सा	,,

अथ शिरोरोगाधिकारः।

वातिकचिकित्सा ..	२८७
शिरोवस्तिः	,,
पैत्तिकचिकित्सा	,,
नस्यम् ...	२८८
रक्तजचिकित्सा ...	,,
कफजचिकित्सा ..	,,
कृष्णादिलेपः ...	,,
देवदार्वादिलेपः ...	,,
सन्निपातजचिकित्सा	,,
त्रिकट्वादिक्वाथनस्यम्	,,
अपरं नस्यम् ...	,,
लेपाः ...	२८९
शताह्वाद्यतैलम् ...	,,
जीवकादितैलम् ...	,,
बृहज्जीवकाद्यं तैलम्	,,
षड्बिन्दुतैलम् ...	,,
क्षयजचिकित्सा ...	,,
क्रिमिजचिकित्सा	,,
अपामार्गतैलम् ...	,,
नागरादियोगौ ...	२९०
सूर्यावर्तचिकित्सा ...	,,
कुङ्कुमनस्यम् ...	,,
कृतमालघृतम् ...	,,
दशमूलप्रयोगः ..	,,
अन्ये प्रयोगाः ...	,,
शर्करोदकयोगः ..	,,
अनन्तवातचिकित्सा	,,
शंखकचिकित्सा ...	,,
लेपाः ..	,,
शिराव्यधः ...	२९१
शिरःकम्पचिकित्सा ..	,,
यष्ट्याद्यं घृतम् ..	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
मयूराद्यं घृतम्	२९१
प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम्	,,
महामायूरं घृतम्	,,

अथासृग्दराधिकारः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः
वातजप्रदरादिचिकित्सा	२९२
दार्व्यादिक्काथ.	,,
रसाञ्जनादियोगः	,,
विविधा योगाः	,
सामान्यनियम.	,,
पुष्यानुगं चूर्णम्	,,
मुद्राद्यं घृतम्	२९३
शीतकल्याणकं घृतम्	,,
शतावरीघृतम्	,,

अथ योनिव्यापदधिकारः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यतश्चिकित्साभेदाः	२९४
वचादियोगः	,,
परिषेचनाद्युपाया.	,,
योनिविशोधिनीवर्ति.	,,
दोषानुसारवर्तय'	,,
योन्यर्शश्चिकित्सा	,,
अचरणादिचिकित्सा	,,
आम्रतैलम्	२९५
भिन्नादिचिकित्सा	,,
योनिसंकोचनम्	,,
योनिगन्धनाशकं घृतम्	,,
कुसुमसञ्जननीवर्ति	,,
प्राश.	,,
दूर्वाप्राशः	,,
रजोनाशकयोगौ	,,
गर्भप्रदा योगा.	,,
स्वर्णादिभस्मयोगः	२९६
नियतगर्भदप्रयोगः	,,
पुत्रोत्पादका योगाः	,,
श्वेतकण्टकारिकायोगाः	,,
फलघृतम्	,,
अपरं फलघृतम्	२९७
सोमघृतम्	,,
नीलोत्पलादिघृतम्	२९८
बृहच्छतावरीघृतम्	,,
लोमनाशका योगाः	,,
आरग्वधादितैलम्	,,
कर्पूरादितैलम्	२९८
क्षारतैलम्	२९९

अथ स्त्रीरोगाधिकारः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः
गर्भस्रावचिकित्सा	२९९
अपरे प्रयोगा	,,
कशेरुकादिक्षीरम्	,,
कशेरुकादिचूर्णम्	,,
शुष्कगर्भचिकित्सा	३००
सुखप्रसवोपायाः	,,
सुखप्रसूतिकरो मन्त्रः	,,
यन्त्रप्रयोग'	,,
अपरापातनयोगा.	,,
अपरो मन्त्रः	३०१
अपरे योगा.	,,
मक्कलचिकित्सा	,,
रक्तस्रावचिकित्सा	,,
किक्किशरोगचिकित्सा	,,
ह्रीवेरादिक्काथः	,,
अमृतादिक्काथः	,,
सहचरादिक्काथ'	,,
वज्रककाञ्जिकम्	,,
पञ्चजीरकगुडः	३०२
क्षीराभिवर्द्धनम्	,,
स्तन्यविशोधनम्	,,
स्तनकीलचिकित्सा	,,
स्तनशोथचिकित्सा	,,
स्तनपीडाचिकित्सा	३०३
स्तनकठिनीकरणम्	,,
श्रीपर्णीतैलम्	,,
काशीसादितैलम्	,,
स्तनस्थिरीकरणम्	,,
योनिसंकोचनम्	,,
वशीकरणञ्च	,,

अथ बालरोगाधिकारः ।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यक्रमः	३०३
तुण्डिचिकित्सा	३०४
नाभिपाकचिकित्सा	,,
अहिण्डिकाचिकित्सा	,,
अनामकचिकित्सा	३०४
अनामकहरं तैलम्	,,
कज्जलम्	,,
अपरे प्रयोगाः	,,
सामान्यमात्रा	३०५
हरिद्रादिक्काथः	,,
चातुर्भद्रचूर्णम्	,
धातक्यादिलेहः	,,
रजन्यादिचूर्णम्	,,
मिश्यादिलेह.	,,
शृंग्यादिलेह.	,,
छर्दिचिकित्सा	,,
पेट्यादिपिण्डः	३०६
बिल्वादिक्काथः	,,
समङ्गादिक्वाथः	,,
नागरादिक्वाथः	,,
लाजायोगः	,,
प्रियंग्वादिकल्कः	,,
रक्तातिसारप्रवाहिकाचिकित्सा	,,
ग्रहण्यतीसारनाशकयोगा'	,,
बिल्वादिक्षीरम्	३०७
गुदपाकचिकित्सा	,,
मूत्रग्रहतालुपातचिकित्सा	,,
मुखपाकचिकित्सा	,,
दन्तोद्भवरोगचिकित्सा	,,
अरिष्टशांति.	,,
हिक्काचिकित्सा	,,
चित्रकादिचूर्णम्	३०८
द्राक्षादिलेहः	,,
पुष्करादिचूर्णम्	,,
तृष्णाचिकित्सा	,,
नेत्रामयचिकित्सा	,,
सिध्मपामाचिकित्सा	,,
अश्वगन्धाघृतम्	,
चाङ्गेरीघृतम्	,,
कुमारकल्याणकं घृतम्	३०९
अष्टमङ्गलं घृतम्	,,
लाक्षादितैलम्	,,
ग्रहचिकित्सा	,,
सार्वकामिको मन्त्रः	,,

विषयाः	पृष्टांकाः
बलिमन्त्रः	३१०
नन्दनामातृकाचिकित्सा	,,
सुनन्दालक्षण चि० च	,,
पूतनाचिकित्सा	,,
मुखमण्डिकाचिकित्सा	३११
कठपूतनामातृकाचि०	,,
शकुनिकाचिकित्सा ...	,,
शुष्करेवतीचिकित्सा	३१२
अर्यकाचिकित्सा ...	,,
भूसूतिकाचिकित्सा ..	,,
निर्ऋताचिकित्सा ..	३१३
पिलिपिच्छिलिकाचिकित्सा ...	,,
कालिकाचिकित्सा ...	,,

अथ विषाधिकारः ।

सामान्यतश्चिकित्साविचारः	३१४
प्रत्यङ्गिरामूलयोगः...	,,
निम्बपत्रयोगः ...	,,
पुनर्नवायोगः ...	,,
सर्पदष्टचिकित्सा ...	,,
महागदः ..	,,
विविधावस्थायां विविधा योगाः ..	३१५
सयोगजविषचिकित्सा	,,
कीटादिविषचिकित्सा	,,
मूषकविषचिकित्सा ..	,,
वृश्चिकविषचिकित्सा	,,
गोधादिविषचिकित्सा	,,
मीनादिविषचिकित्सा	३१६
श्वविषचिकित्सा ...	,,
भेकविषचिकित्सा ...	,,
लालाविषचिकित्सा .	,,
नखदन्तविष लेप. ...	,,
कीटविषचिकित्सा ...	,,
मृतसञ्जीवनोऽगदः ..	,,

अथ रसायनाधिकारः ।

सामान्यव्यवस्था ...	३१७
पथ्यारसायनम्	
अभयाप्रयोगः	,,
	,,
लौहत्रिफलायोग. ..	३१७
पिप्पलीरसायनम्	,,
त्रिफलारसायनम् ...	,,
विविधानि रसायनानि	,,
अश्वगन्धारसायनम्	३१८
धात्रीतिलरसायनम्	,,
वृद्धदारुरसायनम् ...	,,
हस्तिकर्णचूर्णरसायनम्	,,
धात्रीचूर्णरसायनम् .	,,
गुडूच्यादिलेह. ...	,,
सारस्वतघृतम् .	,,
जलरसायनम् ..	३१९
अमृतसारलौहरसायनम्	,,
जलनिश्चयः ...	,,
दुग्धनिश्चयः ...	३२०
लौहमात्रानिश्चयः .	,,
प्रक्षेप्यौषधिनिर्णयः ...	,,
लोहमारणविधि. ...	,,
स्थालीपाकविधि .	३२१
पुटपाकविधिः ...	३२२
लौहपाकरसायनम् ...	,,
त्रिविधपाकलक्षणम्...	,,
त्रिविधपाकफलम् .	३२३
प्रक्षेप्यव्यवस्था ...	,,
लोहस्थापनम् ..	,,
लोहाद्घृताहरणम् ...	,,
त्रिफलाघृतनिषेकः	,,
लोहपाकावशिष्टघृतप्रयोगः	,,
लौहाभ्ररसायनम् .	,,
अभ्रकभस्मविधिः .	,,
लोहसेवनविधि .	३२४
अनुपानपथ्यादिकम् ..	,,
भोजनादिनियम.	३२५
भोजनविधि. ...	,,
फलशाकप्रयोग ...	,,
कोष्ठबद्धताहरव्यवस्था	,,
मात्रावृद्धिह्रासप्रकार	,,
अमृतसारलौहसेवनगुणाः	३२६
उपसंहारः .	,,
सामान्यलोहरसायनम्	,,
कान्तप्रशंसा ...	,,
रसादिरसायनम् ...	३२६
ताम्ररसायनम् ...	३२७
शिलाजतुरसायनम्...	३२८
शिलाजतुभेदाः .	,,
प्रयोगविधिः परीक्षा च	,,
शिलाजतुगुणाः ...	३२९
पथ्यापथ्यम् .	,,
शिवागुटिका ...	,,
शिवागुटिकागुणाः ...	३३०
अमृतभल्लातकी ...	,,

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

विदारीचूर्णम् ..	३३१
आमलकचूर्णम् ...	,,
विदारीकल्कः ..	३३२
स्वयंगुप्तादिचूर्णम् ..	,,
उच्चटाचूर्णम् ..	,,
मधूकचूर्णम्	,,
गोक्षुरादिचूर्णम् ...	,,
माषपायसः ...	,,
रसाला ...	,,
मत्स्यमांसयोगः ...	,,
नारसिंहचूर्णम् ..	,,
गोधूमाद्यं घृतम् ...	३३३
शतावरीघृतम् ..	३३४
गुडकूष्माण्डकम् ...	,,
सामान्यवृष्यम् ..	,,
लिङ्गवृद्धिकरा योगा.	,,
अश्वगन्धादितैलम् ...	३३५
* वराहवसायोग. ...	,,
* स्तम्भनम् ...	,,
* अपरं स्तम्भनम् ..	,,
भल्लातकादिलेपः ...	,,
अन्ये योगाः ..	,,
कुप्रयोगजषाण्ढ्यचिकित्सा	,,
अथ मुखगन्धहरो योग	,,
अधोवातगन्धचिकित्सा	,,

अथ स्नेहाधिकारः ।

स्नेहविचारः ..	३३६
स्नेहसमयः ...	,,
स्नेहार्हा अनर्हा वा ...	,,

विषयाः	पृष्ठांकाः
स्नेहविधिः ...	३३६
मात्रानुपाननिश्चयः ...	३३७
स्नेहव्यापत्तिचिकित्सा	"
स्नेहमर्यादा ...	"
वमनविरेचनसमयः .	"
स्निग्धातिस्निग्धलक्षणम्	"
अस्निग्धातिस्निग्धचि०	३३८
सद्यःस्नेह्याः ..	"
स्नेहनयोगाः ...	"
पाञ्चप्रसृतिकी पेया ..	"
योगान्तरम् ...	"
स्नेहविचार. ...	"
उपसंहारः ...	"

अथ स्वेदाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यव्यवस्था ..	३३८
अस्वेद्याः ...	३३९
अनाग्नेयः स्वेदः ...	"
सम्यक्स्विन्नलक्षणम्	"
अतिस्विन्नलक्षणं चिकित्सा च ...	"
स्वेदप्रयोगविधिः ...	"
स्वेदाः .	"

अथ वमनाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यव्यवस्था	३४०
मन्त्रः ...	"
वमनौषधपाननियमः	"
वमनकरा योगाः ..	"
वमनार्थं क्वाथमानम् ...	"
निम्बकषायः ..	"
वमनद्रव्याणि ...	३४१
सम्यग्वमितलक्षणम	"
दुर्वमितलक्षणम् ...	"
संसर्जनक्रमः ...	"
हीनमध्योत्तमशुद्धिलक्षणम्	"
शुद्धिमानम् ...	"
प्रस्थमानम् ..	"
अयोगातियोगचिकित्सा	"
अवाम्याः ...	३४२

अथ विरेचनाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यव्यवस्था ...	३४२
कोष्ठविनिश्चयः ..	"
मृदुविरेचनम् ...	"
इक्षुपुटपाकः ...	"
पिप्पल्यादिचूर्णम् .	"
हरीतक्यादिचूर्णम् ..	"
त्रिवृतादिगुटिका लेहो वा	"
अभयाद्यो मोदकः ...	३४३
एरण्डतैलयोग ...	"
सम्यग्विरिक्तलिङ्गम् ...	"
दुर्विरिक्तलिङ्गम् ...	"
अतिविरिक्तलक्षणम् . .	"
पथ्यनियमाः ...	"
यथावस्थं व्यवस्था ...	३४४
अतियोगचिकित्सा ..	"
अविरेच्याः ...	"

अथानुवासनाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
स्नेहमात्राक्रमौ	३४५
विधिः ...	"
वस्तिवस्तिनेत्रविधानम्	"
निरूहानुवासनमात्रा ...	"
वस्तिदानविधिः ...	३४६
सम्यगनुवासितलक्षणम्	"
अनुवासनोत्तरोपचारः	"
स्नेहव्यापच्चिकित्सा ...	"
विशेषोपदेशः .	३४७
नानुवास्याः ..	"
अनास्थाप्याः .	"

अथ निरूहाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यव्यवस्था ...	३४८
द्वादशप्रसृतिको वस्तिः	"
सुनियोजितवस्तिलक्षणम् .	"
वस्तिदानविधिः ...	"
सुनिरूढलक्षणम	"
निरूहमर्यादा ...	३४९
निरूहव्यापच्चिकित्सा	"
सुनिरूढे व्यवस्था ...	३४९
अर्द्धमात्रिको वस्तिः ...	"
अनुक्तौषधग्रहणम् ..	३५०

अथ क्षारवस्तिः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
वैतरणवस्तिः ..	३५०
पिच्छिलवस्तयः ...	"
वस्तिगुणाः ...	"

अथ नस्याधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
नस्यभेदाः ...	३५१
प्रतिमर्शविधानम् ...	"
अवपीडः ..	"
नस्यम् ...	"
प्रधमनम् ...	"
शिरोविरेचनम् ...	"
सम्यक् स्निग्धादिलक्षणम्	३५२
नस्यानर्हाः ..	"
धूमादिकालनिर्णयः ...	"

अथ धूमाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
धूमभेदाः ..	३५२
धूमनेत्रम् ...	"
धूमपानविधिः ...	३५३
धूमवर्तयः ...	"
धूमानर्हाः .	"
धूमव्यापत् ...	"

अथ कवलगण्डूषाधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
सामान्यभेदाः .	३५३
सुकवलितलक्षणम् . .	३५४
विविधा गण्डूषाः ...	"

अथाश्च्योतनाद्यधिकारः।

विषयाः	पृष्ठांकाः
आश्च्योतनविधि. ...	३५४
अत्युष्णादिदोषाः ...	"
अञ्जनम् ...	"
शलाका ...	३५५

चक्रदत्तस्थविषयानुक्रमणिका ।

विषया:	पृष्ठांका:
अञ्जनकल्पना ..	३५५
अञ्जननिषेध	,,
तर्पणम्	,,
धूमलक्षणम् ...	३५६
पुटपाक . ..	,,

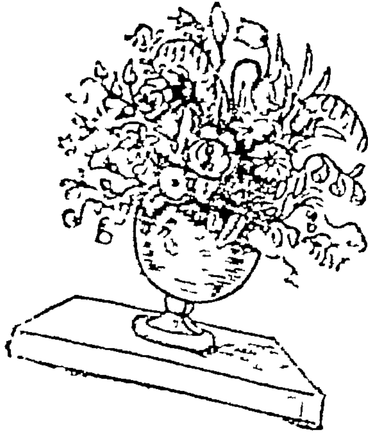
अथ शिराव्यधाधिकारः ।

विषया:	पृष्ठांका:
व्रीहिमुखकुठारिकया: प्रयोगस्थानम् ...	३५७
अयोगादिव्यवस्था --	,
उत्तरकृत्यम् ..	,,
शिराव्यधनिषेधः ...	३५८
पथ्यव्यवस्था ...	,,
विशुद्धरक्तिनो लक्षणम्	,,

अथ स्वस्थवृत्ताधिकारः।

विषया:	पृष्ठांका:
दिनचर्याविधि: ...	३५८
अञ्जनादिविधि: ...	३५९
अभ्यङ्गव्यायामादिकम्	,,
सामान्यनियमाः ...	,,
ऋतुचर्याविधि	३६०
हेमन्तचर्याविधि: ..	३६०
शिशिरचर्या ...	,,
वसन्तचर्या ...	,,
ग्रीष्मचर्या ...	,,
वर्षाचर्या ...	३६१
शरच्चर्या ..	,,
सामान्यर्तुचर्या ...	,,
उपसंहार: ..	३६२
ग्रन्थकारपरिचय: ...	,,
टीकाकारपरिचय: ...	,,

इति चक्रदत्तस्थ-विषयानुक्रमणिका समाप्ता ।



श्रीगणेशाय नमः।



चक्रदत्तः

सुबोधिन्याख्यभाषाटीकयोपेतः।

अथ ज्वराधिकारः।

मङ्गलाचरणम्।

गुणत्रयविभेदेन मूर्तित्रयमुपेयुषे।
त्रयीभुवे त्रिनेत्राय त्रिलोकीपतये नमः ॥ १ ॥

टीकाकारकृतमंगलाचरणम्।

लक्ष्मीं विवर्द्धयतु कीर्तितति तनोतु
शान्तिं ददातु विदधातु शरीररक्षाम्।
विघ्नान्विनाशयतु बुद्धिमुपाकरोतु
भावान्प्रकाशयतु मे गुरुपादरेणुः ॥ १ ॥
चिकित्सैकफलस्यास्य चक्रदत्तस्य बोधिनीम्।
टीकां करोमि भाषायां सद्वैद्या अनुमन्यताम् ॥ २ ॥

सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुणरूपी भेदोंसे त्रिमूर्तियों (ब्रह्मा, विष्णु, महेशता) को प्राप्त होनेवाले, तीनों वेदोंके प्रकाशक या तीनों लोकोंके उत्पादक तथा उनके स्वामी श्रीशिवजीके लिये प्रणाम करता हूं ॥ १ ॥

अभिधेयादिप्रतिज्ञा।

नानायुर्वेदविख्यातसद्योगैश्चक्रपाणिना।
क्रियते संग्रहो गूढवाक्यबोधकवाक्यवान् ॥ २ ॥

चक्रपाणिजी अनेक आयुर्वेदीय ग्रन्थोंमें लिखे हुए उत्तम योगोंका उनके गूढार्थ वाक्योंको स्पष्ट कर संग्रह करते हैं ॥ २ ॥

चिकित्साविधिः।

रोगमादौ परीक्षेत ततोऽनन्तरमौषधम्।
ततः कर्म भिषक् पश्चाज्ज्ञानपूर्वं समाचरेत् ॥ ३ ॥

वैद्यको प्रथम निदान पूर्वरूपादिके द्वारा रोगकी परीक्षा करनी चाहिये, तदनन्तर औषधका निश्चय कर शास्त्रज्ञानपूर्वक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

नवज्वरे त्याज्यानि।

नवज्वरे दिवास्वप्नस्नानाभ्यङ्गान्नमैथुनम्।
क्रोधप्रवातव्यायामकषायांश्च विवर्जयेत् ॥ ४ ॥

नवीन ज्वरमें दिनमें सोना, स्नान, मालिश, अन्न, मैथुन, क्रोध अधिकवायु तथा काथका त्याग करना चाहिये ॥ ४ ॥

लंघनस्य प्राधान्यं विधिः फलं मर्यादा च।

ज्वरे लङ्घनमेवादावुपदिष्टमृते ज्वरात्।
क्षयानिलभयक्रोधकामशोकश्रमोद्भवात् ॥ ५ ॥
आमाशयस्थो हत्वाग्निं सामो मार्गान्पिधापयन्।
विदधाति ज्वरं दोषस्तस्माल्लंघनमाचरेत् ॥ ६ ॥
अनवस्थितदोषाग्नेर्लङ्घनं दोषपाचनम्।
ज्वरघ्नं दीपनं काङ्क्षारुचिलाघवकारकम् ॥ ७ ॥
प्राणाविरोधिना चैनं लघनेनोपपादयेत्।
बलाधिष्ठानमारोग्यं यदर्थोऽयं क्रियाक्रमः ॥ ८ ॥

नवीन ज्वरमें लंघन (उपवासकराना) ही उचित है, पर क्षयज (धातुक्षयज तथा राजयक्ष्महेतुक), वातजन्य,

श्रमजन्य तथा काम, क्रोध, शोक और थकावटसे उत्पन्न ज्वरमें लंघन न करना चाहिये। साम (आमयुक्त) दोष आमाशयसे पहुँच अग्निको नष्ट कर रसादिवाही मार्गोंको बन्द करता हुआ ज्वर उत्पन्न करता है, अतः लंघन करना चाहिये। लंघन अव्यवस्थित (न्यूनाधिक्यको प्राप्त) दोष तथा अग्निको स्वस्थान तथा स्वमानमें प्राप्त करता और आमका पाचन, ज्वरका नाश, अग्निकी दीप्ति, भोजनकी अभिलाषा तथा भोजनमें रुचि उत्पन्न करता और शरीरको हल्का बनाता है। पर लंघन इतना ही कराना चाहिये कि जिससे बलका अधिक ह्रास न हो, क्योंकि आरोग्यका आश्रय बल ही है और आरोग्यप्राप्तिके लिये ही चिकित्सा है॥५-८॥

लंघननिषेधः ।

न तु मारुतक्षुत्तृष्णामुखशोषभ्रमान्विते ।
कार्यं न बाले वृद्धे च न गर्भिण्यां न दुर्बले ॥ ९ ॥

वातज्वरवालेको तथा भूख, प्यास, मुखशोष व भ्रमसे पीड़ित तथा बालक, वृद्ध व गर्भिणीको लंघन न कराना चाहिये ॥ ९ ॥

सम्यग्लंघितलक्षणम् ।

वातमूत्रपुरीषाणां विसर्गे गात्रलाघवे ।
हृदयोद्गारकण्ठास्यशुद्धौ तन्द्राक्लमे गते ॥ १० ॥
स्वेदे जाते रुचौ चापि क्षुत्पिपासासहोदये ।
कृतं लङ्घनमादेश्यं निर्व्यथे चान्तरात्मनि ॥ ११॥

अधोवायु, मूत्र तथा मलका भलीभांति निःसरण हो, शरीर हल्का हो, हृदय हल्का हो, डकार साफ आवे, कण्ठमें कफका सञ्चार न हो, मुखकी विरसता नष्ट हो गयी हो, तन्द्रा तथा ग्लानि दूर हो गयी हो, पसीना निकलता हो, भोजनमें रुचि हो, भूख तथा प्यास रोकनेकी शक्ति न रही हो और मन प्रसन्न हो तो समझना चाहिये कि लंघन ठीक होगया ॥ १० ॥ ११ ॥

अतिलंघितदोषाः ।

पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च कासः शोषो मुखस्य च ।
क्षुत्प्रणाशोऽरुचिस्तृष्णा दौर्बल्यं श्रोत्रनेत्रयोः ॥१२॥
मनसः संभ्रमोऽभीक्ष्णमूर्ध्ववातस्तमो हृदि ।
देहाग्निबलनाशश्च लङ्घनेऽतिकृते भवेत् ॥ १३ ॥

अधिक लंघन करनेसे सन्धि तथा शरीरमें पीड़ा, खांसी, मुखका सूखना, भूखका नाश, अरुचि, प्यास, कान तथा नेत्रोंकी निर्बलता, [illegible] मनकी [illegible], हृदयमें अंधेरा आना, [illegible] न ॥ [illegible] होता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

वमनावस्थामाह ।

सद्यो भुक्तस्य वा जाते ज्वरे सन्तर्पणोत्थिते ।
वमनं वमनार्हस्य शस्तमित्याह वाग्भट. ॥ १४ ॥
कफप्रधानानुत्क्लिष्टान्दोषानामाशयस्थितान् ।
बुद्ध्वा ज्वरकरान्काले वम्यानां वमनैर्हरेत् ॥ १५ ॥

भोजन करनेके अनन्तर ही आये हुए तथा अधिक भोजन करनेसे आये हुए ज्वरमें वमनयोग्य रोगियोंको वमन कराना हितकर है। यदि ज्वर-कारक दोष कफप्रधान, आमाशयमें स्थित तथा बढ़े हुए (हल्लासादियुक्त) हों, तो उन्हें कफवृद्धिके समय अर्थात् प्रातःकाल वमनयोग्य रोगियोंको वमन कराकर निकलवा देना चाहिये ॥ १४ ॥ १५ ॥

अनुचितवमनदोषाः ।

अनुपस्थितदोषाणां वमनं तरुणे ज्वरे ।
हृद्रोगं श्वासमानाहं मोहं च कुरुते भृशम् ॥ १६ ॥

नवीन ज्वरमें भी यदि दोष उत्क्लिष्ट (हल्लासादियुक्त) न हों तो वमन कराना, हृदयमें दर्द, श्वास, अफारा तथा मूर्च्छाका हेतु हो जाता है ॥ १६ ॥

जलनियमः ।

तृष्यते सलिलं चोष्णं दद्याद्वातकफज्वरे ।
मद्योत्थे पैत्तिके वाथ शीतलं तिक्तकैः शृतम् ॥१७॥
दीपनं पाचनं चैव ज्वरघ्नमुभयं च तत् ।
स्रोतसां शोधनं बल्यं रुचिस्वेदप्रदं शिवम् ॥ १८ ॥

वातकफज्वरमें प्यासकी शान्तिके लिये गरम गरम जल पिलाना चाहिये तथा मद्य पीनेसे व पित्तसे उत्पन्न ज्वरमें तिक्तरस युक्त ओषधियोंके साथ औटानेके अनन्तर छान, ठण्ढा कर देना चाहिये ॥ १७ ॥ इस प्रकार प्रयुक्त जल अग्निदीपक, आमपाचक, ज्वरनाशक, छिद्रशोधक, बलवर्धक, रुचिकारक तथा पसीना लानेवाला तथा कल्याण कर होता है ॥ १८ ॥

षडङ्गजलम् ।

मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ।
शृतशीतं जलं दद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥ १९ ॥

पिपासायुक्त ज्वरकी शान्तिके लिये नागरमोथा, पित्तपापड़ा, खस, लाल चन्दन, सुगन्धवाला तथा सोंठ छोड़ औटाकर, ठण्ढा किया जल देना चाहिये ॥१९॥

---

१ वमनके योग्य तथा अयोग्य रोगी ग्रन्थमें आगे वमनाधिकारमें बतावेंगे, अतः वहांसे जानना।

पूर्वापरग्रन्थविरोधपरिहारमाह ।

मुख्यभेषजसम्बन्धो निषिद्धस्तरुणे ज्वरे ।
तोयपेयादिसंस्कारे निर्दोषं तेन भेषजम् ॥ २० ॥

नवीन ज्वरमें प्रधान औषध (क्वाथ चूर्ण आदि) का निषेध है, पर जल या अन्नके संस्कारमें औषध प्रयोग दोषकारक नहीं होता ॥ २० ॥

जलपाकविधिः ।

यदप्सु श्रृतशीतासु षडङ्गादि प्रयुज्यते ।
कर्षमात्रं ततो द्रव्यं साधयेत्प्रास्थिकेऽम्भसि ॥ २१॥
अर्धश्रृतं प्रयोक्तव्यं पाने पेयादिसंविधौ ।

जो षडङ्गादि द्रव्य गरम कर ठण्डे पानीमें दिये जाते हैं अर्थात् जहां केवल जल कुछ औषधियोंके साथ पकाकर ठण्डा करना लिखा है वहां १ तोला द्रव्य ६४ तोला जलमें पकाना चाहिये । आधी रहने पर पीने तथा पेया यूष मण्डादिके लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ २१॥

पथ्यविधिः ।

वमितं लङ्घितं काले यवागूभिरुपाचरेत् ॥ २२ ॥
यथास्वौषधसिद्धाभिर्मण्डपूर्वाभिरादितः ।

आवश्यकतानुसार वमन तथा लंघन करानेके अनन्तर पथ्यके समयपर तत्तद्दोष शामक ओषधियोंके साथ औटे हुए जलमें सिद्ध किया मण्ड तथा यवागू आदि क्रमशः देना चाहिये॥ २२ ॥–

विशिष्टं पथ्यम् ।

लाजपेयां सुखजरां पिप्पलीनागरैः श्रृताम् ॥ २३ ॥
पिबेज्ज्वरी ज्वरहरां क्षुद्वानल्पाग्निरादितः ।
पेयां वा रक्तशालीनां पार्श्वबस्तिशिरोरुजि ॥ २४ ॥
श्वदंष्ट्राकण्टकारीभ्यां सिद्धां ज्वरहरां पिबेत् ।
कोष्ठे विबद्धे सरुजि पिबेत्पेयां श्रृतां ज्वरी ॥ २५ ॥
मृद्वीकापिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।

जो ज्वरी कुछ अग्निके उदय होनेसे बुभुक्षित हो उसे प्रथम छोटी पीपल तथा सोंठसे पकाये हुए जलमें सिद्ध की हुई पेया देनी चाहिये । इससे ज्वर नष्ट होगा। तथा पसुलियां, मूत्राशयके ऊपर अथवा शिरमें शूलके साथ यदि ज्वर हो तो गोखुरू, छोटी कटेरीसे सिद्ध किये हुए जलमें लाल चावलोंकी पेया-बनाकर पिलानी चाहिये । यदि मलमूत्रादिकी रुकावटके साथ उदरमें पीडा तथा ज्वर हो तो मुनक्का, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठके जलमें बनायी गयी पेया पिलानी चाहिये ॥ २३–२५ ॥–

द्वन्द्व–सन्निपातज्वरेषु पथ्यम् ।

पञ्चमूल्या लघीयस्या गुर्व्या वाऽश्यया सधान्यया ॥२६॥
कणया यूषपेयादि साधनं स्याद्यथाक्रमम् ।
वातपित्ते वातकफे त्रिदोषे श्लेष्मपित्तजे ॥ २७ ॥

वातपित्तज्वरमे लघुपञ्चमूल, (शालिपर्णी, पृश्नपर्णी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरू), के जलसे, वातकफज्वरमे बृहत्पञ्चमूल (बेलका गूदा, सोनापाठा, खम्भार, पाढल, (अरणी) से, सन्निपातज्वरमे दोनो पञ्चमूलों (दशमूल) से, कफपित्तज्वरमें धनियाके सहित छोटी पीपलसे सिद्ध किये जलमें यूष पेया आदि बनाकर देना चाहिये ॥ २६ ॥ २७ ॥

व्याघ्र्यादियवागूः ।

यवागूः स्यात्त्रिदोषघ्नी व्याघ्रीदुस्पर्शगोक्षुरैः ।

छोटी कटेरी, जवासा, गोखुरूके जलमें सिद्ध की गयी यवागू त्रिदोषनाशक होती है ।

कल्कसाध्ययवाग्वादिपरिभाषा ।

कर्षार्धं वा कणाशुण्ठ्योः कल्कद्रव्यस्य वा पलम् २८
विनीय पाचयेद्युक्त्या वारिप्रस्थेन चापराम् ।

छोटी पीपल व सोंठ प्रत्येक छः छः माशे ले अथवा कल्कद्रव्य ४ तोला ले कल्क बना एकप्रस्थ जल (द्रवद्वैगुण्यात् १२८ तोला)[१] मे मिला कल्कसाध्य यवागू बनाना चाहिये । इसी प्रकार यदि अधिक यवाग्वादि बनाना हो तो जलादिका प्रमाण बढा देना चाहिये ॥ २८ ॥–यहा पर कणा व शुण्ठी तीक्ष्ण द्रव्यका तथा कल्क द्रव्य मृदु द्रव्योंका उपलक्षण है । इसका भाव यह है कि तीक्ष्ण वीर्य द्रव्य आधा कर्ष, और मृदुवीर्य द्रव्य १ पल लेकर १ प्रस्थ जलमें पका अर्धावशिष्ट रहनें पर उतार छानकर पेया यवागू आदि बनाना चाहिये ।

पेयादिसाधनार्थं क्वाथादिपरिभाषा ।

षडङ्गपरिभाषैव प्रायः पेयादिसम्मता ॥ २९ ॥
यवागूमुचिताद्भक्ताच्चतुर्भागकृतां वदेत् ।

पेया, यवागू आदि बनानेके लिये षडङ्गपरिभाषासे ही व्यवहार करना चाहिये । पूर्वाभ्यस्त अन्नकी अपेक्षा चतुर्थांश चावलोंकी यवागू बनानी चाहिये ॥ २९ ॥

---

१ जल द्रव होनेसे 'द्रवद्वैगुण्यमिति नियमात्' १२८ तोला छोड़ना चाहिये ।

मण्डादिलक्षणम् ।

सिक्थकै रहितो मण्ड पेया सिक्थसमन्विता॥३०॥
यवागूर्बहुसिक्था स्याद्विलेपी विरलद्रवा ।

सिक्थरहित मण्ड, सिक्थसहित पेया, अधिक सीथसहित यवागू तथा सिक्थ ही जिसमें अधिक हों, द्रव कम हो उसे विलेपी कहते हैं ॥ ३० ॥–

मण्डादिसाधनार्थं जलमानम् ।

अन्न पञ्चगुणे साध्य विलेपी तु चतुर्गुणे ॥ ३१ ॥
मण्डश्चतुर्दशगुणे यवागू षड्गुणेऽम्भसि ।

भात पञ्चगुण जलमें, विलेपी चतुर्गुण जलमें, मण्ड चतुर्दशगुण जलमें तथा यवागू छः गुण जलमें पकानी ...

जिस प्रकार वृष्टि मिट्टीके ढेरको अधिक कीचड़ बना देती है उसी प्रकार बढ़े हुए कफको यवागू अधिक बढा देती है, अतः कफाधिक ज्वरमें, तथा मदात्ययमें, नित्य मद्य पीनेवालोंके लिये, ग्रीष्मऋतुमें, पित्तकफकी अधिकतामें तथा ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तसे युक्त ज्वरमें यवागू न देनी चाहिये । ऐसी दशामें ज्वर नाशक फलोंके रस तथा मधु व शक्कर के सहित लाई के सक्तुओंसे तर्पण ही कराना चाहिये ॥ ३२–३४ ॥

तर्पणपरिभाषा ।

द्रवेणालोडितास्ते स्युस्तर्पण लाजसक्तव. ॥ ३५ ॥

द्रवद्रव्य (जल या क्षीर या फलरस) में मिलाये हुए खीलके सक्तु तर्पण कहे जाते हैं । अर्थात् तृप्तिकारक होते हैं ॥ ३५ ॥

ज्वरविशेषे पथ्यविशेषः ।

श्रमोपवासानिलजे हितो नित्यं रसौदन. ।
मुद्गयूषौदनश्चापि देय कफसमुद्भवे ॥ ३६ ॥
स एव सितया युक्त शीत पित्तज्वरे हित ।
रक्तशाल्यादय शस्ता पुराणा.षष्टिकै सह ॥ ३७॥
यवाग्वोदनलाजार्थे ज्वरितानां ज्वरापहा. ।
मुद्गामलकयूषस्तु वातपित्तात्मके हित । ॥ ३८ ॥
ह्रस्वमूलकयूषस्तु कफवातात्मके हित ।
निम्ब(निम्ब्र)मूलक(कूलक)यूषस्तु हित पित्तकफात्मके३९

श्रम उपवास तथा वात उत्पन्न ज्वरमे नित्य मासरस तथा भात हितकारक होता है । कफजन्य ज्वरमें मूगका यूष और भात देना चाहिये । तथा मूगका यूष व भात मिश्री मिला ठण्डा कर पित्तज्वरमें देना चाहिये । यवागू भात तथा लाईके लिये, ज्वरनाशक पुराने लाल चावल तथा साठीके चावल ज्वरवालोंके लिये देना चाहिये । वातपित्तज्वरमें मूग तथा आमलाका यूष हितकर है । छोटी मूलीका यूष कफवातज्वरमें हितकारक है । नीमकी पत्ती तथा मूलीका यूष अथवा परवलके पत्तोंका यूष निम्बूके रसके साथ अथवा नीमकी पत्ती और परवलकी पत्तीका यूष पित्तकफज्वरमें हितकर है ॥ ३६–३९ ॥

ज्वरनाशकयूषद्रव्याणि ।

मुद्गान्मसूराश्चणकान्कुलत्थांश्चाढकानपि ।
आहारकाले यूषार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत ॥ ४० ॥

ज्वरमें भोजनके समय मूग, मसूर, चना, कुलथी तथा अरहरका यूष देना चाहिये ॥ ४० ॥

ज्वरहरशाकद्रव्याणि ।

पटोलपत्रं वार्ताकं कुलकं कारवेल्लकम् ।
कर्कोटकं पर्पटकं गोजिह्वां वालमूलकम् ॥ ४१ ॥
पत्रं गुडूच्या: शाकार्थं ज्वरिताय प्रदापयेत ।

ज्वरमें परवलके पत्ते, बैगन, परवल, करेला, ककोड़ा (पड़ोरा अथवा वनपरोरा), पित्तपापड़ा, बन्ध्या गोभी, कच्ची मूली तथा गुर्चके पत्तोंका शाक देना चाहिये॥४१॥—

पथ्यावश्यकता ।

ज्वरितो हितमश्नीयाद्यद्यप्यस्यारुचिर्भवेत ॥ ४२ ॥
अन्नकाले ह्यभुञ्जान: क्षीयेत म्रियतेऽपि वा ।

भोजनका समय निश्चित हो जानेपर अरुचि होनेपर भी हितकारक पदार्थ खाना ही चाहिये । उस समय भोजन न करनेसे बल क्षीण होता है अथवा मृत्यु हो जाती है ॥ ४२ ॥—

अरुचिचिकित्सा ।

अरुचौ मातुलुङ्गस्य केशरं साज्यसैन्धवम् ॥४३ ॥
धात्रीद्राक्षासितानां वा कल्कमास्येन धारयेत ।

अरुचिमें बिजौरे नीम्बूका केशर (रसभरी गैलिया) घी व सेंधा नमकके साथ अथवा आमला, मुनक्का व मिश्रीकी चटनी मुखमें रखना चाहिये ॥ ४३ ॥

मातत्यात्स्वाद्वभावाद्वा पथ्यं द्वेष्यत्वमागतम् ॥ ४४ ॥
कल्पनाविधिभिस्तैस्तैः प्रियत्वं गमयेत्पुनः ।

सदा एक ही वस्तु खानेसे अथवा स्वादिष्ट न होनेसे यदि पथ्य अच्छा न लगता हो तो भिन्न भिन्न कल्पनाओं (संयोग संस्कारादि) से पथ्यको पुनः रुचिकारक बनावे ॥ ४४ ॥—

भोजनसमयः ।

ज्वरितं ज्वरमुक्तं वा दिनान्ते भोजयेल्लघु ॥ ४५ ॥
श्लेष्मक्षये विवृद्धोष्मा बलवाननलस्तदा ।

जिसे ज्वर आ रहा हो अथवा जो शीघ्र ही ज्वरमुक्त हुआ हो उसे सायङ्काल (अपराह्ण) में हलका भोजन देना चाहिये । उस समय कफ क्षीण रहनेसे गरमी बढ़ती है, अतएव अग्नि दीप्त होता है ॥ ४५ ॥—

अपथ्यभक्षणनिषेधः ।

गुर्वभिष्यन्दकाले च ज्वरी नाद्यात्कथञ्चन ॥ ४६ ॥
नहि तस्याहितं भुक्तमायुषे वा बलाय वा ।

ज्वरीको गुरु (द्रव्यगुरु—लड्डूआदि, मात्रागुरु—अधिक—भोजन) अभिष्यन्दि (दोष—धातु—मल—स्रोतो रोधक) तथा असमयमें भोजन न करना चाहिये । अहित भोजन उसकी आयु या सुखके लिये हितकर नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥—

ज्वरपाचनानि ।

लङ्घनं स्वेदनं कालो यवाग्वस्तिक्तको रसः ॥ ४७ ॥
पाचनान्यविपक्वानां दोषाणां तरुणे ज्वरे ।

लङ्घन, पसीना निकालना, समयकी (आठ दिनकी) प्रतीक्षा, यवागू व तिक्तरस (पेया, यवागू आदिके संस्कारमें) नवीन ज्वरमें आम दोषका पाचन करते हैं ॥ ४७ ॥—

ज्वरस्य तारुण्यादिनिश्चयः ।

आसप्तरात्रं तरुणं ज्वरमाहुर्मनीषिणः ॥ ४८ ॥
मध्यं द्वादशरात्रं तु पुराणमत उत्तरम् ।

सात रात्रि पर्यन्त (ज्वरोत्पत्तिदिवससे) तरुण ज्वर, बारह रात्रि पर्यन्त मध्य ज्वर, इसके अनन्तर पुराण ज्वर विद्वान्लोग मानते हैं ॥ ४८ ॥

तत्र चिकित्सा ।

पाचनं शमनीयं वा कषायं पाययेत्तु तम् ॥ ४९ ॥
ज्वरितं षडहेऽतीते लघ्वन्नप्रतिभोजितम् ।
सप्ताहात्परतोऽस्तब्धे सामे स्यात्पाचनं ज्वरे ॥ ५० ॥
निरामे शमनं स्तब्धे सामे नौषधमाचरेत् ।

ज्वरवालेको ६ दिन बीत जानेपर अर्थात् सातवें दिन हलका पथ्य देकर आठवें दिन भी यदि दोष साम हों तो पाचन कषाय, यदि निराम हों तो शमनकारक कषाय, पिलाना चाहिये । सात दिनके अनन्तर यदि दोष साम होनेपर भी निकल रहे हों तो पाचन कषाय देना चाहिये । निराम हों तो शमन कषाय देना चाहिये । और यदि दोष साम तथा विबद्ध हों तो औषध न देना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

आमज्वरलक्षणम् ।

लालाप्रसेको हृल्लासहृदयाशुद्ध्यरोचकाः ॥ ५१ ॥
तन्द्रालस्याविपाकास्यवैरस्यं गुरुगात्रता ।
क्षुन्नाशो बहुमूत्रत्वं स्तब्धता बलवाञ्ज्वरः ॥ ५२ ॥
आमज्वरस्य लिङ्गानि न दद्यात्तत्र भेषजम् ।
भेषजं ह्यामदोषस्य भूयो ज्वलयति ज्वरम् ॥ ५३ ॥

---

१ तरुणज्वर लिखकर भी अविपक्व दोष जो लिखा है अतः मध्यज्वरमें भी यदि दोष आम हों तो पाचन ही देना चाहिये ।

लारका बहना, मिचलाईका होना, हृदयका भारी होना, अरुचि, तन्द्रा, आलस्य, भोजनका न पचना, मुखका स्वाद खराब रहना, शरीरका भारीपन, भूखका न लगना, पेशाबका अधिक आना, जकड़ाहट, ज्वरके वेगका आधिक्य आम ज्वरके लक्षण हैं। ऐसी अवस्थामें औषध न देना चाहिये । औषध आमदोषयुक्त ज्वरको अधिक बढ़ा देता है ॥ ५१–५३ ॥

निरामज्वरलक्षणम् ।

मृदौ ज्वरे लघौ देहे प्रचलेषु मलेषु च ।
पक्वं दोषं विजानीयाज्ज्वरे देयं तदौषधम् ॥ ५४ ॥

जब ज्वर हल्का हो गया हो, शरीर हल्का हो गया हो, मलका निःसरण होता हो उस समय दोष परिपक्व समझना चाहिये और तभी औषध देना चाहिये ॥५४॥

सर्वज्वरपाचनकषायः ।

नागरं देवकाष्ठं च धान्यकं बृहतीद्वयम् ।
दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥ ५५ ॥

सोंठ, देवदारु, धनियां, छोटी कटेरी तथा बड़ी कटेरीका क्वाथ ज्वरमें प्रथम पाचनके लिये देना चाहिये ॥ ५५ ॥

औषधनिषेधः ।

पीताम्बुर्लङ्घितः क्षीणोऽजीर्णी भुक्तः पिपासितः ।
न पिबेदौषधं जन्तुः संशोधनमथेतरत् ॥ ५६ ॥

जिसने जल पी लिया है अथवा लंघन किया है, जो क्षीण तथा अजीर्णयुक्त है, जिसने भोजन किया है अथवा जिसे प्यास लग रही है उसे संशोधन तथा संशमन कोई भी औषध न पीना चाहिये ॥ ५६ ॥

अन्नसंयुक्तासंयुक्तौषधफलम् ।

वीर्याधिकं भवति भेषजमन्नहीनं
हन्यात्तथामयमसंशयमाशु चैव ।
तद्बालवृद्धयुवतीमृदवश्च पीत्वा
ग्लानिं परां नियतमाशु बलक्षयं च ॥ ५७ ॥

अन्नरहित (बिना अन्न) औषध अधिक गुण करता है और रोगको भी शीघ्र नष्ट करता है, पर इसी को बालक, वृद्ध, स्त्री तथा सुकुमार पुरुष यदि सेवन कर लेते हैं तो ग्लानि तथा बलको क्षीण करता है ॥ ५७ ॥

औषधपाकलक्षणम् ।

अनुलोमोऽनिलः स्वास्थ्यं क्षुत्तृष्णा सुमनस्कता ।
लघुत्वमिन्द्रियोद्गारशुद्धिर्जीर्णौषधाकृतिः ॥ ५८ ॥

औषधके ठीक परिपक्व हो जानेपर वायुकी अनुलोमता, स्वास्थ्य, भूख, प्यास, मनकी प्रसन्नता, शरीरका हलकापन, इन्द्रियोंको अपने विषय ग्रहण करनेमें उत्साह तथा उद्गारकी शुद्धि होती है ॥ ५८ ॥

अजीर्णौषधलक्षणम् ।

क्लमो दाहोऽङ्गसदनं भ्रमो मूर्छा शिरोरुजा ।
अरतिर्बलहानिश्च सावशेषौषधाकृतिः ॥ ५९ ॥

औषधके ठीक परिपक्व न होनेपर ग्लानि, जलन, शरीरशैथिल्य, चक्कर, मूर्छा, शिरमें दर्द, बेचैनी, तथा बलकी क्षीणता होती है ॥ ५९ ॥

अजीर्णान्नौषधयोरौषधान्नसेवने दोषाः ।

औषधशेषे भुक्तं पीतं तथौषधं सशेषेऽन्ने ।
न करोति गदोपशमं प्रकोपयत्यन्यरोगांश्च ॥ ६० ॥

औषधके विना पचे भोजन करना तथा अन्नके विना पचे औषध सेवन करना रोगको भी शान्त नहीं करता तथा अन्य रोगोंको भी उत्पन्न कर देता है ॥ ६० ॥

भोजनावृतभेषजगुणाः ।

शीघ्रं विपाकमुपयाति बलं न हिंस्या-
दन्नावृतं नच मुहुर्वदनान्निरेति ।
प्राग्भुक्तसेवितमथौषधमेतदेव
दद्याच्च वृद्धशिशुभीरुवराङ्गनाभ्यः ॥ ६१ ॥

भोजनके अव्यवहितपूर्व औषध खानेसे शीघ्र पच जाती है । बल क्षीण नहीं करती । तथा अन्नसे आच्छादित होनेके कारण मुखसे (अस्वादिष्ट होनेके कारण) निकलती भी नहीं । वृद्ध, बालक, सुकुमार तथा स्त्रियोंको इसी प्रकार औषध खिलाना चाहिये ॥ ६१ ॥

मात्रानिश्चयः ।

मात्राया नास्त्यवस्थानं दोषमग्निं बलं वयः ।
व्याधिं द्रव्यं च कोष्ठं च वीक्ष्य मात्रां प्रयोजयेत् ॥६२॥

मात्राका ठीक निश्चय नहीं किया जा सकता, क्योंकि सब रोगियोंके लिये तथा सब औषधोंकी एकही मात्रा नहीं हो सकती । अतः दोष, अग्नि, बल, अवस्था, रोग, द्रव्य, कोष्ठका निश्चय कर मात्रा निश्चित करनी चाहिये ॥ ६२ ॥

सामान्यमात्रा ।

उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे ।
जघन्यस्य पलार्धेन स्नेहक्वाथ्यौषधेषु च ॥ ६३ ॥

सेर, तथा क्वाथ (जिनका काढ़ा बनाया जाय) औषधियोंकी मात्रा पूर्णबलादि-युक्तके लिये ४ तोला, मध्यके लिये ३ तोला तथा हीनके लिये २ तोला की है ॥ ६३ ॥

क्वाथे जलमानम्।

कर्षादौ तु पलं यावद्दद्यात्षोडशिकं जलम्।
ततस्तु कुडवं यावत्तोयमष्टगुणं भवेत् ॥ ६४ ॥
क्वाथ्यद्रव्यपलं कुर्यात्प्रस्थार्धं पादशेषितम्।

एक तोलेसे चार तोलातक औषधमें १६ गुणा जल छोड़ना (इसमें द्रवद्वैगुण्यसे द्विगुण नहीं लिया जा सकता, क्योंकि इनमें कर्षसे ही वर्णन है) चाहिये। एक पलसे ऊपर ४ पलपर्यन्त अष्टगुणा जल छोड़ना चाहिये। (यह परिभाषा पेय क्वाथके लिये नहीं है। क्योंकि पीनेके लिये ४ तोलेसे अधिक क्वाथका वर्णन कहीं नहीं है) पूर्वोक्त परिभाषाको ही स्पष्ट करते हुए लिखते हैं। १ पल क्वाथ्य द्रव्य ३२ तोला द्रवद्वैगुण्यात् ६४ तोला जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर पिलाना चाहिये ॥ ६४ ॥ *

मानपरिभाषा।

द्वात्रिंशन्माषकैर्माषश्चरकस्य तु तैः पलम् ॥ ६५ ॥
अष्टचत्वारिंशता स्यात्सुश्रुतस्य तु माषकः।
द्वादशाभिर्धान्यमाषैश्चतु षष्ट्या तु तैः पलम् ॥ ६६ ॥
पुनश्च तुलितं पञ्चरक्तिमाषात्मकं पलम्।
चरकार्धपलोन्मानं चरके दशरक्तिके ॥ ६७ ॥
माषे. पलं चतु षष्ट्या यद्भवेत्तत्तथेरितम्।
तस्मात्पलं चतु षष्ट्या माषकैर्दशरक्तिकैः ॥ ६८ ॥
चरकानुमतं वैद्यैश्चिकित्सासूपयुज्यते।

चरकके मतमें ३२ उड़दोंका १ माशा, ४८

---

१ वर्तमान समयमें २ तो० ही उत्तम, १ तो० हीन और १॥ तो० मध्यम समझना, चाहिये।

२ " रक्तिकादिषु मानेषु यावन्न कुडवो भवेत्।
शुष्कद्रवार्द्रयोश्चापि तुल्यं मानं प्रकीर्तितम् "।

इस सिद्धान्तसे रक्तिकासे कुडव पर्यन्त मानवाचक शब्दोंका जहां प्रयोग होगा वहां समान ही द्रव तथा आर्द्र भी लिये जायँगे। इससे अधिक अर्थात् शराव आदि शब्दोंसे जहां वर्णन हो वहां " द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः" इस सिद्धान्तसे द्रवादि द्विगुण लिये जाते हैं। अतएव पूर्वमें कर्ष मान है अतः द्विगुण नहीं लिया जाता। उत्तरार्द्धमें प्रस्थशब्दसे वर्णन है, अतः द्विगुण लिया जाता है। क्वाथ मिट्टीके नवीन पात्रमें खुला मन्दाग्निपर पकाना चाहिये। * वर्तमान समयके लिये आधी मात्रा ही पर्याप्त होगी।

१ यहां जो चरकका माशा ३२ उड़दोंका बताया है उसे १० रत्तीका न समझना चाहिये। क्योंकि १२ उड़द जब ५ रत्ती हुए तो २४ उड़द ही १० रत्ती होंगे। अतः दश रत्तीका माशा फर्जी है। २४ उड़दका मान कर ६४ माशेका पल माना है। अतः पलकी परिभाषामें चरकके सिद्धान्तमें २ भाग और सुश्रुतके सिद्धान्तमें १ भाग लिया जा सकेगा। आजकलके प्रचलित मानसे इस मानका निर्णय करना भी आवश्यक है। अतः उसे यहां पर लिख देना उचित समझता हूँ। चरकका पल ६४० रत्तीका हुआ, वर्तमान माशा ८ रत्तीका होता है, अतः ८० माशे हुए। १२ माशेका तोला होता है, ६ तोला ८ माशे हुए। इसीप्रकार सुश्रुतका पल ३२० रत्तीका और वह ३ तोला ४ माशाके बराबर हुआ। पर यहांपर टीकामें जो मान स्थान स्थान पर दिया गया है वह इन दोनों मानोंसे भी कुछ भिन्न पर प्रचलित दिया गया है। वह इस प्रकार है, अनेक आचार्योंने सुश्रुतके पांच रत्तीके माशाको ही ६ रत्तीका लिखा है। यथा शार्ङ्गधरः—"षड्भिस्तु रक्तिकाभिः स्यान्माषको हेमधान्यकौ। माषैश्चतुर्भिः शाणः स्याद्धरणः स निगद्यते॥टंकः स एव कथितस्तद्द्वयं कोल उच्यते। कोलद्वयं च कर्षः स्यात् स प्रोक्तः पाणिमानिका" ॥ अर्थात् इनके सिद्धान्तसे ६ रत्ती = १ माशा। ४ माष (२४ रत्ती) = १ शाण। ४ शाण (९६ रत्ती) = १ कर्ष। इस प्रकार इनके मतसे कर्ष ९६ रत्तीका हुआ। आजकल प्रचलित (गवर्नमेण्टद्वारा भी निश्चित) मान ८ रत्ती = १ माशा। १२ माशा (९६ रत्ती) १ तोला इस प्रकार प्रचलित १ तोला और पूर्वोक्त कर्ष दोनों ९६ रत्तीके-अतएव बराबर हुए। अतः इसी सिद्धान्तसे टीकामें पल(४ कर्ष) = ४ तोला, कुडव (१६ कर्ष) = १६ तोला, प्रस्थ (६४ कर्ष) = ६४ तोला, आढक (२५६ कर्ष) = २५६ तोला और प्रचलित सेर ८० तोलाका होता है। इस प्रकार ३ सेर १६ तोला और द्रोण १०२४ कर्ष = १२ सेर ६४ तोला। इसी प्रकार५ तोलेकी छटाक प्रचलित है,अतएव ६४ तोलेकी छटाकें बना लेनेपर १२ छ. ४ तो० अतः द्रोण = १२ सेर ६४ तोला या १२ सेर १२ छ. ४ तो०भी लिखा-

माशाका १ पल। सुश्रुतके सिद्धान्तसे १२ उड़दका १ माशा, ६४ माशाका १ पल होता है। यह पल पञ्च रत्तिके बराबरवाले माशेसे ६४ माशेका होता है और चरकका आधे पलके बराबर होता है। चरकका पल १० रत्तीके माशेसे ६४ माशेका होता है और यही १० रत्तीके माशेसे ६४ माशेका पल वैद्यलोग चिकित्सामें उपयुक्त करते हैं ॥ ६५–६८॥–

वातज्वरचिकित्सा।

बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ॥ ६९॥
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूची विश्वजोऽथवा।
किराताब्दामृतोदीच्यबृहतीद्वयगोक्षुरैः ॥ ७० ॥
सस्थिराकलशीविश्वैः क्वाथो वातज्वरापहः।
रास्नावृक्षादनीदारुसरल सैलवालुकम् ॥ ७१ ॥
कषायः शर्कराक्षौद्रयुक्तो वातज्वरापहः।

वातज्वरमें पाचनके लिये बिल्वादिपञ्चमूल (बेलकी छाल, सोनापाठा, खम्भार, पाढ़ल, अरणी) का क्वाथ अथवा पिपरामूल, गुर्च, सोंठका क्वाथ अथवा चिरायता नागरमोथा, गुर्च, सुगन्धवाला (नेत्रबाला), छोटी कटेरी, बड़ी कटेरी, गुखुरू, शालिपर्णी, पृश्निपर्णीका क्वाथ अथवा रासन, बान्दा, देवदारु, सरल, एलुवाका क्वाथ शक्कर व शहद मिलाकर देना चाहिये ॥६९–७१ ॥–

प्रक्षेपानुपानमानम्।

प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यात्स्नेहे कल्कसमो मतः ॥७२॥
परिभाषामिमामन्ये प्रक्षेपेऽप्यूचिरे यथा।
कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः ॥ ७३ ॥
द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः।
मात्राक्षौद्रघृतादीनां स्नेहक्वाथेषु चूर्णवत् ॥ ७४ ॥

क्वाथमें प्रक्षेप क्वाथ्य द्रव्यसे चतुर्थांश तथा स्नेह (घृतादि) में कल्कसम "कल्कस्तु स्नेहपादिकः" अर्थात् चतुर्थांश ही छोड़ना चाहिये। कुछ आचार्य अग्रिम परिभाषाको भी प्रक्षेपविषयक मानते हैं। उसका दूसरा [illegible] ही है विशेष नहीं। १ तोला औषध (चूर्ण, कल्क या गोली आदि) २ तोला द्रवद्रव्य मिलाकर चाटना चाहिये तथा ४ तोला द्रवद्रव्य मिलाकर पीना चाहिये तथा शहद और घीकी मात्रा स्नेह तथा क्वाथमें चूर्णके समान अर्थात् चतुर्थांश स्नेह तथा क्वाथ्यद्रव्यमें मानना चाहिये ॥७२–७४ ॥

विभिन्नाः क्वाथाः।

बिल्वादिपञ्चमूली च गुडूच्यामलके तथा।
कुस्तुम्बुरुसमो ह्येष कषायो वातिके ज्वरे ॥ ७५ ॥
पिप्पलीशारिवाद्राक्षाशतपुष्पाहरेणुभिः।
कृतः कषायः सगुडो हन्यात्पवनजं ज्वरम् ॥ ७६ ॥
गुडूची शारिवा द्राक्षा शतपुष्पा पुनर्नवा।
सगुडोऽयं कषायः स्याद्वातज्वरविनाशनः ॥ ७७ ॥
द्राक्षागुडूचीकाश्मर्यत्रायमाणाः सशारिवाः।
निःक्वाथ्य सगुडं क्वाथं पिबेद्वातज्वरापहम् ॥ ७८ ॥
शतावरीगुडूचीभ्यां स्वरसो यन्त्रपीडितः।
गुडप्रगाढः शमयेत्सद्योऽनिलकृतं ज्वरम् ॥ ७९ ॥

बिल्वादिपञ्चमूल, गुर्च, आमला तथा धनियाका क्वाथ वातज्वरको नष्ट करता है। छोटी पीपल, शारिवा, (अनन्तमूल), मुनक्का, सौंफ, सम्भालूके बीज मिलाकर बनाया गया क्वाथ गुडके साथ अथवा गुर्च, शारिवा मुनक्का, सौंफ, पुनर्नवा (साठ) का क्वाथ गुडके साथ अथवा मुनक्का, गुर्च, खम्भार, त्रायमाण व शारिवा का क्वाथ गुडके साथ वातज्वरको नष्ट करता है। इसी प्रकार शतावरी व गुर्चका यन्त्रमें दबाकर निकाला गया स्वरस २ तोला, गुड आधा तोला मिला कर पीनेमें वातज्वर शान्त होता है ॥ ७५–७९ ॥

पित्तज्वरचिकित्सा।

कालिङ्गकटुफलं मुस्तं पाठा तिक्तकरोहिणीम्।
पक्वं सशर्करं पीतं पाचनं पैत्तिके ज्वरे ॥ ८० ॥
सैक्षवं पाचनं पैत्ते तिक्ताऽऽब्देन्द्रयवैः कृतम्।
लोध्रोत्पलामृतापद्मशारिवाणां सशर्करः ॥ ८१ ॥
क्वाथः पित्तज्वरं हन्यादथवा पर्पटाह्वयः।
पटोलेन्द्रयवक्वाथो मधुना मधुरीकृतः।
तीव्रपित्तज्वरामर्दी पानात्तृड्दाहनाशनः ॥ ८२ ॥
दुरालभापर्पटकप्रियङ्गुभूनिम्बवासाकटुरोहिणीनाम्।
जलं पिबेच्छर्करयावगाढं तृष्णास्रपित्तज्वरदाहयुक्तः ८३

–[illegible] है। पर इदानींतन मान छटाकके ऊपर [illegible], अतएव द्रवद्रव्योंका प्रस्थ ६४ २=१२८ तो=१२८ तो०=१ सेर ९ छ० ३ तो० [illegible] है। पर यहां दूना मान नहीं लिखा है [illegible] अधिक होता दूना कर लेना चाहिये॥

१ मसालेकी जो कुछ सिद्ध होनेपर मिलाते हैं उसे प्रक्षेप कहते हैं।

१ जहां क्वाथकी प्रधानता हो वहां 'प्रक्षेपः' इत्यादि परिभाषा, जहां चूर्णादिकी प्रधानता हो वहां 'कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य' इत्यादि परिभाषा समझना चाहिये। "मात्रा क्षौद्रघृतादीनाम्" इत्यादि परिभाषा "प्रक्षेपः पादिकः" इसीको स्पष्ट करती है।

२ शहद क्वाथके ठण्डे हो जाने पर ही मिलाना चाहिये॥

इन्द्रयव, कायफर, नागरमोथा, पाढ, कुटकीका क्वाथ शर्करा मिलाकर पीनेसे पित्तज्वरको शान्त करता है। तथा कुटकी, नागरमोथा, इन्द्रयवका क्वाथ शहद मिला हुआ पित्तज्वरका पाचन करता है। पठानीलोध, नीलकमल (नीलोफर) गुर्च, कमल, शारिवा (अनन्तमूल) का क्वाथ शर्करके सहित अथवा अकेले पित्तपापडाका क्वाथ शक्करके साथ देनेसे पित्तज्वरको शान्त करता है। तथैव परवलकी पत्ती व इन्द्रयवका क्वाथ शहद डाल कर देना चाहिये। अथवा दाखा, पित्तपापडा, प्रियङ्गु (फलप्रियङ्गु) चिरायता, कमलके फल तथा कुटकीका क्वाथ शक्कर मिलाकर प्यास, पित्तज्वर तथा दाहवालेको पीना चाहिये ॥ ८०–८३ ॥

त्रायमाणादिक्काथः।

त्रायमाणा च मधुकं पिप्पलीमूलमेव च।
किराततिक्तकं मुस्तं मधूक सविभीतकम् ॥ ८४ ॥
सशर्करं पीतमेतत्पित्तज्वरनिग्रहणम्।

त्रायमाण, (एक प्रसिद्ध लता है, पंसारी लाललाल बीजा दे देते हैं वह नहीं है) मौरेठी, पिपरामूल, चिरायता, नागरमोथा, महुआ, बहेडा इनका क्वाथ बना, ठंढा कर शक्कर, मिलाकर देनेसे पित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ ८४ ॥

मृद्वीकादिक्वाथः।

मृद्वीका मधुकं निम्बं कटुकारोहिणी समा।
अवश्यायस्थितं पाययेतत्पित्तज्वरापहम् ॥ ८५ ॥

मुनक्का, मौरेठी, नीमकी छाल, कुटकी सम भाग ले, क्वाथ बना, रात्रिमें आसमें रखकर सवेरे पिलानेसे पित्तज्वर नष्ट होता है ॥ ८५ ॥

पर्पटादिक्वाथः।

एक पर्पटकः श्रेष्ठ पित्तज्वरविनाशन।
किं पुनर्यदि युज्येत चन्दनोदीच्यनागरैः ॥

अकेला ही पित्तपापडा पित्तज्वरको शान्त करता है और यदि लाल चन्दन, नेत्रवाला तथा सोंठ मिला दी जाय तो क्या कहना? अर्थात् अवश्य ही पित्तज्वरको शान्त करेगा ॥ ८६ ॥

विश्वादिक्वाथः।

विश्वाम्बुपर्पटोशीरघनचन्दनसाधितम्।
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् ॥ ८७ ॥

सोंठ, सुगन्धवाला, पित्तपापडा, खस, नागरमोथा, लाल चन्दनसे बनाकर ठंढा किया गया क्वाथ प्यास, वमन, ज्वर तथा जलनको शान्त करता है ॥ ८७ ॥

अपरः पर्पटादिः।

पर्पटामृतधात्रीणां क्वाथः पित्तज्वरापहः।
द्राक्षारग्वधयोश्चापि काश्मर्याश्चाथवा पुनः ॥ ८८ ॥

पित्तपापडा, गुर्च, आमलाका क्वाथ पित्तज्वरको नष्ट करता है। इसी प्रकार मुनक्का, व अमलतासका गूदा तथा गम्भारका क्वाथ लाभ करता है ॥ ८८ ॥

द्राक्षादिक्वाथः।

द्राक्षाभयापर्पटकाब्दतिक्ताक्वाथं सशम्याकफलं विदध्यात्।
प्रलापमूर्छाभ्रमदाहशोषतृष्णान्विते पित्तभवे ज्वरे तु ॥८९॥

मुनक्का, बड़ी हर्रका छिलका, पित्तपापडा, नागरमोथा, कुटकी तथा अमलतासके गूदेका क्वाथ प्रलाप, मूर्छा, भ्रम, दाह, मुख सूखना तथा प्याससे युक्त पित्तज्वरमें देना चाहिये ॥ ८९ ॥

अन्तर्दाहचिकित्सा।

व्युषितं धान्याकजलं प्रातः पीतं सशर्करं पुंसाम्।
अन्तर्दाहं शमयत्यचिरादुद्दरप्ररूढमपि ॥ ९० ॥

१ पल धनिया ६ पल जलमें सायङ्काल भिगो देना चाहिये, सवेरे मल छान शक्कर मिलाकर पीनेसे कठिन अन्तर्दाह शीघ्र ही शान्त हो जाता है ॥ ९० ॥

शीतक्रियाविधानम्।

पित्तज्वरेण तप्तस्य क्रियां शीतां समाचरेत्।

पित्तज्वरमें तप्त पुरुषके लिये शीतल चिकित्सा करनी चाहिये अर्थात् जिसका पित्तज्वर अधिकसमयका हो गया है शान्त नहीं होता उसके लिये शीतल लेपादि करना चाहिये।

विदार्यादिलेपः।

विदारी दाडिम लोध्र दधित्थं बीजपूरकम् ॥ ९१ ॥
एभिः प्रदिह्यान्मूर्धानं तृड्दाहार्तस्य देहिनः।

जिस रोगीको प्यास अधिक लगती है तथा जलन अधिक होती है उसके शिरमें विदारीकन्द, अनारका फल, पठानीलोध, कैथेका गूदा तथा बिजौरे निम्बूके केशरका लेप करना चाहिये ॥ ९१ ॥

अन्ये लेपाः।

घृतभृष्टाम्लपिष्टा च धात्री लेपाच्च दाहनुत् ॥ ९२ ॥

आमलेको घीमें भून निम्बूके रसके साथ पीसकर लेप करनेसे जलन नष्ट होती है ॥ ९२ ॥

अम्लपिष्टैः सुशीतैर्वा पलाशतरुजैर्विलेत् ।
बदरीपल्लवोत्थेन फेनेनारिष्टकस्य च ॥ ९३ ॥

निम्बूके रस अथवा काञ्जीमें पीसकर ढाकके पत्तोंका अथवा बेरकी पत्ती अथवा नीमकी पत्तीके फेनका लेप करना चाहिये ॥ ९३ ॥

कालेयचन्दनानन्तायष्टीबदरकाञ्जिकैः ।
सघृतैः स्याच्छिरोलेपस्तृष्णादाहार्तिशान्तये ॥ ९४॥

पीला चन्दन, सफेद चन्दन, यवासा, मौरेठी, बेरकी पत्ती सबको महीन पीस घी तथा काञ्जी मिलाकर प्यास, दाह तथा बेचैनीकी शान्तिके लिये शिरमें लेप करना चाहिये ॥ ९४ ॥

जलधारा ।

उत्तानसुप्तस्य गभीरताम्र-
कांस्यादि पात्रं प्रणिधाय नाभौ ।
तत्राम्बुधारा बहुला पतन्ती
निहन्ति दाहं त्वरितं सुशीता ॥ ९५ ॥

रोगीको उत्तान सुलाकर उसकी नाभीपर गहरा ताम्रपात्र रख उसमें ठण्ढे जलकी धारा अधिक समय तक छोड़नेसे तत्काल दाहको शान्त कर देती है[1] ॥ ९५ ॥

पीतकाञ्जिकवस्त्रावगुण्ठनं दाहनाशनम् ।

कपड़ेको चौपरत कर काञ्जीमें भिगोकर शिर, हृदय तथा पेटमें रखनेसे दाह शान्त होता है ।

जिह्वातालुगलक्लोमशोषे मूर्ध्नि तु दापयेत् ।
केशरं मातुलुङ्गस्य मधुसैन्धवसंयुतम् ॥ ९६ ॥

जिह्वा, तालु, गला तथा क्लोम (पिपासास्थान) के सूखनेपर मस्तकमें बिजौरे निम्बूका केशर, शहद तथा सेंधानमक मिलाकर रखना चाहिये ॥ ९६ ॥

कफज्वरचिकित्सा ।

मातुलुङ्गशिफाविश्वब्राह्मीग्रन्थिकसम्भवम् ।
कफज्वरेऽम्बु सक्षारं पाचनं वा कणादिकम् ॥ ९७॥

बिजौरे निम्बूकी जड़, सोंठ, ब्राह्मी, पिपरामूल सब समान भाग ले क्वाथ बना जवाखार मिलाकर पिलानेसे कफज्वरका पाचन होता है अथवा पिप्पल्यादि क्वाथ यवक्षार मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ९७ ॥

पिप्पल्यादिक्वाथः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
मरिचैलाजमोदेन्दुपाठारेणुकजीरकम् ॥ ९८ ॥

भार्ङ्गीमहानिम्बफलं रोहिणी हिङ्गुसर्षपम् ।
विडङ्गातिविषे मूर्वा चेत्ययं कीर्तितो गणः ॥ ९९ ॥
पिप्पल्यादिः कफहरः प्रतिश्यायारोचकानिलान् ।
निहन्याद्दीपनो गुल्मशूलघ्नस्त्वामपाचनः ॥ १०० ॥

पीपल छोटी, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठ, काली मिर्च, इलायची बड़ी, अजमोद, इन्द्रयव, पाढी, सम्भालूके बीज, सफेद जीरा, भारङ्गी, बकायनके फल, हींग, कुटकी, सरसों, वायविडङ्ग, अतीस, मूर्वा यह पिप्पल्यादि गण कहा जाता है । यह कफ, जुखाम, अरुचि तथा वायुको नष्ट करता, अग्निको दीप्त करता तथा गुल्म व शूलको नष्ट करता और आमका पाचन करता है ॥ ९८–१०० ॥

कट्वादिक्वाथः ।

कटुकं चित्रकं निम्बं हरिद्रातिविषे वचाम् ।
कुष्ठमिन्द्रयवं मूर्वा पटोलं चापि साधितम् ॥ १०१॥
पिबेन्मरिचसंयुक्तं सक्षौद्रं श्लैष्मिके ज्वरे ।

कुटकी, चीतकी जड़, नीमकी छाल, हलदी, अतीस, वचदूधिया, कूठ, इन्द्रजव, मूर्वा, परवलके पत्ते इनका क्वाथ बनाकर काली मिर्च तथा शहद मिलाकर कफज्वरमें देना चाहिये ॥ १०१ ॥–

निम्बादिक्वाथः ।

निम्बविश्वामृतादारुशठीभूनिम्बपौष्करम् ॥ १०२ ॥
पिप्पल्यौ बृहती चेति क्वाथो हन्ति कफज्वरम् ।

नीमकी छाल, सोंठ, गुर्च, देवदारु, कपूरकचरी, चिरायता, पोहकरमूल, छोटी पीपल, बड़ी पीपल, बड़ी कटेरी इन समस्त औषधियोंका बनाया क्वाथ कफज्वरको नष्ट करता है ॥ १०२ ॥–

सिन्दुवारक्वाथः ।

सिन्दुवारदलक्वाथः सोषणः कफजे ज्वरे ॥ १०३ ॥
जङ्घयोश्च बले क्षीणे कर्णे वा पिहिते पिबेत् ॥

सम्भालूके पत्तोंका काढा काली मिर्च मिलाकर देनेसे कफज्वर, कानोंकी अवरुद्धता तथा जङ्घाओंकी निर्बलताको दूर करता है ॥ १०३ ॥–

आमलक्यादिक्वाथः ।

आमलक्यभया कृष्णा चित्रकश्चेत्ययं गणः ॥
सर्वज्वरकफातङ्कभेदी दीपनपाचनः ॥ १०४ ॥

आँवलेका छिलका, बड़ी हर्रका छिलका, छोटी पीपल, चीतकी जड़ यह आमलक्यादि गण समस्त ज्वर

[1] यह शरीरमें न पड़ने पावे इसका ध्यान रहे ।

तथा कफके रोगोंको नष्ट करता है, दस्त साफ लाता है, अग्निको दीप्त तथा आमका पाचन करता है॥१०४॥

त्रिफलादिक्वाथः ।

त्रिफलापटोलवासामृतातिक्तारोहिणीपद्मग्रन्थाः ।
मधुना श्लेष्मसमुत्थे दशमूलीवासकस्य वा क्वाथः॥१०५॥

आमला, हर्र, बहेड़ा, परवलके पत्ते, रुसाहके फूल, गुर्च, कुटकी, वच इन औषधियोंका क्वाथ अथवा दशमूल " शालिपर्णी पृश्निपर्णीबृहतीद्वयगोक्षुराः । बिल्वश्योनाककाश्मर्यपाटलागणिकारिकाः " और रुसाहकी छाल या फूलोंका क्वाथ शहदके साथ कफज्वरको शान्त करता है ॥ १०५ ॥

मुस्तादिक्वाथः ।

मुस्तं वत्सकबीजानि त्रिफला कटुरोहिणी ।
परूषकाणि च क्वाथः कफज्वरविनाशनः ॥१०६॥

नागरमोथा, इन्द्रयव, त्रिफला, कुटकी, फालसाका क्वाथ कफज्वरको शान्त करता है ॥ १०६ ॥

चातुर्भद्रावलेहिका ।

कट्फलं पौष्करं शृङ्गी कृष्णा च मधुना सह ।
कासश्वासज्वरहरः श्रेष्ठो लेहः कफान्तकृत् ॥१०७॥

कायफर, पोहकरमूल, काकड़ासिंगी, छोटी पीपल सब चीजें साफ की हुई समान भाग ले कूट कपडछान कर शहदमें मिलाकर चटनी बना लेनी चाहिये । यह अवलेह कास, श्वास, ज्वरको नष्ट करनेवाला तथा कफ नाश करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १०७ ॥

चूर्णादिमानम् ।

कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः ।
द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः ॥ १०८ ॥

"यह श्लोक पहिले भी लिखा जा चुका है ।" १ तोला चूर्ण, कल्क या गोली, २ तोला द्रव द्रव्यसे चाटना चाहिये अर्थात् जहां लेह हो वहां द्विगुण द्रव छोड़ना चाहिये, जहां पान हो वहां चतुर्गुण द्रव छोडना चाहिये ॥१०८॥

अवलेहसेवनसमयः ।

ऊर्ध्वजत्रुगरोगघ्नी सायं स्यादवलेहिका ।
अधोरोगहरी या तु सा पूर्वं भोजनान्मता ॥ १०९ ॥

जत्रुसे ऊपरके रोगों (कास, श्वास आदि) को नष्ट करनेवाला अवलेह सायङ्काल चाटना चाहिये । जो अधोगामी रोगोंको नष्ट करनेवाला हो उसे भोजनसे पहिले देना चाहिये ॥ १०९ ॥

पिप्पल्यवलेहः ।

क्षौद्रोपकुल्यासंयोगः कासश्वासज्वरापहः ।
प्लीहानं हन्ति हिक्कां च बालानां च प्रशस्यते ॥११०॥

छोटी पीपलका चूर्ण तथा शहद मिलाकर बनाया गया अवलेह कास, श्वास युक्त ज्वर, प्लीहा तथा हिक्काको नष्ट करता है और बालकोंके लिये अधिक हितकर है ॥ ११० ॥

द्वन्द्वजचिकित्सा ।

संसृष्टदोषेषु हितं संसृष्टमथ पाचनम् ।
मिले हुए दोषोंमें मिला हुआ पाचन हितकर होता है।

वातपित्तज्वरचिकित्सा ।

विश्वामृताब्दभूनिम्बैः पञ्चमूलीसमन्वितैः ।
कृतः कषायो हन्त्याशु वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ १११ ॥

सोंठ, गुर्च, नागरमोथा, चिरायता तथा लघुपञ्चमूल (शालिपर्ण्यादि) का क्वाथ शीघ्र ही वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥ १११ ॥

त्रिफलादिक्वाथः ।

त्रिफलाशाल्मलीरास्नाराजवृक्षाटरूषकैः ।
शृतमम्बु हरेत्तूर्णं वातपित्तोद्भवं ज्वरम् ॥ ११२ ॥

त्रिफला, सेमरका मुसरा, रासन, अमलतासका गूदा, रुसाहके फूल या छालका क्वाथ वातपित्तज्वरको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ११२ ॥

किरातादिक्वाथः ।

किरातिक्तममृतां द्राक्षामामलकीं शटीम् ।
निष्क्वाथ्य पित्तानिलजे क्वाथं तं सगुडं पिबेत् ॥ ११३ ॥

चिरायता, गुर्च, मुनक्का, आमला तथा कचूरका क्वाथ गुड मिलाकर पीना चाहिये ॥ ११३ ॥

निदिग्धिकादिक्वाथः ।

निदिग्धिकाबलारास्नात्रायमाणामृतायुतैः ।
मसूरविदलैः क्वाथो वातपित्तज्वरं जयेत् ॥ ११४ ॥

छोटी कटेरी, खरेटी, रासन, त्रायमाण, गुर्च तथा

---

१. यह अवलेह बालकोंके ज्वर, खांसी आदिमें बहुत लाभ करता है । बालकोंको ४ रत्तीसे १ माशातककी मात्रा देनी चाहिये तथा बलानुसार २ माशे, ३ माशे या ४माशेकी मात्रा जवान रोगियोंके लिये देनी चाहिये। यही व्यवहार है । यद्यपि मात्रा १ तोलाकी आगेके श्लोकमें कहेंगे पर वह आजकलके लिये बहुत है ।

मजरकी छालका क्वाथ वातपित्तज्वरको शान्त करता है ॥ ११४ ॥

पञ्चभद्रक्वाथः ।

गुडूची पर्पटं मुस्तं किरातं विश्वभेषजम् ।
वातपित्तज्वरे देयं पञ्चभद्रमिदं शुभम् ॥ ११५ ॥

गुर्च, पित्तपापडा, नागरमोथा, चिरायता तथा सोंठका क्वाथ पञ्चभद्र कहा जाता है । यह वातपित्तज्वरको नष्ट करता है ॥११५ ॥

मधुकादिशीतकषायः ।

मधुकं सारिवे द्राक्षा मधूकं चन्दनोत्पलम् ।
काश्मर्यं पद्मकं लोध्रं त्रिफला पद्मकेशरम् ॥ ११६ ॥
परूषकं मृणालं च न्यसेदुत्तमवारिणि ।
मधुलाजसितायुक्तं तत्पीतमुषितं निशि ॥ ११७ ॥
वातपित्तज्वरं दाहतृष्णामूर्च्छावमिभ्रमान् ।
शमयेद्रक्तपित्तं च जीमूतानिव मारुतः ॥ ११८ ॥

मौरेठी, दोनों सारिवा, मुनक्का, महुआ, लाल चन्दन, नीलोफर, गम्भार, पद्माख, पठानी लोध, आमला, हर्र, बहेड़ा, कमलका केशर, फालसा, कमलकी डण्डी सबको दूर कुचा किया चूर्ण रात्रिमें षड्गुण गरम जलमें मिला मिट्टीके बर्तनमें रख सबेरे शहद मिश्री और खील मिलाकर पीनेसे वातपित्तज्वर दाह प्यास, मूर्छा, वमन, चक्कर और रक्तपित्तको इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे वायु मेघोंके समूहको नष्ट कर देता है ॥ ११६-११८ ॥

पित्तश्लेष्मज्वरचिकित्सा (पटोलादिक्वाथः) ।

पटोलं चन्दनं मूर्वातिक्तापाठामृतागणः ।
पित्तश्लेष्मारुचिच्छर्दिज्वरकण्डूविषापहः ॥ ११९ ॥

परवलके पत्ते, लाल चन्दन, मूर्वा, कुटकी पाढ़, गुर्च यह पटोलादि क्वाथ पित्त, कफ, अरुचि, वमन, ज्वर, खुजली और विषको नष्ट करता है ॥ ११९ ॥

गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूचीनिम्बधान्याकं पद्मकं चन्दनानि च ।
एष सर्वज्वरान्हन्ति गुडूच्यादिस्तु दीपनः ॥
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ १२० ॥

गुर्च, नीमकी छाल, धनियां, पद्माख, लाल चन्दन, यह गुडूच्यादि क्वाथ समस्त ज्वरोंको नष्ट कर अग्निको दीप्त करता है । मिचलाई, अरुचि, वमन, प्यास तथा दाहको नष्ट करता है ॥ १२० ॥

किरातपाठादि ।

किरातं नागरं मुस्तं गुडूचीं च कफाधिके ।
पाठोदीच्यमृणालैस्तु सह पित्ताधिके पिबेत् ॥ १२१ ॥

चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, गुर्चका क्वाथ बनाकर पित्तकफज्वरमें यदि कफकी अधिकता हो तो देना चाहिये । यदि पित्तकी अधिकता हो तो इन्हीं ओषधियोंके साथ पाढ़ सुगन्धवाला तथा कमलके फूल मिला क्वाथ बनाकर देना चाहिये ॥ १२१ ॥

कण्टकार्यादिक्वाथः ।

कण्टकार्यमृताभार्ङ्गीनागरेन्द्रयवासकम् ।
भूनिम्बं चन्दनं मुस्तं पटोलं कटुरोहिणी ॥ १२२ ॥
कषायं पाययेदेतत्पित्तश्लेष्मज्वरापहम् ।
दाहतृष्णारुचिच्छर्दिकासहृत्पार्श्वशूलनुत् ॥ १२३ ॥

छोटी कटेरी, गुर्च, भाङ्गीं, सोंठ, इन्द्रयव, यवासा, चिरायता, लाल चन्दन, नागरमोथा, परवलके पत्ते, कुटकी इन सबका क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये । यह पित्तकफज्वर, जलन, प्यास, अरुचि, वमन, कास तथा पशुलियोंके दर्दको नष्ट करता है ॥१२२॥१२३॥

वासारसः ।

सपत्रपुष्पवासाया रसः क्षौद्रसितायुतः ।
कफपित्तज्वरं हन्ति सास्रपित्तं सकामलम् ॥ १२४ ॥

रूसाके[1] पत्ते तथा फूलोंसे निकाला गया स्वरस २ तोला, शहद तथा मिश्री दोनों मिलाकर ६ मासे मिलाकर पीनेसे कफपित्तज्वर, रक्तपित्त तथा कामलाको नष्ट करता है ॥ १२४ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलं पिचुमर्दश्च त्रिफला मधुकं बला ।
साधितोऽयं कषायः स्यात्पित्तश्लेष्मोद्भवे ज्वरे ॥१२५॥

परवलके पत्ते, नीमकी छाल आमला, हर्र, बहेड़ा, मौरेठी, खरेटी इनका क्वाथ पित्तकफज्वरको नष्ट करता है ॥ १२५ ॥

अमृताष्टकक्वाथः ।

गुडूचीन्द्रयवारिष्टपटोलं कटुरोहिणी ।
नागरं चन्दनं मुस्तं पिप्पलीचूर्णसंयुतम् ॥ १२६ ॥

---

१ वासाके पत्तों व फूलोंको जलसे धो साफ कपड़ेमें पोंछकर खूब महीन पीसना चाहिये तभी स्वरस निकलेगा । पिस जानेपर साफ कपड़ेसे छान लेना चाहिये ।

अमृताष्टक इत्येष पित्तश्लेष्मज्वरापहः ।
हृल्लासारोचकच्छर्दितृष्णादाहनिवारणः ॥ १२७ ॥

गुर्च, इन्द्रयव, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, कुटकी, सोंठ, लाल चन्दन, नागरमोथा, इनका क्वाथ बना छोटी पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, मिचलाई, अरुचि, वमन, प्यास तथा दाह नष्ट होता है। इसे अमृताष्टक कहते हैं ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

अपरः पटोलादिः ।

पटोलयवधान्याकं मुद्गामलकचन्दनम् ।
पैत्तिके श्लेष्मपित्तोत्थे ज्वरे तृट्छर्दिदाहनुत् ॥ १२८ ॥

परवलकी पत्ती, यव, धनिया, मूंग, आमला, लाल चन्दन इन सबका क्वाथ पित्तज्वर तथा कफपित्तज्वरमें देना चाहिये। यह प्यास, वमन तथा दाहको नष्ट करता है ॥ १२८ ॥

पञ्चतिक्तकषायः ।

क्षुद्रामृताभ्यां सह नागरेण सपौष्करं चैव किराततिक्तम् ।
पिबेत्कषायं त्विह पञ्चतिक्तं ज्वरं निहन्त्यष्टविधंसमग्रम् ॥१२९

छोटी कटेरी, गुर्च, सोंठ, पोहकरमूल व चिरायताका बनाया गया क्वाथ समस्त ज्वरोंको नष्ट करता है। इसे पञ्चतिक्त कषाय कहते हैं ॥ १२९ ॥

कटुकीचूर्णम् ।

सशर्करामक्षमात्रां कटुकामुष्णवारिणा ।
पीत्वा ज्वरं जयेज्जन्तुः कफपित्तसमुद्भवम् ॥१३०॥

एक तोले[१] कुटकीका चूर्ण बराबर मिश्री मिलाकर गरम जलसे पीनेसे कफपित्तज्वर शान्त होता है ॥१३०॥

धान्यादिः ।

दीपनं कफविच्छेदि वातपित्तानुलोमनम् ।
ज्वरघ्नं पाचनं भेदि शृतं धान्यपटोलयोः ॥१३१ ॥

धनिया तथा परवलकी पत्तीका क्वाथ कफनाशक, अग्निदीपक, पाचन, दस्तावर, ज्वरनाशक तथा वातपित्तका अनुलोमन करता है ॥ १३१ ॥

वातश्लेष्मज्वरचिकित्सा ।

कफवातज्वरे स्वेदान्कारयेद्रूक्षनिर्मितान् ।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा नीत्वा पावकमाशयम् ।
हत्वा वातकफस्तम्भं स्वेदो ज्वरमपोहति ॥१३२ ॥

कफवातज्वरमें रूक्ष पदार्थोंसे पसीना निकालना चाहिये। पसीना निकालना छिद्रोंको मुलायम कर अग्निको अपने स्थानमें ला वातकफकी जकड़ाहटको दूर कर ज्वरको नष्ट करता है ॥ १३२ ॥

वालुकास्वेदः ।

खर्परभ्रष्टपटस्थितकाञ्जिकासिक्तो हि वालुकास्वेदः ।
शमयति वातकफामयमस्तकशूलाङ्गभङ्गादीन् ॥ १३३॥

खपरेमें गरम की हुई बालूको कपड़ेमें रख काञ्जीमें डुबोकर सेंक करनेसे वातकफजन्य रोग, मस्तकशूल तथा शरीरकी पीड़ा आदि रोग नष्ट होते हैं ॥ १३३ ॥

मुस्तादिक्वाथः ।

मुस्तनागरभूनिम्बं त्रयमेतत्त्रिकार्षिकम् ।
कफवातामशमनं पाचनं ज्वरनाशनम् ॥ १३४ ॥

नागरमोथा, सोंठ, चिरायता तीनों एक एक तोला ले क्वाथ बनाकर पिलानेसे आमको पचाकर, कफवातज्वरको शान्त करता है ॥ १३४ ॥

पञ्चकोलम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरम् ।
दीपनीयः स्मृतो वर्गः कफानिलगदापहः ॥१३५ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठ यह पञ्चकोल कफवातजन्य रोगोंको नष्ट करनेवाला तथा अग्निको दीप्त करनेवाला है ॥ १३५ ॥

पिप्पलीक्वाथः ।

पिप्पलीभिः शृतं तोयमनभिष्यन्दि दीपनम् ।
वातश्लेष्मविकारघ्नं प्लीहज्वरविनाशनम् ॥ १३६ ॥

छोटीपीपलका क्वाथ छिद्रोंको साफ कर वातकफजन्यरोग तथा प्लीहा और ज्वरको नष्ट करता है ॥१३६॥

आरग्वधादिक्वाथः ।

आरग्वधग्रन्थिकमुस्ततिक्ता-
हरीतकीभिः क्वथितः कषायः ।
सामे सशूले कफवातयुक्ते
ज्वरे हितो दीपनपाचनश्च ॥ १३७ ॥

अमलतासका गूदा, पिपरामूल, नागरमोथा, कुटकी तथा बड़ी हर्रके छिलकेसे बनाया गया क्वाथ आम तथा शूलयुक्त कफवातज्वरको नष्ट करनेवाला, दीपन तथा पाचन है ॥ १३७ ॥

क्षुद्रादिक्वाथः ।

क्षुद्रामृतानागरपुष्कराह्वैः
कृतः कषायः कफमारुतोत्थे ।
सश्वासकासारुचिपार्श्वरुक्के
ज्वरे त्रिदोषप्रभवे च शस्यते ॥ १३८ ॥

छोटी कटेरी, गुर्च, सोंठ तथा पोहकरमूलसे बनाया

[१] दोनों मिलकर एक तोला होना चाहिये ।

गया क्वाथ श्वास, कास, अरुचि, पसुलियोंकी पीड़ा सहित कफवातजन्य ज्वरमें तथा त्रिदोषज्वरमें भी अधिक लाभ करता है ॥ १३८ ॥

दशमूलक्वाथः ।

दशमूलीरसः पेयः कणायुक्तः कफानिले ।
अविपाकेऽतिनिद्रायां पार्श्वरुक्श्वासकासके ॥ १३९ ॥

दशमूलका क्वाथ पीपलका चूर्ण मिलाकर पार्श्वशूल, श्वास, कास तथा आमयुक्त कफवातज्वरमें देना चाहिये ॥ १३९ ॥

मुस्तादिक्वाथः ।

मुस्तं पर्पटकं शुण्ठी गुडूची सदुरालभा ।
कफवातारुचिच्छर्दिदाहशोषज्वरापहः ॥ १४० ॥

नागरमोथा, पित्तपापड़ा, सोंठ, गुर्च और यवासाका क्वाथ कफवातजन्य अरुचि, वमन, दाह, मुखका सूखना और ज्वरको नष्ट करता है ॥ १४० ॥

दार्व्यादिक्वाथः ।

दारुपर्पटभार्ग्यब्दवचाधान्यककट्फलैः ।
साभयाविश्वभूतीकैः ('पूतीकैः भूतिक्तैः')क्वाथो हिंगुमधूत्कटः ॥१४१॥ कफवातज्वरे पीतो हिक्काश्वासगलग्रहान् ।
कासशोषप्रसेकांश्च हन्यात्तरुमिवाशनिः ॥ १४२ ॥

देवदारु, पित्तपापड़ा, भारङ्गी, नागरमोथा, वच, धनियां, कायफर, बड़ी हर्र, सोंठ, अजवाइनका क्वाथ, हींग तथा शहद मिलाकर देना चाहिये । यह क्वाथ कफवातज्वर, हिक्का, श्वास, गलेकी जकड़ाहट, कास, मुखका सूखना तथा मिचलाहटको वृक्षको वज्रके समान नष्ट करता है ॥ १४१ ॥ १४२ ॥

हिंग्वादिमानम् ।

मात्राक्षौद्रघृतादीनां स्नेहक्वाथेषु चूर्णवत् ।
माषिकं हिङ्गुसिन्धूत्थं जरणाद्यास्तु शाणिकाः ॥१४३॥

स्नेह तथा क्वाथमें घी तथा शहदकी मात्रा चूर्णके समान अर्थात् स्नेह तथा क्वाथद्रव्यसे चतुर्थांश छोड़ना चाहिये । हींग तथा सेंधानमक १ माशा और जीरा आदिक ३ माशे छोड़ना चाहिये ॥ १४३ ॥

मुखवैरस्यनाशनम् ।

मातुलुङ्गफलकेशरो धृतः
सिन्धुजन्ममरिचान्वितो मुखे ।
हन्ति वातकफरोगमास्यगं
शोषमाशु जडतामरोचकम् ॥ १४४ ॥

बिजौरे निम्बूका गूदा सेंधानमक तथा काली मिर्चके साथ मुखमें रखनेसे वातकफजन्य मुखरोग, मुखका सूखना, जड़ता तथा अरुचि तत्काल नष्ट हो जाती है ॥ १४४ ॥

सन्निपातज्वरचिकित्सा ।

लंघनं वालुकास्वेदो नस्यं निष्ठीवनं तथा ।
अवलेहोऽञ्जनं चैव प्राक् प्रयोज्यं त्रिदोषजे ॥ १४५ ॥
सन्निपातज्वरे पूर्वं कुर्यादामकफापहम् ।
पश्चाच्छ्लेष्मणि संक्षीणे शमयेत्पित्तमारुतौ ॥ १४६ ॥

सन्निपातज्वरमें पहिले लंघन, वालुकास्वेद, नस्य, निष्ठीवन, अवलेह तथा अञ्जनका प्रयोग करना चाहिये। तथा पहिले आम और कफ को शान्त करनेका उपाय करना चाहिये । तदनन्तर पित्त और वायुको शान्त करना चाहिये ॥ १४५–१४६ ॥

लंघनम् ।

त्रिरात्रं पञ्चरात्रं वा दशरात्रमथापि वा ।
लंघनं सन्निपातेषु कुर्यादारोग्यदर्शनात् ॥१४७ ॥

सन्निपात ज्वरमें तीन, पांच अथवा दश दिन अथवा जबतक आरोग्य न हो तबतक लंघन कराना चाहिये ॥ १४७ ॥

लंघनसहिष्णुता ।

दोषाणामेव सा शक्तिर्लंघने या सहिष्णुता ।
नहि दोषक्षये कश्चित्सहते लंघनादिकम् ॥ १४८ ॥

दोषोंकी ही शक्तिसे मनुष्य लंघन सहन कर सकता है । दोषोंके नष्ट हो जानेपर कोई लंघन नहीं सह सकता ॥ १४८ ॥

निष्ठीवनम् ।

आर्द्रकस्वरसोपेतं सैन्धवं सकटुत्रिकम् ।
आकण्ठं धारयेदास्ये निष्ठीवेच्च पुनः पुनः ॥ १४९ ॥

अदरखका स्वरस, सेंधानमक, सोंठ, मिर्च व पीपल मिलाकर गलेतक मुखमें बार बार रखना चाहिये और थूकना चाहिये ॥ १४९ ॥

---

१ किसी पुस्तकमें 'भूतीक' के स्थानमें 'पूतीक' तथा किसीमें 'भूतिक्त' पाठ है पर यह पाचनक्वाथ है, हिंगु भी पड़ती है । अतः साहचर्यसे अजवाइन ही छोड़ना उचित प्रतीत होता है, पूतीक–पूतिकञ्जा । भूतिक्त–चिरायता । २ यह मात्रा वर्तमानसमयमें अधिक होगी । अत वैद्योंको इसका निर्णय स्वयं करना–चाहिये । मेरे विचारसे भुनी हींग २ रत्ती और नमक १ माशा डालना ठीक होगा ।

तेनास्य हृदयाच्छ्लेष्मा मन्यापार्श्वशिरोगलात् ।
लीनोऽप्याकृष्यते शुष्को लाघवं चास्य जायते ॥१५०॥
पर्वभेदोऽङ्गमर्दश्च मूर्च्छाकासगलामयाः ।
मुखाक्षिगौरवं जाड्यमुत्क्लेशश्चोपशाम्यति ॥ १५१ ॥
सकृद्द्वित्रिचतुः कुर्याद्दृष्ट्वा दोषबलाबलम् ।
एतद्धि परमं प्राहुर्भेषजं सन्निपातिनाम् ॥ १५२ ॥

निष्ठीवनसे हृदय, मन्या (गलेके बगलकी शिरायें) पसुलिया, शिर तथा गलेमें सूखा तथा रुका हुआ कफ खिंच आता है । तथा यह अङ्ग हलके हो जाते हैं और सन्धियोंका दर्द, शरीरका दर्द मूर्च्छा, कास तथा गलेके रोग, मुख तथा नेत्रोंका भारीपन, जडता तथा मिचलाई शान्त होती है । दोषोंका बलाबल देखकर एक, दो, तीन या चार बार तक निष्ठीवन कराना चाहिये । सन्निपात-वालोंके लिये यह उत्तम प्रयोग है ॥ १५०–१५२ ॥

नस्यम् ।

मातुलुङ्गार्द्रकरसं कोष्णं त्रिलवणान्वितम् ।
अन्यद्वा सिद्धिविहितं तीक्ष्णं नस्यं प्रयोजयेत् ॥१५३ ॥

बिजौरे निम्बूका रस, अदरखका रस कुछ गरम कर सैंधव, सामुद्र, सौंचर्चल नमक मिलाकर नस्य देना चाहिये अथवा सिद्धिस्थानमें कहे गये अन्य तीक्ष्ण नस्योंका प्रयोग करना चाहिये ॥ १५३ ॥

तेन प्रभिद्यते श्लेष्मा प्रभिन्नश्च प्रसिच्यते ।
शिरोहृदयकण्ठास्यपार्श्वरुक् चोपशाम्यति ॥ १५४ ॥

नस्यसे कफ फट-फट कर गिर जाता है तथा शिर, हृदय, कण्ठ, मुख और पसलियोंकी पीडा शान्त होती है ॥ १५४ ॥

संज्ञाकारकं नस्यम् ।

मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः ।
श्लक्ष्णं पिष्ट्वाम्भसा नस्यं कुर्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥१५५॥
सैन्धवं श्वेतमरिचं सर्षपं कुष्ठमेव च ।
बस्तमूत्रेण पिष्टानि नस्यं तन्द्रानिवारणम् ॥ १५६ ॥

महुएके भीतरका कूट, सेंधानमक, वच, काली-मिर्च, छोटी पीपल, समान भाग ले महीन पीस जलमें मिलाकर नस्य देनेसे बेहोशी दूर होती है । इसी प्रकार सेंधानमक, सहिजनके बीज, सरसों, कूठ इन्हे बकरेके मूत्रके साथ पीसकर नस्य देनेसे बेहोशी दूर होती है ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

अञ्जनम् ।

शिरीषबीजगोमूत्रकृष्णामरिचसैन्धवैः ।
अञ्जनं स्यात्प्रबोधाय सरसोनशिलावचैः ॥ १५७ ॥

सिरसाके बीज, गोमूत्र, छोटी पीपल, काली मिर्च, सेंधानमक, लहसुन, शुद्ध मनशिल तथा वचको महीन पीस कर नेत्रोंमें आञ्जनेसे बेहोशी व तन्द्रा दूर होती है १५७

अष्टांगावलेहिका ।

कट्फलं पौष्करं शृंगी व्योषं यासश्च कारवी ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं चैतन्मधुना सह लेहयेत् ॥ १५८ ॥
एषावलेहिका हन्ति सन्निपातं सुदारुणम् ।
हिक्कां श्वासं च कासं च कण्ठरोगं नियच्छति ॥ १५९ ॥

कायफल, पोहकरमूल, काकड़ाशिंगी, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, यवासा, काला जीरा सब समान भाग ले चूर्ण कपडछान कर शहदके साथ चटाना चाहिये । यह चटनी कठिन सन्निपातज्वर, हिक्का, श्वास, कास तथा इतर कण्ठरोगोंको नष्ट करती है ॥१५८॥१५९॥

मधुव्यवस्था ।

ऊर्ध्वगश्लेष्महरणे उष्णे स्वेदादिकर्मणि ।
विरोध्युष्णे मधु त्यक्त्वा कार्यैःपार्द्रकजे रसे ॥१६० ॥

शहद गरम पदार्थोंके साथ गरम किया हुआ तथा गरम शरीरमें भी निषिद्ध होता है । और सन्निपातज्व-रमें ऊर्ध्वगत श्लेष्मा नष्ट करनेके लिये उष्ण स्वेदादि कर्म किये जाते हैं अतः यह चटनी शहदके साथ न बना कर अदरखके रससे बनानी चाहिये॥ १६०॥

---

१ सन्निपातज्वरचिकित्सामें अनेक क्रियायें बताय गयी हैं अतः समस्त क्रिया एक साथ करनी चाहिये । या एक एक यह शंका उत्पन्न हुई, इसीको स्पष्ट करनेके लिये सुश्रुतने लिखा है । " क्रियायास्तु गुणालाभे क्रियामन्यां प्रयोजयेत् । पूर्वस्यां शान्तवेगायां न क्रियासङ्करो हितः ॥ इससे एक कालमें अनेक क्रियायें निषिद्ध ही सिद्ध हुई । पर उक्त सुश्रुतोक्त व्यवस्था अन्तःपरिमार्जन-चिकित्सा अथवा जहां एक क्रियासे दूसरी क्रियामें विरोध पडता हो वहींके लिये है । क्योंकि अन्तः-परिमार्जक अनेक प्रयोगोंसे अग्निमान्द्य या कोष्ठभेदादि उत्पन्न हो जायँगे अथवा विरुद्ध गुणवाली औषधियोंमें परस्पर विरोध उत्पन्न हो जानेपर एकका भी गुण नहीं होगा । पर यहां सब प्रयोग अन्तः-परिमार्जक या परस्पर विरोधी नहीं है अतः कोई विरोध नहीं पडता । इसी सिद्धान्तका समर्थन श्रीयुत वृन्दजीने भी किया है । यथा—"क्रियाभिस्तुल्यरू-पाभिः क्रियासाकर्यमिष्यते । भिन्नरूपतया यास्तु ताः कुर्वन्ति न दूषणम् ॥ और अञ्जन नस्य, अवलेहआदि बलवती व्यापत्तियोंके दूर करनेके लिये किये जाते हैं अतः कोई विरोध न समझना चाहिये ॥

पञ्चमुष्टिकः।

यवकोलकुलत्थानां मुद्गमूलकखण्डयोः ।
एकैकमुष्टिमाहृत्य पचेदष्टगुणे जले ॥ १६१ ॥
पञ्चमुष्टिक इत्येष वातपित्तकफापहः ।
शस्यते गुल्मशूले च श्वासे कासे क्षये ज्वरे ॥ १६२ ॥

यव, बेर, कुलथी, मूग, मूलीके टुकडे एक एक मुष्टि (अन्तर्नख मुष्टि या ४ तोले) प्रत्येक द्रव्य लेकर अठगुने जलमे पकाना चाहिये। चतुर्थांशशेष रहनेपर उतार छानकर कई बारमे थोडा थोडा पिलाना चाहिये। यह वात, पित्त, कफ, गुल्म, शूल, श्वास, कास, धातुक्षय या यक्ष्मा तथा ज्वरको शान्त करता है ॥ १६१ ॥ १६२ ॥

पञ्चमूल्यादिक्वाथः।

पञ्चमूली किराताद्विर्गणो योज्यस्त्रिदोषजे।
पित्तोत्कटे च मधुना कणया च कफोत्कटे ॥ १६३ ॥

लघुपञ्चमूल तथा किराताद गणकी औषधियों चिरायता, सोंठ, नागरमोथा, गुर्चको पित्तप्रधान त्रिदोषज्वरमे शहदके साथ तथा कफप्रधानमे छोटी पीपलके चूर्णके साथ देना चाहिये ॥ १६३ ॥

दशमूलम्।

बिल्वश्योनाककाश्मर्यपाटलागणिकारिकाः ।
दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं महत् ॥ १६४ ॥
शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
वातपित्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥ १६५ ॥
उभयं दशमूलं तु सन्निपातज्वरापहम् ।
कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं कण्ठहृद्ग्रहनाशनम् ॥ १६६ ॥

बेलकी जडकी छाल, सोनापाठा, खम्भार, पाढल, अरणी इसे महत्पञ्चमूल कहते हैं। यह अग्निको दीप्त करनेवाला तथा कफवायुको नष्ट करनेवाला है। सरिवन, पिठिवन, छोटी कटेरी, बडी कटेरी तथा गोखुरू यह लघुपञ्चमूल वातपित्तको नष्ट करनेवाला तथा वाजीकर है। दोनों मिलकर दशमूल कहा जाता है यह खांसी, श्वास, तन्द्रा तथा पार्श्वशूलमे विशेष लाभ करता है। सन्निपातज्वरको नष्ट करता है। छोटी पीपलके चूर्णके साथ कण्ठ तथा हृदयकी जकडाहटको नष्ट करता है॥१६४-१६६॥

१ किसी किसीका मत है कि उपरोक्त द्रव्य सब मिलकर ४तो० लेना चाहिये पर यह आहार द्रव्य हैं अतः प्रत्येक ही ४ तो० लेना उचित है इसी योगमें धनिया, सोंठ मिलाकर इसे सप्तमुष्टिक भी कहते हैं।

चतुर्दशांगकषायः।

त्रिदोषे वातकफाधिके वा
त्रिदोषजे वा दशमूलमिश्रः।
किराततिक्तादिगणः प्रयोज्यः
शुद्ध्यर्थिने वा त्रिवृतासमेतः ॥ १६७ ॥

वातकफप्रधान जीर्णज्वरमें अथवा वातकफप्रधान सन्निपातज्वरमें दशमूलके सहित किराततिक्तादिगण "किराततिक्त मुस्त गुर्चा नागर दारु" इन औषधियोंका क्वाथ देना चाहिये। यदि विरेचनद्वारा शुद्धि कराना आवश्यक हो तो निसोथका चूर्ण मिलाकर देना चाहिये ॥ १६७ ॥

अष्टादशांगक्वाथः।

दशमूलीशटीशृङ्गीपौष्करं सदुरालभम् ।
भार्ङ्गीकुटजबीजं च पटोलं कटुरोहिणी ॥ १६८ ॥
अष्टादशाङ्ग इत्येष सन्निपातज्वरापहः ।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासहिक्कावमीहरः ॥ १६९ ॥

दशमूल, कचूर, काकडासिंगी, पोहकरमूल, यवासा, भारंगी, इन्द्रयव, परवलके पत्ते, कुटकी इसे अष्टादशांग क्वाथ कहते हैं। यह सन्निपातज्वर, खांसी, हृदयकी जकडाहट, पसुलियोंका दर्द, श्वास हिक्का तथा वमनको नष्ट करता है ॥ १६८ ॥ १६९ ॥

अपरोऽष्टादशांगः।

भूनिम्बदारुदशमूलमहौषधाब्द-
तिक्तेन्द्रबीजधनिकेभकणाकषायः ।
तन्द्रीप्रलापकसनारुचिदाहमोह-
श्वासादियुक्तमखिलं ज्वरमाशु हन्ति ॥ १७० ॥

चिरायता, देवदारु, दशमूल, सोंठ, नागरमोथा, कुटकी, इन्द्रयव, धनिया, गजपीपलका क्वाथ, तन्द्रा, प्रलाप, कास, अरुचि, दाह, मोह तथा श्वासादियुक्त समस्त ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ १७० ॥

मुस्तादिक्वाथः।

मुस्तपर्पटकोशीरदेवदारुमहौषधम् ।
त्रिफलाधन्वयासश्च नीली कम्पिल्लकंत्रिवृत् ॥१७१॥
किराततिक्तकं पाठा बला कटुकरोहिणी ।
मधुकं पिप्पलीमूलं मुस्ताद्यो गण उच्यते ॥१७२॥
अष्टादशाङ्गमुदितमेतद्वा सन्निपातनुत् ।
पित्तोत्तरे सन्निपाते हितं चोक्तं मनीषिभिः ।
मन्यास्तम्भ उरोघाते उरःपार्श्वशिरोग्रहे ॥ १७३ ॥

नागरमोथा, पित्तपापडा, खस, देवदारु, सोंठ, त्रिफला, यवासा, नील कबीला, निसोथ, चिरायता, पाठा,

खरेंटी (बरियारीबीज) कुटकी, मँरेटी तथा पिपरामूल यह मुस्तादिगण अथवा अष्टादशांग क्वाथ कहा जाता है। यह पित्तप्रधान सन्निपातमें विशेष हितकर है। मन्यास्तम्भ, छातीके दर्द तथा छाती, पसली व शिरकी जकड़ाहटको नष्ट करता है ॥ १७१-१७३ ॥

शट्यादिक्वाथः।

शटी पुष्करमूलं च व्याघ्री शृंगी दुरालभा।
गुडूची नागरं पाठा किरातं कटुरोहिणी ॥ १७४ ॥
एष शट्यादिको वर्गः सन्निपातज्वरापहः।
कासहृद्ग्रहपार्श्वार्तिश्वासे तन्द्र्या च शस्यते ॥१७५॥

कचूर, पोहकरमूल, छोटी कटेरी, काकड़ासिंगी, यवासा, गुर्च, सोंठ, पाढ चिरायता, कुटकी यह शट्यादिक्वाथ सन्निपातज्वर, कास, हृदयकी जकड़ाहट, पार्श्वशूल, तथा तन्द्राको नष्ट करता है ॥ १७४ ॥ १७५ ॥

बृहत्यादिक्वाथः।

बृहत्यौ पुष्करं भार्ङ्गी शटी शृंगी दुरालभा।
वत्सकस्य च बीजानि पटोलं कटुरोहिणी ॥ १७६ ॥
बृहत्यादिर्गणः प्रोक्तः सन्निपातज्वरापहः।
कासादिषु च सर्वेषु देयः सोपद्रवेषु च ॥ १७७ ॥

दोनों कटेरी, पुष्करमूल, भारंगी, कचूर, काकड़ासिंही, यवासा, इन्द्रयव, परवलके पत्ते, कुटकी यह बृहत्यादिक्वाथ सन्निपातज्वर तथा उपद्रवसहित समस्त कासोंको नष्ट करता है ॥ १७६ ॥ १७७ ॥

भार्ङ्ग्यादिक्वाथः।

भार्ङ्गीं पुष्करमूलं च रास्नां बिल्वं यवानिकाम्।
नागरं दशमूलं च पिप्पलीं चाप्सु साधयेत् ॥ १७८ ॥
सन्निपातज्वरे देयं हृत्पार्श्वानाहशूलिनाम्।
कासश्वासाग्निमन्दत्वं तन्द्रीं च विनियच्छति ॥ १७९ ॥

भारङ्गी, पोहकरमूल, रासन, बेलकी छाल, अजवायन, सोंठ, दशमूल तथा छोटी पीपलका क्वाथ सन्निपातज्वर, हृदय तथा पसलियोंके दर्द, अफारा, कास, श्वास, अग्निमंदता तथा तन्द्राको नष्ट करता है ॥१७८॥१७९॥

द्विपञ्चमूल्यादिक्वाथः।

द्विपञ्चमूलीपड्ग्रन्थाविश्वगृध्रनखीद्वयात्।
कफवातहरं क्वाथं सन्निपातहरं परं ॥ १८० ॥

दशमूल, वच, सोंठ, नख, नखीसे बनाया गया क्वाथ कफ, वात तथा सन्निपातको नष्ट करता है ॥ १८० ॥

अभिन्यासचिकित्सा (कारव्यादिकषायः।)

कारवीपुष्करैरण्डत्रायन्तीनागरामृता।
दशमूलीशटीश्रृंगीयासभार्ङ्गीपुनर्नवा ॥ १८१ ॥
तुल्या मूत्रेण निष्क्वाथ्य पीता स्रोतोविशोधना।
अभिन्यासं ज्वरं घोरमाशु घ्नन्ति समुद्धतम् ॥ १८२ ॥

काला जीरा, पोहकरमूल, एरण्डकी छाल, त्रायमाण, सोंठ, गुर्च, दशमूल, कचूर, काकड़ासिंही, यवासा, भारङ्गी, पुनर्नवा सब समान भाग ले गोमूत्रमें क्वाथ बनाकर पिलानेसे छिद्रोंको शुद्ध कर बढे हुए घोर अभिन्यासज्वरको शान्त करता है ॥ १८१ ॥ १८२ ॥

मातुलुङ्गादिक्वाथः।

मातुलुङ्गाश्मभिद्बिल्वव्याघ्रीपाठोरुबूकजः।
क्वाथो लवणमूत्राढ्योऽभिन्यासानाहशूलनुत् ॥ १८३॥

बिजौरे निंबूकी जड़,पाषाणभेद, बेलकी छाल, छोटी कटेरी, पाढ़ी, एरण्डकी छालका क्वाथ गोमूत्र तथा सेंधानमक मिलाकर पीनेसे अभिन्यासज्वर, अफारा तथा दर्दको नष्ट करता है ॥ १८३ ॥

अभिन्यासलक्षणम्।

निद्रोपेतमभिन्यासं क्षीणं विद्याद्धतौजसम्।

जिस सन्निपातज्वरमें निद्रा अधिक हो रोगी क्षीण हो उसे हतौजस या अभिन्यास कहते हैं। जैसा कि भगवान् सुश्रुतने लिखा है—" अभिन्यासं तु त माहुर्हतौजसमथापरे। सन्निपातज्वरं कृच्छ्रमसाध्यमपरे जगुः।

कण्ठरोगादिचिकित्सा।

कण्ठरोधकफश्वासहिक्कासन्यासपीडितः।
मातुलुङ्गार्द्रकरसं दशमूलाम्भसा पिबेत् ॥ १८४ ॥

कण्ठावरोध, कफ, श्वास, हिक्का तथा अभिन्यास ज्वरसे पीडित मनुष्यको दशमूलके काढ़ेके साथ बिजौरे निंबू तथा अदरखका रस पिलाना चाहिये ॥ १८४ ॥

व्योषादिक्वाथः।

व्योषाब्दत्रिफलातिक्तापटोलारिष्टवासकैः।
सभूनिम्बामृतायासैस्त्रिदोषज्वरनुज्जलम् ॥ १८५ ॥

सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, नागरमोथा, त्रिफला, कुटकी, परवलकी पत्ती, नीमकी छाल, रुसाहके फूल या

१"नखी पञ्चविधा ज्ञेया गधार्थं गधतत्परैः। काचिद्बदरपत्राभा तथोत्पलदला मता ॥ काचिदश्वखुराकारा—गजकर्णसमाऽपरा। वराहकर्णसकाशा पञ्चमी परिकीर्तिता ॥" इस भांति पांच प्रकारके नख होते हैं। इसमेंसे पूर्वके दो बदरपत्र तथा उत्पलपत्रका प्रयोग करना चाहिये। अथवा रक्त, श्वेतपुष्पभेदसे लेना चाहिये।

छाल, चिरायता, गुर्च, तथा यवासा इनसे बनाया हुआ क्वाथ त्रिदोषज्वरको नष्ट करता है ॥ १८५ ॥

त्रिवृतादिक्वाथः ।

त्रिवृद्विशालात्रिफलाकटुकारग्वधे कृत ।
सक्षारो भेदन क्वाथ पेय. सर्वज्वरापह ॥ १८६ ॥

निसोथ, इन्द्रायनकी जड, त्रिफला, कुटकी, अमलतासके गूदेसे बनाया गया क्वाथ जवाखार मिलाकर पिलानेसे समस्त ज्वरोंको नष्ट करता है ॥ १८६ ॥

स्वेदबाहुल्यचिकित्सा ।

स्वेदोद्गमे ज्वरे देयश्चूर्णो भृष्टकुलत्थज ॥ १८७ ॥

पसीनेके अधिक आनेपर कुलथी भून, महीन चूर्ण कर उर्राना चाहिये ॥ १८७ ॥

जिह्वादोषचिकित्सा ।

वर्षाजिह्वा जटा सिन्धुत्र्यूषणे साम्लवेतसे ।
उच्छुष्का स्फुटिता जिह्वा द्राक्षया मधुपिष्टया॥१८८॥
लेपयेत्सघृत चास्यं सन्निपातात्मके ज्वरे ।

जड, जिह्वाको सेंधानमक, त्रिकटु (सोंठ, मिर्च, पीपल) तथा अम्लवेतके चूर्णसे घिसना चाहिये । यदि जिह्वा रूक्ष तथा फट गयी हो तो मुखमें घी लगाकर पिसी हुई मुनक्का शहदमें मिलाकर लगाना चाहिये१८८

निद्रानाशचिकित्सा ।

काकजङ्घाजटा निद्रा जनयेच्छिरसि स्थिता ॥ १८९ ॥

काकजंघाकी जड महीन पीस शिरमें लेप करनेसे निद्राको उत्पन्न करती है ॥ १८९ ॥

सन्निपाते विशेषव्यवस्था ।

सन्निपाते प्रकम्पन्त प्रलपन्तं न बृंहयेत ॥
तृष्णादाहाभिभूतेऽपि न दद्याच्छीतल जलम् ॥ १९० ॥

सन्निपातमें कम्पनेवाले तथा प्रलाप करनेवालेकी भी बृंहण चिकित्सा न करनी चाहिये । और प्यास तथा दाहमें व्याकुल होनेपर भी ठण्डा जल न देना चाहिये१९०

कर्णमूललक्षणम् ।

सन्निपातज्वरस्यान्ते कर्णमूले सुदारुण ।
शोथ सञ्जायते तेन कश्चिदेव प्रमुच्यते ॥ १९१ ॥

सन्निपातज्वरके अन्तमें कानके नीचे कठिन सूजन हो जाती है, उससे कोई ही बचता है ॥ १९१ ॥

तच्चिकित्सा ।

रक्तावसेचन पूर्वं सर्पिष्पानैश्च त जयेत ।
प्रदेहे कफपित्तघ्नैर्वमनं कवलग्रहै ॥ १९२ ॥

उसमें पहिले घृत पिलाकर रक्त निकलवाना (जोंक या शिराव्यध द्वारा) चाहिये । तथा कफपित्तनाशक लेप व कवलग्रह अथवा वमन कराकर कर्णमूल शान्त करना चाहिये ॥ १९२ ॥

गैरिकादिलेपः ।

गैरिक पांशुज शुण्ठी वचाकटुककाञ्जिकै ।
कर्णशोथहरो लेप सन्निपातज्वरे भृशम् ॥ १९३ ॥

गेरू, खारी नमक सोंठ, वच कुटकी और कुटकीको महीन पीस काञ्जीके साथ सन्निपातज्वरमें कर्णमूलमें लेप करना चाहिये ॥ १९३ ॥

कुलत्थादिलेपः ।

कुलत्थकट्फले शुण्ठी कारवी च समांशकै ।
सुखोष्णैर्लेपनं कार्य कर्णमूले मुहुर्मुहु ॥ १९४ ॥

कुलथी, कायफल, सोंठ, कालाजीरा समान भाग ले, पानीके साथ महीन पीस, गरम कर गुनगुना गुनगुना लेप करना चाहिये ॥ १९४ ॥

जीर्णज्वरचिकित्सा ।

निदिग्धिकानागरकामृताना
क्वाथं पिबेन्मिश्रितपिप्पलीकम् ।
जीर्णज्वरारोचककासशूल-
श्वासाग्निमान्द्यार्दितपीनसेषु ॥ १९५ ॥

छोटी कटेरी, सोंठ तथा गुर्चका क्वाथ छोटी पीपलका चूर्ण मिलाकर जीर्णज्वर, अरुचि, कास, शूल, श्वास, अग्निमान्द्य, अर्दित तथा पीनस रोगमें पीना चाहिये १९५

---

१ पसीना अधिक आनेपर उसे पोंछना न चाहिये, किन्तु यही चूर्ण उर्राना चाहिये (एक रत्तीकी मात्रामें मूर्गेकी भस्मका प्रयोग भी शीघ्र पसीना बन्द करता है)

१ यहां पर अन्तशब्दका समीप अर्थ भी करते हैं अत यह अर्थ हो जाता है कि सन्निपातज्वरके समीपमें (अर्थात् पहिले या अन्तमें या मध्यमें) कठिन शोथ कर्णमूलमें हो जाता है, इसमें कोई ही बचता है अर्थात् यह कष्टसाध्य होता है अतएव कुछ आचार्योंने लिखा है 'ज्वरस्य पूर्वं ज्वरमध्यतो वा ज्वरान्ततो वा श्रुतिमूलशोथः। क्रमेण साध्य खलु कष्टसाध्यस्ततस्त्वसाध्य. कथितो मिषग्भि ॥' इसीको पाठभेदसे 'क्रमादसाध्य खलु कष्टसाध्यस्ततस्तु साध्य कथितो मुनीन्द्रै.' लिखा है । यह रोगविज्ञानका विषय है अतः वहींसे निर्णय करना चाहिये।

अस्य समयः ।

हन्त्यूर्ध्वगामयं प्राय सायं तेनोपयुज्यते ।

अधिकतर ऊर्ध्वगामी रोगोंको यह क्वाथ नष्ट करता है, अत: इसका सायंकाल प्रयोग किया जाता है।

गुडूचीक्वाथः ।

पिप्पलीचूर्णसंयुक्त क्वाथश्छिन्नरहोद्भव ॥ १९६ ॥
जीर्णज्वरकफध्वंसी पञ्चमूलीकृतोऽथवा ।

गुर्चका क्वाथ, छोटी पीपलका चूर्ण मिला अथवा लघुपञ्चमूलका क्वाथ पिप्पली चूर्ण मिला जीर्णज्वर तथा कफको नष्ट करता है ॥ १९६ ॥—

गुडपिप्पलीगुणाः ।

कासाजीर्णारुचिश्वासहृत्पाण्डुक्रिमिरोगनुत् ॥१९७॥
जीर्णज्वरेऽग्निमान्द्ये च शस्यते गुडपिप्पली ।

गुडके सहित छोटी पीपल का चूर्ण कास, अजीर्ण, अरुचि, श्वास, हृद्रोग, पाण्डुरोग, क्रिमिरोग, जीर्णज्वर तथा अग्निमान्द्यको नष्ट करता है ॥ १९७ ॥—

विषमज्वरचिकित्सा ।

कलिङ्गाका पटोलस्य पत्रं कटुकरोहिणी ॥१९८ ॥
पटोल शारिवा मुस्तं पाठा कटुकरोहिणी ।
निम्ब पटोलं त्रिफला मृद्वीका मुस्तवत्सकौ ॥१९९॥
किराततिक्तममृता चन्दनं विश्वभेषजम् ।
गुडूच्यामलकं मुस्तमर्धश्लोकसमापना ॥ २०० ॥
कषाया शमयन्त्याशु पञ्च पञ्चविधाञ्ज्वरान् ।
सन्ततं सततान्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥ २०१ ॥

इन्द्रयव, परवलकी पत्ती तथा कुटकीका क्वाथ सन्तत-ज्वरको परवलकी पत्ती शारिवा, नागरमोथा, पाढी तथा कुटकीका सततज्वरको नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, त्रिफला, मुनक्का, नागरमोथा, व कुडेकी छाल, अन्ये-द्युष्कज्वरको, चिरायता, गुर्च, लालचन्दन, सोंठ तृतीय-ज्वरको तथा गुर्च, आमला व नागरमोथाका क्वाथ चातुर्थिकज्वरको शान्त करता है ॥ १९८—२०१ ॥

त्रिफलाक्वाथः ।

गुडप्रगाढा त्रिफलां पिबेद्वा विषमार्दित ।

विषमज्वरमे पीडित पुरुषको त्रिफलाका क्वाथ गुड मिलाकर पीना चाहिये ।

गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूचीमुस्तधात्रीणं कषाय वा समाक्षिकम् ॥२०२ ॥

अथवा गुर्च, नागरमोथा व आमलाका क्वाथ बना ठण्डाकर शहद डालके पीना चाहिये ॥ २०२ ॥

योगान्तरम् ।

दार्वीपत्रककणाणांश्च्यनेत्र खादिरसयुतम् ।
ताम्बूलेस्ताद्दिने भुक्त प्रातर्विषमनाशनम् ॥ २०३ ॥

लहसुनका बीज तथा कत्था प्रातःकाल पानमें रखकर खानेमे विषमज्वर नष्ट होता है ॥ २०३ ॥

मुस्तादिक्वाथः ।

मुस्तामलकगुडूचीविश्वौषधकण्टकारिकाक्वाथ ।
पीत सकणाचूर्ण समधुर्विषमज्वर हन्ति ॥ २०४ ॥

नागरमोथा, आमला, गुर्च सोंठ तथा छोटी कटेरी-का क्वाथ, छोटी पीपलका चूर्ण तथा शहद मिलाकर पीने-मे विषमज्वरको नष्ट करता है ॥ २०४ ॥

महौषधादिक्वाथः ।

महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधान्यकै ।
क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजित ॥ २०५ ॥

सोंठ, गुर्च, नागरमोथा, लालचन्दन, खश तथा धनियाका क्वाथ मिश्री तथा शहद मिलाकर पीनेसे तृतीयकज्वर नष्ट होता है ॥ २०५ ॥

वासादिक्वाथः ।

वासाधात्रीस्थिरादारुपथ्यानागरसाधित ।
सितामधुयुत क्वाथश्चातुर्थिकनिवारण ॥ २०६ ॥

अडूसा, आमला, शालिपर्णी, देवदारु, छोटी हो तथा सोंठका क्वाथ मिश्री तथा शहद मिला हुआ चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है ॥ २०६ ॥

सामान्यचिकित्सा ।

मधुना सर्वज्वरनुच्छेफालीदलजो रस ।
अजाजी गुडसयुक्ता विषमज्वरनाशिनी ।
अग्निसाद जयेत्सम्यग्वातरोगाश्च नाशयेत्॥२०७॥

सम्भालू अथवा हरसिंगारके पत्तोंका रस शहदके साथ सेवन करनेसे समस्त विषमज्वर शान्त होते है । सफेद जीरेका चूर्ण गुडके साथ विषमज्वर, अग्निमान्द्य तथा वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ २०७ ॥

रसोनकल्क तिलतैलमिश्र
योऽश्नाति नित्य विषमज्वरार्त ।
विमुच्यते सोऽप्याचिराज्ज्वरेण
वातामयैश्चापि सुघोररूपै ॥ २०८ ॥

जो मनुष्य लगातार लहसुनकी चटनी तिलतैल

१—यह योग अधिकतर चातुर्थिक ज्वरमें लाभ करता है । २ जीरा भूनकर चूर्ण बनाना चाहिये ।

मिलाकर चाटता है वह विषमज्वर तथा कठिन वात रोगोंसे शीघ्र ही मुक्त हो जाता है ॥ २०८ ॥

प्रातः प्रातः ससर्पिर्वा रसोनमुपयोजयेत् ।
पिप्पलीं वर्द्धमानां वा पिबेत्क्षीररसाशनः ॥ २०९ ॥
षट्पलं वा पिबेत्सर्पिः पथ्यां वा मधुना लिहेत् ।

प्रातःकाल घीके साथ लहसुनका प्रयोग करना चाहिये । अथवा दूध अथवा मांसरसका भोजन करता हुआ वर्द्धमानपिप्पलीका प्रयोग करे अथवा षट्पल घृत (आगे लिखेंगे) पीवे या शहदके साथ छोटी हर्रका चूर्ण चाटे ॥ २०९ ॥

पयस्तैलं घृतं चैव विदारीक्षुरसं मधु ॥ २१० ॥
तत्समं पाययेदेतद्विषमज्वरनाशनम् ।

विषमज्वर नाश करनेके लिये दूध, तेल, घी, विदारीकन्दका रस, ईखका रस, शहद एकमें मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ २१० ॥

पिप्पलीशर्कराक्षौद्रं घृतं क्षीरं यथाबलम् ।
खजेन मथितं पेयं विषमज्वरनाशनम् ॥ २११ ॥

छोटी पीपल, मिश्री, शहद, घी व दूध मथानीसे मथकर अपनी शक्तिके अनुसार पीना चाहिये । इससे विषमज्वर नष्ट होगा ॥ २११ ॥

पयसा वृषदंशस्य शकृद्वेगागमे पिबेत् ।
वृषस्य दधिमण्डेन सुरया वा ससैन्धवम् ॥ २१२ ॥

बिडालविष्ठा दूधके साथ अथवा बैलका गोबर, सेंधानमक मिलाकर दहीका तोड़ या शराबके साथ पीना चाहिये ॥ २१२ ॥

विषमज्वरहरविरेचनम् ।

नीलिनीमजगन्धां च त्रिवृतां कटुरोहिणीम् ।
पिबेज्ज्वरस्यागमने स्नेहस्वेदोपपादितः ॥ २१३ ॥

पहिले स्नेहन तथा स्वेदन कर ज्वर आनेवाले दिन नील, बबई, निसोथ व कुटकीका क्वाथ पूर्णमात्रामें पिलाना चाहिये, इससे विरेचन होगा ॥२१३॥

विषमज्वरे पथ्यम् ।

सुरां समण्डां पानार्थे भक्ष्यार्थे चरणायुधान् ।
तित्तिरींश्च मयूरांश्च प्रयुञ्ज्याद्विषमज्वरे ॥ २१४ ॥

विषमज्वरमें मण्ड या शराब पीने लिये भोजनके लिये मुर्गे, तीतर या मयूरोंका प्रयोग करना चाहिये २१४

अस्फोटमूलकल्केन दध्ना सुकृतां पिबेत् ।
पेयां घृतप्लुतां जन्तुश्चातुर्थिकहरीं ध्रुवम् ॥ २१५ ॥

१००० आमलोनिया (चागेरी) की जड़ की पेया बना घी मिलाकर तीन दिनतक विषमज्वर नाश करनेके लिये पीना चाहिये ॥ २१५ ॥

विषमज्वरहराञ्जनम् ।

सैन्धवं पिप्पलीनां च तण्डुलाः समनःशिलाः ।
नेत्राञ्जनं तैलपिष्टं विषमज्वरनाशनम् ॥ २१६ ॥

सेंधानमक, छोटी पीपलके दाने, शुद्ध मनशिल तेलमें पीसकर नेत्रोंमें लगानेसे विषमज्वर नष्ट होता है॥२१६॥

नस्यम् ।

व्याघ्रीरसाहिङ्गुसमं नस्यं तद्वत्ससैन्धवम् ॥ २१७॥

छोटी कटेरी, रासन, हींग तथा सेंधानमकका नस्य इसी प्रकार विषमज्वरको नष्ट करता है ॥ २१७ ॥

धूपः ।

कृष्णाम्बरदशाबद्धगुग्गुलूलूकपुच्छजः ।
धूपश्चातुर्थिकं हन्ति तमः सूर्य इवोदितः ॥२१८ ॥

काले कपडेमें गुग्गुल तथा उल्लूकी पूंछ बांधकर धूप देनेसे चातुर्थिक ज्वर ऐसे नष्ट होता है जैसे सूर्योदयसे अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ २१८ ॥

नस्यान्तरम् ।

शिरीषपुष्पस्वरसो रजनीद्वयसंयुतः ।
नस्यं सर्पिः समायोगाच्चातुर्थिकहरं परम् ॥ २१९ ॥

सिरसाके फूलोंका स्वरस हल्दी, दारुहल्दीका चूर्ण तथा घी मिलाकर नस्य देनेसे चौथिया ज्वर छूट जाता है ॥ २१९ ॥

नस्यं चातुर्थिकं हन्ति रसो वागस्त्यपत्रजः ।

अगस्त्यके पत्तोंके रसका नस्य भी चातुर्थिकको नष्ट करता है ।

धूपान्तरम् ।

पलङ्कषा निम्बपत्रं वचा कुष्ठं हरीतकी ॥ २२० ॥
सर्षपाः सयवाः सर्पिर्धूपनं ज्वरनाशनम् ।
पुरध्यामवचासर्जनिम्बार्कागुरुदारुभिः ॥ २२१ ॥
सर्वज्वरहरो धूपः कार्योऽयमपराजितः ।

गुग्गुलु, नीमके पत्ते, वच, कूठ, बडी हर्रका छिलका, सरसों, यव, घी मिलाकर अथवा गुग्गुलु, रोहिष घास, वच, राल, नीमकी पत्ती, आककी जड, अगर तथा देवदारुका धूप देना चाहिये ॥ २२० ॥ २२१ ॥

१ वर्धमानपिप्पली ३ या ५ या ७ बलाबलके अनुसार ११ दिन या २१ दिन तक प्रतिदिन बढाना चाहिये । उसी प्रकार उतने ही दिनमें घटाना चाहिये। ऐसा शास्त्रोक्त विधान है पर आजकलके लिये १ या ३ पीपलसे बढाना हितकर होगा ॥ २ इस योगमें दूध गरम किया हुआ अष्टगुण तथा अन्य द्रव्य १ भाग प्रत्येक छोडना उचित होगा ।

वैडालं वा शकृद्योज्य धूपमानस्य कम्पने ॥ २२२ ॥

कम्पते हुए रोगीको बिडालकी विष्ठाका धूप देना चाहिये ॥ २२२ ॥

अपरे योगाः ।

अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः ।
बद्धा वारे रवेस्तूर्णं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥ २२३ ॥

लटजीराकी जड सात लाल डोरोंसे कमरमें रविवारके दिन बांधनेसे तृतीयक (तीसरे दिन आनेवाला) ज्वर नष्ट होता है ॥ २२३ ॥

काकजंघा बला श्यामा ब्रह्मदण्डी कृताञ्जलिः ।
पृश्निपर्णी त्वपामार्गस्तथा भृंगरजोऽष्टमः ॥ २२४ ॥
एषामन्यतमं मूलं पुष्येणोद्धृत्य यत्नतः ।
रक्तसूत्रेण संवेष्ट्य बद्धमेकाहिकं जयेत् ॥ २२५ ॥

काकजंघा, बरियारी, निसोथ या विधारा, ब्रह्मदण्डी, लज्जालु, पिठिवन, लटजीरा तथा भांगरा इनमेंसे किसी एककी जड पुष्यनक्षत्रमें उखाड लाल डोरेसे लपेटकर हाथ या गलेमें बांधनेसे एकाहिक ज्वर नष्ट होता है ॥ २२४ ॥ २२५ ॥

मूलं जयन्त्याः शिरसा धृतं सर्वज्वरापहम् ।

अरनीकी जड चोटीमें बांधने अथवा जलसे पीसकर शिरमें लेप करनेसे समस्त ज्वर दूर होते हैं ।

विशिष्टचिकित्सा ।

कर्म साधारणं जह्यात्तृतीयकचतुर्थकौ ।
आगन्तुरनुबन्धो हि प्रायशो विषमज्वरे ॥ २२६ ॥

दोनों चिकित्सायें (दैवव्यपाश्रय—बलिमंगलहोमादि तथा युक्तिव्यपाश्रय-कषायलेहादि) तृतीयकचतुर्थक ज्वरको नष्ट करती हैं । केवल युक्तिव्यपाश्रय कषायादि ही नहीं । क्योंकि विषमज्वरमें प्रायः आगन्तुक (भूतादि) का संसर्ग होता है ॥ २२६ ॥

दैवव्यपाश्रयं कर्म ।

गंगाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः ।
तस्मै तिलोदकं दत्तं मुञ्चत्येकाहिको ज्वरः ॥ २२७ ॥
एतन्मन्त्रेण चाश्वत्थपत्रहस्तः प्रतर्पयेत् ॥ २२८ ॥

पीपलका पत्र हाथमें लेकर "गंगाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः । तस्मै तिलोदकं नमः स्वधा" इस मन्त्रसे तर्पण करनेसे एकाहिक ज्वर छोड देता है ॥ २२७ ॥ २२८ ॥

सोमं सानुचरं देवं समातृगणमीश्वरम् ॥
पूजयन्प्रयतः शीघ्रं मुच्यते विषमज्वरात् ॥ २२९ ॥
विष्णुं सहस्रमूर्धानं चराचरपतिं विभुम् ।
स्तुवन्नामसहस्रेण ज्वरान्सर्वान्व्यपोहति ॥ २३० ॥

उमासहित तथा अनुचरों व मातृगणसहित शंकरजीका नियमसे पूजन करनेमें विषमज्वर छूट जाता है । इसी प्रकार सर्वव्यापक, विराट्स्वरूप, चराचरस्वामी विष्णु भगवान्की सहस्र नामसे स्तुति करनेवाला विषमज्वरसे मुक्त होजाता है ॥ २२९ ॥ २३० ॥

सर्पिष्पानावस्था ।

ज्वराः कषायैर्वमनैर्लंघनैर्लघुभोजनैः ।
रूक्षस्य ये न शाम्यन्ति सर्पिस्तेषां भिषग्जितम् ॥ २३१ ॥

जो ज्वर कषाय, अवलेहादि तथा वमन, विरेचन, लंघन, स्वेदन तथा लघुभोजनसे नहीं शांत होते और शरीर रूक्ष हो जाता है उनकी उत्तम चिकित्सा घृत है ॥ २३१ ॥

सर्पिर्निषेधः ।

निर्दशाहमपि ज्ञात्वा कफोत्तरमलंघितम् ।
न सर्पिः पाययेत्प्राज्ञः शमनैस्तमुपाचरेत् ॥ २३२ ॥

दश[1] दिन बीत जानेपर भी जिसका कफ बढा हुआ हो तथा लंघनके गुण उत्पन्न न हुए हों उसे घृत न पिलाना चाहिये तथा शमनकारक उपाय करना चाहिये ॥ २३२ ॥

निर्दशाहे कफोत्तरे शमनमशनम् ।

यावल्लघुत्वादशनं दद्यान्मांसरसेन तु ।
मांसार्थमेणलावादीन्युक्त्या दद्याद्विचक्षणः ॥ २३३ ॥
कुक्कुटांश्च मयूरांश्च तित्तिरिं क्रौञ्चमेव च ।
गुरूष्णत्वान्न शंसन्ति ज्वरे केचिच्चिकित्सकाः ॥ २३४ ॥
लंघनेनानिलबलं ज्वरे यद्यधिकं भवेत् ।
भिषङ्मात्राविकल्पज्ञो दद्यात्तानपि कालवित् ॥ २३५ ॥

जब तक ज्वर तथा शरीर हल्का न हो तब तक हल्का पथ्य मांसरसके साथ देना चाहिये । मांसके लिये एणमृग अथवा लवा देना चाहिये । ज्वरमें कुछ वैद्य कुक्कुट, मयूर, तीतर तथा क्रौञ्चको देना उष्ण तथा भारी होनेके कारण अनुचित समझते हैं—पर लंघन करनेमें यदि वायुका वेग अधिक हो तो मात्रा व काल का निश्चयकर वैद्य उन्हें भी देवे ॥ २३३–२३५ ॥

पिप्पल्याद्यं घृतम् ।

पिप्पल्यश्चन्दनं मुस्तमुशीरं कटुरोहिणी ।
कलिंगकास्तामलकीशारिवातिविषे स्थिरा ॥ २३६ ॥
द्राक्षामलकबिल्वानि त्रायमाणानि दिग्धिका ।
सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो ज्वरं जीर्णमपोहति ॥ २३७ ॥

---

[1] सामान्यतः दश दिनके अनंतर घी पिलाना लिखा है । यह उसका निषेध है ।

क्षय कास शिरःशूल पार्श्वशूल हलीमकम् ।
अंसाभितापमग्निं च विषमं सन्नियच्छति ॥ २३८ ॥
पिप्पल्याद्यमिदं चापि तन्त्रे क्षीरेण पच्यते ।

पीपल छोटी चन्दनलाल नागरमोथा खस कुटकी इन्द्रयव, भुई आमला, सारिवा अतीस, शालिपर्णी मुनक्का, आमला बेलका गूदा त्रायमाण, छोटी कटेरी। इनके कल्कमें चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण जल मिलाकर सिद्ध किया घृत शीघ्र ही जीर्ण ज्वरको नष्ट करता है। तथा क्षय, कास, शिरःशूल, पार्श्वशूल हलीमक अग्निकी जलन तथा विषमाग्निको नष्ट करता है। यह पिप्पल्यादि चतुर्गुण दूध मिलाकर भी पकाना किसी किसी ग्रन्थमें लिखा है ॥ २३६-२३८ ॥–

यत्राधिकरणेनोक्तिर्गणे स्यात्स्नेहसंविधौ ॥ २३९ ॥
तत्र तत्कनिर्दृशात्स्यैन स्नेहवेदिना ।
एतद्धास्यवलेनैव कल्कस्याप्ययरं घृतम् ॥ २४० ॥

स्नेह सिद्ध करनेके लिये जिस गणका अभिधान अर्थात् निश्चय कर दिया गया है वहां वही तथा काथ दोनों छोड़े जाते हैं इस वाक्यके बलसे ही कल्क भी माना जाता है ॥ २३९ ॥ २४० ॥

जलस्नेहौषधानां तु प्रमाणं यत्र नेरितम् ।
तत्र स्यादौषधात्स्नेहः स्नेहात्तोयं चतुर्गुणम् ॥ २४१ ॥

जहां पर जल ओषधि तथा स्नेहका प्रमाण न बताया गया हो औषधसे चतुर्गुण स्नेह तथा स्नेहसे चतुर्गुण जल छोड़ना चाहिये। यहां जल द्रवमात्रका उपलक्षण है ॥ २४१ ॥

अनुक्ते द्रवकार्ये तु सर्वत्र सलिलं मतम् ।

जहां द्रवद्रव्यका निर्देश नहीं किया गया वहां जल ही छोड़ना चाहिये।

घृततैलगुडादींश्च नैकाहादवतारयेत् ॥ २४२ ॥
व्युषितास्तु प्रकुर्वन्ति विशेषेण गुणान्यतः ॥

घी, तैल तथा गुड़ आदि एक ही दिनमें नहीं पकाना चाहिये क्योंकि बासी रक्खे गये (कई दिनमें पकाये गये) विशेष गुण करते हैं ॥ २४२ ॥–

सिद्धस्नेहपरीक्षा ।

स्नेहकल्को यदाङ्गुल्या वर्तितो वर्तिवद्भवेत् ।
वह्नौ क्षिप्ते च नो शब्दस्तदा सिद्धिं विनिर्दिशेत् ॥ २४३ ॥
शब्दस्योपरमे प्राप्ते फेनस्योपरमे तथा ।
गन्धवर्णरसादीनां सम्पत्तौ सिद्धिमादिशेत् ॥ २४४ ॥
(घृतस्यैव विपक्वस्य जानीयात्कुशलो भिषक् ।
फेनोऽतिमात्रं तैलस्य शेषं घृतवदादिशेत् ॥ १ ॥)

जिस समय अंगुलीसे रगड़नेसे स्नेह कल्ककी बत्ती बनने लगे तथा अग्निमें छोड़नेसे शब्द न हो तथा स्नेहमें शब्द न हो और फेना शान्त होगया हो तथा गन्ध, वर्ण और रस उत्तम हो गया हो उस समय घृत सिद्ध जानना चाहिये। इसी प्रकार तैल सिद्ध जानना चाहिये पर तैलमें सिद्ध हो जानेपर फेना अधिक उठता है शेष-लक्षण सिद्ध घृतके समान होते हैं ॥ २४३ ॥ २४४ ॥

१ यहां हलीमकम् के स्थानमें 'अरोचकम्' भी पाठान्तर है। तथा यहां पर घृतका मान नहीं लिखा अतः "अनिर्दिष्टप्रमाणानां स्नेहानां प्रस्थ इष्यते। अनुक्ते काथमाने तु पात्रमेकं प्रगृह्यते" इस सामान्यपरिभाषासे १ प्रस्थ घृत लेना चाहिये अथवा मान निर्देश न करनेका यह भी अभिप्राय है कि जितने घृतसे लाभ होनेकी सम्भावना हो उतना घृत बनावे तथा यहां पर यद्यपि चक्रपाणिजीने तथा शिवदासजीने घृतमूर्छनके सम्बन्धमें कुछ नहीं लिखा पर सामान्य नियम यही है कि स्नेह मूर्छित करके ही पाक करना चाहिये अतः घृतमूर्छनकी विधि नीचे लिखी जाती है।' पथ्याधात्रीबिभीतैर्जलधररजनीमातुलुङ्गद्रवैश्च द्रव्यैरेतैः समस्तैः पलकपरिमितैर्मन्दमन्दानलेन। आज्यप्रस्थं विफेनं परिपचनगतं मूर्छयेद्वैद्यवर्यस्तस्मादामोपदोषं हरति च सकलं वीर्यवत्सौख्यदायि ॥ भैषज्यरत्नावली। छोटी हर्र आमला, बहेड़ा, नागरमोथा, हल्दी प्रत्येक ४ तोलाका कल्क तथा बिजौरे नीम्बूका रस ४ तोला छोड़कर घी १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यात् २ प्रस्थ बगालका ४ सेर तथा ८० तोलेके सेरसे २ सेर ९ छ ३ तो०) का मूर्छन करना चाहिये। मूर्छनके लिये पहिले घी गरम करना चाहिये जब घी पककरके फेन रहित होजाय तब उतार ठण्डाकर उपरोक्त कल्कादि छोड़ना चाहिये फिर घीसे चौगुना जल छोड़ पाक कर छान लेना चाहिये। तथा जहाँ केवल दूधसे ही घृत पाक लिखा है वहां घृतसे चतुर्गुण जलभी छोड़ना चाहिये तथा कल्क घृतसे अष्टमांश ही छोड़ना चाहिये। यथा शार्ङ्गधर:–"दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः। कल्कस्य सम्यक्पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम्" किन्तु यह समग्र परिभाषायें प्रायः अनित्य हो जाती हैं अतः व्यवस्था वैद्यको स्वयं विचार करनी चाहिये।

१ कचित्पुस्तके कोष्ठान्तर्गतः पाठो न दृश्यते।

क्षीरषट्पलकं घृतम् ।

पञ्चकोलैः ससैन्धवैः पलिकैः पयसा समम् ।
सर्पिः प्रस्थं शृतं प्लीहविषमज्वरगुल्मनुत् ॥ २४५ ॥
अत्र द्रवान्तरानुक्तेः क्षीरमेव चतुर्गुणम् ।
द्रवान्तरेण योगे हि क्षीरं स्नेहसमं भवेत् ॥ २४६ ॥

पञ्चकोल (छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड़, सोंठ) तथा सेंधानमक प्रत्येक एक एक पैल, घृत एक प्रस्थ दूध ४ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये । घृतमात्र शेष रहनेपर उतार छानकर पिलाना चाहिये । यह घृत प्लीहा, विषमज्वर तथा गुल्मको नष्ट करता है। यहां दूसरे द्रवद्रव्यके न कहनेसे दूध ही चतुर्गुण छोड़ना चाहिये । तथा स्नेहके लिये चतुर्गुण जल भी छोड़ना चाहिये । जहां पर दूसरे द्रवद्रव्यका वर्णन हो वहां दूध स्नेहके समान ही लेना चाहिये ॥ २४५ ॥ २४६ ॥

दशमूलषट्पलकं घृतम् ।

दशमूलीरसे सर्पिः सक्षीरे पञ्चकोलकैः ॥ २४७ ॥
सक्षारैर्हन्ति तत्सिद्धं ज्वरकासाग्निमन्दताः ।
वातपित्तकफव्याधीन्प्लीहानंचापिपाण्डुताम् ॥ २४८ ॥

दूध तथा दशमूलके क्वाथमें पञ्चकोल तथा यवाखार के साथ सिद्ध किया घृत ज्वर, कास, अग्निमान्द्य, वातकफ, पित्तरोग, पाण्डुरोग तथा प्लीहाको नष्ट करता है ॥ २४७ ॥ २४८ ॥

स्नेहे क्वाथ्यादिनियामिका परिभाषा ।

क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम् ।
स्नेहात्स्नेहसमं क्षीरं कल्कस्तु स्नेहपादिकः ॥ २४९ ॥
चतुर्गुणं त्वष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत् ।
पञ्चप्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ ॥ २५० ॥
तत्र स्नेहसमान्याहुरर्वाक् च स्याच्चतुर्गुणम् ।

क्वाथ्यद्रव्यसे चतुर्गुण जल छोड़कर क्वाथ बनाना चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान, क्वाथसे चतुर्थांश घृत मिलाकर पकाना चाहिये । स्नेहसे दूध स्नेहके बराबर छोड़ना चाहिये । कल्क स्नेहसे चतुर्थांश छोड़ना चाहिये। द्रवद्वैगुण्यके सिद्धान्तसे चतुर्गुण अष्टगुण होता है ।

जहांपर स्नेहविधानमें पञ्चप्रभृति (पांच या इससे अधिक) द्रवद्रव्य हों वहां प्रत्येक स्नेहके समान छोड़ना चाहिये । इससे कम अर्थात् चार या तीन आदि हों तो स्नेहसे चतुर्गुणा छोड़ना चाहिये ॥ २४९ ॥ २५० ॥—

---

१ पूर्वोक्त परिभाषानुसार सुश्रुतमानसे पल वर्तमान मानके ३ तोला ४ माशेके बराबर, उसी प्रकार प्रस्थ वर्तमान १० छ. ३ तोला ४ माशेके बराबर होता है और चरकमानसे पल ६ तोला ८ माशाका, तदनुसार प्रस्थ १ सेर ५ छ. १ तोला ८ माशेका होता है । और द्रवद्रव्य होनेसे द्विगुण कर दिया जाता है ।

१ इस परिभाषामें अनेक सन्देह तथा मतभेद हैं। यदि प्रत्येक स्थानमें "चतुर्गुणं त्वष्टगुणम्" परिभाषा लगे तो क्वाथ्यद्रव्यसे जल भी अष्ट गुण ही छोड़ना पड़ेगा तथा "पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम्" इससे स्नेह तथा द्रव दोनों ही, द्रव द्रव्य होनेसे कोई विशेषता न होगी,पर क्वाथ्य स्नेहसे आधा पड़ेगा । पर, यह द्रवद्वैगुण्यकी परिभाषा कुडवके अनन्तर ही लगेगी, पहले नहीं । यथा—"आर्द्राणां च द्रवाणां च द्विगुणाः कुडवादयः" इस सिद्धान्तसे कुडव आदि शब्दके प्रयोगमें जहां मानका वर्णन होगा वहीं द्विगुण लिया जायगा पर कहीं कहीं इन शब्दोंका प्रयोग न होनेपर भी विवक्षा कर द्विगुण लेते हैं । इसी प्रकार पञ्चप्रभृति भी अनेक विमतोंसे पूर्ण है । कुछ वैद्योंका सिद्धान्त है कि जहां पाञ्च या पाञ्चसे अधिक द्रव द्रव्य हों वहां प्रत्येक स्नेहके समान लेना चाहिये और जहां पाञ्चसे कम हों वहां सब मिलकर स्नेहके चतुर्गुण लेना चाहिये । कुछका सिद्धान्त है कि पाञ्चसे पूर्व द्रवद्रव्योंमें प्रत्येक स्नेहसे चतुर्गुण और पाञ्चसे प्रत्येक स्नेहके समान लेना चाहिये । क्योंकि यदि पूर्वके मिलकर चतुर्गुण लिये जाते तो जहां चार द्रवद्रव्य होते वहां प्रत्येक स्नेहके समान लेनेसे स्नेहसे चतुर्गुण हो ही जाते, फिर पञ्चप्रभृति लिखना व्यर्थ ही है । चतुष्प्रभृति ही लिखना चाहिये पर कुछ आचार्योंने इसी से "चतुष्प्रभृति यत्र स्युर्द्रवाणि स्नेहसंविधौ" यही निश्चित पाठ माना है । मेरे विचारसे तो पाठपरिवर्तनसे भी यह विषय स्पष्ट नहीं हो जाता । क्योंकि मिलकर चतुर्गुण हो यह अर्थ किसी शब्दसे या भावसे नहीं आता । प्रत्युत 'स्नेहसमानि' से प्रत्येकका आकर्षण करना ही पड़ेगा । अन्यथा वहां भी मिलित ही स्नेह के समान लिये जायँगे पर यह किसीको अभीष्ट नहीं है अतः वह प्रत्येक अर्वाकके साथ भी अन्वित होगा इस प्रकार पाञ्चसे कमसे जहां विशेष विधि निषेध न हो वहां प्रत्येक चतुर्गुण पाञ्च तथा पाञ्चसे अधिक द्रवद्रव्योंमें प्रत्येक स्नेहके समान लेना चाहिये । इस विषयमें और भी लिखा जा सकता है पर विस्तार करना अभीष्ट नहीं । बुद्धिमानोंको स्वयं निर्णय करना चाहिये ।

वासाद्यं घृतम् ।

वासां गुडूचीं त्रिफलां त्रायमाणां यवासकम् ।
पक्त्वा तेन कषायेण पयसा द्विगुणेन च ॥ २५१ ॥
पिप्पलीमूलमृद्वीकाचन्दनोत्पलनागरैः ।
कल्कीकृतैश्च विपचेद् घृतं जीर्णज्वरापहम् ॥ २५२ ॥

अडूसा, गुर्च, त्रिफला, त्रायमाण, यवासा इनका क्वाथ स्नेहसे चतुर्गुण, दूध द्विगुणा तथा घृत १ भाग तथा घृतसे चतुर्थांश नीचे लिखी ओषधियोंका कल्क बना छोडकर पाक करना चाहिये । कल्ककी ओषधियां—पिपरामूल, मुनक्का, लाल चन्दन, नीलोफर व सोंठ है । यह घृत जीर्णज्वरको नष्ट करता है ॥ २५१ ॥ २५२ ॥

गुडूच्यादिघृतपञ्चकम् ।

गुडूच्या' क्वाथकल्काभ्यां त्रिफलाया वृषस्य च ।
मृद्वीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नेहा ज्वरच्छिदः ॥२५३॥

पृथक् २ गुर्च, त्रिफला, अडूसा, मुनक्का अथवा खरेटीके क्वाथ कल्कसे सिद्ध घृत ज्वर नाशक होते हैं ॥ २५३ ॥

पेयादिदानसमयः ।

ज्वरे पेयाः' कषायाश्च सर्पिः क्षीरं विरेचनम् ।
षडहे षडहे देयं कालं वीक्ष्यामयस्य च ॥ २५४ ॥

ज्वरमें पेया (लघन या यवागू) क्वाथ, घृत, दूध, विरेचन छः छः दिनके अनन्तर देना चाहिये तथा रोगका काल देखकर विशेष व्यवस्था करनी चाहिये ॥ २५४ ॥

क्षीरदानसमयः ।

जीर्णज्वरे कफे क्षीणे क्षीरं स्यादमृतोपमम् ।
तदेव तरुणे पीतं विषवद्धन्ति मानवम् ॥ २५५ ॥

जीर्णज्वरमें कफके क्षीण होजानेपर दूध अमृतके तुल्य गुणदायक होता है, वही तरुणज्वरमें विषके तुल्य मारक होता है ॥ २५५ ॥

१ पेयाशब्द लघनादिका उपलक्षण है । जिन ज्वरों (वातादिजन्य) में लघनका निषेध है उनमें पेया आदि तथा शेष में ६ दिन लघन कराकर सातवें दिन हलका पथ्य दे । ज्वरको निराम समझकर आठवें दिन क्वाथ पिलाना चाहिये । निरामता विशेषतया आठवे दिन ही होती है । अतः उसी दिन क्वाथ पिलाना उचित है ।

पञ्चमूलीपयः ।

कासाच्छ्वासाच्छिरःशूलात्पार्श्वशूलात्सपीनसात् ।
मुच्यते ज्वरितः पीत्वा पञ्चमूलीशृतं पयः ॥२५६॥

पञ्चमूल (लघु) से सिद्ध किये हुए दूधके पीनेसे कास, श्वास, शिरःशूल, पार्श्वशूल तथा पुराने ज्वरसे मनुष्य मुक्त हो जाता है ॥ २५६ ॥

क्षीरपाकविधिः ।

द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् ।
क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥२५७॥

ओषधिसे अठगुना दूध तथा दूधसे चतुर्गुण जल मिलाकर पकाना चाहिये । दूधमात्र शेष रहनेपर उतार लेना चाहिये । यही क्षीर पाककी विधि है ॥ २५७ ॥

त्रिकण्टकादिक्षीरम् ।

त्रिकण्टकबलाव्याघ्रीगुडनागरसाधितम् ।
वर्चोमूत्रविबन्धघ्नं शोफज्वरहरं पयः ॥ २५८ ॥

गोखुरू, खरेटी, कटेरी, गुड तथा सोंठमें सिद्ध किया दूध मलमूत्रकी रुकावट, सूजन तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ २५८ ॥

वृश्चीराद्यं क्षीरम् ।

वृश्चीरबिल्ववर्षाभू पयश्चोदकमेव च ।
पचेत्क्षीरावशिष्टं तु तद्धि सर्वज्वरापहम् ॥ २५९ ॥

श्वेत पुनर्नवा, सोंठ, लाल पुनर्नवा, दूध और जल मिलाकर पकाना चाहिये । दूधमात्र शेष रह जानेपर उतार कर पिलाना चाहिये यह समस्त ज्वरको नष्ट करता है ॥ २५९ ॥

क्षीरविनिश्चयः ।

शीतं कोष्णं ज्वरे क्षीरं यथा स्वैरौषधैर्युतम् ।
एरण्डमूलसिद्धं वा ज्वरे सपरिकर्तिके ॥ २६० ॥

ज्वरमें जैसा दोष (वात या पित्त) हो उसके अनुसार ओषधियों द्वारा सिद्ध कर पित्तमें शीत तथा वातमें कोष्ण दूधका प्रयोग करना चाहिये । और यदि गुदामें कर्तनके समान पीड़ा होती हो तो एरण्डकी छालसे सिद्ध कर दूध पीना चाहिये ॥ २६० ॥

संशोधननिश्चयः ।

ज्वरिभ्यो बहुदोषेभ्य ऊर्ध्वं चाधश्च बुद्धिमान् ।
दद्यात्संशोधनं काले कल्पे यदुपदेक्ष्यते ॥ २६१ ॥

१ क्षीरपाकमें औषध महीन पीस पानी मिला छान दूधमें मिलाकर पकाना चाहिये ।

अधिक दोषयुक्त ज्वरवालेके लिये संशोधनयोग्य कालमें ऊर्ध्वमार्ग तथा अधोमार्गसे संशोधन (वमन विरेचन) करना चाहिये जो कि कल्पस्थानमें कहेंगे२६१

वमनम् ।

मदन पिप्पलीभिर्वा कलिङ्गैर्मधुकेन वा ।
युक्तमुष्णाम्बुना पीतं वमनं ज्वरशान्तये ॥ २६२ ॥

मैनफल, छोटी पीपल, इन्द्रयव, अथवा मौरेठीके महीन चूर्णके साथ गरम जल मिलाकर पिलानेसे वमन होकर ज्वर शान्त होता है ॥ २६२ ॥

विरेचनम् ।

आरग्वधं वा पयसा मृद्वीकाना रसेन वा ।
त्रिवृता त्रायमाणा वा पयसा ज्वरित पिबेत् ॥ २६३॥

अमलतासका गूदा दूधके अथवा अङ्गूरके रसके साथ अथवा निसोथ व त्राणमाण दूधके साथ ज्वरवालेको पीना चाहिये इससे हलका रेचन होगा ॥ २६३ ॥

संशोधननिषेधः ।

ज्वरक्षीणस्य न हित वमनं न विरेचनम् ।
कामं तु पयसा तस्य निरूहैर्वा हरेन्मलान् ॥ २६४ ॥

ज्वरमे जो रोगी क्षीण हो रहा है उसको वमन अथवा विरेचन न कराना चाहिये । दूध पिलाकर अथवा निरूहण वस्ति देकर उसका मल निकालना चाहिये ॥ २६४ ॥

वस्तिविधानम् ।

प्रयोजयेज्ज्वरहरान्निरूहान्सानुवासनान् ।
पक्वाशयगते दोषे वक्ष्यन्ते ये च सिद्धिषु ॥ २६५ ॥

दोष यदि पक्वाशयमें स्थित हों तो सिद्धिस्थानमें जो निरूहण तथा अनुवासन वस्तिया बतायी गयी है उनका प्रयोग करना चाहिये ॥ २६५ ॥

विरेचननस्यम् ।

गौरवे शिरस शूले विबद्धेष्विन्द्रियेषु च ।
जीर्णज्वरे रुचिकरं दद्याच्छीर्षविरेचनम् ॥ २६६ ॥

शिरके भारीपन तथा दर्दमें तथा इन्द्रियोंके अपने विषय ग्रहण करनेमे असमर्थ होनेपर जीर्ण ज्वरमे शिरोविरेचन (नस्य) देना चाहिये इससे इन्द्रियोंको अपने विषय ग्रहणकी रुचि उत्पन्न होती है ॥ २६६ ॥

अभ्यङ्गादिविभागः ।

अभ्यङ्गाश्च प्रदेहाश्च सस्नेहान्सानुवासनान् ।
विभज्य शीतोष्णकृतान्दद्याज्जीर्णज्वरे भिषक् ॥ २६७ ॥
तराशु प्रशम याति बहिर्मार्गगतो ज्वर ।
लभन्ते सुखमङ्गानि बलं वर्णश्च वर्धते ॥ २६८ ॥

स्नेहके सहित अभ्यग (मालिश), लेप अथवा अनुवासन वस्ति शीत अथवा उष्ण पदार्थोंसे जैसी आवश्यकता हो देना चाहिये । शीतजन्य ज्वरमे उष्ण तथा उष्णजन्य ज्वरमे शीत प्रयोग करना चाहिये । अभ्यगादिसे त्वचामे प्राप्त ज्वर नष्ट हो जाता है, शरीरको सुख मिलता है, बल तथा वर्ण उत्तम होता है२६७॥२६८॥

षट्कट्वरतैलम् ।

सुवर्चिकानागरकुष्ठमूर्वालाक्षानिशालोहितयष्टिकाभि ।
तैल ज्वरे षड्गुणकट्वसिद्धमभ्यञ्जनाच्छीतविदाहनुत्स्यात्॥
दध्न ससारकस्यात्र तक्रं कट्वरमिष्यते ।
घृतवत्तैलपाकोऽपि तैले फेनोऽधिक पर ॥ २७० ॥

सज्जीखार, सोंठ, कूठ, मूर्वा,लाख, हलदी तथा मजीठ कल्कमे चतुर्गुण तिलका तैल तथा तैलसे षड्गुण मट्ठा

---

१ "शीतेनोष्णकृतान्रोगाञ्छमयन्तिभिषग्विदः । ये च शीतकृता रोगास्तेषामुष्ण भिषग्जितम् " ॥

अर्थात् वैद्यजन शीतद्वारा उष्णजन्य रोगोंका शमन करते हैं और शीतजन्य रोगोंके शमनकी उष्ण ओषधि है।

२ यहा पर तिलतैलकी मूर्च्छा विधि भी नही लिखी है अतः प्रतीत होता है कि श्रीमान्को मूर्छनकी आवश्यकता नही प्रतीत हुई अतएव उनके चक्रपाणि अनुयायी श्रीयुत शिवदासजीने भी अपनी तत्त्वचन्द्रिका नामक टीकामे नही किया । पर आजकल वङ्गदेशीय वैद्य विशेषकर मूर्छनकी आवश्यकता समझते है अतः तिलतैलमूर्छा लिखी जाती है—"कृत्वा तैलं कटाहे दृढतरविमले मन्दमन्दानलैस्तत्, तैलं निष्फेनभावं गतमिह च यदा शैत्ययुक्तं तदैव । माञ्जिष्ठारात्रिलोध्रैर्जलधरनालिकैः सामलैः साक्षपथ्यैः, सूचीपत्राभिनीरैरुपहितमथितैर्गन्धयोगं जहाति ॥ १ ॥ तैलस्येन्दुकलांशिकैकविकसाभागोऽपि मूर्छाविधौ ये चान्ये त्रिफलापयोदरजनीह्रीबेरलोध्रान्विताः । सूचीपुष्पवटावरोहनलिकास्तस्याश्च पादांशिका दुर्गन्धं विनिहत्य तैलमरुणं सौरभ्यमाकुर्वते ॥ २ ॥ " तिलतैलको कडाहीमें छोडकर मन्द आचपर उस समयतक पकावे जबतक कि फेन जाता है । फिर उसे ठण्ढा कर प्रथम तैलसे षोडशांश ⅟१६ मजीठका कल्क छोडना चाहिये फिर अन्य त्रिफला, नागरमोथा, हलदी, सुगन्धवाला, लोध्र केवडेकी जड, वटजटा तथा नाडीशाक प्रत्येक मजीठसे चतुर्थांश ले कल्क कर छोडना चाहिये । फिर तैलसे चतुर्गुण जल छोड पकाकर छान लेना चाहिये ।—

मिलाकर पकाया गया तैल शीत तथा जलनको नष्ट करता है । मक्खनके सहित मथे गये दधिको ही मट्ठा कहते हैं । घीके समान ही तैलका भी पाक होता है पर घीके पक जानेपर फेना नष्ट हो जाता है और तैलके पक जानेपर फेना उत्पन्न हो जाता है ॥ २६९ ॥ २७० ॥

अंगारकतैलम् ।

मूर्वा लाक्षा हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठा सेन्द्रवारुणी ।
बृहती सैन्धवं कुष्ठं रास्ना मासी शतावरी ॥ २७१ ॥
आरनालाढकेनैव तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
तैलमङ्गारकं नाम सर्वज्वरविमोक्षणम् ॥ २७२ ॥

मूर्वा, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, इन्द्रायण, बड़ी कटेरी, सेंधानमक, कूठ, रासन, जटामासी तथा शतावरीका कल्क १ कुडव, तिलतैल १ प्रस्थ, काञ्जी १ आढक मिलाकर पकाना चाहिये । तैलमात्र शेष रहनेपर उतार छान मालिश करनेसे ज्वर नष्ट होता है ॥ २७१ ॥ २७२ ॥

लाक्षादितैलम् ।

लाक्षाहरिद्रामञ्जिष्ठाकल्कैस्तैलं विपाचयेत् ।
षड्गुणेनारनालेन दाहशीतज्वरापहम् ॥ २७३ ॥

लाख, हल्दी व मजीठका कल्क उससे चतुर्गुण तिलतैल और उससे षट्गुण काञ्जी मिलाकर पकाना चाहिये यह तैल मालिश करनेसे जलन तथा शीतसहित ज्वरको नष्ट करता है ॥ २७३ ॥

यवचूर्णादितैलम् ।

यवचूर्णार्धकुडवं मञ्जिष्ठार्धपलेन तु ।
तैलप्रस्थं शतगुणं काञ्जिके साधितो जयेत् ॥ २७४ ॥
ज्वरदाहं महावेगमङ्गानां च प्रहर्षनुत् ॥

यवका चूर्ण ८ तोला, मजीठ २ तोला, तैल १ प्रस्थ (१ सेर ९ छ. ३ तो.) काञ्जी १०० प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये तैल मात्र शेष रहनेपर उतार छानकर रखना चाहिये यह तैल महावेगयुक्त ज्वर, दाह तथा शीत दोनोंको नष्ट करता है ॥ २७४ ॥–

सर्जादितैलम् ।

सर्जकाञ्जिकसंसिद्धं तैलं शीताम्बुमर्दितम् ॥ २७५ ॥
ज्वरदाहापहं लेपात्सद्योवातास्रदाहनुत् ॥

राल तथा काञ्जीसे सिद्ध किया गया तैल ठण्डे जलमें मर्दन कर लेप करनेसे तत्काल ज्वरके दाह तथा वातरक्तके दाहको नष्ट करता है ॥ २७५ ॥–

तैलान्तरम् ।

चन्दनाद्यमगुर्वाद्यं तैलं चरककीर्तितम् ॥ २७६ ॥
तथा नारायणं तैलं जीर्णज्वरहरं परम् ॥

चन्दनादितैल, अगुर्वादितैल तथा नारायणतैलका प्रयोग जीर्णज्वरनाशनार्थ करना चाहिये ॥ २७६ ॥–

आगन्तुकज्वरचिकित्सा ।

अभिघातज्वरो न स्यात्पानाभ्यङ्गेन सर्पिषः ॥ २७७ ॥

घीके पीने तथा मालिश करनेसे अभिघात ज्वर नहीं रहता ॥ २७७ ॥

क्षतानां व्रणितानां च क्षतव्रणचिकित्सया ।
ओषधीगन्धविषजौ विषपीतप्रबाधनैः ॥ २७८ ॥
जयेत्कषायैर्मतिमान्सर्वगन्धकृतैस्तथा ।

जिनके क्षत (आगन्तुक व्रण) अथवा व्रण (शारीर) हो गया है उनकी क्षतव्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये । ओषधिगन्धजन्य तथा विषजन्य ज्वर में विषपीतके लिये जो क्वाथ बताये गये हैं उनका प्रयोग करना चाहिये । तथा सर्वगन्ध द्रव्योंका क्वाथ बनाकर पिलाना चाहिये ॥ २७८ ॥–

–इस प्रकार मूर्छा कर लेनेसे तैलकी दुर्गन्ध मिट जाती और सुगन्ध आ जाती तथा तैल ईषद्रक्त वर्ण हो जाता है ।

१ सर्वगन्धसे "चातुर्जातककर्पूरकङ्कोलागुरुशिह्लकम् । लवङ्गसहितं चैव सर्वगन्धं विनिर्दिशेत् "

यह निघण्टूक्त गण न लेना चाहिये किन्तु सुश्रुतोक्त –एलादि गण ही लेना चाहिये । क्योंकि यह गण बाहिःपरिमार्जनार्थ उद्वर्तनादिके लिये ही है । सुश्रुतोक्त एलादिः–एला (इलायची) तगर, कुष्ठ (कूठ) मांसी (जटामासी) ध्यामक (रोहिषतृण) त्वक् (दालचीनी) पत्र (तेज-पात) नागपुष्प (नागकेशर) प्रियगु (गुजराती वेंडली) हरेणुका (सम्भालूके,बीज) व्याघ्रनख (नखभेदः) शुक्ति (बदरपत्राकारा) चण्डा (चोरपुष्पी) स्थौणेयक (ग्रन्थिपर्ण) श्रीवेष्टक (गन्धाविरोजा) चोच (कलमीतज) चोरक (चोरपुष्पीभेद) वालक (सुगन्धवाला) गुग्गुलु, सर्जरस (राल) तुरुष्क (शिलारस) कुन्दुरुक (कुन्दुरु छोटी बगाली) स्पृक्का (मालतीपुष्प) अगर, उशीर (खश) भद्रदारु (देवदारु) पुन्नागकेशर (पुन्नागः पार्वतीयो वृक्षविशेषस्तत्केशरम्) "एलादिको वातकफौ निहन्याद्विषमेव च । वर्णप्रसादनः कण्डूपिडिकाकोठनाशनः " इति ।

अभिचाराभिशापोत्थौ ज्वरौ होमादिना जयेत्॥ २७९॥
दानस्वस्त्ययनातिथ्यैरुत्पातग्रहपीडजौ ।

अभिचार (मारणक्रिया-श्येनयागादि) तथा अभिशाप (क्रुद्ध महर्षिके अनिष्ट वचन) तथा अशुभ वज्रादिपात अथवा ग्रहकी पीडासे उत्पन्न ज्वरको होम बलि, मङ्गल दान, स्वास्तिवाचन, अतिथिपूजन आदिसे जीतना चाहिये ॥ २७९ ॥

क्रोधकामादिज्वरचिकित्सा ।

क्रोधजे पित्तजित्काम्या अर्था सद्वाक्यमेव च॥ २८० ॥
आश्वासेनेष्टलाभेन वायो प्रशमनेन च ।
हर्षणैश्च शमं यान्ति कामक्रोधभयज्वरा ॥ २८१ ॥
कामात्क्रोधज्वरो नाश क्रोधात्कामसमुद्भव ।
याति ताभ्यामुभाभ्या च भयशोकसमुद्भव. ॥ २८२ ॥

क्रोधजन्य ज्वरमें पित्त शान्त करनेवाली चिकित्सा-इष्ट विषयोंकी प्राप्ति तथा मनोहर वार्तालाप लाभदायक होता है । काम, क्रोध तथा भयसे उत्पन्न ज्वरको आश्वासन, इष्ट विषयोंकी प्राप्ति तथा प्रसन्नताकारक उपायोंसे शान्त होते हैं । कामसे क्रोधज्वर क्रोधसे कामज्वर और उन दोनोंसे भय-शोकजन्य ज्वर शान्त हो जाता है ॥ २८० ॥ २८१ ॥ २८२ ॥

भूतज्वरचिकित्सा ।

भूतविद्यासमुद्दिष्टैर्बन्धावेशनताडनै ।
जयेद्भूताभिषङ्गोत्थं मन शान्त्यैश्च मानसम् २८३

भूतविद्यामें (सुश्रुत-उत्तर तन्त्रमें) बताये बन्ध, आवेशन, ताडन आदिसे भूतज्वरको शान्त करना चाहिये तथा मानसिक भयशोकादिजन्य ज्वरको मनको प्रसन्न करनेवाले उपायों तथा धीधैर्यात्मादि-विज्ञानसे जीतना चाहिये ॥ २८३ ॥

ज्वरमुक्ते वर्ज्यानि ।

व्यायाम च व्यवायं च स्नान चंक्रमणानि च ।
ज्वरमुक्तो न सेवेत यावन्नो बलवान्भवेत् ॥ २८४ ॥

जब तक बलवान् न हो जाय ज्वरमुक्त हो जानेपर भी कसरत, मैथुन व स्नान न करे तथा विशेष टहले नहीं ॥ २८४ ॥

विगतज्वरलक्षणम् ।

देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहताप
पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् ।
स्वेद. क्षव प्रकृतिगामिमनोऽन्नलिप्सा
कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥ २८५ ॥

शरीर हलका हो जावे, ग्लानि, मूर्छा, तथा जलन शान्त हो जावें, मुखमें दाने पड़कर पक जावे, इन्द्रिया अपने अपने विषयोंका ग्रहण करनेमें समर्थ हों । किसी प्रकारकी पीडा न हो, पसीना तथा छींकें आती हों, मन प्रसन्न हो, भोजनमें रुचि हो तथा मस्तकमें खुजली होना यह ज्वर मुक्त के लक्षण है ॥ २८५ ॥

इति ज्वराधिकारः समाप्तः ।

अथ ज्वरातिसाराधिकारः ।

ज्वरातिसारे चिकित्साः ।

ज्वरातिसारे पेयादिक्रम स्याल्लङ्घिते हित
ज्वरातिसारी पेयां वा पिबेत्साम्लां शृतां नर ॥१॥
पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधान्यकै ।

ज्वरातिसारमें लघन करनेके अनन्तर पेया विलेपी आदिका क्रमशः सेवन करना हितकर होता है । तथा ज्वरातिसारवालेको पिठिवन, खरेटी, बेलका गूदा, सोंठ, नीलोफर और धनियांके जलसे सिद्ध की हुई पेया अनार तथा निम्बूके रससे खट्टी कर पिलानी चाहिये ॥ १ ॥–

पाठादिक्वाथः ।

पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकामृता ।
जयन्त्याममतीसार सज्वर समहौषधा ॥ २ ॥

पाढी, इन्द्रयव, चिरायता, नागरमोथा, पित्तपापडा, गुर्च तथा सोंठका क्वाथ ज्वरसहित आमातिसारको शान्त करता है ॥ २ ॥

नागरादिक्वाथः ।

नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः ।
सर्वज्वरहर क्वाथ सर्वातिसारनाशन ॥ ३ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, चिरायता, गुर्च तथा करैयाकी छालसे बनाया गया क्वाथ सर्वज्वर तथा सर्वातिसारको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

ह्रीबेरादिक्वाथः ।

ह्रीबेरातिविषामुस्तबिल्वधान्यकनागरैः ।
पिबेत्पिच्छाविबन्धघ्नं शूलदोषामपाचनम् ॥ ४ ॥
सरक्तं हन्त्यतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ५ ॥

सुगन्धवाला, अतीस, नागरमोथा, बेलका गूदा, धानियां तथा सोंठमें सिद्ध किया क्वाथ लासेदार मरोड़से

तथा रक्तयुक्त दस्तोंके सहित ज्वरको नष्ट करता, शूलको नष्ट करता और दोष तथा आमका पाचन करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

गुडूच्यादिक्वाथः ।

गुडूच्यतिविषाधान्यशुण्ठीविल्वाब्दवालकैः ।
पाठाभूनिम्बकुटजचन्दनोशीरपद्मकैः ॥ ६ ॥
कषायः शीतलः पेयो ज्वरातीसारशान्तये ।
हृल्लासारोचकच्छर्दिपिपासादाहनाशनः ॥ ७ ॥

गुर्च, अतीस, धनियां, सोंठ, वेलका गूदा, नागरमोथा, सुगन्धवाला, पाढ, चिरायता, कुरैयाकी छाल, लाल चन्दन, खश तथा पद्माखका क्वाथ ठण्डा कर ज्वरातीसार, मिचलाई, अरुचि, वमन, प्यास और जलन शान्त करनेके लिये पीना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

उशीरादिक्वाथः ।

उशीरं वालकं मुस्तं धन्याकं विश्वभेषजम् ।
समङ्गाधातकीलोध्रं बिल्वं दीपनपाचनम् ॥ ८ ॥
हन्त्यरोचकपिच्छाममविबन्धं सातिवेदनम् ।
सशोणितमतीसारं सज्वरं वाथ विज्वरम् ॥ ९ ॥

खश, सुगन्धवाला, नागरमोथा, धनिया, सोंठ, लज्जावन्तीके बीज, धायके फूल, पठानीलोध, वेलका गूदा इनका क्वाथ अग्निको दीप्त तथा आमका पाचन करता है। अरुचि, लसेदार दस्तोंका आना, आम, विबन्ध, अधिक पीडा तथा रक्तके दस्तोंको "जो कि ज्वरके साथ अथवा ज्वरके विना हों उन्हें" नष्ट करता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पञ्चमूल्यादिक्वाथः ।

पञ्चमूलीबलाबिल्वगुडूचीमुस्तनागरैः ।
पाठाभूनिम्बह्रीवेरकुटजत्वक्फलैः शृतम् ॥ १० ॥
हन्ति सर्वानतीसारान्ज्वरदोषं वमिं तथा ।
सशूलोपद्रवं श्वासं कासं हन्यात्सुदारुणम् ॥ ११ ॥

लघुपञ्चमूल, खरेटी, वेलका गूदा, गुर्च नागरमोथा, सोंठ, पाढ, चिरायता सुगन्धवाला, इन्द्रयव तथा कुड़ेकी छालसे सिद्ध किया क्वाथ समस्त अतीसार, ज्वरदोष, वमन, शूल, श्वास तथा कठिन कासको नष्ट करता है ॥ १० ॥ ११ ॥

कलिङ्गादिक्वाथः ।

कलिङ्गातिविषाशुण्ठीकिराताम्बुयवासकम् ।
ज्वरातिसारसन्तापं नाशयेदविकल्पतः ॥ १२ ॥

इन्द्रयव, अतीस, सोंठ, चिरायता, सुगन्धवाला तथा यवासाका क्वाथ ज्वरातिसार और सन्तापको निःसन्देह नष्ट करता है ॥ १२ ॥

वत्सकादिक्वाथः ।

वत्सकस्य फलं दारु रोहिणी गजपिप्पली ।
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं बिल्वं पाठा यवानिका ॥ १३ ॥
द्वावप्येतौ सिद्धयोगौ श्लोकार्द्धेनाभिभाषितौ ।
ज्वरातीसारशमनौ विशेषाद्दाहनाशनौ ॥ १४ ॥

इन्द्रयव, देवदारु, कुटकी, गजपीपल अथवा गोखरू, छोटी पीपल, धनिया, वेलका गूदा, पाढ, अजवाइन यह आधे आधे श्लोकमें कहे गये दोनों योग ज्वरातिसार तथा दाहको नष्ट करते हैं ॥ १३ ॥ १४ ॥

नागरादिक्वाथः ।

नागरामृतभूनिम्बबिल्ववालकवत्सकैः ।
समुस्तातिविषोशीरैर्ज्वरातीसारहज्जलम् ॥ १५ ॥

सोंठ, गुर्च, चिरायता, वेलका गूदा, सुगन्धवाला, कुडेकी छाल, नागरमोथा, अतीस तथा खशका क्वाथ ज्वरातीसारको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

मुस्तकादिक्वाथः ।

मुस्तकबिल्वातिविषापाठाभूनिम्बवत्सकैः क्वाथः ।
मकरन्दगर्भयुक्तो ज्वरातिसारौ जयेद्धोरौ ॥ १६ ॥

नागरमोथा, वेलका गूदा, अतीस, पाढ, चिरायता तथा कुडेकी छालका क्वाथ ठण्डा कर शहद मिला पिलानेसे घोर ज्वर तथा अतिसारको नष्ट करता है ॥ १६ ॥

घनादिक्वाथः ।

घनजलपाठातिविषापथ्योत्पलधान्यरोहिणीविश्वैः ।
सेन्द्रयवैः कृतमम्भः सातीसारं ज्वरं जयति ॥ १७ ॥

नागरमोथा, सुगन्ध वाला, पाढ, अतीस, छोटी, हर्र, नीलोफर, धनिया, कुटकी, सोंठ तथा इन्द्रयवका क्वाथ ज्वरातिसारको नष्ट करता है ॥ १७ ॥

कलिङ्गादिगुटिका ।

कलिंगबिल्वजम्ब्वाम्रकपित्थं सरसाञ्जनम् ।
लाक्षाहरिद्रे ह्रीवेरं कट्फलं[1] शुकनासिकाम् ॥ १८ ॥
लोध्रं मोचरसं शंखं धातकीवटशुङ्गकम् ।
पिष्ट्वा तण्डुलतोयेन वटकानक्षसम्मितान् ॥ १९ ॥
छायाशुष्कान्पिबेच्छीघ्रं ज्वरातीसारशान्तये ।
रक्तस्रुतिं नाशयेत शूलातीसारनाशना ॥ २० ॥

[1] कट्फलके स्थानमें कुछ आचार्य "कट्वङ्ग" पढ़ते हैं । कट्वङ्ग—सोनापाठा ।

इन्द्रयव, बेलका गूदा, जामुनकी गुठली, आमकी गुठली, कैथेका गूदा, रसौत, लाख, हल्दी, दारुहल्दी, सुगन्धवाला, कैफरा, सोना पाठाकी छाल, पठानी लोध, मोचरस, शंखकी भस्म, धायके फूल, बरगदके नवीन पत्ते सब समान भाग ले महीन पीस चावलके धोवनसे घोट एक तोलेकी गोली बनाकर चावलके धोवनके साथ ही खिलाना चाहिये। इन गोलियोंसे ज्वरातिसार, शूल युक्त अतीसार तथा रक्त विकार नष्ट होते हैं॥१८-२०॥

उत्पलादिचूर्णम् ।

उत्पलं दाडिमत्वक् च पद्मकेशरमेव च ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन ज्वरातीसारनाशनम् ॥ २१ ॥

नीलोफर, अनारके फलका छिलका, कमलका केशर इनका चूर्ण बना तण्डुलोदकके साथ ज्वरातिसारकी शान्तिके लिये पीना चाहिये ॥ २१ ॥

व्योषादिचूर्णम् ।

व्योषं वत्सकबीजं च निम्बभूनिम्बमार्कवम् ।
चित्रकं रोहिणीं पाठां दार्वीमतिविषां समाम् ॥२२॥
श्लक्ष्णचूर्णीकृतान्सर्वांस्तत्तुल्या वत्सकत्वचम् ।
सर्वमेकत्र संयोज्य प्रपिबेत्तण्डुलाम्बुना ॥ २३ ॥
सक्षौद्रं वा लिहेदेतत्पाचनं ग्राहि भेषजम् ।
तृष्णारुचिप्रशमनं ज्वरातीसारनाशनम् ॥ २४ ॥
कामलां ग्रहणीदोषान्गुल्मं प्लीहानमेव च ।
प्रमेहं पाण्डुरोगं च श्वयथुं च विनाशयेत् ॥ २५ ॥

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, इन्द्रयव, नीमकी छाल, चिरायता, भागरा, चीतकी जड़, कुटकी, पाढी दारुहलदी, अतीस सब चीजें समान भाग ले कूटकर कपड़छान करना चाहिये। जितना चूर्ण हो उतनी ही कुड़ेकी छालका चूर्ण मिलाकर चावलके जलसे पिलाना चाहिये अथवा शहदके साथ चटाना चाहिये। यह चूर्ण आमका पाचन तथा दस्तोंको बन्द करता है, प्यास तथा अरुचिके सहित ज्वरातीसारको नष्ट करता है कामला, संग्रहणी, गुल्म, प्लीहा, प्रमेह, पाण्डुरोग तथा सूजनको नष्ट करता है ॥ २२-२५ ॥

दशमूलीकषायः ।

दशमूलीकषायेण विश्वमक्षसमं पिबेत् ।
ज्वरे चैवातिसारे च सशोथे ग्रहणीगदे ॥ २६ ॥

सोंठका चूर्ण १ तोला दशमूलके काढेके साथ ज्वरातिसार तथा सूजन सहित ग्रहणी रोगको नष्ट करता है २६

विडंगादिचूर्णं क्वाथो वा ।

विडंगातिविषामुस्तं दारु पाठा कलिंगकम् ।
मरिचेन समायुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ २७ ॥

वायविडंग, अतीस, नागरमोथा, देवदारु, पाढ, इन्द्रयव तथा काली मिर्चका चूर्ण कर सूजनयुक्त अतीसारमें देना चाहिये। अथवा क्वाथ बनाकर देना चाहिये ॥ २७ ॥

किरातादिचूर्णद्वयं क्वाथद्वयं च ।

किराताब्दामृताविश्वचन्दनोदीच्यवत्सकैः ।
शोथातिसारशमनं विशेषाज्ज्वरनाशनम् ॥ २८ ॥
किराताब्दामृतोदीच्यमुस्तचन्दनधान्यकैः ।
शोथातीसारतृड्दाहशमनो ज्वरनाशनः ॥ २९ ॥

चिरायता, नागरमोथा, गुर्च, सोंठ, सफेद चन्दन, सुगन्धवाला तथा कुरैयाकी छालका चूर्ण शोथातिसार तथा ज्वरको नष्ट करता है। इसी प्रकार चिरायता, नागरमोथा, गुर्च, नेत्रवाला, नागरमोथा, सफेद चन्दन व धनियाका चूर्ण शोथातिसार, प्यास, दाह तथा ज्वरको नष्ट करता है। अथवा इनका क्वाथ बनाकर देना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

इति ज्वरातिसाराधिकारः समाप्तः ।

---

१ तण्डुलोदकविधि—"जलमष्टगुणं दत्त्वा पलं कण्डित-तण्डुलात् । भावयित्वा ततो ग्राह्यं तण्डुलोदककर्मणि ॥" ४ तोला चावल पानीमें भिला धोकर ३२ तोला जलमें मिलाकर कुछ देर रखनेके अनन्तर छानकर काममें लाना चाहिये ॥

२ इसका अनुपान जो ऊपर लिखा है ज्वरातिसारका है। भिन्न २ रोगोंमें भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ देना चाहिये।

१ यहांपर क्वाथकी प्रधानता होनेसे "कर्षश्चूर्णस्य कल्कस्य गुटिकानां च सर्वशः। द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः।" यह परिभाषा न लगेगी किन्तु "क्वाथेन चूर्णपानं यत्तत्र क्वाथप्रधानता। प्रवर्तते न तेनात्र चूर्णापेक्षी चतुर्द्रवः॥" इस सिद्धान्तसे क्वाथकी प्रधानता निश्चित हो जानेपर "प्रक्षेपः पादिकः क्वाथ्यात्" के अनुसार क्वाथ्यद्रव्यसे चतुर्थांश चूर्णका प्रक्षेप करना चाहिये। अतएव पूर्ण मात्राके लिये शुण्ठीचूर्ण १ कर्ष लिखा है, क्वाथकी मात्रा हीन होनेपर प्रक्षेपरूप चूर्ण भी उतनी ही कम मात्रामें छोड़ना चाहिये।

अथातिसाराधिकारः ।

अतीसारविशेषज्ञानम् ।

आमपक्वक्रमं हित्वा नातिसारे क्रिया यतः ।
अतः सर्वातिसारेषु ज्ञेयं पक्कामलक्षणम् ॥ १ ॥
मज्जत्यामा गुरुत्वाद्विट् पक्वा तूत्प्लवते जले ।
विनातिद्रवसंघातशैत्यश्लेष्मप्रदूषणात् ॥ २ ॥
शकृद्दुर्गन्धिसाटोपविष्टम्भार्तिप्रसेकिनः ।
विपरीतं निरामं तु कफात्पक्वं च मज्जति ॥ ३ ॥

अतिसारमें आमपक्वज्ञान विना चिकित्सा नहीं हो सकती अतः समस्त अतीसारोंमें प्रथम आमपक्व लक्षण जानना चाहिये । अतः उसका निर्णय कर देते हैं। आमयुक्त मल भारी होनेके कारण जलमें डूब जाता है तथा पक्व मल तैरता है पर बहुत पतले बहुत कठिन तथा शीतलता और कफसे दूषित मलमें यह नियम नहीं लगता, अर्थात् अतिद्रव मल आम भी जलमें तैरता है और अतिकठिन तथा कफ दूषित पक्व भी जलमें डूब जाता है । आमयुक्त मल दुर्गन्धित होता है। रोगीके पेटमें अफारा जकड़ाहट तथा पीडा होती है और मुखसे पानी आता रहता है । इससे विपरीत लक्षण होनेपर निराम समझना चाहिये । कफसे दूषित मल पक्व भी बैठ जाता है ॥ १–३ ॥

आमचिकित्सा ।

आमे विलङ्घनं शस्तमादौ पाचनमेव च ।
कार्यं चानशनस्यान्ते प्रद्रवं लघु भोजनम् ॥ ४ ॥
लङ्घनमेकं मुक्त्वा न चान्यदस्तीह भेषजं बलिनः ।
समुदीर्णं दोषचयं शमयति तत्पाचयत्यपि च ॥ ५ ॥

आमातिसारमें प्रथम लङ्घन तथा पाचन कराना चाहिये, लङ्घनके अनन्तर, शास्त्रोक्त द्रव पदार्थ भोजनके लिये देना चाहिये । बलवान् पुरुषके लिये एक लङ्घन छोड़कर अन्य औषध नहीं है । लंघन बढ़े हुए दोषोंको शान्त तथा आमका पाचन करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥

१ आमातिसारमें यद्यपि द्रव द्रव्य निषिद्ध है यथा—"वर्जयेद्द्रवं शूली कुष्ठी मांसं क्षयी स्त्रियम् । द्रवमन्नमतीसारी सर्वं च तरुणज्वरी" पर यहां 'प्रद्रव' पथ्य लिखा है अतः प्रशब्द शास्त्रोक्त द्रव द्रव्यका प्रतिपादक है ।

अतिसारे जलविधानम् ।

ह्रीवेरशृङ्गवेराभ्यां मुस्तपर्पटकेन वा ।
मुस्तोदीच्यशृतं तोयं देयं वापि पिपासवे ॥

सुगन्धवाला, सोंठ अथवा नागरमोथा, पित्तपापड़ा अथवा नागरमोथा, सुगन्धवालासे सिद्ध किया हुआ जल पिपासावालेके लिये देना चाहिये ॥

अतिसारेऽन्नविधानम् ।

युक्तेऽन्नकाले क्षुत्क्षामं लघून्यन्नानि भोजयेत् ॥ ६ ॥
औषधसिद्धा पेया लाजानां सक्तवोऽतिसारहिता ।
वस्त्रप्रस्रुतमण्डः पेया च मसूरयूषश्च ॥ ७ ॥
गुर्वी पिण्डी खराऽत्यर्थं लघ्वी सैव विपर्ययात् ॥
सक्तूनामाशु जीर्येत मृदुत्वादवलेहिका ॥ ८ ॥

जब रोगी भूखसे व्याकुल हो और अन्नका समय उपस्थित हो तब हलके पदार्थ यथा औषधि सिद्ध पेया अथवा खीलके सत्तू अथवा कपड़ेसे छाना हुआ मण्ड अथवा पेया अथवा मसूरका यूष देना चाहिये । सत्तुओंकी कड़ी पिंडी भारी और पतला अवलेह हलका होता है अत एव हलके होनेसे पतले सत्तू जल्दी हजम होते हैं ६–८

आहारसंयोगिशालिपर्ण्यादिः ।

शालिपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ॥ ९ ॥
बलाश्वदंष्ट्राबिल्वानि पाठानागरधान्यकम् ।
एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥ १० ॥

सरिवन, पिठिवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, खरेटी, गोखुरू, कच्चे बेलका गूदा, पाढ़ी सोंठ, धनियां इन द्रव्योंका आहारके सिद्ध करनेमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

अपरः शालिपर्ण्यादिः ।

शालिपर्णीबलाबिल्वैः पृश्निपर्ण्या च साधिता ॥
दाडिमाम्ला हिता पेया पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ११ ॥

सरिवन, खरेटी, बेलका गूदा, पिठवनसे सिद्ध की गयी तथा अनारका रस छोड़कर खट्टी की गयी पेया पित्तश्लेष्मातिसारवालोंके लिये हितकर होती है ॥ ११ ॥

व्यञ्जननिषेधः ।

यवागूमुपयुञ्जानो नैव व्यञ्जनमाचरेत् ।
शाकमांसफलैर्युक्ता यवाग्वोऽम्लाश्च दुर्जराः ॥ १२ ॥

यवागूका सेवन करनेवाला किसी व्यञ्जनका प्रयोग न करे क्योंकि शाक, मांस और फलरसोंसे युक्त अथवा खट्टी यवागू कठिनतासे हजम होती है ॥ १२ ॥

विशिष्टाहारविधानम् ।

धान्यपञ्चकसंसिद्धो धान्यविश्वकृतोऽथवा।
आहारो भिषजा योज्यो वातश्लेष्मातिसारिणाम् ॥१३॥

धान्यपञ्चक[१] (धनिया, सोंठ, मोथा, सुगन्धवाला, बेल) अथवा धनिया व सोंठसे सिद्ध किया आहार वैद्यको वातश्लेष्मातिसारवालेके लिये देना चाहिये ॥१३॥

वातपित्ते पञ्चमूल्या कफे वा पञ्चकोलकैः।
धान्योदीच्यश्रुतं तोयं तृष्णादाहातिसारनुत् ॥ १४ ॥
आभ्यामेव सपाठाभ्यां सिद्धमाहारमाचरेत्।

वातपित्तातिसारमें लघुपञ्चमूलसे, कफातिसारमें पञ्चकोल "पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः" से तथा तृष्णा दाहयुक्त अतीसारमें धनिया व सुगन्धवालासे सिद्ध किया हुआ जल पीनेके लिये देना चाहिये। और धनियां, सुगन्धवाला और पाढसे सिद्ध जलसे पथ्य बनाकर देना चाहिये ॥ १४ ॥

सञ्चितदोषहरणम् ।

दोषाः सञ्चिता यस्य विदग्धाहारमूर्च्छिताः ॥ १५ ॥
अतीसाराय कल्पन्ते भूयस्तान्सम्प्रवर्तयेत्।
न तु संग्रहणं दद्यात्पूर्वमामातिसारिणे ॥ १६ ॥
दोषा ह्यादौ रुध्यमाना जनयन्त्यामयान्बहून्।
शोथपाण्डवामयप्लीहकुष्ठगुल्मोदरज्वरान् ॥ १७ ॥
दण्डकालसकाध्मानान्ग्रहण्यर्शोगदांस्तथा।

जिसके अविपक्व आहारसे बढे हुए दोष इकट्ठे होकर अतीसार उत्पन्न करते हैं उन दोषोंको विरेचन द्वारा निकाल ही देना चाहिये। आमातिसारवालेको प्रथम दस्त बन्द करनेवाली औषध न देना चाहिये। क्योंकि बढ़े हुए दोष रुक जानेसे सूजन, पाण्डुरोग, प्लीहा, कुष्ठ, गुल्म, उदररोग, ज्वर, दण्डालसक, अफारा, ग्रहणी तथा अर्शआदि अनेक रोगोंको उत्पन्न कर देते हैं ॥ ॥ १५-१७ ॥—

स्तम्भनावस्था ।

क्षीणधातुबलार्तस्य बहुदोषोऽतिनिस्रुतः ॥ १८ ॥
आमोऽपि स्तम्भनीयः स्यात्पाचनान्मरणं भवेत्।

जिसका धातु व बल क्षीण हो गया है, दस्त बहुत आचुके हैं फिर भी दोष बढे हुए हैं और आम भी है तो भी संग्राही औषध देना चाहिये केवल पाचनसे मृत्यु हो सकती है ॥ १८ ॥—

१ धान्यपञ्चकम्—"धान्यकं नागरं मुस्तं बिल्वं वालकमेव च। धान्यपञ्चकमाख्यातमामातीसारशूलनुत्"।

विरेचनावस्था ।

स्तोकंस्तोकं विबद्धं वा सशूलं योऽतिसार्यते ॥ १९ ॥
अभयापिप्पलीकल्कैः सुखोष्णैस्तं विरेचयेत्।

जिसको पीडाके सहित थोडा थोडा बँधा हुआ दस्त उतरता है उसे कुछ गरम गरम हर्र तथा छोटी पीपलका कल्क देकर विरेचन करना चाहिये ॥ १९ ॥—

धान्यपञ्चकम् ।

धान्यकं नागरं मुस्तं वालकं बिल्वमेव च ॥ २० ॥
आमशूलविबन्धघ्नं पाचनं वह्निदीपनम्।
इदं धान्यचतुष्कं स्यात्पित्ते शुण्ठीं विना पुनः ॥ २१ ॥

धनिया, सोंठ, नागरमोथा, सुगन्धवाला, बेलका गूदा, यह धान्यपञ्चक कहा जाता है। यह आम, शूल तथा विबन्धको नष्ट कर अग्निको दीपन करता है। पित्तातिसारमें सोंठको पृथक् कर शेष चार चीजें देनी चाहिये इसे धान्यचतुष्क कहते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

प्रमथ्याः।

पिप्पली नागरं धान्यं भूतीकं चाभयां वचाम्।
ह्रीवेरभद्रमुस्तानि बिल्वं नागरधान्यकम् ॥ २२ ॥
पृश्निपर्णी श्वदंष्ट्रा च समंगा कण्टकारिका।
तिस्रः प्रमथ्या विहिताः श्लोकार्धैरतिसारिणाम् ॥२३॥
कफे पित्ते च वाते च क्रमादेताः प्रकीर्तिताः।
संज्ञा प्रमथ्या ज्ञातव्या योगे पाचनदीपने ॥ २४ ॥

छोटी पीपल, सोंठ, धनिया, अजवाइन, हर्र तथा बचसे सुगन्धवाला, नागरमोथा, बेलका गूदा, सोंठ व धनियांसे तथा पिठवन, गोखरू, लज्जालु, भटकटैयाकी जडसे बनायी गयी आधे आधे श्लोकमें कही गई तीन प्रमथ्या क्रमशः प्रथम कफ, द्वितीय पित्त तथा तृतीय वातजन्य अतिसारमें देना चाहिये। प्रमथ्या पाचन दीपन योगको ही कहते हैं। अर्थात् यह तीनो प्रयोग चूर्ण अथवा कषायद्वारा दीपन पाचन करते हैं॥२२-२४॥

आमातिसारघ्नचूर्णम् ।

त्र्यूषणातिविषाहिंगुबलासौवर्चलाभयाः।
पीत्वोष्णेनाम्भसा हन्यादामातीसारमुद्धतम् ॥ २५ ॥

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, अतीस, भूनी हींग, खरेटी, काला नमक, बडी हर्रका छिल्का कूट कपड छानकर गरम जलके साथ पीनेसे उद्धत आमातीसार नष्ट होता है। (इसकी मात्रा ३ माशेसे ६ माशे तक है) ॥ २५ ॥

पिप्पलीमूलादिचूर्णम् ।

अथवा पिप्पलीमूलपिप्पलीद्वयचित्रकान् ।
सौवर्चलवचाव्योषहिङ्गुप्रतिविषाभया ॥ २६ ॥
पिबेच्छ्लेष्मातिसारार्तश्चूर्णिताश्चोष्णवारिणा ।

अथवा पिपरामूल, दोनों पीपल, चीतकी जड, काला नमक, बच–दूधिया, सोंठ, मिर्च, पीपल, भूनी हींग, अतीस, हर्रका छिलका कूट कपडछानकर श्लेष्मातिसारसे पीडित रोगीको गरम जलके साथ पीना चाहिये॥२६॥–

हरिद्रादिचूर्णम् ।

हरिद्रादि वचादि वा पिबेदामेषु बुद्धिमान् ॥ २७ ॥
खडयूषयवागूषु पिप्पल्यादि प्रयोजयेत् ।

आमातिसारमें हरिद्रादिगण " हरिद्रादारुहरिद्रा कलशीकुटजबीजानि मधुकश्चेति " अथवा वचादिगण " वचामुस्तातिविषाभयाभद्रदारुनागरश्चेति " का प्रयोग करना चाहिये । तथा खड चटनीया, अचार,यूष, यवागू आदिमें पिपल्यादिगण (ज्वराधिकारोक्त) का प्रयोग करना चाहिये ॥ २७ ॥—

खडयूषकाम्बलिकौ ।

तक्रे कपित्थचाङ्गेरीमरिचाजाजिचित्रकैः ॥२८॥
सुपक्वः खडयूषोऽयमयं काम्बलिकोऽपरः ।
दध्यम्लो लवणस्नेहतिलमाषसमन्वितः ॥ २९ ॥

मट्ठेमें कैथा, अमलोनिया, काली मिर्च, जीरा, चीतकी जड तथा यूष होनेसे मूंग भी छोडना चाहिये, तीक्ष्ण द्रव्य छःछः मासे, साधारणद्रव्य एक एक पल, तक्र एक प्रस्थ छोडकर पकाकर छान लेना चाहिये। यह खडयूष कहा जाता है और दही लवण, स्नेह तिल उडद मिलाकर पकाया गया काम्बलिक कहा जाता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

नागरादिपानीयम् ।

नागरातिविषामुस्तैरथवा धान्यनागरैः ।
तृष्णातीसारशूलघ्नं पाचनं दीपनं लघु ॥ ३० ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा अथवा धनियां व सोंठसे सिद्ध किया जल प्यास,अतीसार तथा शूलको नष्ट करता है, हलका, पाचन तथा दीपन है ॥ ३० ॥

पाठादिक्काथश्चूर्णं वा ।

पाठावत्सकबीजानि हरीतक्यो महौषधम् ।
एतदामसमुत्थानमतीसारं सवेदनम् ॥ ३१ ॥
कफात्मकं सपित्तञ्च वर्चो बध्नाति च ध्रुवम् ।

पाढ, इन्द्रयव, बडीहर्रका छिल्का और सोंठका चूर्ण अथवा क्काथ कफ अथवा पित्तसे उत्पन्न पीडा सहित आमातिसारको नष्ट करता तथा मलको गाढा करता है ॥३१॥

मुस्ताक्षीरम् ।

पयस्युत्क्वाथ्य मुस्ता वा विंशतिम्भद्रकाह्वया' ॥ ३२ ॥
क्षीरावशिष्टं तत्पीतं हन्यादामं सवेदनम् ।

२० मोथेकी जड दूध तथा जल मिलाकर पकाना चाहिये दूध मात्र शेष रहनेपर पीनेसे पीडायुक्त आमातिसार नष्ट होता है ॥ ३२ ॥–

संग्रहणावस्था ।

पक्वोऽप्यकृदतीसारो ग्रहणी मार्दवाद्यदा ॥ ३३ ॥
प्रवर्तते तदा कार्यः क्षिप्रं साम्राहिको विधिः ।

ग्रहणीके कमजोर हो जानेपर जब पके हुए दस्त बारबार आते हैं उस समय तत्काल संग्राहक औषधका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

पञ्चमूल्यादिक्काथश्चूर्णं वा ।

पञ्चमूलीबलाविश्वधान्यकोत्पलबिल्वजा ॥ ३४ ॥
वातातिसारिणे देया तक्रेणान्यतमेन वा ।

लघुपञ्चमूल, खरेटी, सोंठ, धनिया, नीलोफर, बेलका गूदा, सबका चूर्ण बनाकर मट्ठेके साथ अथवा अन्य किसी द्रव द्रव्यके साथ देना चाहिये । अथवा इनका क्काथ बनाकर पिलाना चाहिये । ॥ ३४ ॥–

कञ्चटादिक्काथः ।

कञ्चटजम्बुदाडिमश्रृङ्गाटकपत्रबिल्वह्रीबेरम् ॥ ३५ ॥
जलधरनागरसहितं गङ्गामपि वेगिनीं रुन्ध्यात् ।

---

१ पिप्पल्यादिगणका पाठ सुश्रुतसंहितामें इसप्रकार है– "पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकश्रृङ्गवेरमरिचहस्तिपिप्पलीहरेणुकैलाजमोदेन्द्रयवपाठाजीरकसर्षपमहानिम्बफलहिङ्गुभार्गीमधुरसातिविषावचाविडङ्गानि कटुरोहिणी चेति ।" "पिप्पल्यादिकफहरः प्रतिश्यायानिलारुचीः । निहन्याद्दीपनो गुल्मशूलघ्नश्चामपाचनः ।

१ क्षीरपाकविधिः । " द्रव्यादष्टगुणं क्षीरं क्षीरान्नीरं चतुर्गुणम् । क्षीरावशेषः कर्तव्यः क्षीरपाके त्वयं विधिः ॥" यहां दूध बकरीका लेना चाहिये ।

चौलाई अथवा जलपिप्पली, जामुनके पत्ते, अनारके पत्ते, सिंघाडाके पत्ते, बेलका गूदा, सुगन्धवाला, नागरमोथा तथा सोंठका क्वाथ वेगयुक्त अतीसारको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥

नाभिपूरणम् ।

कृत्वालवालं सुदृढं पिष्टैरामलकैर्भिषक् ॥ ३६ ॥
आर्द्रकस्वरसेनाशु पूरयेन्नाभिमण्डलम् ।
नदीवेगोपमं घोरमतीसारं निरोधयेत् ॥ ३७ ॥

आमलोंको महीन पीसकर नाभिके चारों ओर मेंड बांधनी चाहिये फिर अदरखका रस नाभिमण्डलमें भर देना चाहिये । इससे नदीके वेगके समान बढ़ा हुआ अतिसार नष्ट हो जाता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

किराततिक्तादिक्वाथः ।

किराततिक्तकं मुस्तं वत्सकं सरसाञ्जनम् ॥
पिबेत्पित्तातिसारघ्नं सक्षौद्रं वेदनापहम् ॥ ३८ ॥

चिरायता, नागरमोथा, कुड़ेकी छाल, तथा रसौतका क्वाथ शहद मिलाकर पीनेसे पीडायुक्त पित्तातिसार नष्ट हो जाता है । अथवा इसका चूर्ण बनाके शहद व चावलके जलसे सेवन करना चाहिये ॥ ३८ ॥

वत्सकबीजक्वाथः ।

पलं वत्सकबीजस्य श्रपयित्वा जलं पिबेत् ।
यो रसाशी जयेच्छीघ्रं स पैत्तं जठरामयम् ॥ ३९ ॥

एक पल इन्द्रजवका क्वाथ बनाकर पीने तथा मांस रसके साथ भोजन करनेसे पैत्तिक अतीसार नष्ट हो जाता है ॥ ३९ ॥

मधुकादिचूर्णम् ॥

मधुकं कट्फलं लोध्रं दाडिमस्य फलत्वचम् ।
पित्तातिसारे मध्वक्तं पाययेत्तण्डुलाम्बुना ॥ ४० ॥

मौरेठी, कायफल, पठानी लोध, अनारका छिलका सब समान भाग ले, चूर्ण बना, शहद मिलाकर चटाना चाहिये और ऊपरसे चावलका धोवन जल पिलाना चाहिये, इससे पित्तातिसार नष्ट होता है ॥ ४० ॥

कुटजादिचूर्णं क्वाथो वा ।

कुटजातिविषामुस्तं हरिद्रापर्णिनीद्वयम् ।
सक्षौद्रशर्करं शस्तं पित्तश्लेष्मातिसारिणाम् ॥ ४१ ॥

कुड़ेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, हल्दी, दारुहल्दी, माषपर्णी, मुद्गपर्णीका क्वाथ अथवा चूर्ण बनाकर शहद व मिश्री मिलाकर पीनेसे पित्तश्लेष्मातिसार नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

क्वाथान्तरम् ।

कुटजत्वक्फलं मुस्तं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
अतीसारं जयत्याशु शर्करामधुयोजितम् ॥ ४२ ॥

कुड़ेकी छाल, इन्द्रयव, तथा नागरमोथाका क्वाथ शक्कर तथा शहद मिलाकर पीनेसे अतीसार नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

बिल्वादिक्वाथः ।

बिल्वचूतास्थिनिर्यूहः पीतः सक्षौद्रशर्करः ।
निहन्याच्छर्द्यतीसारं वैश्वानर इवाहुतिम् ॥ ४३ ॥

कच्चे बेलका गूदा तथा आमकी गुठलीका क्वाथ शक्कर तथा शहदके साथ पीनेसे अग्नि आहुतिके समान वमन तथा अतीसारको नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलयवधान्याकक्वाथः पेयः सुशीतलः ।
शर्करामधुसंयुक्तश्छर्द्यतीसारनाशनः ॥ ४४ ॥

परवलके पत्ते, यव तथा धनियाका क्वाथ ठण्ढा कर शक्कर तथा शहद मिलाकर पीनेसे वमन तथा अतीसार नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

प्रियंग्वादिचूर्णम् ।

प्रियंग्वञ्जनमुस्ताख्यं पाययेत्तु यथाबलम् ।
तृष्णातीसारछर्दिघ्नं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ ४५ ॥

फूलप्रियंगु, रसौत तथा नागरमोथाका चूर्ण बनाके शहद तथा चावलके धोवनके साथ बलके अनुसार सेवन करनेसे प्यास, वमन तथा अतीसार नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

वातपित्तातिसारे कल्कः ।

कलिङ्गकवचामुस्तं दारु सातिविषं समम् ।
कल्कं तण्डुलतोयेन पिबेत्पित्तानिलामयी ॥ ४६ ॥

इन्द्रयव, वच, दूबिया, नागरमोथा, देवदारु तथा अतीसका कल्क चावलके धोवनके साथ पीनेसे वातपित्तातिसारको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥

कुटजादिक्वाथः ।

कुटजं दाडिमं मुस्तं धातकीबिल्ववालकम् ।
लोध्रचन्दनपाठाश्च कषायं मधुना पिबेत् ॥ ४७ ॥
मासे सशूले रक्तेऽपि पिच्छास्रावेषु शस्यते ।
कुटजादिरिति ख्यातः सर्वातीसारनाशनः ॥ ४८ ॥

कुड़ेकी छाल, अनारका छिलका, नागरमोथा, धायके फूल, बेलका गूदा, सुगन्धवाला, पठानी लोध, लाल

चन्दन तथा पाढका काढा शहद मिलाकर पीनेमे आम-शूल, रक्त तथा लासेदार दस्तोको रोकता है तथा यह कुटजादि क्वाथ समस्त अतीसाराको नष्ट करता है ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

समङ्गादिक्वाथः ।

समङ्गातिविषा मुस्तं विश्वं ह्रीवेरधातकी ।
कुटजत्वक्फलं बिल्वं क्वाथः सर्वातिसारनुत् ॥ ४९ ॥

लज्जावन्तीके बीज, अतीस, नागरमोथा, सोठ, सुगन्धवाला, धायके फूल, कुडेकी छाल, इन्द्रयव, बेलका गूदा सबका क्वाथ बनाकर पीनेसे समस्त अतीसार नष्ट होते है ॥ ४९ ॥

हिज्जलस्वरसः ।

दलोत्थं स्वरसं पेयो हिज्जलस्य समाक्षिकः ।
जयत्याममतीसारं क्वाथो वा कुटजत्वचः ॥ ५० ॥

हिज्जल (समुद्रफल) के पत्तोका स्वरस शहदके साथ अथवा कुडेकी छालका क्वाथ आमातिसारको नष्ट करता है ॥ ५० ॥

वटारोहकल्कः ।

वटारोहं तु सम्पिष्य श्लक्ष्णं तण्डुलवारिणा ।
तं पिबेत्तक्रसंयुक्तमतीसाररुजापहम् ॥ ५१ ॥

बरगदकी बोंको चावलके धोवनके साथ महीन पीस मट्ठेके साथ मिलाकर अतीसारकी पीडा नष्ट करनेके लिये पीना चाहिये ॥ ५१ ॥

अङ्कोठमूलकल्कः ।

तण्डुलजलपिष्टाङ्कोठमूलकर्षार्धपानमपहरति ।
सर्वातिसारग्रहणीरोगसमूहं महाघोरम् ॥ ५२ ॥

६ माशे अकोहरकी जडको चावलके जलके साथ पीसकर पीनेसे समस्त अतीसार तथा घोर ग्रहणीरोग नष्ट हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

बब्बूलदलकल्कः ।

कल्कः कोमलबब्बूलदलात्पीतोऽतिसारहा ।

कोमल बब्बूलकी पत्तीका कल्क जलमे छानकर पीनेसे अतीसारको नष्ट करता है ।

कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्कृतः क्वाथो घनीभूतः सुशीतलः ॥ ५३ ॥
लिहितोऽतिविषायुक्तः सर्वातीसारनुद्भवेत् ।
वदन्त्यत्राष्टमांशेन क्वाथादतिविषारजः ॥ ५४ ॥
प्रक्षेप्यत्वात्पादिकं तु लेह्यादिति च नो मतिः ।

कुडेकी छालके क्वाथको गाढा कर ठण्ढा होनेपर अतीस चूर्ण मिलाकर चाटनेसे समस्त अतीसार नष्ट होते है । क्वाथकी अपेक्षा अष्टमांश अतीसका चूर्ण छोडना कुछ आचार्य बतलाते है पर प्रक्षेप होनेसे चतुर्थांश ही छोडना चाहिये यह ग्रन्थकारका मत है । तथा अन्यत्र भी यही व्यवस्था समझना चाहिये । यदुक्तम्—लेहे तु यत्र नो भागो निर्दिष्टो द्रवकल्कयोः । तत्रापि पादिकः कल्को द्रवात्कार्यो विजानता ॥ ५३ ॥ ५४ ॥—

अंकोठवटक ।

सदार्व्यङ्कोठपाठानां मूलं त्वक्कुटजस्य च ॥ ५५ ॥
शाल्मलीशालनिर्यासधातकीलोध्रदाडिमम् ।
पिष्ट्वाक्षसम्मितान्कृत्वा वटकांस्तण्डुलाम्बुना ॥ ५६ ॥
तेनैव मधुसंयुक्तानेकैकान्प्रातरुत्थितः ।
पिबेदत्ययमापन्नो विड्विसर्गेण मानवः ॥ ५७ ॥
अङ्कोठवटको नाम्ना सर्वातीसारनाशनः ।

दारुहल्दी, अकोहर, पाढकी जड, कुडेकी छाल, मोचरस, राल, धायके फूल, पठानी लोध, अनारका छिलका, सब समान भाग ले, महीन पीसकर चावलके धोवनके साथ एक एक तोलेकी गोली बनानी चाहिये और उसी जलके साथ शहदमें मिलाकर प्रातःकाल सेवन करना चाहिये । यह अकोटवटक समस्त अतीसारोको नष्ट करता है ॥ ५५–५७ ॥—

रक्तातिसारचिकित्सा ।

पयस्यर्द्धोदके छागे ह्रीवेरोत्पलनागरैः ॥ ५८ ॥
पेया रक्तातिसारघ्नी पृश्निपर्ण्या च साधिता ।

आधे जल मिले हुए बकरीके दूधमें सुगन्धवाला, नीलोफर, नागरमोथा तथा पिठिवनका क्वाथ मिलाकर बनायी गयी पेया रक्तातीसारको नष्ट करती है ॥ ५८ ॥

रसाञ्जनादिकल्कः ।

रसाञ्जनं सातिविषं कुटजस्य फलं त्वचम् ॥ ५९ ॥
धातकीं शृङ्गवेरं च प्रपिबेत्तण्डुलाम्बुना ।
क्षौद्रेण युक्तं नुदति रक्तातीसारमुल्बणम् ॥ ६० ॥
मन्दं दीपयते चाग्निं शूलं चापि निवर्तयेत् ।

---

१ अत्र नागरमुस्तमेव न तु शुण्ठी "अजाक्षीरकोष्ट्रीघनजलोत्पलैः" इति जतुकर्णसंवादात् शिवदासेनापि स्वीकृतम् ।

सोंठ, अतीसार, कुरैयाकी छाल, इन्द्रयव, धायके फूल, सोंठ सब समान भाग ले महीन पीस चावलके धोवनसे शहदके साथ चाटकर उतारनेसे बढ़ा हुआ रक्तातीसार नष्ट होता है। मन्द अग्निको दीप्त तथा शूलको नष्ट करता है ॥ ५९ ॥ ६० ॥

विडंगादिचूर्णं क्वाथो वा ।

विडङ्गातिविषा मुस्तं दारु पाठा कलिङ्गकम् ॥६१॥
मरिचेन च संयुक्तं शोथातीसारनाशनम् ॥ ६२ ॥

वायविडंग, अतीस, नागरमोथा देवदारु, पाठ, इन्द्रयव, कालीमिर्च, इनका चूर्ण अथवा क्वाथ पीनेसे सूजनयुक्त अतीसार नष्ट होता है ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

वत्सकादिकषायः ।

सवत्सकः सातिविषः सबिल्वः सोदीच्यमुस्तश्च कृतः कषायः ।
सामे सशूले सहशोणिते च चिरप्रवृत्तेऽपि हितोऽतिसारे ६३

कुड़ेकी छाल, अतीस, बेलका गूदा, सुगन्धवाला व नागरमोथासे बनाया गया क्वाथ आमशूल, रक्त सहित तथा अधिक समयसे उत्पन्न हुए अतीसारको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥

दाडिमादिकषायः ।

कषायो मधुना पीतस्त्वचो दाडिमवत्सकात् ।
सद्यो जयेदतीसारं सरक्तं दुर्निवारकम् ॥ ६४ ॥

अनारके छिल्का तथा कुड़ेकी छालका क्वाथ शहदके साथ पीनेसे तत्काल ही कठिन रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ६४ ॥

बिल्वकल्कः ।

गुडेन खादयेद्बिल्वं रक्तातीसारनाशनम् ।
आमशूलविबन्धघ्नं कुक्षिरोगविनाशनम् ॥ ६५ ॥

कच्चे बेलका कल्क गुड़के साथ खानेसे रक्तातीसार, आमदोष, शूल, मलकी रुकावट तथा अन्य उदररोग नष्ट होते हैं ॥ ६५ ॥

बिल्वादिकल्कः ।

बिल्वाब्दधातकीपाठाशुण्ठीमोचरसाः समाः ।
पीता रुन्धन्त्यतीसारं गुडतक्रेण दुर्जयम् ॥ ६६ ॥

बेलका गूदा, नागरमोथा, धायके फूल, पाढ, सोंठ, मोचरस सब समान भाग ले कल्क कर गुड़ तथा मट्ठेमें मिलाकर पीनेसे कठिन रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ६६ ॥

शल्लक्यादिकल्कः ।

शल्लकीबदरीजम्बूपियालाम्रार्जुनत्वचः ।
पीताः क्षीरेण मध्वाढ्याः पृथक्शोणितनाशनाः ॥६७॥

शाल, बेर, जामुन, चिरौंजी, आम्र तथा अर्जुनमेंसे किसीकी छालका कल्क दूध तथा शहदके साथ सेवन करनेसे रक्तातीसारको नष्ट करता है ॥ ६७ ॥

जम्ब्वाम्रामलकीनां तु पल्लवानथ कुट्टयेत् ।
सगृह्य स्वरसं तेषामजाक्षीरेण योजयेत् ॥ ६८ ॥
तं पिबेन्मधुना युक्तं रक्तातीसारनाशनम् ।

जामुन, आम तथा आमलाके पत्तोंको कूट स्वरस निकाल बकरीका दूध तथा शहद मिलाकर पीना चाहिये इससे रक्तातिसार नष्ट होगा ॥ ६८ ॥—

तण्डुलीयकल्कः ।

ज्येष्ठाम्बुना तण्डुलीयं पीतं च सशितामधु ॥ ६९ ॥
पीत्वा शतावरीकल्कं पयसा क्षीरभुग्जयेत् ।
रक्तातिसारं पीत्वा वा तया सिद्धं घृतं नरः ॥ ७० ॥

चौलाईका कल्क मिश्री तथा शहद मिलाकर चावलके जलके साथ पीनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है। इसी प्रकार शतावरीका कल्क दूधके साथ पीनेसे तथा दूधका पथ्य लेनेसे रक्तातीसार नष्ट होता है। इसी प्रकार इन्हीं ओषधियों द्वारा सिद्ध घृतसे भी रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ६९ ॥ ७० ॥

कुटजावलेहः ।

कुटजस्य पलं ग्राह्यमष्टभागजले शृतम् ।
तथैव विपचेद्भूयो दाडिमोदकसंयुतम् ॥ ७१ ॥
यावत्स्यात्तु लसीकाभं शृतं तमुपकल्पयेत् ।
तस्यार्द्धकर्षं तक्रेण पिबेद्रक्तातिसारवान् ॥ ७२ ॥
अवश्यमरणीयोऽपि मृत्योर्याति न गोचरम् ।
क्वाथतुल्यं दाडिमाम्बु भागाबुक्तौ समं यतः ॥ ७३ ॥

कुड़ेकी छाल एक पल लेकर महीन पीस अष्टगुण जलमें पकाकर अष्टमांश रहनेपर इसीके बराबर अनारका रस मिलाकर जबतक गाढा न हो जाय तबतक पकाना चाहिये. गाढा हो जानेपर इसको उतारकर छः माशेकी मात्रा मट्ठेके साथ पीनी चाहिये। इससे मुमूर्षु भी रक्तातिसारी आरोग्य लाभ करता है। इसमें क्वाथके

---

१ इस अवलेहमें कुड़ेकी छालका क्वाथ छाना नहीं जाता अतः कल्क महीन छोड़ना चाहिये ।

समानही अनारका रस छोडना चाहिये । क्योंकि जहां भागका विशेष वर्णन न हो वहां समान भाग ही छोड़ा जाता है ॥ ७१-७३ ॥

तिलकल्कः ।

कल्कस्तिलानां कृष्णानां शर्कराभागसंयुत. ।
आजेन पयसा पीत. सद्यो रक्तं नियच्छति ॥ ७४ ॥

काले तिलका कल्क १ भाग, शर्करा ४ भाग दोनोंसे चतुर्गुण बकरीका दूध मिलाकर पीनेसे तत्काल रक्तातीसार नष्ट होता है ॥ ७४ ॥

गुदप्रपाकादिचिकित्सा ।

गुददाहे प्रपाके वा पटोलमधुकाम्बुना ।
सेकादिक प्रशंसन्ति च्छागेन पयसाऽपि वा ॥ ७५ ॥
गुदभ्रंशे प्रकर्तव्या चिकित्सा तत्प्रकीर्तिता ।

गुदाकी जलन तथा गुदाके पक जानेपर परवलकी पत्ती तथा मुलहठीके क्वाथसे अथवा बकरीके दूधसे सिञ्चन (तर) करना चाहिये । गुदभ्रंश (काच निकलने) मे गुदभ्रंशकी चिकित्सा (क्षुद्ररोगाधिकारोक्त) करनी चाहिये ॥ ७५ ॥

पुटपाकयोग्यावस्था ।

अवेदनं सुसम्पक्वं दीप्ताग्नेः सुचिरोत्थितम् ।
नानावर्णमतीसारं पुटपाकैरुपाचरेत् ॥ ७६ ॥

जिसकी अग्नि दीप्त है, पीडा भी नहीं होती, दोष परिपक्व हो गये हैं पर अधिक समयसे अनेक प्रकारके दस्त आ रहे हैं उन्हें पुटपाक द्वारा आरोग्य करना चाहिये ॥ ७६ ॥

कुटजपुटपाकः ।

स्निग्ध घनं कुटजवल्कमजन्तुजग्ध-
मादाय तत्क्षणमतीव च पोथयित्वा ।
जम्बूपलाशपुटतण्डुलतोयसिक्तं
बद्धं कुशेन च बहिर्घनपङ्कलिप्तम् ॥ ७७ ॥
सुस्विन्नमेतदवपीड्य रसं गृहीत्वा
क्षौद्रेण युक्तमतिसारवते प्रदद्यात् ।
कृष्णात्रिपुत्रमतपूजित एष योगः
सर्वातिसारहरणे स्वयमेव राजा ॥ ७८ ॥
स्वरसस्य गुरुत्वेन पुटपाकपलं पिबेत् ।
पुटपाकस्य पाकोऽयं बहिरारक्तवर्णता ॥ ७९ ॥

जो कीड आदिसे खराब न हुई हो ऐसी चिकनी मोटी तथा ताजी कुडेकी छालको खूब कूट चाव[illegible] जामुनके पत्तोंके सम्पुटमें रख कु[illegible] बाहर गीली मिट्टीसे मोटा लेप कर कण्डोंमें [illegible] पक जानेपर मिट्टी पत्ते अलग कर स्वरस निकालना चाहिये फिर उसे शहदके साथ अतिसारवालेको देना चाहिये । यह योग भगवान पुनर्वसुद्वारा कहा गया समस्त अतीसारोंके नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है । स्वरसकी अपेक्षा पुटपाक हल्का होता है अतः इसे ४ तोला पीना चाहिये तथा पुटपाकको तबतक पकाना चाहिये जबतक बाहर लाल न हो जावे ॥ ७७-७९ ॥

श्योनाकपुटपाकः ।

त्वक्पिण्डं दीर्घवृन्तस्य काश्मरीपत्रवेष्टितम् ।
मृदावलिप्तं सुकृतमङ्गारेष्ववकूलयेत् ॥ ८० ॥
स्विन्नमुद्धृत्य निष्पीड्य रसमादाय यत्नत. ।
शीतीकृत मधुयुतं पाययेदुदरामये ॥ ८१ ॥

सोनापाठाकी छालके पिण्डको खम्भारके पत्तोंमे लपेट कुशोंसे बांध ऊपरसे मिट्टीका लेप करना चाहिये पुनः अंगारोंमें पकाना चाहिये । पकजाने पर निकालकर रस निचोड ठण्डा कर शहद मिलाकर अतीसारमे पिलाना चाहिये ॥ ८० ॥ ८१ ॥

कुटजलेहः ।

शतं कुटजमूलस्य क्षुण्णं तोयार्मणे पचेत् ।
क्वाथे पादावशेषेऽस्मिँल्लेह पूते पुन पचेत् ॥ ८१ ॥
सौवर्चलयवक्षारविडसैन्धवपिप्पली. ।
धातकीन्द्रयवाजाजीचूर्णं दत्वा पलद्वयम् ॥ ८३ ॥
लिह्याद्बदरमात्रं तच्छीतं क्षौद्रेण संयुतम् ॥
पक्वापक्वमतीसारं नानावर्णं सवेदनम् ॥
दुर्वारं ग्रहणीरोगं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ ८४ ॥

कुडेकी छाल एक ४० तोले, एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये । क्वाथ चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर पुनः अवलेह पकाना चाहिये । अवलेह कुछ गाढा हो जानेपर काला नमक, यवाखार विडनमक, सेंधानमक, छोटी पीपल, धायके फूल, इन्द्रयव, जीरा सब मिलाकर आठ तोले अर्थात् प्रत्येक एक तोला डालना चाहिये। तैयार हो जानेपर उतार ठण्डाकर अर्ध कर्षकी मात्रासे

---

१ तथा च शार्ङ्गधरः-स्वरसस्य गुरुत्वाच्च पलमर्धं प्रयोजयेत् । निशोषितं चाग्निसिद्धं पलमात्रं रसं पिबेत् ॥

२ इस प्रयोगको सुश्रुतमें कुछ अधिक बढा दिया है यथा" त्वक्पिण्डं दीर्घवृन्तस्य पद्मकेशरसंयुतम् । काश्मरीपत्रपत्रैश्चावेष्ट्य सूत्रेण न दृढम्" शेषम्पूर्ववत् अर्थात् सोना पाठाकी छाल व कमलका केशर समान भाग ले महीन पीस कमल व काश्मरीके पत्तोंमे लपेट कर पूर्ववत् पुटपाक द्वारा पकाना चाहिये ।

शहद मिलाकर चाटना चाहिये इससे अनेक प्रकारकी पीडाओंसे युक्त अनेक प्रकारके अतिसार पक्व तथा अपक्व, तथा कठिन ग्रहणी रोग तथा प्रवाहिका रोग नष्ट होते हैं ॥ ८२–८४ ॥

कुटजाष्टकः।

तुलामथार्द्रां गिरिमल्लिकायाः
संक्षुद्य पक्त्वा रसमाददीत।
तस्मिन्सुपूते पलसम्मितानि
श्लक्ष्णानि पिष्ट्वा सह शाल्मलेन ॥ ८५ ॥
पाठां समङ्गातिविषां समुस्तां
बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीनाम्।
प्रक्षिप्य भूयो विपचेत्तु तावद्
दर्वीप्रलेपः स्वरसस्तु यावत् ॥ ८६ ॥
पीतस्त्वसौ कालविदा जलेन
मण्डेन वाजापयसाऽथवाऽपि।
निहन्ति सर्वं त्वतिसारमुग्रं
कृष्णं सितं लोहितपीतकं वा ॥ ८७ ॥
दोषं ग्रहण्या विविधं च रक्तं
शूलं तथार्शांसि सशोणितानि।
असृग्दरं चैवमसाध्यरूपं
निहन्त्यवश्यं कुटजाष्टकोऽयम् ॥ ८८ ॥

कुडेकी गीली छाल १ तुला ले, १ द्रोण जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर फिर पकाना चाहिये, पकाते समय मोचरस १ पल, पाढ़ १ पल, लज्जालुके बीज १ पल, अतीस १ पल, नागरमोथा १ पल, बेलका गूदा १ पल, धायके फूल १ पल सबका चूर्ण कर छोड़ना चाहिये फिर जब कलछुलमें चिपकाने लग जाय तब उतारकर रख लेना चाहिये। इसको आवश्यकतानुसार ठण्डे जल, मण्ड अथवा बकरीके दूधके साथ पीनेसे समस्त अतीसार, ग्रहणीदोष रक्तपित्तशूल, रक्तार्श तथा प्रदरगेग नष्ट होते हैं। ॥ ८५–८८ ॥

अनुक्त-जलमानपरिभाषा।

तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता।

जहांपर एक तुला द्रव्यका क्वाथ बनाना हो वहां एक द्रोण जल छोड़ना चाहिये इसी प्रकार एक द्रोण जलमें एक तुला द्रव्य छोड़ना चाहिये।

षडङ्गघृतम्।

वत्सकस्य च बीजानि दार्व्याश्च त्वच उत्तमा ॥ ८९ ॥
पिप्पली शृङ्गवेरं च लाक्षा कटुकरोहिणी।
षड्भिरेभिर्घृतं सिद्धं पेयं मण्डावचारितम् ॥
अतीसारं जयेच्छीघ्रं त्रिदोषमपि दारुणम् ॥ ९० ॥

इन्द्रयव, दारुहल्दीकी उत्तम छाल, छोटी पीपल सोंठ, लाख, कुटकी इन छः ओषधियोंके कल्कमें चतुर्गुण घृत और घृतमें चतुर्गुण जल छोड़कर सिद्ध करना चाहिये, इसे मण्डके साथ सेवन करनेसे त्रिदोषज अतीसार भी नष्ट होता है ॥ ८९ ॥ ९० ॥

क्षीरिद्रुमाद्यं घृतम्।

क्षीरिद्रुमाभीरुरसे विपक्वं
तज्जैश्च कल्कैः पयसा च सर्पिः।
सितोपलार्धं मधुपादयुक्तं
रक्तातिसारं शमयत्युदीर्णम् ॥ ९१ ॥

क्षीरवृक्ष (बट, गूलर आदि) मिलित अथवा एकके क्वाथ और शतावरके रसमें घृत तथा घृतके समान दूध छोड़कर और इन्हीं ओषधियोंका कल्क छोड़ घृत पकाना चाहिये। इस घृतको आधी मिश्री तथा चतुर्थांश शहद मिलाकर सेवन करनेसे रक्तातिसार नष्ट होता है ॥ ९१ ॥

क्षीरपानावस्था।

जीर्णेऽमृतोपमं क्षीरमतीसारे विशेषतः।
छागं तद्भेषजैः सिद्धं देयं वा वारिसाधितम् ॥ ९२ ॥

पुराने अतीसारमें दूध विशेष हितकर होता है। अतः बकरीका दूध अतीसारनाशक ओषधियोंके साथ सिद्धकर अथवा केवल जलके साथ सिद्ध कर पीना चाहिये ॥९२॥

वातशुद्ध्युपायः।

बालं बिल्वं गुडं तैलं पिप्पली विश्वभेषजम्।
लिह्याद्वाते प्रतिहते सशूले सप्रवाहिके ॥ ९३ ॥

---

१ यद्यपि बराबर चूर्ण पकाते समय ही छोड़ना लिखा है, पर वह अवलेहपाक हो जानेपर ही छोड़ना चाहिये, यही शिवदासजीका मत है। इसकी मात्रा ४ माशेसे ८ माशेतक है। शहद मिलाकर चाटना चाहिये।

१ इसी घृतमें कुटजकी छालका कल्क भी छोड़ा गया तो सप्ताङ्ग घृत हो जाता है, यदुक्तं "वैद्यप्रदीप" मतेन "एभिस्तत्सर्पिः सप्ताङ्गं कुटजत्वचा"।

जिससे वायु न खुलती हो, शूलके सहित बारबार दस्त आते हों उसे कच्चे बेलका गूदा, गुड, तैल, छोटी पीपर तथा सोंठ मिलाकर चाटना चाहिये ॥ ९३ ॥

प्रवाहिकाचिकित्सा ।

पयसा पिप्पलीकल्कः पीतो वा मरिचोद्भवः ।
त्र्यहात्प्रवाहिकां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥९४॥

दूधके साथ पीपल अथवा काली मिर्चका कल्क तीन दिन पीनेसे पुराना प्रवाहिकारोग नष्ट हो जाता है ॥९४॥

दध्ना सरोऽम्लः स्नेहाढ्यः खडो हन्यात्प्रवाहिकाम् ।
बिल्वोषण गुड लोध्र तैल लिह्यात्प्रवाहणे ॥ ९५ ॥

चिकने दहीका तोड तथा काले तिलका तेल मिला हुआ खड कहा जाता है । यह प्रवाहिकारोगको नष्ट करता है। इसी प्रकार कच्चे बेलका गूदा, काली मिर्च, गुड, पठानी लोध व काले तिलका तेल मिलाकर चाटनेसे प्रवाहिका रोग नष्ट होता है ॥ ९५ ॥

दध्ना ससारेण समाक्षिकेण
भुञ्जीत निश्चारकपीडितस्तु ।
सुतप्तकुप्यैक्वाथितेन वापि
क्षीरेण शीतेन मधुप्लुतेन ॥ ९६ ॥

प्रवाहिकावालेको बिना मक्खन निकाले हुए दही शहदके साथ अथवा अच्छी तरह तपाये हुए सोने चान्दीसे भिन्न धातुसे बुझाकर ठण्डे किये हुए दूधमें शहद मिलाकर उसीके साथ भोजन करना चाहिये॥९६॥

दीप्ताग्निर्निष्पुरीषो यः सार्यते फेनिलं शकृत् ।
स पिबेत्फाणित शुण्ठीदधितैलपयोघृतम् ॥ ९७ ॥

जिसकी अग्नि दीप्त है, मल भी अधिक नहीं है पर फेनिल दस्त आते हैं उसे राब सोंठ, दही, तेल, दूध व घी मिलाकर पीना चाहिये ॥ ९७ ॥

अतिसारस्यासाध्यलक्षणम् ।

शोथं शूलं ज्वरं तृष्णां श्वासं कासमरोचकम् ।
छर्दिं मूर्च्छां च हिक्कां च दृष्ट्वातीसारिणं त्यजेत् ।
बहुमेही नरो यस्तु भिन्नविट्को न जीवति ॥ ९८ ॥

शोथ, शूल, ज्वर, तृष्णा, श्वास, कास, अरुचि, छर्दि मूर्च्छा, हिक्कायुक्त अतिसारवालेकी चिकित्सा न करनी चाहिये । इसी प्रकार जिसे पेशाब अधिक लगता है और पतले दस्त आते हैं वह भी असाध्य होता है ॥ ९८ ॥

अतिसारे वर्जनीयानि ।

स्नानाभ्यङ्गावगाहांश्च गुरुस्निग्धातिभोजनम् ।
व्यायाममग्निसन्तापमतीसारी विवर्जयेत् ॥ ९९ ॥

अतिसारवालेको स्नान, अभ्यङ्ग, जलमें बैठना, गुरु तथा स्निग्ध भोजन, अतिभोजन, व्यायाम तथा अग्निसे तापना निषिद्ध है ॥ ९९ ॥

इत्यतीसाराधिकारः समाप्तः ।

अथ ग्रहण्यधिकारः ।

ग्रहणीप्रतिक्रियाक्रमः ।

ग्रहणीमाश्रितं दोषमजीर्णवदुपाचरेत् ।
अतीसारोक्तविधिना तस्यामं च विपाचयेत् ॥ १ ॥
शरीरानुगते सामे रसे लङ्घनपाचनम् ।

ग्रहणीमें प्राप्त दोषकी अजीर्णके समान चिकित्सा करनी चाहिये। और अतीसारकी विधिसे आमका पाचन करना चाहिये तथा यदि समस्त शरीरमें आमरस व्याप्त हो गया हो तो लङ्घन, पाचन करना चाहिये ॥ १ ॥-

विशुद्धामाशयायास्मै पञ्चकोलादिभिर्युतम् ।
दद्यात्पेयादि लघ्वन्नं पुनर्योगांश्च दीपकान् ॥ २ ॥

वमन, विरेचन तथा लङ्घनादि द्वारा आमाशयके शुद्ध हो जानेपर पञ्चकोलादिसे सिद्ध किया हुआ हल्का पेयादि अन्न तथा अग्निदीपक योगोंका प्रयोग करना चाहिये॥२॥

ग्रहण्यां पेया ।

कपित्थबिल्वचाङ्गेरीतक्रदाडिमसाधिता ।
पाचिनी ग्राहिणी पेया सवाते पाञ्चमूलिकी ॥ ३ ॥

कैथका गूदा, बेलका गूदा, अमलोनिया, अनार का छिल्का अथवा दाना सब मिलकर एक पल रक्तशालि या साठीके चावल १ पल, मट्ठा १४

---

१ कुप्य शब्दका अर्थ सोना चादीसे भिन्न धातु है, परन्तु शब्दसिन्धुमें इसे जस्ता माना है, शिवदासजी बिना आभूषणादिमें परिणत सुवर्णादिको भी कुप्य लिखते हैं अथवा पाठभेद कर कूप मानते हैं और उसे दाक्षिण देशमें प्रसिद्ध ग्रन्नाभिकी आकृतिवाला पाषाणभेद मानते हैं। निश्चारकको प्रवाहिका भी कहते हैं, यथा-"निर्वाहयेत्मलं न पुनः सो मुहुर्मुहुः । प्रवाहिकेति साख्याता कैश्चिन्निश्चारकं मतः"। हिन्दी में इस रोगको पेचिश कहते हैं।

१ पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ इनको पञ्चकोल कहते हैं ॥

पल, अथवा मट्ठा, ७पल, जल ७ पल मिलाकर पेया बनानी चाहिये। यह कफवातग्रहणीमें हितकर होती है। केवल वातग्रहणीमें लघु पञ्चमूलकी पेया बनानी चाहिये ॥ ३ ॥

तक्रस्यात्र वैशिष्ट्यम् ।

ग्रहणीदोषिणां तक्रं दीपनं ग्राहि लाघवात् ।
पथ्यं मधुरपाकित्वान्नच पित्तप्रकोपणम् ॥ ४ ॥
कषायोष्णविकाशित्वाद्रौक्ष्याच्चैव कफे हितम् ।
वाते स्वाद्वम्लसान्द्रत्वात्सद्यस्कमविदाहि तत् ॥ ५ ॥

मट्ठा अग्निको दीप्त करनेवाला, दस्तको रोकनेवाला तथा हल्का होनेसे ग्रहणीवालोंके लिये अधिक हितकर होता है पाकमें मीठा होनेसे पित्तको कुपित नहीं करता, कसैला, गरम, विकाशि (स्रोतोंको शुद्ध करनेवाला) तथा रूक्ष होनेसे कफमें हित करता है, वातमें मीठा, खट्टा तथा सान्द्र होनेसे हितकर होता है, तत्कालका बनाया हुआ मट्ठा विशेष जलन नहीं करता ॥४॥५॥

शुण्ठ्यादिक्वाथः ।

शुण्ठीं समुस्तातिविषा गुडूचीं
पिबेज्जलेन क्वथिता समांशाम् ।
मन्दानलत्वे सततामताया-
मामानुबन्धे ग्रहणीगदे च ॥ ६ ॥

सोंठ, नागरमोथा, अतीस, गुर्च सब चीजें समान भाग ले क्वाथ बनाकर मन्दाग्नि, आमदोष तथा ग्रहणीमें पीना चाहिये ॥ ६ ॥

धान्यकादिक्वाथः ।

धान्यकातिविषोदीच्ययमानीमुस्तनागरम् ।
बलाद्विपर्णीबिल्वं च दद्याद्दीपनपाचनम् ॥ ७ ॥

धनिया, अतीस, सुगन्धवाला, अजवाइन, नागरमोथा, सोंठ, खरेटी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, तथा बेलका गूदा अग्निको दीप्त तथा आमका पाचन करता है ॥ ७ ॥

चित्रकादिगुटिका ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं द्वौ क्षारौ लवणानि च ।
व्योषहिंग्वजमोदा च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ८ ॥
गुटिका मातुलुङ्गस्य दाडिमाम्लरसेन वा ।
कृता विपचयत्याम दीपयत्याशु चानलम् ॥ ९ ॥

चीतकी जड, पिपरामूल, यवाखार, सज्जीखार, पाचों नमक, सोंठ, मिर्च, पीपल, भुनी हींग, अजवाइन, और चव्य सबको समान भागले कूट छान बिजौरे निम्बूके रस अथवा खट्टे अनारके रससे गोली बना लेनी चाहिये ॥ यह आमका पाचन तथा अग्निको दीप्त करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पञ्चलवणगणना ।

सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च ।
सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योजयेत् ॥ १० ॥

काला नमक, सेंधानमक, विडनमक, खारी या साम्भरनमक, सामुद्रनमक यह पाञ्च लवण कहे जाते हैं ॥ १० ॥

श्रीफलकल्कः ।

श्रीफलशलाटुकल्को नागरचूर्णेन मिश्रितः सगुडः ।
ग्रहणीगदमत्युग्रं तक्रभुजा शीलितो जयति ॥ ११ ॥

कच्चे बेलके गूदाका कल्क सोंठके चूर्ण तथा गुडके साथ सेवन करनेसे तथा मट्ठेके पथ्यसे कठिन ग्रहणीरोग नष्ट हो जाता है ॥ ११ ॥

श्रीफलपुटपाकः ।

जम्बूदाडिमशृंगाटपाठाकच्छटपल्लवैः ।
पक्वं पर्युषितं बालबिल्वं सगुडनागरम् ॥ १२ ॥
हन्ति सर्वानतीसारान्ग्रहणीमतिदुस्तराम् ।

जामुन, अनार, सिंघाडा, पाढ, चौलाईके पत्तोंसे लपेट डोरेसे या कुशसे बांधकर अङ्गारोंमें भूना गया कच्चा बेल, पर्युषित (बासी) समान भाग गुड तथा जितनेमें कटु हो जाय उतनी सोंठ मिलाकर खानेसे समस्त अतिसार तथा ग्रहणी नष्ट होती है ॥ १२ ॥

नागरादिक्वाथः ।

नागरातिविषामुस्तक्वाथः स्यादामपाचनः ॥ १३ ॥
चूर्णं हिंग्वष्टकं वातग्रहण्यां तु घृतानि च ।

सोंठ, अतीस, नागरमोथाका क्वाथ आमका पाचन करता है। हिंग्वष्टक चूर्ण घीके साथ सेवन करनेसे वातग्रहणीको नष्ट करता है तथा आगे लिखे घृत वातज ग्रहणीको शान्त करते हैं ॥ १३ ॥

नागरादिचूर्णम् ।

नागरातिविषामुस्तं धातकी सरसाञ्जनम् ॥ १४ ॥
वत्सकत्वक्फलं बिल्वं पाठां कटुकरोहिणीम् ॥
पिबेत्समांशं तच्चूर्णं सक्षौद्रं तण्डुलाम्बुना ॥ १५ ॥
पैत्तिके ग्रहणीदोषे रक्तं यच्चोपवेश्यते ।
अर्शांस्यथ गुदे शूलं जयेच्चैव प्रवाहिकाम् ॥ १६ ॥

नागराद्यमिदं चूर्णं कृष्णात्रेयेण पूजितम् ।
शीतकषायमानेन तण्डुलोदककल्पना ॥ १७ ॥
केऽप्यष्टगुणतोयेन प्राहुस्तण्डुलभावनाम् ।

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, धायके फूल, रसौत, कुड़ेकी छाल, इन्द्रयव, बेलका गूदा, पाढ, कुटकी समान भाग ले चूर्ण बनाकर शहद तथा चावलके पानीके साथ सेवन करनेसे पैत्तिक ग्रहणी रक्तके दस्त, रक्तार्श, गुदाका शूल व प्रवाहिका रोग नष्ट होते हैं । शीतकषाय-की विधि अर्थात् षड्गुण जलमें रक्खा गया छाना गया अथवा किसीके सिद्धान्तसे अष्टगुणजलमें रखकर छाना गया तण्डुलोदक कहा जाता है ॥ १४-१७ ॥-

भूनिम्बाद्यं चूर्णम् ।

भूनिम्बकटुकाव्योषमुस्तकेन्द्रयवान्समान् ॥ १८ ॥
द्वौ चित्रकात्कुटजत्वग्भागान्षोडश चूर्णयेत् ।
गुडशीताम्बुना पीतं ग्रहणीदोषगुल्मनुत् ॥ १९ ॥
कामलाज्वरपाण्डुत्वमेहारुच्यतिसारनुत् ।
गुडयोगाद्गुडाम्बु स्याद्गुडवर्णरसान्वितम् ॥ २० ॥

चिरायता, कुटकी, त्रिकटु, नागरमोथा, इन्द्रयव, समान भाग, चीतकी जड़ दो भाग, कुड़ेकी छाल सोलह भाग लेकर चूर्ण बनावे । गुड़ मिले ठण्डे जलके साथ पीनेसे यह चूर्ण ग्रहणीरोग तथा गुल्मको नष्ट करता है । कामला, ज्वर, पाण्डुरोग, प्रमेह, अरुचि, अतीसारको नष्ट करता है । गुड़ मिलाकर मीठा बनाया गया जल गुडाम्बु कहा जाता है ॥ १८-२० ॥

कफग्रहण्याश्चिकित्सा ।

ग्रहण्यां श्लेष्मदुष्टायां वमितस्य यथाविधि ।
कट्वम्ललवणक्षारैस्तीक्ष्णैश्चाग्निं विवर्धयेत् ॥ २१ ॥

श्लेष्मग्रहणीमें विधिपूर्वक वमन कराकर तीक्ष्ण कटु, अम्ल, लवण, क्षार, पदार्थोंसे अग्नि दीप्त करना चाहिये ॥ २१ ॥

ग्रन्थिकादिचूर्णम् ।

समूलां पिप्पलीं क्षारौ द्वौ पञ्च लवणानि च ।
मातुलुङ्गाभयारास्नाशठीमरिचनागरम् ॥ २२ ॥
कृत्वा समांशं तच्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ।
श्लैष्मिके ग्रहणीदोषे बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ २३ ॥
एतैरेवौषधैः सिद्धं सर्पिः पेयं समारुते ।

पीपल छोटी, पिपरामूल, यवाखार, सज्जीखार पाँचों नमक, बिजौरे निम्बूकी जड़, बड़ी हर्रका छिल्का, रासन, कचूर, काली मिर्च, सोंठ सब समान भाग ले चूर्ण बनाकर कुछ गर्म जलके साथ सेवन करनेसे कफजन्य ग्रहणीरोग नष्ट होता है, बल वर्ण तथा अग्निकी वृद्धि होती है । इन्हीं औषधियोंद्वारा सिद्ध किया घृत वात-ग्रहणीको नष्ट करता है ॥ २२ ॥ २३ ॥--

भल्लातकक्षारः ।

भल्लातकं त्रिकटुकं त्रिफला लवणत्रयम् ॥ २४ ॥
अन्तर्धूमं द्विपलिकं गोपुरीषाग्निना दहेत् ।
सक्षारः सर्पिषा पेयो भोज्ये वाऽप्यवचारितः ॥ २५ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषगुल्मोदावर्तशूलनुत् ।

भिलावा, सोंठ, मिर्च, पीपल, आमला, हर्र, बहेड़ा, सेंधानमक, कालानमक, सामुद्रनमक प्रत्येक ८ तोले मटियामें बन्दकर गायके गोबरके कण्डोंकी आंचसे जलाना चाहिये । पुनः महीन पीस छानकर घीके साथ पीने अथवा भोजनमें प्रयोग करनेसे हृद्रोग पाण्डुरोग, ग्रहणीदोष, गुल्म, उदावर्त तथा शूलको नष्ट करता है ॥ २४ ॥ २५ ॥-

सन्निपातग्रहणीचिकित्सा ।

सर्वजायां ग्रहण्यां तु सामान्यो विधिरिष्यते ॥ २६ ॥

सान्निपातज ग्रहणीमें सामान्य चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २६ ॥

द्विगुणोत्तरचूर्णम् ।

चूर्णं मरिचमहौषधकुटजत्वक्सम्भवं क्रमाद्द्विगुणम् ।
गुडमिश्रमथितपीतं ग्रहणीदोषापहं ख्यातम् ॥ २७ ॥

काली मिर्च, सोंठ, कुड़ेकी छाल क्रमशः एककी अपेक्षा दूसरा द्विगुण ले चूर्ण बनावे इसे गुड़ मिला बिना मक्खन निकाले मथे हुए दहीके साथ पीनेसे ग्रहणीदोष नष्ट होता है ॥ २७ ॥

पाठादिचूर्णम् ।

पाठाबिल्वानलव्योषजम्बूदाडिमधातकी ।
कटुकातिविषामुस्तदार्वीभूनिम्बवत्सकैः ॥ २८ ॥
सर्वैरेतैः समं चूर्णं कौटजं तण्डुलाम्बुना ।
सक्षौद्रं च पिबेच्छर्दिज्वरातीसारशूलवान् ॥ २९ ॥
तृड्दाहग्रहणीदोषारोचकानलसादजित् ।

पाढ, बेलका गूदा, चीतेकी जड़, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, जामुनकी गुठली, अनारका छिल्का, धायके

फूल, कुटकी, अतीस, मोथा, दारुहल्दी, चिरायता, कुडेकी छाल इन सबको समान भाग ले सबके समान इन्द्रयव ले कूट कपड छानकर शहद तथा चावलके जलके साथ सेवन करनेसे वमन, ज्वर, अतीसार, शूल, तृषा, दाह, ग्रहणीदोष, अरोचक तथा मन्दाग्नि नष्ट होती है ॥ २८ ॥ २९ ॥—

कपित्थाष्टकचूर्णम् ।

यवानीपिप्पलीमूलचातुर्जातकनागरैः ॥ ३० ॥
मरिचाग्निजलाजाजी धान्यसौवर्चलैः समैः ।
वृक्षाम्लधातकीकृष्णाबिल्वदाडिमतिन्दुकैः ॥३१॥
त्रिगुणैः षड्गुणासितैः कपित्थाष्टगुणैः कृतः ।
चूर्णोऽतिसारग्रहणीक्षयगुल्मगलामयान् ॥ ३२ ॥
कासं श्वासारुचिं हिक्कां कपित्थाष्टमिदं जयेत् ।

अजवाइन, पिपरामूल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, सोंठ, काली मिर्च, चीतकी जड, नेत्रवाला, सफेद जीरा, धनिया, काला नमक प्रत्येक एक भाग, अम्लवेत, धायके फूल, छोटी पीपल, बेलका गूदा, अनारका छिल्का, तेंदू प्रत्येक तीन तीन भाग, मिश्री, छः भाग, कैथेका गूदा आठ भाग ले कूट कपडछान कर चूर्ण बनाना चाहिये । यह चूर्ण अतीसार, ग्रहणी, क्षय, गुल्म, गलेके रोग, कास, श्वास, अरुचि तथा हिक्काको नष्ट करता है ॥ ३०—३२ ॥—

दाडिमाष्टकचूर्णम् ।

कर्षोन्मिता तुगाक्षीरी चातुर्जातं द्विकार्षिकम् ॥ ३३ ॥
यवानीधान्यकाजाजीग्रन्थिव्योषं पलांशिकम् ।
पलानि दाडिमादष्टौ सितायाश्चैकतः कृतः ।
गुणैः कपित्थाष्टकवच्चूर्णोऽयं दाडिमाष्टकः ॥ ३४ ॥

वंशलोचन १ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येक दो तोला, अजवाइन, धनिया, सफेद जीरा, पिपरामूल, त्रिकटु प्रत्येक ४ तोला, अनारदाना ३२ तोला, मिश्री, ३२ तोला, सबका विधिपूर्वक बनाया गया चूर्ण कपित्थाष्टकके समान लाभदायक होता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

वार्ताकुगुटिका ।

चतुष्पलं सुधाकाण्डात्त्रिपलं लवणत्रयात् ॥ ३५ ॥
वार्ताकुकुडवश्चार्कादष्टौ द्वे चित्रकात्पले ।
दग्धानि वार्ताकुरसे गुटिका भोजनोत्तरा ॥ ३६ ॥
भुक्तंभुक्तं पचन्त्याशु कासश्वासार्शसां हिता ।
विषूचिकाप्रतिश्यायहृद्रोगशमनाश्च ताः ॥३७॥

थूहरकी लकडी १६ तोला, सेंधानमक, काला नमक, सामुद्रनमक मिलाकर १२ तोला, सूखा बैंगन १६ तोला, आककी जड ३२ तोला, चीतकी जड ८ तोला सब चीजें कूट ताजे बैंगनके रसमें मिला भंडियामें बन्दकर पकाना चाहिये । फिर उस भस्मको बैंगनके ही रसमें घोटकर एक मासेकी गोली बना लेनी चाहिये । भोजनके अनन्तर सेवन करनेसे भोजनको तत्काल पचाती हैं तथा कास, श्वास, प्रतिश्याय, अर्श, विषूचिका और हृद्रोगको नष्ट करती हैं ॥ ३५—३७ ॥

त्र्यूषणादिघृतम् ।

त्र्यूषणत्रिफलाकल्के बिल्वमात्रे गुडात्पले ।
सर्पिषोऽष्टपलं पक्त्वा मात्रां मन्दानलः पिबेत् ॥ ३८ ॥

त्रिकटु तथा त्रिफलाका कल्क एक पल, गुड एक पल, घृत आठ पल, चतुर्गुण जल छोडकर पकाना चाहिये घृतमात्र शेष रहनेपर उतार छानकर मात्रासे सेवन करना चाहिये ॥ ३८ ॥

मसूरघृतम् ।

मसूरस्य कषायेण बिल्वगर्भं पचेद्घृतम् ।
हन्ति कुक्ष्यामयान्सर्वान्ग्रहणीपाण्डुकामलाः ॥३९॥
केवलं व्रीहिमाण्यंगकाथो व्युष्टस्तु दोषलः ।

मसूरके काढेके साथ कच्चे बेलके गूदेका कल्क छोडकर पकाया गया घृत समस्त उदरविकार, ग्रहणी, पाण्डुरोग तथा कामलाको नष्ट करता है । केवल धान्य या प्राण्यङ्ग (मांसादि)-का क्वाथ बासी हो जानेसे दोषकारक होता है, अतः यह घृत ताजा ही

---

१ यहां पर "षड्गुणसितैः" के अर्थ करनेमें अनेक प्रकारकी शङ्कायें करते हैं । प्रथम यह कि यवान्यादि समस्त द्रव्योंसे षड्गुणा, दूसरी यह कि वृक्षाम्लादिसे षड्गुण जैसा कि अरुणदत्तने वाग्भट टीकामें लिखा है, तीसरा यह कि कपित्थसे षड्गुण, पर यह समग्र मत अव्यवहारिक हैं । अतः उपरोक्त नियमसे ही छोडना चाहिये ॥

१ पहिले सब चीजोंका चूर्ण कूट छान लेना चाहिये तब मिश्री मिलाना चाहिये ।

(एक ही दिनमें) पकाना चाहिये, कई दिन तक न पकाते रहना चाहिये ॥ ३९ ॥—

शुण्ठीघृतम् ।

चिर्भीपधस्य गर्भेण दशमूलजले श्रुतम् ।
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीसामतामयम् ॥ ४० ॥
घृत नागरकल्केन सिद्धं वातानुलोमनम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ४१ ॥

दशमूलका क्काथ तथा सोंठका कल्क मिलाकर पकाया गया घृत सूजन तथा ग्रहणीकी सामताको नष्ट करता है । तथा केवल सोंठके कल्कसे भी सिद्ध किया गया घृत ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, कास, तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४० ॥ ४१ ॥

चित्रकघृतम् ।

चित्रकक्काथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं श्रुतं हविः ।
गुल्मशोथोदरप्लीहशूलार्शोघ्नं प्रदीपनम् ॥ ४२ ॥

चित्रकके क्काथ तथा कल्कसे सिद्ध किया गया घृत ग्रहणी, गुल्म, सूजन, उदररोग, प्लीहा, शूल तथा अर्शको नष्ट करता और अग्निको दीप्त करता है ॥४२॥

विल्वादिघृतम् ।

विल्वाग्निचव्यार्द्रकशृंगवेर-
क्काथेन कल्केन च सिद्धमाज्यम् ।
सच्छागदुग्धं ग्रहणीगदोत्थ-
शोथाग्निमान्द्यारुचिनुद्वरिष्ठम् ॥ ४३ ॥

वेलका गूदा, चीतकी जड, चव्य, अदरख, सोंठके क्काथ तथा कल्क तथा बकरीके दूधके साथ सिद्ध किया गया घृत ग्रहणीरोगसे उत्पन्न सूजन, अग्निमान्द्य तथा अरुचिको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ४३ ॥

चांगेरीघृतम् ।

नागरं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।
श्वदंष्ट्रा पिप्पली धान्यं विल्वं पाठा यवानिका ॥ ४४ ॥
चांगेरीस्वरसे सर्पिः कल्कैरेतैर्विपाचितम् ।
चतुर्गुणेन दध्ना च तद्घृतं कफवातनुत् ॥ ४५ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकाम् ।
गुदभ्रंशार्तिमानाहं घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ४६ ॥

सोंठ, पिपरामूल, चीतकी जड, चव्य, गोखरू, छोटी पीपल, धनिया, कच्चे वेलका गूदा, पाढ तथा अजवाइनका कल्क, अमलोनियाका स्वरस तथा चतुर्गुण दही मिलाकर सिद्ध किया गया घृत कफ तथा वायुजन्य अर्श, ग्रहणीदोष, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, (कांच निकलना) तथा अफाराको नष्ट करता है ॥४४–४६ ॥

मरिचाद्यं घृतम् ।

मरिचं पिप्पलीमूलं नागरं पिप्पली तथा ।
भल्लातकं यवानी च विडंगं हस्तिपिप्पली ॥ ४७ ॥
हिङ्गुसौवर्चलं चैव विडसैन्धवदार्व्यथ ।
सामुद्रं सयवक्षारं चित्रको वचया सह ॥ ४८ ॥
एतैरर्द्धपलैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दशमूलीरसे सिद्धं पयसा द्विगुणेन च ॥ ४९ ॥
मन्दाग्नीनां हितं चैतद्ग्रहणीदोषनाशनम् ।
विष्टम्भमामं दौर्बल्यं प्लीहानमपकर्षति ॥ ५० ॥
कासं श्वासं क्षयं चैव दुर्नामसभगन्दरम् ।
कफजान्हन्ति रोगांश्च वातजान्क्रिमिसम्भवान् ॥ ५१ ॥
तान्सर्वान्नाशयत्याशु शुष्कं दार्वनलो यथा ।

काली मिर्च, पिपरामूल, सोंठ, छोटी पीपल, भिलावा, अजवाइन, वायविडंग, गजपीपल, हींग, कालानमक, विडनमक, सेंधानमक, दारुहल्दी, सामुद्रनमक, यवक्षार, चीतकी जड तथा बच प्रत्येक दो दो तोला घी चौंसठ तोला, द्रव द्वैगुण्यात् १२८ तो०=१ सेर ९ छ० ३ तो०) घीसे द्विगुण दूध तथा द्विगुण ही दशमूलका क्काथ मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत मन्दाग्नि, ग्रहणीदोष, कब्जियत, आमदोष, दुर्बलता, प्लीहा, कास, श्वास, क्षय, अर्श, भगन्दर तथा कफवात व क्रिमिजन्य रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जिस प्रकार सूखी लकडीको अग्नि भस्म कर देता है ॥ ४७——५१ ॥–

महाषट्पलकं घृतम् ।

सौवर्चलं पञ्चकोलं सैन्धवं हपुषां वचाम् ॥ ५२ ॥
अजमोदां यवक्षारं हिंगु जीरकमौद्भिदम् ।
कृष्णाजाजीं सभूतीकं कल्कीकृत्य पलार्धकम् ॥ ५३ ॥
आर्द्रकस्य रसं शुक्तं क्षीरं मस्त्वम्लकाञ्जिकम् ।
दशमूलकषायेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५४ ॥

---

१ यहां पर हस्तिपिप्पलीसे चव्य ही लेना चाहिये । ऐसा ही जतुकर्णने भी माना है और हस्तिपिप्पली चव्यका भी पर्याय है । तद्यथा "चविका कोलवल्ली च हस्तिपिप्पल्यपीप्सिते" इति ।

(१) दुग्धे दध्नि रसे तक्रे कल्को देयोऽष्टमांशकः । कल्कस्य सम्यक् पाकार्थं तोयमत्र चतुर्गुणम् ॥ इस परिभाषाके अनुसार यहां कल्क चतुर्थांश और कल्कसे चतुर्गुण जल छोडना चाहिये ।

२ इसमें 'वचाम्' के स्थानमें 'विडम्' भी पाठान्तर है,

भक्तेन सह दातव्य निर्भक्तं वा विचक्षणैः ।
क्रिमिप्लीहोदराजीर्णज्वरकुष्ठप्रवाहिकाम् ॥ ५५ ॥
वातरोगान्कफव्याधीन्हन्याच्छूलमरोचकम् ।
पाण्डुरोगं क्षयं कासं दौर्बल्यं ग्रहणीगदम् ॥ ५६ ॥
महापदूपलक नाम वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ।

काला नमक, छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड, सोंठ, सेधानमक, ह्राऊवेर, बच,–दूधिया, अजमोदा, यवाखार, हींग, सफेद जीरा, खारी नमक, काला जीरा, अजवाइन प्रत्येक वस्तु दो दो तोले लेके कल्क बनाकर तथा अदरखका रस, चुक्र, दूध, दहीका तोड, खट्टी काञ्जी तथा दशमूलका क्वाथ प्रत्येक एक एक प्रस्थ छोडकर एक प्रस्थ घृत पकाना चाहिये, यह घृत भोजनके साथ अथवा केवल सेवन करना चाहिये, यह घृत क्रिमि, प्लीहा, उदररोग, अजीर्ण, ज्वर, कुष्ठ, प्रवाहिका, वातरोग, कफरोग, शूल, अरोचक, पाण्डुरोग, क्षय, कास, दुर्बलता तथा ग्रहणीरोगको ऐसे नष्ट कर देता है जैसे इन्द्रवज्र वृक्षको नष्ट करता है ॥५२–५६–

चुक्रनिर्माणविधिः ।

यन्मस्त्वादि शुचौ भाण्डे सगुडक्षौद्रकाञ्जिकम् ॥ ५७ ॥
धान्यराशौ त्रिरात्रस्थं शुक्तं चुक्रं तदुच्यते ।
द्विगुणं गुडमध्वारनालमस्तुकमादिह ॥ ५८ ॥

शुद्ध पात्रमें गुड १ भाग, शहद २ भाग, काञ्जी ४ भाग, दहीका तोड ८ भाग भरकर अनाजके ढेरमें तीन रात्रि तक रखनेसे सिरका रूप चुक्र बन जाताहै५७॥५८॥

बृहच्चुक्रविधानम् ।

प्रस्थं तण्डुलतोयतस्तुपजलात्प्रस्थत्रयं चाम्लत
प्रस्थार्धं दधितोऽम्लमूलकपलान्यष्टौ गुडान्मानिके ।
मान्यौ शोधितशृंगवेरशकला द्वे सिन्धवजाज्यो पले
द्वे कृष्णोपणयोर्निशापलयुगं निक्षिप्य भाण्डे दृढे॥५९॥
स्निग्धे धान्ययवादिराशिनिहितं त्रीन्वासरान्स्थापये-
दुष्मीष्मे तोयधरात्यये च चतुरो वर्षासु पुष्पागमे ।
षट्शीतेऽष्टदिनान्यत. परमिदं विस्राव्य सञ्चूर्णये-
च्चातुर्जातपलेन संहितमिदं शुक्तं च चुक्रं च तत् ॥६०॥
हन्याद्वातकफामदोषजनितान्नानाविधानामयान् ।
दुर्नामानिलगुल्मशूलजठरान्हत्वाऽनलं दीपयेत् ॥ ६१ ॥

तंदुलोदक (पूर्ववर्णित विधिसे बनाया) एक प्रस्थ, तुषोदक (भूसी सहित यव व उडदकी काञ्जी) तीन प्रस्थ, काञ्जी तीन प्रस्थ, दही आधा प्रस्थ, काञ्जीमें उठायी गयी मूली आठ पल, गुड दो मानी अर्थात् एक प्रस्थ, साफ किये अदरकके टुकडे एक प्रस्थ, सेधा नमक दो पल, सफेद जीरा दो पल, छोटी पीपल दो पल, काली मिर्च दो पल, हल्दी ४ पल सब एक चिकने तथा दृढ वर्तनमें भर मुख बन्दकर धान्यराशिमे रख देना चाहिये । ग्रीष्म तथा शरदृतुमे तीन दिन,वर्षा कालमें चार दिन, वसन्त ऋतुमे छः दिन तथा शीतकालमे आठ दिनतक रखना चाहिये, फिर निकाल छानकर दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशरका चूर्ण प्रत्येकका एक एक पल मिलाना चाहिये, यह शुक्त तथा चुक्र कहा जाता है, यह वातकफ तथा आमदोषजन्य अनेक प्रकारके रोग, अर्श, वातगुल्म, शूल, उदररोग आदिको नष्ट करता तथा अग्निको दीप्त करता है ॥ ५९–६१ ॥

तक्रारिष्टम् ।

यवान्यामलकं पथ्या मरिचं त्रिपलांशकम् ।
लवणानि पलांशानि पञ्च चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ६२ ॥
तक्रकसासुत जातं तक्रारिष्टं पिबेन्नर ।
दीपनं शोथगुल्मार्शःक्रिमिमेहोदरापहम् ॥ ६३ ॥

अजवाइन, आमला, छोटी हर्र, काली मिर्च प्रत्येक १२ तोला, पाचो नमक प्रत्येक ४ तोला सब महीन कपडछान चूर्ण कर एक आढक (२५६ तोला द्रवद्वैगुण्यात् ६ सेर ३२ तोला) मट्ठा मिलाकर धान्यराशिमे रखकर खट्टा कर लेना चाहिये, फिर इसे ४ तोलाकी मात्रासे पीना चाहिये । यह अग्निको दीप्त करनेवाला तथा शोथ, गुल्म, अर्श, क्रिमिरोग, प्रमेह तथा उदररोगको नष्ट करता है ॥ ६२ ॥ ६३ ॥

काञ्जीसन्धानम् ।

धान्यस्य दद्याद्यवशकुकाना
पृथपृथक्त्वाढकसम्मित च ।
मध्यप्रमाणानि च मूलकानि ।
दद्याच्चतु.षष्टिसुकल्पितानि ॥ ६४ ॥
द्रोणेऽम्भस प्लाव्य घटे सुधौते
दद्यादिद भेषजजातयुक्तम् ।
क्षारद्वयं तुम्बुरवस्तगन्धा–
धनीयक स्याद्विडसैन्धवं च ॥ ६५ ॥
सौवर्चलं हिंगुशिवाटिका च
चव्यं च दद्याद्द्विपलप्रमाणम् ।

---

१ 'दध्नस्तूपरि यत्तोय तन्मस्तु परिकीर्तितम् ।''

(१) बृहच्चुक्रोक्त ऋतुभेदसे समयका निश्चय करना चाहिये ।

इमानि धान्यानि पलोन्मितानि
विजर्जरीकृत्य घटे क्षिपेच्च ॥ ६६ ॥
कृष्णामजाजीमुपकुञ्चिकां च
तथासुरीं कारविचित्रकं च ।
पक्षस्थितोऽयं बलवर्णदेह—
वयस्करोऽतीव बलप्रदश्च ॥ ६७ ॥
कां जीवयामीति यतः प्रवृत्त—
स्तत्काञ्जिकेति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ।
आयामकालाज्जरयेच्च भक्त—
मायामिकेति प्रवदन्ति चैनम् ॥ ६८ ॥
दकोदरं गुल्ममथ प्लिहानं
हृद्रोगमानाहमरोचकं च ।
मन्दाग्नितां कोष्ठगतं च शूल—
मर्शोविकारान्सभगन्दरांश्च ॥ ६९ ॥
वातामयानाशु निहन्ति सर्वान्
संसेव्यमानो निशिभोजनानाम् ॥ ७० ॥

तुष रहित यवोंका बनाया गया मण्ड तथा यवोंके सत्तु अलग अलग एक एक आढक मध्यम प्रमाणकी अर्थात् न अधिक पतली न मोटी मूलीके ६४ टुकड़े एक द्रोण जल ये सब एक साथ धोये हुए घड़ेमें भरना चाहिये, तथा नीचे लिखी ओषधियां दुरकुचाकर छोड़ना चाहिये। यवाखार, सज्जीखार, तुम्बरू, नैपाली धानिया, अजवाइन धानिया, विडनमक, सेंधानमक, काला नमक, भुनी हींग, हिंगुपत्री या वंशपत्री (नाड़ी), पुनर्नवा, चव्य प्रत्येक दो दो पल तथा छोटी पीपल, सफेद जीरा, कलौंजी, राई, काला जीरा, चीतकी जड़ प्रत्येक एक एक पल छोड़कर घड़ेका मुख बन्द कर रख देना चाहिये, पन्द्रह दिनके बाद निकाल छानकर पीना चाहिये। यह बल, वर्ण तथा शरीरको बढ़ाता है, जीवनी शक्तिकी प्रदान करता है, अतएव इसे काञ्जी कहते हैं। भोजनको एक प्रहरके अन्दर ही पचा देता है, अतएव इसे आयामिका कहते हैं। जलोदर, गुल्म, प्लीहा, हृद्रोग, अफारा, अरुचि, मन्दाग्नि, कोष्ठशूल, अर्श, भगन्दर तथा समस्त वातरोगोंको नष्ट करता है॥ ६४-७०॥

कल्याणकगुडः ।

प्रस्थत्रयेणामलकीरसस्य
शुद्धस्य दत्त्वार्धतुलां गुडस्य ।
चूर्णीकृतैर्ग्रन्थिकजीरचव्य-
व्योषेभकृष्णाहपुषाजमोदैः ॥ ७१ ॥
विडङ्गसिन्धुत्रिफलायमानी-
पाठाग्निधान्यैश्च पलप्रमाणैः ।
दत्त्वा त्रिवृच्चूर्णपलानि चाष्टा-
वष्टौ च तैलस्य पचेद्यथावत् ॥ ७२ ॥
तं भक्षयेदक्षफलप्रमाणं
यथेष्टचेष्टं त्रिसुगन्धियुक्तम् ।
अनेन सर्वे ग्रहणीविकाराः
सश्वासकासस्वरभेदशोथाः ॥ ७३ ॥
शाम्यन्ति चायं चिरमन्दवह्ने-
र्हतस्य पुंस्त्वस्य च वृद्धिहेतुः ।
स्त्रीणां च वन्ध्यामयनाशनोऽयं
कल्याणको नाम गुडः प्रदिष्टः ॥ ७४ ॥
तैले मनाग्भर्जयन्ति त्रिवृतं तान्त्रिकाः ।
अत्रोक्तमानसाधर्म्यात्त्रिसुगन्धस्य च पृथक् ॥ ७५ ॥

आमलेका रस तीन प्रस्थ (१९२ तोला द्रवद्वैगुण्यात् ३८४ तोला = ४ सेर १२ छ० ४ तोला), साफ गुड २॥सेर, पिपरामूल, सफेद जीरा, चव्य, त्रिकटु, गजपीपल, हाऊबेर, अजवाइन, वायविडंग, सेंधानमक, आमला, हर्र, बहेड़ा, अजवाइन, पाढ़, चीतकी जड़, धनियां प्रत्येक चार तोला ले चूर्णकर तथा निसोथका चूर्ण ३२ तोला तथा तिल्ली तैल ३२ तोला एकमें छोड़ पकाकर अवलेह सिद्ध होनेपर दालचीनी, तेजपात, इलायची प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला छोड़कर १ तोलाकी मात्रासे सेवन करना चाहिये। इससे समस्त ग्रहणीरोग, श्वास, कास, स्वरभेद, शोथ नष्ट होते हैं, मन्दाग्नि तथा नष्ट पुंस्त्वको उद्दीप्त करता है तथा स्त्रियोंके वन्ध्यात्वदोषको नष्ट करता है। इसे कल्याणकगुड कहते हैं। इसमें निसोथ तैलमें कुछ देर भूनकर छोड़ते हैं। त्रिसुगन्धिका परिमाण न लिखनेपर भी उपरोक्त मानके अनुसार प्रत्येक एक पल लेते हैं ॥ ७१-७५ ॥

कूष्माण्डगुडकल्याणकः ।

कूष्माण्डकानां रूढानां सुस्विन्नं निष्कुलत्वचाम् ।
सर्पिःप्रस्थे पलशतं ताम्रभाण्डे शनैः पचेत् ॥ ७६ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ।
धान्यकानि विडङ्गानि यवानी मरिचानि च ॥ ७७ ॥

१ यह अन्तःपरिमार्जन योग है, अतः अजमोदसे अजवाइन ही लेना चाहिये। अतः अजवाइन दो भाग—छोड़ना चाहिये। यदुक्तम्-"एकमप्यौषधं योगे यस्मिन्यत्पुनरुच्यते। मानतो द्विगुणं प्रोक्तं तद्द्रव्यं तत्त्वदर्शिभिः"

त्रिफला चाजमोदा च कलिंगाजाजिसैन्धवम् ।
एकैकस्य पलं चैव त्रिवृदष्टपलं भवेत् ॥ ७८ ॥
तैलस्य च पलान्यष्टौ गुडः पञ्चाशदेव तु ।
प्रस्थैस्त्रिभिः समेतं तु रसेनामलकस्य च ॥ ७९ ॥
यदा दर्वीप्रलेपस्तु तदैवमवतारयेत् ।
यथाशक्ति गुडान्कुर्यात्कर्षकर्षार्धमानकान् ॥ ८० ॥
अनेन विधिना चैव प्रयुक्तस्तु जयेदिमान् ।
प्रसह्य ग्रहणीरोगान्कुष्ठान्यर्शोभगन्दरान् ॥ ८१ ॥
ज्वरमानाहहृद्रोगगुल्मोदरविषूचिका ।
कामलापाण्डुरोगांश्च प्रमेहांश्चैव विंशतिम् ॥ ८२ ॥
वातशोणितवीसर्पान्दद्रुचर्महलीमकान् ।
कफपित्तानिलान्सर्वान्प्ररूढांश्च व्यपोहति ॥ ८३ ॥
व्याधिक्षीणा वयःक्षीणाः स्त्रीषु क्षीणाश्च ये नराः ।
तेषां वृष्यश्च बल्यश्च वयःस्थापन एव च ॥ ८४ ॥
गुडकल्याणको नाम वन्ध्यानां गर्भदः परः ।

अच्छे पके हुए कुम्हड़ेके छिल्का तथा वीजरहित टुकडे प्रथम मन्द आचमें उबालना चाहिये, मुलायम हो जानेपर उतार ठण्ढाकर रस निकालकर अलग रखना चाहिये । फिर ५ सेर सूखे टुकडोंको ताम्रपात्रमें ६४ तोला घृतमें मन्द अग्निसे पकाना चाहिये । जब सुगन्ध आने लगे तब आमलेका रस ३ प्रस्थ, गुड २॥ सेर, तिलका तेल ३२ तोला, छोटी पीपल, पिपरामूल, चीतकी जड, गजपीपल, धनिया, वायविडंग, अजवाइन, काली मिर्च, त्रिफला, अजमोद, इन्द्रयव, जीरा, सेन्धानमक प्रत्येक ४ तोला, निसोथ ३२ तोला तथा कुम्हडेका रस मिलाकर उस समय तक पकाना चाहिये । जबतक कलछीमें चिपकने न लग जाय, कडा हो जानेपर एक तोला या छः मासाकी मात्रामें प्रयोग करना चाहिये । यह ग्रहणीरोग, कुष्ठ, अर्श, भगन्दर, ज्वर, अफारा, हृद्रोग, गुल्म, उदररोग, विषूचिका, कामला, पाण्डुरोग, प्रमेह, वातरक्त, वीसर्प, दद्रु, चर्मरोग, तथा हलीमकादि, कफ, पित्त व वातजन्य समस्त रोगोंको नष्ट करता है । रोग, स्त्रीगमन तथा वृद्धावस्था होनेसे जो क्षीण हो गये हैं उनके लिये वाजीकर, वलदायक तथा वयःस्थापक यह गुड कल्याणक वन्ध्यास्त्रियोंके गर्भ उत्पन्न करनेवाला है ॥ ७६–८४ ॥

१ इसमें गुडको आमलेके रसमें छान लेना चाहिये, फिर तला हुआ पेठा उसी रसमें मिलाकर पाक करना चाहिये । सम्यक् पक्वगुडलक्षणम्–" सुखमर्दः सुखस्पर्शो गन्धवर्णरसान्वितः । पीडितो भजते मुद्रा गुडः पाकमुपागतः ॥ " इसकी मात्रा ६ मासेकी शिवदासजीने लिखी है और वही उपयुक्त है ।

रसपर्पटी ।

याऽम्लपित्ते विधातव्या गुडिका च क्षुधावती ॥ ८५ ॥
तत्र प्रोक्तविधा शुद्धौ समानौ रसगन्धकौ ।
संमर्द्य कज्जलाभं तु कुर्यात्पात्रे दृढाश्रये ॥ ८६ ॥
ततो बादरवह्निस्थलोहपात्रे द्रवीकृतम् ।
गोमयोपरि विन्यस्तकदलीपत्रपातनात् ॥ ८७ ॥
कुर्यात्पर्पटिकाकारमस्य रक्तिद्वयं क्रमात् ।
द्वादशरक्तिका यावत्प्रयोगः प्रहरार्धतः ॥ ८८ ॥
तदूर्ध्वं बहुपूगस्य भक्षणं दिवसे पुनः ।
तृतीय एव मासाज्यदुग्धान्यत्र विधीयते ॥ ८९ ॥
वर्ज्यं विदाहिक्षीरम्भामूलं तैलं च सार्षपम् ।
क्षुद्रमत्स्याम्बुजखगास्त्यक्त्वोष्ट्रं पयः पिबेत् ॥९०॥
ग्रहणीक्षयकुष्ठार्शःशोषाजीर्णविनाशिनी ।
रसपर्पटिका ख्याता निबद्धा चक्रपाणिना ॥ ९१ ॥

अम्लपित्ताधिकारोक्त क्षुधावती गुटिकाकी विधिसे शुद्ध पारद व गन्धक समान भाग लेकर दृढ पात्रमें कजली करे पुनः बेरीकी लकडीकी निर्धूम अग्निमें लोह पात्र रखकर कजलीको छोडे जब कजली पतली हो जावे तो गोबरके ऊपर बिछे

१ रसग्रन्थोंमें अनेक प्रकारकी पर्पटी लिखी गयी हैं, पर उनके लिखनेसे ग्रन्थ बहुत बढ जायगा, अतः उन्हें न लिखकर अत्यन्त प्रसिद्ध तथा गुणकारी सुवर्णपर्पटीको लिख देता हूँः–शुद्धसूतं पलमितं तुर्यांशस्वर्णसंयुतम् । मर्दयेन्निम्बुनीरेण यावदेकत्वमाप्नुयात् ॥ १ ॥ प्रक्षाल्योष्णाम्बुना पश्चात्पलमात्रे तु गन्धके । द्रुते लोहमये पात्रे बादरानलयोगतः ॥ २ ॥ प्रक्षिप्य चालयेल्लोह्या मन्दं लोहशलाकया । ततः पाकं विदित्वा तु रम्भापत्रे शनैः क्षिपेत् ॥ ३ ॥ गोमयस्थे तदुपरि रम्भापत्रेण यन्त्रयेत् । शीतं तच्चूर्णितं गुञ्जाक्रमवृद्धं निषेवयेत् ॥ ४ ॥ माषमात्रं भवेद्यावत्ततो मात्रां न वर्धयेत् । सक्षौद्रेणोपणेनैव लेह्योऽक्षिप्युत्तमः ॥ ५ ॥ ग्रहणीं हन्ति शोषं च सुवर्णरसपर्पटी । सद्यो बलकरी शुक्रवर्द्धिनी वह्निदीपनी ॥६॥ क्षयकासश्वासमेहशूलातीसारपाण्डुनुत् ।" इसमें बनानेकी विधि जो लिखी है उससे वर्तमान वृद्ध वैद्योंका व्यवहार कुछ भिन्न है और वही उत्तम है वह कि, प्रथम शुद्ध सोनेके वर्क एक तोला ४ तोला पारदके साथ घोटना, फिर उसीमें गन्धक मिलाकर कज्जली बनाना शेष यथोक्त करना चाहिये ।

केलेके पत्तेके ऊपर डालकर दूसरे केलेके पत्तेसे ढक ऊपरसे गोबरसे ढककर कुछ देर रहने देना चाहिये, फिर घोटकर २ रत्तीकी मात्रासे बढाकर क्रमशः आठ रत्ती तक सेवन करना चाहिये। इसके खानेके १॥ घण्टे बाद सुपारी खूब खाना चाहिये पुनः तीसरे दिनसे मांस, घृत, दूध आदि सेवन करना चाहिये। जलन करनेवाले पदार्थ, स्त्रीगमन, कल्लाकी जड, सरसोंका तेल, छोटी मछली तथा अन्य जलके समीपके पक्षी सेवन न करे। निद्राके अनन्तर दूधका सेवन करे। यह रसपर्पटी ग्रहणी, क्षय, कुष्ठ, अर्श, शोथ तथा अजीर्णको नष्ट करती है। इस रसपर्पटीका चक्रपाणिने आविष्कार किया है ॥८७–९१॥

ताम्रयोगः।

स्थाल्यां समर्ध दातव्यौ माषिकौ रसगन्धकौ।
नखक्षुण्ण तदुपरि तण्डुलीयं द्विमाषिकम् ॥ ९२ ॥
ततो नैपालताम्रादि पिधाय सुकशालितम्।
पांशुना पूरयेदूर्ध्वं सर्वां स्थालीं ततोऽनल ॥ ९३ ॥
स्थाल्यधो नालिका यावद्दयस्तेन मृतस्य च।
ताम्री ताम्रस्य रक्त्येका त्रिफलाचूर्णरक्तिका ॥ ९४ ॥
त्र्यूषणस्य च रक्त्येका विडङ्गस्य च तन्मधु।
घृतेनालोड्य लेढव्य प्रथमे दिवसे तत ॥ ९५ ॥
रक्तिवृद्धिः प्रतिदिन कार्या ताम्रादिषु त्रिषु।
स्थिरा विडङ्गरक्तिस्तु यदा भेदो विवक्षित ॥ ९६ ॥
तदा विडङ्गं त्वधिक दद्याद्रक्तिद्वयं पुन।
द्वादशाह योगवृद्धिस्ततो ह्रासक्रमोऽप्ययम् ॥ ९७ ॥
ग्रहणीमम्लपित्त च क्षयं शूल च सर्वदा।
ताम्रयोगो जयत्येष बलवर्णाग्निवर्धन. ॥ ९८ ॥

शुद्ध पारद १ माशा, शुद्ध गन्धक १ माशा दोनोंको खरलमें घोट कज्जली भडियामें छोडना चाहिये, उसके ऊपर महीन पिसी चौराईका चूर्ण दो माशा छोडकर ऊपरसे कण्टकवेधी ताम्रपत्र १५ माशेकी कटोरी बन्दकर ऊपरसे दूसरी कटोरीसे ढक सन्धिबन्दकर देना चाहिये, ऊपरसे बालू भर देना चाहिये फिर भटिया चूल्हेपर चढाकर नीचे अग्नि जलाना चाहिये, एक घण्टातक आंच देना चाहिये, इस प्रकार सिद्ध की गयी ताम्रभस्म १ रत्ती, त्रिफलाचूर्ण १ रत्ती, विडङ्गचूर्ण १ रत्ती, मरिचचूर्ण १ रत्ती, मधु घृत तथा हाथसे मिलाकर चटाना चाहिये। दूसरी मात्रा प्रथम दिन देना चाहिये फिर प्रतिदिन एक एक रत्ती बढाना चाहिये, [illegible] बढाना चाहिये। पर यदि [illegible] आदि [illegible] देना चाहिये इस प्रकार १२ दिन तक एक एक रत्ती बढाना चाहिये और इसी प्रकार एक एक रत्ती कम करना चाहिये। यह ग्रहणी, अम्लपित्त, [illegible] तथा शूलको नष्ट करता है। बल, वर्ण तथा अग्निको बढाता है ॥ ९२–९८ ॥

इति ग्रहण्यधिकारः समाप्तः।

अथार्शोऽधिकारः।

अर्शसांचिकित्साभेदाः।

दुर्नाम्नां साधनोपायश्चतुर्धा परिकीर्तितः।
भेषजक्षारशस्त्राग्निसाध्यत्वादाद्य उच्यते ॥ १ ॥

अर्श औषध, क्षार, शस्त्र तथा अग्नि इन चार उपायोंसे अच्छा होता है इनमें प्रथम औषधका वर्णन करते हैं ॥ १ ॥

यद्वायोरानुलोम्याय यदग्निबलवृद्धये।
अनुपानौषधद्रव्य तत्सेव्य नित्यमर्शसै ॥ २ ॥

जिससे वायुका अनुलोमन तथा अग्नि व बलकी वृद्धि हो वह अनुपान तथा औषध अर्शवालोंको सदैव सेवन करना चाहिये ॥ २ ॥

शुष्कार्शसां प्रलेपादिक्रिया तीक्ष्णा विधीयते।
स्राविणां रक्तमालोक्य क्रिया कार्यास्रपित्तिकी ॥ ३ ॥

बवासीरके सूखे मस्सोंमें तीक्ष्ण लेपादि करना चाहिये तथा रक्त बहन करनेवाले मस्सोंमें रक्तपित्तनाशक लेपादि करना चाहिये ॥ ३ ॥

अर्शोघ्नलेपाः।

स्नुक्क्षीर रजनीयुक्त लेपाद्दुर्नामनाशनम्।
कोशातकीरजोघर्षान्निपतन्ति गुदोद्भवाः ॥ ४ ॥
अर्कक्षीरं सुधाक्षीरं तिक्ततुम्ब्याश्च पल्लवाः।
करञ्जो बस्तमूत्रेण लेपनं श्रेष्ठमर्शसाम् ॥ ५ ॥

---

१ इसमें पारद गन्धककी कज्जली २ मासे छोडना चाहिये तथा मात्रा १ रत्तीकी लिखी है पर यह अधिक है, वर्तमान समयमें आधी रत्तीसे ही बढाना उत्तम है। ताम्रभस्मकी अनेक विधियां हैं उन्हें रसग्रन्थोंसे जान—

—ना चाहिये। पर यहांके लिये जितना आवश्यक है श्रीमान् चक्रपाणिजीने स्वयं लिख दिया है विषय बढानेकी आवश्यकता नहीं।

अर्शोघ्नी गुदगा वर्तिर्गुडघोषाफलोद्भवा ।
ज्योत्स्निका मूलकल्केन लेपो रक्तार्शसां हित. ॥ ६ ॥
तुम्बीबीज सोम्भिदं तु काञ्जीपिष्टं गुटीत्रयम् ।
अर्शोहर गुदस्थ स्याद्दधि माहिषमश्नत ॥ ७ ॥

थूहरका दूध हल्दीके चूर्णके साथ लेप करनेसे अर्श को नष्ट करता है । इसी प्रकार कडुई तोरईका चूर्ण घिसनेसे मस्से कट जाते हैं । तथा आकका दूध, थूहरका दूध, कडुआ तोम्बीके पत्ते तथा कञ्जाके बीज सब बकरे के मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे मस्से नष्ट होते हैं । तथा गुड व कडुई तोरईकी बत्ती बनाकर गुदामें लेप करनेसे अर्शके मस्से नष्ट होते ह । तथा कडुई तोरईकी जडका कल्क लेप करनेसे रक्तार्शको नष्ट करता है । कडुई तोम्बीके बीज व खारीनमक अथवा साम्भरनमक समान भाग ले काञ्जीमें पीस गोली बनाकर गुदामें रखनेसे तीन गोलीमें ही बवासीर नष्ट होता है इस प्रयोगमें भैंसीके दहीका पथ्य लेना चाहिये ॥ ४–७ ॥

लिङ्गार्शसि लेपः ।

अपामार्गाङ्घ्रिज क्षारो हरितालेन संयुत ।
लेपनं लिङ्गसम्भूतमर्शो नाशयति ध्रुवम् ॥ ८ ॥

अपामार्ग (लटजीरा) की जडका क्षार तथा हरिताल एकमें घोटकर लेप करनेसे लिङ्गार्श नष्ट होता है ॥ ८ ॥

अपरो लेपः ।

महाबोधिप्रदेशस्य पथ्याकोशातकीरज ।
कफेन लेपतो हन्ति लिगवर्तिमसंशयम् ॥ ९ ॥

छोटी हर्र, कडुई तोरई, समुद्रफेन तीनों महीन पीस पानीके साथ लेप करनेसे लिङ्गार्श निःसन्देह नष्ट होता है ॥ ९ ॥

विशेषव्यवस्था ।

वातातीसारवच्चैनवर्चांस्यर्शांस्युपाचरेत् ।
उदावर्तविधानेन गाढविट्कानि चासकृत् ॥ १० ॥

बवासीरके साथ यदि दस्त आते हों तो अतीसारके समान और यदि कडे दस्त आते हों तो उदावर्तके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १० ॥

तक्रप्राधान्यम् ।

विड्विबन्धे हितं तक्रं यमानीविडसंयुतम् ।
वातश्लेष्मार्शसां तक्रात्परं नास्तीह भेषजम् ॥ ११ ॥
तत्प्रयोज्यं यथादोषं सस्नेहं रूक्षमेव वा ।
न विरोहन्ति गुदजा पुनस्तक्रसमाहता ॥ १२ ॥

मलकी रुकावटमें अजवाइन तथा विडनमक युक्त मट्ठा पिलाना चाहिये । वातकफ–जन्य अर्शके लिये मट्ठेसे बढकर कोई औषध नहीं है । वह वातजन्य बवासीरमें विना मक्खन निकाले तथा कफजन्यमें मक्खन निकाल कर पीना चाहिये । मट्ठेके सेवनसे नष्ट हुआ अर्श फिर नहीं उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

विशेषतक्रविधानम् ।

त्वच चित्रकमूलस्य पिष्ट्वा कुम्भं प्रलेपयेत् ।
तक्रं वा दधि वा तत्र जातमर्शोहर पिबेत् ॥ १३ ॥

ताजी चीतकी जडकी छालको महीन पीसकर घडेमें लेप करना चाहिये फिर उसी घडेमें जमाया गया दही अथवा उसी दहीका बनाया मट्ठा पीनेसे अर्श नष्ट होता है ॥ १३ ॥

अभयाप्रयोगाः ।

पित्तश्लेष्मप्रशमनी कच्छूकण्डूरुजापहा ।
गुदजान्नाशयत्याशु योजिता सगुडाभया ॥ १४ ॥
सगुडां पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम् ।
त्रिवृद्दन्तीयुतां वापि भक्षयेदानुलोमिकीम् ॥ १५ ॥

गुडके साथ हर्रके चूर्णको खानेसे खुजली, छाले तथा बवासीरके मस्से नष्ट होते हैं । इसी प्रकार घीमें भूजी गयी हरीतकीका चूर्ण पीपलके चूर्ण तथा गुडके साथ सेवन करनेसे अथवा निसोथ व दन्तीकी जडके चूर्णके साथ सेवन करनेसे दस्त साफ आता है । बवासीर नष्ट होती है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अन्ये योगाः ।

तिलारुष्करसयोगं भक्षयेदग्निवर्धनम् ।
कुष्ठरोगहर श्रेष्ठमर्शसां नाशनं परम् ॥ १६ ॥

---

१ तक्रलक्षणम् ।–"दधि प्रमथितं पादजलोपेतं सरोज्झितम् । तक्रमत्र समाख्यातं त्रिदोषशमनं परम् । अरुचौ विड्विबन्धे च तक्रं स्यादमृतोपमम् । न तक्रदग्धाः प्रभवन्ति रोगा न तक्रसेवी व्यथते कदाचित् । यथा सुराणाममृतं हि स्वर्गे तथा नराणां भुवि तक्रमाहुः॥ कैलासे यदि तक्रमस्ति गिरिशः किं नीलकण्ठो भवेद्वैकुण्ठे यदि कृष्णतामनुभवेदद्यापि किं केशवः । इन्द्रो दुर्भगतां क्षयं द्विजपतिर्लम्बोदरत्वं गणः कुष्ठित्वं च कुबेरको दहनतामग्निश्च किं विन्दति ' ॥

तिलभल्लातकं पथ्या गुडश्चेति समांशकम्।
दुर्नामकासश्वासघ्नं प्लीहपाण्डुज्वरापहम् ॥ १७ ॥
गोमूत्रव्युषितां दद्यात्सगुडां वा हरीतकीम्।
पञ्चकोलकयुक्तं वा तक्रमस्मै प्रदापयेत् ॥ १८ ॥
मृल्लिप्तं सूरणं कन्दं पक्त्वाग्नौ पुटपाकवत्।
अद्यात्सतैललवणं दुर्नामविनिवृत्तये ॥ १९ ॥
स्विन्नं वार्ताकुफलं घोषाया क्षारजेन सलिलेन।
तद्घृतभृष्टं युक्तं गुडेनातृप्तितो योऽत्ति ॥ २० ॥
पिबति च तक्रं नूनं तस्याश्वेवातिवृद्धगुदजानि॥
यान्ति विनाशं पुंसां सहजान्यपि सप्तरात्रेण ॥ २१ ॥
असितानां तिलानां प्राक् प्रकुञ्चं शीतवार्यनु।
खादतोऽर्शांसि नश्यन्ति द्विजदार्ढ्याङ्गपुष्टिदम् ॥२२॥

तिल तथा शुद्ध भिलावाका चूर्ण अग्निको दीप्त करता है, कुष्ठ तथा अर्शको नष्ट करता है। तथा काले तिल, भिलावा, छोटी हर्र, गुड समान भाग ले चूर्ण अथवा गोली बनाकर सेवन करनेसे अर्श, कास, श्वास, प्लीहा, पाण्डुरोग तथा ज्वर नष्ट होता है। इसी प्रकार गोमूत्रमें बासी (रात्रिभर भिगोई गयी) बडी हर्र गुड मिलाकर सेवन करनेसे अथवा पञ्चकोलका चूर्ण मिलाकर मट्ठा पीनेसे अर्श नष्ट होता है। तथा जमीकन्दके ऊपर मिट्टीका लेपकर पुटपाकके विधानसे पका तैल तथा नमक मिलाकर सेवन करनेसे अर्श नष्ट होता है तथा कडुआ तोरई क्षार जलसे उबाले गये बैंगनको घीमें भूनकर गुडके साथ तृप्ति पर्यन्त भोजन कर ऊपरसे मट्ठा पीनेसे निस्सन्देह तत्काल ही अर्श नष्ट हो जाता है तथा सात दिन सेवन करनेसे सहज अर्श भी नष्ट हो जाता है। काले तिल १ पल चबाकर ऊपरसे ठण्डा जल पीनेसे अर्श नष्ट होता है तथा दांत व शरीर पुष्ट होते हैं ॥ १६–२२ ॥

दन्त्यरिष्टः।

दन्तीचित्रकमूलानामुभयोः पञ्चमूलयोः[1]।
भागान्पलांशानापोथ्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २३ ॥
त्रिपलं त्रिफलायाश्च दलानां तत्र दापयेत्।
रसे चतुर्थशेषे तु पूतशीते प्रदापयेत् ॥ २४ ॥
तुलां गुडस्य तत्तिष्ठेन्मासार्धं घृतभाजने।
तन्मात्रया पिबन्नित्यमर्शोभ्यो विप्रमुच्यते ॥ २५ ॥
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं वातवर्चोऽनुलोमनम्।
दीपनं चारुचिघ्नं च दन्त्यरिष्टमिदं विदुः।
पात्रेऽरिष्टादिसन्धानं धातकीलोध्रलेपिते ॥ २६ ॥

जमालगोटाकी जड अथवा छोटी दन्ती, चीतेकी जड, लघु पञ्चमूल, बृहत्पञ्चमूल प्रत्येक एक पल तथा त्रिफला को छिल्का तीन पल सब कुटकुचाकर एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार ५ सेर गुड मिलाकर घीके बर्तनमें १५ दिन तक रखना चाहिये फिर छानकर चार तोलाकी मात्रा पीनेसे अर्श नष्ट हो जाता है, तथा ग्रहणी, पाण्डुरोगोंको भी नष्टकर मल व वायुकी शुद्धता, अग्निकी दीप्ति तथा जडताको नष्ट करता है। इसे दन्त्यरिष्ट कहते हैं। धायके फूल तथा पठानीलोधमें लेप किये पात्रमें अरिष्टादि सन्धान करना चाहिये ॥ २३–२६ ॥

नागराद्यो मोदकः।

सनागरारुष्करवृद्धदारकं
गुडेन यो मोदकमत्त्युदारकम्।
अशेषदुर्नामकरोगदारकं
करोति वृद्धं सहसैव दारकम् ॥ २७ ॥

सोंठ, शुद्ध भिलावा तथा विधारा तीनोंको गुडके साथ गोली बना सेवन करनेसे समस्त अर्श नष्ट होते हैं। तथा शरीर बलवान् होता है ॥ २७ ॥

गुडमानम्।

चूर्णे चूर्णसमो ज्ञेयो मोदके द्विगुणो गुडः।

गुड चूर्णमें चूर्णके समान तथा गोलियोंमें चूर्णसे दूना छोडना चाहिये।

प्राणदा गुटिका।

त्रिपलं शृङ्गवेरस्य चतुर्थं मरिचस्य च ॥ २८ ॥
पिप्पल्याः कुडवार्धं च चव्यायाः पलमेव च।
तालीशपत्रस्य पलं पलार्धं केशरस्य च ॥ २९ ॥
द्वे पले पिप्पलीमूलादर्धकर्षं च पत्रकात्।
सूक्ष्मैलाकर्षमेकं तु कर्षं च त्वङ्मृणालयोः ॥ ३० ॥
गुडात्पलानि तु त्रिंशच्चूर्णमेकत्र कारयेत्।
अक्षप्रमाणा गुटिका प्राणदेति च सा स्मृता ॥३१॥

---

१ भल्लातक शोधनविधिः—भल्लातकानि पक्वानि समानीय क्षिपेज्जले। मज्जन्ति यानि तत्रैव शुद्ध्यर्थं तानि योजयेत्। इष्टकाचूर्णनिकर्षघर्षणेनिर्विषं भवेत् ॥

१ इस प्रयोगको ग्रन्थान्तरमें महीने भर रखनेके लिये लिखा है। यथा—"त्रिफलादन्तमूलाग्निनिकुम्भानां पलं पलम्। वारिद्रोणे स्थितः पादशेषो गुडतुलायुतः ॥ आज्यभाण्डे स्थितो मासं दन्त्यरिष्टो निषेवितः" ॥ श्रीयुत शिवदासजीने स्मृति द्वैधका दृष्टान्त देकर दोनोंको प्रामाणिक बताया है मेरे विचारसे शीत, उष्ण, काल भेदसे १५ या १ मास रखना चाहिये, अर्थात् उष्ण कालमें १५ दिन, शीत कालमें एक महीना।

पूर्वं भक्ष्याऽथ पश्चाच्च भोजनस्य यथाबलम्।
मद्यं मांसरसं यूषं क्षीरं तोयं पिबेदनु ॥ ३२ ॥
हन्यादर्शांसि सर्वाणि सहजान्यस्रजानि च।
वातपित्तकफोत्थानि सन्निपातोद्भवानि च ॥ ३३ ॥
पानात्यये मूत्रकृच्छ्रे वातरोगे गलग्रहे।
विषमज्वरे च मन्देऽग्नौ पाण्डुरोगे तथैव च ॥ ३४ ॥
क्रिमिहृद्रोगिणां चैव गुल्मशूलार्तिनां तथा।
श्वासकासपरीतानामेषा स्यादमृतोपमा ॥ ३५ ॥
शुण्ठ्याः स्थानेऽभया देया विड्ग्रहे पित्तपायुजे।
प्राणदेयं सिता दत्त्वा चूर्णमानाच्चतुर्गुणाम् ॥ ३६ ॥
अम्लपित्ताग्निमान्द्यादौ प्रयोज्या गुदजातुरे।
अनुपानं प्रयोक्तव्यं व्याधौ श्लेष्मभवे पलम् ॥ ३७ ॥
पलद्वयं त्वनिलजे पित्तजे तु पलत्रयम्।

सोंठ १२ तोला, काली मिर्च ४ तोला, छोटी पीपल ८, तोला चव्य ४ तोला, तालीशपत्र ४ तोला, नागकेशर २ तोला, पिपरामूल ८ तोला, तेजपात ६ माशे, छोटी इलायची १ तोला, दालचीनी ६ माशे, खश ६ माशे, गुड १॥ सेर सब एकमें मिलाकर १ तोलाकी गोली बनाना चाहिये। इसे प्राणदावटी कहते हैं। इसे भोजनके प्रथम तथा अनन्तर बलके अनुसार सेवन करना चाहिये। ऊपरसे मद्य, मासरस, यूष, दूध अथवा जल पीना चाहिये। समस्त सहज रक्तज तथा दोषज बवासीर इससे नष्ट होते हैं। मदात्यय, मूत्रकृच्छ्र, वातरोग, स्वरभेद, विषमज्वर, मन्दाग्नि, पाण्डुरोग, क्रिमिरोग, हृद्रोग, गुल्म, शूल, श्वास तथा काससे पीडित मनुष्योंके लिये यह अमृतके तुल्य लाभदायक होती है। पित्तजन्य अर्शमें सोंठके स्थानमें बडी हर्रका छिल्का इसमें छोडना चाहिये। इस प्राणदावटीको गुडके स्थानमें चूर्णमानसे चतुर्गुण मिश्री छोड बनाकर अम्लपित्त तथा अग्निमांद्य आदि-प्रयोग करना चाहिये। श्लेष्मजरोगमें अनुपान [1] १ पल वातजन्यमें २ पल तथा पित्तजन्यमें ३ पल सेवन करना चाहिये ॥ २८–३७ ॥—

काकायनगुटिका।

पथ्यापञ्चपलान्येकमजाज्या मरिचस्य च ॥ ३८ ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागराः।
पलाभिवृद्धाः क्रमशो यवक्षारपलद्वयम् ॥ ३९ ॥
भल्लातकपलान्यष्टौ कन्दस्तु द्विगुणो मतः।
द्विगुणेन गुडेनैषां वटकानक्षसंमितान् ॥ ४० ॥
कृत्वैनं भक्षयेत्प्रातस्तक्रमम्भोऽनु वा पिबेत्।
मन्दाग्निं दीपयत्येषा ग्रहणीपाण्डुरोगनुत् ॥ ४१ ॥
कांकायनेन शिष्येभ्य शस्त्रक्षाराग्निभिर्विना।
भिषग्जितमिति प्रोक्तं श्रेष्ठमर्शोविकारिणाम् ॥ ४२ ॥

हर्र २० तोला, जीरा सफेद ४ तोला, काली मिर्च ४ तोला, छोटी पीपल ४ तोला, पिपरामूल ८ तोला, चव्य १२ तोला, चीतकी जड १६ तोला, सोंठ २० तोला, यवाखार ८ तोला, भिलावा ३२ तोला, जमीकन्द ६४ तोला, सबका चूर्ण बनाकर द्विगुण गुडसे गोली १ तोलेके बराबर बनाना चाहिये। प्रातःकाल १ गोली खाके ऊपरसे मट्ठा या जल पीना चाहिये। यह गोली मन्दाग्निको दीप्त करती है। ग्रहणी तथा पाण्डुरोगको नष्ट करती है। काकायनने यह गोली शस्त्रक्षारादिके बिना अर्शके नष्ट करनेके लिये अपने शिष्योंके लिये बतलायी थी अत एव इसे काकायनवटी कहते हैं ॥ ३८—४२ ॥

माणिभद्रमोदकः।

विडंगसारामलकाभयाना
पलं पलं स्यात्त्रिवृतस्त्रयं च।
गुडस्य षड् द्वादशभागयुक्ता
मासेन त्रिंशद्गुटिका विधेया ॥ ४३ ॥
निवारणे यक्षवरेण सृष्ट
स माणिभद्रः किल शाक्यभिक्षवे।
अयं हि कासक्षयकुष्ठनाशनो
भगन्दरप्लीहजलोदरार्शसाम् ॥ ४४ ॥
यथेष्टचेष्टान्नविहारसेवी
अनेन वृद्धस्तरुणो भवेच्च ॥ ४५ ॥

वायविडङ्ग, आमला, बडी हर्र प्रत्येक ४ तोला, निसोथ १२ तोला, सब कूट छान २४ तोला गुड मिलाकर ३० गोली बनाना चाहिये, एक गोली प्रति दिन सेवन करना चाहिये। यह माणिभद्र नामक गोली किसी यक्षने शाक्य भिक्षुके लिये बतलायी थी। यह कास, क्षय, कुष्ठ, भगन्दर, प्लीहा, जलोदर तथा अर्शको नष्ट

---

[1] ग्रन्थान्तरमें इसीको चाशनी बनाकर गोली बनाना लिखा है। यथा वाग्भटः-"पक्त्वैनं गुटिका कार्या गुडेन सितयापि वा। पर हि वह्निसयोगाद्गुधिमानं भजन्ति ताः।" विभिन्न ग्रन्थोंमें यह योग पाठभेदमे लिखा है।

करती है, इसमें किसी प्रकारका परहेज नहीं है । इसके सेवनसे वृद्ध पुरुष भी जवान हो जाता है अर्थात् यह वाजीकरण भी है । ॥ ४३—४५ ॥

स्वल्पशूरणमोदकः ।

मरिचमहौषधचित्रकसूरणभागा यथोत्तरं द्विगुणाः ।
सर्वसमो गुडभागः सेव्योऽयं मोदकः प्रसिद्धफलः ॥४६॥
ज्वलनं ज्वलयति जाठरमुन्मूलयति शूलगुल्मगदान् ।
निःशेषयति श्लीपदमर्शांस्यपि नाशयत्याशु ॥ ४७ ॥

काली मिर्च १ भाग, सोंठ २ भाग, चीतकी जड ४ भाग, जमीकन्द ८ भाग, गुड १५ भाग सब मिलाकर गोली बनानी चाहिये । इसका फल प्रसिद्ध है । अग्निको दीप्त करती है, उदररोग, शूल, गुल्म, श्लीपद तथा अर्श को शीघ्र ही नष्ट करती है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

बृहच्छूरणमोदकः ।

सूरणषोडशभागा वह्नेरष्टौ महौषधस्यातः ।
अर्धेन भागयुक्तिर्मरिचस्य ततोऽपि चार्धेन ॥ ४८ ॥
त्रिफलाकणासमूलातालीशारुष्करक्रिमिघ्नानाम् ।
भागा महौषधसमा दहनांशा तालमूली च ॥ ४९ ॥
भागः सूरणतुल्यो दातव्यो वृद्धदारुकस्यापि ।
भृङ्गैले मरिचांशे सर्वाण्येकत्र सञ्चूर्ण्य ॥ ५० ॥
द्विगुणेन गुडेन युतः सेव्योऽयं मोदकः प्रकामघनैः ।
गुरुवृष्यभोज्यरहितेष्वितरेषूपद्रवं कुर्यात् ॥ ५१ ॥
भस्मकमनेन जनितं पूर्वमगस्त्यस्य योगराजेन ।
भीमस्य मारुतेरपि येन तौ महाशनौ जातौ ॥ ५२ ॥
अग्निबलवृद्धिहेतुर्न केवलं सूरणो महावीर्यः ।
प्रभवति शस्त्रक्षाराग्निभिर्विनाप्यर्शसामेषः ॥ ५३ ॥
श्वयथुश्लीपदजिद्ग्रहणीमपि कफवातसम्भूताम् ।
नाशयति वलीपलितं मेधां कुरुते वृषत्वं च ॥ ५४ ॥
हिक्कां श्वासं कासं सराजयक्ष्मप्रमेहांश्च ।
प्लीहानं चात्युग्रं हन्ति सदैतद्रसायनं पुंसाम् ॥ ५५ ॥

जमीकन्द १६ भाग, चीतकी जड ८ भाग, सोंठ ४ भाग, मिर्च २ भाग, त्रिफला, छोटी पीपल, पिपरामूल, तालीसपत्र, भिलावा, वायविडङ्ग प्रत्येक ४ भाग, स्याह-मुसली ८ भाग, विधायरा १६ भाग, भागरा तथा छोटी इलायची प्रत्येक २ भाग सबका चूर्णकर द्विगुण गुड मिला गोली बनाकर इसे धनी पुरुषोंको सेवन करना चाहिये । गरीब लोगोंको इसे न खाना चाहिये, क्योंकि गुरु तथा वाजीकर द्रव्य न खानेसे यह उपद्रव करता है इस प्रयोगने प्रथम अगस्त्य तथा भीम हनुमानके भस्मक उत्पन्न कर दिया था जिससे वे अधिक भोजन करनेवाले हुए । अग्नि, बल, बुद्धि तथा वीर्यको बढाता है, शस्त्र क्षारादिके बिना ही यह अर्शको नष्ट करता है । सूजन, श्लीपद तथा कफ-वात-जन्य ग्रहणीको नष्ट करता है । शरीरकी झुर्रियां तथा बालोंकी सफेदीको दूर करता है । मेधा तथा मैथुनशक्तिको बढाता है । हिचकी, श्वास, कास, राजयक्ष्मा, प्रमेह तथा बढे हुए प्लीहाको यह नष्ट करता तथा रसायन है ॥ ४८—५५ ॥

सूरणपिण्डी ।

चूर्णीकृताः षोडश सूरणस्य
भागास्ततोऽर्धेन च चित्रकस्य ।
महौषधाद्द्वौ मरिचस्य चैको
गुडेन दुर्नामजयाय पिण्डी ॥ ५६ ॥
पिण्ड्या गुडो मोदकवत्पिण्ड्याप्रतिकारकः ॥ ५७ ॥

सूरणका चूर्ण १६ भाग, चीतकी जड ८ भाग, सोंठ, नागरमोथा, काली मिर्च प्रत्येक एक भाग चूर्ण-कर गुड मिला गोली बनाकर अर्शके नाशार्थ सेवन करना चाहिये इसमें गुड मोदकके समान अर्थात् समस्त चूर्णसे दूना छोडना चाहिये ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

व्योषाद्यं चूर्णम् ।

व्योषाग्न्यरुष्करविडङ्गतिलाभयानां
चूर्णं गुडेन सहितं तु सदोपयोज्यम् ।
दुर्नामकुष्ठगरशोथशकृद्विबन्धा-
नग्नेर्जयत्यबलतां क्रिमिपाण्डुतां च ॥ ५८ ॥

सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, चीतकी जड, भिलावा, वायविडङ्ग, काले तिल, बडे हर्रका छिल्का सबका चूर्ण बना गुडके साथ सेवन करनेसे अर्श, कुष्ठ, कृत्रिम विष, सूजन, मलकी रुकावट, क्रीमि तथा पाण्डु-रोग नष्ट होते हैं । अग्नि दीप्त होती है ॥ ५८ ॥

समशर्करं चूर्णम् ।

शुण्ठीकणामरिचनागदलत्वगेलं
चूर्णीकृतं क्रमविवर्धितमूर्ध्वमन्त्यात् ।

---

१ इस प्रयोगमें आमला व बहेडा भी मिलाकर गोली बनानेके लिये ग्रन्थान्तरमें लिखा है । यथा—"गुडव्योषवराचित्रतिलारुष्कविडङ्गकैः । कृता तु गुडिका हन्ति गुदजानि विशेषतः ।"

स्यादेतद् समलितं गुदजाग्निमान्द्य-
कासारुचिश्वासगलरुग्हृदामयेषु ॥ ५९ ॥

सोंठ, छोटी पीपल, काली मिर्च, पान, दालचीनी, छोटी इलायची क्रमशः छः पांच, चार, तीन, दो, एक भाग ले कूट छान सबके समान भाग मिश्री मिलाकर अर्श, अग्निमान्द्य, कास, अरुचि, श्वास, कण्ठ तथा हृदयके रोगोंमें खाना चाहिये ॥ ५९ ॥

लवणोत्तमाद्यं चूर्णम्।

लवणोत्तमवह्निकलिङ्गयवान्
चिरबिल्वमहापिचुमर्दयुतान्।
पिब सप्तदिनं मथितालुलितान्
यदि मर्दितुमिच्छसि पायुरुहान् ॥ ६० ॥

बवासीर नष्ट करनेके लिये सेंधानमक, चीतकी जड़, इन्द्रयव, करञ्ज, बकायनके बीज महीन पीस मट्ठामें मिलाकर सात दिन तक पीना चाहिये ॥ ६० ॥

नागार्जुनयोगः।

त्रिफला पञ्चलवणं कुष्ठं कटुरोहिणी।
देवदारुविडङ्गानि पिचुमर्दफलानि च ॥ ६१ ॥
वचा पाठा निशा चैव हरिद्रे द्वे सुवर्चला।
एतत्सम्भृत्य सम्भारं करञ्जत्वग्रसेन च ॥ ६२ ॥
पिष्ट्वा च गुटिका कृत्वा बदरास्थिसमा बुध।
एकैकां तां समुद्धृत्य रोगे रोगे पृथक् पृथक् ॥ ६३ ॥
उष्णेन वारिणा पीता शान्तमग्निं प्रदीपयेत्।
अर्शांसि हन्ति तक्रेण गुल्मसम्लेन निर्हरेत् ॥ ६४ ॥
जन्तुदष्टे तु तोयेन त्वग्दोषे खदिराम्बुना।
मूत्रकृच्छ्रे तु तोयेन हृद्रोगे तैलसंयुता ॥ ६५ ॥
इन्द्रस्वरससंयुक्ता सर्वज्वरविनाशिनी।
मातुलुंगरसेनाथ सद्यः शूलहरी स्मृता ॥ ६६ ॥
कपित्थतिन्दुकानां तु रसेन सह मिश्रिता।
विषाणि हन्ति सर्वाणि पानादनुयोगतः ॥ ६७ ॥
गोशकृद्रससंयुक्ता हन्यात्कुष्ठानि सर्वशः।
श्यामाकषायसहिता जलोदरविनाशिनी ॥ ६८ ॥
भक्तच्छन्दं जनयति भुक्तस्योपरि भक्षिता।
अक्षिरोगेषु सर्वेषु मधुना घृष्य चाञ्जयेत् ॥ ६९ ॥
लेहमात्रेण नारीणां सद्यः प्रदरनाशिनी।
व्यवहारे तथा द्यूते संग्रामे मृगयादिषु ॥
समालभ्य नरो ह्येनां क्षिप्रं विजयमाप्नुयात् ॥ ७० ॥

त्रिफला, पाचोंनमक, कूट, कुटकी, देवदारु, वायविडंग, नीमके बीज, खरेटीके बीज, कची,हल्दी, दारुहल्दी, हुलहुल, सब कूट कञ्जाकी छालके रसमें घोटकर बेरकी गुठलीके बराबर गोली बना लेना चाहिये। एक गोली भिन्न भिन्न रोगोंमें भिन्न भिन्न अनुपानोंके साथ देना चाहिये। गरम जलके साथ मन्दाग्निको, मट्ठेके साथ अर्शको, काञ्जीके साथ गुल्मको, कीड़ोंके विषको जलके साथ, खदिर क्वाथके साथ त्वचाके रोगोंको, जलके साथ मूत्र कृच्छ्रको तैलको साथ हृद्रोगको, इन्द्रयवके क्वाथके साथ समस्त ज्वरोंको, बिजौरे निम्बूके रसके साथ शूलको, कैथा तथा तेन्दूके रसके साथ समस्त विषोंको, गायके गोबरके रसके साथ समस्त कुष्ठोंको तथा निसोथके काढ़ेके साथ जलोदरको नष्ट करती है। भोजनके अनन्तर सेवन करनेसे शीघ्र ही भोजनकी इच्छा उत्पन्न करती है। समस्त नेत्ररोगोंमें शहदमें घिसकर लगाना चाहिये। शहदमें ही मिला चाटनेसे स्त्रियोंका प्रदररोग नष्ट होता है। व्यवहार, द्यूत, संग्राम तथा शिकार आदिमें इस गोलीको पास रखनेसे शीघ्र ही सफलता प्राप्त होती है ॥ ६१–७० ॥

विजयचूर्णम्।

त्रिकत्रयवचाहिङ्गुपाठाक्षारनिशाद्वयम्।
चव्यतिक्ताकलिङ्गाग्निशताह्वालवणानि च ॥ ७१ ॥
ग्रन्थिबिल्वाजमोदा च गणोऽष्टाविंशतिर्मतः।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ ७२ ॥
ततो बिडालपदकं पिबेदुष्णेन वारिणा।
एरण्डतैलयुक्तं वा सदा लिह्यात्ततो नरः ॥ ७३ ॥
कासं हन्यात्तथा शोथमर्शांसि च भगन्दरम्।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च वातगुल्मं तथोदरम् ॥ ७४ ॥
हिक्काश्वासप्रमेहांश्च कामलां पाण्डुरोगताम्।
आमान्वयमुदावर्तमन्त्रवृद्धिं गुदाक्रिमीन् ॥ ७५ ॥
अन्ये च ग्रहणीदोषा ये मया परिकीर्तिताः।
महाज्वरोपसृष्टानां भूतोपहतचेतसाम् ॥ ७६ ॥
अप्रजानां तु नारीणां प्रजावर्धनमेव च।
विजयो नाम चूर्णोऽयं कृष्णात्रेयेण पूजितः ॥ ७७ ॥

त्रिकटु, त्रिफला तथा त्रिमद (नागरमोथा, चीतकी जड़, वायविडंग) वचमीठा, भुनी हींग, पाढ़, यवाखार, हल्दी, दारुहल्दी, चव्य, कुटकी, इन्द्रयव, चीतकी जड़, सौंफ, पाचों नमक, पिपरामूल, बेलका गूदा, अजवाइन यह अट्ठाइस चीजें प्रत्येक समान भाग ले महीन चूर्ण कर १ तोलाकी मात्रा गरम जलके साथ सेवन करना चाहिये। अथवा एरण्डतैल मिलाकर चाटना चाहिये। यह चूर्ण कास, सूजन, हृद्रोग, अर्श, भगन्दर, पसलियोंका दर्द, वातगुल्म, उदररोग, हिक्का, श्वास, प्रमेह, कामला, पाण्डुरोग, आमयुक्त उदावर्त, अन्त्रवृद्धि,

गुदाके कीडे तथा ग्रहणीदोषोंको नष्ट करता है । ज्वर तथा भूतोन्मादसे पीडित तथा वन्ध्या स्त्रियोंके लिये परम उपकारी है । यह विजयचूर्ण भगवान् पुनर्वसुने कहा है ॥ ७१–७७ ॥

बाहुशालगुडः ।

त्रिवृत्तेजोवती दन्ती श्वदंष्ट्रा चित्रक शटी ।
गवाक्षीमुस्तविश्वाह्वविडगानि हरीतकी ॥ ७८ ॥
पलोन्मितानि चैतानि पलान्यष्टावरुष्करात् ।
षट्पलं वृद्धदारस्य सूरणस्य तु षोडश ॥ ७९ ॥
जलद्रोणद्वये क्वाथ्य चतुर्भागावशेषितम् ।
पूत तु त रस भूय क्वाथ्येभ्यस्त्रिगुणो गुड ॥ ८० ॥
लेह पचेत्तु त तावद्यावद्दर्वीप्रलेपनम् ।
अवतार्य तत पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ ८१ ॥
त्रिवृत्तेजोवतीकन्दचित्रकान्द्विपलांशिकान् ।
एलात्वङ्मरिचं चापि गजाह्वा चापि षट्पलाम् ॥ ८२ ॥
द्वात्रिंशत पलान्येव चूर्णं दत्त्वा निधापयेत् ।
ततो मात्रा प्रयुञ्जीत जीर्णे क्षीररसाशन ॥ ८३ ॥
पञ्च गुल्मान्प्रमेहांश्च पाण्डुरोगं हलीमकम् ।
जयेदर्शांसि सर्वाणि तथा सर्वोदराणि च ॥ ८४ ॥
दीपयेद्ग्रहणीं मन्दां यक्ष्माणं चापकर्षति ।
पीनसे च प्रतिश्याये आढयवाते तथैव च ॥ ८५ ॥
अय सर्वगदेष्वेव कल्याणो लेह उत्तम ।
दुर्नामारिरय चाशु दृष्टो वारसहस्रश ॥ ८६ ॥
भवन्त्येन प्रयुञ्जाना शतवर्षं निरामया ।
आयुषो ह्येयजननो वलीपलितनाशन ॥ ८७ ॥
रसायनवरश्चैष मेधाजनन उत्तम ।
गुड श्रीबाहुशालोऽयं दुर्नामारि प्रकीर्तित ॥ ८८ ॥

निसोथ, चव्य, जमालगोटाकी जड या छोटी दन्ती, गोखुरू, चीतकी जड, कचूर, इन्द्रायणकी जड, नागरमोथा, सोंठ, वायविडग, हरड प्रत्येक ४ तोला, भिलावां ३२ तोले, विधायरा २४ तोला, जमीकन्द ६४ तोला सब दुरकुचाकर २ द्रोण जलमें पचाकर चतुर्थांश शेष रस छानकर क्वाथ्य औषधियोंसे त्रिगुण (अर्थात् ४९२ तोला) गुड मिलाकर अवलेह बनाना चाहिये । जब गाढा हो जाय तब उतारकर निम्न लिखित औषधियोंका चूर्ण छोडना चाहिये । निसोथ, चव्य, जमीकन्द चीतकी जड प्रत्येक ८ तोला, इलायची, दालचीनी, काली मिर्च तथा गजपीपल प्रत्येक २४ तोला का चूर्ण बना छोडकर रखना चाहिये फिर मात्रासे इसका सेवन करना चाहिये । हजम हो जानेपर दूध तथा मास रसादि सेवन करना चाहिये । यह पाचों गुल्म, प्रमेह, पाण्डुरोग, हलीमक, अर्श, उदररोग, ग्रहणी, यक्ष्मा, पीनस, प्रतिश्याय तथा ऊरुस्तम्भको नष्ट करता है । यह समस्त रोगोंमें लाभ पहुंचाता है पर अर्शको विशेषतया नष्ट करता है । यह हजारों बारका अनुभूत है । इसके प्रयोग करनेवाले १०० वर्षतक नीरोग होकर जीते हैं । यह आयुको बढाता, झुर्रियों तथा बालो की सफेदीको नष्ट करता तथा मेधाको बढाता है । यह अर्शको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ बाहुशालनामक गुड उत्तम रसायन है ॥ ७८–८८ ॥

गुडपाकपरीक्षाः ।

तोयपूर्णे यदा पात्रे क्षिप्तो न प्लवते गुडः ।
क्षिप्तश्च निश्चलस्तिष्ठेत्पातितस्तु न शीर्यते ॥ ८९ ॥
यदा दर्वीप्रलेप स्यात्तावद्वा तन्तुली भवेत् ।
एष पाको गुडादीना सर्वेषां परिकीर्तित ॥ ९० ॥
सुखमर्द, सुखस्पर्शो गुड पाकमुपागत ।
पीडितो भजते मुद्रा गन्धवर्णरसान्वितः ॥ ९१ ॥

जलसे भरे हुए पात्रमें छोडनेपर जब उतरावे नहीं और जहा गिरे वहीं बैठ जावे तथा जलमें फैले नहीं और कलछीमें चपकने लग जावे अथवा तार बन्धने लग जावे तथा मर्दन करनेमें, स्पर्श करनेमें अच्छा प्रतीत हो और दो अगुलियोंके बीचमें दबानेसे अगुलियोंकी रेखायें बनजावे तथा गन्ध वर्ण व रस उत्तम हो तब समझना चाहिये कि गुड पाक उत्तम हुआ ॥ ८९–९१ ॥

गुडभल्लातकः ।

भल्लातकसहस्रे द्वे जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेषे रसे तस्मिन्पचेद् गुडतुला भिषक् ॥ ९२ ॥
भल्लातकसहस्रार्धं छित्त्वा तत्रैव दापयेत् ।
सिद्धेऽस्मिंस्त्रिफलाव्योषयमानीमुस्तसैन्धवम् ॥ ९३ ॥
कर्षांशसमितं दद्यात्त्वगेलापत्रकेशरम् ।
खादेदग्निबलापेक्षी प्रातरुत्थाय मानव ॥ ९४ ॥
कुष्ठार्श कामलामेहग्रहणीगुल्मपाण्डुता ।
हन्यात्प्लीहोदर कासक्रिमिरोगभगन्दरान् ।
गुडभल्लातको ह्येष श्रेष्ठश्चार्शोविकारिणाम् ॥ ९५ ॥

१ इसकी मात्रा ६ माशेसे प्रारम्भ कर २ तोला तक क्रमशः बढाना चाहिये, और तैल मिर्चा (लाल) खटाई गुड आदि गरम चीजोंका परहेज रखना चाहिये तथा प्रतिश्यायमें नहीं खाना चाहिये और धूपमें कम निकलना चाहिये ।

अधकुटे शुद्ध भल्लातक २००० दो हजार एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर ५ सेर गुड तथा ५०० पाच सौ भिलावा कूटे हुए डालकर पकाना चाहिये । पाक तैयार हो जानेपर त्रिफला, त्रिकुटु, अजवाइन, नागरमोथा, सेंधानमक, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर सब एक एक तोला ले चूर्ण बना (कपडछान किया) छोड उतारकर रख लेना चाहिये । अग्नि तथा बलके अनुसार इसकी मात्राका प्रातःकाल सेवन करना चाहिये यह कुष्ठ, अर्श, कामला, प्रमेह, ग्रहणी, गुल्म, पाण्डु, प्लीहोदर, कास, क्रिमिरोग तथा भगन्दरको नष्ट करता है । तथा अर्शरोगवालोंके लिये विशेष हितकर है ॥९२-९५॥

द्वितीयगुडभल्लातकः ।

दशमूल्यमृता भार्ङ्गी श्वदंष्ट्रा चित्रकं शटी ।
भल्लातकसहस्रं च पलांशं क्वाथयेद्बुध ॥ ९६ ॥
पादशेषे जलद्रोणे रसे तस्मिन्विपाचयेत् ।
दत्त्वा गुडतुलामेकां लेहीभूतं समुद्धरेत् ॥ ९७ ॥
माक्षिकं पिप्पली तैलमेरण्डकं च दापयेत् ।
कुडव कुडव चात्र त्वगेलामरिच तथा ॥ ९८ ॥
अर्श कासमुदावर्तं पाण्डुत्व शोथमेव च ।
नाशयेद्वह्निसाद च गुडभल्लातक. स्मृत. ॥ ९९ ॥

दशमूल, गुर्च, भारङ्गी, गोखुरु, चीतकी जड, कचूर प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, भल्लातक अधकुटे १००० एक हजार सब एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान ५ सेर गुड छोडकर पकाना चाहिये जब अवलेह तैयार हो जावे तो उतार ठण्डाकर शहद १६ तोला, छोटी पीपलका महीन चूर्ण १६ तोला, शुद्ध एरण्डतैल १६ तोला, दालचीनी १६ तोला, तेजपात १६ तोला, छोटी इलायची १६ तोला, सबका महीन चूर्ण छोडकर रख लेना चाहिये । यह अर्श, कास, उदावर्त, पाण्डुरोग, शोथ, अग्निमान्द्यको नष्ट करता है । मात्रादि ऊपरके प्रयोगके अनुसार है ॥ ९६-९९ ॥

चव्यादिघृतम् ।

चव्यं त्रिकटुकं पाठां क्षारं कुस्तुम्बुरूणि च ।
यमानी पिप्पलीमूलमुभे च विडसैन्धवे ॥ १०० ॥
चित्रक बिल्वमभया पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
शकृद्वातानुलोम्यार्थं जात दध्नि चतुर्गुणे ॥ १०१ ॥
प्रवाहिका गुदभ्रंश मूत्रकृच्छ्रं परिस्रवम् ।
गुदवंक्षणशूलं च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ १०२ ॥

चव्य, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, पाढ, यवाखार, धनिया, अजवाइन, पिपरामूल, बिडनमक, सैंधानमक, चीतकी जड, बेलका गूदा, बडी हर्रका छिल्का सबका कल्क तथा चतुर्गुण दही तथा चतुर्गुण जल मिलाकर घृत पकाना चाहिये । यह घृत प्रवाहिका, गुदभ्रंश, मूत्रकृच्छ्र, दस्तोंका आना, गुदा तथा वक्षणके शूलको नष्ट करता है ॥ १००-१०२ ॥

पलाशक्षारघृतम् ।

व्योषगर्भं पलाशस्य त्रिगुणे भस्मवारिणि ।
साधित पिबत. सर्पि पतन्त्यर्शांस्यसशयम् ॥ १०३ ॥

घृतसे त्रिगुण पलाशक्षार जल, घृतके समान जल और चतुर्थांश सोंठ, मिर्च, पीपलका कल्क छोडकर पकाया गया घृत सेवन करनेसे अर्शके मस्सोंका अवश्य पातन होता है ॥ १०३ ॥

उदकषट्पलकं घृतम् ।

सक्षारै पञ्चकोलैस्तु पलिकैस्त्रिगुणोदके ।
समक्षीरं घृतप्रस्थं ज्वरार्शं प्लीहकासनुत् ॥ १०४ ॥

---

१ भल्लातकके अनेक प्रयोग अनेक ग्रन्थोंमें कुछ पाठान्तर या प्रकरणान्तरसे हैं और सभी रसायन वाजीकरण बताये गये हैं यथा—योगरत्नाकरवाजीकरणाधिकारमें अमृतभल्लातक तथा अर्शोऽधिकारमें भल्लातकावलेह, गदनिग्रह, लेहाधिकार इत्यादि पर भल्लातक सेवन करानेके समय यह ध्यान रखना चाहिये कि, किसी किसीको भल्लातकमें शोथ हो जाता है अतः जिसे शोथ हो जावे उसे इसका सेवन न कराना चाहिये । तथा भल्लातकदोषनाशार्थ कच्ची गरी खिलाना चाहिये । और काले तिल व गरीका उबटन लगवाना चाहिये । तथा इमलीके पत्तेसे गरम जलसे स्नान कराना चाहिये । यही विधि यदि बनाते समय भल्लातककी छींटे आदि पड जानेसे शोथ हो जावे तो करना चाहिये ।

१ क्षारपक्वघृतलक्षणम्-"यस्मिन्नवसरे क्षारतोयसाध्यघृतादिषु । फेनोद्गमस्य निर्वृत्तिर्नष्टदुग्धसमाकृतिः ॥ स एव तस्य पाकस्य कालो नेतरलक्षणः ।" अर्थात् क्षारजलसाध्य घृतोंमें जब फेनोद्गम हो जावे और बिगडे दूधके समान उसकी आकृति हो जावे तभी सिद्ध घृत समझना चाहिये । दूसरा लक्षण नहीं ।

त्रिफली, पिप्पलीमूल, चव्य, चीतकी जड, सोंठ तथा यवक्षार प्रत्येक एक पल, घृत एक प्रस्थ, दूध एक प्रस्थ तथा जल ३ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये, घृत मात्र शेष रहनेपर उतार छानकर रखना चाहिये। यह घृत ज्वर, अर्श, प्लीहा तथा कासको नष्ट करता है ॥ १०४ ॥

सिंह्यमृतं घृतम्।

पचेद्वारिचतुर्द्रोणे कण्टकार्यमृताशतम्।
तत्राग्नित्रिफलाव्योषपूतिकत्वक्कलिंगकैः ॥ १०५ ॥
सकाश्मर्यविडंगैस्तु सिद्धं दुर्नाममेहनुत्।
घृतं सिंह्यमृतं नाम बोधिसत्त्वेन भाषितम् ॥ १०६ ॥

छोटी कटेरीका पञ्चाङ्ग ५ सेर, गुर्च ५ सेर, जल ५१ सेर १६ तोला छोडकर पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर घृत ३ सेर १६ तोला तथा नीचे लिखी ओषधियोंका मिलित कल्क एक प्रस्थ छोडकर पकाना चाहिये। कल्क द्रव्य (चीता, त्रिफला, त्रिकटु, करञ्जाकी छाल, इन्द्रयव, खम्भारकी छाल, वायविडंग) यह घृत अर्श तथा प्रमेहको नष्ट करता है। इसका सर्व प्रथम किसी बौद्ध महात्माने प्रचार किया था ॥ १०५ ॥ १०६ ॥

पिप्पल्याद्यं तैलम्।

पिप्पली मधुकं बिल्वं शताह्वा मदनं वचाम्।
कुष्ठं शटी पुष्कराख्यं चित्रकं देवदारु च ॥ १०७ ॥
पिष्ट्वा तैलं विपक्तव्यं द्विगुणक्षीरसंयुतम्।
अर्शसां मूढवातानां तच्छ्रेष्ठमनुवासनम् ॥ १०८ ॥
गुदनिःसरणं शूलं मूत्रकृच्छ्रं प्रवाहिकम्।
कट्यूरुपृष्ठदौर्बल्यमानाहं वङ्क्षणाश्रयम् ॥ १०९ ॥
पिच्छास्रावं गुदे शोथं वातवर्चोविनिग्रहम्।
उत्थानं बहुशो यच्च जयेच्चैवानुवासनात् ॥ ११० ॥

छोटी पीपल, मौरेठी, बेलका गूदा, सौंफ, मैनफल, वच, दूधिया, कूठ, कचूर, पोहकरमूल, चीतकी जड, देवदारु सब समान भाग ले कल्क बनाकर कल्कसे चतुर्गुण तैल और तैलसे द्विगुण दुग्ध और दुग्धसे द्विगुण जल मिलाकर पका लेना चाहिये। यह तैल अनुवासनसे अर्श, वायुकी रुकावट, काच निकलना, शूल, मूत्रकृच्छ्र, प्रवाहिका, कमर, ऊरु और पीठकी दुर्बलता, अफारा, लसेदार दस्तोंका आना, गुदाकी सूजन, मल तथा वायुका विबन्ध तथा दोषयुक्त बहुत दस्तोंका आना आदि रोगोंको नष्ट करता है ॥ १०७–११० ॥

रक्तार्शश्चिकित्सा।

रक्तार्शसामुपेक्षेत रक्तमादौ स्रवद्भिषक्।
दुष्टास्रे निगृहीते तु शूलानाहासृग्गदाः ॥ १११ ॥

बहते हुए रक्तकी प्रथम उपेक्षा ही करना चाहिये। क्योंकि दुष्ट रक्त रोक देनेसे शूल होजाता है तथा रक्तजन्य अन्य रोग भी हो जाते हैं ॥ १११ ॥

रक्तस्रावघ्नी पेया।

लाजैः पेया पीता चुक्रिकदलकेशरोत्पलैः सिद्धा।
हन्त्यस्रस्रावं सा तथा बलापृश्निपर्णीभ्याम् ॥ ११२ ॥

अमलोनिया, नागकेशर तथा नीलोफरके जलमें अथवा खरेटी और पिठिवनके जलमें धानकी खीलसे बनायी गयी पेया सेवन करनेसे रक्तस्राव नष्ट होता है ॥११२॥

रक्तार्शनाशकसामान्ययोगाः।

शक्रकोथ सविश्वो वा किंवा बिल्वशलाटवः।
योज्या रक्तार्शसां तद्वज्ज्योत्स्निकामूललेपनम् ॥११३॥

---

1 यद्यपि इस प्रयोगमें 'एकेनापि चातुर्गुण्यं द्वाभ्यामपि चातुर्गुण्यम्' इस परिभाषाके अनुसार द्विगुण ही जल सिद्ध होता है पर कुछ आचार्योंका मत है कि—"क्षीरदध्यारनालेस्तु पाको यत्रेरितः क्वचित्। जल चतुर्गुणं तत्र वीर्याधानार्थमावपेत् ॥" यही उचित भी है—क्योंकि यही प्रयोग सुश्रुतमें लिखा है वहांपर कण्ठरवसे ही चतुर्गुण जल लिखा है। यथा-"शटीपुष्करकृष्णाह्वामदनामरदारुभिः। शताह्वकुष्ठयष्ट्याह्ववचाबिल्वहुताशनैः। सुपिष्टैः द्विगुणं क्षीरं तैलं तोयं चतुर्गुणम्। पक्त्वा बस्तौ विधातव्यं मूढवातानुलोमनम् ।" एतदनुसारेण 'तच्छ्रेष्ठमनुवासनम्' इत्यस्य स्थानेऽपि 'तच्छ्रेष्ठमनुलोमनम्' अर्थात् इसी सिद्धान्तसे 'तच्छ्रेष्ठमनुवासनम्' इसके स्थानमें भी 'तच्छ्रेष्ठमनुलोमनम्' यही होना चाहिये। यदि यह कहो कि यह तैल अनुवासनके लिये है तो वह अर्थ 'जयेच्चैवानुवासनात्' से ही सिद्ध हो जायगा। और अनुवासन दो बार लिखनेसे पुनरुक्ति दोष भी आता है।

1 यहां शक्र शब्दका अर्थ निश्चल नामक आचार्यके सिद्धान्तमें लिखा गया है और वह विशेषतया रक्तसंग्राहक है। पर शक्रका अर्थ इन्द्रयव (कुटजबीज) न होकर कुटजछाल ही होता है और चरकमें लिखा भी है "कुटजत्वङ्निर्यूहः सनागरः स्निग्धो—

नवनीततिलाभ्यामात्केशरनवनीतशर्कराभ्यासात् ।
दधिसरमथिताभ्यासाद्गुदजा शाम्यन्तिरक्तवहा ११४
समगोत्पलमोचाह्वतिरीटतिलचन्दनैः ।
छागक्षीर प्रयोक्तव्य गुदजे शोणितापहम् ॥ ११५॥

इन्द्रयवका क्वाथ सोंठके चूर्णके साथ अथवा बेलके कच्चे गूदेका क्वाथ पीनेसे और कडवी तोरईकी जड पीसकर लेप करनेसे रक्तार्श नष्ट होता है। इसी प्रकार मक्खन व काले तिल अथवा कमलका केशर अथवा नागकेशर, मक्खन व मिश्री अथवा दहीका तोड व मथे हुए दही (विना मक्खन निकाले मट्ठे) के साथ सेवन करनेसे रक्तार्श शान्त होता है। इसी प्रकार मञ्जीठ, नील कमल, मोचरस, लोध, काले तिल व चन्दनसे सिद्ध अजादुग्धके पीनेसे रक्तार्शसे बहनेवाला खून बन्द होता है। अथवा उपरोक्त औषधियोंका चूर्ण बकरीके दूधके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ११३–११५ ॥

कुटजावलेहः ।

कुटजत्वक्पलशत जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशिष्टं तु कषायमवतारयेत् ॥ ११६ ॥
वस्त्रपूतं पुन क्वाथं पचेल्लेहत्वमागतम् ।
भल्लातक विडंगानि त्रिकटु त्रिफला तथा ॥ ११७ ॥
रसाञ्जनं चित्रक च कुटजस्य फलानि च ।
वचामतिविषा बिल्वं प्रत्येक च पल पलम् ॥ ११८ ॥
त्रिंशत्पलानि गुडत चूर्णीकृत्य निधापयेत् ।
मधुन कुडवं दद्याद्घृतस्य कुडव तथा ॥ ११९ ॥
एष लेह. शमयति चार्शो रक्तसमुद्भवम् ।
वातिक पैत्तिक चैव श्लैष्मिकं सान्निपातकम् ॥ १२० ॥
ये च दुर्नामजा रोगास्तान्सर्वान्नाशयत्यपि ।
अम्लपित्तमतीसार पाण्डुरोगमरोचकम् ।
ग्रहणीमार्दव कार्श्यं श्वयथु कामलामपि ॥ १२१ ॥
अनुपान घृत दद्यान्मधु तक्रं जल पय ।
रोगानीकविनाशाय कौटजो लेह उच्यते ॥ १२२ ॥

कुडेकी छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तोलामे पकाना चाहिये । अष्टमाश शेष रहनेपर उतार छानकर १॥ सेर गुड और १६ तोले घी मिलाकर पकाना चाहिये । जब लेह सिद्ध हो जाय तो मिलावा, वायविडग त्रिकटु, त्रिफला, रसौत, चीतकी जड, इन्द्रयव, वच, अतीस, बेलका गूदा प्रत्येक चार चार तोला छोड उतार लेना चाहिये । ठण्डा हो जानेपर शहद १६ तोला छोडकर रख लेना चाहिये । यह लेह रक्तार्श, वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक, सान्निपातिक तथा सहज अर्शको भी नष्ट करता है । और अम्लपित्त, अतीसार, पाण्डुरोग, अरोचक, ग्रहणीरोग, दुर्बलता, सूजन, कामलाको भी नष्ट करता है । अनुपानके लिये गोघृत, शहद, मट्ठा, जल अथवा दूध जो उचित हो देना चाहिये । यह कुटजावलेह रोगसमूहको नष्ट करता है ॥ ११६–१२२ ॥

कुटजरसक्रिया ।

कुटजत्वचो विपाच्य शतपलमार्द्रं महेन्द्रसलिलेन।
यावत्स्याद्रस तद्द्रव्यं स्वरसस्ततो ग्राह्य ॥ १२३ ॥
मोचारस समंगाफलिनी च पलांशिभिस्त्रिभिस्तेश्च।
वत्सकबीज तुल्य चूर्णीकृतमत्र दातव्यम् ॥ १२४ ॥
पूतोत्क्वथित सान्द्र सरसो दर्वीप्रलेपनो ग्राह्य ।
मात्राकालोपहिता रसक्रियैषा जयत्यसृक्स्रावम् ॥१२५॥
छगलीपयसा युक्ता पेया मण्डेन वा यथाग्निबलम् ।
जीर्णौषधश्च शालीन्पयसा क्वथितेन भुञ्जीत ॥१२६ ॥
रक्तगुदजातिसारं शूल सासृग्रुजो निहन्त्याशु ।
बलवच्च रक्तपित्तं रसक्रियैषा ह्युभयभागम् ॥ १२७ ॥

गीली कुडेकी छाल ५ सेर आकाशसे बर्से हुए एक द्रोण परिमित माहेंद्र[1] जलमे पकाना चाहिये । जब छालका रस जलमें आ जावे तब उतार छानकर गाढा करना चाहिये । गाढा हो जानेपर मोचरस, मञ्जीठ, प्रियङ्गु प्रत्येक ४ तोले, इन्द्रयव १२ तोला चूर्णकर छोडना चाहिये । इसकी मात्रा प्रातःकाल बकरीके दूध या मण्डके साथ सेवन करनेसे रक्तस्रावको बन्द करती है । औषध पच जानेपर शालि चावलोका भात गरम किये दूधके साथ खाना चाहिये । रक्तार्श, शूल तथा रक्तका बहना तथा बलवान् रक्तपित्त इससे नष्ट होता है ॥ १२३—१२७ ॥

कुटजाद्यं घृतम् ।

कुटजफलत्वक्केशरनीलोत्पललोध्रधातकीकल्कैः ।
सिद्धं घृतं विधेय शूले रक्तार्शसां भिषजा ॥ १२८ ॥

— रक्तसग्रहणः" और वाग्भटमे भी इसीका अनुवाद किया गया है यथा—"सकफे प्रविनेत्पाक्य शुण्ठीकुटजवल्कजम्" इति टिक

१ माहेन्द्र-सलिल ग्रहण करनेकी यह विधि है कि वृष्टि प्रारम्भ होनेके डेढ घंटे बाद आकाशसे बरसता हुआ जल साफ वर्तनमें लेना चाहिये । यदुक्तम्—"यामार्द्धोर्ध्वं गृहीत यद्वृष्टिप्रारम्भकालतः । शुद्धपात्रे वृष्टिजन्तन्माहेन्द्रजल मतम्" ।

इन्द्रयव, कुटकेकी छाल, नागकेशर, नीलोफर, पठानी-लोध, धायके फूल, इनका कल्क तथा कल्कसे चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण जल मिलाकर सिद्ध किया गया घृत रक्तार्शको नष्ट करता है ॥ १२८ ॥

सुनिषण्णकचांगेरीघृतम् ।

अवाक्पुष्पीवलादार्वीपृश्निपर्णीत्रिकण्टकम् ।
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थशुङ्गाश्च द्विपलोन्मिता ॥ १२९॥
कषाय एष पेष्यस्तु जीवन्ती कटुरोहिणी ।
पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं देवदारु च ॥ १३० ॥
कलिङ्गं शाल्मलीपुष्पं वीराचन्दनमञ्जनम् ।
कट्फलं चित्रकं मुस्तं प्रियङ्ग्वतिविषे स्थिरा ॥ १३१ ॥
पद्मोत्पलानां किञ्जल्कं समगा सनिदिग्धिका ।
विल्वं मोचरसं पाठा भागाः स्युः कार्षिकाः पृथक् १३२
चतुष्प्रस्थशृतं प्रस्थं कषायमवतारयेत् ।
त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः ॥ १३३ ॥
सुनिषण्णकचाङ्गेर्योः प्रस्थौ द्वौ स्वरसस्य च ।
सर्वैरेतैर्यथोदिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १३४ ॥
एतदर्शःस्वतीसारे त्रिदोषे रुधिरस्रुतौ ।
प्रवाहणे गुदभ्रंशे पिच्छासु विविधासु च ॥ १३५ ॥
उत्थाने चापि बहुशः शोथशूलगुदामये ।
मूत्रग्रहे मूढवाते मन्दाग्नावरुचावपि ॥ १३६ ॥
प्रयोज्यं विधिवत्सर्पिर्बलवर्णाग्निवर्धनम् ।
विविधेष्वन्नपानेषु केवलं वा निरत्ययम् ॥ १३७ ॥

सोफ या सोवाके बीज, खरेटीके बीज, दारुहल्दी, पिठिवन, गोखरू, बरगद, गूलर, पीपलके नवीन अङ्कुर प्रत्येक ८ तोला, ६ सेर ३२ तोला जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये। फिर इतना ही पतियाका स्वरस और इतना ही अमलोनियाका स्वरस तथा इतना ही घृत और इतनाही जलतथा नीचे लिखी ओषधियोंका कल्क छोडकर घृत सिद्ध करना चाहिये । कल्कद्रव्य जीवन्ती, कुटकी, छोटी पीपल, पिपरामूल, काली मिर्च, रसौत, देवदारु, इन्द्रयव, सेमरके फूल, शतावरी, लालचन्दन, कायफल, चीतकी जड, नागरमोथा, प्रियङ्गु, अतीस, शालपर्णी, नीलकमलका केशर, मञ्जीठ, छोटी कटेरी, बेलगिरी, लाल कमल तथा मोचरस और पाढ प्रत्येक एक एक तोला ले कल्क बना कर छोडना चाहिये । त्रिदोषज अतिसार, रक्तस्राव, प्रवाहिका, गुदभ्रंश, लसेदार दस्तोंका आना, बहुत दस्तोंका आना, सूजन, शूल, अर्श, मूत्रावरोध, वायुकी रुकावट, मन्दाग्नि, अरुचि आदि रोगोंमें अनेक प्रकारके अन्न पानादिके साथ अथवा केवल इस घृतका प्रयोग करना चाहिये ॥ १२९–१३७ ॥

१ "चतुर्गुणं त्वष्टगुणं द्रवद्वैगुण्यतो भवेत्" इस परिभाषाके अनुसार यद्यपि ४ प्रस्थका प्रस्थ ही लिया जाता अर्थात् ३२ पलका ही द्रवद्रव्यका प्रस्थ माना जाता है, फिर "त्रिंशत्पलानि तु प्रस्थो विज्ञेयो द्विपलाधिकः" इससे सिद्ध होता है कि द्रवद्वैगुण्य वारक परिभाषा अनित्य है अर्थात् सब जगह नहीं लगती । पर कुछ आचार्योंका मत है कि इसे शिष्योंके सुगम बोधार्थ ही लिखा है ।

क्षारविधिः ।

प्रशस्तेऽहनि नक्षत्रे कृतमङ्गलपूर्वकम् ।
कालमुष्ककमाहृत्य दग्ध्वा भस्म समाहरेत् ॥ १३८ ॥
आढकं त्वेकमादाय जलद्रोणे पचेद्भिषक् ।
चतुर्भागावशिष्टेन वस्त्रपूतेन वारिणा ॥ १३९ ॥
शङ्खचूर्णस्य कुडवं प्रक्षिप्य विपचेत्पुनः ।
शनैः शनैस्तु मृद्वग्नौ यावत्सान्द्रतनुर्भवेत् ॥ १४० ॥
सर्जिकायावशूकाभ्यां शुंठी मरिचपिप्पली ।
वचा चातिविषा चैव हिङ्गुचित्रकयोस्तथा ॥ १४१ ॥
एषां चूर्णानि निक्षिप्य पृथक्त्वेनाष्टमाषकम् ।
दर्व्या संघट्टितं चापि स्थापयेदायसे घटे ।
एष वह्निसमः क्षारः कीर्तितः काश्यपादिभिः ॥ १४२॥

अच्छे दिन तथा मुहूर्तमें मङ्गलाचरण आदि करके इतना काला मोखा लाकर जलाना चाहिये कि एक आढक अर्थात् तीन सेर १६ तोला भस्म तैयार हो जावे । फिर उस भस्मको एक द्रोण अर्थात् १२ सेर ६४ तोला जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार कर कई बार छान लेना चाहिये । फिर उस जलमें १६ तोला शङ्खकी भस्मका चूर्ण छोडकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये जब तक कि कुछ गाढा न हो जाय । पुनः सज्जीखार, यवाखार, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, दूधिया वच, अतीस, भुनी हींग, चीतकी जड प्रत्येकका चूर्ण ६ माशे (वर्तमानतौलसे) छोड कलछीसे चलाकर लोहपात्रमें रखना चाहिये । यह अग्निके समान तेज क्षार काश्यपादि महर्षियोंने बतलाया है ॥ १३८–१४१ ॥

प्रतिसारणीयक्षारविधिः ।

तोये कालमुष्ककस्य विपचेद्भस्माढकं षड्गुणे ।

पात्रे लोहमये दृढे विपुलधीर्दर्व्या शनैर्घट्टयन् ।
दग्ध्वाशौ बहुशङ्खनाभिशकलान्पूतावशेषे क्षिपे-
द्यचेरण्डजनालमेष दहति क्षारो वरो वाक्शतात् ॥ १४३ ॥
प्रायस्त्रिभागशिष्टेऽस्मिन्नच्छपैच्छिल्यरक्तता ।
सञ्जायते तदा स्राव्यं क्षाराम्भो ग्राह्यमिष्यते ॥ १४४ ॥
तुर्येणाष्टमकेन षोडशभवेनांशेन संव्यूहिमो
मध्य' श्रेष्ठ इति क्रमेण विहित क्षारोदकाच्छेखक' १४५

काले मोखाकी भस्म ३ सेर १६ तोला, जल षड्गुण छोडकर मजबूत लोहेकी कढाईमें कल्छीसे धीरे धीरे चलाते हुए पकाना चाहिये । तृतीयांश शेष रहनेपर उतार छान शङ्खकी नाभिकी भस्म छोडकर पुनः उस समय तक पकाना चाहिये कि एरन्डनाल इसमें १०० मात्रा उच्चारण काल तक रखनेसे जल जाय । यह उत्तम क्षार होगा । प्रायः तृतीयांश क्षारजल रह जानेपर स्वच्छता लालपन तथा लालिमा आजाती है । उस समय छानकर क्षारजल लेना चाहिये । क्षारोदकसे चतुर्थांश, अष्टमांश, षोडशांश शङ्ख भस्म छोडनेसे क्रमशः सव्यूहिम (अर्थात्–मृदु) मध्यम तथा श्रेष्ठ क्षार बनता है ॥ १४२–१४५ ॥

क्षारपाकनिश्चयः ।

नातिसान्द्रो नातितनु: क्षारपाक उदाहृत: ।
दुर्नामकादौ निर्दिष्ट क्षारोऽयं प्रतिसारण ॥ १४६ ॥
पानीयो यस्तु गुल्मादौ तं वारानेकविंशतिम् ।
स्रावयेत्पड्गुणे तोये केचिदाहुश्चतुर्गुणे ॥ १४७ ॥

प्रतिसारण (लगानेवाला) क्षार न बहुत पतला न बहुत गाढा पकाना चाहिये । अर्श आदिपर इसका प्रयोग होता है । पीनेके योग्य जो गुल्मादि नाशार्थ क्षार बनाया जाता है उसमें भस्म षड्गुण या चतुर्गुण जलमें २१ बार छान ली जाती है ॥ १४६ ॥ १४७ ॥

क्षारसूत्रम् ।

भावित रजनीचूर्णै स्नुहीक्षीरे पुन' पुनः ।
बन्धनात्सुदृढं सूत्रं भिनत्त्यर्शो भगन्दरम् ॥ १४८ ॥

हल्दीके चूर्णके साथ थूहरके दूधमे अनेक बार भावित सूत्र कसकर अर्शके ऊपर बाध देनेसे अर्श कटकर गिर जाता है ॥ १४८ ॥

क्षारपातनविधिः ।

प्राग्दक्षिणं ततो वामं पृष्ठजं चाग्रजं क्रमात् ।
पञ्चतिक्तेन संस्निह्य दहेत्क्षारेण वह्निना ॥ १४९ ॥
वातजं श्लेष्मज चार्शः क्षारेणास्रजपित्तजे ।
महान्ति तनुमूलानि छित्त्वैव बलिनो दहेत् ॥ १५० ॥
चर्मकीलं तथा छित्त्वा दहेदन्यतरेण वा ।
पक्वजम्बूपमो वर्णः क्षारदग्ध प्रशस्यते ॥ १५१ ॥
गोजीशेफालिकापत्रैरर्शः संलिख्य लेपयेत् ।
क्षारेण वाकूशतं तिष्ठेद्यन्त्रद्वारं पिधाय च ॥ १५२ ॥

प्रथम दक्षिणसे क्षारकर्म या दाह प्रारम्भ करना चाहिये । प्रथम दक्षिण फिर वाम फिर पृष्ठवंशकी ओरका फिर अग्रभागके मस्सेको पञ्चतिक्तघृतसे स्निग्ध कर क्षार अथवा अग्निसे वातज या कफज अर्श दागना चाहिये पित्तसे तथा रक्तसे उत्पन्न अर्श क्षारसे दग्ध करना चाहिये । पर जो मस्से बडे हो और उनकी जड पतली हो उन्हें शस्त्रद्वारा काट कर ही जलाना चाहिये । तथा चर्मकीलको शस्त्रसे काटकर क्षार अथवा अग्निसे जला देना चाहिये । क्षारसे जला हुआ यदि पके जामुनके सदृश नीला हो जाय तो उसे उत्तम समझना चाहिये । अर्शको गाजुवा या सम्भालू आदि किसी कर्कश पत्रसे खुरचकर यन्त्र लगा सलाईसे क्षार लेपकर १०० मात्रा उच्चारण कालतक यन्त्रको बन्द रखना चाहिये ॥ १४९–१५२ ॥

---

१ क्षारविधि सुश्रुत तथा वाग्भटसे विस्तारपूर्वक समझना चाहिये । यहा सामान्य वर्णन किया गया है । पानीय क्षारमे विशेषता यह है कि कुछ आचार्योंका मत है कि चतुर्गुण या षड्गुण जलमें २१ बार छान लेनेसे ही पानीय क्षार तयार हो जाता है, पर कुछ आचार्योंका मत है कि भस्मको चतुर्गुण जलमे २१ बार छानकर छना हुआ जल कल्क सहित पकाना चाहिये आधावाकी रहनेपर कल्क पृथक् कर २१ बार छान लेना चाहिये । यही विधि विश्वामित्रने भी–लिखी है । यथा—" पानीय भावनार्थ परिस्राव्य चतुर्गुणे । जले चार्धावशिष्टे च क्षाराम्भो ग्राह्यमिष्यते ॥" पानीयक्षारकी मात्रा पल, तीन कर्ष, या अर्द्ध पलरूप श्रीशिवदासजीने लिखी है । पर आजकलके लिये यह भी अधिक है । आजकल ६ माशे १ तोला और २ तोले क्रमशः हीन मध्यम उत्तम मात्रा समझना चाहिये।

क्षारेण सम्यग्दग्धस्य लक्षणम् ।

त चापनीय वीक्षेत पक्वजम्बूफलोपमम् ।
यदि च स्यात्ततो भद्रं नो चेल्लिम्पेत्तथा पुन ॥१५३॥

फिर उस यन्त्रको निकालकर देखना चाहिये यदि पके जामुनके फलके समान हो गया हो तो ठीक, अन्यथा फिर उसी प्रकार लेप करना चाहिये ॥ १५३ ॥

क्षारदग्ध उत्तरकर्म ।

तत्तुषाम्बुप्लुतं साज्यं यष्टीकल्केन लेपयेत् ।

सम्यग्दग्ध व्रणको भूसीयुत धानकी काञ्जीसे सिञ्चित कर घी चुपर मौरेठीके कल्कका लेप करना चाहिये ।

अग्निदग्धलक्षणम् ।

न निम्न तालवर्णाभं वह्निदग्धं स्थितासृजम् ॥१५४॥

सम्यग्दग्धमे नीचा नही होता तालके वर्णयुक्त अर्थात् मुलायम सफेदी लिये होता है और रक्त रुक जाता है ॥ १५४ ॥

अग्निदग्ध उत्तरकर्म ।

निर्वाप्य मधुसर्पिर्भ्यां वह्निसञ्जातवेदनाम् ।
सम्यग्दग्धे तुगाक्षीरीप्लक्षचन्दनगैरिकैः ॥ १५५ ॥
सामृतं सर्पिषा युक्तैरालेपं कारयेद्भिषक् ।
मुहूर्तमुपवेश्योऽसौ तोयपूर्णेऽथ भाजने ॥ १५६ ॥

अग्निसे उत्पन्न हुई पीडाको घी और शहद लगाकर शान्त करना चाहिये । तथा सम्यग्दग्धमें वंशलोचन, प्लक्षकी छाल, सफेद चन्दन, गेरू और गुर्च सब महीन पीस घी मिलाकर लेप करना चाहिये । फिर जलसे भरे हुए टबमे कुछ देर (दो घडीतक) बैठना चाहिये ॥ १५५ ॥ १५६ ॥

उपद्रवचिकित्सा ।

क्षारमुष्णाम्बुना पाय्यं विबन्धे मूत्रवर्चसो ।
दाहे वस्त्यादिजे लेप शतधौतेन सर्पिषा ॥ १५७ ॥
नवान्नं माषतक्रादि सेव्यं पाकाय जानता ।
पिबेद्व्रणविशुद्ध्यर्थं वराक्वाथं सगुग्गुलुम् ॥ १५८ ॥

मल और मूत्रकी रुकावटमें गरम जलके साथ क्षार पिलाना चाहिये । यदि बस्त्यादिमें जलन हो तो १०० बार धोये हुए घृतका लेप करना चाहिये । यदि व्रण पकता हुआ जान पड़े तो नवान्न, उडद और मट्ठा आदि सेवन करना चाहिये । व्रणकी शुद्धिके लिये त्रिफलाक्वाथ शुद्ध गुग्गुलुके साथ पीना चाहिये१५७-५८

पथ्यम् ।

जीर्णे शाल्यन्नमुद्गादि पथ्य तिक्ताज्यसैन्धवम् ॥१५९॥

भूख लगनेपर उत्तम चावलोका भात, मूगकी दाल, तिक्त औषधिया अथवा उनसे सिद्ध पञ्चतिक्त घृत, सेंधानमक आदि पथ्य लेना चाहिये ॥ १५९ ॥

अनुवासनावस्था ।

रूढमर्मव्रणं वैद्य क्षारं[1] दत्त्वानुवासयेत् ।
पिप्पल्याद्येन तैलेन सेवेद्दीपनपाचनम् ॥ १६० ॥

समस्त व्रण ठीक हो जानेपर क्षार मिलाकर पिप्पल्यादि तैलसे अनुवासन वस्ति देना चाहिये । और दीपन पाचन औषधियोका सेवन करना चाहिये॥१६०॥

अग्निमुखं लौहम् ।

त्रिवृच्चित्रकनिर्गुण्डीस्नुहीमुण्डतिकाजटा[2] ।
प्रत्यकशोऽष्टपलिका जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पलत्रयं विडंगस्य व्योषात्कर्षत्रयं पृथक् ॥ १६१ ॥
त्रिफलाया पञ्च पल शिलाजतु पलं न्यसेत् ।
दिव्यौषधिहतस्यापि वैक्रान्तहतस्य वा ॥ १६२ ॥
पलद्वादशक देय रुक्मलौहं सुचूर्णितम् ।
पलैश्चतुर्विंशतिभिर्मधुशर्करयोर्युतम् ॥ १६३ ॥
घनीभूते सुशीते च दापयेद्वृततारिते ।
एतदग्निमुखं नाम दुर्नामान्तकरं परम् ॥ १६४ ॥
सममग्निं करोत्याशु कालाग्निसमतेजसम् ।
पर्वता अपि जीर्यन्ते प्राशनादस्य देहिना ॥ १६५ ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि पयोमांसरसो हित ।
दुर्नामपाण्डुश्वयथुकुष्ठप्लीहोदरापहम् ॥ १६६ ॥
अकालपलितं चैतदामवातगुदामयम् ।
न स रोगोऽस्ति यं चापि न निहन्यादिदं क्षणात् १६७

---

१ क्षारदग्धके सम्बन्धमें वाग्भटने लिखा है—"पक्वजम्ब्वसित सन्नं सम्यग्दग्धं विपर्यये । ताम्रतातोदकण्ड्वाद्यैर्दुर्दग्धं त पुनर्दहेत् ॥ अतिदग्धे स्रवेद्रक्तं मूर्छादाहज्वरादयः । विशेषादत्र सेकोऽम्लैर्लेपो मधु घृत तिलाः ॥ वातपित्तहरा चेष्टा सर्वैव शिशिरा क्रिया । आम्लो हि शीतः स्पर्शेन क्षारस्तेनोपसंहितः ॥ यात्याशु स्वादुता तस्मादम्लैर्निर्वापयेत्तराम् ॥"

१ यद्यपि शिवदासजीने यहापर 'क्षारं दत्त्वा' का अर्थ क्षारवस्ति देकर किया है पर श्रीमान् चक्रपाणिजीने क्षारवस्तिका कोई स्वतन्त्र विधान नहीं लिखा । अतः प्रतीत होता है कि उनको क्षार मिलाकर पिप्पल्यादि तैलमे ही अनुवासन देना अभीष्ट था ॥ २ "अज्झटेत्यपि पाठः । अज्झटा-भूम्यामलकी ।"

करीरकाञ्जिकादीनि ककारादीनि वर्जयेत् ।
स्रवत्यतोऽन्यथा लौहं देहात्किट्ट च दुर्जरम् ॥ १६८ ॥

निसोथ, चीतकी जड, सम्भालूका पञ्चाङ्ग, थूहर, मुण्डीकी जड प्रत्येक आठ पल एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर वायविडग १२ तोला, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल प्रत्येक तीन तोला, आमला, हर्र, बहेडा प्रत्येक २० तोला, शिलाजतु ४ तोला, मनःशिला अथवा विकंकतसे भस्म किया हुआ तीक्ष्ण लौहं ४८ तोला छोडकर पकाना चाहिये जब गाढा पाक होजाय तो उतार टण्ढाकर मधु ४८ तोला और शक्कर शुद्ध ४८ तोला मिलाकर रखना चाहिये। यह अग्निमुख लौह अर्शको नष्ट करनेमें उत्तम है शीघ्र ही समाग्निको दीप्त कर देना है। इसके सेवनसे मनुष्य कठिन चीजोको भी हजम कर डालता है। इसमें भारी, वाजीकर, अन्नपान दुग्ध तथा मासरस हितकर है। अर्श, पाण्डु, सूजन, कुष्ठ तथा प्लीहाको नष्ट करता है। असमय बालोंका सफेद हो जाना और आमवात आदि ऐसा कोई रोग नहीं है जिसे यह शीघ्र ही नष्ट न कर दे। करीर, काजी, करेला आदि ककारादि द्रव्य न सेवन करना चाहिये। अन्यथा लौह और किट्ट दुर्जर होनेसे विना पचे ही निकल जाता है ॥ १६१--१६८ ॥

भल्लातकलौहम् ।

चित्रकं त्रिफला मुस्तं ग्रन्थिकं चविकामृता ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गदण्डोत्पलकुठेरका ॥ १६९ ॥
एषां चतुष्पलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
भल्लातकसहस्रे द्वे छित्वा तत्रैव दापयेत् ॥ १७० ॥
तेन पादावशेषेण लोहपात्रे पचेद्भिषक् ।
तुलार्धं तीक्ष्णलोहस्य घृतस्य कुडवद्वयम् ॥ १७१ ॥
त्र्यूषणं त्रिफलावह्निसैन्धवं विडमौद्भिदम् ।
सौवर्चलविडंगानि पलिकांशानि कल्पयेत् ॥ १७२ ॥
कुडवं वृद्धदारस्य तालमूल्यास्तथैव च ।
सूरणस्य पलान्यष्टौ चूर्णं कृत्वा विनिक्षिपेत् ॥ १७३ ॥
सिद्धे शीते प्रदातव्यं मधुनः कुडवद्वयम् ।
प्रातर्भोजनकाले च ततः खादेद्यथाबलम् ॥ १७४ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुरोगमरोचकम् ।
क्रिमिगुल्माश्मरीमेहाञ्छूलं चाशु व्यपोहति ॥ १७५ ॥
करोति शुक्रोपचयं वलीपलितनाशनम् ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं सर्वरोगहरं परम् ॥ १७६ ॥

चीतकी जड, आमला, हर्र, बहेडा, नागरमोथा, पिपरामूल, चव्य, गुर्च, गजपीपल, लटजीराकी जड, सफेद फूलकी सहदेवी, सफेद तुलसी प्रत्येक १६ तोला ले टुरकुचाकर टुरकुट किये हुए भिलावे २००० डालकर एक द्रोण (१२ सें० ६४ तोला) द्रवद्वैगुण्यात् २५ सेर ९ छ० ३ तो०) जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर तीक्ष्ण लौहभस्म २॥ सेर, घी ३२ तोला, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, त्रिफला, चीतकी जड, सेंधानमक, विडलवण, खारी नमक, काला नमक, वायविडग प्रत्येक चार चार तोला विधायरा १६ तोला, मुसली १६ तोला, जमीकन्द ३२ तोला ले सबका महीन चूर्ण छोडकर पकाना चाहिये, तैयार हो जानेपर उतार ठण्ढाकर मधु ३२ तोला छोडकर रखना चाहिये। इसे प्रातः काल तथा भोजनके समय बलानुसार २ माशेसे १ तोला तक सेवन करना चाहिये। यह अर्श, ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, अरोचक, क्रिमिरोग, गुल्म, पथरी, प्रमेह तथा शूलको शीघ्र ही नष्ट करता है। वीर्यको बढाता तथा शरीरके सिमटे व बालोंकी सफेदीको नष्ट करता है। यह श्रेष्ठ रसायन समस्त रोगोंको दूर करता है ॥ १६९-१७६ ॥

अर्शोघ्नी वटी ।

रसस्तु पादिकस्तुल्या विडंगमरिचाभ्रका. ।
गंगापालकजरसे खल्वयित्वा पुनः पुनः ॥ १७७ ॥
रक्तिमात्रा गुदार्शोघ्नी वह्नेरत्यर्थदीपनी ।

---

१ यहां उक्त न होनेपर भी वैद्यलोग २४ पल घी छोडते हैं क्योंकि घीके विना लौह पाक नहीं होता, शक्कर और घीके साथ पाक करना चाहिये और शहद ठण्डा हो जानेपर छोडना चाहिये। मनःशिलामें संक्षिप्त लौह मारणविधि-"लोहचूर्णं सुविमलं पादांशां विमलां शिलाम्। दत्त्वा कुमारीपयसा वैकङ्कतजलेन वा ॥ सम्पेष्य शिवजां वर्य. पुटयेत्सम्पुटस्थितम् । एवं नातिचिरेणैव लौहं तु सुमृतं भवेत् ॥"

१ भल्लातक शुद्ध कर छोडना चाहिये। उसकी शोधन विधि आयुर्वेदविज्ञानमें निम्न लिखित है:-- "भल्लातकानि पक्वानि समानीय क्षिपेज्जले। मज्जन्ति यानि तत्रैव शुद्ध्यर्थं तानि योजयेत् ॥ इष्टिकाचूर्णनिकषैर्मर्दनान्निर्मलं भवेत्।" अर्थात् भल्लातक प्रथम जलमें छोडना चाहिये। जो जलमें डूब जावें उन्हें निकालकर ईंटके चूरेके साथ रगडवाना चाहिये। पर हाथमें न रग डकर किसी पात्र द्वारा रगडना अधिक उत्तम है।

रस (रससिन्दूर) १ तोला, वायविडंग, काली मिर्च अभ्रकभस्म प्रत्येक ४ तोला जलपालकके रसमें अनेक वार घोटकर १ रत्तीकी बनायी गयी गोली अग्निको दीप्त करती तथा अर्शको नष्ट करती है ॥ १७७ ॥

परिवर्जनीयानि ।

वेगावरोधस्त्रीपृष्ठयानमुत्कटकासनम् ।
यथास्वं दोषलं चान्नमर्शसः परिवर्जयेत् ॥ १७८ ॥

मूत्रपुरीषादिवेगावरोध, मैथुन, घोडेआदिकी सवारी, उत्कुरुआ बैठना तथा जिस दोषसे अर्श हो तद्दोषकारक अन्नपानादिका त्याग करना चाहिये ॥ १७८ ॥

इत्यर्शोऽधिकारः समाप्तः ।

अथाग्निमान्द्याधिकारः ।

चिकित्साविचारः ।

समस्य रक्षणं कार्यं विषमे वातनिग्रहः ।
तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम् ॥ १ ॥

समाग्निकी रक्षा करनी चाहिये, विषमाग्निमें वातनाशक, तीक्ष्णाग्निमें पित्तशामक और मन्दाग्निमें कफशोधक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

हिंग्वष्टकचूर्णम् ।

त्रिकटुकमजमोदा सैन्धवं जीरके द्वे
समधरणधृतानामष्टमो हिङ्गुभागः ।
प्रथमकवलभुक्तं सर्पिषा चूर्णमेत-
ज्जनयति जठराग्निं वातरोगांश्च हन्यात् ॥ २ ॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, अजमोदा, सेंधानमक, सफेद जीरा, स्याह जीरा और भूनी हींग सब समान भाग ले कूट कपडछानकर चूर्ण बना लेना चाहिये । भोजनके समय प्रथम ग्रासमें घीके साथ खानेसे यह चूर्ण अग्निको दीप्त तथा वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ २ ॥

अग्निदीपकाः सामान्याः योगाः ।

समयवक्षारकमहौषधचूर्णं लीढं घृतेन गोसर्गे ।
कुरुते क्षुधां सुखोदकपीतं सद्यो महौषधं वैकम् ॥ ३ ॥
अन्नमण्डं पिबेदुष्णं हिङ्गुसौवर्चलान्वितम् ।
विषमोऽपि समस्तेन मन्दो दीप्येत पावकः ॥ ४ ॥

प्रातःकाल घीके साथ समान भाग यवाखार और सोंठका चूर्ण चाटनेसे अथवा केवल सोंठका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे अग्नि दीप्त होता है । भातका माड गरम गरम भूनी हींग व काला नमकका चूर्ण छोडकर पीना चाहिये । इससे विषमाग्नि सम और मन्दाग्नि दीप्त होती है ॥ ३ ॥ ४ ॥

मण्डगुणाः ।

क्षुद्बोधनो बस्तिविशोधनश्च
प्राणप्रदः शोणितवर्धनश्च ।
ज्वरापहारी कफपित्तहन्ता
वायुं जयेदष्टगुणो हि मण्डः ॥ ५ ॥

माँडमें आठ गुण होते हैं यह भूखको बढाता, मूत्राशयको शुद्ध करता, बल तथा रक्तको बढाता, ज्वर तथा कफ, पित्त, वायु तीनोंको नष्ट करता है ॥ ५ ॥

अत्यग्निचिकित्सा ।

नारीक्षीरेण संयुक्तां पिबेदौदुम्बरीं त्वचम् ।
आभ्यां वा पायसं सिद्धं पिबेदत्यग्निशान्तये ॥ ६ ॥
यत्किञ्चिद्गुरु मेध्यं च श्लेष्मकारि च भेषजम् ।
सर्वं तदत्यग्निहितं भुक्त्वा प्रस्वपनं दिवा ॥ ७ ॥
मुहुर्मुहुरजीर्णेऽपि भोज्यमस्योपकल्पयेत् ।
निरिन्धनोऽन्तरं लब्ध्वा यथैनं न निपातयेत् ॥ ८ ॥

---

१ रससिन्दूरनिर्माणविधिः—"पलमात्रं रसं शुद्धं तावन्मात्रं तु गन्धकम् । विधिवत्कज्जलीं कृत्वा न्यग्रोधाङ्कुरवारिभिः ॥ भावनात्रितयं दत्त्वा स्थालीमध्ये निधापयेत् । विरच्य कवचीयन्त्रं वालुकाभिः प्रपूरयेत् ॥ ततस्तदनु मन्दाग्निं भिषग्यामचतुष्टयम् । जायते रससिन्दूरं तरुणादित्यसन्निभम् ॥"

२ यहांपर अतःपरिमार्जन होनेसे अजमोद शब्दसे अजवाइन ही लेना चाहिये । ऐसा ही समग्र स्थानोंके प्रयोगोंमें लेना चाहिये । केवल लगानेके लिये अजमोद लेना चाहिये । इस प्रयोगमें हिंगुके विषयमें भी बडी शङ्कायें हैं, कुछ लोगोंका कथन है कि एक भागसे अष्टमांश हिंगु, कुछ लोगोंका कथन है कि, सातोंसे अष्टमांश । पर मेरे विचारमें अष्टम शब्द पूरणार्थक प्रत्ययसे निष्पन्न होनेके कारण "सप्त भागाः पूर्वमुक्ता अष्टमो हिंगुभागः" इस सिद्धान्तसे हिंग बराबर ही छोडना चाहिये । इसकी मात्रा १॥ माशेसे ३ माशे तक देना चाहिये ॥

स्त्रीके दूधके साथ गूलरकी छालका चूर्ण अथवा इसीसे सिद्ध की हुई खीर अग्न्यग्निशान्तिके लिये खाना चाहिये। जो द्रव्य गुरु, मेध्य, कफको बढानेवाले होते हैं वे सब अत्यग्निवालोंके लिये हितकर है तथा दिनमें भोजन कर सोना भी हितकर है। अजीर्णमें भी इसे बार बार भोजन कराना चाहिये। जिससे कि अग्नि अवकाश पाकर इसे नष्ट न कर दे ॥ ६-८ ॥

विश्वादिक्वाथः ।

विश्वाभयागुडूचीनां कषायेण षडूषणम् ।
पिबच्छ्लेष्मणि मन्देऽग्नौ त्वक्पत्रसुरभीकृतम् ॥ ९ ॥
पञ्चकोलं समरिचं षडूषणमुदाहृतम् ।

सोंठ, बडी हर्रका छिल्का तथा गुर्चके काढेमें षडूषणका चूर्ण व दालचीनी, तेजपातका चूर्ण छोड पीनेसे कफका नाश तथा अग्नि दीप्त होती है। कालीमिर्चके सहित पञ्चकोल (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ) को षडूषण कहा जाता है ॥ ९ ॥

अग्निदीपका योगाः ।

हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुडेन वा ।
सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी ॥ १० ॥
सिन्धूत्थपथ्यमगधोद्भववह्निचूर्ण-
मुष्णाम्बुना पिबति यः खलु नष्टवह्निः ।
तस्यामिषेण सघृतेन युतं नवान्न
भस्मीभवत्यशितमात्रमिह क्षणेन ॥ ११ ॥
सिन्धूत्थहिङ्गुत्रिफलायमानी-
व्योषैर्गुडांशैर्गुटिकान्प्रकुर्यात् ।
तैर्भक्षितैस्तृप्तिमनाप्नुवंश्च
भुञ्जीत मन्दाग्निरपि प्रभूतम् ॥ १२ ॥
विडंगभल्लातकचित्रकामृता
सनागरास्तुल्यगुडेन सर्पिषा ।
भजन्ति ये मन्दहुताशना नरा
भवन्ति ते वाडवतुल्यवह्नयः ॥ १३ ॥
गुडेन शुण्ठीमथवोपकुल्यां
पथ्यां तृतीयामथ दाडिमं वा ।
आमेष्वजीर्णेषु गुदामयेषु
वर्चोविबन्धेषु च नित्यमद्यात् ॥ १४ ॥
भोजनाग्रे हितं हृद्यं दीपनं लवणार्द्रकम् ।

बडी हर्रका चूर्ण सर्वदा सोंठ अथवा गुड अथवा सेंधानमकके साथ खानेसे अग्निको दीप्त करता है। जो मन्दाग्निपीडित मनुष्य सेंधानमक हर्र, छोटी पीपल, चीतकी जडका चूर्ण गरम जलके साथ सेवन करता है। वह मांस तथा घृतसे युक्त नवान्न भी शीघ्र ही हजम कर जाता है। सेंधानमक, भूनी हींग, आमला, हर्र, बहेडा, अजवाइन, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल प्रत्येक समान भाग सबमें द्विगुण गुड मिलाकर १ माशेकी गोली बना लेनी चाहिये। इनके खानेसे मनुष्य भोजनमें तृप्त नहीं होता और मन्दाग्निवाला भी बहुत खा जाता है। वायविडंग, शुद्ध भल्लातक, चीतकी जड, गुर्च और सोंठ सबका महीन चूर्ण बना सबके समान गुड तथा घी मिलाकर जो मन्दाग्निवाले सेवन करते हैं वे वाडवाग्निके समान दीप्ताग्नि हो जाते हैं। गुडके साथ सोंठ अथवा छोटी पीपल अथवा हर्र अथवा अनार दानाका आमाजीर्ण, अर्श, तथा मलकी रुकावटमें नित्य सेवन करना चाहिये। भोजनके पहिले नमक और अदरख खाना सदा हितकर होता है ॥ १०-१४ ॥

कपित्थादिखडः ।

कपित्थबिल्वचांगेरीमरिचाजाजिचित्रकैः ॥ १५ ॥
कफवातहरो ग्राही खडो दीपनपाचनः ।

कैथाका गूदा, बेलगिरी, अमलोनिया, काली मिर्च, सफेद जीरा, चीतकी जड इनसे बनायी चटनी कफवातनाशक, ग्राही तथा दीपन पाचन होती है ॥ १५ ॥

शार्दूलकाञ्जिकः ।

पिप्पलीं शृंगबेरं च देवदारु सचित्रकम् ॥ १६ ॥

---

१ उपरोक्त सैन्धवादि तथा विडगादिमें गुडके सम्बन्धमें सन्देह है। सैन्धवादिमें गुडांश पद है अतः सिद्ध हुआ कि गुडका योग्य अंश अर्थात् द्विगुण देना चाहिये। यदुक्तम्-"चूर्णे गुडसमो देयो मोदके द्विगुणो गुडः।" परन्तु शिवदासजीका मत है कि, गुड श्लेष्माधिक अग्निमान्द्यमें अधिक देना उचित नहीं अतः एक द्रव्यके समान ही छोडना चाहिये। तथा विडगादि लेहमें 'तुल्यगुडेन सर्पिषा' का विशेषण कर समस्त चूर्णके समान भाग गुड और उतना ही घी मिलाना चाहिये। यही नागार्जुनका भी मत है। यथा—"सच्चूर्णिता गुडूची विडंगभल्लातकनागरहुताशाः। ज्वलयन्ति जठरवह्निं समेन गुडसर्पिषा लीढाः ॥"

उदराण्यन्त्रवृद्धिं चाप्यष्ठीला वातशोणितम्।
प्रणुदत्युल्बणान्रोगानष्टं वह्निं च दीपयेत् ॥ ३६ ॥
समस्तव्यञ्जनोपेतं भक्तं दत्त्वा सुभाजने।
दापयेदस्य चूर्णस्य बिडालपदमात्रकम् ॥ ३७ ॥
गोदोहमात्रात्तत्सर्वं द्रवीभवति सोष्मकम्।

जवाखार, सज्जीखार, चीतकी जड, पाढ, कञ्जा, पाँचो नमक, छोटी इलायची, तेजपात, भारङ्गी, वायविडंग, भुनी हींग, पोहकरमूल, कचूर, दारुहल्दी, निशोथ, नागरमोथा, मीठा वच, इन्द्रयव, आमला, सफेद जीरा, कोकम अथवा जम्भीरी नीम्बू, गजपीपल, कलौंजी, आम्लवेत, इमली, अजवाइन, देवदारु, बडी हर्रका छिल्का, अनीस, काला निसोथ, हाऊबेर, अमलतासका गूदा सब समान भाग तथा तिल, मोखा, सहिजन, ताल्मखाना तथा ढाक सबके क्षार तथा तपा तपा कर गोमूत्रमें बुझाया हुआ मण्डूर, सब समान भाग लेकर महीन चूर्ण करना चाहिये फिर बिजौरे निम्बूके रससे ही तीन दिन भावना देनी चाहिये । फिर तीन दिन, सिरकेसे तथा ३ दिन अदरखके रससे भावना देनी चाहिये । यह चूर्ण अग्निको अत्यन्त दीप्त करता तथा नियमसे सेवन करनेसे शीघ्र ही अजीर्ण, गुल्म, प्लीहा, अर्श, उदररोग, अन्त्रवृद्धि, अष्ठीला, वातरक्तको नष्ट करता तथा मन्द अग्निको दीप्त करता है। हरतरहके भोजन बनाकर थालीमें रखिये और यह चूर्ण १ तोला उसीमे मिला दीजिये तो जितनी देरमे गाय दुही जाती है उतनी ही देरमें सब अन्न गरम होकर पिघल जायगा ॥ २९–३७ ॥–

भास्करलवणम्।

पिप्पली पिप्पलीमूलं धान्यकं कृष्णजीरकम् ॥ ३८ ॥
सैन्धवं च बिडं चैव पत्रं तालीशकेशरम्।
एषां द्विपलिकान्भागान्पञ्च सौवर्चलस्य च ॥ ३९ ॥
मरिचाजाजिशुण्ठीनामेकैकस्य पलं पलम्।
त्वगेलं चार्धभागं च सामुद्रात्कुडवद्वयम् ॥ ४० ॥
दाडिमात्कुडवं चैव द्वे पले चाम्लवेतसात्।
एतच्चूर्णीकृतं श्लक्ष्णं गन्धाढ्यममृतोपमम् ॥ ४१ ॥
लवणं भास्करं नाम भास्करेण विनिर्मितम्।
जगतस्तु हितार्थाय वातश्लेष्मामयापहम् ॥ ४२ ॥
वातगुल्मं निहन्त्येतद्वातशूलानि यानि च।
तक्रमस्तुसुरासीधुशुक्तकाञ्जिकयोजितम् ॥ ४३ ॥
जाङ्गलानां तु मांसेन रसेषु विविधेषु च।
मन्दाग्नेरश्नतः शक्तो भवेदग्निश्च पावक. ॥ ४४ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषकुष्ठामयभगन्दरान्।
हृद्रोगमामदोषांश्च विविधानुदरस्थितान् ॥ ४५ ॥
प्लीहानमश्मरीं चैव श्वासकासोदरक्रिमीन्।
विशेषतः शर्करादीन्रोगान्नानाविधांस्तथा ॥ ४६ ॥
पाण्डुरोगांश्च विविधान्नाशयत्यशनिर्यथा।

छोटी पीपल, पिपरामूल, धनिया, काला जीरा, सेंधानमक, बिडनमक, तेजपात्र, तालीशपत्र, नागकेशर प्रत्येक ८ तोला, काला नमक २० तोला, काली मिर्च, सफेद जीरा, सोंठ प्रत्येक ४ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची प्रत्येक २ दो तोला, सामुद्र नमक ३२ तोला, अनारदाना १६ तोला, अम्लवेत ८ तोला सबको कूटकर कपडछान चूर्ण करना चाहिये । यह भास्करलवण भगवान् भास्करने संसारके कल्याणार्थ बनाया था यह उत्तम गन्धयुक्त तथा अमृततुल्य गुणदायक है । इसका प्रयोग मट्ठा, दहीका तोड, सीधु, शराब, सिरका, काञ्जी, जाङ्गल प्राणियोंके मांसरस या अन्य रसोंके साथ करना चाहिये । इससे मन्दाग्नि शीघ्र ही दीप्त होती है । यह चूर्ण वातगुल्म तथा वातशूल, अर्श, ग्रहणी, कुष्ठ, भगन्दर, हृद्रोग आमदोष, प्लीहा, अश्मरी, श्वास, कास, उदररोग, क्रिमिरोग शर्करा तथा पाण्डुरोगको इस प्रकार नष्ट करता है यथा वज्र अन्य पदार्थोंको नष्ट करदेता है * ॥ ३८–४६ ॥–

अग्निघृतम्।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ४७ ॥
हिङ्गु चाप्यजमोदा च पञ्चैव लवणानि च।
द्वौ क्षारौ हपुषा चैव दद्यादर्धपलोन्मितान् ॥ ४८ ॥
दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च।
आर्द्रकस्वरसप्रस्थं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४९ ॥

---

* कुछ पुस्तकोंमें वडवामुख चूर्ण मस्तुषट्पलकघृतके अनन्तर है पर यह घृतके प्रकरणमें रखना उचित नहीं प्रतीत होता अतः यहीपर लिखता हू-"पथ्यानागरकृष्णाकरञ्जबिल्वाग्निभिः सितातुल्यैः । वडवामुख विजयते गुरुतरमपि भोजनं चूर्णम् ॥" अर्थात् हर्र, सोंठ, छोटी पीपल, कञ्जा, बेलका गूदा, चीतकी जड प्रत्येक समान भाग ले चूर्ण कर चूर्णके समान मिश्री मिला देना चाहिये । यह चूर्ण गुरुतर भोजनको भी पचा देता है इसका वडवामुख नाम है । मात्रा २ माशेसे४माशे तक ।

एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ।
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं तथा गुल्मोदरापहम् ॥ ५० ॥
ग्रन्थ्यर्बुदापचीकासकफमेदोऽनिलानपि ।
नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ ५१ ॥
ये च वस्तिगता रोगा ये च कुक्षिसमाश्रिताः ।
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ ५२ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चीतकी जड़, गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जीखार, तथा हाऊबेर प्रत्येक २ तोलाका कल्क दही, कांजी, सिरका तथा अदरखका रस प्रत्येक १ प्रस्थ और घी एक प्रस्थ छोड़कर पकाना चाहिये । यह घृत-मन्दाग्निवालोंके लिये हितकर होता है । तथा अर्श, गुल्म, उदर, ग्रन्थि अर्बुद, अपची, कास, कफ, मेद, वातरोग, ग्रहणीदोष, सूजन, भगन्दर आदि रोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्योदयसे अन्धकार नष्ट हो जाता है ॥ ४७—५२ ॥

मस्तुषट्पलकं घृतम् ।

पलिकैः पञ्चकोलैस्तु घृतं मस्तु चतुर्गुणम् ।
सक्षारैः सिद्धमल्पाग्निं कफगुल्मं विनाशयेत् ॥ ५३ ॥

पञ्चकोल तथा यवाखार प्रत्येक ४ तोला का कल्क तथा कल्कसे चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण दहीका तोड़ मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत मन्दाग्नि तथा कफ, गुल्मको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

बृहदग्निघृतम् ।

भल्लातकसहस्रार्धं जलद्रोणे विपाचयेत् ।
अष्टभागावशेषं च कषायमवतारयेत् ॥ ५४ ॥
घृतप्रस्थं समादाय कल्कानीमानि दापयेत् ।
त्र्यूषणं पिप्पलीमूलं चित्रको हस्तिपिप्पली ॥ ५५ ॥
हिंगु चव्याजमोदा च पञ्चैव लवणानि च ।
द्वौ क्षारौ हपुषा चैव दद्यादर्धपलोन्मितान् ॥ ५६ ॥
दधिकाञ्जिकशुक्तानि स्नेहमात्रासमानि च ।
आर्द्रकस्वरसं चैव सौभाञ्जनरसं तथा ॥ ५७ ॥
तत्सर्वमेकतः कृत्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
एतदग्निघृतं नाम मन्दाग्नीनां प्रशस्यते ॥ ५८ ॥
अर्शसां नाशनं श्रेष्ठं मूढवातानुलोमनम् ।
कफवातोद्भवे गुल्मे श्लीपदे च दकोदरे ॥ ५९ ॥
शोथं पाण्ड्वामयं कासं ग्रहणीं श्वासमेव च ।
एतान्विनाशयत्याशु सूर्यस्तम इवोदितः ॥ ६० ॥

भिलावा ५०० तोला [illegible] चाहिये । चतुर्थांश शेष [illegible] चाहिये, फिर इसमें त्रिकटु, पिपरामूल, [illegible] गजपीपल, हींग, चव्य, अजमोद, पाँचों नमक, जवाखार, सज्जीखार, [illegible] ६४ तोला, दही, कांजी, सिरका, अदरखका रस, सौंभा-जनका रस प्रत्येक घृतके समान मिलाकर मन्दाग्निसे पकाना चाहिये । यह घृत, अर्श, [illegible] गुल्म, श्लीपद, उदर, शोथ, पाण्डुरोग, कास, ग्रहणी, श्वास नामक [illegible] नष्ट करता तथा वायुका अनुलोमन करता है जैसे सूर्य अन्धकारको नष्ट करता है ॥ ५४—६० ॥

क्षारगुडः ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफलामर्कमूलं शतावरीम् ।
दन्तीं चित्रकमास्फोतां रास्नां पाठां सुधां शटीम् ॥ ६१ ॥
पृथग्दशपलान्भागान्दग्ध्वा भस्म समावपेत् ।
त्रिःसप्तकृत्वस्तद्भस्म जलद्रोणेन गालयेत् ॥ ६२ ॥
तद्रसं साधयेदग्नौ चतुर्भागावशेषितम् ।
ततो गुडतुलां दत्त्वा साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ ६३ ॥
सिद्धं गुडं तु विज्ञाय चूर्णानीमानि दापयेत् ।
वृश्चिकालीं द्विकाकोल्यौ यवक्षारं समावपेत् ॥ ६४ ॥
एते पञ्चपला भागाः पृथक् पञ्चपलानि च ।
हरीतकी त्रिकटुकं सर्जिकां चित्रकं वचाम् ॥ ६५ ॥
हिङ्ग्वम्लवेतसाभ्यां च द्वे पले तत्र दापयेत् ।
अक्षप्रमाणां गुटिकां कृत्वा खादेद्यथाबलम् ॥ ६६ ॥
अजीर्णं जरयत्येषा जीर्णं सन्दीपयत्यपि ।
भुक्तं भुक्तं च जीर्यत पाण्डुत्वमपकर्षति ॥ ६७ ॥
प्लीहार्शःश्वयथुं चैव श्लेष्मकासमरोचकम् ।
मन्दाग्निविषमाग्नीनां कफे कण्ठोरसि स्थिते ॥ ६८ ॥
कुष्ठानि च प्रमेहांश्च गुल्मं चाशु नियच्छति ।
ख्यातः क्षारगुडो ह्येष रोगयुक्ते प्रयोजयेत् ॥ ६९ ॥

सरिवन, पिठिवन, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, गोखरू, बेलका गूदा, सोनापाठा, खम्भारकी छाल, पाटल, अरणी, आमला, हर्र, बहेड़ा, आकर्की जड़, शतावरी, दन्ती, चीतकी जड़, आस्फोता[1], रासन, पाढ़ी, थूहर, कचूर प्रत्येक ४० तोला जलाकर

---

१ आस्फोता-विष्णुक्रान्ताके नामसे ही प्रसिद्ध द्रव्यको विशेषतः मानते हैं पर बङ्गदेशीय वैद्य एक दूसरी लताको ही मानते हैं ।

भस्म कर लेना चाहिये । इस भस्मको एक द्रोण जलमें २१ बार छानना चाहिये । फिर इस जलको अग्निपर पकाना चाहिये. चतुर्थांश शेष रहनेपर गुड ५ सेर छोडकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । पाक तैयार हो जानेपर बिछुआ, काकोली, क्षीरकाकोली, यवाखार, बडी हर्रका छिल्का, सोंठ, मिर्च, पीपल, सज्जीखार, चीतकी जड, बच प्रत्येक २० तोला भुनी हींग तथा अम्लवेत प्रत्येक ४ तोला सबका कपडछान किया हुआ चूर्ण छोडकर १ तोलाकी मात्रासे गोली बना लेनी चाहिये । यह गोली बलानुसार सेवन करनेसे अजीर्णको नष्ट करती, अग्निको दीप्त करती, भोजनको पचाती तथा पाण्डुरोगको नष्ट करती है । तथा प्लीहा, अर्श, सूजन, कफजन्य कास तथा अरुचि, कुष्ठ, प्रमेह तथा गुल्मको शीघ्र ही नष्ट करती है । मन्दाग्नि तथा विषमाग्निवालोंको लाभ पहुँचाती है । कण्ठ तथा छाती कफको दूर करती है । इसे क्षारगुड कहते हैं ॥ ६१–६९ ॥

चित्रकगुडः ।

नासारोगे विधातव्या या चित्रकहरीतकी ॥
विना धात्रीरसं सोऽस्मिन्प्रोक्तश्चित्रगुडोऽग्निदः ॥ ७०

नासारोगमें जो चित्रक हरीतकी लिखेंगे उसमें आमलेका रस न छोडनेसे चित्रक गुड तैयार होता है यह अग्निको दीप्त करता है ॥ ७० ॥

आमाजीर्णचिकित्सा ।

वचा लवणतोयेन वान्तिरामे प्रशस्यते ।

वच और लवणका चूर्ण गरम जलमें मिला पीकर वमन करनेसे आमाजीर्ण नष्ट होता है ॥

विदग्धाजीर्णचिकित्सा ।

अन्नं विदग्धं हि नरस्य शीघ्रं
शीताम्बुना वै परिपाकमेति ।
तद्ध्यस्य शैत्येन निहन्ति पित्त-
माक्लेदिभावाच्च नयत्यधस्तात् ॥ ७१ ॥
विदह्यते यस्य तु भुक्तमात्रं
दह्येत हृत्कोष्ठगलं च यस्य ।
द्राक्षासितामाक्षिकसंप्रयुक्तां
लीढ्वाभयां वै स सुखं लभेत ॥ ७२ ॥
हरीतकी धान्यतुषोदसिद्धा
सपिप्पली सैन्धवहिङ्गुयुक्ता ।
सोद्गारधूमं भृशमप्यजीर्णं
विजित्य सद्यो जनयेत्क्षुधां च ॥ ७३ ॥

मनुष्यका विदग्ध अन्न ठण्डे जलके पीनेसे पच जाता है । ठण्डा जल ठण्डे होनेसे पित्तको शान्त करता तथा गीला होनेसे नीचेको ले जाता है । जिसके भोजन करते ही अन्न विदग्ध हो जाता है हृदय, कोष्ठ और गलेमें जलन होती है वह मुनक्का, मिश्री और बडी हर्रका चूर्ण शहतसे चाटकर सुखी होता है । इसी प्रकार कांजीमें पकाई हर्रका चूर्ण, छोटी पीपल, सेंधानमक और भुनी हींगका चूर्ण मिलाकर फाकनेसे सधूम डकार और अजीर्णको नष्ट कर शीघ्र ही भूखको उत्पन्न करता है ॥ ७१–७३ ॥

विष्टब्धाजीर्ण--रसशेषाजीर्णचिकित्सा ।

विष्टब्धे स्वेदनं पथ्यं पेयं च लवणोदकम् ।
रसशेषे दिवास्वप्नो लङ्घनं वातवर्जनम् ॥ ७४ ॥

विष्टब्धाजीर्णमें पेट सेकना तथा नमक मिला गरम जल पीना हितकर होता है । रसशेषाजीर्णमें दिनमें सोना, लंघन और निर्वात स्थानमें रहना हितकर होता है॥७४॥

दिवा स्वप्नयोग्याः ।

व्यायामप्रमदाध्ववाहनरतक्लान्तानतीसारिणः
शूलश्वासवतस्तृषापरिगतान्हिक्कामरुत्पीडितान् ।
क्षीणान्क्षीणकफाञ्छिशून्मदहतान्वृद्धान्रसाजीर्णिनो
रात्रौ जागरितांस्तथा निरशनान्कामं दिवा स्वापयेत्॥७५

कसरत, स्त्रीगमन, मार्ग, तथा सवारीसे थके हुए, अतीसारवाले तथा शूल, श्वास, तृषा, हिक्का व वायुसे पीडित पुरुषोंको क्षीण तथा क्षीणकफवालोंको बालको,वृद्धो, रसाजीर्णवालो तथा रात्रिमें जागरण करनेवालोंको और जिन्होंने भोजन नहीं किया उन्हें दिनमें यथेष्ट सोना चाहिये ॥ ७५ ॥

अजीर्णस्य सामान्यचिकित्सा ।

आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिङ्गुत्र्यूषणसैन्धवैः ।
दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णप्रशान्तये ॥ ७६ ॥
धान्यनागरसिद्धं तु तोयं दद्याद्विचक्षणः ।
आमाजीर्णप्रशमनं दीपनं वस्तिशोधनम् ॥ ७७ ॥
पथ्यापिप्पलिसंयुक्तं चूर्णं सौवर्चलं पिबेत् ।
मस्तुनोष्णोदकेनाथ बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ॥ ७८ ॥
चतुर्विधमजीर्णं च मन्दानलमथोऽरुचिम् ।
आध्मानं वातगुल्मं च शूलं चाशु नियच्छति ॥ ७९ ॥

भवेदजीर्णं प्रति यस्य शंका
स्निग्धस्य जन्तोर्वलिनोऽन्नकाले ।
पूर्वं सशुण्ठीमभयामशक
संप्राश्य भुञ्जीत हितं हिताशी ॥ ८० ॥
किञ्चिदामेन मन्दाग्निरभयागुडनागरम् ।
जग्ध्वा तक्रेण भुञ्जीत युक्तेनान्न षडूषणैः ॥८१॥

भुनी हींग, सोंठ मिर्च, पीपल, सेंधानमक सब गरम जलमें महीन पीस पेटपर लेप कर दिनमें सोनेसे समस्त अजीर्ण शान्त होते हैं तथा धनिया और सोंठका क्वाथ आमाजीर्णको शान्त करता, अग्नि को दीप्त करता तथा मूत्राशयको शुद्ध करता है। हर्र व छोटी पीपलका चूर्ण काला नमक मिलाकर दहीके तोड अथवा गरम जलके साथ जैसा आवश्यक हो पीवे इससे अजीर्ण, मन्दाग्नि, अरुचि, पेटकी गुडगुडाहट तथा वातगुल्म शीघ्र दूर होते हैं। यादि स्निग्ध तथा बलवान् मनुष्यको भोजनके समय अजीर्णकी शंका हो तो पाहिले सोंठ और हर्रके चूर्णको खाकर हितकारक हल्का पथ्य लेवे। यादि आमके कारण कुछ अग्निमन्द हो तो हर्र, गुड, और सोंठको खाकर षडूषण (पिप्पली पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक सोंठ, काली मिर्च) युक्त मट्ठेके साथ भात खावे ॥ ७६–८१ ॥

विषूचिकाचिकित्सा ।

विषूचिकायां वमितं विरिक्तं
सुलंघितं वा मनुजं विदित्वा ।
पेयादिभिर्दीपनपाचनैश्च
सम्यक्क्षुधार्तं समुपक्रमेत ॥ ८२ ॥

हैजेमें वमन, विरेचन तथा लंघन हो जानेके अनन्तर जब खूब भूख लगे तो दीपन पाचन ओषधियोंसे सिद्ध पेया विलेपी आदि देना चाहिये ॥ ८२ ॥

मर्दनम् ।

कुष्ठसैन्धवयोः कल्कः शुक्ततैलसमन्वितम् ।
विषूच्यां मर्दनं कोष्णं खल्लीशूलनिवारणम् ॥८३॥

कूठ, सेंधानमकका कल्क चूका और तैल मिला कुछ गरम कर मर्दन करना हाथ पैर आदिके शूलको नष्ट करता है ॥ ८३ ॥

वमनम् ।

करञ्जनिम्बशिखरिगुडूचीवर्जकत्वचैः ।
पीतं कषायो वमनाद्घोरां हन्ति विषूचिकाम् ॥८४॥

कञ्जा, नीमकी छाल, लटजीरा, गुर्च, और कुटकी छाल इनका क्वाथ पीकर वमन करनेसे घोर विषूचिका नष्ट होती है ॥ ८४ ॥

अञ्जनम् ।

व्योषं करञ्जस्य फलं हरिद्रे
मूलं समावाप्य च मातुलुङ्गाः ।
छायाविशुष्का गुडिका कृतास्ता
हन्युर्विषूचीं नयनाञ्जनेन ॥ ८५ ॥

त्रिकटु, कञ्जा, हल्दी, बिजौरे निम्बूकी जड सब समभाग ले कूट छान जलमें घोट गोली बनाकर छायामें सुखा लेनी चाहिये ये गोलियां आंखमें लगानेसे विषूचिकासे उत्पन्न बेहोशीको नष्ट करती हैं ॥ ८५ ॥

अपरमञ्जनम् ।

गुडपुष्पसाराशिखरि-
तण्डुलगिरिकर्णिकाहरिद्राभिः ।
अञ्जनगुटिका विलयति
विषूचिकां त्रिकटुकसनाथा ॥ ८६ ॥

गुड, मधु, अपामार्गके चावल, श्वेतपुष्पा-विष्णुकान्ता, हल्दी, तथा त्रिकटु मिलाकर बनायी गयी गोली नेत्रमें लगानेसे विषूचिकाको नष्ट करती है ॥ ८६ ॥

उद्वर्तनं तैलमर्दनं वा ।

त्वक्पत्ररास्नागुरुशिग्रुकुष्ठै-
रम्लेन पिष्टैः सवचाशताह्वैः ।
उद्वर्तनं खल्लि विषूचिकाघ्नं
तैलं विपक्वं च तदर्थकारि ॥ ८७ ॥

दालचीनी, तेजपात, रासन, अगर, कूठ, सहिजनेकी छाल, वच, सौंफ सबको महीन पीस काञ्जीमें मिलाकर उबटन लगानेसे खल्लीयुक्त विषूचिका नष्ट होती है। तथा इन्हीं चीजोंमें सिद्ध तैल भी यही गुण करता है ॥ ८७ ॥

उपद्रवचिकित्सा ।

पिपासायामनूत्क्लेशे लवंगस्याम्बु शस्यते ।
जातीफलस्य वा शीतं शृतं भद्रघनस्य वा ॥ ८८ ॥
विषूच्यामतिवृद्धायां पार्ष्ण्योर्दाहः प्रशस्यते ।
वमनं त्वलसे पूर्वं लवणेनोष्णवारिणा ॥ ८९ ॥

स्वेदो वर्तिर्लवनं च क्रमश्चातोऽग्निवर्धनः।
सरुक् चानद्धमुदरमम्लपिष्टैः प्रलेपयेत्।
दारुहैमवतीकुष्ठशताह्वाहिंगुसैन्धवैः ॥ ९० ॥
तक्रेण युक्तं यवचूर्णमुष्णं।
सक्षारमार्तिं जठरे निहन्यात्।
स्वेदो घटैर्वा बहुबाष्पपूर्णै-
रुष्णैस्तथान्यैरपि पाणितापैः ॥ ९१ ॥

यदि मिचलाहट और प्यास अधिक हो तो लवंगका जल अथवा जायफलका जल अथवा नागरमोथाका जल पीना चाहिये। बहुत बढी विषूचिकामें एडियोंको दाग देना चाहिये। अलसक (जिसमें न वमन हो न दस्त) में पहिले नमक मिले गरम जलसे वमन करना चाहिये। फिर स्वेदन, फलवर्तिधारण और लवन कराकर अग्निवर्द्धक उपाय करने चाहिये। यदि पेटमें पीडा तथा अफारा हो तो देवदारु, वच, कूट, सौंफ, हींग, सैन्धानमकको काञ्जीमें पीसकर पेटपर लेप करना चाहिये। मट्ठेके साथ यवचूर्ण व यवाखार गरम कर लेप करनेसे उदरकी पीडाको नष्ट करता है तथा भापसे भरे घटसे स्वेदन करना अथवा हाथ आदि गरमकर सेकनेसे उदरशूल नष्ट होता है ॥ ८८–९१ ॥

तीव्रार्तिरपि नाजीर्णी पिबेच्छूलघ्नमौषधम्।
दोषसन्नोऽनलो नालं पक्तुं दोषौषधाशनम् ॥९२॥

अजीर्णी तीव्र पीडा होनेपर भी शूलघ्न औषध न खावे क्योंकि आमसे ढका अग्नि दोष औषध और भोजनको नहीं पका सकता ॥ ९२ ॥

इत्यग्निमान्द्याधिकारः समाप्तः।

अथ क्रिमिरोगाधिकारः।

पारसीकयवानिकाचूर्णम्।

पारसीययवानिका पीता पर्युषितवारिणा प्रातः।
गुडपूर्वा क्रिमिजातं कोष्ठगतं पातयत्याशु ॥ १ ॥

प्रथम गुड खाकर ऊपरसे खुरासानी अजवाइन बासी पानीके साथ उतारनेसे कोष्ठगत क्रिमिसमूहको गिरा देती है ॥ १ ॥

पारिभद्रार्कपत्रोत्थं रसं क्षौद्रयुतं पिबेत्।
केबुकस्य रसं वापि पत्तूरस्याथ वा रसम्।
लिह्याद्क्षौद्रेण वैडङ्गं चूर्णं क्रिमिविनाशनम् ॥ २ ॥

नीम तथा आकके पत्तोंका रस शहदके साथ अथवा केबुक अथवा जलपिप्पली (या पीतचन्दन) का रस अथवा बायविडंगका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे क्रिमि नष्ट होते हैं ॥ २ ॥

मुस्तादिक्राथः।

मुस्ताखुपर्णीफलदारुशिग्रु-
क्वाथः सकृष्णाक्रिमिशत्रुकल्कः।
मार्गद्वयेनापि चिरप्रवृत्तान्
क्रिमीन्निहन्ति क्रिमिजांश्च रोगान् ॥ ३ ॥

नागरमोथा, मूसाकानी, मैनफल, देवदारु, सहिजनके बीजका क्वाथ, छोटी पीपल तथा बायविडंगका चूर्ण छोडकर पीनेसे दोनों मार्गोंमें अधिक समयसे आते हुए क्रिमियों तथा कीड़ोंसे उत्पन्न होनेवाले रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

पिष्टकपूपिकायोगः।

आखुपर्णीदलैः पिष्टैः पिष्टकेन च पूपिकाम्।
जग्ध्वा सौवीरकं चानु पिबेत्क्रिमिहरं परम् ॥ ४ ॥

मूसाकानीके पत्तोंको पीस आटेमें मिलाकर पूडी बनानी चाहिये इन पूडियोंको खाकर ऊपरसे काञ्जी पीनेसे कीडे नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

पलाशबीजयोगः।

पलाशबीजस्वरसं पिबेद्वा क्षौद्रसंयुतम्।
पिबेत्तद्बीजकल्कं वा तक्रेण क्रिमिनाशनम् ॥ ५ ॥

ढाकके बीजोंका स्वरस शहदके साथ अथवा उन्हींका कल्क मट्ठेके साथ पीनेसे क्रिमिरोग नष्ट होता है ॥ ५ ॥

सुरसादिगणक्वाथः विडंगादिचूर्णं च।

सुरसादिगणं वापि सर्वथैवोपयोजयेत्।
विडङ्गसैन्धवक्षारकाम्पिल्लकहरीतकी ॥ ६ ॥
पिबेत्तक्रेण संपिष्टा सर्वक्रिमिनिवृत्तये।

---

१ यहां मूसाकानीके पत्तोंके ३ भाग और पिष्टक (यवका आटा) १ भाग लेना शिवदासजीने सुश्रुतके टीकाकारका मत दिखलाते हुए लिखा है। निश्चलके मतसे पिष्टकसे चावलकी पिट्ठी होना चाहिये। पर क्रिमिनाशक होनेसे यवपिष्टक ही श्रेष्ठ है।

सुरसादिगणकी ओषधियोंका क्वाथ कल्क आदि बनाकर प्रयोग करना चाहिये । अथवा वायविडङ्ग,सेंधानमक, यवाखार, कबीला, बड़ी हर्रका छिल्का सबका चूर्ण बनाकर मट्ठेके साथ पीना चाहिये इससे सब प्रकारके क्रिमि नष्ट होते हैं ॥ ६ ॥–

विडंगादियवागूः ।

विडंगपिप्पलीमूलशिग्रुभिर्मरिचेन च ॥ ७ ॥
तक्रसिद्धा यवागूः स्यात्क्रिमिघ्नी ससुवर्चिका ।

वायविडंग, पिपरामूल,सहिजनके बीज, काली मिर्चका कल्क छोड़कर मट्ठेमें सिद्ध की गई यवागू, सज्जीखार छोड़कर खानेसे सब तरहके कीड़े नष्ट होते हैं ॥ ७ ॥

बिम्बीघृतम् ।

पीतं बिम्बीघृतं हन्ति पक्वामाशयगान्क्रिमीन् ॥ ८ ॥

कड़वी कुन्दरूसे सिद्ध किया घी पीनेसे पक्वाशय तथा आमाशयमें होनेवाले कीड़े नष्ट होते हैं ॥ ८ ॥

त्रिफलादिघृतम् ।

त्रिफला त्रिवृता दन्ती वचा काम्पिल्लकं तथा ।
सिद्धमेभिर्गवां मूत्रे सर्पिः क्रिमिविनाशनम् ॥ ९ ॥

त्रिफला,निसोथ, दन्ती,वच, कबीला इनसे सिद्ध किया घृत कीड़ोंको नष्ट करता है इसमें घृतसे चतुर्गुण गोमूत्र छोड़कर पकाना चाहिये ॥ ९ ॥

---

१ सुश्रुतमें इस प्रकार है सुरसा (काली तुलसी), श्वेतसुरसा (सफेद तुलसी), फणिज्झक (मरुवा), अर्जक (बबई), भूस्तृण (छत्रिकेतिप्रसिद्धम् । भूस्तृण तु भवेच्छत्र मालातृणकमित्यपि), सुगन्धक (रौहिष), सुमुख (वनबबई), कालमाल (अयमपि तुलसीभेदः), कासमर्द (कसौंदी), क्षवक (नकछिकनी), खरपुष्पा (बबईभेद), विडङ्ग (वायविडङ्ग), कट्फल(कैफरा), सुरसी (कपित्थपत्रा तुलसी), निर्गुण्डी (सम्भालू), कुलाहलोन्दुरकर्णिका (कुकुरशुङ्गवमूसाकानी) फञ्जी (भारङ्गी), प्राचीबल (काकजङ्घा), काकमाची (मकोय) विषमुष्टिकश्चेति (कुचिला) "सुरसादिर्गणो ह्येष कफहृत्क्रिमिसूदनः । प्रतिश्यायारुचिश्वासकासघ्नो व्रणशोधनः" ॥

विडंगघृतम् ।

त्रिफलायास्त्रयः प्रस्था विडङ्गप्रस्थ एव च ।
द्विपलं दशमूलं च लाभतश्च विपाचयेत् ॥ १० ॥
पादशेषे जलद्रोणे शृते सर्पिर्विपाचयेत् ।
प्रस्थोन्मितं सिन्धुयुतं तत्पलं क्रिमिनाशनम् ॥ ११ ॥
विडङ्गघृतमेतच्च लिह्यात् शर्करया सह ।
सर्वान्क्रिमीन्प्रणुदति वज्रं मुक्तमिवासुरान् ॥ १२ ॥

त्रिफला (तीनों मिलकर) ३ प्रस्थ, वायविडङ्ग १ प्रस्थ, दशमूलकी प्रत्येक ओषधि २ पल सब दुरकुचाकर १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहने पर १ प्रस्थ घृत छोड़कर पकाना चाहिये तथा सेंधानमकका कल्क छोड़ना चाहिये । इस घृतके शर्कराके साथ सेवन करनेसे सब तरहके कीड़े इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे वज्रसे राक्षस ॥ १०–१२ ॥

यूकाचिकित्सा ।

रसेन्द्रेण समायुक्तो रसो धत्तूरपत्रजः ।
ताम्बूलपत्रजो वापि लेपो यूकाविनाशनः ॥ १३ ॥

पारदके साथ धतूरेके पत्तेका रस अथवा पानका रस लेप करनेसे जुएं नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

विडंगादितैलम् ।

विडङ्गगन्धकशिला सिद्धं सुरभीजलेन कटुतैलम् ।
आजन्म नयति नाशं लिक्षासहिताश्च यूकास्तु ॥ १४ ॥

---

१ शिला–मनः शिला कुछ लोगोंका सिद्धान्त है कि गन्धकशिला एक ही पद है अतः गन्धकशिलागन्धकका ढेला, पर शिलाका मनःशिला ही अर्थ करना ठीक है क्योंकि योगरत्नाकरमें पाठभेदसे यही तैल लिखा है पर उसमें भी मनःशिला आवश्यक है। यथा—"सविडङ्गं च शिलया सिद्धं सुरभिजलेन कटुतैलम् ।निखिला नयति विनाशं लिक्षासहिता दिनैर्यूकाः॥" यहांपर यद्यपि कटुतैल–मूर्छनविधि नहीं लिखी पर वैद्यलोग प्रायः मूर्छन करके ही तैल–पाक करते हैं अतः कटुतैलमूर्छनविधि लिखता हूं । "वयस्था-रजनीमुस्तबिल्वदाडिमकेशरैः । कृष्णजीरकह्रीबेर-नालिकेरैः सविभीतकैः ॥ एतैः समांशैः प्रस्थे च कर्षमात्रं प्रयोजयेत् । अरुणा द्विपलं तत्र तोयं चाढकसम्मितम् । कटुतैलं पचेत्तेन आमदोषहरं परम् ॥" अस्यार्थः—आमला, हल्दी, नागरमोथा, बेलकी छाल, अनारकी छाल, नागकेशर, काला जीरा सुगन्धवाला, नाड़ी,

वायविडंग, आमलासारगन्धक, मैनशिला कल्क तथा गोमूत्र छोड़कर सिद्ध किया गया कटुतैल स्नानमें बालकृमि तथा सूक्ष्म कृमि नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

इति क्रिमिरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ पाण्डुरोगाधिकारः ।

चिकित्साविचारः ।

साध्यं तु पाण्डवामयिनं समीक्ष्य
स्निग्धं घृतेनोर्ध्वमधश्च शुद्धम् ।
सम्पादयेत्क्षौद्रघृतप्रगाढै-
र्हरीतकीचूर्णमयैः प्रयोगैः ॥ १ ॥

साध्य पाण्डुरोगीको देखकर प्रथम घृतपान द्वारा स्नेहन कर वमन तथा विरेचन कराना चाहिये तदनन्तर शहद और घीके साथ हर्रके चूर्ण मिलाना चाहिये ॥ १ ॥

पिबेद्घृतं वा रजनीविपक्वं यत्त्रैफलं तैल्वकमेव चापि ।
विरेचनद्रव्यकृतान्पिबेद्वा योगांश्च वैरेचनिकान्घृतेन ॥ २ ॥

हल्दीका कल्क छोड़ सिद्ध किया घृत अथवा त्रिफला और लोधसे सिद्ध किया घृत अथवा घृतके साथ दस्त लानेवाले योगोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ २ ॥

विधिः स्निग्धोऽथ वातोत्थे तिक्तशीतस्तु पैत्तिके ।
श्लैष्मिके कटुरूक्षोष्णः कार्यो मिश्रस्तु मिश्रके ॥ ३ ॥

वातजन्य-पाण्डुरोगमें स्निग्धविधि, पित्तजमें तिक्त, शीत और कफजमें कटु, रूक्ष, उष्ण और मिले हुए दोषोंमें मिली चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥

पाण्डुनाशकाः केचन योगाः ।

द्विशर्करं त्रिवृच्चूर्णं पलार्धं पैत्तिके पिबेत् ।
कफपाण्डुस्तु गोमूत्रयुक्तां पिबेद्वा हरीतकीम् ॥ ४ ॥
नागरं लोहचूर्णं वा कृष्णां पथ्यामथाश्मजम् ।
गुग्गुलुं वाऽथ मूत्रेण कफपाण्ड्वामयी पिबेत् ॥ ५ ॥
सप्तरात्रं गवां मूत्रे भावितं वाप्ययोरजः ।
पाण्डुरोगप्रशान्त्यर्थं पयसा प्रपिबेन्नरः ॥ ६ ॥

पैत्तिक पाण्डुरोगमें २ तोला निसोथ द्विगुण शक्कर मिलाकर पीना चाहिये । कफज पाण्डुरोगमें गोमूत्रके साथ पकायी हुई हर्र गोमूत्रके साथ ही खाना चाहिये । सोंठ, लौहभस्म अथवा छोटी पीपल, अथवा हर्र व शिलाजतु अथवा शुद्ध गुग्गुल गोमूत्रके साथ कफज-पाण्डुरोगीको पीना चाहिये । अथवा ७ दिन गोमूत्रमें भावित लौह भस्म दूधके साथ पीना चाहिये ॥ ४–६ ॥

फलत्रिकादिक्वाथः ।

फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् ॥ ७ ॥

त्रिफला, गुर्च, रूसाहके फूल, कुटकी, चिरायता, नीमकी छालका क्वाथ शहदके साथ पीनेसे पाण्डुरोग सहित कामलारोग नष्ट होता है ॥ ७ ॥

अयस्तिलादिमोदकः ।

अयस्तिलत्र्यूषणकोलभागैः
सर्वैः समं माक्षिकधातुचूर्णम् ।
तैर्मोदकः क्षौद्रयुतोऽनुतक्रं
पाण्ड्वामये दूरगतेऽपि शस्तः ॥ ८ ॥

लौहभस्म, काले तिल, सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल प्रत्येक ६ मासे सबके समान, स्वर्ण-माक्षिकभस्म ।

—बहेड़ा प्रत्येक १ तोला, मजीठ ८ तोला, कडुवा (सरसोंका) तैल (१ सेर ९ छ ३ तोला, वर्तमान) बंगाली ४ सेर तथा जल ८ सेर ३२ तो० (बंगाली १६ सेर) छोड़कर पका लेना चाहिये ।

१ "न वामयेत्तैमिरिकं न गुल्मिनं न चापि पाण्डूदररोगपीडितम्" । यद्यपि यह वमनका निषेध करता है पर वह पीडित शब्दसे विदित होता है कि चरमावस्थामें ही निषेध युक्त है अतः प्रथम अवस्थामें वमन कराना विरुद्ध नहीं अतएव सुश्रुतने लिखा है—"अवस्था अपि ये प्रोक्तास्तेऽप्यजीर्णव्यथातुराः । विपार्ताश्चोल्बणकफा वामनीयाः प्रयत्नतः ॥"

१ गुग्गुल शोधनविधिसे शुद्ध कर ही लेना चाहिये । शोधनविधिः—"दुग्धे वा त्रिफलाक्वाथे दोलायन्त्रे विपाचितः । वाससा गालितो ग्राह्यः सर्वकर्मसु गुग्गुलुः ।" अथवा—"अमृतायाः कषायेण स्वेदयित्वाऽथ गुग्गुलुम् । गृह्णीयादातपे शुष्कं तथावकरवर्जितम् ॥" ग्राह्यगुग्गुलुलक्षणम्—"स नवो बृंहणो वृष्यः पुराणस्त्वतिलेखनः । स्निग्धः काञ्चनसंकाशः पक्वजम्बूफलोपमः ॥ नूतनो गुग्गुलुः प्रोक्तः सुगन्धिर्यस्तु पिच्छिलः । शुष्को दुर्गन्धिकश्चैव त्यक्तप्राकृतवर्णकः ॥ पुराणः स तु विज्ञेयो गुग्गुलुर्वीर्यवर्जितः" ॥

[illegible] पानीमें [illegible] गोली बना लेनी चाहिये। इसे [illegible] पुराना पाण्डुरोग भी नष्ट होता है॥ ८॥

मण्डूरविधिः।

अयोमलं तु सन्तप्तं भूयो गोमूत्रवापितम्।
मधुसर्पिर्युतं चूर्णं सह भक्तेन योजयेत्॥ ९॥
दीपनं चाग्निजननं शोथपाण्ड्वामयापहम्।

मण्डूरको तपा तपा कर गोमूत्रमें बुझा लेना चाहिये। फिर उसका चूर्णकर शहद और घीमें मिलाकर भोजनके साथ खिलाना चाहिये। इससे अग्नि दीप्त होती है और सूजन तथा पाण्डुरोग नष्ट होते हैं॥ ९॥-

नवायसं चूर्णम्।

त्र्यूषणत्रिफलामुस्तविडङ्गचित्रकाः समाः॥ १०॥
नवायोरजसो भागास्तच्चूर्णं मधुसर्पिषा।
भक्षयेत्पाण्डुहृद्रोगकुष्ठार्शःकामलापहम्॥ ११॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, आमला, हर्र, बहेड़ा, नागरमोथा, चीतकी जड़, वायविडंग सब समान भाग सबके बराबर लौह-भस्म मिलाना चाहिये, इस चूर्णको शहद [illegible] पाण्डु, हृद्रोग, कुष्ठ, अर्श और कामलाको नष्ट करता है॥ १०॥ ११॥

योगराजः।

मिलित त्रिफला ३ भाग, मिलित त्रिकटु ३ भाग, चीतकी जड़ १ भाग, वायविडंग १ भाग, शिलाजतु ५ भाग, रौप्य माक्षिक भस्म ५ भाग, स्वर्णमाक्षिक भस्म ५ भाग, लौह-भस्म ५ भाग, ८ भाग मिश्री सबका महीन चूर्णकर शहदमें अवलेह सरीखा बनाकर लौह-पात्रमे रखना चाहिये। फिर इससे १ तोलाकी मात्रा तथा अग्निबलके अनुसार सेवन करना चाहिये औषधका परिपाक हो जानेपर यथेप्सित भोजन करना चाहिये। पर कुलथी, मकोय और कबूतर नहीं खाना चाहिये। यह योगराजनामक योग अमृतके तुल्य गुणदायक होता है। समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाले यह उत्तम रसायन विशेषकर पाण्डुरोग, विष, कास, यक्ष्मा, विषमज्वर, कुष्ठ, अजीर्णता, प्रमेह, श्वास, हिक्का, अरोचक, अपस्मार, कामला तथा अर्शको नष्ट करता है॥ १२-१८॥

विशालाद्यं चूर्णम्।

विशालाकटुकामुस्तकुष्ठदारुकलिंगकाः।
कर्षांशा द्विपिचुर्मूर्वा कर्षार्धा च घुणप्रिया॥ १९॥
पीत्वा तच्चूर्णमम्भोभिः सुखैर्लिह्यात्ततो मधु।
पाण्डुरोगं ज्वरं दाहं कासं श्वासमरोचकम्॥ २०॥
गुल्मानाहामवातांश्च रक्तपित्तं च तज्जयेत्।

इन्द्रायणकी जड़, कुटकी, नागरमोथा, कूठ, देवदारु, इन्द्रयव प्रत्येक एक तोला मूर्वा २ तोला, अतीस ६ माशे सबका महीन चूर्णकर गरम जलके साथ खाना चाहिये। फिर कुछ शहद चाटना चाहिये। यह पाण्डुरोग, ज्वर, दाह, कास, श्वास, अरोचक, गुल्म, आनाह आमवात तथा रक्तपित्तको नष्ट करता है॥१९॥२०॥-

लौहक्षीरम्।

लौहपात्रे शृतं क्षीरं सप्ताहं पथ्यभोजनः॥ २१॥
पिबेत्पाण्ड्वामयी शोषी ग्रहणीदोषपीडितः।

लोहपात्रमें पकाया गया दूध पथ्य भोजन करता हुआ पाण्डुरोगी, शोषी तथा ग्रहणीसे पीड़ित मनुष्य ७ दिन पीवे॥ २१॥

कामलाचिकित्सा।

[illegible] पथ्यान्नं [illegible]पि वा॥ २२॥

* इसमें [illegible] 'मिलितः' से २ तोला तीसरी [illegible]।

स्नेहनार्थं घृतं दद्यात्कामलापाण्डुरोगिणे।
रेचनं कामलार्तस्य स्निग्धस्यादौ प्रयोजयेत् ॥ २३ ॥
ततः प्रशमनी कार्या क्रिया वैद्येन जानता।

कामला तथा पाण्डुरोगवालेको स्नेहनके लिये कल्याणक, पञ्चगव्य अथवा महातिक्त घृत देना चाहिये। स्नेहनके अनन्तर विरेचन देना चाहिये फिर दोषोंको शान्त करनेवाली चिकित्सा करनी चाहिये॥२२॥२३॥–

कामलानाशका योगाः।

त्रिफलाया गुडूच्या वा दार्व्या निम्बस्य वा रसः ॥२४॥
प्रातर्माक्षिकसंयुक्तः शीलितः कामलापहः।

त्रिफला अथवा गुर्च या दारुहल्दी या नीमका स्वरस प्रातःकाल शहदके साथ चाटनेसे कामलाको नष्ट करता है ॥ २४ ॥—

अञ्जनम्।

अञ्जनं कामलार्तस्य द्रोणपुष्पीरसः स्मृतः ॥ २५ ॥
गूमाका रस कामलावालेकी आंखोंमें आंजना चाहिये२५

अपरमञ्जनं नस्यं च।

निशागैरिकधात्रीणां चूर्णं वा संप्रकल्पयेत्।
नस्यं कर्कोटमूलं वा घ्रेयं वा जालिनीफलम् ॥ २६ ॥

हल्दी, गेरू और आमलेके चूर्णका अञ्जन लगाना चाहिये। अथवा खेखसाका चूर्ण अथवा कडुई तोरईके फलका चूर्ण सूंघना चाहिये अर्थात् नस्य लेना चाहिये ॥ २६ ॥

लेहाः।

सशर्करा कामलिनां त्रिभण्डी
हिता गवाक्षी सगुडा स शुण्ठी ॥ २७ ॥
दार्वीसत्रिफलाव्योषविडङ्गान्ययसो रजः।
मधुसर्पिर्युतं लिह्यात्कामलापाण्डुरोगवान् ॥ २८ ॥
तुल्या अयोरजःपथ्याहरिद्राः क्षौद्रसर्पिषा।
चूर्णिताः कामली लिह्याद्गुडक्षौद्रेण वाभयाम् ॥२९॥
धात्रीलोहरजोव्योषनिशाक्षौद्राज्यशर्कराः।
लीढा निवारयन्त्याशु कामलामुद्धतामपि ॥ ३० ॥

कामलावालेको शक्करके साथ निसोथका चूर्ण अथवा गुड और सोंठके साथ इन्द्रायणकी जडका चूर्ण खाना चाहिये तथा दारुहल्दी, त्रिफला, त्रिकटु, वायविडंग, लौहभस्म सब समान भाग ले शहद घी मिलाकर कामला तथा पाण्डुरोगवालेको चाटना चाहिये। तथा लौह-भस्म, हर्र, हल्दी सब समान भाग ले शहद, व घीके साथ अथवा केवल बडी हर्रका चूर्ण गुड और शहदके साथ चाटना चाहिये। आमला, लौहभस्म, त्रिकटु, हल्दी, शहद, घी व शक्कर मिलाकर चाटनेसे कामला शीघ्र ही नष्ट होती है ॥ २७–३० ॥

कुम्भकामलाचिकित्सा।

दग्ध्वाक्षकाष्ठैर्मलमायसं तु
गोमूत्रनिर्वापितमष्टवारान्।
विचूर्ण्य लीढं मधुना चिरेण
कुम्भाह्वयं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ३१ ॥

लौहकिट्टको बहेडेकी लकडियोंसे तपाकर ८ बार गोमूत्रमें बुझा लेना चाहिये। फिर महीन चूर्णकर शहदके साथ चाटनेसे कुम्भ-कामला-नामक पाण्डुरोग नष्ट होता है ॥ ३१ ॥

हलीमकचिकित्सा।

पाण्डुरोगक्रिया सर्वा योजयेच्च हलीमके।
कामलायां च या दृष्टा सापि कार्या भिषग्वरैः ॥ ३२ ॥

पाण्डुरोग तथा कामलाकी जो चिकित्सा कही गयी है वही हलीमकमें भी करनी चाहिये ॥ ३२ ॥

विडंगाद्यं लौहम्।

विडंगमुस्तात्रिफलादेवदारुपडूषणैः[1]।
तुल्यमात्रमयश्चूर्णं गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ॥ ३३ ॥
तैरक्षमात्रां गुडिकां कृत्वा खादेद्दिने दिने।
कामलापाण्डुरोगार्तः सुखमाप्नुयतेऽचिरात् ॥ ३४ ॥

वायविडंग, नागरमोथा, त्रिफला, देवदारु, पडूषण (पिप्पली, पिप्पलीमूल, चव्य, चित्रक, सोंठ, कालीमिर्च) सब समान भाग चूर्णकर सबके समान लौह-

---

१ कुछ वैद्योंका मत है कि यहां पर लौह प्रधान है अतः लोहसे ही अठगुना गोमूत्र लेकर प्रथम लोह गोमूत्रमें पकाना चाहिये। गाढा हो जानेपर चूर्ण मिलाकर गोलियां बनानी चाहिये क्योंकि चूर्ण मिलाकर पकानेसे चूर्ण जल जायगा। पर कुछ वैद्योंका मत है कि चूर्णके समान लौहभस्म मिलाकर सबसे अठगुने गोमूत्रमें पकाना चाहिये। यही मत उचित प्रतीत होता है। चक्रपाणिजीके शब्दोंसे यही अर्थ निकलता है, पर शिवदासजीने दोनों मतोंका निदर्शन किया है, अपना निश्चय नहीं लिखा। तथा यहां द्रवद्वैगुण्य नहीं होता, इसकी मात्रा वर्तमानकालके लिये ४ रत्तीसे १ माशे-तक है ॥

भस्म मिलाकर अठगुन गोमूत्रमें पकाना चाहिये। इसकी एक एक तोलाकी गोली बनाकर प्रतिदिन खाना चाहिये। इससे कामलावान् तथा पाण्डुरोगी शीघ्र ही आरोग्यतारूपी सुख पाते हैं ॥ ३३-३४ ॥

मण्डूरवटकाः।

त्र्यूषणं त्रिफला मुस्तं विडंगं चव्यचित्रकौ।
दार्वी त्वङ्माक्षिको धातुर्ग्रन्थिकं देवदारु च ॥ ३५ ॥
एषां द्विपलिकान्भागाश्चूर्णं कृत्वा पृथक् पृथक्।
मण्डूरं द्विगुणं चूर्णाच्छुद्धमञ्जनसन्निभम् ॥ ३६ ॥
मूत्रे चाष्टगुणे पक्त्वा तस्मिंस्तु प्रक्षिपेत्ततः।
उदुम्बरसमान्कुर्याद्वटकास्तान्यथाग्नि ॥ ३७ ॥
उपयुञ्जीत तक्रेण सात्म्यं जीर्णे च भोजनम्।
मण्डूरवटका ह्येते प्राणदाः पाण्डुरोगिणाम् ॥ ३८ ॥
कुष्ठान्यजरकं शोथमूरुस्तम्भकफामयान्।
अर्शांसि कामलामेहान्प्लीहानं शमयन्ति च ॥ ३९ ॥
निर्वाप्य बहुशो मूत्रे मण्डूरं ग्राह्यमिष्यते।
ग्राहयन्त्यष्टगुणितं मूत्रं मण्डूरचूर्णतः ॥ ४० ॥

सोंठ, कालीमिर्च, छोटी पीपल, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, चव्य, चीतकी जड, दारुहल्दी, दालचीनी, सोनामक्खीकी भस्म, पिपरामूल, देवदारु प्रत्येक ८ तोले ले चूर्ण करना चाहिये। चूर्णसे द्विगुण मण्डूर मिलाकर अठगुने गोमूत्रमें पकाना चाहिये। गाढा हो जानेपर चूर्ण छोडकर एक तोलाकी गोली बना लेना चाहिये। ओषधि पच जानेपर मट्ठेके साथ हितकर अन्न भोजन करे। यह लड्डू पाण्डुरोगवालेको प्राणदायक होते हैं। यह कुष्ठ, अजीर्ण, सूजन, ऊरुस्तम्भ, कफके रोग, अर्श, कामला, प्रमेह, प्लीहाको शान्त करते हैं। मण्डूर गोमूत्रमें अनेक बार बुझाया हुआ लेना चाहिये तथा पकानेमें मण्डूरसे अष्टगुण गोमूत्र छोड़कर पकाना चाहिये और आसन्न पाक होनेपर चूर्ण मिलाना चाहिये ॥ ३५-४० ॥

पुनर्नवामण्डूरम्।

पुनर्नवात्रिवृच्छुण्ठीपिप्पलीमरिचानि च।
विडंगं देवकाष्ठं च चित्रकं पुष्कराह्वयम् ॥ ४१ ॥
त्रिफला द्वे हरिद्रे च दन्तीं च चविकं तथा।
कुटजस्य फलं तिक्ता पिप्पलीमूलमुस्तकम् ॥ ४२ ॥
एतानि समभागानि मण्डूरं द्विगुणं ततः।
गोमूत्रेऽष्टगुणे पक्त्वा स्थापयेत्स्निग्धभाजने ॥ ४३ ॥
पाण्डुशोथोदरानाहशूलार्शःक्रिमिगुल्मनुत्।

पुनर्नवा, निसोथ, सोंठ, छोटी पीपल, काली मिर्च, वायविडंग, देवदारु, चीतकी जड, पोहकरमूल, आमला, हर्र, बहेडा, हल्दी, दारुहल्दी, दन्तीकी जड, चव्य, इन्द्रयव, कुटकी, पिपरामूल, नागरमोथा प्रत्येक समान भाग और सबसे द्विगुण मण्डूर मिलाकर अठगुने गोमूत्रमें पकाकर चिकने बर्तनमें रखना चाहिये। यह पाण्डुरोग, शोथ, उदररोग, आनाह, शूल, अर्श, क्रिमि और गुल्मको नष्ट करता है ॥ ४१-४३ ॥-

मण्डूरवज्रवटकः।

पञ्चकोलं समरिचं देवदारु फलत्रिकम् ॥ ४४ ॥
विडङ्गमुस्तयुक्ताश्च भागास्त्रिपलसम्मिताः।
यावन्त्येतानि चूर्णानि मण्डूरं द्विगुणं ततः ॥ ४५ ॥
पक्त्वा चाष्टगुणे मूत्रे घनीभूते तदुद्धरेत्।
ततोऽक्षमात्रान् गुटकान्पिबेत्तक्रेण तक्रभुक् ॥ ४६ ॥
पाण्डुरोगं जयत्येष मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
अर्शांसि ग्रहणीदोषमूरुस्तम्भमथापि वा ॥ ४७ ॥
क्रिमिप्लीहानमुदरं गररोगं च नाशयेत्।
मण्डूरवज्रनामायं रोगानीकविनाशनः ॥ ४८ ॥

पञ्चकोल, काली मिर्च, देवदारु, आमला, हर्र, बहेडा, वायविडंग, नागरमोथा सब मिलाकर १२ तोला, इसमें २४ तोला शुद्ध मण्डूर मिलाकर अष्टगुण गोमूत्रमें पकाना चाहिये, गाढा हो जानेपर १ तोलाकी मात्रा मट्ठेके साथ सेवन करना चाहिये और मट्ठा पीना चाहिये यह मण्डूरवज्रवटक मन्दाग्नि पाडुरोग, अरुचि, अर्श, ग्रहणी, ऊरुस्तम्भ, कीडे, प्लीहा, उदररोग तथा गरदोषको नष्ट करता है ॥ ४४-४८ ॥

धात्र्यरिष्टः।

धात्रीफलसहस्रे द्वे पीडयित्वा रसं भिषक्।
क्षौद्राष्टभागं पिप्पल्याश्चूर्णार्धकुडवान्वितम् ॥ ४९ ॥
शर्करार्धतुलोन्मिश्रं पक्षं स्निग्धघटे स्थितम्।
प्रपिबेत्पाण्डुरोगार्तो जीर्णे हितमिताशनः ॥ ५० ॥
कामलापाण्डुहृद्रोगवातासृग्विषमज्वरान्।
कासहिक्कारुचिश्वासानेषोऽरिष्टः प्रणाशयेत् ॥ ५१ ॥

२००० दो हजार आमलोंका रस निकाल कर रससे अष्टमांश शहद और छोटी पीपलका चूर्ण ८ तोला, शक्कर२॥ सेर मिलाकर, चिकने बर्तनमें रख देना चाहिये। अरिष्ट सिद्ध होजानेपर पाण्डुरोगीको इसे पिलाना चाहिये, इसके हजम हो जानेपर हितकारक थोडा भोजन करना

चाहिये । यह अरिष्ट कामला, पाण्डु, हृद्रोग, वातरक्त, विषमज्वर, कास, हिक्का, अरुचि, श्वासको नष्ट करता है ॥ ४९–५१ ॥

द्राक्षाघृतम् ।

पुराणसर्पिषः प्रस्थो द्राक्षार्धप्रस्थसाधितः ।
कामलागुल्मपाण्डूर्तिज्वरमेहोदरापहः ॥ ५२ ॥

पुराना घी, प्रस्थ, मुनक्काका कल्क आधा प्रस्थ-चतुर्गुण जल डालकर पका लेना चाहिये । यह घृत कामला, गुल्म, पाण्डुरोग, ज्वर, प्रमेह तथा उदररोगको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

हरिद्रादिघृतम् ।

हरिद्रात्रिफलानिम्बबलामधुकसाधितम् ।
सक्षीरं माहिषं सर्पिः कामलाहरमुत्तमम् ॥ ५३ ॥

हल्दी, त्रिफला, नीमकी छाल, खरेटी और मौरेठीसे दूधके साथ सिद्ध किया भैंसका घी कामलाको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

मूर्वाद्यं घृतम् ।

मूर्वातिक्तानिशायासकृष्णाचन्दनपर्पटैः ।
त्रायन्तीवत्सभूनिम्बपटोलाम्बुददारुभिः ॥ ५४ ॥
अक्षमात्रैर्घृतप्रस्थं सिद्धं क्षीरे चतुर्गुणे ।
पाण्डुताज्वरविस्फोटशोथार्शोरक्तपित्तनुत् ॥ ५५ ॥

मूर्वा, कुटकी, हल्दी, जवासा, छोटी पीपल, लालचन्दन, पित्तपापड़ा, त्रायमाण, इन्द्रयवकी छाल, चिरायता, परवलकी पत्ती, नागरमोथा देवदारु प्रत्येक एक एक कर्ष ले कल्क बनाकर १ सेर ९ छ० ३ तोला घी दूध ६ सेर ३२ तोला और सम्यक् पाकार्थ इतना ही जल मिलाकर पकाना चाहिये । यह पाण्डुरोग, ज्वर, फफोले, शोथ, अर्श और रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

व्योषाद्यं घृतम् ।

व्योषं बिल्वं द्विरजनी त्रिफला द्विपुनर्नवा[1] ।
मुस्तान्ययोरजः पाठा विडङ्गं देवदारु च ॥ ५६ ॥
वृश्चिकाली च भार्ङ्गी च सक्षीरैस्तैर्घृतं शृतम् ।
सर्वान्प्रशमयत्येतद्विकारान्मृत्तिकाकृतान् ॥ ५७ ॥

त्रिकटु, बेलका गूदा, हल्दी, दारुहल्दी, त्रिफला, दोनों पुनर्नवा, नागरमोथा, लौहभस्म, पाढ, वायविडंग, देवदारु, बिछुआ, भारङ्गी इन सबका कल्क बना कल्कसे चतुर्गुण घृत और घृतसे चतुर्गुण दूध और इतना ही जल मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत मृत्तिकासे उत्पन्न समस्त विकारोंको नष्ट करता है ॥ ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

इति पाण्डुरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ रक्तपित्ताधिकारः ।

रक्तपित्तचिकित्साविचारः ।

नोद्रिक्तमादौ संग्राह्यं बलिनोऽप्यश्नतश्च यत् ।
हृत्पाण्डुग्रहणीदोषप्लीहगुल्मज्वरादिकृत् ॥ १ ॥
ऊर्ध्वं प्रवृत्तदोषस्य पूर्वं लोहितपित्तिनः ।
अक्षीणबलमांसाग्नेः कर्तव्यमपतर्पणम् ॥ २ ॥
ऊर्ध्वगे तर्पणं पूर्वं कर्तव्यं च विरेचनम् ।
प्रागधोगमने पेया वमनं च यथाबलम् ॥ ३ ॥
तर्पणं सघृतक्षौद्रलाजचूर्णैः प्रदापयेत् ।
ऊर्ध्वगं रक्तपित्तं तत्पीतं काले व्यपोहति ॥ ४ ॥
जलं खर्जूरमृद्वीकामधुकैः सपरूषकैः ।
शृतशीतं प्रयोक्तव्यं तर्पणार्थं सशर्करम् ॥ ५ ॥

बलवान् तथा पूर्ण भोजन करते हुए, रोगीके बढ़े हुए रक्तपित्तको रोकना नहीं चाहिये । अन्यथा हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणी, प्लीहा, गुल्म और ज्वरादि उत्पन्न कर देता है । जिसका बल, मांस तथा अग्नि क्षीण नहीं है और ऊर्ध्वगामिरक्तपित्त है ऐसे रोगीको पहिले लघन कराना चाहिये जो क्षीणबलादि हो उसे प्रथम तर्पण कराना चाहिये फिर विरेचन कराना चाहिये, और जिसे अधोगामिरक्तपित्त है उसे पहिले पेया पिलाकर वमन कराना चाहिये । तर्पणके लिये खीलके सत्तू बनाकर घी शहदके साथ चटानेसे तर्पण होता तथा ऊर्ध्वगामिरक्तपित्त नष्ट होता है । तथा खजूर (छुहारा), मुनक्का, मौरेठी और फाल्सासे सिद्ध जल शक्कर मिलाकर तर्पणके लिये पिलाना चाहिये ॥ १–५ ॥

त्रिवृतादिमोदकः ।

त्रिवृता त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु ।
मोदकः सन्निपातोर्ध्वरक्तपित्तज्वरापहः ॥ ६ ॥

निसोथ, त्रिफला, काला निसोथ, छोटी पीपल, शक्कर और शहद इनसे बनाये गये मोदक सन्निपात, ऊर्ध्वग रक्तपित्त तथा ज्वरको नष्ट करते हैं । इससे विरेचन होता है ॥ ६ ॥

---

[1] वासेति पाठान्तरम् ।

अधोगामि-रक्तपित्तचिकित्सा ।

शालपर्ण्यादिना सिद्धा पेया पूर्वमधोगते ।
वमनं मदनोन्मिश्रो मन्थः सक्षौद्रशर्करः ॥ ७ ॥

अधोगामि—रक्तपित्तमें पहिले शालपर्ण्यादि लघुपञ्चमूलके जलसे सिद्ध पेया देनी चाहिये । फिर मैनफल, शहद और शक्कर मिला पानीसे पतलाकर पिलाना चाहिये । इससे वमन होगा और अधोगामि—रक्तपित्त नष्ट होगा ॥ ७ ॥

पथ्यम् ।

शालिषष्टिकनीवारकोरदूषप्रशातिकाः ।
श्यामाकाश्च प्रियङ्गुश्च भोजनं रक्तपित्तिनाम् ॥ ८ ॥
मसूरमुद्गचणकाः मकुष्ठाश्चाढकीफलाः ।
प्रशस्ताः सूपयूपार्थं कल्पिता रक्तपित्तिनाम् ॥ ९ ॥
शाकं पटोलवेत्राग्रतण्डुलीयादिकं हितम् ।
मांसं लावकपोतादिशशैणहरिणादिजम् ॥ १० ॥
विना शुण्ठीं षडङ्गेन सिद्धं तोयं च दापयेत् ।

शालिके चावल, साठी, नीवार, कोदई, पसई, सावा, काकुनका पथ्य, मसूर, मूग, चना, मोथी अरहरकी दालके साथ देना चाहिये । तथा परवल, बेतकी कोपल, चौराई आदिका शाक और लवा, कबूतर, खरगोश तथा हरिणका मांस देना चाहिये तथा षडङ्गकी औषधियोंसे सोंठ कमकर पाच औषधियोंसे सिद्ध जल पीनेको देना चाहिये ॥ ८–१० ॥–

स्तम्भनावस्था ।

क्षीणमांसबलं बालं वृद्धं शोषानुबन्धिनम् ॥ ११ ॥
अवम्यमविरेच्यं च स्तम्भनैः समुपाचरेत् ।

जिसका बल, मांस क्षीण है, जो बालक वृद्ध अथवा राजयक्ष्मासे पीडित और वमन तथा विरेचनके अयोग्य है उसे स्तम्भनद्वारा रोकना चाहिये ॥ ११ ॥–

स्तम्भकयोगाः ।

वृषपत्राणि निष्पीड्य रसं समधुशर्करम् ॥ १२ ॥
पिबेत्तेन शमं याति रक्तपित्तं सुदारुणम् ।
आटरूषकनिर्यूहे प्रियङ्गुर्मृत्तिकाञ्जने ॥
विनीय लोध्रं सक्षौद्रं रक्तपित्तहरं पिबेत् ॥ १३ ॥
वासाकषायोत्पलमृत्प्रियङ्गु-
लोध्राञ्जनाम्भोरुहकेसराणि ।
पीतानि हन्युर्मधुशर्कराभ्यां
पित्तासृजो वेगमुदीर्णमाशु ॥ १४ ॥
तालीशचूर्णयुक्तः पेयः क्षौद्रेण वासकस्वरसः ।
कफवातपित्ततमकश्वासस्वरभेदरक्तपित्तहरः ॥ १५ ॥
आटरूषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः ।
क्षौद्राढ्यः कसनश्वासरक्तपित्तनिबर्हणः ॥ १६ ॥

अडूसेके पत्तोंका स्वरस निकालकर शहद और शक्करके साथ चाटना चाहिये । इससे कठिन रक्तपित्त शान्त हो जाता है । अथवा अडूसेके क्वाथमें प्रियंगु (अभावमे कमलगट्टा या मेंहदीके बीज) पिंडोरामिट्टी, सफेद सुरमा अथवा रसौत और पठानी लोधका चूर्ण छोडकर पिलाना चाहिये । तथा अडूसेका क्वाथ नीलोफर, मिट्टी प्रियंगु, पठानीलोध, सफेदसुरमा अथवा रसौत कमलका केशर इनका चूर्ण और शहद व शक्कर मिलाकर पीनेसे बढा हुआ रक्तपित्त शान्त होता है । तालीशपत्रके चूर्णसे युक्त अडूसेका स्वरस शहदके साथ पीनेसे कफ, वात, पित्त, तमक श्वास और रक्तपित्त नष्ट होता है । इसी प्रकार अडूसा, मुनक्का, और हर्रका क्वाथ शहद और शक्कर मिलाकर पीनेसे कास, श्वास और रक्तपित्त नष्ट होता है ॥ १२–१६ ॥

[1]वासाप्राधान्यम् ।

वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च ।
रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥ १७ ॥

वासाके रहते हुए और जीवनकी आशा रहते हुए रक्तपित्त, क्षय, तथा कासवालोंको दुःखी नहीं होना चाहिये ॥ १७ ॥

अन्ये योगाः ।

समाक्षिकः फल्गुफलोद्भवो वा
पीतो रसः शोणितमाशु हन्ति ।
मदयन्त्यङ्घ्रिजः क्वाथस्तद्वत्समधुशर्करः ॥ १८ ॥
अतसीकुसुमसमङ्गा वटावरोहत्वगम्भसा पीता ।
प्रशमयति रक्तपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूपेण ॥१९॥

---

१ वासाके पत्तोंको महीन पीसकर कपडेमें रखकर, निचोडनेसे रस निकलता है यह अनुभूत है । पर शिवदासजीने लिखा है कि वासेके पत्तोंका स्वेदन कर रस निकालना चाहिये अन्यथा रस निकलना कठिन है, यह बात कुछ अंशोंमें ठीक भी है रस कठिनतासे ही निकलता है पर असम्भव नहीं है परिश्रमसे निकलता है और वही विशेष लाभदायक होता है ।

शहदके साथ अडूसेका रस अथवा शहद और शक्कर के साथ नेवारीकी जडका क्वाथ रक्तको शीघ्र नष्ट करता है । इसी प्रकार अलसीके फूल, लज्जावन्तीके बीज, बरगदकी बों और छालका चूर्ण जलके साथ उतारनेसे और मूंगकी दालके यूषके साथ पथ्य लेनेसे रक्तपित्त शान्त होता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

क्षीरविधानम् ।

कषाययोगैर्विविधैर्दीप्तेऽग्नौ निर्जिते कफे ।
रक्तपित्तं न चेच्छाम्येत्तत्र वातोल्बणे पयः ॥ २० ॥
छागं पयोऽथवा गव्यं शृतं पञ्चगुणे जले ।
अभ्यसेत्ससिताक्षौद्रं पञ्चमूलीशृतं पयः ॥ २१ ॥
द्राक्षया पर्णिनीभिर्वा बलया मधुकेन वा ।
श्वदंष्ट्रया शतावर्या रक्तजित्साधितं पयः ॥ २२ ॥

अनेक काढे इत्यादि पिलाकर अग्निके दीप्त तथा कफके क्षीण हो जानेपर यदि रक्तपित्त शान्त न हुआ हो तो वाताधिक्यमें बकरी अथवा गायका दूध पञ्चगुण जलमें पकाकर देना चाहिये । अथवा पञ्चमूल (लघु) से सिद्ध दूध, मिश्री और शहद मिलाकर पीना चाहिये । अथवा मुनक्का, शालिपर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, अथवा खरेटी, मौरेठी, गोखुरू और शतावर इनमेंसे किसी एकसे सिद्ध दूध रक्तपित्तको शान्त करता है ॥ २०–२२ ॥

केचन लेहाः ।

पक्वोदुम्बरकाश्मर्यपथ्याखर्जूरगोस्तनाः ।
मधुना घ्नन्ति संलीढा रक्तपित्तं पृथक् पृथक् ॥ २३ ॥
मुस्ताशाखोटकत्वग्रसबिन्दुद्वितययुग्द्विगुणिताज्यः ।
भूनिम्बकल्कः ऊर्ध्वगपित्तास्रश्वासकासहानिकरः ॥२४॥
खदिरस्य प्रियङ्गूना कोविदारस्य शाल्मलेः ।
पुष्पचूर्णं तु मधुना लीढ्वा चारोग्यमश्नुते ॥ २५ ॥
अभया मधुसंयुक्ता पाचनी दीपनी मता ।
श्लेष्माणं रक्तपित्तं च हन्ति शूलातिसारकम् ॥ २६ ॥
वासकस्वरसे पथ्या सप्तधा परिभाविता ।
कृष्णा वा मधुना लीढा रक्तपित्तं द्रुतं जयेत् ॥ २७ ॥

इसी प्रकार पके गूलर, खम्भारके फल, हर्र, छुहारा, मुनक्का इनमेंसे किसी एकका कल्क शहदके साथ चाटनेसे रक्तपित्त नष्ट होता है । चिरायताका कल्क, नागरमोथा और सिहोरेका दो विन्दु रस और सबसे द्विगुना घृत मिलाकर चाटनेसे ऊर्ध्वग रक्तपित्त, श्वास, कास नष्ट होते हैं । कत्था प्रियङ्गु, कचनार, सेमर इनमेंसे किसी एकके फूलोंका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे आरोग्य प्राप्त होता है । इसी प्रकार बड़ी हर्रका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे पाचन तथा दीपन होता है और कफ, रक्तपित्त, शूल तथा अतिसार नष्ट होते हैं । इसी प्रकार अडूसेके स्वरसमें ७ बार भावित हर्र अथवा पिप्पली शहदके साथ चाटनेसे रक्तपित्तको शीघ्र ही नष्ट करती है ॥२३–२७॥

द्रवमानम् ।

भावनायां द्रवो देयः सम्यगार्द्रत्वकारकः ।

भावनामें इतना द्रव छोडना चाहिये जिससे चूर्ण अच्छी तरह तर हो जाय ।

एलादिगुटिका ।

एलापत्रत्वचोऽर्धाक्षाः पिप्पल्यर्धपलं तथा ॥ २८ ॥
सितामधुकखर्जूरमृद्वीकानां पलं पलम् ।
संचूर्ण्य मधुना युक्ता गुटिकाः कारयेद्भिषक् ॥ २९ ॥
अक्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेन्ना दिने दिने ।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां छर्दिं मूर्च्छां मदं भ्रमम् ॥ ३०॥
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णां पार्श्वशूलमरोचकम् ।
शोषप्लीहाढ्यवातांश्च स्वरभेदं क्षतक्षयम् ॥ ३१ ॥
गुटिका तर्पणी वृष्या रक्तपित्तं च नाशयेत् ।

छोटी इलायचीके दाने, तेजपात, दालचीनी प्रत्येक ६ माशे, छोटी पीपल २ तोला, मिश्री, मौरेठी, खजूर अथवा छुहारा, मुनक्का प्रत्येक ४ तोला सब चीजें महीन पीस शहदमें मिलाकर गोली बना लेनी चाहिये । इसकी १ तोलेकी मात्रा प्रतिदिन लेना चाहिये । यह कास, श्वास, ज्वर, हिक्का, वमन, मूर्छा, मद, भ्रम रक्तपित्त, प्यास, पसलियोंका दर्द, अरुचि, सूजन, प्लीहा, ऊरुस्तम्भ, स्वरभेद तथा क्षतक्षयको नष्ट करती है और तर्पण तथा वाजीकर है ॥ २८–३१ ॥–

---

१ भावनाविधिः-" दिवा दिवातपे शुष्कं रात्रौ रात्रौ च वासयेत् । शुष्कं चूर्णीकृतं द्रव्यं सप्ताहं भावनाविधिः ॥ द्रव्येण यावता द्रव्यमेकीभूयार्द्रतां व्रजेत् । तावत्प्रमाणं निर्दिष्टं भिषग्भिर्भावनाविधौ ॥ "

२ इसमें सूखी चीजें कूट कपडछानकर लेना चाहिये । गीली चीजें सिलपर महीन पीसकर मिलाना चाहिये ।

पृथ्वीकायोगः ।

लोहगन्धिनि निश्वासे उद्गारे रक्तगन्धिनि ॥ ३२ ॥
पृथ्वीका शाणमात्रां तु खादेद्द्विगुणशर्कराम् ।

श्वास तथा डकारमें लोहकी गन्ध आनेपर बड़ी इलायचीका चूर्ण ३ माशे द्विगुण शक्कर मिलाकर फाकना चाहिये ॥ ३२ ॥—

मूर्ध्नि लेपः ।

नासाप्रवृत्तरुधिरं घृतभ्रष्टं श्लक्ष्णपिष्टमामलकम् ।
सेतुरिव तोयवेगं रुणद्धि मूर्ध्नि प्रलेपेन ॥ ३३ ॥

आमला महीन पीस घीमें भूनकर शिरमें लेप करनेसे नासासे बहते हुए रक्तको जलवेगको बान्धके समान रोकता है ॥ ३३ ॥

नस्यम् ।

घ्राणप्रवृत्ते जलमेव देयं
सशर्करं नासिकया पयो वा ।
द्राक्षारसं क्षीरघृतं पिबेद्वा
सशर्करं चेक्षुरसं हितं वा ॥ ३४॥
नस्यं दाडिमपुष्पोत्थो रसो दूर्वाभवोऽथवा ।
आम्रास्थिजः पलाण्डोर्वा नासिकास्रुतरक्तजित् ॥ ३५ ॥

नाकसे बहते हुए रक्तको रोकनेके लिये नासिकासे शक्करके सहित जल अथवा दूध अथवा अगूरका रस अथवा शक्कर मिला दूध व घी अथवा ईखका रस अथवा अनारके फूलोंका रस अथवा दूर्वाका रस अथवा आमकी गुठलीका रस या प्याजका रस पीना चाहिये । अर्थात् नस्य लेना चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

उत्तरवस्तिः ।

मेढ्रेऽतिप्रवृत्ते तु वस्तिरुत्तरसंज्ञितः ।
शृतं क्षीरं पिबेद्वापि पञ्चमूल्या तृणाह्वया ॥ ३६ ॥

लिङ्गसे अधिक रक्त आनेपर उत्तरवस्ति देना चाहिये । अथवा तृणपञ्चमूल (कुश, काश, शरधानकी जड और ईखकी जड) से सिद्ध दूध पीना चाहिये ॥ ३६ ॥

---

१ यहांपर श्रीशिवदासजीने ' पृथ्वीका ' शब्दसे काला जीरा लिखा है वह भी इस लिये कि टीकाकारोंने नहीं व्याख्यान किया । आगे आप लिखते हैं कि यद्यपि काला जीरा उष्ण होता है पर द्विगुण शक्कर मिलनेके कारण अथवा प्रभावसे रोगनाशक होता है । पर इलायचीका प्रयोग क्यों न किया जाय ? इसका कुछ हेतु आपने नहीं लिखा अतः मैंने बडी इलायची ही लिखना उचित समझा ।

दूर्वाद्यं घृतम् ।

दूर्वा सोत्पलकिञ्जल्का मञ्जिष्ठा सैलवालुका ।
सिता शीतमुशीरं च मुस्तं चन्दनपद्मकौ ॥ ३७ ॥
विपचेत्कार्षिकैरेतैः सर्पिराजं सुखाग्निना ।
तण्डुलाम्बु त्वजाक्षीरं दत्त्वा चैव चतुर्गुणम् ॥ ३८ ॥
तत्पानं वमतो रक्तं नावनं नासिकागते ।
कर्णाभ्यां यस्य गच्छेत्तु तस्य कर्णौ प्रपूरयेत् ॥ ३९ ॥
चक्षुःस्राविणि रक्ते तु पूरयेत्तेन चक्षुषी ।
मेढ्रपायुप्रवृत्ते तु वस्तिकर्मसु योजयेत् ॥ ४० ॥
रोमकूपप्रवृत्ते तु तदभ्यंगं प्रयोजयेत् ॥ ४१ ॥

दूब, कमलकी केशर, मञ्जीठ, एलवालुक, सफेद दूब, कपूर, खश, नागरमोथा, सफेद चन्दन, पद्माख प्रत्येक एक एक तोला ले कल्क बना कल्कमें चतुर्गुण बकरीका घी और घीमें चतुर्गुण दूध व चतुर्गुण चावलका जल मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत जिसे रक्तका वमन होता हो उसे पिलाना चाहिये । जिसके नाकसे आता हो उसे नस्य देना चाहिये । जिसके कानोंसे आता हो उसके कानोंमें छोडना चाहिये । यदि नेत्रसे खून आता हो तो नेत्रोंमें भरना चाहिये । गुदा या लिङ्गसे यदि रक्त आता हो तो वस्ति देना चाहिये और रोमकूपोंसे आता हो तो इसकी मालिश करना चाहिये ॥ ३७–४१ ॥

शतावरीघृतम् ।

शतावरीदाडिमतिन्तिडीक
काकोलिमेदे मधुकं विदारीम् ।
पिष्ट्वा च मूलं फलपूरकस्य
घृतं पचेत्क्षीरचतुर्गुणं ज्ञः ॥ ४२ ॥
कासज्वरानाहविबन्धशूलं
तद्रक्तपित्तं च घृतं निहन्यात् ॥ ४३ ॥

शतावर, अनारदाना, अमली, काकोली, * मेदा, मौरेठी, विदारीकन्द तथा बिजौरे निम्बूकी जडका कल्क छोड चतुर्गुण दूध मिलाकर घृत पकाना चाहिये । यह घृत कास, ज्वर, पेटका दर्द, अफारा और रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

---

* इसमें काकोलीके अभावमें असगन्ध और मेदाके अभावमें शतावर छोडना चाहिये । तिन्तिडीकके बीज छोटे लाल चिरौंजीके समान होते हैं पसारी इन्हें त्रायमाणके नामसे देते हैं कोई कोई इमली ही छोडते हैं । तथा सम्यक् पाकार्थ चतुर्गुण जल भी छोडना चाहिये ।

महाशतावरीघृतम् ।

शतावर्यास्तु मूलाना रसप्रस्थद्वयं मतम् ।
तत्समं च भवेत्क्षीरं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४४ ॥
जीवकर्षभकौ मेदा महामेदा तथैव च ।
काकोली क्षीरकाकोली मृद्वीका मधुकं तथा ॥ ४५ ॥
मुद्गपर्णी माषपर्णी विदारी रक्तचन्दनम् ।
शर्करामधु संयुक्तं सिद्धं विस्रावयेद्भिषक् ॥ ४६ ॥
रक्तपित्तविकारेषु वातरक्तगदेषु च ।
क्षीणशुक्रेषु दातव्य वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ४७ ॥
असदाहं शिरोदाहं ज्वरं पित्तसमुद्भवम् ।
योनिशूलं च दाहं च मूत्रकृच्छ्रं च पैत्तिकम् ॥ ४८ ॥
एतान्रोगान्निहन्त्याशु छिन्नाभ्राणीव मारुतः ।
शतावरीसर्पिरिदं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ ४९ ॥

ताजी शतावरीकी जडका रस २ प्रस्थ और दूध दो प्रस्थ और घी १ प्रस्थ तथा जीवक, ऋषभक, तथा मेदा महामेदा, काकोली,क्षीरकाकोली, मुनक्का, मौरेठी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, विदारीकन्द लालचन्दनका कल्क घृतसे चतुर्थांश छोडकर घृत पकाना चाहिये । घृत सिद्ध हो जानेपर घृतसे चतुर्थांश शहद और मिश्री मिलाकर छान लेना चाहिये । पर मिश्रीका चूर्ण कुछ गरममें और शहद ठण्डा होनेपर छोडना चाहिये । यह घृत रक्तपित्त, वातरक्त तथा क्षीणशुक्रवालोंको लाभ करता है । कन्धों तथा शिरकी जलन, पित्तज्वर, योनि–शूल, दाह पैत्तिक–मूत्र कृच्छ्रको यह घृत जैसे छोटे छोटे मेघोंके टुकडोंको वायु वैसे ही नष्ट करता है । तथा बल, वर्ण और अग्निको उत्तम बनाता है ॥ ४४–४९ ॥

प्रक्षेपमानम् ।

स्नेहपादः स्मृतः कल्कः कल्कवन्मधुशर्करे ।
इति वाक्यबलात्स्नेहे प्रक्षेपः पादिको भवेत् ॥ ५० ॥

स्नेहसे चतुर्थांश कल्क और कल्कके समान ही शहद और शक्कर मिलित छोडना चाहिये । इस परिभाषासे प्रक्षेप स्नेहसे चतुर्थांश छोडना चाहिये ॥ ५० ॥

वासाघृतम् ।

वासां सशाखां सपलाशमूलां
कृत्वा कषायं कुसुमानि चास्याः ।
प्रदाय कल्कं विपचेद्घृतं त-
त्सक्षौद्रमाश्वेव निहन्ति रक्तम् ॥ ५१ ॥

अडूसेके पञ्चाङ्गका क्वाथ और अडूसेके फूलोंका कल्क छोडकर घृत पकाना चाहिये । यह घृत शीघ्र ही रक्तपित्तको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

पुष्पकल्कमानम् ।

शणस्य कोविदारस्य वृषस्य ककुभस्य च ।
कल्काढयत्वात्पुष्पकल्कः प्रस्थे पलचतुष्टयम् ॥ ५२ ॥

शण, कचनार, अडूसा तथा अर्जुनके फूलोंका कल्क अधिक होने के कारण १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यात्–१सेर ९ छ० ३ तो०) में इनका कल्क ४ पल अर्थात् १६ तो० ही छोडना चाहिये ॥ ५२ ॥

कामदेव घृतम् ।

अश्वगन्धापलशतं तदर्धं गोक्षुरस्य च ।
शतावरी विदारी च शालिपर्णी बला तथा ॥ ५३ ॥
अश्वत्थस्य च शुङ्गानि पद्मबीजं पुनर्नवा ।
काश्मरीफलमेवं तु माषबीजं तथैव च ॥ ५४ ॥
पृथग्दशपलान्भागांश्चतुर्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
चतुर्भागावशेषे तु कषायमवतारयेत् ॥ ५५ ॥
मृद्वीका पद्मकं कुष्टं पिप्पली रक्तचन्दनम् ।
बालकं नागपुष्पं च आत्मगुप्ताफलं तथा ॥ ५६ ॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे जीवनीयं विशेषतः ।
पृथक्कर्षसमं चैव शर्करायाः पलद्वयम् ॥ ५७ ॥
रसस्य पौण्ड्रकेक्षूणामाढकं तत्र दापयेत् ।
चतुर्गुणेन पयसा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ५८ ॥
रक्तपित्तं क्षतक्षीणं कामलां वातशोणितम् ।
हलीमकं तथा शोथं वर्णभेदं स्वरक्षयम् ॥ ५९ ॥
अरोचकं मूत्रकृच्छ्रं पार्श्वशूलं च नाशयेत् ।
एतद्राज्ञां प्रयोक्तव्यं बहून्तःपुरचारिणाम् ॥ ६० ॥
स्त्रीणां चैवानपत्यानां दुर्बलानां च देहिनाम् ।
क्लीवानामल्पशुक्राणां जीर्णानां यक्ष्मिणां तथा ॥ ६१ ॥
श्रेष्ठं बलकरं हृद्यं वृष्यं पेयं रसायनम् ।
ओजस्तेजस्करं चैव आयुःप्राणविवर्धनम् ॥ ६२ ॥
संवर्धयति शुक्रं च पुरुषं दुर्बलेन्द्रियम् ।
सर्वरोगविनिर्मुक्तं तोयसिक्तो यथा द्रुमः ॥ ६३ ॥
कामदेव इति ख्यातः सर्वरोगेषु शस्यते ।

असगन्ध ५ सेर, गोखरू २॥ सेर, शतावरी, विदारीकन्द, शालिपर्णी, खरेटी, पीपलकी कोंपल,कमलगट्टाकी मींगी, पुनर्नवा, खम्भारके फल तथा उड़द प्रत्येक ४० तोला सब दुरकुचाकर २ मन २२ सेर ३२ तोला जलमें पकाना चाहिये चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये । इस क्वाथमें १प्रस्थ(१सेर९छ०३तो०) घी तथा मुनक्का,पद्माख,कूठ,छोटी पीपल,लालचन्दन, सुगन्धवाला,नागकेशर, कौंचके बीज, नीलोफर, सफेद सारिवा

तथा मानी सारिवा और जीवनीय गणकी औषधियां प्रत्येक एक एक तोलेका कल्क, शक्कर ८ तोला, पौंडाका रस ६ सेर ३२ तोला तथा दूध ६ सेर ३२ तोला तथा इतना ही जल मिलाकर सिद्ध करना चाहिये। यह घृत रक्तपित्त, क्षतक्षीण, कामला, वातरक्त, हलीमक, शोष, स्वरभेद, वर्णभेद, अरोचक, मूत्रकृच्छ्र, तथा पसुलियोंके शूलको नष्ट करता है। यह जिनके बहुत स्त्रियां हैं ऐसे राजाओंके लिये तथा जिनके सन्तान नहीं होती ऐसी स्त्रियोंके लिये, दुर्बल मनुष्योंके लिये, नपुंसक तथा अल्पवीर्यवालोंके लिये, वृद्धोंके तथा यक्ष्मावालोंके लिये विशेष लाभदायक है। बलको बढाता, हृदयको बल देता है, वाजीकर है, ओज, तेज, आयु तथा वीर्यको बढाता है। दुर्बल पुरुषोंको इस प्रकार रोगरहित तथा बलवान बनाता है जैसे जलसे सींचा गया वृक्ष। यह कामदेव घृत सब रोगोंमें लाभ करता है ॥५३–६३॥–

सप्तप्रस्थं घृतम् ।

शतावरीपयोद्राक्षाविदारीक्ष्वामलै रसैः ॥ ६४ ॥
सर्पिषा सह संयुक्तं सप्तप्रस्थं पचेद्घृतम् ।
शर्करापादसंयुक्तं रक्तपित्तहरं पिबेत् ॥ ६५ ॥
उरःक्षते पित्तशूले योनिवातेऽप्यसृग्दरे ।
बल्यमूर्जस्करं वृष्यं क्षुधाहृद्रोगनाशनम् ॥ ६६ ॥

शतावरीका रस, दूध, अङ्गूरका रस, विदारीकन्दका रस, ईखका रस, आमलेका रस, प्रत्येक एक एक प्रस्थ, घी एक प्रस्थ, मिश्री १ कुडव मिलाकर पकाना चाहिये। यह रक्तपित्त, उरःक्षत, पित्तशूल, योनिरोग, रक्तप्रदरको नष्ट करता, बल, ओज, वीर्यको बढाता और क्षुधा तथा हृद्रोगको शान्त करता है ॥ ६४–६६ ॥

कूष्माण्डकरसायनम् ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
पचेत्तप्ते घृतप्रस्थे शनैस्ताम्रमये दृढे ॥ ६७ ॥
यदा मधुनिभः पाकस्तदा खण्डशतं न्यसेत् ।
त्वगेलापत्रमरिचधान्यकाना पलार्धकम् ।
न्यसेच्चूर्णीकृतं तत्र दर्व्या संघट्टयेन्मुहु ॥ ६९ ॥
तत्पक्वं स्थापयेद्भाण्डे दत्त्वा क्षौद्रं घृतार्धकम् ।
तद्यथाग्निबलं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी ॥ ७० ॥
कासश्वासतमश्छर्दितृष्णाज्वरनिपीडितः ।
वृष्यं पुनर्नवकरं बलवर्णप्रसाधनम् ॥ ७१ ॥
उरःसन्धानकरणं बृंहणं स्वरबोधनम् ।
अश्विभ्यां निर्मितं सिद्धं कूष्माण्डकरसायनम् ॥ ७२॥

पेठा (छिलका तथा बीज निकाला हुआ) मन्द आंचमें उबालकर रस निचोडकर अलग रखना चाहिये। फिर पेठाको महीन पीसकर ५ सेर में ६४ तोला घी डालकर मन्द आंचमें खूब सेकना चाहिये, जब पक जाय और सुगन्ध उठने लगे तब वही पेठेका जल और ५ सेर मिश्री मिलाकर पकाना चाहिये। जब सिद्ध होनेपर आ जाय तब छोटी पीपल ८ तोला, सोंठ ८ तोला, सफेद जीरा ८ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, काली मिर्च, धानिया प्रत्येक २ तोलाका महीन पिसा हुआ चूर्ण छोडना चाहिये और खूब करछीसे मिलाकर उतार लेना चाहिये, ठण्ढा हो जानेपर शहद ३२ तोला मिलाकर रख लेना चाहिये, इसे अग्नि और बलके अनुसार सेवन करना चाहिये, यह रक्तपित्त, क्षतक्षय, कास, श्वास, नेत्रोंके सामने अन्धकारका आजाना, वमन, प्यास, ज्वरको नष्ट करता है वाजीकरण, शरीरको नवीन बनाता, बल और वर्ण उत्तम करता, शरीरको बढाता स्वरको उत्तम बनाता तथा उरःक्षतको जोडता है यह कूष्माण्डकरसायन भगवान अश्विनीकुमारने निर्माण किया है ॥ ६७–७२ ॥

कूष्माण्डकरसायने द्रवमानम् ।

खण्डामलकमानेन रसं कूष्माण्डकद्रवात् ।
पात्रं पाकाय दातव्यं यावान्वा तद्रसो भवेत् ॥ ७३ ॥
अत्रापि मुद्रया पाको निस्त्वचं निष्कुलीकृतम् ।

खण्डामलकके अनुसार कूष्माण्डका रस एक आढक छोडना चाहिये अथवा रस जितना निकले उतना ही

---

१ योगरत्नाकरमें इसी प्रयोगको कुछ बढा दिया है अर्थात् इसमें "क्षौद्रघृतार्धकम्" से समाप्त हो जाता है पर उन्होंने आगे लिखा है "क्षौद्रार्धिका सिता केचित्केचिद्द्राक्षा सितार्धिकाम्। द्राक्षार्धानि लवङ्गानि केचित्कर्पूरकं क्षिपेत्। तथा कूष्माण्ड उबालकर निचोडकर जितना स्वरस निकलता है उसीसे पाक करनेका व्यवहार है।

छोडना चाहिये। निष्कुलीकृत माने छीले हुए और पाक जब मुद्रा बनने लग जाय तब समझना चाहिये ॥ ७३ ॥–

वासाकूष्माण्डखण्डः।

पञ्चाशच्च पलं स्विन्नं कूष्माण्डात्प्रस्थमाज्यत ॥७४॥
प्राद्यं पलशतं खण्ड वासाक्वाथाढके पचेत्।
मुस्ता धात्री शुभा भार्ङ्गी त्रिसुगन्धैश्च कार्षिकैः ॥७५॥
ऐलेयविश्वधन्याकमरिचैश्च पलांशिकैः।
पिप्पलीकुडवं चैव मधुमानीं प्रदापयेत् ॥ ७६ ॥
कासं श्वासं क्षयं हिक्कां रक्तपित्तं हलीमकम्।
हृद्रोगमम्लपित्तं च पीनसं च व्यपोहति ॥ ७७ ॥

पेठा (छिला हुआ तथा बीज निकाला हुआ) उबालना चाहिये, फिर इसको निचोडकर रस अलग रखना चाहिये, फिर पेठेको महीन पीसकर घीमें भूनना चाहिये, ५० पल (२॥ सेर) पेठेमें घी १ प्रस्थ छोडना चाहिये। भुन जानेपर मिश्री ५ सेर, पेठेका रस और वासा क्वाथ १ आढक मिलाकर पकाना चाहिये सिद्ध होनेपर नागरमोथा, आमला, वंशलोचन, भारङ्गी, दालचीनी, तेजपात, इलायची, प्रत्येक एक तोला एलुवालुक, सोंठ, धनिया, काली मिर्च प्रत्येक ४ तोला तथा पीपल १६ तो० का महीन चूर्ण छोड मिलाकर उतार लेना चाहिये, फिर ठण्ढा होनेपर शहद ३२ तोला छोडना चाहिये। यह अवलेह—कास, श्वास, क्षय, हिक्का, रक्तपित्त, हलीमक, हृद्रोग, अम्लपित्त, और पीनसको नष्ट करता है ॥ ७४–७७ ॥

वासाखण्डः।

तुलामादाय वासाया पचेदष्टगुणे जले।
तेन पादावशेषेण पाचयेदाढकं भिषक् ॥ ७८ ॥
चूर्णानामभयानां च खण्डाच्छुद्धात्तथा शतम्।
द्वे पले पिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात् ॥ ७९ ॥
कुडवं पलमात्रं तु चातुर्जातं सुचूर्णितम्।
क्षिप्त्वा विलोडितं खादेद्रक्तपित्ती क्षतक्षयी।
कासश्वासपरीतश्च यक्ष्मणा च प्रपीडितः ॥ ८० ॥

अडूसेका पञ्चांग ५ सेर ४० सेर जलमें पकाना चाहिये, १० सेर शेष रहनेपर उतार, छानकर बडी हर्रका चूर्ण ३ सेर १६ तोला, मिश्री ५ सेर, पीपलका चूर्ण ८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये। पाक हो जानेपर उतार ठण्ढाकर शहद ३२ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला छोड मिलाकर रक्तपित्त, क्षतक्षय, कास, श्वास तथा यक्ष्मासे पीडित रोगीको यह वासाखण्ड खाना चाहिये ॥७८-८०॥

खण्डकाद्यो लौहः।

शतावरीच्छिन्नरुहावृषमुण्डतिकाबला।
तालमूली च गायत्री त्रिफलायास्त्वचस्तथा ॥ ८१ ॥
भार्ङ्गी पुष्करमूलं च पृथक् पञ्च पलानि च।
जलद्रोणे विपक्तव्यमष्टमांशावशेषितम् ॥ ८२ ॥
दिव्यौषधहतस्यापि माक्षिकेण हतस्य वा।
पलद्वादशकं देयं रुक्मलौहं सुचूर्णितम् ॥ ८३ ॥
खण्डतुल्यं घृतं देयं पलषोडशिकं बुधैः।
पचेत्ताम्रमये पात्रे गुडपाको यथा मतः ॥ ८४ ॥
प्रस्थार्धं मधुनो देयं शुभाश्मजतुकं त्वचम्।
शृङ्गी विडङ्गं कृष्णा च शुण्ठ्यजाजीपलं पलम् ॥ ८५ ॥
त्रिफला धान्यकं पत्रं द्व्यक्षं मरिचकेशरम्।
चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ ८६ ॥
यथाकालं प्रयुञ्जीत विडालपदकं ततः।
गव्यक्षीरानुपानं च सेव्यं मांसरसः पयः ॥ ८७ ॥
गुरुवृष्यान्नपानानि स्निग्धं मांसादि बृंहणम्।
रक्तपित्तं क्षयं कासं पक्तिशूलं विशेषतः ॥ ८८ ॥
वातरक्तं प्रमेहं च शीतपित्तं वमिं क्लमम्।
श्वयथुं पाण्डुरोगं च कुष्ठं प्लीहोदरं तथा ॥ ८९ ॥
आनाहं रक्तसंस्रावं चाम्लपित्तं निहन्ति च।
चक्षुष्यं बृंहणं वृष्यं माङ्गल्यं प्रीतिवर्धनम् ॥ ९० ॥
आरोग्यपुत्रदं श्रेष्ठं कामाग्निबलवर्धनम्।
श्रीकरं लाघवकरं खण्डकाद्यं प्रकीर्तितम् ॥ ९१ ॥

शतावरी, गुर्च, अडूसा, मुण्डी, खरेटी, मुसली, कत्था, त्रिफला, भारंगी, पोहकरमूल प्रत्येक ५ पल (२० तोला) एक द्रोण जलमें पकाना चाहिये, अष्टमांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये, फिर

---

१ यहां वासा आर्द्र ही लेना चाहिये और "शुष्कद्रव्येष्विदं मानं द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः।" इस सिद्धान्तसे द्विगुण नहीं करना चाहिये क्योंकि "गुडूची कुटजो वासा कूष्माण्डश्च शतावरी। अश्वगन्धा सहचरः शतपुष्पा प्रसारणी॥ प्रयोक्तव्या सदैवार्द्रा द्विगुणा नैव कारयेत् ॥" इसी प्रकार अष्टगुण जलको भी द्विगुण नहीं करना चाहिये "मानं तथा तुलायास्तु द्विगुणं न क्वचित्स्मृतम्।" तथा मधु कुडव होनेपर भी द्विगुण लिया जाता है "सर्पिः खण्डजलक्षौद्रतैलक्षीरासवादिषु। अष्टौ पलानि कुडवो नारिकेले च शस्यते ॥"

इसमें मनःशिला अथवा स्वर्णःमाक्षिकके योगसे बनाया कान्तलौहभस्म ४८ तोला, घी ६४ तोला, मिश्री ६४ तोला छोड़कर पकाना चाहिये । अवलेह सिद्ध हो जानेपर वंशलोचन, शिलाजतु, दालचीनी, काकड़ासिंही, वायविडङ्ग, छोटी पीपल, सोंठ, जीरा, प्रत्येक ४ तोला, त्रिफला, धनिया, तेजपात, काली मिर्च, नागकेशर प्रत्येक २ तोला चूर्ण छोड़ ठंढा हो जानेपर शहद ३२ तोला छोड़ मिलाकर चिकने वर्तनमें रख लेना चाहिये । इसका १ तोला प्रतिदिन सेवन करना चाहिये । अनुपान—गायका दूध, फल-दूध, मांसरस, भारी तथा वाजीकर अन्नपान तथा बृंहणमांसादि सेवन करना चाहिये । यह रक्तपित्त, ज्वर, कास, परिणामशूल, वातरक्त, प्रमेह, शीतपित्त, वमन, ग्लानि, सूजन, पाण्डुरोग, कुष्ठ, प्लीहा, आनाह, रक्तस्राव तथा अम्लपित्तको नष्ट करता, नेत्रबल शरीरवृद्धि, वीर्य, मङ्गल तथा प्रसन्नता उत्पन्न करनेवाला, आरोग्य, पुत्र, काम, अग्नि तथा बलको बढ़ानेवाला शरीरकी शोभा तथा लावण्य करनेवाला खण्डकाद्यावलेह है ॥ ८१-९१ ॥

अत्र पथ्यापथ्यम् ।

शार्ङ्गं पारावतं मांसं तित्तिरि क्रकरा शशा ।
कुरङ्गा कृष्णसाराश्च तेषां मांसानि योजयेत् ॥ ९२ ॥
नारिकेलपयः पानं सुनिषण्णकवास्तुकम् ।
शुष्कमूलकजीराख्यं पटोलं बृहतीफलम् ॥ ९३ ॥
फलं वार्ताकुपक्वाम्रं खर्जूरं स्वादु दाडिमम् ।
ककारपूर्वकं यच्च मांसं चानूपसम्भवम् ॥ ९४ ॥
वर्जनीयं विशेषेण खण्डकाद्यं प्रकुर्वता ।
योगान्तरवदत्रापि प्रदद्यात्क्रियेष्यते ॥ ९५ ॥

ओंके नामके आदिमें ककार है ऐसी चीजें तथा अनूपमांस खण्डकाद्य सेवन करनेवालेको त्याग देना चाहिये । दूसरे प्रयोगोंके समान इसमें भी लौहभस्म ही छोड़ना चाहिये ॥ ९२-९५ ॥

परिशिष्टम् ।

यच्च पित्तज्वरे प्रोक्तं बहिरन्तश्च भेषजम् ।
रक्तपित्ते हितं तच्च क्षीणक्षतहितं च यत् ॥ ९६ ॥

जो पित्तज्वरके लिये बाहरी तथा भीतरी चिकित्सा कही गई है वह तथा क्षतक्षीणकी जो चिकित्सा है वह रक्तपित्तमें लाभदायक होती है ॥ ९६ ॥

इति रक्तपित्ताधिकारः समाप्तः ।

अथ राजयक्ष्माधिकारः ।

राजयक्ष्मणि पथ्यम् ।

शालिषष्टिकगोधूमयवमुद्गादयः शुभाः ।
मद्यानि जाङ्गला पक्षिमृगाः शस्ता विशुष्यताम् ॥ १ ॥
शुष्यतां क्षीणमांसानां कल्पितानि विधानवित् ।
दद्यात्क्रव्यादमांसानि बृंहणानि विशेषतः ॥ २ ॥

शालि तथा साठीके चावल, गेहूं, यव, मूंग, शराब, जांगल प्राणियोंका मांस हितकर है । जिनका मांस क्षीण हो गया है उन्हे मांस खानेवाले प्राणियोंका मांस खिलाना अधिक पौष्टिक होता है ॥ १ ॥ २ ॥

शोधनम् ।

दोषाधिकानां वमनं शस्यते सविरेचनम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नानां स्नेहनं यन्न कर्षणम् ॥ ३ ॥

जिनके दोष अधिक बढ़े हैं, उन्हें स्नेहन स्वेदन कराकर स्निग्ध पदार्थोंसे वमन अथवा विरेचन कराना चाहिये पर शोधन ऐसा हो । जिससे कृशता न बढ़े ॥ ३ ॥

शुद्धकोष्ठस्य युञ्जीत विधिं बृंहणदीपनम् ।

कोष्ठ शुद्ध हो जानेपर बृंहण तथा दीपन प्रयोग करना चाहिये ।

राजयक्ष्मणि मलरक्षणप्रयोजनम् ।

शुक्रायत्तं बलं पुंसां मलायत्तं हि जीवितम् ॥ ४ ॥
तस्माद्यत्नेन संरक्षेद्यक्ष्मिणो मलरेतसी ।

मनुष्योंका बल वीर्यके अधीन और जीवन मलके अधीन रहता है अतः मल और वीर्यकी यत्नसे रक्षा करनी चाहिये ॥ ४ ॥

षडंगयूषः ।

सपिप्पलीकं सयवं सकुलत्थं सनागरम् ॥ ५ ॥
दाडिमामलकोपेतं सिद्धमाजरसं पिबेत् ।
तेन षड्विनिवर्तन्ते विकाराः पीनसादयः ॥ ६ ॥
रसे द्रव्याम्बुपेयावत्सूपशास्त्रवशादिह ।
पलानि द्वादश प्रस्थे घनेऽथ तनुके तु षट् ॥ ७ ॥
मांसस्य वटकं कुर्यात्पलमच्छतरे रसे ।

छोटी पीपल, सोंठ, यव, कुलथी, अनारदाना, आमला इनका जल बना बकरीका मास छोड घीके साथ पकाकर यूष छानकर पिलाना चाहिये इससे पीनस, स्वरभेद आदि नष्ट होते हैं। रस बनानेके लिये जिस भांति पेया आदिमें जल और औषधियां (अर्थात् १ कर्ष औषधि १ प्रस्थ जल) छोडी जाती है उसी प्रकार छोडना चाहिये। यदि रस गाढा बनाना हो तो १ प्रस्थ जलमें १२ पल मास और पतलेमें ६ पल मास और बहुत पतला बनानेमें १ पल ही मांस छोडना चाहिये। (इसमें सोंठ व पीपल इतना छोडे जिससे कटुता आ जाय, आमला व अनारदाना इतना छोडे जिससे खट्टा हो जाय, यव और कुलथी यूषद्रव हैं अत इन्हे अधिक छोडे) ॥ ५–७ ॥–

धान्यकादिक्वाथः ।

धन्याकपिप्पलीविश्वैर्दशमूलीजलं पिबेत् ॥ ८ ॥
पार्श्वशूलज्वरश्वासपीनसादिनिवृत्तये ।

धानियां, छोटी पीपल, सोंठ, तथा दशमूलका क्काथ पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास तथा पीनसादिकी निवृत्तिके लिये पिलाना चाहिये ॥ ८ ॥–

अश्वगन्धादिक्काथः ।

अश्वगन्धामृताभीरुदशमूलीबलावृषाः ।
पुष्करातिविषा घ्नन्ति क्षयं क्षीररसाशिनः ॥ ९ ॥

असगन्ध, गुर्च, शतावरी, दशमूल, खरेटी, अडूसा, पोहकरमूल तथा अतीसका क्काथ पीने तथा दूध या मांसरस सेवन करनेसे क्षय नष्ट होता है ॥ ९ ॥

दशमूलादिक्काथ ।

दशमूलबलारास्नापुष्करसुरदारुनागरैः क्कथितम् ।
पेयं पार्श्वांसशिरोरुक् क्षयकासादिशान्तये सलिलम् ॥ १० ॥

दशमूल, खरेटी, रास्ना, पोहकरमूल, देवदारु, व सोंठका क्काथ पसली तथा कन्धों व शिरकी पीडा व क्षयज कासादिकी शान्तिके लिये पीना चाहिये ॥ १० ॥

ककुभत्वगाद्युत्कारिका ।

ककुभत्वङ्नागबलावानरिबीजानि चूर्णितं पयसि ।
पक्वं घृतमधुयुक्तं ससितं यक्ष्मादिकासहरम् ॥ ११ ॥

अर्जुनकी छाल, खरेटी तथा कौंचके बीजोंका चूर्ण दूधमें पकाकर घी शहद व मिश्री मिलाकर खानेसे यक्ष्मा और कासादि नष्ट होते है ॥ ११ ॥

मांसचूर्णम् ।

पारावतकपिच्छागकुरङ्गाणां पृथक् पृथक् ।
मांसचूर्णमजाक्षीरं पीतं यक्ष्महरं परम् ॥ १२ ॥

कबूतर, बन्दर, बकरा, मृग इनमेंसे किसी एकके मांसका चूर्ण खाकर बकरीका दूध पीनेसे यक्ष्मा नष्ट होता है ॥ १२ ॥

नागबलावलेहः ।

घृतकुसुमसारलीढं क्षयं क्षयं नयति गजबलामूलम् ।
दुग्धेन केवलेन तु वायसजङ्घा निपीतैव ॥ १३ ॥

नागबलाकी जडका चूर्ण घी और शहदके साथ चाटनेसे अथवा काकजघाका चूर्ण केवल दूधके साथ पीनेसे क्षय नष्ट होता है ॥ १३ ॥

लेहद्वयम् ।

कृष्णाद्राक्षासितालेहः क्षयहा क्षौद्रतैलवान् ।
मधुसर्पिर्युतो वाश्वगन्धाकृष्णासितोद्भवः ॥ १४ ॥

छोटी पीपल, मुनक्का व मिश्रीको तैल व शहदके साथ चाटनेसे तथा असगन्ध, छोटी पीपल, व मिश्रीका चूर्ण घी व शहदके साथ चाटनेसे क्षय नष्ट होता है १४॥

नवनीतप्रयोगः ।

शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं लिहन्क्षयी ।
क्षीराशी लभते पुष्टिमतुल्ये चाज्यमाक्षिके ॥ १५ ॥

मक्खनको शहद व शक्करके साथ चाटनेसे अथवा विषमभाग घी व शहद चाटनेसे क्षय नष्ट होता और पुष्टि होती है ॥ १५ ॥

सितोपलादिचूर्णम् ।

सितोपलातुगाक्षीरीपिप्पलीबहुलात्वचः ।
अन्त्यादूर्ध्वं द्विगुणितं लेहयेत्क्षौद्रसर्पिषा ॥ १६ ॥
चूर्णितं प्राशयेद्वेतच्छ्वासकासक्षयापहम् ।
सुप्तजिह्वारोचकिनमल्पाग्निं पार्श्वशूलिनम् ॥ १७ ॥
हस्तपादांसदाहेषु ज्वरे रक्ते तथोर्ध्वगे ॥ १८ ॥

दालचीनी, १ भाग, छोटी इलायचीके दाने २ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, वंशलोचन ८ भाग, मिश्री

१६ भाग सबका चूर्ण कपडछानकर घी व शहदके साथ चाटनेसे श्वास, कास, क्षय, जिह्वाकी सुप्तता, अरोचक, मन्दाग्नि, पसलियोंका दर्द हाथ पैर और कन्धोंकी जलन तथा ऊर्ध्वग रक्तपित्त नष्ट होते हैं ॥ १६-१८ ॥

लवङ्गाद्यं चूर्णम् ।

लवङ्गकक्कोलमुशीरचन्दन
नतं सनीलोत्पलजीरकं समम् ।
त्रुटि सकृष्णागुरुभृङ्गकेशर
कणा सविश्वा नलदं सहाम्बुदम् ॥ १९ ॥
अहिंस्रजातीफलवंशलोचना-
सिताष्टभागं समसूक्ष्मचूर्णितम् ।
सुरोचनं तर्पणमग्निदीपनं
बलप्रदं वृष्यतमं त्रिदोषनुत् ॥ २० ॥
उरोविबन्धं तमकं गलग्रहं
सकासहिक्कारुचियक्ष्मपीनसम् ।
ग्रहण्यतीसारभगन्दरार्बुदं
प्रमेहगुल्मांश्च निहन्ति सज्वरान् ॥ २१ ॥

लवङ्ग, कंकोल, खश, सफेदचन्दन, तगर, नीलोफर, सफेद जीरा, छोटी इलायची, छोटी पीपल, अगर भांगरा, नागकेशर, छोटी पीपल, सोंठ, जटामासी, नागरमोथा, सारिवा, जायफल, वंशलोचन प्रत्येक समान भाग, मिश्री ८ भाग मिलाकर चूर्ण बना लेना चाहिये । यह चूर्ण रोचक, तर्पक, अग्निदीपक, बलकारक, वाजीकर और त्रिदोषनाशक है छातीकी जकड़ाहट, नेत्रोंके सामने अन्धेरा छा जाना, गलेकी जकड़ाहट, खांसी, हिक्का, अरुचि, राजयक्ष्मा, पीनस, ग्रहणीरोग, अतीसार, भगन्दर, प्रमेह, गुल्म और ज्वर इसमे नष्ट होते हैं ॥ १९--२१ ॥

तालीशाद्यं चूर्णं मोदकश्च ।

तालीसपत्रं मरिचं नागरं पिप्पली शुभा ।
यथोत्तरं भागवृद्ध्या त्वगेले चार्धभागिके ॥ २२ ॥
पिप्पल्यष्टगुणा चात्र प्रदेया सितशर्करा ।
श्वासकासारुचिहरं तच्चूर्णं दीपनं परम् ॥ २३ ॥
हृत्पाण्डुग्रहणीरोगप्लीहशोषज्वरापहम् ।
छर्द्यतीसारशूलघ्नं मूढवातानुलोमनम् ॥ २४ ॥
कल्पयेद्गुटिकां चैतच्चूर्णं पक्त्वा सितोपलाम् ।
गुटिका ह्यग्निसंयोगाच्चूर्णाल्लघुतरा स्मृता. ।
पैत्तिके ग्राहयन्त्येके शुभया वंशलोचनम् ॥ २५ ॥

तालीसपत्र १ भाग, काली मिर्च २ भाग, सोंठ ३ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, वंशलोचन ५ भाग, दालचीनी तथा छोटी इलायचीके दाने प्रत्येक आधा आधा भाग, मिश्री ३२ भाग मिलाकर चूर्ण बना लेना चाहिये । यह चूर्ण-श्वास, कास, अरुचिको नष्टकर अग्निको दीप्त करता तथा हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, प्लीहा, राजयक्ष्मा, ज्वर, वमन, अतीसार और शूलको नष्ट करता तथा मूढवायुका अनुलोमन करता है । इसी चूर्णको पकाकर गोली बना लेनेसे गोलियां हलकी होती हैं क्योंकि इनमे अग्निका संयोग होता है । कुछ लोगोंका मत है कि शुभासे वंशलोचन पैत्तिक रोगोंके लिये लेना चाहिये ॥ २२-२५ ॥

शृङ्ग्यादिचूर्णम् ।

शृङ्ग्यर्जुनाश्वगन्धानागबलापुष्करामयच्छिन्नरुहा ।
तालीशादिसमेता लेह्या मधुसर्पिष्या यक्ष्महरा ॥ २६ ॥

काकड़ासिंही, अर्जुनकी छाल, असगन्ध, नागबला-पोहकरमूल, कूठ, गुर्च सब समान भाग, सबके समान तालीशादिचूर्ण मिलाकर घी, शहदके साथ चाटनेसे राजयक्ष्मा नष्ट होता है ॥ २६ ॥

मधुताप्यादिलौहम् ।

मधुताप्यविडङ्गाश्मजतुलोहघृताभया ।
घ्नन्ति यक्ष्माणमत्युग्रं सेव्यमाना हिताशिना ॥ २७ ॥

शहद, स्वर्णमाक्षिक भस्म, वायविडङ्ग, शिलाजतु, लोहभस्म, घृत, बड़ी हर्रका छिल्का सब साथ मिलाकर चाटनेसे तथा भोजन पथ्यकारक करनेसे राजयक्ष्मा नष्ट होता है ॥ २७ ॥

---

१ यह मिश्री [illegible] सब भागोंकी अपेक्षा ही अष्टगुण समझना चाहिये । समस्त चूर्णसे अष्टगुण नहीं । [illegible] शार्ङ्गधरादिमे समस्त चूर्णसे [illegible] भाग [illegible] है और [illegible] समान ही है । [illegible] भी [illegible] है ।

१ पर वास्तवमे वंशलोचन ही लिया जाता है दूसरे भी "तालीशं मरिचं शुण्ठी पिप्पली वंशलोचना इत्यादि" ऐसे ही पाठान्तर हैं ॥ २ यहां "तालीशादिसमेताः" शब्दसे तालीशादि चूर्णोक्त द्रव्यमात्र लिये जाते हैं, उनका भागक्रम आवश्यक नहीं है जैसा कि चैतसघृतमे 'कल्याणस्य चाङ्गेन' यह लिखनेपर भी कल्याणघृतोक्त द्रव्य मात्र लिया जाता है अतः यहां शृङ्ग्यादिके समान ही तालीशादि प्रत्येक द्रव्य छोड़ना चाहिये ।

विन्ध्यवासियोगः ।

व्योष शतावरी त्रीणि फलानि द्वे बले तथा ।
सर्वामयहरा योग सोऽय लोहरजोऽन्वित. ॥ २८ ॥
एष वक्षःक्षत हन्ति कण्ठजाश्च गदांस्तथा ।
राजयक्ष्माणमत्युग्रं बाहुस्तम्भमथार्दितम् ॥ २९ ॥

सोंठ, काली मिर्च, छोटी पीपल, शतावरी, त्रिफला, खरेटी, कंघी प्रत्येक एक भाग, तथा लोहे भस्म सबके समान मिला सेवन करनेसे समस्त रोग नष्ट होते हैं । यह उरःक्षत, कण्ठजरोग, कासादि, बाहुस्तम्भ अर्दित तथा राजयक्ष्माको नष्ट करता है ॥ २८ ॥ २९ ॥

रसेन्द्रगुटिका ।

कर्ष. शुद्धरसेन्द्रस्य स्वरसेन जयार्द्रयो. ।
शिलाया खल्वयेत्तावद्यावत्पिण्ड घनं तत ॥ ३० ॥
जलकणाकाकमाचीरसाभ्या भावयेत्पुन ।
सौगन्धिकपलं भृङ्गस्वरसेन विभावितम् ॥ ३१ ॥
चूर्णितं रसयुक्तमजाक्षीरपलद्वये ।
खल्वितं घनपिण्डं तु गुटीं स्विन्नकलायवत् ॥ ३२ ॥
कृत्वादौ शिवमभ्यर्च्य द्विजातीन्परितोष्य च ।
जीर्णान्नो भक्षयेदेकां क्षीरमासरसाशन. ॥ ३३ ॥
सर्वरूप क्षय कासं रक्तपित्तमरोचकम् ।
अपि वैद्यशतैस्त्यक्तमम्लपित्तं नियच्छति ॥ ३४ ॥

१ तोला शुद्ध पारद खरलमें अरणी व अदरखके स्वरससे उस समय तक घोटना कि घनता आजाय अर्थात् गोला बन जाय । फिर जलपिप्पली, मकोयके रससे भावना देनी चाहिये । फिर इसीमें भागरेके रससे भावित गन्धक ४ तोला छोडना चाहिये और बकरीका दूध ८ तोला मिला घोटकर गाढा हो जाने पर मटरके बराबर गोली बना लेनी चाहिये । फिर शंकरजीका पूजन तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट कर अन्न पाक हो जाने पर १ गोली खानी चाहिये । दूध या मास रसका पथ्य लेना चाहिये । यह समस्त प्रकारके क्षय, कास, रक्तपित्त, अरोचक इनको तथा सैकडों वैद्योंसे त्यक्त अम्लपित्तको नष्ट करता है ॥ ३०–३४ ॥

१--यहा लोह अधिक गुणकारक होनेसे सबके समान ही छोडना चाहिये । तथा यहां घृत मधु नहीं लिखा है पर लेहप्रकरणमें कहा है । अतः लेह ही बनाकर प्रयोग करना चाहिये । ऐसा ही शिवदासजीका भी मत है ।

एलादिमन्थः ।

एलाजमोदामलकाभयाक्ष-
गायत्रिनिम्बाशनशालसारान् ।
विडंगभल्लातकचित्रकांश्च
कटुत्रिकाम्भोदसुराष्ट्रिकाश्च ॥ ३५ ॥
पक्त्वा जले तेन पचेत्तु सर्पि-
स्तस्मिन्सुसिद्धे त्ववतारिते च ।
त्रिंशत्पलान्यत्र सितोपलाया
दद्यात्तुगाक्षीरिपलानि षट् च ॥ ३६ ॥
प्रस्थे घृतस्य द्विगुणं च दद्यात्
क्षौद्रं ततो मन्थहत निदध्यात् ।
पल पलं प्रातरतो लिहेच्च
पश्चात्पिबेत्क्षीरमतन्द्रितश्च ॥ ३७ ॥
एतद्धि मेध्य परमं पवित्रं
चक्षुष्यमायुष्यतम तथैव ।
यक्ष्माणमाशु व्यपहन्ति शूल
पाण्ड्वामय चापि भगन्दर च ।
न चात्र किंचित्परिवर्जनीय
रसायनं चैतदुपास्यमाहु ॥ ३८ ॥

इलायची, अजवाइन, आमला, बडी हर्र, बहेडा, कत्था, नीमकी छाल, विजैसार, शाल, वायविडंग, भिलावा, चीतकी जड, त्रिकटु, नागरमोथा, सुराष्ट्रिका (सोरठी मिट्टी इसके अभावमें भुनी फिटकरी) जलमें पका क्वाथ बनाकर इसी क्वाथसे घृत पाक करे । इस १ प्रस्थ घृतमें ३० पल मिश्री, ६ पल वंशलोचन और घृतसे द्विगुण शहद मिला मथकर रखना चाहिये । इससे १ पलकी मात्रा प्रातःकाल चाटना चाहिये । ऊपरसे दूध पीना चाहिये यह मेधाको बढानेवाला, पवित्र, नेत्रोंके लिये हितकर, आयु बढानेवाला, यक्ष्मा शूल, पाण्डुरोग तथा भगन्दरको नष्ट करता है । इसमें कुछ परहेज भी करनेकी आवश्यकता नहीं । यह रसायन है ॥ ३५–३८ ॥

सर्पिर्गुडः ।

बला विदारी ह्रस्वा च पञ्चमूली पुनर्नवा ।
पञ्चाना क्षीरिवृक्षाणां शुगा मुष्टयंशिका पृथक् ॥३९॥
एषा कषाये द्विक्षीरे विदार्याजरसांशिके ।

१ यहा पर ' द्विक्षीरे ' का अर्थ " द्विप्रकारकं क्षीर यत्रेति तथा क्षीरद्वयं चात्र प्राधान्यादाज गव्यं च ग्राह्यम्" ऐसा किया है । अर्थात् १ भाग गायका दूध तथा १ भाग बकरीका दूध छोडना चाहिये ।

जीवनीयैः पचेत्कल्कैरक्षमात्रैर्घृताढकम् ॥ ४० ॥
सितापलानि पूते च शीते द्वात्रिंशदावपेत् ।
गोधूमपिप्पलीवांशीचूर्णं शृङ्गाटकस्य च ॥ ४१ ॥
समाक्षिकं कौडविकं तत्सर्वं खजमूर्च्छितम् ।
स्त्यानं सर्पिर्गुडान्कृत्वा भूर्जपत्रेण वेष्टयेत् ॥ ४२ ॥
ताञ्जग्ध्वा पलिकान्क्षीरे मद्यं चानुपिबेत्तथा ।
शोषे कासे क्षतक्षीणे श्रमस्त्रीभारकर्षिते ॥ ४३ ॥
रक्तनिष्ठीवने तापे पीनसे चोरसि क्षते ।
शस्ताः पार्श्वशिरःशूले भेदे च स्वरवर्णयोः ॥ ४४ ॥
क्वाथ्ये त्रयोदशपले द्व्याद्पत्वभयाजलम् ।
अष्टगुणं क्वाथसमौ विदार्याजरसौ पृथक् ॥ ४५ ॥
केचिद्यथोक्तक्वाथ्ये तु क्वाथं घृतसमं जगुः ।

खरेटी, विदारीकन्द, लघुपञ्चमूल, पुनर्नवा, पाचों क्षीरिवृक्षों (कपीतन, वट, गूलर, पीपल, प्लक्ष) के कोमल पत्ते प्रत्येक ४ चार तोला इनका क्वाथ तथा घीसे द्विगुण दूध और विदारीकन्दका रस तथा बकरेके मासका रस घीके समान मिलाकर तथा जीवनीयगणकी ओषधियोंका कल्क प्रत्येकका १ तोला मिलाकर एक आढक घृत पकाना चाहिये । घृत सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर मिश्री ३२ पल तथा गेहूँका आटा, छोटी पीपल, वंशलोचन, सिंघाडेका चूर्ण तथा शहद प्रत्येक एक कुडव अर्थात् १६ तोला छोडकर मिलाना चाहिये । लड्डू बनानेके योग्य हो जानेपर एक एक पलके लड्डू बनाकर ऊपरसे भोजपत्र लपेट देना चाहिये । इनको खाकर दूध या मद्य पीना चाहिये । यह राजयक्ष्मा, कास, क्षतक्षीण, थके तथा स्त्रीगमन व बोझा ढोनेसे कृश, खून थूकनेवालों तथा दाह व पीनससे पीडित व उरःक्षतसे युक्त पुरुषोंके लिये विशेष हितकर है।पसलियों तथा शिरका दर्द, स्वरभेद, वर्णविकृति भी इससे नष्ट होती है । क्वाथ्य द्रव्य घृतसे कम है अतः अष्टगुण जल छोडना और चतुर्थांश शेष रखना तथा क्वाथके समान विदारीकन्दका रस और बकरेके मासका रस छोडना चाहिये । कुछका मत है कि क्वाथ्यद्रव्य कम होनेपर भी क्वाथ घीके समान ही बनाना चाहिये ॥३९–४५॥—

च्यवनप्राशः ।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाककाश्मर्यः पाटली बला ।
पर्ण्यश्चतस्रः पिप्पल्यः श्वदंष्ट्रा बृहतीद्वयम् ॥ ४६ ॥
शृङ्गीतामलकीद्राक्षाजीवन्तीपुष्करागुरु ।
अभया सामृता ऋद्धिर्जीवकर्षभकौ शठी ॥ ४७ ॥
मुस्तं पुनर्नवा मेदा सूक्ष्मैलोत्पलचन्दने ।
विदारी वृषमूलानि काकोली काकनासिका ॥ ४८ ॥
एषां पलोन्मितान्भागाञ्छतान्यामलकस्य च ।
पञ्च दद्यात्तदैकध्यं जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ४९ ॥
ज्ञात्वा गतरसान्येतान्यौषधान्यथ तं रसम् ।
तच्चामलकमुद्धृत्य निष्कुलं तैलसर्पिषोः ॥ ५० ॥
पलद्वादशके भृष्ट्वा दत्त्वा चार्धतुलां भिषक् ।
मत्स्यण्डिकायाः पूताया लेहवत्साधु साधयेत् ॥ ५१ ॥
षट्पलं मधुनश्चात्र सिद्धशीते प्रदापयेत् ।
चतुष्पलं तुगाक्षीर्याः पिप्पल्या द्विपलं तथा ॥ ५२ ॥
पलमेकं निदध्याच्च त्वगेलापत्रकेशरात् ।
इत्ययं च्यवनप्राशः परमुक्तो रसायनः ॥ ५३ ॥

बेलका गूदा, अरणी, सोनापाठा, खम्भार, पाढल, खरेटी, मूगवन, मषवन, छोटी पीपल, सरिवन, पिठिवन, गोखुरू, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, काकडाशिंगी, भूई आवला, मुनक्का, जीवन्ती, पोहकरमूल, अगर, बडी हरका छिल्का, गुर्च, ऋद्धि, जीवक, ऋषभक, कपूरकचरी या कपूर नागरमोथा, पुनर्नवा, मेदा, छोटी इलायची, नीलोफर, लाल चन्दन, विदारीकन्द, अडूसेकी छाल, काकोली, काकनासा प्रत्येक द्रव्य आठ आठ तो० और ५०० ताजे पके हुए आवलोंको छोडकर एक द्रोण जल अर्थात् (५१ सेर १६ तो० जल) में पकाना चाहिये आमला पक जानेपर उतार ठण्डाकर क्वाथ छानकर अलग रस लेना चाहिये । आवले निकालकर उनकी गुठली निकाल कपडेसे रगडकर छना हुआ गूदा लेना चाहिये । और जो नसें निकलती हैं उन्हें अलग कर देना चाहिये । फिर इस गूदेको काले तिलका तैल ४८ तोला और घी ४८ तोला छोडकर सेकना चाहिये । जब कुछ सुर्खी आ जावे और सुगन्ध उठने लगे तब मिश्री ५ सेर और काढा छोडकर पकाना चाहिये । अवलेह सिद्ध हो जानेपर उतार ठण्ढा कर शहद ४८ तोला, वंशलोचन ३२ तोला, छोटी पीपल १६ तोला, दालचीनी, छोटी इलायची, तेजपात, नागकेशर प्रत्येक ८ तोला चूर्ण किया हुआ मिलाना चाहिये यह च्यवनप्राश तैयार हुआ । यह परम रसायन है ॥ ४६–५३ ॥

च्यवनप्राशस्य गुणाः ।

कासश्वासहरश्चैष विशेषेणोपदिश्यते ।
क्षीणक्षतानां वृद्धानां बालानां चाङ्गवर्धनः ॥ ५४ ॥

---

(१) ऋद्धि जीवक, ऋषभक, मेदा तथा काकोलीके अभावमें क्रमशः प्रतिनिधि द्रव्य (वाराहीकन्द, विदारीकन्द, विदारीकन्द, शतावर असगन्ध) छोडना चाहिये ।

स्वरक्षयमुरोरोगं हृद्रोगं वातशोणितम्।
पिपासां मूत्रशुक्रस्थान्दोषांश्चैवापकर्षति ॥ ५५ ॥
अस्य मात्रा प्रयुञ्जीत योपरुन्ध्यान्न भोजनम्।
अस्य प्रयोगाच्च्यवन सुवृद्धोऽभूत्पुनर्युवा ॥ ५६ ॥
मेधां स्मृतिं कान्तिमनामयत्वं
वपुः प्रकर्षं बलमिन्द्रियाणाम्।
स्त्रीषु प्रहर्षं परमग्निवृद्धिं
वर्णप्रसादं पवनानुलोम्यम् ॥ ५७ ॥
रसायनस्यास्य नरः प्रयोगा-
ल्लभेत जीर्णोऽपि कुटीप्रवेशात्।
जराकृतं रूपमपास्य सर्वं
बिभर्ति रूपं नवयौवनस्य ॥ ५८ ॥
सितामत्स्यण्डिकालाभे धात्र्याश्च मृदुभर्जनम्।
चतुर्भागजले प्रायो द्रव्यं गतरसं भवेत् ॥ ५९ ॥

उपर्युक्त मात्रासे सेवित हुआ यह कास तथा श्वासको नष्ट करनेवाला, क्षीणक्षत, वृद्ध तथा बालकोंके शरीरको पुष्ट करनेवाला, स्वरभेद, उरःक्षत, हृद्रोग, वातरक्त, पिपासा तथा मूत्र और वीर्यके दोषोंको नष्ट करता है। इसकी मात्रा उतनी ही सेवन करनी चाहिये। जो भोजनको कम न करे। इसके प्रयोगसे वृद्ध च्यवन फिर जवान हुए थे। इस रसायन सेवनसे मेधा, स्मृति, कान्ति, नीरोगता, शरीरवृद्धि, इन्द्रियशक्ति, स्त्रीगमनशक्ति, अग्निवृद्धि, वर्णकी उत्तमता तथा वायुकी अनुलोमता होती है। इसको कुटी प्रावेशिक विधिसे सेवन करनेसे वृद्ध पुरुष भी वृद्धताके लक्षणोंको छोडकर नवयौवनके रूपको धारण करता है। मत्स्यण्डिकाके अभावमें मिश्री छोडना तथा आवलोंको मन्द आंचसे मृदु भर्जन करना चाहिये। चतुर्थांश क्वाथ रहनेपर प्रायः द्रव्य गतरस हो जाता है। (यह प्रयोग चरकसंहिताका है अतः उन्हींके मानके अनुसार सब चीजोंका मान लिखा है) ॥५४–५९ ॥

जीवन्त्याद्यं घृतम्।

जीवन्तीं मधुकं द्राक्षां फलानि कुटजस्य च।
शटीं पुष्करमूलं च व्याघ्रीं गोक्षुरकं बलाम् ॥ ६० ॥
नीलोत्पलं तामलकीं त्रायमाणां दुरालभाम्।
पिप्पलीं च समं पिष्ट्वा घृतं वैद्यो विपाचयेत् ॥ ६१ ॥
एतद्व्याधिसमूहस्य रोगेशस्य समुत्थितम्।
रूपमेकादशविधं सर्पिरग्र्यं व्यपोहति ॥ ६२ ॥

जीवन्ती, मौरेठी, मुनक्का, इन्द्रयव, कचूर, पोहकरमूल, छोटी कटेरी, गोखरू, खरेटी, नीलोफर, भूमिआवला, त्रायमाण, यवासा, छोटी पीपल सब सामान्य भाग ले पीस जल मिलाकर कल्क बनाना चाहिये। कल्क द्रव्यसे चतुर्गुण घी और घीसे चतुर्गुण जल मिलाकर घी पकाना चाहिये। यह घी राजयक्ष्माके समग्र लक्षणोंको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ६०–६२ ॥

पिप्पलीघृतम्।

पिप्पलीगुडसंसिद्धं छागक्षीरयुतं घृतम्।
एतदग्निविवृद्ध्यर्थं सेव्यञ्च क्षयकासिभिः ॥ ६३ ॥

छोटी पीपल व गुडका कल्क दोनोंसे चतुर्गुण घी और घीसे चतुर्गुण बकरीका दूध तथा दूधके समान जल मिलाकर पकाना चाहिये। यह क्षय तथा कासवालोंको अग्निवृद्धिके लिये सेवन करना चाहिये ॥ ६३ ॥

पाराशरं घृतम्।

यष्टीबलागुडूच्यल्पपञ्चमूलीतुलां पचेत्।
शूर्पेऽपामष्टभागस्थे तत्र पात्रं पचेद्घृतम् ॥ ६४ ॥
धात्रीविदारीक्षुरसे त्रिपात्रे पयसोऽर्मणे।
सुपिष्टैर्जीवनीयैश्च पाराशरमिदं घृतम् ॥ ६५ ॥
ससैन्यं राजयक्ष्माणमुन्मूलयति शीलितम्।

मौरेठी, खरेटी, गुर्च, लघु पञ्चमूल सब मिलाकर ५ सेर (अर्थात् प्रत्येक १० छ०) जल २ द्रोण (५१ सेर १८ तो०) जल छोडकर पकाना चाहिये। अष्टमांश शेष रहनेपर उतार छानकर १ आढक घी, १ आढक आवलोंका रस, १ आढक विदारीकन्द रस, १ आढक ईखका रस, दूध १ द्रोण और घृतसे चतुर्थांश जीवनीय गणकी औषधियोंका कल्क मिलाकर पकाना चाहिये। यह पराशर महर्षिका बनाया घृत सेवन करनेसे ससैन्य राजयक्ष्माको नष्ट करता है ॥ ६४ ॥ ६५ ॥–

छागलाद्यं घृतम्।

छागमांसतुलां दत्त्वा साधयेन्नल्वणेऽम्भसि।
पादशेषेण तेनैव घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६६ ॥
ऋद्धिवृद्धी च मेदे द्वे जीवकर्षभकौ तथा।
काकोलीक्षीरकाकोलीकल्कैः पलमितैः पृथक् ॥ ६७ ॥
सम्यक् सिद्धेऽवतार्याथ शीते तस्मिन्प्रदापयेत्।
शर्करायाः पलान्यष्टौ मधुनः कुडवं तथा ॥ ६८ ॥
पलं पलं पिबेत्प्रातर्यक्ष्माणं हन्ति दुर्जयम्।
क्षतक्षयं च कासं च पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ६९ ॥
स्वरक्षयमुरोरोगं श्वासं हन्यात्सुदारुणम्।

बकरेका मांस ५ सेर जल २५ सेर ४८ तोले छोडकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार

छानकर १ प्रस्थ घी तथा ऋद्धि, वृद्धि, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, (शतावर, विदारीकन्द, असगन्ध, वाराहीकन्द ये उनके अभावमें छोड़ने चाहिये) प्रत्येक ४ तोलाका कल्क छोडकर घी पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छान ठण्ढाकर मिश्री ३२ तोला शहद १६ तोला मिलाकर रखना चाहिये इसमें प्रतिदिन ४ तोलाकी मात्रा सेवन करना चाहिये । यह राजयक्ष्मा, क्षतक्षय, कास, पार्श्वशूल, अरोचक, स्वरभेद, उरःक्षत तथा कठिन श्वासको नष्ट करता है ॥ ६६-६९ ॥-

छागघृतम् ।

तोयद्रोणद्वितये मांस छागस्य पलशत पक्त्वा ।
पादशेषे सुघृत तस्मिन्विपचेद्घृतप्रस्थम् ॥ ७० ॥
कल्केन जीवनीयाना कुडवेन तु मांससर्पिरिदम् ।
पित्तानिल निहन्यात्तज्जानपि रसकयोजितं पीतम् ॥ ७१ ॥
कासश्वासावुग्रौ यक्ष्माण पार्श्वहृद्रुज घोराम् ।
अपस्वरतायशोषं शमयति चैवापर किञ्चित् ॥ ७२ ॥

बकरेका मांस ५ सेर जल २ द्रोण छोडकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार, छान, १ प्रस्थ घी मिला तथा जीवनीय गणकी ओषधियों (जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती, मौरेठी, मेदा, महामेदा) का मिलित कल्क १ कुडव छोडकर घृत पकाना चाहिये । यह घृत मांसरसके साथ पीनेसे वातपित्त-जन्य रोग, कास, श्वास, यक्ष्मा, पसलियों तथा हृदयकी पीडा तथा अपस्वर और स्वरक्षयशोषको नष्ट करता है ॥ ७०-७२ ॥

अजापञ्चकं घृतम् ।

छागशकृद्रसमूत्र-क्षीरदध्ना च साधितं सर्पिः ।
सक्षार यक्ष्महरं कासश्वासोपशान्तये पेयम् ॥ ७३ ॥

बकरीकी लेंडियोंका रस तथा उसीका मूत्र, दूध और दही प्रत्येक घीके समान मिलाकर घी सिद्ध करना चाहिये । इस घीको यवाखार मिलाकर चाटनेसे यक्ष्मा तथा कास, श्वासको शान्त करनेमें श्रेष्ठ होता है । यह घी भी पहिलेकी तरह चाटना चाहिये ॥ ७३ ॥

बलागर्भं घृतम् ।

[illegible]
[illegible]

कल्कं बलाया सुनियोज्य गर्भे
सिद्ध पय प्रस्थयुतं घृतं च ॥ ७४ ॥
सर्वाभिघातोत्थितयक्ष्मशूल-
क्षतक्षयोत्कासहरं प्रदिष्टम् ॥ ७५ ॥

दशमूलका क्वाथ २ प्रस्थ, मांसरस १ प्रस्थ, दूध १ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, खरेटी १ कुडवका कल्क सब एकमें मिलाकर पकाना चाहिये । घृतमात्र रहनेपर उतार छानकर सेवन करना चाहिये । यह समस्त प्रकारके चोटके रोग, राजयक्ष्मा, शूल, क्षतक्षय और कासको नष्ट करता है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

नागबलाघृतम् ।

पादशेषे जलद्रोणे पचेन्नागबलातुलाम् ।
तेन क्वथेन तुल्यांशं घृत क्षीर च साधयेत् ॥ ७६ ॥
पलार्धिकैश्चातिबलाबलायष्टिपुनर्नवैः ।
प्रपौण्डरीककाश्मर्यपियालकपिकच्छुभिः ॥ ७७ ॥
अश्वगन्धासिताभीरुमेदायुग्मत्रिकण्टकैः ।
मृणालबिसशालूकशृङ्गाटककसेरुकैः ॥ ७८ ॥
एतन्नागबलासर्पी रक्तपित्तं क्षतक्षयम् ।
हन्ति दाहं भ्रमं तृष्णा बलपुष्टिकरं परम् ॥ ७९ ॥
बल्यमौजस्यमायुष्यं वलीपलितनाशनम् ।
उपयुञ्जीत षण्मासान्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ८० ॥

नागबलाका पञ्चाङ्ग ५ सेर, १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश रहनेपर उतार छान क्वाथके बराबर घी और इतना ही दूध तथा घीसे द्विगुण जल मिलाकर पकाना चाहिये । तथा पकाते समय कंघी, खरेटी, मौरेठी, पुनर्नवा, पुण्डरिया, खम्भार, चिरौंजी, कौंचके बीज, असगन्ध, सफेद दूर्वा, शतावरी, मेदा, महामेदा, गोखुरू, कमलकी डण्डी, तन्तु तथा कन्द, सिंघाडा और कसेरू प्रत्येक २ दो तोला ले कल्क बनाकर छोडना चाहिये । यह नागबलाघृत रक्तपित्त, उरःक्षत, दाह, भ्रम तथा प्यासको नष्ट करता है और बल व पुष्टिको बढाता है । ओज तथा आयुको बढाता और बदनकी झुर्रियों तथा बालोंकी सफेदीको नष्ट करता है । इसके ६ मासतक प्रयोग करनेसे वृद्ध भी जवानोंके समान बलवान् होता है ॥ ७६-८० ॥

निर्गुण्डीघृतम् ।

समूलफलपत्राया निर्गुण्ड्याः स्वरसैर्घृतम् ।
सिद्ध पीत्वा क्षयक्षीणो निर्व्याधिर्भाति देववत् ॥ ८१ ॥

सम्भालूके पञ्चाङ्गसे सिद्ध घृत सेवन करनेसे मनुष्य क्षय रोगसे मुक्त होकर देवताओंके समान शोभायमान होता है ॥ ८१ ॥

बलाद्यं घृतम्।

बलाश्वदंष्ट्राबृहतीकलशीधावनीस्थिरा।
निम्बं पर्पटकं मुस्तं त्रायमाणा दुरालभाम् ॥ ८२ ॥
कृत्वा कषाय पेष्यार्थं दद्यात्तामलकीं शटीम्।
द्राक्षां पुष्करमूल च मेदामामलकानि च ॥ ८३ ॥
घृत पयश्च तत्सिद्धं सर्पिर्ज्वरहरं परम्।
क्षयकासप्रशमनं शिर पार्श्वरुजापहम् ॥ ८४ ॥
चरकोदितवासाद्यघृतानन्तरमुक्तित'।
वदन्तीह घृतात्क्वाथं पयश्च द्विगुण पृथक् ॥ ८५ ॥

खरेटी, गोखुरू, बड़ी कटेरी, शालिपर्णी, छोटी कटेरी, पृष्टपर्णी, नीमकी छाल, पित्तपापड़ा, नागरमोथा, त्रायमाण, यवासा इनका काढ़ा और भूमिआवला, कचूर, मुनक्का, पोहकरमूल, मेदा, आँवला इनका कल्क और दूध मिलाकर घी पकाना चाहिये। यह घृत ज्वरको नष्ट करता, क्षय, कास, शिर व पसलियोंकी पीडाको शान्त करता है। इसको चरकमें वासाद्य घृतके अनन्तर लिखा है अतः उसीके अनुसार घृतसे दूना क्वाथ तथा दूना ही दूध छोड़ना चाहिये ॥ ८२—८५ ॥

चन्दनाद्यं तैलम्।

चन्दनाम्बु नखं वाप्यं यष्टीशैलेयपद्मकम्।
मञ्जिष्ठा सरलं दारुशट्येलापूतिकेशरम् ॥ ८६ ॥
पत्रं तैल मुरामासी कक्कोल वनितामुदम्।
हरिद्रे शारिवे तिक्ता लवङ्गागुरुकुङ्कुमम् ॥ ८७ ॥
त्वग्रेणुनलिका चैभिस्तैलं मस्तु चतुर्गुणम्।
लाक्षारससमं सिद्ध ग्रहघ्नं बलवर्णकृत् ॥ ८८ ॥
अपस्मारज्वरोन्मादकृत्यालक्ष्मीविनाशनम्।
आयु'पुष्टिकरं चैव वाजीकरणमुत्तमम् ॥ ८९ ॥

लालचन्दन, सुगन्धवाला, नख, कूठ, मौरेठी, शिलारस, पद्माख, मञ्जीठ, सरल, देवदारु, कचूर, इलायची, रुद्राशी (अभावे लताकस्तूरी), नागकेशर, तेजपात, छरीला, मरोडफली, जटामासी, ककोल, प्रियङ्गु, नागरमोथा, हलदी, दारुहल्दी, शारिवा, काली शारिवा, कुटकी, लवङ्ग, अगर, केशर, दालचीनी, सम्भालूके बीज, नालिका इन सबका कल्क, कल्कसे चतुर्गुण तैल तथ ᳚ इसे चतुर्गुण दहीका ताड़ तथा तैलके बराबर लाखका रस मिलाकर पकाना चाहिये। यह सिद्ध तैल ग्रहघ्न, बलवर्णकारक, अपस्मार, ज्वर, उन्माद, महाभिशाप तथा कुरूपताको नष्ट करता, आयु और पुष्टिको करता तथा वाजीकर है ॥ ८६—८९ ॥

—छागसेवोत्कृष्टता।

छाग मांसं पयश्छागं छाग सर्पि: सशर्करम्।
छागोपसेवा शयनं छागमध्ये तु यक्ष्मनुत् ॥ ९० ॥

बकरीका मांस, बकरीका दूध, बकरीका घी, शक्करके साथ तथा बकरियोंके बीचमे रहना तथा बकरियोंके मध्यमे सोना यक्ष्माको नष्ट करता है ॥ ९० ॥

उरःक्षतचिकित्सा।

उरो मत्वा क्षत लाक्षां पयसा मधुसंयुताम्।
सद्य एव पिबेज्जीर्णे पयसाद्यात्सशर्करम् ॥ ९१ ॥
इक्ष्वालिकाबिसग्रन्थिपद्मकेशरचन्दनै।
शृतं पयो मधुयुत सन्धानार्थं पिबेत्क्षती ॥ ९२ ॥

---

१ लाक्षारस बनानेके सम्बन्धमें कई मत हैं। भैषज्यरत्नावलीकारका मत है कि–" लाक्षायाः षड्गुण तोय दत्त्वैकविंशतिवारकम्। परिस्राव्य जल ग्राह्य किं वा क्वाथ्य यथोदितम् ॥ " अर्थात् लाखको छः गुने जलमें घोलकर २१ बार छान लेनेसे लाक्षारस तैयार होता है। अथवा क्वाथकी विधि–" आदाय शुष्कद्रव्य वा स्वरसानामसम्भवे। वारिण्यष्टगुणे क्वाथ्य ग्राह्य पादावशेषितम् ॥ " इस सिद्धान्तसे अष्टगुण जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रखना चाहिये। पर योगरत्नाकरने दूसरी पद्धति बतायी है। उनका मत है कि- " दशांश लोध्रमादाय तद्दशांशा च सर्जिकाम्। किञ्चिच्च बदरीपत्र वारि षोडशधा स्मृतम् ॥ वस्त्रपूतो रसो ग्राह्यो लाक्षायाः पादशेषितः। " अर्थात् लाखसे दशांश लोध्र, लोध्रसे दशांश सज्जी और कुछ बेरकी पत्ती मिला सोलह गुने जलमें पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर काममें लाना चाहिये। पर शिवदासजीने लिखा है–"लाक्षारसो लाक्षाक्वाथः लाक्षायाः षोडशपल पाकार्थंजलं षोडशशरावम्। शेष प्रस्थैकम् " अर्थात् लाख ६४ तोला, जल ६ सेर ३२ तोला, शेष ६४ तोला रखना चाहिये। यह पद्धति सरलताके विचारसे ही उन्होंने लिखी है और रस भी निकल आवेगा अतः यही विधि काममें लानी चाहिये ॥

बलाश्वगन्धाश्रीपर्णीबहुपुत्रीपुनर्नवाः
पयसा नित्यमभ्यस्ताः क्षपयन्ति क्षतक्षयम् ॥ ९३ ॥

उरःक्षत जानकर तत्काल ही लाखको शहदमें मिलाकर चाटना चाहिये, ऊपरसे दूध पीना चाहिये। तथा पच जानेपर दूध शक्करके साथ ही पथ्य लेना चाहिये। तथा उरःक्षतको जोडनेके लिये आमकी जड, कमलके तन्तु, गाठ, कमलके फूलका केशर तथा लाल चन्दनसे सिद्ध दूध, शहद मिलाकर पीना चाहिये। इसी प्रकार खरेटी, असगन्ध, शालपर्णी अथवा गम्भारीफल, शतावरी, व पुनर्नवाको प्रतिदिन दूधके साथ सेवन करनेसे उरःक्षत नष्ट होता है। (श्वेत मृगाश्मको कूट कपडछानकर लाखके रसकी २१ भावना देकर रखे। इसकी १ माशेकी मात्रा दिनमें ८ बार मक्खन व शहद मिलाकर सेवन करनेसे अवश्य लाभ होता है। यह कितने ही बार अनुभव किया गया है। इसी प्रकार यक्ष्माके रोगीको अभ्रक भस्म १ रत्ती शृङ्ग भस्म १ रत्ती मिलाकर लसोढेके शर्बतके साथ चटाते रहनेसे रोगीको सुख मिलता है अर्थात् उपद्रव नहीं बढते। लसोढाका शर्बत इस भांति बनाना चाहिये। ४ छ. लसोढा सूखे हुए साफ लेकर दुरकुचाकर रातमें दो सेर जलमें मिट्टीके पात्रमें भिगोदेना चाहिये। सबेरे कुछ गरम कर छान लेना चाहिये। लुगदी फेंक देना चाहिये। इसमें १ सेर मिश्री मिलाकर पतली चाशनी बना लेनी चाहिये। यही शर्बत लसोढा हुआ। इसे हकीम लोग लउकसपिस्ताके नामसे व्यवहार करते हैं। यह जुखाम, सूखी खांसी, रक्तपित्त आदिमें अकेले ही बडा लाभ करता है। इसकी मात्रा दिनभरमें २ तोलासे ४ तोलेतक कई बारमें देना चाहिये ॥ ९१—९३ ॥

बलाद्यं घृतम् ।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बु-
सिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्त-
कासाऽनिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ॥ ९४ ॥

खरेटी, गङ्गेरन और अर्जुनकी छालका क्वाथ तथा मौरेठीका कल्क छोडकर सिद्ध किया घृत हृद्रोग, शूल, उरःक्षत, रक्तपित्त, कास और वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ९४ ॥

इति राजयक्ष्माधिकारः समाप्तः ।

अथ कासरोगाधिकारः ।

वातजन्यकासे सामान्यतः पथ्याद्युपायाः ।

वास्तूकं वायसीशाकं कासमर्दं सुनिषण्णकम् ।
स्नेहास्तैलादयो भक्ष्याः क्षीरेक्षुरसगौडिकाः ॥ १ ॥
दध्यारनालमम्लानि प्रसन्नापानकं च ।
शस्यन्ते वातकासेषु स्वाद्वम्ललवणानि च ॥ २ ॥
ग्राम्यानूपौदकैः शालियवगोधूमषष्टिकान् ।
रसैर्माषात्मगुप्तानां यूषैर्वा भोजयेद्धितान् ॥ ३ ॥

बथुआ, मकोय, मूली, चौलाई, तैल आदि स्नेह, दूध, ईखके रस और गुडसे बने पदार्थ, दही, कांजी, खट्टारस, प्रसन्ना पान, मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थ वातज कासमें लाभ होता है। ग्राम्य, आनूप और औदक प्राणियोंके मांसरस तथा उडद व केवांचके यूषके साथ, शालिके चावलोंका भात, यव, गेहूंसे बनाये पदार्थ सेवन करने चाहिये ॥ १–३ ॥

पञ्चमूलीक्वाथः ।

पञ्चमूलीकृतः क्वाथः पिप्पलीचूर्णसंयुतः ।
रसान्नमश्नतो नित्यं वातकासमुदस्यति ॥ ४ ॥

लघुपञ्चमूलके क्वाथमें पीपलका चूर्ण छोडकर पीने तथा नित्य मांसरसके साथ भात खानेसे वातज कास नष्ट होता है ॥ ४ ॥

शृंग्यादिलेहः ।

शृङ्गीशटीकणाभार्ङ्गीगुडवारिदयासकैः ।
सतैलैर्वातकासघ्नो लेहोऽयमपराजितः ॥ ५ ॥

काकडाशिंगी, कचूर, छोटी पीपल, भारङ्गी, गुड, नागरमोथा, यवासा तथा तैल इनका लेह बनाकर चाटनेसे वातज कास नष्ट होता है ॥ ५ ॥

विश्वादिलेहः ।

चूर्णिता विश्वदुस्पर्शशृङ्गीद्राक्षाशटीसिता ।
लीढास्तैलेन वातोत्थं कासं घ्नन्तीह दारुणम् ॥ ६ ॥

सोंठ, यवासा, काकडाशिंगी, मुनक्का, कचूर, मिश्री इनको तैलके साथ चाटनेसे वातज कास नष्ट होता है ॥ ६ ॥

भार्ङ्ग्यादिलेहः ।

भार्ङ्गीद्राक्षाशटीशृङ्गीपिप्पलीविश्वभेषजैः ।
गुडतैलयुतो लेहो हितो मारुतकासिनाम् ॥ ७ ॥

भारङ्गी, मुनक्का, कचूर, काकडासिंगी, पीपल, सोंठ इनका चूर्ण गुड तैल मिलाकर चाटनेमे वातज कास नष्ट होता है ॥ ७ ॥

पित्तजकासचिकित्सा ।

पित्तकासे तनुकफे त्रिवृतां मधुरैर्युताम् ।
दद्याद्घनकफे तिक्तैर्विरेकार्थं युतां भिषक् ॥ ८ ॥

पित्तज कासमें यदि कफ पतला आता हो तो मधुर औषधियोंके साथ और यदि कफ गाढा हो तो तिक्त औषधियोंके साथ निसोथका चूर्ण विरेचनके लिये देना चाहिये ॥ ८ ॥

पथ्यम् ।

मधुरैर्जाङ्गलरसैः श्यामाकयवकोद्रवाः ।
मुद्गादियूषैः शाकैश्च तिक्तकैर्मात्रया हिताः ॥ ९ ॥

मीठे पदार्थ, जाङ्गलप्राणियोंके मांसरस, मूंग आदिके यूष और तिक्तशाकोंके साथ सावां, कोदौं तथा यवके पदार्थ खिलाने चाहिये ॥ ९ ॥

बलादिक्वाथः ।

बलाद्विबृहतीवासाद्राक्षाभिः क्वथितं जलम् ।
पित्तकासापहं पेयं शर्करामधुयोजितम् ॥ १० ॥

खरेटी, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, अडूसा, मुनक्का इनका क्वाथ शकर व शहद मिलाकर पीनेसे पित्तजकासको नष्ट करता है ॥ १० ॥

शरादिक्षीरम् ।

शरादिपञ्चमूलस्य पिप्पलीद्राक्षयोस्तथा ।
कषायेण शृतं क्षीरं पिबेत्समधुशर्करम् ॥ ११ ॥

शरादि पञ्चमूल (शर, दर्भ, कास, इक्षु तथा शालिकी मूल) छोटी पीपल, मुनक्का इनके क्वाथसे सिद्ध किया दूध शहद व शकर मिलाकर पीना चाहिये ॥ ११ ॥

विशिष्टरसादिविधानम् ।

काकोलीबृहतीमेदायुग्मैः सवृषनागरैः ।
पित्तकासे रसक्षीरयूषांश्चाप्युपकल्पयेत् ॥ १२ ॥

काकोली, बडी कटेरी, मेदा, महामेदा, अडूसा व सोंठके क्वाथसे रस, क्षीर, यूष बनाकर पित्तजकासमें सेवन करना चाहिये ॥ १२ ॥

द्राक्षादिलेहः ।

द्राक्षामलकखर्जूरं पिप्पलीमरिचान्वितम् ।
पित्तकासापहं ह्येतल्लिह्यान्माक्षिकसर्पिषा ॥ १३ ॥

मुनक्का, आमला, छुहारा, पिण्डखजूर अथवा छोटी पीपल, काली मिर्च इनकी चटनी बना घी व शहद मिलाकर पित्तजकासके नाशार्थ चाटनी चाहिये ॥ १३ ॥

खर्जूरादिलेहः ।

खर्जूरपिप्पलीद्राक्षासितालाजाः समांशिकाः ।
मधुसर्पिर्युतो लेहः पित्तकासहरः परः ॥ १४ ॥

खजूर अथवा छुहारा, छोटी पीपल, मुनक्का, मिश्री, धानकी लाई समान भाग लेकर घी व शहद मिलाकर चाटनेसे पित्तजकास शान्त होता है ॥ १४ ॥

शट्यादिरसः ।

शटीह्रीवेरबृहतीशर्कराविश्वभेषजम् ।
पिष्ट्वा रसं पिबेत्पूतं सघृतं पित्तकासनुत् ॥ १५ ॥
मधुना पद्मबीजानां चूर्णं पैत्तिककासनुत् ।

कचूर, सुगन्धवाला, बडी कटेरी, शकर, सोंठ इसको जलमें महीन पीस रस निकालकर घीके साथ पीनेसे पित्तजकास नष्ट होता है, शहदके साथ कमलके बीजोंका चूर्ण चाटनेसे भी पैत्तिक कास नष्ट होता है ॥ १५ ॥

कफकासचिकित्सा ।

बलिनं वमनेनादौ शोधितं कफकासिनम् ॥ १६ ॥
यवान्नैः कटुरूक्षोष्णैः कफघ्नैश्चाप्युपाचरेत् ।
पिप्पलीक्षारकैर्यूषैः कौलत्थैर्मूलकस्य च ॥ १७ ॥
लघून्यन्नानि भुञ्जीत रसैर्वा कटुकान्वितैः ।

बलवान् कफकासवालेको प्रथम वमन कराकर कटु, रूक्ष, उष्ण, कफनाशक यवादि अन्न सेवन कराना चाहिये । तथा कुलथी अथवा मूलीके यूषमें पीपल व क्षार मिलाकर अथवा कटुद्रव्य मिलाये गये मांसरसके साथ हल्के अन्नका भोजन कराना चाहिये । * ॥ १६ ॥ १७ ॥

---

१ यद्यपि यहां इस योगमें पित्तजकासके लिये लिखा है तथापि कफसहित पित्तज कासमें इसे देना उचित है पर केवल पित्तजमें मरिचके स्थानमें शर्करा छोडनी चाहिये । यदाह क्षीरपाणिः—"पिप्पल्यामलकं द्राक्षा खर्जूरं शर्करा मधु । लेहोऽयं सघृतो लीढः पित्तक्षयजकासजित्" ॥

* पञ्चकोलसाधित क्षीरम्——"पञ्चकोलैः शृतं क्षीरं कफघ्नं लघु शस्यते । श्वासकासज्वरहरं बलवर्णाग्नि-

पौष्करादिक्वाथः ।

पौष्करं कट्फलं भार्ङ्गीविश्वपिप्पलिभिः शृतम् ।
पिबेत्कासे कफोद्रेके कासे श्वासे च हृद्ग्रहे ॥ १८ ॥

पोहकरमूल, कायफल, भारङ्गी, सोंठ व छोटी पीपलका क्वाथ कफकी अधिकतासे उत्पन्न कास, श्वास तथा हृदयके दर्द व जकड़ाहटको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

शृङ्गवेरस्वरसः ।

स्वरसं शृङ्गवेरस्य माक्षिकेण समन्वितम् ।
पाययेच्छ्वासकासघ्नं प्रतिश्यायकफापहम् ॥ १९ ॥

अदरखका स्वरस शहद मिलाकर चाटनेसे श्वास, कास, प्रतिश्याय तथा कफ नष्ट होते हैं ॥

नवाङ्गयूषः ।

मुद्गामलाभ्यां यवदाडिमाभ्यां
कर्कन्धुना मूलकशुण्ठकेन ।
शटीकणाभ्यां च कुलत्थकेन
यूषो नवाङ्गः कफरोगहन्ता ॥ २० ॥

मूंग, आमला, यव, अनार, बेर, मूलीके टुकड़े, कचूर, छोटी पीपल तथा कुलथीका यूष कफरोगको नष्ट करता है। इसे नवाङ्गयूष कहते हैं ॥ २० ॥

दशमूलक्वाथः ।

पार्श्वशूले ज्वरे श्वासे कासे श्लेष्मसमुद्भवे ।
पिप्पलीचूर्णसंयुक्तं दशमूलीजलं पिबेत् ॥ २१ ॥

दशमूलका काढ़ा पीपलका चूर्ण छोड़कर पीनेसे पार्श्वशूल, ज्वर, श्वास, कास आदि कफजन्य रोग नष्ट होते हैं ॥ २१ ॥

कट्फलादिक्वाथः ।

कट्फलं कत्तृणं भार्ङ्गी मुस्तं धान्यं वचाभया ।
शृङ्गी पर्पटकं शुण्ठी सुराह्वा च जले शृतम् ॥ २२ ॥
मधुहिङ्गुयुतं पेयं कासे वातकफात्मके ।
कण्ठरोगे क्षये शूले श्वासहिक्काज्वरेषु च ॥ २३ ॥

कायफल, रोहिषघास, भारङ्गी, नागरमोथा, धनिया, वच, बड़ी हर्रका छिल्का, काकड़ाशिंगी, पित्तपापड़ा, सोंठ, तुलसी सबका क्वाथ बनाकर शहद व भूनीहींग मिलाकर पीनेसे वातकफात्मक कास, कण्ठरोग, क्षय, शूल, श्वास, हिक्का तथा ज्वर नष्ट होता है ॥ २२ ॥ २३ ॥

—वर्द्धनम्॥" अर्थात् पञ्चकोलसे सिद्ध दूध कफनाशक, हल्का और श्वास, कास, ज्वरको नष्ट करनेमें तथा बल, वर्ण व अग्नि बढ़ानेमें श्रेष्ठ है ।

अन्ययोगाः ।

[illegible] ।
[illegible] ॥ २४ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २५ ॥
[illegible] ।
पिप्पली [illegible] ॥ २६ ॥
[illegible] ।
[illegible] ॥ २७ ॥
पिप्पली पद्मक [illegible] ।
[illegible] ॥ २८ ॥

[illegible] छोटी पीपल [illegible] नष्ट होती है । [illegible] मुनक्का, लाख, [illegible] भाग, मिश्री सबसे चतुर्गुण मिला चूर्ण बनाकर घी, शहदके साथ चाटनेसे [illegible] होता है । छोटी पीपल, पद्माख, लाख, बड़ी कटेरीके फल सबका महीन चूर्ण कर घी, शहद मिलाकर चाटनेसे [illegible] नष्ट होता है ॥ २४—२८ ॥

हरीतक्यादिगुटिका ।

हरीतकीनागरमुस्तचूर्णं
गुडेन तुल्यं गुटिका विधेया ।
निवारयत्यास्यविधारितेयं
श्वासं प्रवृद्धं प्रबलं च कासम् ॥ २९ ॥

बड़ी हर्रका छिल्का, सोंठ तथा नागरमोथाका चूर्ण गुड़के साथ मिला गोली बनाकर मुखमें रखनेसे श्वास तथा कास नष्ट होता है ॥ २९ ॥

मरिचादिगुटिका ।

कर्षं कर्षार्धमथो पलं पलद्वयं तथार्धकर्षश्च ।
मरिचस्य पिप्पलीनां दाडिमगुडयावशूकानाम् ॥ ३० ॥
सर्वौषधैरसाध्या ये कासाः सर्वार्थसत्यक्ताः ।
अपि पूयं छर्दयतां तेषामिदं महौषधं पथ्यम् ॥ ३१ ॥

काली मिर्च १ तोला, छोटी पीपल ६ माशे, अनारका छिल्का ४ तोला, गुड़ ८ तोला, जवाखार

६ माशे मिला गोली बनाकर सेवन करनेसे अधिक कफ युक्त असाध्य कास भी नष्ट होते हैं ॥३०॥३१॥

समशर्करचूर्णम् ।

लवङ्गजातीफलपिप्पलीनां
भागान्प्रकल्प्याक्षसमानमीषाम् ।
पलार्धमेकं मरिचस्य दद्यात्
पलानि चत्वारि महौषधस्य ॥ ३२ ॥
सितासमं चूर्णमिदं प्रसह्य
रोगानिमानाशु बलान्निहन्यात् ।
कासज्वरारोचकमेहगुल्म-
श्वासाग्निमान्द्यग्रहणीप्रदोषान् ॥ ३३ ॥

लवङ्ग, जायफल, छोटी पीपल प्रत्येक १ तोला काली मिर्च २ तोला, सोंठ १६ तोला, सबके बराबर मिश्री मिला चूर्ण बनाकर सेवन करनेसे कास, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, गुल्म, श्वास, अग्निमांद्य, ग्रहणीरोग नष्ट होते हैं ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

हरीतक्यादिमोदकः ।

हरीतकी कणा शुण्ठी मरिचं गुडसंयुतम् ।
कासघ्नो मोदकः प्रोक्तस्तृष्णारोचकनाशनः ॥ ३४ ॥

बड़ी हर्रका छिलका, छोटी पीपल, सोंठ, तथा मिर्चका चूर्ण गुड मिलाकर सेवन करनेसे तृष्णा, अरोचक तथा कास नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥

व्योषांतिका गुटिका ।

तालीशवह्निदीप्यकचविकांशुंध्यम्लवेतसव्योषे ।
तुल्यैस्त्रिसुगन्धियुतैर्गुडेन गुटिका प्रकर्तव्या ॥ ३५ ॥
कासश्वासारोचकपीनसहृत्कण्ठवाङ्निरोधेषु ।
ग्रहणीगुदोद्भवेषु गुटिका व्योषान्तिका नाम ॥ ३६ ॥
त्रिसुगन्धमत्र संस्कारत्वाच्चतुर्माषिकं ग्राह्यम् ।

तालीशपत्र, चीता, अजवाइन, चव्य, सोंठ, अम्लवेत, सोंठ, मिर्च, पीपल, दालचीनी, तेजपात, इलायची, सब समान भाग ले; सबसे द्विगुण गुड मिलाकर गोली बनानी चाहिये । यह—कास, श्वास, अरोचक, पीनस, हृदय, कण्ठ तथा वाणीकी रुकावट (स्वरभेद), ग्रहणी तथा अर्शको नष्ट करती है । त्रिसुगन्ध संस्कार होनेसे प्रत्येक ४ माशा लेना चाहिये ॥ ३५ ॥ ३६ ॥—

१ यहां पर त्रिसुगन्धके सम्बन्धम शिवदासजीने लिखा है।'सर्वचूर्णापेक्षया चतुर्थांशेन मिलितं त्रिसुगन्धिचूर्णम् ।' अर्थात् समस्त चूर्णकी अपेक्षा चतुर्थांश मिलित त्रिसुगन्धि(दालचीनी,तेजपात,इलायची)का चूर्ण लेना चाहिये।

मनःशिलादिधूमः ।

मनःशिलालमधुकमांसीमुस्तेङ्गुदैः पिबेत् ।
धूमं त्र्यहं च तस्यानु सगुडं च पयः पिबेत् ॥ ३७ ॥
एष कासान्पृथग्द्वन्द्वसर्वदोषसमुद्भवान् ।
शतैरपि प्रयोगाणां साधयेदप्रसाधितान् ॥ ३८ ॥

मनशिल, हरताल, मौरेठी, जटामासी, नागरमोथा, तथा इंगुदीकी बत्ती बनाकर धूम पीना चाहिये, ऊपरसे गुडका शर्बत पीना चाहिये । यह अनेकों प्रयोगोंसे न सिद्ध होनेवाले हजारों कासोंको नष्ट करता है ॥३७-३८

अपरो धूमः ।

मनःशिलालिप्तदलं बदर्या घर्मशोषितम् ।
सक्षीरं धूमपानात्तु महाकासनिबर्हणम् ॥ ३९ ॥

बेरकी पत्तीपर मनशिलका लेप कर धूपमें सुखा कर धूम पान करनेसे महाकास नष्ट होता है । मनशिलको दूधमें पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ३९ ॥

अन्यो धूमः ।

अर्कच्छल्लशिले तुल्ये ततोऽर्धेन कटुत्रिकम् ।
चूर्णितं वह्निनिक्षिप्तं पिबेद्धूमं तु योगवित् ॥ ४० ॥
भक्षयेदथ ताम्बूलं पिबेद्दुग्धमथाम्बु वा ।
कासाः पञ्चविधा यान्ति शान्तिमाशु न संशयः ॥४१॥

आककी छाल और मनशिल समान भाग ले दोनोंसे आधामिलित त्रिकटु चूर्ण मिला कर अग्निमें जलाकर धूम पान करनेके बाद ऊपरसे पान खाने या दूध या जल पीनेसे शीघ्र ही पाचों कास नष्ट होते है ४०॥४१॥

वार्ताकीधूमः ।

मरिचशिलार्कक्षीरैर्वार्ताकीं त्वचमाशु भावितां शुष्काम् ।
कृत्वा विधिना धूमं पिबतः कासाः शमं यान्ति ॥ ४२ ॥

मिर्च, मनःशिला और बैंगनकी छालको आकके, दूधमें भावना देकर, बत्ती बना सुखाकर धूम्रपान करनेसे समस्त कास शान्त होते हैं ॥ ४२ ॥

दशमूलघृतम् ।

दशमूलीकषायेण भार्ङ्गीकल्कं पचेद्घृतम् ।
दक्षतित्तिरिनिर्यूहे तत्परं वातकासनुत् ॥ ४३ ॥

दशमूलके काढे और मुर्गा व तीतरके मांसरसमें भारंगीका कल्क छोड़कर सिद्ध किया घृत वातकासको नष्ट करता है ॥ ४३ ॥

अपरं दशमूलघृतम् ।

दशमूलाढके प्रस्थं घृतस्याक्षसमैः पचेत् ।
पुष्कराह्वशटीबिल्वसुरसव्योषहिङ्गुभिः ॥ ४४ ॥
पेयानुपानं तद्देयं कासे वातकफाधिके ।
श्वासरोगेषु सर्वेषु कफवातात्मकेषु च ॥ ४५ ॥

दशमूलका क्वाथ एक आढक, पोहकरमूल, कचूर, बेलका गूदा और तुलसी तथा त्रिकटु व हींग प्रत्येक एक कर्ष मिला कल्क बनाकर एक प्रस्थ घी मिलाकर पकाना चाहिये । इसे पेयाके अनुपानके साथ देनेसे वातकफात्मक कास तथा श्वास नष्ट होते हैं॥४४॥४५॥

दशमूलषट्पलकं घृतम् ।

दशमूलीचतुःप्रस्थे रसे प्रस्थोन्मितं हविः ।
सक्षारैः पञ्चकोलैस्तु कल्कितैः साधु साधितम् ॥ ४६ ॥
कासहृत्पार्श्वशूलघ्नं हिक्काश्वासनिबर्हणम् ।
कल्कः षट्पलमेवात्र आहयन्ति भिषग्वराः ॥ ४७ ॥

दशमूलका क्वाथ ४ प्रस्थ, घी १ प्रस्थ, यवाखार व पञ्चकोल प्रत्येक एक पल कल्क बना छोडकर घी पकाना चाहिये । यह घी कास, हृदय व पसलियोंका शूल, हिक्का, श्वास नष्ट करता है । इसमें प्रत्येक कल्क द्रव्यका कल्क १ एक पल अर्थात् मिलकर ६ पल ही कल्क वैद्य छोडते हैं ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

कण्टकारीद्वयम् ।

कण्टकारीगुडूचीभ्यां पृथक् त्रिंशत्पलाद्रसे ।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातकासनुद्वह्निदीपनः ॥ ४८ ॥
घृतं रास्नाबलाव्योषश्वदंष्ट्राकल्कपाचितम् ।
कण्टकारीरसे पीतं पञ्चकासनिषूदनम् ॥ ४९ ॥

कण्टकारी तथा गुर्च प्रत्येकका १२० तोला क्वाथ (या रस) घी १ प्रस्थ मिलाकर सिद्ध करनेसे वातकासको नष्ट तथा अग्निको दीप्त करनेवाला होता है । इसी प्रकार चतुर्गुण कण्टकारीके रसमें १ भाग घृत और घृतसे चतुर्थांश रासन, खरेटी, त्रिकटु, गोखरूका कल्क मिलाकर सिद्ध किया घृत पांचों प्रकारके कासोंको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

बृहत्कण्टकारीघृतम् ।

सपत्रमूलशाखाया कण्टकार्या रसाढके ।
घृतप्रस्थं बलाव्योषविडङ्गशटीचित्रकैः ॥ ५० ॥
सौवर्चलयवक्षारबिल्वामलकपुष्करैः
वृश्चीरबृहतीपथ्यायमानीदाडिमर्धिभिः ॥ ५१ ॥
द्राक्षापुनर्नवाचव्यधन्वयासाम्लवेतसैः ।
शृङ्गीतामलकीभार्ङ्गीरास्नागोक्षुरकैः पचेत् ॥ ५२ ॥
कल्कैस्तु सर्वकासेषु हिक्काश्वासे च शस्यते ।
कण्टकारीघृतं सिद्धं कफव्याधिविनाशनम् ॥ ५३ ॥

कण्टकारीके पञ्चाङ्गके एक आढक रसमें १ प्रस्थ घी और खरेटी, त्रिकटु, विडंग, कचूर, चीतकी जड, कालानमक, यवाखार, बेलका गूदा, आंवला, पोहकरमूल, पुनर्नवा, बडी कटेरी, हर्र, अजवाइन, अनारदाना, ऋद्धि, मुनक्का, पुनर्नवा, चव्य, यवासा, अम्लवेत, काकडाशिंगी, भूम्यामलकी, भारंगी, रासन, गोखरूका मिलित कल्क घीसे चतुर्थांश छोडकर पकाना चाहिये । इससे कफरोग, कास, श्वास, हिक्का आदि नष्ट होते हैं ॥ ५०–५३ ॥

रास्नाद्यं घृतम् ।

द्रोणेऽपां साधयेद्रास्नां दशमूलीं शतावरीम् ।
पलिकां मानिकांशांस्त्रीन्कुलत्थान्बदरान्यवान् ॥ ५४ ॥
तुलार्धं चाजमांसस्य तदग्रेण तेन च ।
घृताढकं समक्षीरं जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ५५ ॥
सिद्धं तद्दशभिः कर्षैर्नस्यपानानुवासनैः ।
समीक्ष्य वातरोगेषु यथावस्थं प्रयोजयेत् ॥ ५६ ॥
पञ्चकासान्क्षयं श्वासं पार्श्वशूलमरोचकम् ।
सर्वाङ्गैकाङ्गरोगांश्च सप्लीहोर्ध्वानिलं जयेत् ॥ ५७ ॥
जीवकर्षभकौ मेदे काकोल्यौ शूर्पपर्णिके ।
जीवन्ती मधुकं चैव दशको जीवको गणः ॥ ५८ ॥

रासना, दशमूलकी औषधियां, शतावर प्रत्येक एक पल, कुलथी, बेर व यव प्रत्येक ३२ तोला, बकरीका मांस २॥ सेर एक द्रोण जल मिला पका छानकर क्वाथमें एक आढक घी एक आढक दूध और २ आढक जल तथा जीवनीय गण (जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवन्ती मधुक) इनका कल्क प्रत्येक ४ तोला छोडकर घी पकाना चाहिये । यह घी नस्य, पान, अनुवासन बस्तिद्वारा जहां जैसा उचित हो वातरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह पांच प्रकारके कास, क्षय, पार्श्वशूल, अरोचक, सर्वाङ्ग, एकाङ्ग रोग, प्लीहा तथा ऊर्ध्ववातको नष्ट करता है । जीवनीयगणकोष्ठमें लिखा समझिये ॥ ५४–५८ ॥

अगस्त्यहरीतकी ।

दशमूलीं स्वयंगुप्तां शङ्खपुष्पीं शटीं बलाम् ।
हस्तिपिप्पल्यपामार्गपिप्पलीमूलचित्रकान् ॥ ५९ ॥

भार्ङ्गीपुष्करमूलं च द्विपलांशं यवाढकम्।
हरीतकीशतं चैकं जलपञ्चाढके पचेत् ॥ ६० ॥
यवै स्विन्नै कषायं तं पूतं तच्चाभयाशतम्।
पचेद्गुडतुलां दत्त्वा कुडवं च पृथग्घृतात् ॥ ६१ ॥
तैलात्सपिप्पलीचूर्णात्सिद्धशीते च माक्षिकात्।
लिह्याद्द्वे चाभये नित्यमतः खादेद्रसायनात् ॥ ६२ ॥
तद्वलीपलितं हन्यान्मेधायुर्बलवर्धनम्।
पञ्चकासान्क्षयं श्वासं हिक्कां सविषमज्वरान् ॥ ६३ ॥
हन्यात्तथा ग्रहण्यर्शोहृद्रोगारुचिपीनसान्।
अगस्त्यविहितं धन्यमिदं श्रेष्ठं रसायनम् ॥ ६४ ॥

दशमूल, कौंचके बीज, शंखपुष्पी, कचूर, खरेटी, गजपीपल, लटजीरा, पिपरामूल, चीतकी जड, भारंगी, पोहकरमूल प्रत्येक ८ तोला, यव एक आढक, बडी हर्र १००, जल ५ आढक मिलाकर पकाना चाहिये। यव पक जानेपर काढा उतारकर छान लेना चाहिये और हर्र अलग निकाल लेना चाहिये। फिर काढा व हर्र व गुड ५ सेर तथा घी व तैल प्रत्येक ३२ तोला, छोटी पीपलका चूर्ण १६ तोला छोडकर पकाना चाहिये, सिद्ध हो जानेपर ठण्ढाकर ३२ तोला शहद मिलाना चाहिये। फिर प्रतिदिन २ हर्रे इसकी खाकर ऊपरसे २ तोला अवलेह चाटना चाहिये। यह रसायन है। बालोंकी सफेदी तथा झुर्रियोंको नष्ट करता, व मेधा, आयु व बलको बढाता है। पांचो कास, क्षय, श्वास, हिक्का, विषमज्वर, ग्रहणी, अर्श, हृद्रोग, अरुचि, व पीनसको नष्ट करता है। महर्षि अगस्त्यका बताया यह श्रेष्ठ रसायन है ॥ ५९-६४ ॥

भृगुहरीतकी।

समूलपुष्पच्छदकण्टकार्या-
स्तुला जलद्रोणपरिप्लुता च।
हरीतकीनां च शतं निदध्या-
दथात्र पक्त्वा चरणावशेषे ॥ ६५ ॥
गुडस्य दत्त्वा शतमेतदग्नौ
विपक्वमुत्तार्य ततः सुशीते।
कटुत्रिकं च द्विपलप्रमाणं
पलानि षट् पुष्परसस्य तत्र ॥ ६६ ॥
क्षिपेच्चतुर्जातपलं यथाग्नि
प्रयुज्यमानो विधिनावलेहः।
वातात्मकं पित्तकफोद्भवं च
द्विदोषकासानपि तांस्त्रिदोषान् ॥ ६७ ॥
क्षयोद्भवं च क्षतजं च हन्यात्
सपीनसश्वासमुरःक्षतं च।
यक्ष्माणमेकादशरूपमुग्रं
भृगूपदिष्टं हि रसायनं स्यात् ॥ ६८ ॥

कटेरीका पञ्चाङ्ग ५ सेर, जल एक द्रोण तथा बडी हर्र १०० मिलाकर पकाना चाहिये। चतुर्थांश बाकी रहनेपर उतार छान हर्र अलग निकाल क्वाथमें मिला उसीमें गुड ५ सेर मिलाकर पकाना चाहिये, अवलेह बन जानेपर उतार ठण्ढाकर त्रिकटु प्रत्येक ८ तोला, शहद २४ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येक ४ तोला, मिलाकर रखना चाहिये, अग्निके अनुसार इसका प्रयोग करनेसे समस्त कास, पीनस, श्वास, उरःक्षत तथा उग्र यक्ष्मा भी नष्ट होता है ॥ ६५-६८ ॥

इति कासरोगाधिकारः समाप्तः।

अथ हिक्काश्वासाधिकारः।

हिक्काश्वासयोश्चिकित्साक्रमः।

हिक्काश्वासातुरे पूर्वं तैलाक्ते स्वेद इष्यते।
स्निग्धैर्लवणयोगैश्च मृदु वातानुलोमनम् ॥ १ ॥
ऊर्ध्वाध शोधनं शक्ते दुर्बले शमनं मतम्।

हिक्का तथा श्वाससे पीडित रोगीको प्रथम तैलसे मालिश कर स्वेदन करना चाहिये। तथा स्निग्ध व लवणयुक्त पदार्थोंसे वायुका अनुलोमन करनेवाले वमन व विरेचन बलवान्को तथा निर्बलको शमनकारक उपाय करने चाहिये ॥ १ ॥

केचन लेहाः।

कोलमज्जाञ्जनं लाजातिक्ताकाञ्चनगैरिकम् ॥ २ ॥

---

१ यहांपर यवोंका स्वेदन चतुर्थांश रह जानेपर हो जाता है, यद्यपि कुछ आचार्योंने अष्टमांश शेष लिखा है पर वह सुश्रुतसे विरुद्ध पडता है अतएव शिवदासजीको अभीष्ट नहीं है। तथा घृत, तैल व शहद यहां द्विगुण ही लिये जाते हैं। यद्यपि घृतके समान शहद यहां पडता है पर द्रव्यान्तरसे संयुक्त होनेके कारण विरुद्ध नहीं होता।

१ यह प्रयोग ग्रन्थान्तरमें कुछ पाठभेदसे मिलता है। वहां त्रिकटु त्रिपल लिखा है 'कटुत्रिकं च त्रिपलप्रमाणम्।' पर शिवदासजीने प्रत्येक २ पल ही लिखा है इस प्रकार ६ पल कटुत्रिक होता है।

कृष्णा धात्री सिता शुण्ठी कासीसं दधि नाम च ।
पाटल्याः सफलं पुष्पं कृष्णाखर्जूरमुस्तकम् ॥ ३ ॥
षडेते पादिका लेहा हिक्काघ्ना मधुसंयुताः ।

वेरकी गुठली, काला सुरमा व खील । कुटकी, सुनहला गेरू । छोटी पीपल, आंवला, मिश्री, व सोंठ । कसीस व कैथा । पाढलके फल व फूल । पीपल, छुहारा नागरमोथा । ये छः लेह श्लोकके एक एक पादमें कहे गये शहदके साथ चाटनेसे हिक्काको नष्ट करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥–

नस्यानि ।

मधुकं मधुसंयुक्तं पिप्पली शर्करान्विता ॥ ४ ॥
नागरं गुडसंयुक्तं हिक्काघ्नं नावनत्रयम् ।
स्तन्येन मक्षिकाविष्ठा नस्यं वालक्तकाम्बुना ॥ ५ ॥
योज्यं हिक्काभिभूताय स्तन्यं वा चन्दनान्वितम् ।

शहदके साथ मौरेठीका चूर्ण अथवा शक्करके साथ छोटी पीपलका चूर्ण अथवा सोंठ गुडके साथ अथवा मक्षिकाविष्ठा, स्त्रीदुग्ध व लाक्षा रसके साथ अथवा स्त्रीदुग्ध चन्दन मिलाकर सूंघनेसे हिक्का नष्ट होती है ॥ ४ ॥ ५ ॥

केचन योगाः ।

मधुसौवर्चलोपेतं मातुलुङ्गरसं पिबेत् ॥ ६॥
हिक्कार्तस्य पयश्छागं हितं नागरसाधितम् ।
कृष्णामलकशुण्ठीनां चूर्णं मधुसितायुतम् ॥ ७ ॥
मुहुर्मुहुः प्रयोक्तव्यं हिक्काश्वासनिवारणम् ।
हिक्काश्वासी पिबेद्भार्ङ्गीं सविश्वामुष्णवारिणा ।
नागरं वा सिता भार्ङ्गीं सौवर्चलसमन्वितम् ॥ ८ ॥

मधु व काला नमक मिला बिजौरे निम्बूका रस पीनेसे अथवा सोंठसे सिद्ध दूध पीनेसे अथवा छोटी पीपल, आंवला, सोंठका चूर्ण शहदके साथ वारवार चाटनेसे अथवा सोंठके साथ भार्ङ्गीका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे अथवा सोंठ, मिश्री, भारङ्गी, व काला नमक मिलाकर गरम जलसे उतारनेसे हिक्का, श्वास नष्ट होते हैं ॥ ६–८ ॥

शृंग्यादिचूर्णम् ।

शृङ्गीकटुत्रिकफलत्रयकण्टकारी-
भार्ङ्गीसपुष्करजटालवणानि पञ्च ।
चूर्णं पिबेदशिशिरेण जलेन हिक्का-
श्वासोर्ध्ववातकसनारुचिपीनसेषु ॥ ९ ॥

काकड़ाशिंगी, त्रिफला, त्रिकटु, भटकटैया, भारङ्गी, पोहकरमूल, पाचों लवण समान भाग ले चूर्ण बनाकर गरम जलके साथ पीनेसे हिक्का, श्वास, डकार, कास और अरुचि व पीनस नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

कल्कद्वयम् ।

अभयानागरकल्कं पौष्करयवक्षारमरिचकल्कं वा ।
तोयेनोष्णेन पिबेच्छ्वासी हिक्की च तच्छान्त्यै ॥ १० ॥

बड़ी हर्र व सोंठका कल्क अथवा पोहकरमूल, यवाखार व काली मिर्चका कल्क गरम जलके साथ पीनेसे हिक्का तथा श्वास नष्ट होते हैं ॥ १० ॥

अमृतादिक्काथः ।

अमृतानागरफञ्जीव्याघ्रीपर्णासमाथितं क्काथम् ।
पीतं सकणाचूर्णं कासश्वासौ जयत्याशु ॥ ११ ॥

गुर्च, सोंठ, भारङ्गी, छोटी कटेरी तथा तुलसीका क्काथ, छोटी पीपलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे कास, श्वास शीघ्र नष्ट होते हैं ॥ ११ ॥

दशमूलक्काथः ।

दशमूलीकषायस्तु पुष्करेण विचूर्णितः ।
श्वासकासप्रशमनः पार्श्वहृच्छूलनाशनः ॥ १२ ॥

दशमूलका क्काथ, पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे श्वास, कास, पसली तथा हृदयका शूल नष्ट होते हैं ॥ १२ ॥

कुलत्थादिक्काथः ।

कुलत्थनागरव्याघ्रीवासाभिः क्कथितं जलम् ।
पीतं पुष्करसंयुक्तं हिक्काश्वासनिबर्हणम् ॥ १३ ॥

कुलथी, सोंठ, छोटी कटेरी तथा अडूसासे बनाया गया क्काथ पोहकरमूल चूर्ण मिलाकर पीनेसे हिक्का, श्वास नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

गुडप्रयोगः ।

गुडं कटुकतैलेन मिश्रयित्वा समं लिहेत् ।
त्रिसप्ताहप्रयोगेण श्वासं निर्मूलतो जयेत् ॥ १४ ॥

गुड, कडुआ तैल मिलाकर चाटनेसे २१ दिनमें श्वास निर्मूल हो जाता है । दोनो समान भाग मिलाकर चार तोलातक चाट सकते हैं ॥ १४ ॥

शृंग्यादिचूर्णम् ।

शृङ्गीमहौषधकणाघनपुष्कराणां
चूर्णं शटीमरिचशर्करया समेतम् ।
क्काथेन पीतममृतावृषपञ्चमूल्याः
श्वासं त्र्यहेण शमयेदतिदोषमुग्रम् ॥ १५ ॥

काकड़ाशिंगी, सोंठ, छोटी पीपल, नागरमोथा, पोहकरमूल, कचूर, काली मिर्च, तथा शक्कर सब समान भाग ले

चूर्ण अडूसा तथा लघु पञ्चमूलके क्वाथके साथ पीनेसे ३ दिनमें उग्र श्वासको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

हरिद्रादिलेहः ।

हरिद्रां मरिचं द्राक्षां गुडं रास्नां कणां शटीम् ।
जह्यात्तैलेन विलिहञ्छ्वासान्प्राणहरानपि ॥ १६ ॥

हल्दी, काली मिर्च, मुनक्का, गुड, रास्ना, पीपल, कचूर इनका चूर्ण तैलके साथ चाटनेसे प्राणहर श्वास भी नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥

मयूरपिच्छभूतिः ।

हिक्कां हरति प्रबलां प्रबलं श्वासं च नाशयत्याशु ।
शिखिपिच्छभूतिपिप्पलिचूर्णं मधुमिश्रितं लीढम् ॥१७॥

मयूर पिच्छ भस्म और पीपल चूर्ण मिलाकर शहदके साथ चाटनेसे हिक्का तथा श्वास नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

बिभीतकचूर्णम् ।

कर्षं कलिफलचूर्णं लीढं चात्यन्तमिश्रितं मधुना ।
अचिराद्धरति श्वासं प्रबलामुद्धासिकां चैव ॥ १८ ॥

बहेड़ेका चूर्ण १ तोला शहदमें मिलाकर चाटनेसे प्रबल श्वास तथा हिक्का नष्ट होती है ॥ १८ ॥

हिंस्राद्यं घृतम् ।

हिंस्राविडङ्गपूतीकत्रिफलाव्योषचित्रकैः ।
द्विक्षीरं सर्पिषः प्रस्थं चतुर्गुणजलान्वितम् ॥ १९ ॥
कोलमात्रैः पचेत्तद्धि कासश्वासं व्यपोहति ।
अर्शांस्यरोचकं गुल्मं शकृद्भेदं क्षयं तथा ॥ २० ॥

जटामासी अथवा हैंस, तथा वायविडंग, पूतिकरञ्ज (कञ्जी), त्रिफला, त्रिकटु तथा चीतकी जडका कल्क, ६४ तोला घी तथा घीसे द्विगुण दूध और चतुर्गुण जल मिला सिद्ध कर सेवन करनेसे कास, श्वास, अर्श अरोचक, गुल्म, दस्तोंका पतला आना तथा क्षय नष्ट होते हैं । कल्ककी प्रत्येक औषधि ६ माशे छोडनी चाहिये ॥ १९ ॥ २० ॥

तेजोवत्याद्यं घृतम् ।

तेजोवत्यभया कुष्ठं पिप्पली कटुरोहिणी ।
भूतीकं पोष्करं मूलं पलाशं चित्रकः शटी ॥ २१ ॥
सौवर्चलं तामलकी सैन्धवं बिल्वपेशिका ।
तालीसपत्रं जीवन्ती वचा तैरक्षसम्मितैः ॥ २२ ॥
हिङ्गुपादैर्घृतप्रस्थं पचेत्तोयचतुर्गुणे ।
एतद्यथायलं पीत्वा हिक्काश्वासौ जयेन्नरः ॥ २३ ॥
शोथानिलार्शोग्रह [illegible] रुजएव च ।

चव्य, बडी हर्रका छिल्का कूट, छोटी पीपल, कुटकी अजवाइन, पोहकरमूल, ढाकके बीज, चीतकी जड, कचूर, कालानमक, भुइँआवला, सेंधानमक, बेलका गूदा, तालीशपत्र, जीवन्ती, वचा प्रत्येक १ एक तोला हींग ३ माशेका कल्क घी ६४ तोला और जल चतुर्गुण मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत बलानुसार सेवनसे हिक्का तथा श्वास, शोथ, वातार्श, ग्रहणी, हृदय तथा पार्श्वशूल नष्ट होता है ॥ २१–२३ ॥–

भार्ङ्गीगुडः ।

शतं संगृह्य भार्ङ्ग्यास्तु दशमूल्यास्तथापरम् ॥ २४ ॥
शतं हरीतकीनां च पचेत्तोये चतुर्गुणे ।
पादावशेषे तस्मिंस्तु रसे वस्त्रपरिप्लुते ॥ २५ ॥
आलोड्य च तुलां पूतां गुडस्य त्वभयां ततः ।
पुनः पचेत्मृद्वग्नौ यावल्लेहत्वमागतम् ॥ २६ ॥
सुशीते मधुनश्चात्र षट्पलानि प्रदापयेत् ।
त्रिकटु त्रिसुगन्धं च पलिकानि पृथक् पृथक् ॥ २७ ॥
कर्षद्वयं यवक्षारं सञ्चूर्ण्य प्रक्षिपेत्ततः ।
भक्षयेदभयामेकां लेहस्यार्धपलं लिहेत् ॥ २८ ॥
श्वासं सुदारुणं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ।
स्वरवर्णप्रदो ह्येष जठराग्नेश्च दीपनः ॥ २९ ॥
पलोल्लेखागते माने न द्वैगुण्यमिहेष्यते ।
हरीतकीशतस्यात्र प्रस्थत्वादाढकं जलम् ॥ ३० ॥

भारङ्गी ५ सेर, दशमूल मिलित ५ सेर, हर्र १०० सबसे चतुर्गुण जल मिलाकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान, हर्रें निकाल क्वाथमें मिला उसीमें ५ सेर गुड मिलाकर पकाना चाहिये । लेह सिद्ध हो जानेपर ठण्डाकर शहद २४ तोला, त्रिकटु, त्रिसुगन्ध (दालचीनी तेजपात, इलायची) प्रत्येक पृथक् पृथक् ४ तोले तथा यवाखार २ तोले मिलाना चाहिये । फिर इससे १ हर्र खाकर ऊपरसे २ तोला चटनी चाटनी चाहिये । यह कास तथा श्वासको नष्ट करता, अग्नि दीप्त करता तथा स्वर व वर्णको उत्तम बनाता है । यहां पलसे परिणाम लिखा है, अतः चतुर्गुणको ही छोडना चाहिये, चतुर्गुणको द्विगुण कर अष्टगुण नहीं डालना चाहिये । हरीतकी १०० होनेसे १ प्रस्थ होगी, उनका भी चतुर्गुण एक आढक ही जल छोड़ना चाहिये ॥ २४—३० ॥

कुलत्थगुडः ।

कुलत्थं दशमूलं च तथैव द्विजयष्टिका ।
शतं शतं च संगृह्य जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ३१ ॥

पादावशेषे तस्मिंस्तु गुडस्यार्धतुलां क्षिपेत्।
शीतीभूते च पक्वे च मधुनोऽष्टौ पलानि च ॥ ३२ ॥
षट्पलानि तुगाक्षीर्याः पिप्पल्याश्च पलद्वयम्।
त्रिसुगन्धिकयुक्तं तत्खादेदग्निबलं प्रति ॥ ३३ ॥
श्वासं कासं ज्वरं हिक्कां नाशयेत्तमकं तथा।
प्रतिशतं द्रोणनियमाज्ज्ञेयं द्रोणत्रयं त्विह ॥ ३४ ॥

कुलथी, दशमूल, भारङ्गी प्रत्येक ५ सेर, जल ३ द्रोण (अर्थात् ३८ सेर ३२ तोला) मिलाकर पकाना, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान गुड २॥ सेर मिलाकर अवलेह बनाना चाहिये, सिद्ध हो जानेपर शहद ३२ तोला, वंशलोचन २४ तोला, छोटी पीपल ८ तोला, दालचीनी, तेजपात, इलायची ८ तोला प्रत्येक मिलाकर अग्निबलानुसार खाना चाहिये। यह—श्वास, कास, ज्वर, हिक्का तथा निर्बलताको नष्ट करता है। प्रतितुलापर १ द्रोणके सिद्धान्तसे जल ३ द्रोण ही पडेगा ॥ ३१–३४ ॥

इति हिक्काश्वासाधिकारः समाप्तः।

अथ स्वरभेदाधिकारः।

स्वरभेदे चिकित्साक्रमः।

वाते सलवणं तैलं पित्ते सर्पिः समाक्षिकम्।
कफे सक्षारकटुकं क्षौद्रं कवल इष्यते ॥ १ ॥
गले तालुनि जिह्वायां दन्तमूलेषु चाश्रितः।
तेन निष्कृष्यते श्लेष्मा स्वरश्चास्य प्रसीदति ॥ २ ॥
आद्ये कोष्णं जलं पेयं जग्ध्वा घृतगुडौदनम्।
क्षीरान्नपानं पित्तोत्थे पिबेत्सर्पिरतन्द्रितः ॥ ३ ॥
पिप्पलीं पिप्पलीमूलं मरिचं विश्वभेषजम्।
पिबेन्मूत्रेण मतिमान्कफजे स्वरसंक्षये ॥ ४ ॥
स्वरोपघाते मेदोजे कफवद्विधिरिष्यते।
क्षयजे सर्वजे चापि प्रत्याख्याय समाचरेत् ॥ ५ ॥

वातजन्य स्वरभेदमें लवणके सहित तैल, पित्तजन्य स्वरभेदमें शहदके सहित घी और कफजन्यमें क्षार और कटुपदार्थोंके साथ शहदका कवल धारण करना चाहिये। इससे गला, तालु, जिह्वा तथा दन्तमूलोंमें जमा हुआ कफ निकलता है और स्वर उत्तम होता है। इसी प्रकार वातजन्यमें घी, गुड मिलाकर भात खाना चाहिये, ऊपरसे गरम जल पीना चाहिये। पित्तजन्यमें दूधके साथ भोजन तथा दूध और घी पीना चाहिये। कफजन्यमें छोटी पीपल, पिपरामूल, काली मिर्च, सोंठका चूर्ण गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिये। मेदोजन्य स्वरभेदमें कफके समान ही चिकित्सा करनी चाहिये। तथा क्षयज व सन्निपातज स्वरभेदमें प्रत्याख्यान (असाध्य है अच्छा हो या न हो ऐसा कह) कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १—५ ॥

चव्यादिचूर्णम्।

चव्याम्लवेतसकटुत्रिकतिन्तिडीक-
तालीसजीरकतुगादहनैः समांशैः।
चूर्णं गुडप्रमृदितं त्रिसुगन्धियुक्तं
वैस्वर्यपीनसकफारुचिषु प्रशस्तम् ॥ ६ ॥

चव्य, अम्लवेत, सोंठ, मिर्च, पीपल, तिन्तिडीक, तालीशपत्र, सफेद जीरा, वंशलोचन, चीतकी जड दालचीनी, तेजपात इलायची समान भाग, सबके समान गुड मिलाकर सेवन करनेसे स्वरभेद पीनस तथा कफजन्य अरुचि नष्ट होती है ॥ ६ ॥

केचन योगाः।

तैलाक्तं स्वरभेदे वा खदिरं धारयेन्मुखे।
पथ्या पिप्पलियुक्ता वा संयुक्ता नागरेण वा ॥ ७ ॥
अजमोदां निशां धात्रीं क्षारं वह्निं विचूर्ण्य च।
मधुसर्पिर्युतं लीढ्वा स्वरभेदं व्यपोहति ॥ ८ ॥
कलितरुफलसिन्धुकणाचूर्णं तक्रेण लीढमपहरति।
स्वरभेदं गोपयसा पीतं वामलकचूर्णं च ॥ ९ ॥
बदरीपत्रकल्कं वा घृतभृष्टं ससैन्धवम्।
स्वरोपघाते कासे च लेहमेनं प्रयोजयेत् ॥ १० ॥

कत्थेके चूर्णको तिलतैलमें डुबाकर अथवा हर्र छोटी पीपलके साथ अथवा सोंठके साथ मुखमें रखना चाहिये। अजवाइन, हल्दी, आंवला, यवाखार, व चीतकी जडका चूर्ण बनाकर घी व शहदके साथ चाटनेसे स्वरभेद नष्ट होता है। इसी प्रकारसे बहेडेके फलका छिल्का सेंधानमक छोटी पीपलका चूर्ण मट्ठेके साथ चाटनेसे अथवा आंवलेका चूर्ण गोदुग्धके साथ सेवन करनेसे स्वरभेद नष्ट होता है। अथवा बेरकी पत्तीकी चटनी घीमें भून सेंधानमक मिलाकर स्वरभेद तथा कासमें चाटना चाहिये ॥ ७–१० ॥

उच्चैर्व्याहरणज-स्वरभेदचिकित्सा।

शर्करामधुमिश्राणि शृतानि मधुरैः सह।
पिबेत्पयांसि यस्योच्चैर्वदतोऽभिहतः स्वरः ॥ ११ ॥

मधुर गणकी औषधियोंसे सिद्ध दूधमें शक्कर व शहद मिलाकर पीना चाहिये ॥ ११ ॥

कण्टकारीघृतम् ।

व्याघ्रीस्वरसविपक्वं रास्नावाट्यालगोक्षुरव्योषैः ।
सर्पिः स्वरोपघातं हन्यात्कासं च पञ्चविधम् ॥ १२ ॥

छोटी कटेरीका स्वरस तथा रासन, खरेटी, गोखरू और मिर्च, पीपलके कल्कसे सिद्ध घृत कास तथा स्वरभेदको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

स्वरसाभावे ग्राह्यद्रव्यम् ।

शुष्कद्रव्यमुपादाय स्वरसानामसम्भवे ।
वारिण्यष्टगुणे साध्यं ग्राह्यं पादावशेषितम् ॥ १३ ॥

स्वरसके अभावमें सूखा द्रव्य अठगुणे जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर छानकर काममें लाना चाहिये ॥ १३ ॥

भृंगराजघृतम् ।

भृङ्गराजामृतावल्ली वासकदशमूलकासमर्दरसैः ।
सर्पिः सपिप्पलीकं सिद्धं स्वरभेदकासजिन्मधुना ॥१४॥

भागरा, गुर्च, अडूसा, दशमूल और कासमर्दका स्वरस तथा छोटी पीपलके कल्कसे सिद्ध घृत शहदके साथ चाटनेसे स्वरभेद तथा कासको नष्ट करता है १४॥

इति स्वरभेदाधिकारः समाप्तः ।

अथारोचकाधिकारः ।

अरोचके चिकित्सोपायाः । —

वान्तिं समीरणे पित्ते विरेकं वमनं कफे ।
कुर्याद्धृद्यानुकूलानि हर्षणानि मनोघ्नजे ॥ १ ॥
वान्तो वचाम्भिरनिले विधिवत्पिबेत्तु
स्नेहोष्णतोयमदिरान्यतमेन चूर्णम् ।
कृष्णाविडङ्गयवभस्महरेणुभार्ङ्गी-
रास्नैलहिङ्गुलवणोत्तमनागराणाम् ॥ २ ॥
पैत्ते गुडाम्बुमधुरैर्वमनं प्रशस्तं
लेहः ससैन्धवसितामधुसर्पिरिष्टः ।
निम्बाम्बुच्छर्दितवतः कफजे तु पानं
राजद्रुमाम्बु मधुना सह दीप्यकाढ्यम् ॥ ३ ॥
चूर्णं यदुक्तमथवानिलजे तदेव
सर्वैश्च सर्वकृतमेवमुपक्रमेत ॥ ४ ॥

वातारोचकमें वमन, पित्तमें विरेचन तथा कफमें वमन और मनके विकार, तथा घृणा आदिसे उत्पन्न अरोचकमें हृदयके लिये हितकर अनुकूल प्रसन्नताकारक पदार्थोंका सेवन करना चाहिये । वातारोचकमें वचाके क्राथसे वमन कर विधिपूर्वक स्नेह गरम जल अथवा शराबमेंसे किसी एकके साथ छोटी पीपल, वायविडंग, यवाखार, सम्भालूके बीज, भारङ्गी, रासन, इलायची, भुनी हींग, सेंधानमक तथा सोंठका चूर्ण पीना चाहिये । पित्तारोचकमें गुडका शर्बत व मीठी चीजोंसे वमनकर सेंधानमक, मिश्री, शहद और घी मिलाकर चाटना चाहिये । कफारोचकमें नीमके क्राथसे वमन कर अमलतासका क्राथ अजवाइनका चूर्ण व शहद डालकर पीना चाहिये । अथवा वातारोचकमें जो चूर्ण लिखा है वही खाना चाहिये । और सन्निपातजको सभी प्रयोगोंके सम्मिश्रणसे शान्त करना चाहिये ॥ १–४ ॥

कवलग्रहाः ।

कुष्ठसौवर्चलाजाजी शर्करामरिचं विडम् ।
धात्र्येलापद्मकोशीरपिप्पलीचन्दनोत्पलम् ॥ ५ ॥
लोध्रं तेजोवती पथ्या त्र्यूषणं सयवाग्रजम् ।
आर्द्रदाडिमनिर्यासश्चाजाजीशर्करायुतः ॥ ६ ॥
सतैलमाक्षिकाश्चैते चत्वारः कवलग्रहाः ।
चतुरोऽरोचकान्हन्युर्वाताद्येकजसर्वजान् ॥ ७ ॥
त्वङ्मुस्तमेलाधान्यानि मुस्तमामलकानि च ।
त्वक्च दार्वी यमान्यश्च पिप्पल्यस्तेजवत्यपि ॥ ८ ॥
यमानी तिन्तिडीकं च पञ्चैते मुखशोधनाः ।
श्लोकपादैरभिहिताः सर्वारोचकनाशनाः ॥ ९ ॥

(१) कूठ, काला नमक, सफेद जीरा, शक्कर, मिर्च, विडलवण (२) आंवला, इलायची, पद्माख, खश, छोटी पीपल, सफेद चन्दन, नीलोफर (३) लोध, चव्य, हर्र, त्रिकटु, यवक्षार (४) ताजे अनारका रस जीरा व शक्करके साथ इस प्रकार यह चार प्रयोग क्रमशः वात, पित्त, कफ तथा सन्निपातज अरोचकमें तैल व शहदके साथ कवलके रूपमें प्रयुक्त करना चाहिये । दालचीनी, नागरमोथा, छोटी इलायची, धनियां, नागरमोथा, आवला, दालचीनी, दारुहल्दी, अजवाइन, छोटी पीपल, व चव्य, अजवाइन, तिन्तिडीक इन पांच प्रयोगमेंसे सिद्ध किसी एक औषधका कवल धारण करनेसे समस्त अरोचक नष्ट होजाते हैं ॥ ५–९ ॥

अम्लिकादिकवलः ।

आम्लिका गुडतोयं च त्वगेलामरिचान्वितम् ।
अभक्तच्छन्दरोगेषु शस्तं कवलधारणम् ॥ १० ॥

अम्ली, गुड, जल, दालचीनी, इलायची, मिर्च मिलाकर कवल धारण करनेसे अरोचक नष्ट होता है ॥ १० ॥

कारव्यादिकवलः ।

कारव्याजाजीमरिच द्राक्षावृक्षाम्लदाडिमम् ।
सौवर्चल गुडं क्षौद्रं सर्वारोचकनाशनम् ॥ ११ ॥

काला जीरा, सफेद जीरा, मिर्च, मुनक्का, अम्लवेत, अनारदाना, काला नमक, गुड, शहद इनका कवल धारण करना हितकर है ॥ ११ ॥

त्र्यूषणादिकवलः ।

त्रिण्यूषणानि त्रिफला रजनीद्वय च
चूर्णीकृतानि यवशूकविमिश्रितानि ।
क्षौद्रान्वितानि वितरेन्मुखधारणार्थ-
मन्यानि तिक्तकटुकानि च भेषजानि ॥ १२ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, यवाखारका चूर्ण बना शहद मिलाकर मुखमे धारण करनेसे तथा अन्य तिक्त कटु पदार्थ मुखमें धारण करनेसे अरोचक नष्ट होता है ॥ १२ ॥

दाडिमरसः ।

विड्चूर्णमधुसंयुक्तो रसो दाडिमसम्भव ।
असाध्यामपि संहन्यादरुचि वक्त्रधारित ॥ १३ ॥

विडलवणका चूर्ण व शहद अनारके रसमे मिलाकर कवल धारण करनेसे असाध्य अरुचिको भी नष्ट करता है ॥ १३ ॥

यमानीषाडवम् ।

यमानी तिन्तिडीक च नागर चाम्लवेतसम् ।
दाडिम वदरं चाम्ल कार्पिकाण्युपकल्पयेत् ॥ १४ ॥
धान्यसौवर्चलाजाजी वरङ्ग चार्धकार्पिकम् ।
पिप्पलीनां शतं चैक द्वे शते मरिचस्य च ॥ १५ ॥
शर्करायाश्च चत्वारि पलान्येकत्र चूर्णयेत् ।
जिह्वाविशोधनं हृद्यं तच्चूर्णं भक्तरोचनम् ॥ १६ ॥
हृत्पीडापार्श्वशूलघ्न विवन्धानाहनाशनम् ।
कासश्वासहर ग्राहि ग्रहण्यर्शोविकारनुत् ॥ १७ ॥

अजवाइन, तिन्तिडीक, सोंठ, अम्लवेत, अनारदाना, खट्टे वेर प्रत्येक एक तोला, धनिया, काला नमक, सफेद जीरा, दालचीनी प्रत्येक ६ माशे, छोटी पीपल १०० गिनतीमें, काली मिर्च २००, मिश्री १६ तोला सबका चूर्ण बना लेना चाहिये । यह यमानीषाडव चूर्ण जिह्वाको शुद्ध करता, हृद्य तथा भोजनमें रुचि करता, हृदयका दर्द, पसलीका दर्द, मलकी रुकावट, अफारा, कास, श्वास तथा ग्रहणी और अर्शको नष्ट करता है ॥ १४-१७ ॥

कलहंसकः ।

अष्टादशशिग्रुफलान्यथ दशमरिचानि विंशतिश्च पिप्पल्याः ।
आर्द्रकपलं गुडपलं प्रस्थत्रयमारनालस्य ॥ १८ ॥
एतद्विडलवणयुतं मन्थाहतं सुरभि गन्धाढ्यम् ।
व्यञ्जनसहस्रवाति ज्ञेय कलहंसकं नाम ॥ १९ ॥

अठारह सहिजनके बीज, १० काली मिर्च, २० छोटी पीपल, अदरख ४ तोला, गुड ४ तोला, काञ्जी ३ प्रस्थ सब एकमें मिला तथा लवणसे नमकीन हो इतना विडलवण मिला मथनीसे मथकर रखना चाहिये । यह सुगन्धित, भोजनमें रुचि करनेवाला तथा पाचक कलहस नामक पना है ॥ १८ ॥ १९ ॥

इत्यरोचकाधिकारः समाप्तः ।

अथ छर्द्यधिकारः ।

लंघनप्राशस्त्यम् ।

आमाशयोत्क्लेशभवा हि सर्वा-
श्छर्द्यो मता लघनमेव तस्मात् ।
प्राक्कारयेन्मारुतजा विमुच्य
संशोधनं वा कफपित्तहारि ॥ १ ॥

समस्त छर्दियां आमाशयमे दोष बढ जानेसे ही होती हैं अतः वातजको छोडकर सबमे प्रथम लंघन ही कराना चाहिये अथवा कफ, पित्तनाशक संशोधन अर्थात् वमन विरेचन कराना चाहिये ॥ १ ॥

---

१ "षाडव इति मधुराम्लयोगस्य संज्ञा । यमान्युपलक्षितः षाडवः यमानीषाडवः । इति शिवदासः ।" तिन्तिडीक इम्लीका भी पर्यायवाचक है अतः इम्ली भी वैद्यलोग छोडते हैं, पर मेरे विचारसे तिन्तिडीक एक स्वतन्त्र खट्टा द्रव्य होता है इसके बीज लाल लाल चिरौंजीके दानेसे कुछ छोटे होते हैं उन्हे ही छोडना चाहिये ।

वातच्छर्दिचिकित्सा ।

हन्यात्क्षीरोदक पीत छर्दि पवनसम्भवाम् ।
ससैन्धवं पिबेत्सर्पिर्वातच्छर्दिनिवारणम् ॥ २ ॥
मुद्गामलकयूष वा ससर्पिष्क ससैन्धवम् ।
यवागू मधुमिश्रा वा पञ्चमूलीकृता पिबेत् ॥ ३ ॥

दूध व जल मिलाकर पीना अथवा सेंधानमकके साथ घी पीना अथवा मूग व आवलेका यूष, घी, सेंधानमक मिलाकर अथवा पञ्चमूलसे सिद्ध की हुई यवागू शहद मिलाकर पीनेसे वातच्छर्दि नष्ट होती है ॥ २ ॥ ३ ॥

पित्तच्छर्दिचिकित्सा ।

पित्तात्मिकाया त्वनुलोमनार्थं
द्राक्षाविदारीक्षुरसैस्त्रिवृत्स्यात् ।
कफाशयस्थं त्वतिमात्रवृद्धं
पित्तं नयेत्स्वादुभिरूर्ध्वमेव ॥ ४ ॥
शुद्धस्य काले मधुशर्कराभ्यां
लाजैश्च मन्थ यदि वापि पेयाम् ।
प्रदापयेन्मुद्गरसेन वापि
शाल्योदन जाङ्गलजै रसैर्वा ॥ ५ ॥
चन्दनेनाक्षमात्रेण सयोज्यामलकीरसम् ।
पिबेन्माक्षिकसंयुक्तं छर्दिस्तेन निवर्तते ॥ ६ ॥
चन्दनं च मृणाल च वालकं नागरं वृषम् ।
सतण्डुलोदकक्षौद्र पीत कल्को वमि जयेत् ॥ ७ ॥
कषायो भृष्टमुद्गस्य सलाजमधुशर्करः ।
छर्द्यतीसारतृड्दाहज्वरघ्नः संप्रकाशितः ॥ ८ ॥
हरीतकीना चूर्णं तु लिह्यान्माक्षिकसंयुतम् ।
अधोभागीकृते दोपे छर्दि क्षिप्रं निवर्तते ॥ ९ ॥
गुडूचीत्रिफलारिष्टपटोलै क्वथित पिबेत् ।
क्षौद्रयुक्त निहन्त्याशु छर्दि पित्ताम्लसम्भवाम् ।
क्वाथ पर्पटज पीत. सक्षौद्रश्छर्दिनाशन ॥ १० ॥

पित्तच्छर्दिमें मुनक्का, विदारीकन्द और ईखके रसके साथ निसोथका चूर्ण अनुलोमन (विरेचन) के लिये देना चाहिये । अथवा कफाशयस्थ अधिक बढे पित्तको मधुर द्रव्यो द्वारा वमन कराकर ही निकाल देना चाहिये । शुद्ध हो जानेपर भोजनके समय शहद व शक्करके साथ धानकी लाईकी पेया अथवा मन्थ अथवा मूगके यूषके साथ या जागल प्राणियोंके मास रसके साथ शालि चावलोंका भात खिलाना चाहिये । चन्दनका चूर्ण १ तोला, आंवलाका रस ४ तोला, शहद १ तोला मिलाकर पीनेसे वमन बन्द हो जाता है । इसी प्रकार सफेद चन्दनका कल्क, कमलकी डण्डी, सुगन्धवाला, सोंठ, अडूसा इनका कल्क चावलोंके धोवन व शहदके साथ पीनेसे पित्तज वमन शान्त होता है । इसी प्रकार भुनी मूगका काढा, खील, शहद व शक्कर मिलाकर पीनेसे वमन, अतीसार, तृषा, दाह व ज्वरको शान्त करता है । अथवा हर्रका चूर्ण शहद मिलाकर चाटनेसे विरेचनसे दोष शुद्ध हो जाते हैं और वमन शान्त होती है । अथवा गुर्च, त्रिफला, नीमके पत्ते, परवलके पत्तेका क्वाथ बना शहद मिलाकर पीनेसे पित्तज छर्दि शीघ्र ही शान्त होती है । पित्तपापडाका क्वाथ शहदके साथ पीनेसे वमन शान्त होती है ॥ ४–१० ॥

१ यहांपर 'क्षीरोदकम्' के स्थानमें पाठान्तर 'क्षीरघृतम्' ऐसा सुश्रुत टीकाकार उह्लणने किया है और उसका अर्थ "क्षीरादुद्भूत घृतम्" किया है पर वाग्भटने "पीत तुल्याम्बु वा पयः" अतः वही यहा लिखा गया है ॥

कफच्छर्दिचिकित्सा ।

कफात्मिकायां वमनं प्रशस्तं-
सपिप्पलीसर्षपनिम्बतोयैः ।
पिण्डीतकैः सैन्धवसंप्रयुक्तै-
श्छर्द्यां कफामाशयशोधनार्थम् ॥ ११ ॥
विडङ्गत्रिफलाविश्वचूर्णं मधुयुतं जयेत् ।
विडङ्गप्लवशुण्ठीनामथवा श्लेष्मजा वमिम् ॥ १२ ॥
मज्जाम्रव वा बदरस्य चूर्णं
मुस्तायुता कर्कटकस्य शृङ्गीम् ।
दुरालभा वा मधुसम्प्रयुक्ता
लिह्यात्कफच्छर्दिविनिग्रहार्थम् ॥ १३ ॥

कफात्मक वमनमे कफ और आमकी शुद्धिके लिये छोटी पीपल, सरसो, नीमका क्वाथ, मैनफल व सेंधानमकका चूर्ण मिला पिकर वमन करना चाहिये । वायविडंग, त्रिफला व सोंठका चूर्ण अथवा वायविडंग, नागरमोथा व सोंठका चूर्ण शहद मिलाकर चाटनेसे कफज छर्दि शान्त होती है । जामुनकी गुठली और बेरकी गुठलीका चूर्ण अथवा नागरमोथा व काकडासिंगीका चूर्ण अथवा जवासाका चूर्ण शहद मिलाकर चाटनेसे कफज छर्दि शान्त होती है ॥ ११–१३ ॥

सन्निपातजच्छर्दिचिकित्सा ।

तर्पणं वा मधुयुतं तिसृणामपि भेषजम् ।
कृतं गुडूच्या विधिवत्कषायं हिमसंज्ञितम् ॥ १४ ॥
तिसृष्वपि भवेत्पथ्य माक्षिकेण समायुतम् ।

शहद युक्त तर्पण (लाईके सत्तुओंका) त्रिदोषज छर्दिको हितकर है । इसी प्रकार गुर्चका शीत कषाय तथा शहद मिलाकर पीनसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है ॥ १४ ॥—

शीतकषायविधानम् ।

द्रव्यादापोथितात्तोये प्रतप्ते निशि संस्थितात् ॥ १५ ॥
कषायो योऽभिनिर्याति स शीतः समुदाहृतः ।
षड्भिः पलैश्चतुर्भिर्वा सलिलाच्छीतफाण्टयोः ॥ १६ ॥
आप्लुतं भेषजपलं रसार्थं वा पलद्वयम् ।

द्रव्यको कुचल कर गरम जलमें रातमें भिगोना चाहिये, प्रातः मलकर छाननेसे जो काढा निकले वही शीतकषाय है । द्रव्य एक पल शीतकषाय या फाण्ट बनानेके लिये ६ पल या ४ पल जलमें भिगोना चाहिये और यदि रस बनाना हो तो उतने ही जलमें २ पल औषध छोडना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

श्रीफलादिशीतकषायः ।—

श्रीफलस्य गुडूच्या वा कषायो मधुसंयुतः ।
पेयश्छर्दित्रये शीतो मूर्वा वा तण्डुलाम्बुना ॥ १७ ॥
जम्ब्वाम्रपल्लवगवेधुकधान्यसेव्य-
ह्रीवेरवारि मधुना पिबतोऽल्पमल्पम् ।
छर्दिः प्रयाति शमनं त्रिसुगन्धियुक्ता
लीढा निहन्ति मधुनाथ दुरालभा वा ॥ १८ ॥
ज्ञातो रसः कपित्थस्य पिप्पलीमरिचान्वितः ।
क्षौद्रेण युक्तः शमयेल्लेहोऽयं छर्दिमुल्बणाम् ॥ १९ ॥
पिष्ट्वा धात्रीफलं द्राक्षां शर्करां च पलोन्मिताम् ।
दत्त्वा मधुपलं चात्र कुडवं सलिलस्य च ।
वाससा गालितं पीतं हन्ति छर्दिं त्रिदोषजाम् ॥ २० ॥

बेल अथवा गुर्चका शीतकषाय शहदके साथ अथवा मूर्वाका चूर्ण चावलके जलके साथ पीनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है । जामुन, आमके पत्ते, पसहीके चावल, खश, तथा सुगन्धवालाका क्वाथ शहद मिलाकर थोडा थोडा पीनेसे अथवा दालचीनी, तेजपात, इलायची व जवासाका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है, कैथेका रस छोटी पीपल व काली मिर्चका चूर्ण तथा शहद मिलाकर चाटनेसे बढी हुई छर्दि शान्त होती है । आंवला मुनक्का व शक्कर तीनो मिलाकर ४ तोला, शहद ४ तोला व जल १६ तोला मिला छानकर पीनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है ॥ १७–२० ॥

एलादिचूर्णम् ।

एलालवङ्गगजकेशरकोलमज्जा-
लाजाप्रियङ्गुघनचन्दनपिप्पलीनाम् ।
चूर्णानि माक्षिकसितासहितानि लीढ्वा
छर्दिं निहन्ति कफमारुतपित्तजां च ॥ २१ ॥

छोटी इलायची, लवङ्ग, नागकेशर, बेरकी गुठलीकी गूदी, खील, प्रियङ्गु (इसके अभावमें कमलगट्टेकी मींगी), नागरमोथा, सफेद चन्दन, छोटी पीपलका चूर्ण शहद व मिश्री मिलाकर चाटनेसे त्रिदोषज छर्दि शान्त होती है ॥ २१ ॥

कोलमज्जादिलेहः ।

कोलामलकमज्जानो माक्षिकविट्सितामधु ।
सकृष्णातण्डुला लेहश्छर्दिमाशु नियच्छति ॥ २२ ॥

बेर व आंवलेकी गुठलीकी गूदी, मोम, मिश्री, शहद तथा छोटी पीपलका बनाया गया अवलेह छर्दिको शान्त करता है ॥ २२ ॥

पेयं जलम् ।

अश्वत्थवल्कलं शुष्कं दग्ध्वा निर्वापितं जले ।
तज्जलं पानमात्रेण छर्दिं जयति दुस्तराम् ॥ २३ ॥

पीपलकी सूखी छालको जलाकर जलमें बुझा देना चाहिये । यह जल पीनेमात्रसे छर्दि नष्ट होती है ॥ २३ ॥

रक्तच्छर्दिचिकित्सा ।

यष्ट्याह्वं चन्दनोपेतं सम्यक् क्षीरप्रपेषितम् ।
तेनैवालोड्य पातव्यं रुधिरच्छर्दिनाशनम् ॥ २४ ॥

मौरेठी तथा सफेद चन्दनको दूधमें पीस तथा दूधमें ही मिलाकर पीनेसे रक्तच्छर्दि शान्त होती है ॥ २४ ॥

त्रयो लेहाः ।

लाजाकपित्थमधुमागधिकोषणानां
क्षौद्राभयात्रिकटुधान्यकजीरकाणाम् ।
पथ्यामृतामरिचमाक्षिकपिप्पलीनां
लेहास्त्रयः सकलवम्यरुचिप्रशान्त्यै ॥ २५ ॥

खील, कैथा, शहद, छोटी पीपल, काली मिर्च अथवा शहद, बडी हर्र, त्रिकटु, धनिया, जीरा अथवा छोटी हर्र, गुर्च, काली मिर्च, शहद, छोटी पीपल यह तीनो अवलेह समस्त वमन तथा अरुचिको शान्त करते हैं ॥ २५ ॥

पद्मकाद्यं घृतम् ।

पद्मकामृतनिम्बानां धान्यचन्दनयोः पचेत् ।
कल्के क्वाथे च हविषः प्रस्थं छर्दिनिवारणम् ।
तृष्णारुचिप्रशमनं दाहज्वरहरं परम् ॥ २६ ॥

पद्माख, गुर्च, नीमकी छाल, धनिया, लालचन्दनके कल्क और क्वाथमें सिद्ध किया घृत छर्दि, तृष्णा, अरुचि, दाह तथा ज्वरको शान्त करता है ॥ २६ ॥

इति छर्दिविकारः समाप्तः।

अथ तृष्णाधिकारः।

वातजतृष्णाचिकित्सा।

तृष्णायां पवनोत्थायां सगुडं दधि शस्यते।
रसाश्च बृंहणाः शीता गुडूच्या रस एव च ॥ १ ॥
पञ्चाङ्गिका पञ्चगणा य उक्ता-
स्तेष्वम्बु सिद्धं प्रथमे गणे वा।
पिबेत्सुखोष्णं मनुजोऽल्पमात्रं
तृष्णोपरोधं न कदापि कुर्यात्।

वातजन्य तृष्णामें गुडके साथ दही तथा बृंहण शीतलरस तथा गुर्चका रस लाभदायक होता है। पञ्चगण (लघु-महत्-तृण-कण्टकि-वल्ली-भेदात्) के पञ्चाङ्गका जल अथवा प्रथम गण (लघुपञ्चमूल) से सिद्ध किया जल कुछ गरम गरम पीना चाहिये। प्यास कभी न रोकना चाहिये ॥ १ ॥

पित्तजतृष्णाचिकित्सा।

पित्तोत्थितं पित्तहरैर्विपक्वं
निहन्ति तोयं पय एव चापि ॥ २ ॥
काश्मर्यशर्करायुक्तं चन्दनोशीरपद्मकम्।
द्राक्षामधुकसंयुक्तं पित्ततर्षे जलं पिबेत् ॥ ३ ॥
पित्तजायां तु तृष्णायां पक्वोदुम्बरजो रसः ॥
तत्क्वाथो वा हिमस्तद्वच्छारिवादिगणाम्बु वा ॥ ४ ॥
स्याज्जीवनीयसिद्धं क्षीरघृतं वातपित्तजे तर्षे
तद्वद्द्राक्षाचन्दनखर्जूरोशीरमधुयुतं तोयम् ॥ ५ ॥
स्यात्सारिवादौ तृणपञ्चमूले
तथोत्पलादौ मधुरे गणे वा।
कुर्यात्कषायांस्तु तथैव युक्ता-
न्मधूकपुष्पादिषु चापरेषु ॥ ६ ॥

पित्तज तृष्णाको पित्तहर औषधियोंसे सिद्ध दूध अथवा जल नष्ट करता है। खम्भार, मिश्री, चन्दन, खश, पद्माख, मुनक्का, मौरेठीसे सिद्ध जल पीना चाहिये। पके गूलरका रस अथवा उसीका हिम कषाय अथवा शारिवादिगणका कषाय पित्तज तृष्णाको नष्ट करता है। जीवनीय गणसे सिद्ध दूध तथा घृत वात-पित्तज-तृष्णाको शान्त करता है। तथा मुनक्का चन्दन, छुहारा, खश और शहदका शर्बत तथा शारिवादिगण अथवा तृणपञ्चमूल, उत्पलादि गण और मधुरगण तथा महुआ आदिमेंसे किसी एकका कषाय बनाकर पित्तज तृष्णासे पीडित पुरुषको पिलाना चाहिये ॥ २–६ ॥

कफजतृष्णाचिकित्सा।

बिल्वाढकीधातकिपञ्चकोल-
दर्भेषु सिद्धं कफजां निहन्ति।
हितं भवेच्छर्दनमेव चात्र
तप्तेन निम्बप्रसवोदकेन ॥ ७ ॥
सर्जीरकाण्यार्द्रकशृङ्गवेर-
सौवर्चलान्यर्धजलाप्लुतानि।
मद्यानि हृद्यानि च गन्धवन्ति
पीतानि सद्यः शमयन्ति तृष्णाम् ॥ ८ ॥

बेलका गूदा, अरहरकी पत्ती व धायके फूल, पञ्चकोल, तथा कुशसे सिद्ध जल कफज तृष्णाको दूर करता है। तथा नीमके क्वाथसे वमन करना इसमें विशेष हित करता है। मद्यमें आधा जल और जीरा, अदरख, सोंठ व काला नमक मिलाकर पीनेसे तृष्णा शीघ्र ही शान्त होती है ॥ ७ ॥ ८ ॥

क्षतक्षयजचिकित्सा।

क्षतोत्थितां रुग्विनिवारणेन
जयेद्रसानामसृजश्च पानैः।
क्षयोत्थितां क्षीरजलं निहन्या-
न्मांसोदकं वाथ मधूदकं वा ॥ ९ ॥

क्षतोत्थित तृष्णामें पीडा शान्तकर मांसरस रक्त पिलाना चाहिये। क्षयोत्थित तृष्णाको दूध और जल अथवा मांसरस तथा शहदका शर्बत शान्त करता है ॥ ९ ॥

सर्वजतृष्णाचिकित्सा।

गुर्वन्नजामुल्लिखनैर्जयेत्तु क्षयादृते सर्वकृतां च तृष्णाम् ॥
लाजोदकं मधुयुतं शीतं गुडविमर्दितम्।
काश्मर्यशर्करायुक्तं पिबेत्तृष्णार्दितो नरः ॥ १० ॥

---

१ पञ्चगणसे लघुपञ्चमूल, बृहत्पञ्चमूल, अर्थात् दश-मूलके २ गण हुए तथा तीसरा तृणपञ्चमूल, "कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति गणो वरः। तृणपञ्चमूलमाख्यातम्।" "गुडूची-मेषशृङ्गी-शारिवा-विदारी-हरिद्रासु वल्लीपञ्चमूलमिति संज्ञा।" "करमर्दः त्रिकण्टश्च हिंस्रा झिण्टी शतावरी इति कण्टकिपञ्चमूलम्।"

गुर्वन्नजन्य तृष्णामें वमन कराना चाहिये तथा क्षय-जको छोडकर समस्त तृष्णाओंको वमन शान्त करता है । खीलसे सिद्ध जलको ठढाकर गुड़, गम्भार व शकर मिला कर पीनेसे समस्त तृष्णाएं शान्त होती है ॥ १० ॥

सामान्यचिकित्सा ।

अतिरूक्षदुर्बलानां तर्षं शमयेन्नृणामिहाशु पयः ।
छागो वा घृतभृष्टः शीतो मधुरो रसो हृद्यः ॥ ११ ॥
आम्रजम्बूकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम् ।
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णां चैवापकर्षति ॥ १२ ॥
वटशुङ्गसितालोध्रदाडिमं मधुकं मधु ।
पिबेत्तण्डुलतोयेन छर्दितृष्णानिवारणम् ॥ १३ ॥
गोस्तनेक्षुरसक्षीरयष्टीमधुमधूत्पलैः ।
नियतं नस्यतः पानैस्तृष्णा शाम्यति दारुणा ॥ १४॥

अतिरूक्ष तथा दुर्बल पुरुषोंकी तृष्णाको दूध अथवा बकरेका मासरस घीमें भून ठढा कर मधुर द्रव्य मिला-कर पीनेसे शान्त करता है इसी प्रकार आम और जामु-नकी पत्तीका काढा शहद मिलाकर पीनेसे समस्त छर्दि तथा तृष्णाएँ नष्ट होती है । बरगदके कोमल पत्ते, मिश्री, लोध, अनारदाना, मौरेठी, शहद सब मिला चावलके जलके साथ पीनेसे छर्दि तथा तृष्णा नष्ट होती है । तथा मुनक्का, ईखका रस, दूध, मौरेठी, शहद और नीलो-फरको मिलाकर नाकके द्वारा पीनेसे कठिन तृष्णा शान्त होती है ॥ ११–१४ ॥

गण्डूषस्तालुशोषे ।

क्षीरेक्षुरसमाध्वीकैः क्षौद्रशीधुगुडोदकैः ।
वृक्षाम्लाम्लैश्च गण्डूषस्तालुशोषनिवारणः ॥ १५ ॥

दूध, ईखका रस, माध्वीक (मधुका आसव) शहद शीधु (मधुर द्रव्योंका आसव) शर्बत अम्लबेत, काञ्जी इनमेंसे किसी एकके गडूष धारण करना तालु शोषको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

अन्ये योगाः ।

तालुशोषे पिबेत्सर्पिर्घृतमण्डमथापि वा ।
मूर्च्छाच्छर्दितृषादाहस्त्रीमद्यभृशकर्षिताः ॥ १६ ॥
पिबेयुः शीतलं तोयं रक्तपित्ते मदात्यये ।
धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ॥ १७ ॥
तदेवालवणं पीतं मुखशोषहरं परम् ।
वैशद्यं जनयत्यास्ये सन्दधाति मुखव्रणान् ॥ १८ ॥
दाहतृष्णाप्रशमनं मधुगण्डूषधारणम् ।

तालुशोषमें घृत अथवा घृतमण्ड पीना चाहिये । मूर्छा, छर्दि, तृषा, दाह, स्त्रीगमन व मद्य पीनेसे कृश पुरुषोंको तथा रक्तपित्त व मदात्ययमें ठण्डा ही जल पीना चाहिये । काञ्जी मुखकी विरसता, मल तथा दुर्गन्धिको नष्ट करता तथा बिना नमक पीनेसे मुखशोषको शान्त करता है । इसी प्रकार मधुका गण्डूष मुखको साफ करता मुखके घावोंको भरता तथा दाह व तृष्णाको शान्त करता है ॥ १६ ॥ १८ ॥–

मुखालेपः ।

कोलदाडिमवृक्षाम्लचुक्रीकाचुक्रिकारसः ॥ १९ ॥
पञ्चाम्लको मुखालेपः सद्यस्तृष्णां नियच्छति ।

बेर, अनार, वृक्षाम्ल, चूका और इमलीके रसका मुखके भीतर लेप करनेसे तत्काल तृष्णा शान्त होती है ॥ १९ ॥–

वारिणा वमनम् ।

वारि शीतं मधुयुतमाकण्ठाद्वा पिपासितम् ॥ २० ॥
पाययेद्वामयेच्चापि तेन तृष्णा प्रशाम्यति ।

ठण्डा जल शहद मिला कण्ठ पर्यन्त पिलाकर वमन करानेसे तृष्णा शान्त होती है ॥ २० ॥–

वटशुङ्गादिगुटी ।

वटशुङ्गामयक्षौद्रलाजनीलोत्पलैर्वटी ॥ २१ ॥
गुटिका वदनन्यस्ता क्षिप्रं तृष्णां नियच्छति ।

बरगदकी कोंपल, कूठ, शहद, खील तथा नीलोफ-रकी इट गोली बनाकर मुखमे रखनेसे तत्काल तृष्णा शान्त होती है ॥ २१ ॥–

चिरोत्थतृष्णाचिकित्सा ।

ओदनं रक्तशालीनां शीतं माक्षिकसंयुतम् ।
भोजयेत्तेन शाम्येत्तु छर्दिस्तृष्णा चिरोत्थिता ॥ २२ ॥

लाल चावलोंका भात ठण्ढा कर शहद मिलाकर भोजन करनेसे चिरोत्थ तृष्णा शान्त होती है ॥ २२ ॥

जलदानावश्यकता ।

पूर्वामयातुरः सन्दीनस्तृष्णार्दितो जलं याचन् ।
न लभेत चेदाश्वेव मरणमाप्नोति दीर्घरोगं वा ॥ २३ ॥
तृषितो मोहमायाति मोहात्प्राणान्विमुञ्चति ।
तस्मात्सर्वास्ववस्थासु न क्वचिद्वारि वार्यते ॥ २४ ॥

पहिले किसी रोगसे पीडित हुआ और उसीमें तृष्णा बढ गयी और जल मागता है ऐसी अवस्थामे जल न मिलनेसे शीघ्रही मर जाता है अथवा कोई बडा रोग हो जाता है । प्यास अधिक लगने पर मूर्छा होती है । मूर्छासे प्राणत्याग कर देता है अतः किसी अवस्थामें जलका निषेध नहीं है ॥ २३ ॥ २४ ॥

इति तृष्णाधिकारः समाप्तः ॥

अथ मूर्च्छाधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

सेकावगाहौ मणयः सहाराः
शीताः प्रदेहा व्यजनानिलाश्च ।
शीतानि पानानि च गन्धवन्ति
सर्वासु मूर्च्छास्वनिवारितानि ॥ १ ॥
सिद्धानि वर्गे मधुरे पयांसि
सदाडिमा जाङ्गलजा रसाश्च ।
तथा यवा लोहितशालयश्च
मूर्च्छासु शस्ताश्च सतीनमुद्गा ॥ २ ॥

शीतल द्रवद्रव्योंसे सिञ्चन तथा अवगाह (जलादिमें बैठना) शीतल मणि तथा हार तथा शीतल लेप व पङ्खेकी वायु तथा गन्धयुक्त शीतल पानक समस्त मूर्च्छाओंमे हितकर हैं । तथा मधुरवर्गमें सिद्ध दूध तथा जांगल प्राणियोंका मांसरस तथा लाल चावल, यव व मटर, मूंगका पथ्य हितकर है ॥ १ ॥ २ ॥

यथादोषं चिकित्साक्रमः ।

यथादोषं कषायाणि ज्वरघ्नानि प्रयोजयेत् ।
रक्तजायां तु मूर्च्छायां हितः शीतक्रियाविधिः ॥ ३ ॥
मद्यजायां वमेन्मद्यं निद्रां सेवेद्यथासुखम् ।
विषजायां विषघ्नानि भेषजानि प्रयोजयेत् ॥ ४ ॥

दोषज मूर्च्छामें यथादोष ज्वरनाशक काढे तथा रक्तजन्य मूर्च्छामे शीत क्रियाएँ हितकर हैं । मद्यजन्य मूर्च्छामें मद्यका वमन कर सुखपूर्वक सोना चाहिये । विषजन्य मूर्च्छामे विषनाशक औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

कोलादिचूर्णम् ।

कोलमज्जोषणोशीरकेशरं शीतवारिणा ।
पीतं मूर्च्छां जयेल्लीढं तृष्णां वा मधुसंयुतम् ॥ ५ ॥

बेरकी गुठली, काली मिर्च, खश तथा नागकेशरका चूर्ण ठंढे जलके साथ पीनेसे अथवा शहद मिलाकर चाटनेसे छर्दि व तृष्णा शान्त होती है ॥ ५ ॥

महौषधादिक्वाथः ।

महौषधामृताक्षुद्रापौष्करग्रन्थिकोद्भवम् ।
पिबेत्कणायुतं क्वाथं मूर्च्छायेषु मदेषु च ॥ ६ ॥

सोंठ, गुर्च, छोटी कटेरी, पोहकरमूल तथा पिपरामूलका क्वाथ पिप्पलीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे मूर्च्छा व मद शान्त होता है ॥ ६ ॥

भ्रमचिकित्सा ।

शतावरीबलामूलद्राक्षासिद्धं पयः पिबेत् ।
ससितं भ्रमनाशाय बीजं वाट्यालकस्य वा ॥ ७ ॥
पिबेद्दुरालभाक्वाथं सघृतं भ्रमशान्तये ।
त्रिफलाया प्रयोगो वा प्रयोगः पयसोऽपि वा ।
रसायनानां कौम्भस्य सर्पिषो वा प्रशस्यते ॥ ८ ॥

शतावरी, खरेटीकी जड तथा मुनक्कासे सिद्ध दूध मिश्रीके साथ पीनेसे चक्कर आना बन्द होता है इसी प्रकार खरेटीके बीजोंका चूर्ण मिश्री दूधके साथ भ्रमको नष्ट करता है । अथवा यवासाका क्वाथ घी मिलाकर अथवा त्रिफलाका प्रयोग अथवा दूधका प्रयोग अथवा रसायन औषधियोंका प्रयोग अथवा कौम्भ सञ्ज्ञक (१० वर्ष या १०० वर्ष पुराने) घृतका प्रयोग हितकर है ॥ ७ ॥ ८ ॥

त्रिफलाप्रयोगः ।

मधुना हन्त्युपयुक्ता त्रिफला रात्रौ गुडार्द्रकं प्रातः ।
सप्ताहात्पथ्यभुजो मदमूर्च्छाकासकामलोन्मादान् ॥९॥

शहदके साथ त्रिफला रातमें तथा गुड अदरख प्रातःकाल सेवन करनेसे पथ्य भोजन करनेवालेके सात दिनमे मद, मूर्च्छा, कास, कामला, तथा उन्मादरोग नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

संन्यासचिकित्सा ।

अञ्जनान्यवपीडाश्च धूमः प्रधमनानि च ।
सूचीभिस्तोदनं शस्तं दाहः पीडा नखान्तरे ॥ १० ॥
लुञ्चनं केशरोम्णां च दन्तैर्दंशनमेव च ।
आत्मगुप्तावघर्षश्च हितास्तस्यावबोधने ॥ ११ ॥

तीक्ष्ण अञ्जन, तीक्ष्ण द्रव तथा शुष्क नस्य, धूमपान, सुई कोचना, जलाना, नाखूनोंके बीचमें सुई आदि चुभाना, बाल व रोमोंका उखाडना, दांतोंसे काटना, कौंचका घिसना बेहोशीको दूर करता है ॥ १० ॥ ११ ॥

इति मूर्च्छाधिकारः समाप्तः ।

---

१ "स्थितं वर्षशतं श्रेष्ठं कौम्भं सर्पिस्तदुच्यते ।" इति तत्त्वचान्द्रिका ।

अथ मदात्ययाधिकारः ।

खर्जूरादिमन्थः ।

मन्थ खर्जूरमृद्वीकावृक्षाम्लाम्लीकदाडिम ।
परूषकैः सामलकैर्युक्तो मद्यविकारनुत ॥ १ ॥

छुहारा, मुनक्का, विजौरा, नीम्बू या अम्लवेत या कोकम इमली, अनार, फालसा व आंवला मिलाकर बनाया गया मन्थ मद्यविकारको नष्ट करता है ॥ १ ॥

मन्थविधिः ।

जले चतुष्पले शीते क्षुण्णद्रव्यपल क्षिपेत ।
मृत्पात्रे मर्दयेत्सम्यक्तस्माच द्विपल पिबेत ॥ २ ॥

१६ तोला ठण्ढे जलमें ४ तोला कुटी औषधि छोड, मल, छानकर ८ तोला पीना चाहिये ॥ २ ॥

तर्पणम् ।

सतीनमुद्गमिश्रान्वा दाडिमामलकान्वितान् ।
द्राक्षामलकखर्जूरपरूपकरसेन वा ॥ ३ ॥
कल्पयेत्तर्पणान्यूषान्रसाश्च विविधात्मकान् ।

मटर, मूग, आंवला, अनार मिलाकर मुनक्का, आंवला, छुहारा, फालसाके रससे तर्पण यूष तथा अनेक प्रकारके मासरस बनाना चाहिये ॥ ३ ॥–

सर्वमदात्ययचिकित्सा ।

मद्य सौवर्चलव्योषयुक्त किञ्चिज्जलान्वितम् ॥ ४ ॥
जीर्णमद्याय दातव्य वातपानात्ययापहम् ।
मुद्गयूप सितायुक्त स्वादुर्वा पैशितो रस ॥ ५ ॥
पित्तपानात्यये योज्य सर्वतश्च क्रिया हिमा ।
पानात्यये कफोद्भूते लवन च यथाबलम् ॥ ६ ॥
दीपनीयोपधोपेत पिबेन्मद्य समाहित ।
सर्वजे सर्वमेवेद प्रयोक्तव्य चिकित्सितम् ॥ ७ ॥
आभि क्रियाभिर्मिश्राभि शाति याति मदात्यय ।

वातजन्यमे मद्य कुछ जल तथा काला नमक व त्रिकटुचूर्ण मिलाकर पीना चाहिये । पित्तजन्य मदात्ययमे मूगका यूप मिश्री मिलाकर अथवा मासरस मीठा मिला कर पीना चाहिये । तथा समस्त शीतल चिकित्सा करनी चाहिये । कफात्मक मदात्ययमें बलानुसार लवन तथा दीपनीय ओषधियोंसे युक्त मद्य पीना चाहिये । तथा सर्वजमे यह सभी चिकित्सा करनी चाहिये, इन क्रियाओंसे मदात्यय शान्त हो जाता है ॥ ४–७ ॥–

दुग्धप्रयोगः ।

न चेन्मद्यक्रम मुक्त्वा क्षीरमस्य प्रयोजयेत् ॥ ८ ॥
लवनाद्यै कफे क्षीणे जातदौर्बल्यलाघवे ।
ओजस्तुल्यगुणं क्षीर विपरीतं च मद्यत ॥ ९ ॥
क्षीरप्रयोग मद्य वा क्रमेणाल्पाल्पमाचरेत् ।

यदि पूर्वोक्त चिकित्सासे मदात्यय शान्त न हो तो मद्यका क्रम छोडकर दूधका प्रयोग करना चाहिये । लवनादिसे कफके क्षीण हो जानेपर तथा दुर्बलता व लघुता बढ जाने पर दूध ही पीना चाहिये । दूध ओजके समान तथा मद्यसे विपरीत है अतः क्षीर या मद्यका प्रयोग क्रमशः थोडा थोडा करना चाहिये ॥ ८ ॥ ९ ॥

पुनर्नवाद्यं घृतम् ।

पय पुनर्नवाक्वाथयष्टीकल्कप्रसाधितम् ।
घृत पुष्टिकर पानान्मद्यपानहतौजस ॥ १० ॥

पुनर्नवा क्वाथ, दूध तथा मौरेठीके कल्कमे सिद्ध घृत पुष्टिकारक तथा मद्यपानसे क्षीण ओजवालेको हितकर है ॥ १० ॥

अष्टाङ्गलवणम् ।

सौवर्चलमजाज्यश्च वृक्षाम्ल साम्लवेतसम् ।
त्वगेलामरिचार्धांश शर्कराभागयोजितम् ॥ ११ ॥
हित लवणमष्टाङ्गमग्निसन्दीपनं परम् ।
मदात्यये कफप्राये दद्यात्स्रोतोविशोधनम् ॥ १२ ॥

काला नमक, जीरा, विजौरा निम्बू, अम्लवेत प्रत्येक एक भाग, दालचीनी, इलायची, काली मिर्च, प्रत्येक आधा भाग, शकर १ भाग मिलाकर बनाया गया चूर्ण कफज मदात्ययको नष्ट, अग्नि दीप्त तथा स्रोतोंको शुद्ध करता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

चव्यादिचूर्णम् ।

चव्य सौवर्चल हिङ्गु पूरक विश्वदीप्यकम् ।
चूर्ण मद्येन दातव्य पानात्ययरुजापहम् ॥ १३ ॥

चव्य, कालानमक, भूनी हींग, विजौरा निम्बू, सोंठ, अजवाइनका चूर्ण मद्यके साथ पीनेसे मदात्ययको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

मद्यपानविधिः ।

जलाप्लुतश्चन्दनरूषिताङ्ग
स्रग्वी सभक्ता पिशितोपदंशाम् ।
पिबन्सुरां नैव लभेत रोगान्
मनोमतिघ्नं च मद न याति ॥ १४ ॥

शीतजलमें स्नान कर चन्दन लगा, माला पहिन भोजनके साथ मांस खाते हुए शराब पीनेसे कोई रोग उन्माद मदात्ययादि नहीं होते ॥ १४ ॥

पानविभ्रमचिकित्सा ।

द्राक्षाकपित्थफलदाडिमपानकं यत् ।
तत्पानविभ्रमहरं मधुशर्कराढ्यम् ।

मुनक्का, कैथा तथा अनारके रसका पना, शहद, शक्कर मिलाकर पीनेसे पानविभ्रम नष्ट होता है ।

पथ्याघृतम् ।

पथ्याक्वाथेन संसिद्धं घृतं धात्रीरसेन वा ।
सर्पिः कल्याणकं वापि मदमूर्च्छाहरं पिबेत् ॥ १५ ॥

छोटी हर्रके काढे अथवा आवलेके काढेके साथ सिद्ध घृत अथवा कल्याणकघृत मद मूर्च्छाको नष्ट करता है ॥ १५ ॥

पूगमदचिकित्सा ।

सच्छर्दिमूर्च्छातीसारं मदं पूगफलोद्भवम् ।
सद्यः प्रशमयेत्पीतमातृप्तेर्वारि शीतलम् ॥ १६ ॥
वन्यकरीषघ्राणाज्जलपानाल्लवणभक्षणाद्वापि ।
शाम्यति पूगफलमदश्चूर्णरुजा शर्कराकवलात् ॥ १७ ॥
शंखचूर्णरजोघ्राणं स्वल्पं मदमपोहति ।

सुपारीके नशेको जिसमें वमन, मूर्च्छा तथा अतीसार तक होता हो तृप्तिपर्यन्त ठण्ढा जल पीनेसे नष्ट करता है वनकण्डेको सूंघनेसे, जल पीनेसे तथा नमक खानेसे सुपारीका नशा तथा शक्कर का कवल धारण करनेसे चूनेके खानेसे उत्पन्न पीडा नष्ट होती है । शंखका चूर्ण सूंघनेसे भी इसका नशा उतरता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

कोद्रवधुस्तूरमदचिकित्सा ।

कूष्माण्डकरसः सगुडः शमयति मदनकोद्रवजम् ।
धौस्तूरं च दुग्धं सशर्करं पानयोगेन ॥ १८ ॥

मदकारक कोदवके नशेको गुडके साथ पेठेका रस तथा धतूरेके नशेको शक्करके साथ दूध पीनेसे नष्ट करता है ॥ १८ ॥

इति मदात्ययाधिकारः समाप्तः ।

अथ दाहाधिकारः ।

दाहे सामान्यक्रमः ।

शतधौतघृताभ्यक्तं दिह्याद्वा यवसक्तुभिः ।
कोलामलकयुक्तैर्वा धान्याम्लैरपि बुद्धिमान् ॥ १ ॥
छादयेत्तस्य सर्वाङ्गमारनालार्द्रवाससा ॥
लामज्जेनाथ शुक्तेन चन्दनेनानुलेपयेत् ॥ २ ॥
चन्दनाम्बुकणास्यन्दितालवृन्तोपवीजितः ।
सुप्याद्दाहार्दितोऽम्भोजकदलीदलसस्तरे ॥ ३ ॥
परिषेकावगाहेषु व्यजनानां च सेचने ।
शस्यते शिशिरं तोयं तृष्णादाहोपशान्तये ॥ ४ ॥
क्षीरैः क्षीरिकषायैश्च सुशीतैश्चन्दनान्वितैः ।
अन्तर्दाहं प्रशमयेदेतैश्चान्यैश्च शीतलैः ॥ ५ ॥

१०० बार धोये हुए घृतसे मालिश कर यवसत्तुओंसे अथवा बेर और आवले मिली काञ्जीके साथ लेप करना चाहिये । समस्त शरीर काञ्जीसे तर कपडेसे ढक देना चाहिये । अथवा खश, चन्दन और सिरकासे लेप करना चाहिये । चारपाईपर कमल व केलाके पत्ते बिछाकर सुलाना चाहिये तथा चन्दन के जलसे तर ताडके पङ्खेसे इस प्रकार दवा करना कि रोगीका शरीर जलबिन्दुओंसे तर हो जाय । प्यास और जलनकी शान्तिके लिये परिषेक, अवगाह तथा पङ्खाके तर करनेमे ठण्टा जल हितकर होता है । शीतल दूध, क्षीरिवृक्षोंके क्वाथ ठण्ढे किये, चन्दन मिले हुए तथा अन्य शीतल पदार्थोंको पिला तथा सेकादि कर अन्तर्दाह शान्त करना चाहिये ॥ १-५ ॥

कुशाद्यं तैलं घृतं च ।

कुशादिशालिपर्णीभिर्जीवकाद्येन साधितम् ।
तैलं घृतं वा, दाहघ्नं वातपित्तविनाशनम् ॥ ६ ॥

कुशादिपञ्चमूल, शालपर्णी[1] तथा जीवकादिगणकी ओष-

---

१ यहां शालपर्णी शब्दसे वृन्दके सिद्धान्तसे सुश्रुतोक्त विदारिगन्धादि गण लेना चाहिये । दूसरे आचार्योंने लघुपञ्चमूल माना है पर निश्चलका मत है कि यहां आदि शब्द नहीं है अतः केवल शालपर्णी लेना चाहिये। शिवदासजीने इस मतको अन्तमें लिखकर छोड दिया है अतः प्रतीत होता है उन्हें भी यही मत अभीष्ट था, यद्यपि यद्यपि विभिन्न टीकाकारोंने कल्क और क्वाथ दोनों छोडना लिखा है उसमें "कुशादिशालिपर्णीभिः क्वाथः जीवकाद्येन कल्कः" अथवा "कल्कक्वाथावनिर्देशे गणात्तस्मात्समावपेत्" इस वचनसे सभीसे कल्क क्वाथ लेना लिखा है पर मेरे विचारसे चक्रपाणि लिखित पूर्व परिभाषा "यत्राधिकारेणेनोक्तिर्गणे स्यात्स्नेहसंविधौ । तत्रैव कल्कनिर्यूहाविष्येते स्नेहवेदिना ॥ एतद्वाक्यबलेनैव कल्कसाध्यपरं घृतम्" के सिद्धान्तसे केवल कल्क छोडकर पाक करना चाहिये ।

धियेसे सिद्ध तैल व घृत दाह तथा वातपित्तको नष्ट करता है ॥ ६ ॥

फलिन्यादिप्रलेपः ।

फलिनीलोध्रसेव्याम्बुहेमपत्र कुटन्नटम् ।
कालीयकरसोपेतं दाहे शस्त प्रलेपनम् ॥ ७ ॥

प्रियगु (इसके अभावमे मेहदी अथवा कमलगट्टा-गिरिके वटी) लोध, खश, सुगन्धवाला, नागकेशर, तेजपात, मोथा, इनके चूर्णको पीले चन्दनके रसमे पीसकर लेपकरना चाहिये ॥ ७ ॥

ह्रीवेराद्यवगाहः ।

ह्रीवेरपद्मकोशीरचन्दनक्षोदवारिणा ।
सम्पूर्णमवगाहेत द्रोणीं दाहार्दितो नरः ॥ ८ ॥

सुगन्धवाला, पद्माख, खश, चन्दनके चूर्णसे युक्त जलसे भरे टबमे बैठना चाहिये ॥ ८ ॥

इति दाहाधिकारः समाप्तः ।

अथोन्मादाधिकारः ।

सामान्यत उन्मादचिकित्सापायाः ।

उन्मादे वाति पूर्वं स्नेहपानं विरेचनम् ।
पित्तजे कफजे वान्ति. परो बस्त्यादिक क्रम. ॥ १ ॥
यच्चोपदेक्ष्यते किञ्चिदपस्मारचिकित्सिते ।
उन्मादे तच्च कर्तव्यं सामान्याद्दोषदूष्ययो. ॥ २ ॥

वातोन्मादमें पहिले स्नेहपान, पित्तोन्मादमें पहिले विरेचन तथा कफोन्मादमें प्रथम वमन कराना चाहिये, तदनन्तर वस्त्यादि क्रमका सेवन करना चाहिये । जो जो चिकित्सा अपस्मारमे कहेंगे वह उन्मादमें भी करनी चाहिये क्योकि दोनोंमें दोष तथा धातु समान ही दूषित होते हैं ॥ १ ॥ २ ॥

स्वरसप्रयोगाः ।

सब्राह्मीकूष्माण्डीपड्ग्रन्थाशङ्खपुष्पिकास्वरसाः ।
उन्मादहतो दृष्टा. पृथगेते कुष्ठमधुमिश्रा ॥ ३ ॥

ब्राह्मी, कूष्माण्ड, वच तथा शखपुष्पीमेसे किसी एकका स्वरस कूठका चूर्ण व शहद मिला चाटनेसे उन्माद नष्ट होता है ॥ ३ ॥

दशमूलक्वाथः ।

दशमूलाम्बु सघृतं युक्तं मांसरसेन वा ।
ससिद्धार्थकचूर्णं वा पुराणं केवलं घृतम् ॥ ४ ॥

दशमूलका क्वाथ घी अथवा मांसरसके साथ अथवा सफेद सरसोंके चूर्णके साथ अथवा केवल पुराना घी सेवन करना चाहिये ॥ ४ ॥

पुराणघृतलक्षणम् ।

उग्रगन्धं पुराण स्याद्दशवर्षस्थितं घृतम् ।
लाक्षारससनिभं शीत प्रपुराणमत परम् ॥ ५ ॥

दश वर्षका पुराना घी लाक्षारसके समान लाल तथा उग्र गन्धयुक्त होता है इससे अधिक दिनका प्रपुराण कहा जाता है ॥ ५ ॥

पायसः ।

श्वेतोन्मत्तोत्तरादिङ्मूलसिद्धस्तु पायस. ।
गुडाज्यसंयुतो हन्ति सर्वोन्मादांस्तु दोषजान् ॥ ६ ॥

सफेद धतूरेकी उत्तर दिशाको गयी जडसे सिद्ध दूधमे गुड, घी तथा चावल मिलाकर बनायी गयी खीर समस्त दोषज उन्मादोको शान्त करती है ॥ ६ ॥

उन्मादनाशकनस्यादि ।

उन्मादे समधु. पेयः शुद्धो वा तालशाखज ।
रसो नस्येऽभ्यञ्जने च सार्षपं तैलमिष्यते ॥ ७ ॥
अपक्वघटकी क्षीरपीतोन्मादविनाशिनी ।
बद्धं सार्षपतैलाक्तमुत्तानं घातपे न्यसेत् ॥ ८ ॥

उन्मादमें शहदके साथ ताडी पीना चाहिये अथवा केवल ताडी पीना चाहिये । नस्य और मालिशमे सरसोंके तैलका प्रयोग करना चाहिये । कच्ची गुञ्जा पीसकर दूधके साथ पिलानी चाहिये तथा शरीरमे तैल लगवा बान्धकर उताना धूपमें सुलाना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

सिद्धार्थकाद्यगदः ।

सिद्धार्थको हिङ्गु वचा करञ्जो देवदारु च ।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्वेता कटभीत्वक् कटुत्रिकम् ॥ ९ ॥
समांशानि प्रियङ्गुश्च शिरीषो रजनीद्वयम् ।
वस्तमूत्रेण पिष्टोऽयमगद पानमञ्जनम् ॥ १० ॥
नस्यमालेपनं चैव स्नानमुद्वर्तनं तथा ।
अपस्मारविषोन्मादकृत्यालक्ष्मीज्वरापह ॥ ११ ॥
भूतेभ्यश्च भय हन्ति राजद्वारे च शस्यते ।
सर्पिरेतेन सिद्धं वा सगोमूत्रं तदर्थकृत् ॥ १२ ॥

सफेद सरसों, मुनी हींग, वच, कञ्जा, देवदारु, मजीठ, त्रिफला, सफेद विष्णुकान्ता, मालकांगनी,

दालचीनी, त्रिकटु, प्रियङ्गु, सिरसाकी छाल, हल्दी तथा दारुहल्दी चूर्ण कर बकरेके मूत्रमे पीस गोली बना लेनी चाहिये । इसका प्रयोग अञ्जन कर, पिलाकर, नस्य देकर, आलेप कर, उद्वर्तन कर तथा स्नानके जलमे मिलाकर करना चाहिये । यह अपस्मार, उन्माद, विष, शाप, कुरूपता, ज्वर तथा भूतबाधाको नष्ट करता है । राजद्वारमें मान होता है । इन्हीं ओषधियोंके कल्क तथा गोमूत्रमें सिद्ध घृत भी यही गुण करता है ॥ ९–१२ ॥

त्र्यूषणाद्यवर्तिः ।

त्र्यूषणं हिङ्गु लवणं वचा कटुकरोहिणी ।
शिरीषनक्तमालानां बीजं श्वेताश्च सर्षपाः ॥ १३ ॥
गोमूत्रपिष्टैरेतैर्वा वर्तिर्नेत्राञ्जने हिता ।
चातुर्थिकमपस्मारमुन्मादं च नियच्छति ॥ १४ ॥

त्रिकटु, हींग, नमक, वच, कुटकी, सिरसाकी छाल, कञ्जाके बीज, सफेद सरसों इनको गोमूत्रमें पीस बत्ती बनाकर आंखमे लगानेसे चातुर्थिक ज्वर, अपस्मार तथा उन्माद रोग नष्ट होता है ॥ १३ ॥ १४ ॥

सामान्यप्रयोगाः ।

शुद्धस्याचारविभ्रंशे तीक्ष्णं नावनमञ्जनम् ।
ताडनं च मनोबुद्धिस्मृतिसंवेदनं हितम् ॥ १५ ॥
तर्जनं त्रासनं दानं सान्त्वनं हर्षणं भयम् ।
विस्मयो विस्मृतेर्हेतोर्नयन्ति प्रकृतिं मनः ॥ १६ ॥
कामशोकभयक्रोधहर्षेर्ष्यालोभसम्भवान् ।
परस्परप्रतिद्वन्द्वैरेभिरेव शमं नयेत् ॥ १७ ॥
इष्टद्रव्यविनाशात्तु मनो यस्योपहन्यते ।
तस्य तत्सदृशप्राप्त्या शान्त्याश्वासैश्च ताञ्जयेत् ॥१८॥
प्रदेहोत्सादनाभ्यङ्गधूमाः पानं च सर्पिषः ।
प्रयोक्तव्यं मनोबुद्धिस्मृतिसंज्ञाप्रबोधनम् ॥ १९ ॥
कल्याणकं महद्वापि दद्याद्वा चैतसं घृतम् ।
तैलं नारायणं चापि महानारायणं तथा ॥ २० ॥

जिस मनुष्यको (वमन विरेचन द्वारा) शुद्ध होनेपर भी अपने आचार आदिका ज्ञान न रहे, उसे तीक्ष्ण नस्य, अञ्जन तथा शासन द्वारा मन, बुद्धि व स्मरणशक्तिको शुद्ध करना चाहिये । डाटना, दुःख देना, दान, शान्ति देना, प्रसन्न करना, डराना, आश्चर्यकी बातें कहना यह उपाय स्मरणशक्तिको उत्पन्न कर मनको शुद्ध करते हैं । काम, क्रोध, शोक, भय, हर्ष, ईर्ष्या, लोभसे उत्पन्न उन्मादोंको परस्पर विरुद्ध इन्हीं (यथा कामोन्मादीको क्रोधोत्पन्न कराकर) से शान्त करना चाहिये । इसी प्रकार जिसको इष्ट द्रव्य आदिके नाशसे उन्माद हुआ है उसे उसीके सदृश प्राप्ति, शान्ति तथा आश्वासनसे जीतना चाहिये । लेप, उबटन, मालिश, धूम तथा घृतपान कराना चाहिये । इनसे मन, बुद्धि, स्मरणशक्ति तथा ज्ञान प्रबुद्ध होता है । कल्याणघृत, महाकल्याणघृत, चैतसघृत, नारायणतैल तथा महानारायणतैलका प्रयोग करना चाहिये ॥ १५–२० ॥

कल्याणकं घृतं क्षीरकल्याणकं च ।

विशालात्रिफलाकौन्तीदेवदार्वेलवालुकम् ।
स्थिरानतं रजन्यौ द्वे शारिवे द्वे प्रियङ्गुका ॥ २१ ॥
नीलोत्पलैलामञ्जिष्ठादन्तीदाडिमकेशरम् ।
तालीशपत्रं बृहती मालत्याः कुसुमं नवम् ॥ २२ ॥
विडङ्गं पृश्निपर्णी च कुष्ठं चन्दनपद्मकौ ।
अष्टाविंशतिभिः कल्कैरेतैरक्षसमन्वितैः ॥ २३ ॥
चतुर्गुणं जलं दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
अपस्मारे ज्वरे कासे शोषे मन्दानले क्षये ॥ २४ ॥
वातरक्ते प्रतिश्याये तृतीयकचतुर्थके ।
वम्यर्शोमूत्रकृच्छ्रे च विसर्पोपहतेषु च ॥ २५ ॥
कण्डूपाण्ड्वामयोन्मादे विषमेहगरेषु च ।
भूतोपहतचित्तानां गद्गदानामरेतसाम् ॥ २६ ॥
शस्तं स्त्रीणां च वन्ध्यानां धन्यमायुर्बलप्रदम् ।
अलक्ष्मीपापरक्षोघ्नं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ २७ ॥
कल्याणकमिदं सर्पिः श्रेष्ठं पुंसवनेषु च ।
द्विजलं सचतु क्षीरं क्षीरकल्याणकं त्विदम् ॥ २८ ॥

इन्द्रायणकी जड, त्रिफला, सम्भालूके बीज, देवदारु, एलवालुक, शालिपर्णी, तगर, हल्दी, दारुहल्दी, सारिवा, काली सारिवा, प्रियङ्गु, नीलोफर, छोटी इलायची, मजीठ, दन्ती, अनारदाना, नागकेशर, तालीशपत्र, बड़ी कटेरी, मालती फूल, वायविडंग, पिठिवन, कूठ, चन्दन, पद्माख प्रत्येक १ तोलाका कल्क, घी १ प्रस्थ, जल ४ प्रस्थ मिलाकर सिद्ध करना चाहिये । यह घृत अपस्मार, ज्वर, कास, शोष, मन्दाग्नि, क्षय, वातरक्त, प्रतिश्याय, तृतीयक चातुर्थिकज्वर, वमन, अर्श, मूत्रकृच्छ्र, विसर्प, खुजली, पाण्डुरोग, उन्माद, विष, प्रमेह, गरविष, भूतोन्माद तथा स्वरभेदको नष्ट करता है । यह वन्ध्यास्त्रियोंको लाभ करता है । धन, आयु तथा बल देता है ।

कुरूपता, पापरोग, राक्षसदोष तथा ग्रहदोष नष्ट होते हैं। यह कल्याणकघृत सन्तान उत्पन्न करनेमें तथा वाजीकरणमें उत्तम है। द्विगुण जल तथा चतुर्गुण दूध मिलाकर सिद्ध करनेसे यही घृत क्षीरकल्याणक कहा जाता है ॥ २१—२८ ॥

महाकल्याणकं घृतम् ।

एष्वेव स्थिरादीनि जले पक्त्वैकविंशतिम् ।
रस तस्मिन्पचेत्सर्पिर्गृष्टिक्षीरचतुर्गुणम् ॥ २९ ॥
वीराद्विमाषकाकोलीस्वयंगुप्तर्षभर्द्धिभि ।
मेदया च समैः कल्कैस्तत्स्यात्कल्याणक महत् ॥
बृंहणीयं विशेषेण सन्निपातहरं परम् ॥ ३० ॥

पूर्वोक्त विशाला आदि २८ औषधियोंमे शालिपर्णी ७ अलग कर शालपर्णी आदि २१ औषधियोंका क्वाथ, घृतसे चतुर्गुण तथा चतुर्गुण एकवार ब्याई गायका दूध और घृतसे चतुर्थांश शतावर, दोनो उड़द, काकोली, कौंच, ऋषभक, ऋद्धि, मेदाका कल्क छोड़कर घी पकाना चाहिये। यह महाकल्याणकघृत विशेषकर बृहणीय तथा सन्निपातको नष्ट करता है ॥ २९–३० ॥

चैतसं घृतम् ।

पञ्चमूल्यावकाश्मर्या रास्नैरण्डत्रिवृद्बला ।
मूर्वा शतावरी चेति क्वाथ्यैर्द्विपलिकैरिमैः ॥ ३१ ॥
कल्याणकस्य चाङ्गेन तद्घृतं चैतसं स्मृतम् ।
सर्वचेतोविकाराणां शमनं परम मतम् ॥ ३२ ॥
घृतप्रस्थोऽत्र पक्तव्य क्वाथो द्रोणाम्भसा श्रृतात् ।
चतुर्गुणोऽत्र सम्पाद्य. कल्क कल्याणकेरितः ॥ ३३ ॥

काश्मरीको छोड़कर शेष दोनों पञ्चमूल, रास्ना, एरण्डकी छाल, निसोथ, खरेटी, मूर्वा, शतावरी प्रत्येक ८ तोला १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर १ प्रस्थ घी तथा कल्याणक घृतमें कही औषधियोंका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये। यह घृत समस्त मनोविकारजन्य रोगोंको शान्त करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ३१–३३ ॥

महापैशाचिकं घृतम् ।

जटिला पूतना केशी चारटी मर्कटी वचा ।
त्रायमाणा जया वीरा चोरक कटुरोहिणी ॥ ३४ ॥
वयस्था शूकरी छत्रा सातिच्छत्रा पलङ्कषा ।
महापुरुषदन्ता च वयस्था नाकुलीद्वयम् ॥ ३५ ॥
कटुम्भरा वृश्चिकाली स्थिरा चैव च तैर्घृतम् ।
सिद्ध चातुर्थकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ ३६ ॥
महापैशाचिक नाम घृतमेतद्यथामृतम् ।
मेधाबुद्धिस्मृतिकरं बालानां चाङ्गवर्धनम् ॥ ३७ ॥

जटामांसी, छोटी हर्रे, जटामांसी, नील, कौंचके बीज, वच, त्रायमाण, अरणी, शतावरी, मकोय, कुटकी, गुर्च, वाराहीकन्द, सौंफ, सोवाके बीज, गुग्गुलु अथवा लाक्षा, शतावरी, ब्राह्मी, रास्ना, गन्धरास्ना, मालकांगनी, बिछुआ तथा शालपर्णीका कल्क और कल्कसे चतुर्गुण घी और घीसे चतुर्गुण जल मिलाकर सिद्ध किया यह घृत चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रहदोष, व अपस्मारको नष्ट करता तथा मेधा, बुद्धि और बालकोंके शरीरको बढ़ाता है ॥ ३४–३७ ॥

हिंग्वाद्यं घृतम् ।

हिंगुसौवर्चलव्योषैर्द्विपलांशैर्घृताढकम् ।
चतुर्गुणे गवां मूत्रे सिद्धमुन्मादनाशनम् ॥ ३८ ॥

हींग, काला नमक, त्रिकटु प्रत्येक ८ तोला, घी ६ सेर ३२ तोला, गोमूत्र २५ सेर ४८ तो० मिला सिद्ध कर सेवन करनेसे उन्माद रोग नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

लशुनाद्यं घृतम् ।

लशुनस्याविनष्टस्य तुलार्धं निस्तुषीकृतम् ।
तदर्धं दशमूल्यास्तु द्वयाढकेऽपां विपाचयेत् ॥ ३९ ॥
पादशेषे घृतप्रस्थ लशुनस्य रसं तथा ।
कोलमूलकवृक्षाम्लमातुलुङ्गार्द्रकैः रसैः ॥ ४० ॥
दाडिमाम्बुसुरामस्तुकाञ्जिकाम्लैस्तदर्धिकैः ।
साधयेत्त्रिफलादारुलवणव्योषदीप्यकैः ॥ ४१ ॥
यमानीचव्यहिङ्ग्वम्लवेतसैश्च पलार्धिकैः ।
सिद्धमेतत्पिबेच्छूलगुल्मार्शोजठरापहम् ॥ ४२ ॥
ब्रध्नपाण्ड्वामयप्लीहयोनिदोषकृमिज्वरान् ।
वातश्लेष्मामयांश्चान्यानुन्मादांश्चापकर्षति ॥ ४३ ॥

लहसुन छिला हुआ २॥ सेर, दशमूल १। सेर, जल २ आढक (यहां "द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः" से १२ सेर ६४ तोला) में मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथमें १ प्रस्थ घृत, लशुनका रस १ प्रस्थ, बेर, मूली, बिजौरा निम्बू, कोकम, अदरखका रस, अनारका रस, शराब, दहीका तोड़, काञ्जी प्रत्येक ६४ तोला, त्रिफला, देवदारु, लवण, त्रिकटु, अजवाइन, अजमोद, चव्य हींग, अम्लवेत, प्रत्येक २ तोलाका कल्क मिलाकर सिद्ध किया गया घृत पीनेसे शूल, गुल्म, अर्श, उदररोग, ब्रध्न, पाण्डुरोग,

प्लीहा, योनिदोष, क्रिमिरोग, ज्वर, वातकफके अन्य रोग तथा उन्मादको नष्ट करता है ॥ ३९-४३ ॥

आगन्तुकोन्मादचिकित्सा ।

सर्पि पानादिरागन्तोर्मन्त्रादिश्चेष्यते विधि ।
पूजाबल्युपहारेष्टिहोममन्त्राञ्जनादिभि ॥ ४४ ॥
जयेदागन्तुमुन्माद यथाविधि शुचिर्भिषक् ।

आगन्तुकोन्मादमें घृतपान, मन्त्रजप, पूजा, बलि, उपहार, यज्ञ, होम, अञ्जन पवित्रतासे करना चाहिये ॥ ४४ ॥

अञ्जनम् ।

कृष्णामरिचसैन्धवक्षौद्रमधुगोपित्तनिर्मितम् ॥ ४५ ॥
अञ्जनं सर्वभूतोत्थमहोन्मादविनाशनम् ।
दार्वीमधुभ्यां पुष्यर्क्षे कृतं च गुडिकाञ्जनम् ॥ ४६ ॥
मरिचं चातपे मासं सपित्ते स्थितमञ्जनम् ।
वैकृतं पश्यतः कार्यं भूतदोषहतस्मृतेः ॥ ४७ ॥

छोटी पीपल, काली मिर्च, सेंधानमक, शहद, गोरोचनसे बनाया अञ्जन समस्त भूतोन्मादोंको नष्ट करता है इसी प्रकार दारुहल्दी व शहदसे बनायी गोलीको आञ्जनेसे भी उन्माद नष्ट होता है। काली मिर्च व गोरोचनको महीने भर धूपमें रखकर भूतदोषसे उन्मत्तकी आंखोंमें लगाना चाहिये ॥ ४५-४७ ॥

धूपाः ।

निम्बपत्रवचाहिङ्गुसर्पनिर्मोकसर्षपैः ।
डाकिन्यादिहरो धूपो भूतोन्मादविनाशनः ॥ ४८ ॥
कार्पासास्थिमयूरपिच्छबृहतीनिर्माल्यपिण्डीतकैः
स्त्वग्वांशीवृषदंशविट्तुषवचाकेशाहिनिर्मोककैः ।
गोशृङ्गद्विपदन्तहिङ्गुमरिचैस्तुल्यैस्तु धूपः कृतः
स्कन्दोन्मादपिशाचराक्षससुरावेशज्वरघ्नः स्मृतः ॥४९॥

नीमकी पत्ती, वच, हींग, सांपकी केंचुल तथा सरसोंसे बनाया धूप डाकिनी तथा भूतादिजन्य उन्मादको नष्ट करता है। इसीप्रकार कपासकी गुठली, मोरका पंख, बड़ी कटेरी, शिवनिर्माल्य, मैनफल, दालचीनी, वंशलोचन, बिलाडकी विष्ठा, धानकी भूसी, वच, केश, सांपकी केंचुल, गौका सींग, हाथीके दांत, हींग, कालीमिर्च इन सब औषधियोंसे बनाया गया धूप स्कन्दोन्माद, पिशाच, राक्षस, सुरावेश तथा ज्वरको नष्ट करता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

नस्यम् ।

ब्रह्मराक्षसजिष्णस्य पक्वैन्द्रीफलमूत्रजम् ।
साज्यं भूतहरं नस्यं श्वेताज्येष्टाम्बुनिर्मितम् ॥ ५० ॥

पके इन्द्रायणके फल तथा गोमूत्रका नस्य अथवा सफेद विष्णुकान्ता और चावलका जल मिलाकर बनाया गया नस्य घीके साथ लेनेसे भूतदोष नष्ट होता है॥५०॥

तीक्ष्णौषधनिषेधः ।

देवर्षिपितृगन्धर्वैरुन्मत्तस्य च बुद्धिमान् ।
वर्जयेदञ्जनादीनि तीक्ष्णानि क्रूरमेव च ॥ ५१ ॥

देव, ऋषि, पितृ, तथा गन्धर्वादि ग्रहोंसे तथा (ब्रह्मराक्षससे) उन्मत्तको तीक्ष्ण अञ्जनादि क्रूर चिकित्सा न करनी चाहिये ॥ ५१ ॥

विगतोन्मादलक्षणम् ।

प्रसादश्चेन्द्रियार्थानां बुद्ध्यात्ममनसां तथा ।
धातूनां प्रकृतिस्थत्वं विगतोन्मादलक्षणम् ॥ ५२ ॥

उन्माद शान्त हो जानेपर इन्द्रियां अपने विषयको ठीक ग्रहण करने लग जाती हैं। बुद्धि, आत्मा व मन प्रसन्न होते हैं और शरीरस्थ धातु अपने रूपमें हो जाते हैं ॥ ५२ ॥

इत्युन्मादाधिकारः समाप्तः ।

अथापस्माराधिकारः ।

वातिकादिक्रमेण सामान्यतश्चिकित्सा

वातिकं वस्तिभिः प्रायः पैत्तं प्रायो विरेचनैः ।
श्लैष्मिकं वमनप्रायैरपस्मारमुपाचरेत् ॥ १ ॥
सर्वतः सुविशुद्धस्य सम्यगाश्वासितस्य च ।
अपस्मारविमोक्षार्थं योगान्संशमनाञ्छृणु ॥ २ ॥

वातिक अपस्मारको वस्तिसे, पित्तजको विरेचनसे तथा कफजको प्रायः वमन कराकर चिकित्सा करनी चाहिये । शुद्ध हो जानेपर संसर्जन क्रमके अनन्तर शान्त करनेवाले योगोंका सेवन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अञ्जनानि ।

मनोह्वा तार्क्ष्यजं चैव शकृत्पारावतस्य च ।
अञ्जनं हन्त्यपस्मारमुन्मादं च विशेषतः ॥ ३ ॥

रक्षोघ्नहिङ्गुवचातगरशिरीषलशुनामयैः ।
साजामूत्रैरपस्मारे सोन्मादे नावनाञ्जने ॥ ४ ॥
पुष्योद्धृतं शुनः पित्तमपस्मारघ्नमञ्जनम् ।
तदेव सर्पिषा युक्तं धूपनं परमं स्मृतम् ॥ ५ ॥

मनशिल, रसौंत, कबूतरकी विष्ठा तीनोंका अञ्जन अपस्मार तथा उन्मादको नष्ट करता है । तथा मोरेटी, हीङ्ग, वच, तगर, सिरसाकी छाल, लहसुन, कूट इसको बकरेके मूत्रमें पीसकर अञ्जन तथा नस्य देना चाहिये । इसी प्रकार पुष्य नक्षत्रमें निकाला गया कुत्तेका पित्त अपस्मारको अञ्जनसे नष्ट करता है । वही घीसे मिलाकर धूप देना चाहिये ॥ ३-५ ॥

धूपोत्सादनलेपाः ।

नकुलोलूकमार्जारगृध्रकीटाहिकाकजैः ।
तुण्डैः पक्षैः पुरीषैश्च धूपनं कारयेद्भिषक् ॥ ६ ॥
कायस्थां शारदान्मुद्गान्मुस्तोशीरयवांस्तथा ।
सव्योषान्बस्तमूत्रेण पिष्ट्वा वर्तिं प्रकल्पयेत् ॥ ७ ॥
अपस्मारे तथोन्मादे सर्पदष्टे गरार्दिते ।
विषपीते जलमृते चैता स्युरमृतोपमाः ॥ ८ ॥
अपेतराक्षसीकुष्ठपूतनाकेशिचोरकैः ।
उत्सादनं मूत्रपिष्टैर्मूत्रैरेवावसेचनम् ॥ ९ ॥
जतुकाशकृतस्तद्वद्दग्धैर्वा बस्तरोमभिः ।
अपस्मारहरो लेपो मूत्रसिद्धार्थशिग्रुभिः ॥ १० ॥

नेवला, उल्लू, बिल्ली, गृध्र, कीट, सर्प, तथा काककी चोंच, पंख और मलसे धूप देना चाहिये । सम्भालू, शरदऋतुकी मूंग, नागरमोथा, खश, यव तथा त्रिकटुको बकरेके मूत्रमें पीस बत्ती बनाकर अञ्जन तथा धूपसे अपस्मार, उन्माद, सर्पके काटे हुएको तथा विष पिये हुए, कृत्रिम विष खाये हुए तथा जलसे मरे हुएको अमृततुल्य गुण देते हैं । इसका अञ्जन लगाना चाहिये तथा धूप देनी चाहिये । तथा तुलसी, कूठ, छोटी हर्र, जटामासी, मटेउर, इनको गोमूत्रमें पीसकर उबटन लगाना चाहिये तथा गोमूत्रसे ही स्नान कराना चाहिये । लाख व काश तथा जलाये हुए बकरेके रोवा अथवा गोमूत्र, सरसों व सहिंजनकी छालसे लेप करना चाहिये॥६-१०॥

वचाचूर्णम् ।

यः खादेत्क्षीरभक्ताशी माक्षिकेण वचारजः ।
अपस्मारं महाघोरं सुचिरोत्थं जयेद्ध्रुवम् ॥ ११ ॥

जो शहदके साथ वचका चूर्ण चाटता तथा दूध भातका पथ्य लेता है उसका पुराना महाघोर अपस्मार भी नष्ट होता है ॥ ११ ॥

अन्ये योगाः ।

उद्बन्धितनरग्रीवापाशं दग्ध्वा कृता मसी ।
शीताम्बुना समं पीता हन्त्यपस्मारमुद्धतम् ॥ १२ ॥
प्रयोज्यं तैललशुनं पयसा वा शतावरी ।
ब्राह्मीरसश्च मधुना सर्वापस्मारभेषजम् ॥ १३ ॥
निर्दह्य निर्दलां कृत्वा छागिकामरनालिकाम् ।
तामम्लसाधितां खादन्नपस्मारमुदस्यति ॥ १४ ॥
हृत्कम्पोऽक्षिरुजा यस्य स्वेदो हस्तादिशीतता ।
दशमूलीजलं तस्य कल्याणाज्यं च योजयेत् ॥ १५ ॥

जिस रस्सीसे मनुष्य फासीपर लटकाया गया हो उस रस्सीको जलाकर ठंढे जलके साथ पीनेसे उद्धत अपस्मार नष्ट होता है । तैलके साथ लहसुन तथा दूधके साथ शतावरी अथवा शहदके साथ ब्राह्मीरस समस्त अपस्मारोंको नष्ट करता है । मेढासिंही व अमरवेलका रस निकाल जलाकर काञ्जीमें पकाकर खानेसे अपस्मार नष्ट होता है । जिसके हृत्कम्प, अक्षिरुजा पसीना तथा हाथ पैरोंमें ठण्ढक हो । उसे दशमूलक्वाथ तथा कल्याणघृत पिलाना चाहिये ॥ १२-१५ ॥

स्वल्पपञ्चगव्यं घृतम् ।

गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैः समैर्घृतम् ।
सिद्धं चातुर्थिकोन्मादग्रहापस्मारनाशनम् ॥ १६ ॥

घीके बराबर गायके गोबरका रस दही, दूध व मूत्र मिलाकर सिद्ध करना चाहिये । यह घृत चातुर्थिक ज्वर, उन्माद, ग्रह तथा अपस्मारको नष्ट करता है ॥ १६ ॥

बृहत्पञ्चगव्यं घृतम् ।

द्वे पञ्चमूले त्रिफला रजन्यौ कुटजत्वचम् ।
सप्तपर्णमपामार्गं नीलिनीं कटुरोहिणीम् ॥ १७ ॥
शम्याकं फल्गुमूलं च पौष्करं सदुरालभम् ।
द्विपलानि जलद्रोणे पक्त्वा पादावशेषिते ॥ १८ ॥
भार्ङ्गीं पाठां त्रिकटुकं त्रिवृतां निचुलानि च ।
श्रेयसीमाढकीं मूर्वां दन्तीं भूनिम्बचित्रकौ ॥ १९ ॥
द्वे शारिवे रौहिषं च भूतिकं मदयन्तिकाम् ।
क्षिपेत्पिष्ट्वाक्षमात्राणि तैः प्रस्थं सर्पिषः पचेत् ॥ २० ॥
गोशकृद्रसदध्यम्लक्षीरमूत्रैश्च तत्समैः ।
पञ्चगव्यमिति ख्यातं महदेतदमृतोपमम् ॥ २१ ॥
अपस्मारे ज्वरे कासे श्वयथावुदरेषु च ।
गुल्मार्शःपाण्डुरोगेषु कामलायां हलीमके ॥ २२ ॥
अलक्ष्मीग्रहरक्षोघ्नं चातुर्थिकविनाशनम् ।

दशमूल, त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, कुड़ेकी छाल, सातवन, लटजीरा, नील, कुटकी, अमलतासका गूदा,

अजमोदकी जड, पोहकरमूल, यवासा प्रत्येक ८ तोला, एक द्रोण जलमें मिलाकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथमें घी १ प्रस्थ, भारङ्गी, पाढ, त्रिकटु, निसोथ, जलवेतस अथवा समुद्रफल, गजपीपल, अरहर, मूर्वा, दन्ती, चिरायता, चीतकी जड, सारिवा, काली सारिवा, रोहिष घास, अजवायन तथा नेवारी प्रत्येक १ तोला पीस कल्क कर छोडना चाहिये । तथा गायके गोबरका रस, खट्टा दही, दूध, गोमूत्र घीके समान छोड़कर पकाना चाहिये । यह बृहत्पञ्चगव्य घृत अपस्मार, ज्वर, कास, सूजन, उदररोग, गुल्म, अर्श पांडुरोग, कामला, हलीमक, कुरूपता, ग्रहदोष, राक्षसदोष तथा चातुर्थिक ज्वरको नष्ट करता है ॥ १७–२२ ॥–

महाचैतसं घृतम् ।

शणत्रिवृत्तथैरण्डो दशमूली शतावरी ॥ २३ ॥
रास्ना मागधिका शिग्रुः क्वाथ्यं द्विपलिकं भवेत् ।
विदारी मधुकं मेदे द्वे काकोल्यौ सिता तथा ॥ २४ ॥
एभिः खर्जूरमृद्वीकाभीरुमुञ्जातगोक्षुरैः ।
चैतसस्य घृतस्याङ्गैः पक्वम्यं सर्पिरुत्तमम् ॥ २५ ॥
महाचैतससंज्ञं तु सर्वापस्मारनाशनम् ।
गरोन्मादप्रतिश्यायतृतीयकचतुर्थकान् ॥ २६ ॥
पापालक्ष्म्यौ जयेदेतत्सर्वग्रहनिवारणम् ।
कासश्वासहरं चैव शुक्रार्तवविशोधनम् ॥ २७ ॥
घृतमानं क्वाथविधिरिह चैतसवन्मतम् ।
कल्कश्चैतसकल्कोक्तद्रव्यैः सार्धं च पादिकः ॥ २८ ॥
नित्यं मुञ्जातकाप्राप्तौ तालमस्तकमिष्यते ।

सन, निसोथ, एरण्डकी छाल, दशमूल, शतावर, रासन, छोटी पीपल, सहिंजन यह प्रत्येक ८ तोला ले १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर विदारीकन्द, मौरेठी, मेदा, महामेदा, काकोली, क्षीरकाकोली, मिश्री, छुहारा, मुनक्का, शतावर, गोखुरू, मुञ्जात तथा कल्याणकघृतका कल्क घृतसे चतुर्थांश मिलाकर घृत पकाना चाहिये । यह महाचैतसघृत समस्त अपस्मार, कृत्रिम विष, उन्माद, जुखाम, तृतीयक, चातुर्थिक ज्वर, पाप, कुरूपता, ग्रहदोष, कास, तथा श्वासको नष्ट करता और रजवीर्यको शुद्ध करता है । घीका मान तथा क्वाथ चैतसके समान समझना चाहिये । कल्क कुल मिलाकर घृतसे चतुर्थांश ही हो मुञ्जातकके अभावमें ताड़का मस्तक लेना चाहिये ॥ २३–२८ ॥–

कूष्माण्डकघृतम् ।

कूष्माण्डकरसे सर्पिरष्टादशगुणे पचेत् ॥ २९ ॥
यष्ट्याह्वकल्कं तत्पानमपस्मारविनाशनम् ।

घीसे चतुर्थांश मौरेठीका कल्क तथा अठारह गुणा कुम्हडेका रस मिलाकर सिद्ध किया गया घृत अपस्मारको नष्ट करता है ॥ २९ ॥

ब्राह्मीघृतम् ।

ब्राह्मीरसे वचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च ॥ ३० ॥
पुराणं मेध्यमुन्मादग्रहापस्मारनुद्घृतम् ।

ब्राह्मीके रसमें पुराना घी, वच, कूठ, व शंखपुष्पीका कल्क छोडकर पकानेसे उन्मादग्रहदोष, अपस्मारको नष्ट करता तथा मेधाको बढाता है ॥ ३० ॥–

पलंकषाद्यं तैलम् ।

पलंकषावचापथ्यावृश्चिकाल्यर्कसर्षपैः ॥ ३१ ॥
जटिलापूतनाकेशीलाङ्गलीहिङ्गुचोरकैः ।
लशुनातिविषाचित्राकुष्ठैर्विड्भिश्च पक्षिणाम् ॥ ३२ ॥
मांसाशिनां यथालाभं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धमभ्यञ्जने तैलमपस्मारविनाशनम् ॥ ३३ ॥

गुग्गुल, वच, हर्र, विछुआ, आक, सरसों, जटामांसी, करियारी, जटामांसी, छोटी हर्र, हींग, भटेउर, लहसुन, अतीस, दन्ती, कूठ तथा मांस खानेवाले पक्षियोंकी विष्ठाका कल्क तथा चतुर्गुण गोमूत्र मिलाकर सिद्ध किया गया घृत मालिश करनेसे अपस्मारको नष्ट करता है ॥ ३१–३३ ॥

अभ्यङ्गः ।

अभ्यङ्गं सार्षपं तैलं बस्तमूत्रे चतुर्गुणे ।
सिद्धं स्याद्गोशकृन्मूत्रैः पानोत्सादनमेव च ॥ ३४ ॥

चतुर्गुण बकरेके मूत्रमें मिलाकर सिद्ध किया गया सरसोंका तैल मालिश करने तथा गायके गोबरके रसका गोमूत्रक साथ पीना तथा उबटन लगाना हितकर है॥३४॥

इत्यपस्माराधिकारः समाप्तः ।

अथ वातव्याध्यधिकारः ।

तत्र सामान्यतश्चिकित्सा ।

स्वाद्वम्ललवणैः स्निग्धैराहारैर्वातरोगिणः ।
अभ्यङ्गस्नेहबस्त्याद्यैः सर्वानेवोपपादयेत् ॥ १ ॥

समस्त वातरोगियोंको मीठे खट्टे नमकीन तथा स्नेहयुक्त भोजन तथा मालिश व स्नेहयुक्त बस्ति आदि देना हितकर है ॥ १ ॥

भिन्नभिन्नस्थानस्थवातचिकित्सा ।

विशेषतस्तु कोष्ठस्थे वाते क्षारं पिबेन्नरः ।
आमाशयगे शुद्धस्य यथा दोषहरी क्रिया ॥ २ ॥
आमाशयगते वाते छर्दिताय यथाक्रमम् ।
देयः षड्धरणो योगः सप्तरात्रं सुखाम्बुना ॥ ३ ॥

यदि वायु कोष्ठगत हो तो खार पिलाना चाहिये । यदि आमाशयमें हो तो शोधन कर वात नाशक क्रिया करनी चाहिये । अर्थात् आमाशयगत वायुमें प्रथम स्नेहन स्वेदन कराकर वमन कराना चाहिये । फिर षड्धरण योग ७ दिनतक गरम जल [illegible] देना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

षड्धरणयोगः ।

चित्रकेन्द्रयवा पाठाकटुकातिविषाभया ।
महाव्याधिप्रशमनो योगः षड्धरणः स्मृतः ॥ ४ ॥
पलदशमांशो धरणं योगोऽस्य [illegible] ।
माषेण पंचगुञ्जकमानेन प्रत्यहं देयः ॥ ५ ॥

चीतकी जड़, इन्द्रयव, पाढ, कुटकी, अतीस, बड़ी हर्रका छिलका यह वातव्याधिको नष्ट करनेवाला षड्धरण प्रयोग कहा जाता है । यह योग [illegible] उन्हींके मान (५ रत्तीके माशा) से [illegible] (३२ रत्ती) एक खुराक बनाना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥

पक्वाशयगतवातचिकित्सा ।

पक्वाशयगते वाते हितं स्नेहविरेचनम् ।
बस्तयः शोधनीयाश्च प्राशाश्च लवणोत्तराः ॥ ६ ॥

पक्वाशयगत वातमें स्नेहयुक्त विरेचन, शोधनीय, बस्ति तथा नमकीन चटनी हितकर है ॥ ६ ॥

स्नेहलवणम् ।

स्नुहीलवणवार्ताकुस्नेहराण्डकं घटे दहेत् ।
गोमये स्नेहलवणं तत्परं वातनाशनम् ॥ ७ ॥

थूहर, बैगन, नमक, तिल्तैल समान भाग ले एक हण्डियामें बन्दकर वनकण्डोंकी आंचमें पकाना चाहिये । यह वात नष्ट करनेमें उत्तम स्नेहलवण है ॥ ७ ॥

विभिन्नस्थानस्थवातचिकित्सा ।

कायो बस्तिगते चापि विरेकबस्तिविशोधनं ।
त्वङ्मांसासृक्सिराप्राप्ते कुर्याच्चासृग्विमोक्षणम् ॥ ८ ॥
स्नेहोपनाहाग्निकर्मबन्धनोन्मर्दनानि च ।
स्नायुसन्ध्यस्थिसम्प्राप्ते कुर्याद्वाते विचक्षणः ॥ ९ ॥
स्वेदाभ्यङ्गनिवातानि हृद्यं चान्नं त्वगाश्रिते ।
शीताः प्रदेहा रक्तस्थे विरेको रक्तमोक्षणम् ॥ १० ॥
विरेको मांसमेदःस्थे निरूहाः शमनानि च ।
बाह्याभ्यन्तरतः स्नेहैरस्थिमज्जगतं जयेत् ॥ ११ ॥
[illegible] शुक्रस्थे बलशुक्रकरं हितम् ।
विबद्धमार्गं शुक्रं तु दृष्ट्वा दद्याद्विरेचनम् ॥ १२ ॥

[illegible] विरेचन [illegible] चाहिये । [illegible] चाहिये । [illegible] ॥ ८–१२ ॥

शुष्कगर्भचिकित्सा ।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम् ।
सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥ १३ ॥

गर्भके सूखने तथा बालकोंके [illegible] मिश्री, मौरेठी, तथा गम्भारीके चूर्णके साथ दूध पीना हितकर है ॥ १३ ॥

शिरोगतवातचिकित्सा ।

शिरोगतेऽनिले वातशिरोरोगहरी क्रिया ।

शिरोगत वायुमें वातशिरोरोगनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ।

हनुस्तम्भचिकित्सा ।

व्यादितास्यं हनुं स्विन्नामङ्गुष्ठाभ्यां प्रपीड्य च ॥ १४ ॥
प्रदेशिनीभ्यां चोन्नम्य चिबुकोन्नामनं हितम् ।

जिसका मुख खुला ही रह गया हो उसकी ठोढीको स्वेदित कर अंगूठोंसे दबाकर उसी समय दोनों तर्जनियोंसे ठोढीको ऊपरकी ओर उठावे ॥ १४ ॥

अर्दितचिकित्सा ।

अर्दिते नवनीतेन खादेन्माषेण्डरीं नरः ॥ १५ ॥
क्षीरमांसरसैर्भुक्त्वा दशमूलीरसं पिबेत् ।

स्नेहाभ्यङ्गशिरोवस्तिपाननस्यपरायण: ॥ १६ ॥
अर्दितं स जयेत्सर्पि. पिबेदौत्तरभक्तकम्।

अर्दितरोगमें मक्खनके साथ उडदके वडे खाने चाहिये तथा दूध व मासरसके साथ भोजन कर दशमूलका क्वाथ पीना चाहिये। तथा जो मनुष्य स्नेहाभ्यङ्ग शिरोवस्ति, स्नेहपान तथा स्नेहयुक्त नस्य लेता है तथा घीके साथ भोजन करता है उसका अर्दितरोग नष्ट होता है ॥ १५ ॥ १६ ॥–

मन्यास्तम्भचिकित्सा।

पञ्चमूलीकृत. क्वाथो दशमूलीकृतोऽथवा ॥ १७ ॥
रूक्षस्वेदस्तथा नस्यं मन्यास्तम्भे प्रशस्यते।

पञ्चमूलका काढा अथवा दशमूलका काढा तथा रूक्ष स्वेद व रूक्ष नस्य मन्यास्तम्भको दूर करता है ॥ १७ ॥–

जिह्वास्तम्भचिकित्सा।

वाताद्वाग्धमनीदुष्टौ स्नेहगण्डूपधारणम् ॥ १८ ॥

वायुसे वाग्वाहिनी शिराओंके दूषित होनेपर स्नेहका गण्डूषधारण करना चाहिये ॥ १८ ॥

कल्याणको लेहः।

सहरिद्रावचाकुष्ठ पिप्पलीविश्वभेषजम्।
अजाजी चाजमोदा च यष्टीमधुकसैन्धवम् ॥ १९ ॥
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्।
तच्चूर्णं सर्पिषालोड्य प्रत्यहं भक्षयेन्नर॰ ॥ २० ॥
एकविंशतिरात्रेण भवेच्छ्रुतिधरो नर.।
मेघदुन्दुभिनिर्घोषो मत्तकोकिलनिःस्वन ॥ २१ ॥
जडगद्गदमूकत्वं लेह॰ कल्याणको जयेत्।

हरिद्रा, वच, कूठ, छोटी पीपल, सोंठ, जीरा, अजवाइन, मौरेठी, सेंधानमक सबका महीन चूर्णकर घीके साथ प्रतिदिन चाटना चाहिये। इक्कीस रात्रितक इसके प्रयोग करनेसे मनुष्य श्रुतिधर (एकवार सुनकर सदा याद रखनेवाला), मेघ तथा दुदुभीके समान गरजनेवाला तथा मत्त कोकिलके समान स्वरवाला होता है। जडता गद्गदकण्ठ तथा मूकताको यह कल्याणकलेह नष्ट करता है ॥ १९–२१ ॥–

त्रिकस्कन्धादिगतवायुचिकित्सा।

रूक्षं त्रिकस्कन्धगतं वायुं मन्यागतं तथा।
वमनं हन्ति नस्यं च कुशलेन प्रयोजितम् ॥ २२ ॥

त्रिक, स्कन्ध तथा मन्यागतवायुको कुशल पुरुषद्वारा प्रयुक्त रूक्ष वमन तथा नस्य शान्त करता है ॥ २२ ॥

माषबलादिक्वाथनस्यम्।

माषबलाशूकशिम्बीकत्तृणरास्नाश्वगन्धोरुबूकाणाम्।
क्वाथो नस्यनिपीतो रामठलवणान्वितः कोष्ण ॥ २३ ॥
अपहरति पक्षवातं मन्यास्तम्भ सकर्णनादरुजम्।
दुर्जयमर्दितवातं सप्ताहाज्जयति चावश्यम् ॥ २४ ॥

उडद, खरेटी, कौंचके बीज, रोहिषघास, रासन, असगन्ध तथा एरण्डकी छालका क्वाथ, भूनी हींग व नमक मिलाकर कुछ गरम गरम नासिका द्वारा पीनेसे (नस्यलेनेसे) अवश्यमेव पक्षाघात, मन्यास्तम्भ, कानका दर्द तथा सनसनाहट व कठिन अर्दितरोग ७ दिनमें अवश्य नष्ट होता है ॥ २३ ॥ २४ ॥

विश्वाचीचिकित्सा।

दशमूलीबलामाषक्वाथ तैलाज्यमिश्रितम्।
सायं भुक्त्वा पिबेन्नक्तं विश्वाच्यामपबाहुके ॥ २५ ॥
रसं बलायास्त्वथ पारिभद्रा-
तथात्मगुप्तास्वरसं पिबेद्वा।
नस्यं तु यो मांसरसेन दद्या-
न्मासादसौ वज्रसमानबाहु॰ ॥ २६ ॥

दशमूल, खरेटी, उडदका क्वाथ, तैल व घी मिलाकर सायंकाल भोजन करनेके अनन्तर पीनेसे विश्वाची तथा अपबाहुक रोग नष्ट होता है। तथा खरेटीका रस व नीमका रस अथवा कौंचका रस जो पीता है तथा मासरससे नस्य लेता है उसके विश्वाची व अपबाहुक रोग नष्ट होते है ॥ २५ ॥ २६ ॥

पक्षाघातचिकित्सा।

माषात्मगुप्तकैरण्डवाट्यालकश्टत पिबेत्।
हिङ्गुसैन्धवसंयुक्तं पक्षाघातनिवारणम् ॥ २७ ॥
बाहुशोषे पिबेत्सर्पिर्भुक्त्वा कल्याणकं महत्।
हृदि प्रकुपिते वाते चांशुमत्या पयो हितम् ॥ २८ ॥

उडद, कौंचके बीज, एरण्डकी छाल तथा खरेटीका क्वाथ भुनी हींग व सेंधानमक मिलाकर पीनेसे पक्षाघातरोग नष्ट होता है। बाहुशोषमें भोजनके अनन्तर महाकल्याणकघृतका सेवन करना चाहिये। तथा हृदयमें वायुके कुपित होनेपर (अपतन्त्रवातमें) शालिपर्णीसे सिद्ध किया दूध पीना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

हरीतक्यादिचूर्णम्।

हरीतकी वचा रास्ना सैन्धवं चाम्लवेतसम्।
घृतमात्रासमायुक्तमपतन्त्रकनाशनम् ॥ २९ ॥

बडी हर्रका छिलका, वच, रासन, सेंधानमक तथा अम्लवेतका चूर्ण घीमें मिलाकर चाटनेसे अपतन्त्रकरोग नष्ट होता है ॥ २९ ॥

स्वल्परसोनपिण्डः।

पलमर्धं पलं चैव रसोनस्य सुकुट्टितम्।
हिंगुजीरकसिन्धूत्थैः सौवर्चलकटुत्रयैः ॥ ३० ॥
चूर्णितैर्माषकोन्मानैरवचूर्ण्य विलोडितम्।
यथाग्नि भक्षितं प्रातस्तूक्काथानुपानत ॥ ३१ ॥
दिने दिने प्रयोक्तव्यं मासमेकं निरन्तरम्।
वातरोग निहन्त्याशु अर्दितं सापतन्त्रकम् ॥ ३२ ॥
एकाङ्गरोगिणे चैव तथा सर्वाङ्गरोगिणे।
ऊरुस्तम्भे च गृध्रस्या क्रिमिकोष्ठे विशेषत. ॥ ३३ ॥
कटीपृष्ठामय हन्यादुदरं च विशेषत ।

साफ कुटा हुआ लहसुन ६ तोला, भुनी हींग, जीरा, सेंधानमक, कालानमक, सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक १ माशे चूर्णकर अपनी अग्नि तथा बलके अनुसार सेवन करने तथा ऊपरसे एरण्डकी छालका क्वाथ पीनेसे १ मासमें वातरोग, अर्दित, अपतन्त्रक, पक्षाघात, सर्वाङ्ग-ग्रह, ऊरुस्तम्भ, गृध्रसी, क्रिमिकोष्ठ, कमर, पीठके रोग तथा उदर रोगोंको नष्ट करता है ॥३०—३३ ॥—

विविधा योगाः।

हन्ति प्राग्भोजनात्पीतं दध्यम्लं सवचोषणम् ॥ ३४ ॥
अपतानकमन्योऽपि वातव्याधिक्रमो हित.।
वातघ्नैर्दशमूल्या च नर कुब्जमुपाचरेत् ॥ ३५ ॥
स्नेहैर्मांसरसैर्वापि प्रवृद्धं तं विवर्जयेत्।
पिप्पल्यादिरजस्तूनीप्रतितून्योः सुखाम्बुना ॥ ३६ ॥
पिबेद्वा स्नेहलवणं सघृतं क्षारहिंगु वा।
आध्माने लघनं पाणितापश्च फलवर्तय. ॥ ३७ ॥
दीपनं पाचन चैव वस्तिश्चाप्यत्र शोधन ।
प्रत्याध्माने तु वमन लघन दीपन तथा ॥ ३८ ॥
प्रत्यष्ठीलाष्ठीलिकयोरन्तर्विद्रधिगुल्मवत्।

वच व कालीमिर्चके चूर्णके साथ खट्टा दही भोजनके पहिले पीनेसे अपतन्त्रक नष्ट होता है तथा दूसरा भी वातव्याधिक्रम सेवन करना चाहिये। कुब्ज पुरुषको वातनाशक स्नेह व मांसरस तथा दशमूलका सेवन कराकर अच्छा करना चाहिये तथा पुराने व बढे हुए कुब्जत्वकी चिकित्सा न करनी चाहिये। तूनी तथा प्रतितूनीमें कुछ गरम जलके साथ पिप्पल्यादिगणका चूर्ण पीना चाहिये, अथवा स्नेहलवण अथवा घीके साथ भुनी हींग व लवण खाना चाहिये। पेटमें अफारा होनेपर लघन कराना, हाथ गरम कर पेटपर फिराना तथा फलवर्ति (जिससे दस्त साफ हो) धारण कराना चाहिये। दीपन, पाचन औषधियोंका तथा शोधनवस्तिका भी प्रयोग करना चाहिये। प्रत्याध्मानमें वमन, लघन तथा दीपन औषध सेवन करना चाहिये। प्रत्यष्ठीला तथा अष्ठीलिकामें अन्तर्विद्रधि व गुल्मके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३४—३८ ॥—

गृध्रसीचिकित्सा।

दशमूलीबलारास्नागुडूचीविश्वभेषजम् ॥ ३९ ॥
पिबेदेरण्डतैलेन गृध्रसीखञ्जपंगुषु।
शेफालिकादलैः क्काथो मृद्वग्निपरिसाधित ॥ ४० ॥
दुर्वार गृध्रसीरोग पीतमात्र समुद्धरेत्।
पञ्चमूलकषायं तु स्नुतैलं त्रिवृद्घृतम्।
त्रिवृतवाथवा युक्तं गृध्रसीगुल्मशूलनुत् ॥ ४१ ॥
तैल घृत वार्द्रकमातुलुङ्ग्यो रस सचुक्रं सगुड पिबेद्वा।
कट्यूरुपृष्ठत्रिकगुल्मशूलगृध्रस्युदावर्तहर प्रदिष्ट ॥४२॥
तैलमेरण्डजं वापि गोमूत्रेण पिबेन्नर.।
मासमेकं प्रयोगोऽयं गृध्रस्यूरुग्रहापह ॥ ४३ ॥
गोमूत्रैरण्डतैलाभ्यां कृष्णा पीता सुचूर्णिता।
दीर्घकालोत्थितां हन्ति गृध्रसीं कफवातजाम् ॥ ४४ ॥
अश्नाति यो नरो नित्यमेरण्डतैलसाधितम्।
वार्ताकं गृध्रसीखिन्न पूर्वामाप्नोत्यसौ गतिम् ॥ ४५ ॥
पिष्ट्वैरण्डफलं क्षीरे सविश्वं वा फलं स्वो ।
पायसो भक्षित सिद्धो गृध्रसीकटिशूलनुत् ॥ ४६ ॥

दशमूल, खरेटी, रासन, गुर्च, सोंठका चूर्ण एरण्डतैलके साथ गृध्रसी, खञ्ज तथा पगुतामें पीना चाहिये। अथवा सम्भालूकी पत्तीका क्वाथ मन्द आचपर पकाकर पीना चाहिये इससे शीघ्रही गृध्रसीरोग नष्ट होता है। अथवा पञ्चमूलका क्वाथ, एरण्डतैलके साथ अथवा निसोथ व घीके साथ अथवा केवल निसोथके साथ पीना चाहिये। इससे गृध्रसी, गुल्म, व शूल नष्ट होता है इसी प्रकार तैल अथवा घी अदरख व बिजौरे निम्बूके रस तथा चूकाके साथ अथवा गुडके साथ पीनेसे कमर, ऊरू, पीठ, त्रिक तथा गुल्मका शूल, गृध्रसी व उदावर्त रोग नष्ट होते हैं। अथवा एरण्डका तैल गोमूत्रके साथ एक मासतक पीनेसे गृध्रसी तथा ऊरुस्तम्भरोग नष्ट होता है। छोटी पीपलका चूर्ण गोमूत्र व एरण्डतैलके साथ पीनेसे कफवातज पुरानी गृध्रसी नष्ट होती है। जो मनुष्य एरण्डतैलमें भूने बैंगन प्रतिदिन खाता है। उसका गृध्रसी रोग नष्ट होता तथा

पूर्वके समान शरीर होता है। एरण्डके केवल बीज अथवा सोंठ -सहित पीस दूधमें मिलाकर खीर बना खानेसे गृध्रसी तथा कमरका दर्द नष्ट होता है ॥ ३९–४६ ॥

रास्नागुग्गुलुः।

रास्नायास्तु पलं चैकं कर्षान्पञ्च च गुग्गुलो.।
सर्पिषा वटिका कृत्वा खादेद्वा गृध्रसीहराम् ॥ ४७ ॥

रासन ४ तोला, गुग्गुलु २० तोला दोनों एकमें मिला घीके साथ गोली बनाकर खानेसे गृध्रसी रोग नष्ट होता है ॥ ४७ ॥

गृध्रस्या विशेषचिकित्सा।

गृध्रस्यार्तं नरं सम्यक्पाचनाद्यैर्विशोधितम् ।
ज्ञात्वा नरं प्रदीप्ताग्निं बस्तिभिः समुपाचरेत् ॥ ४८ ॥
नादौ बस्तिविधिं कुर्याद्यावदूर्ध्वं न शुध्यति ।
स्नेहो निरर्थकस्तस्य भस्मन्येवाहुतिर्यथा ॥ ४९ ॥
गृध्रस्यार्तस्य जंघाया स्नेहस्वेदे कृते भृशम् ।
पद्भ्या निर्मर्दितायाश्च सूक्ष्ममार्गेण गृध्रसीम् ॥ ५० ॥
अयतायाङ्गुलौ सम्यक्कनिष्ठाया शनैः शनैः ।
ज्ञात्वा समुन्नतं ग्रंथिं कण्डरायां व्यवस्थितम् ॥ ५१ ॥
तं शस्त्रेण विदार्याशु प्रवालाङ्कुरसन्निभम् ।
समुद्धृत्याग्निना दग्ध्वा लिम्पेद्यष्ट्याह्वचन्दने ॥ ५२ ॥
विध्येच्छिरामिन्द्रबस्तेरधस्ताच्चतुरङ्गुले ।
यदि नोपशमं गच्छेद्दहेत्पादकनिष्ठिकाम् ॥ ५३ ॥

गृध्रसीमें पीडित पुरुषको पहिले पाचनादिसे शुद्धकर अग्नि दीप्त हो जानेपर बस्ति देना चाहिये । जबतक ऊर्ध्वभाग शुद्ध न हो जाय तबतक बस्ति न देना चाहिये क्योंकि विना शुद्धि स्नेह भस्ममें आहुतिके समान व्यर्थ होता है तथा जंघामें स्नेहन व स्वेदन खूब करनेके अनन्तर पैरोंसे दबवाना चाहिये फिर ऊपरसे दबा दबाकर गृध्रसीकी गाठको धीरे धीरे कनिष्ठिका अगुलीमें लाकर जब यह विदित हो जाय कि गाठ नसमें आकर ऊची उठ गयी है तब उसे शस्त्रसे काटकर निकाल देना चाहिये । वह मूंगेके अकुरके सदृश निकलेगी उसे निकालकर उस स्थानको अग्निसे जलाकर मौरेठी व चन्दनका लेप करना चाहिये । अथवा इन्द्रबस्तिके ४ अंगुल नीचे शिराव्यध करना चाहिये और इससे भी न शान्त हो तो पैरकी कनिष्ठा अगुलीको जला देना चाहिये ॥४८–५३॥

वंक्षणशूलादिनाशका योगाः।

तगरस्य शिफामात्रां पिष्ट्वा तक्रेण य पिबेत् ।
वङ्क्षणानिलरोगार्तः स क्षणादेव मुच्यते ॥ ५४ ॥
दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा ।
कटिशूलेषु सर्वेषु तैलमेरण्डसम्भवम् ॥ ५५ ॥

वंक्षण सन्धिमें जिसके शूल हो उसे तगरकी जड पीसकर मट्ठेके साथ पीना चाहिये। तथा दशमूलके काढेके साथ अथवा सोंठके काढेके साथ समस्त कटिशूलोंमें एरण्ड तैल पिलाना चाहिये ॥ ५४ ॥ ५५ ॥

शिराव्यधः।

विश्वाच्यां खञ्जपङ्ग्वोश्च दाहे हर्षे च पादयो ।
क्रोष्टुशीर्षविकारे च विकारे वातकण्टके ॥ ५६ ॥
शिरा यथोक्ता निर्विध्य चिकित्सा वातरोगनुत् ।

विश्वाची, खञ्जवात, पङ्गुता, पादहर्ष तथा पाददाह व क्रोष्टुकशीर्ष व वातकण्टक रोगमें जो शिरा उचित हो उसका व्यधकर वातरोगनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५६ ॥–

पाददाहचिकित्सा।

शिराव्यध पाददाहे वाते कण्टकवत् क्रिया ॥ ५७ ॥
शतधौतघृतोन्मिश्रैर्नागकेशरकण्टकैः ।
पिष्टैः प्रलेपः सेकश्च दशमूल्यम्बुनेष्यते ॥ ५८ ॥
आलिप्य नवनीतेन स्वेदो हस्तादिदाहहा ।

पाद दाहमें शिराव्यध करना चाहिये तथा वातकण्टक रोगके समान चिकित्सा करनी चाहिये । नागकेशरके काण्टोंको महीन पीस सौ वार धोये हुए घीमे मिलाकर लेप करने तथा दशमूल क्वाथका सिञ्चन करनेसे पाद दाह शान्त होता है । मक्खनसे लेप कर स्वेदन करनेसे हस्तादि दाह नष्ट होता है ॥५७–५८॥

पादहर्षचिकित्सा।

अग्नितप्तेष्टिकाखण्डं काञ्जिके परिषिच्य तु ।
तद्बाष्पस्वेदनं कार्यं पादहर्षविनाशनम् ॥ ५९ ॥

अग्निमें तपाये गये ईटके टुकडेको काञ्जीमें बुझाने पर जो वाष्प उठता है उससे स्वेदन करनेसे पादहर्ष शान्त होता है ॥ ५९ ॥

झिञ्झिनिवातचिकित्सा।

दशमूलस्य निर्यूहो हिंगुपुष्करसयुत ।
शमयेत् परिपीतस्तु वात झिञ्झिनिसंज्ञितम् ॥ ६० ॥

दशमूलका क्वाथ भुनी हींग व पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे झिञ्झिनी वात नष्ट होता है ॥ ६० ॥

क्रोष्टुकशीर्षवातकण्टकखलीचिकित्सा!

गुग्गुलुं क्रोष्टुशीर्षे तु गुडूचीत्रिफलाम्भसा ।
क्षीरेणैरण्डतैलं वा पिबेद्वा वृद्धदारकम् ॥ ६१ ॥

रक्तावसेचनं कुर्यादभीक्ष्णं वातकण्टके ।
पिबेदेरण्डतैलं वा दहेत्सूचिभिरेव वा ॥ ६२ ॥
खल्ल्यां स्निग्धाम्ललवणं स्वेदनमर्दोपनाहनम् ।

गुर्च व त्रिफलाके काढेके साथ गुग्गुलु अथवा दूधके साथ एरण्डतैल अथवा विधारेका चूर्ण पीना चाहिये । वातकण्टकरोगमें बार बार रक्तमोक्षण (फस्त खुलाना) कराना चाहिये । अथवा एरण्डतैल पीना चाहिये अथवा सुईसे जला देना चाहिये । खल्लीरोगमें चिकने खट्टे व नमकीन पदार्थोंसे स्वेदन, मर्दन व उपनाहन करना चाहिये ॥ ६१ ॥ ६२ ॥–

आदित्यपाकगुग्गुलुः।

पृथक्पलांशा त्रिफला पिप्पली चेति चूर्णितम् ॥ ६३ ॥
दशमूलाम्बुना भाव्यं त्वगेलार्धपलान्वितम् ।
दत्त्वा पलानि पञ्चैव गुग्गुलोर्वटकीकृत ॥ ६४ ॥
एष मांसरसाभ्यामाद्वातरोगान्विशेषत ।
हन्ति सन्ध्यस्थिमज्जस्थान्वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ ६५ ॥

त्रिफला, छोटी पीपल प्रत्येक ४ तोला, दालचीनी, इलायची प्रत्येक २ तोला मिला चूर्णकर २० तोला गुग्गुलु मिलाकर दशमूलके काढेसे सात भावना देनी चाहिये, फिर गोली बना लेनी चाहिये । यह मांसरसके साथ खानेसे सन्धि, अस्थि तथा मज्जागत वातरोगोंको वृक्षको इन्द्रवज्रके समान नष्ट करता है ॥ ६३–६५ ॥

भावनाविधिः ।

भाव्यद्रव्यसमं क्वाथ्य क्वाथोऽष्टांशस्तु तेन च ।
आर्द्रं यावद्दिनं भाव्यं सप्ताहं भावनाविधि ॥ ६६ ॥

जितने द्रव्यकी भावना देनी हो उतने ही क्वाथ्य द्रव्य (जिसका काढ़ा बनाया जाय) लेना चाहिये और उसका अष्टमांश क्वाथ रखकर उतार छान भिगोना चाहिये ऐसा कि जिससे दिनभर गीला रहे । सात दिन-तक भावना देनी चाहिये ॥ ६६ ॥

आभादिगुग्गुलुः।

आभा (भा) श्वगन्धाहपुषागुडूची-
शतावरीगोक्षुरवृद्धदारकम् ।
रास्नाशताह्वासशटीयमानी-
सनागरा चेति समैश्च चूर्णम् ॥ ६७ ॥
तुल्यं भवेत्कौशिकमत्र मध्ये
देयं तथा सर्पिरतोऽर्धभागम् ।
शर्कांक्षमात्र त्वथ तत्प्रयोगात्
कृत्वाऽनुपानं सुरयाथ यूषैः ॥ ६८ ॥

मद्येन वा कोष्णजलेन वाथ
क्षीरेण वा मांसरसेन वापि ।
कटिग्रहे गृध्रसिबाहुपृष्ठे
हनुग्रहे जानुनि पादयुग्मे ॥ ६९ ॥
सन्धिस्थिते चास्थिगते च वाते
मज्जागते स्नायुगते च कोष्ठे ।
रोगाञ्जयेद्वातकफानुविद्धान्
वातेरितान्हृद्ग्रहयोनिदोषान् ॥ ७० ॥
भग्नास्थिविद्धेषु च खञ्जवाते
त्रयोदशाङ्गं प्रवदन्ति तज्ज्ञा. ॥ ७१ ॥

आहा अथवा आभा (बबूलकी छाल अथवा लशुन), असगन्ध, हाऊबेर, गुर्च, शतावरी, गोखुरू, अजवाइन, विधारा, रासन, सौंफ, कचूर, सोंठ सब समान भाग ले कूट, छान चूर्ण कर सबके समान शुद्ध गुग्गुलु तथा गुग्गुलुसे आधा घी मिलाना चाहिये । इसकी ६ माशा मात्रा शराब अथवा यूष अथवा मद्य अथवा कुछ गरम जल अथवा दूध अथवा मांसरसके साथ सेवन करनेसे सन्धि, अस्थि, मज्जा, स्नायु तथा कोष्ठगत वात, तथा कफवातके अन्यरोग, हृद्रोग, योनिदोष, भग्न,अस्थिविद्ध, खञ्जवात आदि नष्ट होते हैं । इसे त्रयोदशाङ्ग गुग्गुलु कहते हैं ॥ ६७–७१ ॥

—मिश्रितवातचिकित्सा।

जित्वा वरकमग्रे तु वाते वातहरं हितम् ।
अन्नावृते तदुल्लेखो दीपनं पाचनं लघु ॥ ७२ ॥
सुप्तिवाते त्वसृङ्मोक्षं कारयेद्बहुशो भिषक् ।
दिह्याच्च लवणागारधूमैस्तैलविमार्दितैः ॥ ७३ ॥

मिश्रित वायुमें प्रथम बढे हुए दोषको जीतकर वात-हर–चिकित्सा करनी चाहिये । अन्नसे आवृत वायुमे अर्थात् आमाशयमें बढे वायुमे पहिले वमनद्वारा शुद्धकर दीपन, पाचन तथा लघु (हलके) औषधका सेवन करना चाहिये । स्पर्शज्ञान न होनेपर बार बार फस्त खुलाना तथा तैलमें मिलाये हुए नमक तथा गृह धूमका लेप करना चाहिये ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

आहारविहाराः ।

सर्पिस्तैलवसामज्जपानाभ्यञ्जनवस्तय ॥
स्वेदा स्निग्धा निवातं च स्थानं प्रावरणानि च ॥
रसा. पयांसि भोज्यानि स्वाद्वम्ललवणानि च ।
बृंहणं यत्तु तत्सर्वं प्रशस्तं वातरोगिणाम् ॥ ७५ ॥
पटोलपालक्यैर्यूषो वृष्यो वातहरो लघु ।
वात्यालककृतो यूष. परं वातविनाशन' ॥ ७६ ॥
बलाया. पञ्चमूलस्य दशमूलस्य वा रसे ।

अजाशीर्षाम्बुजानूपक्रव्यादपिशितैः पृथक् ॥ ७७ ॥
साधयित्वा रसान्स्निग्धान्दध्यम्लव्योपसंस्कृतान् ।
भोजयेद्वातरोगार्तं तैर्व्यक्तलवणैर्नरम् ॥ ७८ ॥
पञ्चमूलीबलासिद्धं क्षीरं वातामये हितम् ।

घी, तैल, वसा, मज्जाका पीना तथा मालिश करना व वस्ति देना, स्निग्धस्वेदन, वातरहित स्थान, गरम ओढना मांसरस, दूध तथा उससे बनाये पदार्थ, मीठे, खट्टे, नमकीन पदार्थ तथा जो शरीरको बढाते हैं वे सब वातरोगको नष्ट करते हैं। तथा परवल व पालकका यूष वाजीकर, लघु तथा वातनाशक होता है। खरेटीका यूष वातनाशक द्रव्योंमें श्रेष्ठ है (यहापर कुछ आचार्योंका मत है कि यूष होनेसे यूषप्रधान मुद्गादि भी छोडना चाहिये, कुछका मत है कि नहीं । पर यदि छोडा ही जाय तो उड़द छोडना चाहिये) तथा खरेटी, पञ्चमूल तथा दशमूलके क्वाथमें बकरेकी मूंडी अथवा जलीय प्राणी अथवा आनूपदेशके प्राणी तथा मांसभक्षक प्राणियोंका मांस पकाकर रस छान स्नेह तथा दही व त्रिकटु मिलाना चाहिये तथा इन्हींमें नमक मिलाकर भोजनके साथ खाना चाहिये। इससे वातरोग नष्ट होते हैं। तथा पञ्चमूल व खरेटीसे सिद्ध दूध वातरोगको नष्ट करता है॥७४-७८॥

वातनाशकगणः ।

वाजिगन्धाबलास्तिस्रो दशमूलमिहौषधम् ।
द्वे गृध्रनख्यौ रास्ना च गणो मारुतनाशन. ॥ ७९ ॥

असगन्ध, तीनों बला (खरेटी, कंघी, गंगेरन), दशमूल, सोंठ, नखनखी, रासन यह गण वायुको नष्ट करता है ॥ ७९ ॥

कोलादिप्रदेहः ।

कोलं कुलत्थं सुरदारुरास्ना-
माषा उमातैलफलानि कुष्ठम् ।
वचाशताह्वे यवचूर्णमम्ल-
मुष्णानि वातामयिना प्रदेहः ॥ ८० ॥
आनूपवेशवारोष्णप्रदेहो वातनाशन. ।

बेर, कुलथी, देवदारु, रासन, उड़द, अलसी तथा तिल आदि तैलद्रव्य, कूठ, वच, सौंफ, सोवा, यवचूर्ण, काञ्जी सबको गरम कर वातरोगवालोंके लेप करना चाहिये । अथवा आनूपमासके वेशवारका गरम गरम लेप करना चाहिये ॥ ८० ॥-

वेशवारः ।

निरस्थिपिशितं पिष्टं स्विन्नं गुडघृतान्वितम् ८१ ॥
कृष्णामरिचसंयुक्तं वेशवार इति स्मृतम् ।

हड्डी रहित मांसको पीस पकाकर गुड, घी, मिर्च, व पीपल मिलानेसे वेशवार बनता है ॥ ८१ ॥-

शाल्वणस्वेदः ।

काकोल्यादिः स वातघ्नः सर्वाम्लद्रव्यसंयुतः ॥ ८२ ॥
सानूपमांसः सुस्विन्नः सर्वस्नेहसमन्वितः ।
सुखोष्णः स्पष्टलवणः शाल्वणः परिकीर्तितः ॥ ८३ ॥
तेनोपनाहं कुर्वीत सर्वदा वातरोगिणाम् ।
वातघ्नो भद्रदार्वादि काकोल्यादिस्तु सौश्रुतः ॥ ८४ ॥
मांसेनात्रौषधं तुल्यं यावताम्लेन चाम्लता ।
पट्टी स्यात्स्वेदनार्थं च काञ्जिकाद्यम्लमिष्यते ॥ ८५ ॥
चतुःस्नेहोऽत्र तावान्स्यात्सुस्विन्नत्वं यतो भवेत् ।
समस्तं वर्गमर्धं वा यथालाभमथापि वा ॥ ८६ ॥
प्रयुञ्जीतेति वचनं सर्वत्र गणकर्मणि ।

काकोल्यादिगण, वातघ्न भद्रदार्वादिगण तथा अम्ल द्रव्य, काञ्जी, आनूपमास चारो स्नेहोंमें सेंक कुछ नमक मिलाकर गरम गरम उपनाहन (पुल्टिस) करना चाहिये । इसमें वातघ्न गण देवदार्वादिगण, काकोल्यादिगण, सुश्रुतोक्त इनके चूर्णके समान मास तथा जितनेसे खट्टा हो जावे उतना काञ्जी आदि खट्टा द्रव्य छोडना चाहिये। तथा इसको बाधकर ऊपरसे पट्टी बाधनी चाहिये । स्नेह चारो मिलाकर इतने ही छोडने चाहिये जिससे अच्छी तरह पक जावे । इसमें समस्त अथवा आधे अथवा यथालाभ द्रव्य मिलाने चाहिये । यही नियम सब गणोंमें समझना चाहिये ॥ ८२-८६ ॥-

अश्वगन्धाघृतम् ।

अश्वगन्धाकषाये च कल्के क्षीरचतुर्गुणम् ॥ ८७ ॥
घृतं पक्वं तु वातघ्नं वृष्यं मांसविवर्धनम् ।

असगन्धके काढे तथा कल्कमें चतुर्गुण दूधके साथ सिद्ध हुआ घृत वातनाशक, वाजीकर तथा मांसवर्द्धक होता है ॥ ८७ ॥-

---

१ काकोल्यादिगण, तथा वातघ्न भद्रदार्वादिगण यहा सुश्रुतोक्त लेना चाहिये । उनके पाठ इस प्रकार हैं । "काकोल्यौ मधुकामेदे जीवकर्षभकौ सहे । ऋद्धिर्वृद्धिस्तुगाक्षीरी पुण्डरीकं सपद्मकम् ॥ जीवन्ती साम्रृता शृङ्गी मृद्वीका चेति कुत्रचित् । काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः ॥" इति काकोल्यादिः । "भद्रदारु निशे भार्ङ्गी वरुणो मेषशृङ्गिका । जटाझिण्टी चार्तगलो वरा गोक्षुरतण्डुलाः ॥ अर्कौ श्वदंष्ट्रा गणिका धत्तूरश्चाश्मभेदकः । वरी स्थिरा पोटला रुग्वर्षाभूर्वसुको यवः ॥ भद्रदार्वादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ॥"

दशमूलघृतम् ।

दशमूलस्य निर्यूहे जीवनीयैः पलोन्मितैः ॥ ८८ ॥
क्षीरेण च घृतं पक्वं तर्पणं पवनार्तिनुत् ।
क्वाथोऽत्र त्रिगुणः सर्पिः प्रस्थः साध्यं पयः समम् ॥८९॥

२ प्रस्थ घी, २ प्रस्थ दूध, ६ प्रस्थ दशमूलका क्वाथ तथा जीवनीय गणकी औषधियां प्रत्येक ४ तोला छोडकर सिद्ध किया घृत तृप्तिकारक तथा वातनाशक होता है ॥ ८८ ॥ ८९ ॥

आजघृतम् ।

आजं चर्मविनिर्मुक्तं त्यक्तशृङ्गखुरादिकम् ।
पञ्चमूलीद्वयं चैव जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ ९० ॥
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
जीवनीयैः सयष्ट्याह्वैः क्षीरं चैव शतावरीम् ॥ ९१ ॥
छागलाद्यमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
अर्दिते कर्णशूले च बाधिर्ये मूकमिन्मिने ॥ ९२ ॥
जडगद्गदपङ्गूनां खञ्जे गृध्रसिकुब्जयोः ।
अपतानेऽपतन्त्रे च सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ९३ ॥
द्रोणे द्रव्यतुलाश्रुत्या स्याच्छागदशमूलयोः ।
पृथक् तुलार्धं यष्ट्याह्वद्वयं देयं द्विधोक्तितः ॥ ९४ ॥

चर्म, सींग, तथा खुर आदिसे रहित बकरेका मांस २॥ सेर तथा दशमूल मिलित २॥ सेर २५ सेर ४८ तो० जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर १ प्रस्थ घी तथा जीवनीय गणकी औषधियां व मौरेठी व शतावरका कल्क तथा घीके बराबर दूध मिलाकर पकाना चाहिये । यह छागलादि घृत समस्त वातरोग यथा—अर्दित, कर्णशूल, बाधिर्य, मूकता, मिन्मिनापन, जडता, गद्गदवाणी तथा पंगुता, खञ्ज, गृध्रसी, कुब्जता, अपतानक व अपतन्त्रकको नष्ट करता है । १ द्रोण जलमें १ तुला क्वाथ्य छोडना चाहिये अतएव मांस व दशमूल दोनों आधा तुला पृथक् पृथक् मिलानेसे १ तुला हुआ । मौरेठी दोनों छोडना चाहिये । क्योंकि दो मौरेठीकी जातियां हैं ॥ ९०–९४ ॥

एलादितैलम् ।

एलामुरासरलशैलजदारुकौन्ती-
चण्डाशटीनलदचम्पकहेमपुष्पम् ।
स्थौणेयगन्धरसपूतिदलामृणाल-
श्रीवासकुन्दुरुनखाम्बुवराङ्गकुष्ठम् ॥ ९५ ॥
कालीयकं जलदकर्कटचन्दनश्री-
जात्याः फलं सविकसं सहकुङ्कुमं च ।
स्पृक्कातुरुष्कबलातुलया विनीय
तैलं बलाकथनदुग्धयुतं च दध्ना ॥ ९६ ॥
साधं पचेत्तु हितमेतदुदाहरन्ति
वातामयेषु बलवर्णवपुःप्रकारि ॥

छोटी इलायची, मुरामांसी, सरल (देवदारुविशेष) भूरिछरीला, देवदारु, सम्भालूके बीज, चोरक, कचूर, जटामांसी, चम्पा, नागकेशर, थुनेर बोल, खट्टाशी, तेजपात, कमलकी डण्डी, गन्धाविरोजा, तार्पीन, नख, सुगन्धवाला, दालचीनी, कूठ, तगर, नागरमोथा, काकडासिंगी, सफेद चन्दन, जायफल, मजीठ, केशर, चतुर्गुण खरेटीका क्वाथ तथा उतना दूध व उतना ही दही मिलाकर पकाना चाहिये । यह तैल वातरोगोंको नष्ट करता तथा बल, वर्ण व शरीरको उत्तम बनाता है ॥ ९५ ॥ ९६ ॥—

बलाशैरीयकतैले ।

बलानिष्क्वाथकल्काभ्यां तैलं पक्वं पयोऽन्वितम् ।
सर्ववातविकारघ्नमेवं शैरीयपाचितम् ॥ ९७ ॥

बलाके क्वाथ व कल्क अथवा कटसैलाके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध तैल समस्त वातरोगोंको नष्ट करता है । इसमें तैलके समान दूध भी छोडना चाहिये ॥ ९७ ॥

महाबलातैलम् ।

बलामूलकषायस्य दशमूलीकृतस्य च ।
यवकोलकुलत्थानां क्वाथस्य पयसस्तथा ॥ ९८ ॥
अष्टावष्टौ शुभा भागास्तैलादेकस्तदेकतः ।
पचेदावाप्य मधुरं गणं सैन्धवसंयुतम् ॥ ९९ ॥
तथागुरुसर्जरसं सरलं देवदारु च ।
मञ्जिष्ठां चन्दनं कुष्ठमेलां कालानुशारिवाम् ॥ १०० ॥
मांसीशैलेयकं पत्रं तगरं शारिवां वचाम् ।
शतावरीमश्वगन्धां शतपुष्पां पुनर्नवाम् ॥ १०१ ॥
तत्साधुसिद्धं सौवर्णे राजते मृण्मयेऽपि वा ।
प्रक्षिप्य कलशे सम्यक्सुगुप्तं निधापयेत् ॥ १०२ ॥
बलातैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ।
यथाबलमितो मात्रा सूतिकायै प्रदापयेत् ॥ १०३ ॥
या च गर्भार्थिनी नारी क्षीणशुक्रश्च यः पुमान् ।
क्षीणवाते मर्महतेऽभिहते मथितेऽथवा ॥ १०४ ॥
भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैवोपयोजयेत् ।
सर्वानाक्षेपकादींश्च वातव्याधीन्व्यपोहति ॥ १०५ ॥
हिक्काकासमधीमन्थं गुल्मश्वासं सुदुस्तरम् ।
षण्मासानुपयुज्यैतदन्त्रवृद्धिमपोहति ॥ १०६ ॥
प्रत्यग्रधातुः पुरुषो भवेच्च स्थिरयौवनः ।
एतद्धि राज्ञा कर्तव्यं राजमात्राश्च ये नराः ॥ १०७ ॥
सुखिनः सुकुमाराश्च बलिनश्चापि ये नराः ।

खरेटीकी जडका क्वाथ, दशमूलका क्वाथ, यव, बेर, कुलथीका क्वाथ तथा दूध प्रत्येक ८-भाग, तिल-

तैल १ भाग तथा जीवकादि मधुर गणकी औषधियाँ व सेंधानमक, अगर, राल, सरल, देवदारु, मञ्जीठ, चन्दन, कूट, इलायची, काली शारिवा, जटामासी, छरीला, तेजपात, तगर, शारिवा, वच, शतावरी, असगन्ध, सौंफ, पुनर्नवाकी जड सबका कल्क, तैलसे चतुर्थांश मिलाकर सिद्ध किया तैल सोने, चादी अथवा मिट्टीके वर्तनमे रखकर समयपर प्रयोग करना चाहिये। यह वातरोगोंका नष्ट करनेवाला बलातैल है। इसकी मात्रा बलके अनुसार सूतिका स्त्रीको देना चाहिये। जो स्त्री गर्भकी इच्छा करती है अथवा जो पुरुष क्षीण हो गया है तथा क्षीणतामे बढे हुए वायु तथा मर्माभिघात अथवा कहीं अभिघात या मथित हों, टूट गया हो अथवा थकावट हो इनमें इसका प्रयोग करना चाहिये। आक्षेपकादि समस्त वातरोगोंको नष्ट करता तथा हिक्का, कास, अधिमन्थ, गुल्म, श्वासकी नष्ट करता है। इसके ६ मासतक प्रयोग करनेसे अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है, नवीन धातु बनते हैं, यौवन स्थिर होता है। यह राजाओं, धनिकों, सुखी पुरुषों, सुकुमार तथा रउवानोंके लिये बनाना चाहिये ॥ ९८–१०७ ॥

नारायणतैलम्।

बिल्वाग्निमन्थश्योनाकपाटलापारिभद्रका ।
प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥ १०८ ॥
बला चातिबला चैव श्वदंष्ट्रा सपुनर्नवा।
एषां दशपलान्भागाश्चतुर्द्रोणेऽम्भस पचेत् ॥ १०९ ॥
पादशेषं परिस्राव्य तैलपात्रं प्रदापयेत्।
शतपुष्पा देवदारु मांसी शैलेयकं वचा ॥ ११० ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठमेलापर्णीचतुष्टयम्।
रास्ना तुरगगन्धा च सैन्धवं सपुनर्नवम् ॥ १११ ॥
एषां द्विपलिकान्भागान्पेषयित्वा विनिक्षिपेत्।
शतावरीरसं चैव तैलतुल्यं प्रदापयेत् ॥ ११२ ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्।
पाने बस्तौ तथाभ्यङ्गे भोज्ये चैव प्रशस्यते ॥ ११३ ॥
अश्वो वा वातसम्भग्नो गजो वा यदि वा नर.।
पङ्गुल. पीठसर्पी च तैलेनानेन सिध्यति ॥ ११४ ॥
अधोभागे च ये वाता शिरोमध्यगताश्च ये।
दन्तशूले हनुस्तम्भे मन्यास्तम्भे गलग्रहे ॥ ११५ ॥
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं गतिर्यस्य च विह्वला ।
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा ज्वरक्षीणाश्च ये नरा ॥ ११६॥
बधिरा लल्लजिह्वाश्च मन्दमेधस एव च।
अल्पप्रजा च या नारी या च गर्भं न विन्दति ॥ ११७॥
वातार्तौ वृषणौ येषामन्त्रवृद्धिश्च दारुणा।
एतत्तैलवरं तेषां नाम्ना नारायण स्मृतम् ॥ ११८ ॥
तगर नतमत्र स्यादभावे शीतलीजटा[1]।

बेलकी छाल या गूदा, अरणी, सोनापाठा, पाढल, नीम या फरहद, गन्धप्रसारणी, असगन्ध, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, खरेटी, कघी, गोखुरू, पुनर्नवा प्रत्येक आधा सेर १०२ सेर ३२ तोला जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर ६ सेर ३२ तो० तिलतैल तथा सौंफ, देवदारु, जटामासी, छरीला, वच, चन्दन, तगर, कूट, इलायची, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठिपर्णी, रासन, असगन्ध, सेंधानमक, पुनर्नवा प्रत्येक ८ तोलाका कल्क तथा शतावरीका रस ६ सेर३२तोला और गाय अथवा बकरीका दूध २५ सेर ४८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये। यह तेल पीने वस्ति देने तथा मालिश व भोजनके साथ देनेके लिये हितकर है। वातमे पीडित घोडा, हाथी अथवा मनुष्य इसमे सभी सुखी होते है। इससे पगु तथा लकडियों पौंओके सहारे घसीटकर चलनेवाला भी अच्छा होता है। जो वातरोग अधोभागमे तथा जो शिरमें होते हैं वे नष्ट होते है। दन्तशूल, हनुस्तम्भ, मन्यास्तम्भ, गलग्रह इससे अच्छे होते हैं। जिसका एक अंग सूख रहा है अथवा जिसकी गति ठीक नहीं है जिसकी इन्द्रिया शिथिल, वीर्य नष्ट तथा जो ज्वरसे क्षीण है, जो बहिरे, जिह्वाशक्ति रहित, तथा मन्दबुद्धिवाले है, जिनके सतान कम होती अथवा होती ही नहीं जिनके अण्डकोष वायुसे पीडित कठिन अन्त्रवृद्धि है, उनके लिये यह उत्तम नारायण तैल लिखा है। तगर न मिलनेपर शीतली जटा (शीतकुम्भी नामक जलजवृक्ष) छोडनी चाहिये ॥ १०८–११८ ॥–

महानारायणतैलम्।

शतावरी चांशुमती पृश्निपर्णी शटी वरा।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्यो. पूतिकस्य च ॥ ११९ ॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च।
एषां दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ १२० ॥
पादावशेषे पूते च गर्भं चैनं समावपेत् ॥
पुनर्नवावचादारुशताह्वाचन्दनागरु ॥ १२१ ॥

१–इसके आगे नवीन पुस्तकोंमें विष्णुतैल नामक एक तैल लिखा है। पर प्राचीन प्रतियोमें न होनेके कारण उसे यहां लिखकर प्रकरणके अन्तमें लिखा है ॥

[1] "शीतली शीतकुम्भी च शुक्लपुष्पा जलोद्भवा।" इति रत्नमालायाम्।

शैलेयं तगरं कुष्ठमलमांसी स्थिरौ बला ।
अश्वाह्वा सैन्धवं रास्ना पलार्धानि च पेषयेत् ॥ १२२ ॥
गव्याजपयसः प्रस्थौ द्वौ द्वावत्र प्रदापयेत् ।
शतावरीरसप्रस्थं तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ १२३ ॥
अस्य तैलस्य सिद्धस्य शृणु वीर्यमतः परम् ।
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा ॥ १२४ ॥
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातनिवारणम् ।
आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् ॥ १२५ ॥
गर्भमश्वतरी विन्देत्किं पुनर्मानुषी तथा ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवार्धावभेदकम् ॥ १२६ ॥
अपचीं गण्डमालां च वातरक्तं हनुग्रहम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च ह्यश्मरीं चापि नाशयेत् १२७ ॥
तैलमेतद्भगवता विष्णुना परिकीर्तितम् ।
नारायणमिति ख्यातं वातान्तकरणं परम् ॥ १२८ ॥

शतावर, शालपर्णी, पिठिवन, कचूर, त्रिफला, एर-ण्डकी जडकी छाल, छोटी बडी कटेरीकी जड, पूति-करञ्जकी, जड, नागबलाकी जड,पियावासाकी जड प्रत्येक ४० तोला जल २५ सेर ४८ तोला छोडकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथमें पुनर्नवा, वच, देवदारु, सौंफ, चन्दन, अगर, छरीला, तगर, कूठ, इलायची, जटामांसी, शालपर्णी, खरेटी, असगन्ध, सेंधानमक, रासन प्रत्येक २ तोलाका कल्क तथा गायका दूध २ प्रस्थ तथा बकरीका दूध २ प्रस्थ, शतावरका रस १ प्रस्थ तथा तिलतैल १ प्रस्थ छोडकर पकाना चाहिये । यह तैल वातपीडित घोडों, हाथियों तथा मनुष्योंको लाभ पहुंचाता है । इसके पीनेसे आयु बढती तथा शरीर दृढ होता है । खचरी भी गर्भ धारण करती है फिर स्त्रीके लिये क्या कहना । हृदयका दर्द, पार्श्वशूल, अर्धावभेद, अपची, गण्डमाला, वातरक्त, हनुग्रह, कामला, पाण्डुरोग तथा अश्मरीको नष्ट करता है । यह तैल साक्षात् भगवान् विष्णुका बनाया हुआ समस्त वातरोगोंको नष्ट करनेवाला है ॥ ११९–१२८॥

अश्वगन्धातैलम् ।

शतं पक्त्वाश्वगन्धाया जलद्रोणेऽंशशेषितम् ।
विस्राव्य विपचेत्तैलं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ १२९ ॥
कल्कैर्मृणालशालूकबिसकिञ्जल्कमालती ।
पुष्पैर्यष्टीरमधुकशारिवापद्मकेशरैः ॥ १३० ॥
मेदापुनर्नवाद्राक्षामञ्जिष्ठाबृहतीद्वयैः ।
गुडैलवालुत्रिफलामुस्तचन्दनपद्मकैः ॥ १३१ ॥
पक्वं रक्ताश्रयं वातं रक्तपित्तमसृग्दरम् ।
हन्यात्पुष्टिबलं कुर्यात्कृशानां मांसवर्धनम् ॥ १३२ ॥
रेतोयोनिविकारघ्नं प्रजनं पापवर्जितम् ।
षण्ढानपि वृषान्कुर्यात्पीताभ्यङ्गानुवासनैः ॥ १३३ ॥

असगन्ध ५ सेर जल १ द्रोणमें पकाना चतु-र्थांश रहनेपर उतार छान १ प्रस्थ तिलतैल, ४ प्रस्थ दूध तथा कमलकी डण्डी, कमलकी जड, कमलके तन्तु तथा कमलका केशर, मालतीके फूल, मुलहठी, खरेटी, शारिवा, कमलके फूल, नागकेशर, मेदा, पुन-र्नवा, मुनक्का, मजीठ, छोटी कटेरी, बडी कटेरी छोटी, बडी इलायची, एलवालुक, त्रिफला, नागरमोथा, चन्दन, पद्माख, प्रत्येकका मिला हुआ कल्क तैलमें चतुर्थांश छोडकर पकाना चाहिये । यह तैल रक्ताश्रित वात, रक्तपित्त, रक्तप्रदरको नष्ट करता, पुष्टि तथा बल बढाता और कृश पुरुषोंके मांसको बढाता, वीर्य व योनिके दोषोंको नष्ट करता, सन्तान उत्पन्न करता तथा नपुंसकोंको भी पीने, मालिश तथा अनुवासन वस्तिसे पुंस्त्व प्रदान करता है ॥१२९–१३२॥

मूलकाद्यं तैलम् ।

मूलकस्वरसं तैलं क्षीरं दध्यम्लकाञ्जिकम् ।
तुल्यं विपाचयेत्कल्कैर्बलाचित्रकसैन्धवैः ॥ १३४ ॥
पिप्पल्यतिविषारास्नाचविकागुरुशिग्रुकैः ।
भल्लातकवचाकुष्ठश्वदंष्ट्राविश्वभेषजैः ॥ १३५ ॥
पुष्कराह्वशटीबिल्वशताह्वानतदारुभिः ।
तत्सिद्धं पीतमत्युग्रान्हन्ति वातात्मकान्गदान् ॥१३६ ॥

मूलीका स्वरस, तिलतैल, खट्टा दही, काञ्जी प्रत्येक समान भाग तथा खरेटी, चीतकी जड, सेंधानमक, छोटी पीपल,अतीस, रासन, चव्य, अगर, चीतकी जड, भिलावा, वच, कूठ, गोखुरु, सोंठ, पोहकरमूल, कचूर, बेलका गूदा, सौंफ, तगर देवदारुका मिलित कल्क तैलसे चतुर्थांश छोडकर पकाना चाहिये । यह तैल पीनेसे उग्रवातात्मक रोगोंको नष्ट करता है॥१३४-१३६॥

रसोनतैलम् ।

रसोनकल्कस्वरसेन पक्वं
तैलं पिबेद्यस्त्वनिलामयार्तः ।
तस्याशु नश्यन्ति हि वातरोगा
ग्रन्था विशाला इव दुर्गृहीताः ॥ १३७ ॥

जो वातव्याधिसे पीडित पुरुष लहसनके कल्क व स्वरससे पकाया हुआ तैल पीता है उसके वातरोग इस प्रकार शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं जैसे दुष्टके हाथमें पडे हुए अथवा ज्ञानपूर्वक न पढे गये विशाल ग्रन्थ॥१३७॥

केतक्याद्यं तैलम्।

केतकिनागबलातिबलानां
यद्बहुलेन रसेन विपक्वम्।
तैलमनल्पतुषोदकमिद्धं
मारुतमस्थिगतं विनिहन्ति ॥ १३८ ॥
अनल्पवचनात्तत्र तुल्ये क्वाथतुषोदके।
अकल्कोऽपि भवेत्स्नेहो यः साध्यः केवले द्रवे ॥१३९॥

केवड़ा, गङ्गेरन व कंघीके क्वाथ तथा काञ्जीमें सिद्ध किया गया तैल अस्थिगत वायुको शान्त करता है। इसमें प्रत्येक द्रव्यका क्वाथ तथा तुषोदक (काञ्जी) तैलके बराबर छोड़ना चाहिये। कल्कके विना भी स्नेह सिद्ध होता है जो केवल द्रवमें सिद्ध किया जाता है ॥ १३८ ॥ १३९ ॥

सैन्धवाद्यं तैलम्।

द्वे पले सैन्धवात्पञ्च शुण्ठ्या ग्रन्थिकचित्रकात्।
द्वे द्वे भल्लातकास्थीनि विंशतिर्द्वे तथाढके ॥ १४० ॥
आरनालात्पचेत्प्रस्थं तैलमेतत्परप्रदम्।
गृध्रस्यूरुग्रहार्शोऽर्तिसर्ववातविकारनुत् ॥ १४१ ॥

सेंधानमक २ पल, सोंठ ५ पल, पिपरामूल २ पल, चीतकी जड २ पल, भिलावाकी गुठली २० गिनी हुई, काञ्जी २ आढक तथा तैल १ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये। यह तैल सन्तानदायक तथा गृध्रसी, ऊरुग्रह, अर्श और वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ १४०॥१४१॥

माषसैन्धवतैलम्।

तैलं सङ्कुचितेऽभ्यंगो माषसैन्धवसाधितम्।
बाहौ शीर्षगते नस्यं पानं चोत्तरभाक्तिकम् ॥
क्वाथोऽत्र माषनिष्पाद्यः सैन्धवं कल्कमेव च ॥१४२॥

उड़दका क्वाथ तथा सेंधानमकका कल्क छोड़कर सिद्ध किया तैल सकुचित अगोंमें मालिश करनेके लिये तथा बाहु या शिरोगत वायुमें नस्य तथा भोजनके साथ पिलाना हितकर होता है ॥ १४२ ॥

माषादितैलम्।

माषात्मगुप्तातिविषोरुबूक-
रास्नाशताह्वालवणैः सुपिष्टैः।
चतुर्गुणे माषबलाकषाये
तैलं कृतं हन्ति च पक्षवातम् ॥१४३॥

१ इसमें कल्क अधिक है अतः "द्विगुणं तद्द्रवार्द्रयोः" इस परिभाषाको लगाकर द्विगुण तैल अर्थात् ११८ तोला और द्विगुण काञ्जी अर्थात् १२ सेर ६४ तोला छोड़ना चाहिये।

उड़द तथा खरेटीका क्वाथ तथा उड़द, कौंच, अतीस, एरण्ड, रासन, सौंफ सेंधानमकका कल्क छोड़कर सिद्ध किया गया तैल पक्षाघातको नष्ट करता है ॥ १४३ ॥

द्वितीयं माषतैलम्।

माषप्रस्थं समावाप्य पचेत्सम्यग्जलाढके।
पादशेषे रसे तस्मिन्क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ॥ १४४ ॥
प्रस्थं च तिलतैलस्य कल्कं दत्त्वाक्षसम्मितम्।
जीवनीयानि यान्यष्टौ शतपुष्पा ससैन्धवाम् ॥ १४५ ॥
रास्नात्मगुप्तामधुकं बलाव्योषं त्रिकण्टकम्।
पक्षघातार्दिते वाते कर्णशूले सुदारुणे ॥ १४६ ॥
मन्दश्रुतौ चाश्रवणे तिमिरे च त्रिदोषजे।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे विश्वाच्यामवबाहुके ॥ १४७ ॥
शस्तं कलायखञ्जे च पानाभ्यञ्जनबस्तिभिः।
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ १४८ ॥

१ प्रस्थ उड़द १ आढक जलमें पकाना, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान लेना चाहिये, फिर इसमें ४ प्रस्थ दूध, तैल १ प्रस्थ तथा जीवनीय गणकी औषधियां तथा सौंफ, सेंधानक, रासन, कौंचके बीज, मौरेठी, खरेटी, त्रिकटु, गोखुरू प्रत्येक १ तोलाका कल्क, छोड़कर पकाना चाहिये। यह तैल पक्षाघात, अर्दित, कर्णशूल, कम सुनाई पड़ना या न सुनाई पड़ना, त्रिदोषज तिमिररोग, हस्त तथा शिरके कम्प, विश्वाची, अवबाहुक तथा कलायखञ्जको पीने, मालिश तथा पिचकारी लगानेसे नष्ट करता है। तथा जत्रुके ऊपरके समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ १४४–१४८ ॥

तृतीयं माषतैलम्।

माषातसीयवकुरण्टककण्टकारी-
गोकण्टटुण्टुकजटाकपिकच्छुतोयैः।
कार्पासकास्थिशणबीजकुलत्थकोल-
क्वाथेन वस्तपिशितस्य रसेन चापि ॥ १४९ ॥
शुण्ठ्या समागधिकया शतपुष्पया च
सैरण्डमूलसपुनर्नवया सरण्या।
रास्नाबलामृतलताकटुकैर्विपक्वं
माषाख्यमेतदवबाहुहरं च तैलम् ॥ १५० ॥
अर्धाङ्गशोषमपतानकमाढ्यवात-
माक्षेपकं सभुजकम्पशिरःप्रकम्पम्।
नस्येन वस्तिविधिना परिषेचनेन
हन्यात्कटीजघनजानुरुजश्च सर्वाः ॥ १५१ ॥

उड़द, अलसी, यव, पियावासा, भटकटैया, गोखुरू, सोनापाठेकी जड़की छाल तथा कौंचके बीज व बिनौले,

सनके बीज, कुलथी व बेरका क्वाथ तथा बकरेके मासरस तथा सोंठ, छोटी पीपल, सौंफ, एरण्डकी जड, पुनर्नवा, गन्धप्रसारणी, रासन, खरेटी, गुर्च, कुटकीका कल्क छोडकर पकाये गये तैलको अभ्यङ्ग, नस्य,वस्तिकर्म तथा परिषेचनके द्वारा प्रयोग करनेसे अवबाहुक, अर्धाङ्गशोष, अपतानक, ऊरुस्तम्भ, आक्षेपक, भुजा, तथा शिरके कम्पनको दूर करता है तथा कमर, जंघा व घुटनोंकी पीडाको नष्ट करता है ॥ १४९–१५१ ॥

चतुर्थं माषतैलम् ।

माषक्वाथे बलाक्वाथे रास्नाया दशमूलजे ।
यवकोलकुलत्थानां छागमांसभवे पृथक् ॥ १५२ ॥
प्रस्थे तैलस्य च प्रस्थं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
रास्नात्मगुप्तासिन्धूत्थशताह्वैरण्डमुस्तकैः ॥ १५३ ॥
जीवनीयैर्बलाव्योषैः पचेदक्षसमैर्भिषक् ।
हस्तकम्पे शिरःकम्पे बाहुशोषेऽववाहुके ॥ १५४ ॥
बाधिर्ये कर्णशूले च कर्णनादे च दारुणे ।
विश्वाच्यामर्दिते कुब्जे गृध्रस्यामपतानके ॥ १५५ ॥
वस्त्यभ्यञ्जनपानेषु नावने च प्रयोजयेत् ।
माषतैलमिदं श्रेष्ठमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ १५६ ॥
क्वाथप्रस्थाः षडेवात्र विभक्त्यन्तेन कीर्तिताः ।

उडदका क्वाथ ६४ तोला, खरेटीकी क्वाथ ६४तोला, रासनका क्वाथ ६४ तोला, दशमूलका क्वाथ ६४ तो० यव, बेर व कुलथीका क्वाथ ६४ तोला तथा बकरेके मासका क्वाथ ६४ तोला, तैल, ६४ तोला, दूध ३ सेर १६ तोला तथा रासन, कौंचके बीज, सेंधानमक, सौंफ, एरण्डकी छाल, नागरमोथा, जीवनीयगणकी औषधिया खरेटी तथा त्रिकटु प्रत्येक १ तो० का कल्क छोडकर पकाना चाहिये । यह तैल वस्ति, अभ्यङ्ग, नस्य तथा पानसे हस्त व शिरके कम्प, बाहुशोष, अवबाहुक,बाधिर्य कर्णशूल, कर्णनाद, विश्वाची, अर्दित, कुब्ज, गृध्रसी, अपतानक तथा शिरके रोगोंको नष्ट करता है।द्रव द्रव्य–अर्थात् क्वाथतैल द्विगुण मात्रामें छोडना चाहिये१५२-१५६

पञ्चमं माषतैलम् ।

माषस्यार्धाढकं दत्त्वा तुलार्धं दशमूलतः ॥ १५७ ॥
पलानि छागमांसस्य त्रिंशद्द्रोणेऽम्भसः पचेत् ।
पूतशीते कषाये च चतुर्थांशावशेषिते ॥ १५८ ॥
प्रस्थं च तिलतैलस्य पयो दद्याच्चतुर्गुणम् ।
आत्मगुप्तोरुबूकश्च शताह्वा लवणत्रयम् ॥ १५९ ॥
जीवनीयानि मञ्जिष्ठा चव्यचित्रककट्फलम् ।
व्योषं पिप्पलीमूलं रास्नामधुकसैन्धवम् ॥ १६० ॥
देवदार्वमृता कुष्ठं वाजिगन्धा वचा शटी ।
एतैरक्षसमैः कल्कैः साधयेन्मृदुनाग्निना ॥ १६१ ॥
पक्षाघातार्दिते वाते बाधिर्ये हनुसंग्रहे ।
कर्णनादे शिरःशूले तिमिरे च त्रिदोषजे ॥ १६२ ॥
पाणिपादशिरोग्रीवाभ्रमणे मन्दचङ्क्रमे ।
कलायखञ्जपाङ्गुल्ये गृध्रस्यामवबाहुके ॥ १६३ ॥
पाने वस्तौ तथाभ्यङ्गे नस्ये कर्णाक्षिपूरणे ।
तैलमेतत्प्रशंसन्ति सर्ववातरुजापहम् ॥ १६४ ॥

उडद १॥ सेर ८ तोला, दशमूल २॥ सेर, बकरेका मांस १॥ सेर, सब २५ सेर ४८ तोला जलमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान १ प्रस्थ तिल तैल, दूध ६ सेर ३२ तोला, कौंचके बीज, एरण्डकी छाल, सौंफ, तीनों नमक, जीवनीयगणकी ओषधियां, मजीठ, चव्य, चीतकी जड, कैफरा, त्रिकटु, पिपरामूल, रासन, मौरेठी, सेंधानमक, देवदारु, गुर्च, कूठ, अश्वगन्ध, वच, कचूर, प्रत्येक १ तोलाका कल्क छोडकर मन्द आंचपर पकाना चाहिये । इस तैलको पिलाने, वस्ति देने, मालिश, नस्य, कान, तथा नेत्रोंमें डालनेके लिये प्रयोग करना चाहिये । यह पक्षाघात, अर्दित, बाधिर्य, ठोढीकी जकडाहट, कर्णनाद,शिरःशूल, तिमिर, हाथ पैर, शिर, गर्दनके घूमने तथा पैरोंकी शक्ति कम हो जाने, कलायखञ्ज, पाङ्गुल्य, गृध्रसी, और अवबाहुकको ही क्या समस्त वातरोगोंको नष्ट करता है * ॥ १५७–१६४ ॥

षष्ठं महामाषतैलम् ।

द्विपञ्चमूलीं निष्क्वाथ्य तैलात्षोडशभिर्गुणैः ।
माषाढकं साधयित्वा तन्निर्यूहं चतुर्गुणम् ॥ १६५ ॥
ग्राहयित्वा तु विपचेत्तैलप्रस्थं पयः समम् ।
कल्कार्थं च समावाप्य भिषग्द्रव्याणि बुद्धिमान् १६६॥
अश्वगन्धा शटी दारु बला रास्नां प्रसारणीम् ।
कुष्ठं परूषकं भार्ङ्गीं द्वे विदार्यौ पुनर्नवाम् ॥ १६७ ॥

---

* इसी तैलके अनन्तर त्रिशतीप्रसारिणी तैल दूसरी प्रतियोंमें लिखा है पर माष तैलोंके मध्यमें प्रसारिणीतैल लिखना उचित नहीं समझा गया किन्तु आगे त्रिशती-प्रसारणी तैल दूसरा लिखेंगे । उसमें और इनमें पाठ-भेदके सिवाय कोई दूसरा अन्तर नहीं है।हां, इसमें गुण अधिक लिख दिये गये हैं, उतने उसमें नहीं लिखे । पर तैल एक ही होनेसे गुणोंमें अन्तर नहीं हो सकता, अतः वहीपर इसका भी पाठ देखिये ॥

मातुलुङ्गफलाजाज्यौ रामठं शतपुष्पिकाम् ।
शतावरीगोक्षुरकं पिप्पलीमूलचित्रकम् ॥ १६८ ॥
जीवनीयगणं सर्वं महत्यैव ससैन्धवम् ।
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय माषतैलमिदं महत् ॥ १६९ ॥
बस्त्यभ्यञ्जने पाननावनेषु प्रयोजयेत् ।
पक्षाघाते हनुस्तम्भे अर्दिते सापतन्त्रके ॥ १७० ॥
अवबाहुकविश्वाच्यो खञ्जपङ्गुलयोरपि ।
हनुमन्याग्रहे चैवमधिमन्थे च वातिके ॥ १७१ ॥
शुक्रक्षये कर्णनादे कर्णशूले च दारुणे ।
कलायखञ्जशमने भैषज्यमिदमादिशेत् ॥ १७२ ॥
दशमूलाढकं द्रोणे निष्काथ्य पादिको भवेत् ।
काथश्चतुर्गुणस्तैलान्माषकाथेऽप्ययं विधिः ॥१७३॥

दशमूल, ३ सेर १६ तो०, जल २५ सेर ४८ तोले में पकाकर काथ ६ सेर ३२ तो०,उडद४प्रस्थका काथ ६ सेर ३२ तोला, तैल १२८ तोला, दूध १२८ तोला, असगन्ध, कचूर, देवदारु, खरेटी, रासन, गन्ध-प्रसारणी, कूठ, फाल्सा, भार्ङ्गी, विदारीकन्द, क्षीरविदारी, पुनर्नवा, बिजौरे निम्बूका फल, सफेद जीरा, भुनी हींग, सोफ, शतावरी, गोखुरू, पिपरामूल, चीतकी जड, जीवनीयगण, सेंधानमक सब समानभाग का कल्क छोडकर तेल पकाना चाहिये। यह महामाषतैल–बस्ति, मालिश, पान तथा नस्यके लिये प्रयुक्त करना चाहिये। यह पक्षाघात, हनुस्तम्भ, अर्दित, अपतन्त्रक, अवबाहुक, विश्वाची, खञ्जता, पाङ्गुल्य, हनुग्रह, मन्याग्रह, वातिक अधिमन्थ, शुक्रक्षय, कर्णनाद, कर्णशूल तथा कलायखञ्जको शान्त करता है। ऊपर जो " षोडशभिर्गुणैः " है उसका अर्थ यह है कि तैलसे १६ गुण जल छोड़कर क्काथ बनाना चाहिये ॥ १६५–१७३ ॥

मज्जस्नेहः।

ग्राम्यानूपौदकाना तु भिन्नास्थीनि पचेज्जले ।
तं स्नेहं दशमूलस्य कषायेण पुनः पचेत् ॥ १७४ ॥
जीवकर्षभकास्फोताविदारीकपिकच्छुभिः ।
वातघ्नैर्जीवनीयैश्च कल्कैर्द्विक्षीरभागिकम् ॥ १७५ ॥
तत्सिद्धं नावनाभ्यङ्गात्तथा पानानुवासनात् ।
शिरःपार्श्वास्थिकोष्ठस्थं प्रणुदत्याशु मारुतम् ॥१७६॥
ये स्युः प्रक्षीणमज्जान क्षीणशुक्रौजसश्च ये ।
बलपुष्टिकरं तेषामेतत्स्यादमृतोपमम् ॥ १७७ ॥

ग्राम्य, आनूप तथा औदक प्राणियोंकी हड्डियोंको चूर्ण कर जलमें पकाना चाहिये, जितना इसका स्नेह निकले उससे चतुर्गुण दशमूलक्काथ तथा द्विगुण दूध तथा जीवक, ऋषभक, आस्फोता (विष्णुक्रान्ता या हापरमाली) विदारीकन्द, कौंचके बीज, वातघ्न (देवदार्वादि) तथा जीवनीयगणकी ओषधियोंका कल्क स्नेहसे चतुर्थांश छोडकर पकाना चाहिये। यह स्नेह नस्य, अनुवासन, बस्ति, मालिश तथा पीनेसे शिर, पसली, हड्डी तथा कोष्ठगत वायुको नष्ट करता है जिनके मज्जा, ओज तथा शुक्र क्षीण हो गये हैं उनके लिये यह स्नेह अमृततुल्य बल तथा पुष्टि करनेवाला है १७४–१७७ ॥

महास्नेहः।

प्रस्थः स्यात्त्रिफलायास्तु कुलत्थकुडवद्वयम् ।
कृष्णगन्धात्वगाढक्यो पृथक्पञ्चपलं भवेत् ॥ १७८ ॥
रास्नाचित्रकयोर्द्वे द्वे दशमूल पलोन्मितम् ।
जलद्रोणे पचेत्पादशेषं प्रस्थोन्मितं पृथक् ॥ १७९ ॥
सुरारनालदध्यम्लसौवीरकतुषोदकम्[1] ।
कोलदाडिमवृक्षाम्लरसं तैलं घृतं वसाम् ॥ १८० ॥
मज्जानं च पयश्चैव जीवनीयपलानि षट् ।
कल्कं दत्त्वा महास्नेहं सम्यगेनं विपाचयेत् ॥ १८१ ॥
शिरामज्जास्थिगे वाते सर्वाङ्गैकाङ्गरोगिषु ।
वेपनाक्षेपशूलेषु तमभ्यङ्गं प्रदापयेत् ॥ १८२ ॥

त्रिफला ६४ तोला, कुलथी ३२ तोला, सहिजनेकी छाल २० तोला, अरहर २० तोला, रासन ८ तोला, चीतकी जड ८ तोला, दशमूल प्रत्येक द्रव्य ४ तोला, जल १२ सेर ६४ तोला छोडकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्काथ अलग रखना चाहिये। उसी क्काथमें शराब ६४ तोला, काञ्जी ६४ तोला, दहीका तोड ६४ तोला, सौवीरक तुषोदक, बेर, अनार तथा बिजौरे निम्बूका रस प्रत्येक द्रव ६४ तोला, तैल, घी, चर्बी, मज्जा तथा दूध प्रत्येक ६४ तोला तथा जीवनीयगणकी ओषधियां मिलित २४

---

१ सौवीर तथा तुषोदककी निर्माणविधि–" सौवीरस्तु यवैरामैः पक्कैर्वा निस्तुषैः कृतः । गोधूमैरपि सौवीरमाचार्याः केचिदूचिरे " अर्थात् कच्चे या पक्के भूसीरहित यवोंको अष्टगुण जल पूरित घडेमें बन्द कर १५ दिन-तक रख छानकर काममें लाना चाहिये। कुछ लोग गेहुओंसे भी सौवीरक बनाना कहते हैं। " तुषाम्बु संधितं ज्ञेयमामैर्विदलितैर्यवैः । तुषोदकं तुषजलं तदेव परिकीर्तितम् ॥" अथवा–"भृष्टान्माषतुषान्सिद्धान्यवान्वास्तु चूर्णसंयुतान् । आभृतानम्भसा तद्वज्जातं तच्च तुषोदकम् । तुषोदकं यवैरामैः सतुषैः शकलीकृतैः ॥"

तोलाका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । यह [illegible] मालिशके लिये शिरा, मज्जा तथा अस्थिगत वात, सर्वाङ्गरोग, एकाङ्गरोग, कम्प, आक्षेप तथा शूलमें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १७८–१८२ ॥

कुब्जप्रसारणीतैलम् ।

प्रसारणीशतं क्षुण्ण पचेत्तोयार्मणे शुभे ।
पादशिष्टे समं तैलं दधि दद्यात्सकाञ्जिकम् ॥ १८३ ॥
द्विगुणं च पयो दत्त्वा कल्कान्द्विपलिकांस्तथा ।
चित्रकं पिप्पलीमूलं मधुकं सैन्धवं वचाम् ॥ १८४ ॥
शतपुष्पां देवदारु रास्नां वारणपिप्पलीम् ।
प्रसारण्याश्च मूलानि मांसीभल्लातकानि च ॥ १८५ ॥
पचेन्मृद्वग्निना तैलं वातश्लेष्मामयापहम् ।
अशीतिं नरनारीस्थान्वातरोगानपोहति ॥ १८६ ॥
कुब्जं स्तिमितपङ्गुत्वं गृध्रसीखुडकार्दितम् ।
हनुपृष्ठशिरोग्रीवास्तम्भं चापि नियच्छति ॥ १८७ ॥

गन्धप्रसारणी ५ सेर जल १ द्रोणमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार उस क्वाथके समान तैल तथा उतना ही दही और उतना ही काञ्जी और तैलसे दूना दूध तथा चीतकी जड़, पिपरामूल, मौरेठी, सेंधानमक, वच, सौंफ, देवदारु, रासन, गजपीपर, गन्धप्रसारणीकी जड़, जटामांसी, भिलावा प्रत्येक ८ तोलाका कल्क छोड़कर मन्दाग्निसे पकाना चाहिये । यह तैल वातकफके रोगोंको जीतता तथा अस्सी प्रकारके पुरुष तथा स्त्रियोंके वातरोगों यथा कुब्जता, जकड़ाहट, पङ्गुता, गृध्रसी, वातकण्टक, हनु, पृष्ठ, शिर व गर्दनकी जकड़ाहट इत्यादिको नष्ट करता है ॥ १८३–१८७ ॥

त्रिशतीप्रसारणीतैलम् ।

प्रसारण्यास्तुलामश्वगन्धाया दशमूलतः ।
तुलां तुलां पृथग्वारि द्रोणे पादावशेषिते ॥ १८८ ॥
तैलाढकं चतुः क्षीरं दधितुल्यं द्विकाञ्जिकम् ।
द्विपलैर्ग्रन्थिकक्षारप्रसारण्यक्षसैन्धवैः ॥ १८९ ॥
समञ्जिष्ठाग्नियष्ट्याह्वैः पलिकैर्जीवनीयकैः ।
शुण्ठ्याः पञ्च पलं दत्त्वा त्रिशद्भल्लातकानि च ॥ १९० ॥
पचेद्धस्त्यादिना वातं हन्ति सन्धिशिरास्थितम् ।
पुंस्त्वोत्साहस्मृतिप्रज्ञाबलवर्णाग्निवृद्धये ॥ १९१ ॥
प्रसारणीयं त्रिशती अक्ष सौवर्चलं त्विह ।

गधप्रसारणी ५ सेर, असगन्ध ५ सेर, दशमूल ५ सेर प्रत्येक अलग अलग २५ सेर ४८ तोला जलमें मिला चतुर्थांश शेष क्वाथ बनाना चाहिये, फिर क्वाथमें तैल६ सेर ३२ तोला, दूध २५ सेर ४८ तोला, दही ६ सेर ३२ तोला, काञ्जी १२ सेर ४८ तोला तथा [illegible], [illegible], गन्धप्रसारणी, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] प्रत्येक ८ तोला [illegible] १० [illegible] छोड़कर पकाना चाहिये । [illegible] अग्नि आदि [illegible] करता है । [illegible] तथा [illegible] दूर करता है । यह [illegible] तैल है इसमें [illegible] है ॥ १८८–१९१ ॥

१ यही तैल दूसरी पुस्तकोंमें इस प्रकार पाठभेदसे लिखा है—" [illegible] ॥ [illegible] समभिषिञ्चेत् । [illegible] पादशेषावतारितम् ॥ [illegible] प्रसारये[illegible] । [illegible] दत्त्वा द्विगुणं चैव काञ्जिकम् ॥ चतुर्गुणेन पयसा [illegible] । [illegible] भल्लातकानि च ॥ द्वे पले [illegible]मूलानि[illegible] पलद्वयम् । यवक्षारपले द्वे च [illegible] ॥ प्रसारणी पले द्वे च सैन्धवस्य पलत्रयम् । [illegible] द्वे च मञ्जिष्ठायाः पलद्वयम् ॥ [illegible] शनैर्मृद्वग्निना पचेत् । एतदभ्यञ्जने श्रेष्ठं बस्तिकर्मनिरूहणे ॥ पाने नस्ये च दातव्यं न क्वचित्प्रतिहन्यते । अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव सर्वानेतान्व्यपोहति । गृध्रसीमस्थिभग्नं च मन्दाग्नित्वमरोचकम् ॥ अपस्मारमथोन्मादं विभ्रमं मन्दगामिताम् । त्वग्गताश्चैव ये वाताः शिरागतास्थिगताश्च ये ॥ जानुसन्धिगताश्चैव पादपृष्ठगतास्तथा । अश्वो वाताद्भग्नो गजो वा यदि वा नरः ॥ प्रसारयति यस्माद्धि तस्मादेषा प्रसारणी । इन्द्रियाणां प्रजननी वृद्धानां च रसायनी ॥ एतेनाश्वतरीणां कृतं पुत्रवनं महत् । प्रसारणीतैलमिदं बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ अपनयति वलीपलितमुत्पाटयति पक्षाघातम् । वातस्तम्भं सर्वाङ्गगतं वातगुल्मं च नाशयति ॥ एतदुपसेवमानः प्रसन्नवर्णेन्द्रियो भवति ॥ " इसकी निर्माणपद्धति उपरोक्त तैलसे भिन्न नहीं अर्थात् यह और वह तैल एक ही है अतः उसीके अनुसार इसका भी अर्थ समझना । पर इसमें गुण अधिक लिखे गये हैं उन्हें समझ लेना चाहिये ॥

सप्तशतिकं प्रसारणीतैलम् ।

समूलपत्रामुत्पाट्य शरत्काले प्रसारणीम् ॥ १९२ ॥
शतं ग्राह्य सहचराच्छतावर्या शतं तथा ।
बलात्मगुप्ताश्वगन्धाकेतकीनां शतं शतम् ॥ १९३ ॥
पचेच्चतुर्गुणे तोये द्रवैस्तैलाढकं भिषक् ।
मस्तुमासरसं चुक्रं पयश्चाढकमाढकम् ॥ १९४ ॥
दध्याढकसमायुक्तं पाचयेन्मृदुनाग्निना ।
द्रव्याणां च प्रदातव्या मात्रा चार्धपलाशिका ॥१९५॥
तगरं मदनं कुष्टं केशरं मुस्तकं त्वचम् ।
रास्ना सैन्धवपिप्पल्यौ मासी माञ्जिष्टयष्टिका ॥ १९६ ॥
तथा मेदा महामेदा जीवकर्षभकौ पुनः ।
शतपुष्पा व्याघ्रनखं शुण्ठी देवाह्वमेव च ॥ १९७ ॥
काकोलीक्षीरकाकोलीवचाभल्लातकं तथा ।
पेषयित्वा समानेतान्साधनीया प्रसारणी ॥ १९८ ॥
नातिपक्वं न हीनं च सिद्धं पूतं निधापयेत् ।
यत्र यत्र प्रदातव्या तन्मे निगदतः शृणु ॥ १९९ ॥
कुब्जानामथ पङ्गूनां वामनानां तथैव च ।
यस्य शुष्यति चैकाङ्गं ये च भग्नास्थिसन्धयः ॥२००॥
वातशोणितदुष्टानां वातोपहतचेतसाम् ।
स्त्रीषु प्रक्षीणशुक्राणां वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २०१ ॥
बस्तौ पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये चैव प्रदापयेत् ।
प्रयुक्तं शमयत्याशु वातजान्विविधान्गदान् ॥ २०२ ॥

शरद्ऋतुमें मूल पत्ते सहित उखाडी गयी प्रसारणी ५ सेर, पियावासा (कटसैला) ५ सेर, शतावरी ५ सेर, खरेटी, कौंच, असगन्ध तथा केवडा प्रत्येकका पञ्चाङ्ग ५ सेर सबसे चतुर्गुण जल मिलाकर क्वाथ बनाना चाहिये, चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर तैल ८ सेर ३२ तोला, दहीका तोड मासरस, चूका तथा दूध प्रत्येक एक आढक तथा दही एक आढक मिला मृदु आंचसे पकाना चाहिये । तथा तगर, मैनफल, कूठ, नागकेशर, नागरमोथा, दालचीनी, रासन, सेंधानमक, छोटी पीपल, जटामासी, मजीठ, मौरेठी, मेदा, महामेदा, जीवक, ऋषभक, सौंफ, नख, सोंठ, देवदारु, काकोली, क्षीरकाकोली, वच, भिलावा प्रत्येक २ तोलाका कल्क छोडकर मन्द आचसे यह प्रसारणीतैल सिद्ध करना चाहिये । यह न जलने पावे न मृदु रहे अर्थात् मध्यपाक करना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर रखना चाहिये । इसे कुबडे, पङ्गु तथा वामनोंको देना चाहिये जिनका एकाग सूखता है, जिनकी अस्थियां तथा जोड टूट गये हैं, वातरक्त, वातोन्माद तथा क्षीणशुक्रवालोंको अत्यन्त हितकर है, वस्ति, पान मालिश, तथा नस्यमें इसका प्रयोग करना चाहिये । प्रयोग करनेसे यह वातज अनेक रोगोंको नष्ट करता है । (इन प्रसारणी तैलोंको यद्यपि एक ही बडे पात्रमें पकाना लिखा है और उत्तम भी यही है पर इतने बडे पात्रोंका यदि प्रबंध न हो सके तो एक एक द्रवके साथ कई बारमें मंद आंचसे पका लेना चाहिये ॥ १९२–२०२ ॥

एकादशशतिकं प्रसारणीतैलम् ।

शाखामूलदलैः प्रसारणितुलास्तिस्रः कुरण्टात्तुले
छिन्नायाश्च तुले तुले स्वकुतो रास्नाशिरीषात्तुलाम् ।
देवाह्वाच्च सकेतकाद्घटशते निष्क्वाथ्य कुम्भांशिके ।
तोये तैलघटं तुषाम्बुकलशौ दत्त्वाढकं मस्तुनः ॥२०३॥
शुक्ताच्छागरसाढथेक्षुरसतः क्षीराच्च दत्त्वाढकं
स्पृक्काकर्कटजीवकाद्यविकसाकाकोलिकाकच्छुरा ।
सूक्ष्मैलाघनसारकुन्दसरलाकाश्मीरिमासीनखैः
कालीयोत्पलपद्मकाह्वयनिशाकक्कोलकग्रन्थिकैः ॥ २०४ ॥
चाम्पेयाभयचोचपूगकटुकाजातीफलाभीरुभिः
श्रीवासामरदारुचन्दनवचाशैलेयसिन्धूद्भवैः ।
तैलाम्भोदकटम्भरांघ्रिनलिकावृश्चीरकचोरकैः
कस्तूरीदशमूलकेतकनतध्यामाश्वगन्धाम्बुभिः ॥ २०५ ॥
कौन्तीतार्क्ष्यजशल्लकीफललघुश्यामाशताह्वामयैः
र्भल्लातत्रिफलाब्जकेशरमहाश्यामालवङ्गान्वितैः ।
सव्योषैस्त्रिफलैर्महीयसि पचेन्मन्देन पात्रेऽग्निना
पानाभ्यञ्जनबस्तिनस्यविधिना तन्मारुतं नाशयेत् २०६
सर्वाङ्गार्धगतं तथावयवगं सन्ध्यस्थिमज्जान्वितं
श्लेष्मोत्थानथ पैत्तिकांश्च शमयेन्नानाविधानामयान् ।
धातून्बृंहयति स्थिरं च कुरुते पुंसां नवं यौवनं
वृद्धस्यापि बलं करोति सुमहद्वन्ध्यासु गर्भप्रदम् २०७
पीत्वा तैलमिदं जरत्यपि सुतं सूतेऽमुना भूरुहाः
सिक्ताः शोषमुपागताश्च फलिनः स्निग्धा भवन्ति स्थिराः
भग्नाङ्गाः सुदृढा भवन्ति मनुजा गावो हया कुञ्जराः २०८

गन्धप्रसारणीका पञ्चाग १५ सेर (३ तुला) पियावासा १० सेर, गुर्च १० सेर, एरण्डका पञ्चाग १० सेर रासन व सिरसाकी छाल मिलाकर ५ सेर, देवदारु व केवडा मिलाकर ५ सेर, सब मिलाकर १०० द्रोण (आजकलकी तौलसे ६४ मन) जलमें मिलाकर पकाना चाहिये । क्वाथ पकते पकते जब १ द्रोण (२५ सेर ४८ तोला) रह जावे तब उतार छानकर इसी क्वाथमें तैल १ द्रोण अर्थात् २५ सेर ४८ तोला, सतुष धान्यकी काञ्जी २ द्रोण दहीका तोड ६ सेर ३२ तोला, सिरका, बकरेका मांसरस, ईखका

रस, दूध प्रत्येक ६ सेर ३२ तोला, मालतीके फूल, काकड़ाशिंगी, जीवकादिगणकी ओषधियां, मजीठ, काकोली कौंचके बीज, छोटी इलायची, कपूर, कुन्दके फूल, सरल, कूठ या पोहकरमूल, जटामांसी, नख, तगर, नीलोफर, पद्माख, हल्दी, कंकोल, पिपरामूल, चम्पावती, खश, कलमी तज, सुपारी, लताकस्तूरी जायफल, शतावरी, गन्धविरोजा, देवदारु,चन्दन, वच, छरीला, सेंधानमक, शिलारस, नागरमोथा, प्रसारणीकी जड़, नाड़ी, पुनर्नवा, कचूर, कस्तूरी, दशमूल, केवडाके फूल, तगर, रोहिषघास, असगन्ध, सुगन्धवाला, सम्भालूके बीज, रसौंत, शाल, जायफल, अगर, निशोथ, सौंफ, कूठ, भिलावा, त्रिफला, कमलका केशर, विधारा, लवङ्ग, त्रिकटु, त्रिफला, सबका कल्क मिलित तैलसे चतुर्थांश छोड़कर बड़े कड़ाहमें मन्द आंचमे पकाना चाहिये। यह तैल पान, अभ्यङ्ग, वस्ति तथा नस्यविधिसे वायुको नष्ट करता, सर्वाङ्गगत, अर्धाङ्गगत तथा सन्धि, अस्थि, मज्जागतवायु तथा कफ व पित्तके रोग नष्ट करता, धातुओंको बढाता, नवीन यौवनको स्थायी करता, वृद्धको भी बलवान् बनाता, वन्ध्याको भी गर्भवती बनाता है। वृद्धा भी इस तैलको पीकर बालक उत्पन्न करे। इससे सींचनेसे सूखे वृक्ष भी फलयुक्त हो सकते हैं, भग्नांग मनुष्य, बैल, घोड़ा, हाथी इससे दृढाग और स्थिर होते हैं ॥२०३–२०८॥

अष्टादशशतिकं प्रसारणीतैलम्।

समूलदलशाखाया प्रसारण्या शतत्रयम्।
शतमेकं शतावर्या अश्वगन्धाशत तथा २०९ ॥
केतकीना शत चैकं दशमूलाच्छतं शतम्।
शतं वाट्यालकस्यापि शत सहचरस्य च ॥ २१० ॥
जलद्रोणशतं दत्त्वा शतभागावशेषितम्।
ततस्तेन कषायेण कषायाद्द्विगुणेन च ॥२११॥
सुव्यक्तेनारनालेन दधिमण्डाढकेन च।
क्षीरशुक्तेक्षुनिर्यासच्छागमासरसाढकै ॥ २१२ ॥
तैलाद्द्रोणं समायुक्तं दृढे पात्रे निधापयेत्।
द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्याम्यत परम्॥२१३॥
भल्लातक नतं शुण्ठीपिप्पलीचित्रकं शटी।
वचास्पृक्काप्रसारण्या पिप्पल्या मूलमेव च ॥ २१४ ॥
देवदार्वमृताह्वौ च सूक्ष्मैलात्वक्चवालकम्।
कुङ्कुम मदमाञ्जिष्ठातुरुष्क नखिकागुरु ॥ २१५ ॥
कर्पूरकुन्दुरनिशालवङ्गध्यामचन्दनम्।
कक्कोलनलिकामुस्तं कालीयोत्पलपत्रकम् ॥ २१६ ॥
जटीहरेणुशैलेयश्रीवास च सकेतकम्।
त्रिफलाकच्चुराभीरुसरलापद्मकेसरम् ॥ २१७ ॥
प्रियगुशीरनलदं जीवकाद्यं पुनर्नवा।
दशमूल्यश्वगन्धे च नागपुष्प रसाञ्जनम् ॥ २१८ ॥
कटुकाजातिपूगाना फलानि शङ्खकीरसम्।
भागान्द्विपलिकान्दत्त्वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २१९ ॥
विस्तीर्णे सुदृढे पात्रे पाच्येषा तु प्रसारणी।
प्रयोग. षड्विधश्चात्र रोगार्ताना विधीयते ॥ २२० ॥
अभ्यङ्गात्त्वग्गतं हन्ति पानात्कोष्ठगतं तथा।
भोजनात्सूक्ष्मनाडीस्थानस्यादूर्ध्वगतास्तथा ॥ २२१ ॥
पक्वाशयगतं बस्तिर्निरूह सार्वकायिके।
एतद्धि वडवाधाना किशोराणां यथामृतम् ॥ ५२२ ॥
एतदेव मनुष्याणा कुञ्जराणा गवामपि।
अनेनैव च तैलेन शुष्यमाणा महाद्रुमाः ॥ २२३ ॥
सिक्ता पुन. प्ररोहन्ति भवन्ति फलशालिन।
वृद्धोऽप्यनेन तैलेन पुनश्च तरुणायते ॥ २२४ ॥
न प्रसूते च या नारी सापि पीत्वा प्रसूयते।
अप्रज. पुरुषो यस्तु सोऽपि पीत्वा लभेत्सुतम् ॥२२५॥
अशीति वातजान्रोगान्पैत्तिकाञ्श्लैष्मिकानपि।
सान्निपातसमुत्थाश्च नाशयेत्क्षिप्रमेव तु ॥ २२६ ॥
एतेनान्धकवृष्णीना कृत पुसवनं महत्।
कृत्वा विष्णोर्बलि चापि तैलमेतत्प्रयोजयेत् ॥ २२७ ॥
क्वाथे तुलार्धं रास्नाया. किलिमस्य च दीयते।
भल्लातकासहत्वे तु तत्स्थाने रक्तचन्दनम् ॥ २२८ ॥
त्वक्पत्रं पत्रमधुरीकुष्ठचम्पकगौरिका।
ग्रन्थिकोषौ मल्वकमाधिकत्वेन दीयते ॥ २२९ ॥
कर्पूरमददान च शुक्तैर्गन्धोदकक्रिया।
द्रव्यशुद्धि पाकविधिर्भाविप्रसारणीसम' ॥ २३० ॥

गन्धप्रसारणीका पञ्चाङ्ग १५ सेर, शतावरी ५ सेर, असगध ५ सेर, केवड़ाका पञ्चाग ५ सेर, दशमूलकी प्रत्येक ओषधि ५ सेर, खरेटीका पञ्चाग ५ सेर, पियाबाँसा ५ सेर, सब दुरकुचाकर ६४ मन जलमे पकाना चाहिये, २५ सेर ४८ तोला बाकी रहनेपर उतार छानकर क्राथ अलग करना चाहिये। फिर इसी क्राथमें काथसे दूनी काञ्जी तथा १ आढ़क दहीका तोड़, दूध १ आढक (अर्थात् ६ सेर ३२ तोला०) तथा सिरका, ईखका रस तथा बकरेका मास रस प्रत्येक१आढ़क, तैल १ द्रोण अर्थात् २५ सेर ४८ तो० तथा भिलावा, तगर, सोंठ, छोटी पीपल, चीतकी जड़, कचूर, वच, मालतीके फूल, गधप्रसारणी, पिपरामूल, देवदारु, सौंफ, छोटी, इलायची, कलमी तज, सुगधवाला,

केशर, कस्तूरी, मजीठ, शिलारस, नख, अगर, कपूर, कुदरुगोंद, हल्दी, लवग रोहिषघास, लालचन्दन, ककोल, नाडी, नागरमोथा, तगर, नीलोफर, तेजपात, कचूर, सम्भालूके बीज, छरीला, गन्धाविरोजा, केवडाके फूल, त्रिफला, कौंचके बीज, शतावरी, सरल, कमलका केशर, प्रियगु, खस, जटामासी, जीवकादिगणकी ओषधियां, पुनर्नवा, दशमूल, असगन्ध, नागकेशर, रसौंत, लता-कस्तूरी, जायफल, सुपारी, राल प्रत्येक द्रव्य १२ तोले ले कल्क बना मिलाकर एक बडे विशाल पात्रमें मन्द आच से पकाना चाहिये। इसका प्रयोग ६ प्रकारसे होता है। मालिश करनेसे त्वचाके रोगोंको तथा पीनेसे कोष्ठगत वातको, भोजनके साथ सूक्ष्म नाडियोंमें प्रविष्ट वायुको, नस्यसे ऊर्ध्वजत्रुगतवातको, पक्वाशयगत वायुको अनुवासन वस्ति तथा समस्त देहगत वायुको निरुहण वस्ति द्वारा नष्ट करता है। यह घोडी, घोडे, हाथी, गाय तथा मनुष्य सभीके लिये अमृततुल्य गुणदायक है। इस तैलके सींचनेसे सूखे हुए वृक्ष फिर हरे होते तथा अङ्कुर और फल तथा शाखाओंसे युक्त होते हैं। इस तैलसे वृद्ध भी बलवान् होता तथा जिस स्त्रीके सन्तान नहीं होती उसके सन्तान होती है। शुक्रदोषसे जिसे सन्तान नहीं होती उसे भी यह सन्तान देता है। हर प्रकारके वात, पित्त, कफ तथा सन्निपात होनेवाले रोग इससे नष्ट होते हैं। इससे अन्धक और वृष्णिके वंशमें बहुत बालक उत्पन्न हुए। विष्णु भगवानका पूजन कर इस तैलका प्रयोग करना चाहिये। इस क्वाथमें रासन २॥ सेर और देवदारु २॥ सेर और छोडना चाहिये। यदि भिलावा सहन न हो (किसीको भिलावा विशेष विकार करता है अतः ऐसे रोगीके लिये यदि बनाना हो) तो भिलावाके स्थानमें लाल चन्दन छोडना चाहिये तथा दालचीनी, तेजपात, सोवाकी पत्ती, कूठ, चम्पा, गेरू, ग्रन्थिपर्ण, जावित्री और मरुवक भी छोडना चाहिये, कपूर और कस्तूरी सिरकेके साथ मिलाकर छोडना चाहिये। द्रव्योंकी शुद्धि तथा पाककी विधि आगे लिखे प्रसारणी तैलकी भांति करना चाहिये। (तैल पाकमें गन्ध द्रव्य जब तैल परिपक्व होनेके समीप पहुँच जाय तभी छोडना उत्तम होगा। क्योंकि पहिले छोडनेसे गंध उड जायगा) ॥ २०९-२३० ॥

महाराजप्रसारणीतैलम्।

शतत्रयं प्रसारण्या द्वे च पीतसहाचरात्।
अश्वगन्धैरण्डबला वरी रास्ना पुनर्नवा ॥ २३१ ॥

केतकी दशमूलं च पृथक्त्वक्पारिभद्रतः।
प्रत्येकमेषां तु तुला तुलार्धं किलिमात्तथा ॥ २३२ ॥
तुलार्धं स्याच्छिरीषाच्च लाक्षाया पञ्चविंशति।
पलानि लोध्राच्च तथा सर्वमेकत्र साधयेत् ॥ २३३ ॥
जलपञ्चाढकशते सपादे तत्र शेषयेत्।
द्रोणद्वयं काञ्जिकं च पड्विंशत्याढकोन्मितम् ॥ २३४ ॥
क्षीरदध्नो पृथक्प्रस्थान्दशमस्त्वाढकं तथा।
इक्षुरसाढकौ चैव छागमांसतुलात्रयम् ॥ २३५ ॥
जलपञ्चचत्वारिंशत्प्रस्थान्पक्के तु शेषयेत्।
सप्तदशरसप्रस्थान्माञ्जिष्ठाक्वाथ एव च ॥ २३६ ॥
कुडवोनाढकोन्मानो द्रवैरेतैस्तु साधयेत्।
सुशुद्धतिलतैलस्य द्रोणं प्रस्थेन संयुतम् ॥ २३७ ॥
काञ्जिकं मानतो द्रोणं शुक्तेनात्र विधीयते।
आद्य एभिर्द्रवैः पाक कल्को भल्लातकं कणा ॥ २३८ ॥
नागरं मरिचं चैव प्रत्येकं षट्पलोन्मितम्।
भल्लातकासहत्वे तु रक्तचन्दनमुच्यते ॥ २३९ ॥
पथ्याक्षधात्री सरलं शताह्वा कर्कटी वचा।
चोरपुष्पीशटीमुस्तद्वयं पद्मं च सोत्पलम् ॥ २४० ॥
पिप्पलीमूलमाञ्जिष्ठा साश्वगन्धा पुनर्नवा।
दशमूलं समुदितं चक्रमर्दो रसाञ्जनम् ॥ २४१ ॥
गन्धतृणं हरिद्रा च जीवनीयो गणस्तथा।
एषां त्रिपलिकैर्भागैराद्यः पाको विधीयते ॥ २४२ ॥
देवपुष्पी शोलपत्रं शल्लकीरसशैलजे।
प्रियङ्गूशीरमधुरीमासीदारुबलाचलम् ॥ २४३ ॥
श्रीवासो नलिकाखोटि सूक्ष्मैला कुन्दुरुर्मुरा।
नखीत्रयं च त्वक्पत्रीपमरापूतिचम्पकम् ॥ २४४ ॥
मदनं रेणुकास्पृक्कामरुवं च पलत्रयम्।
प्रत्येकं गन्धतोयेन द्वितीयः पाक इष्यते ॥ २४५ ॥
गन्धोदकं तु त्वक्पत्रीपत्रकोशीरमुस्तकम्।
प्रत्येकं सबलामूलं पलानि पञ्चविंशति ॥ २४६ ॥
कुष्ठार्धभागोऽत्र जलप्रस्थास्तु पञ्चविंशति।
अर्धावशिष्टा कर्तव्या. पाके गन्धाम्बुकर्मणि ॥ २४७ ॥
गन्धाम्बुचन्दनाम्बुभ्यां तृतीय पाक इष्यते।
कल्कोऽत्र केशरं कुष्ठ त्वक्कालीयककुङ्कुमम् ॥ २४८ ॥
भद्रश्रियं ग्रन्थिपर्णं लताकस्तूरिका तथा।
लवङ्गागुरुकक्कोलजातीकोपफलानि च ॥ २४९ ॥
एला लवङ्गं[1] छल्ली च प्रत्येकं त्रिफलोन्मितम्।
कस्तूरी षट्पला चन्द्रात्पलं सार्धं च गृह्यते ॥ २५० ॥
वेधार्थं च पुनश्चन्द्रमदौ देयौ तथोन्मितौ।
महाप्रसारणी सेयं राजभोग्या प्रकीर्तिता ॥ २५१ ॥
गुणान्प्रसारणीनां तु वहत्येषा बलोत्तमात्।

---

१ लवङ्गछल्लीति पाठान्तरम्।

गन्धप्रसारणीका पञ्चांग १५ सेर, पीले फूलका पियावासा १० सेर, असगन्ध, एरण्ड, खरेटी, शतावरी, रासन, पुनर्नवा, केवड़ा, दशमूलकी प्रत्येक औषधि, नीमकी छाल, प्रत्येक द्रव्य ५ सेर, देवदारु २॥ सेर, सिरसाकी छाल २॥ सेर, लाख, १। सेर तथा लोध १। सेर तथा जल ५२५ आढक अर्थात् ४२ मन मिलाकर पकाना चाहिये, २ द्रोण अर्थात् २५ सेर ४८ तोला शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये। फिर इसमें काञ्जी २६ आढक अर्थात् १ मन ३ सेर १६ तोला छोड़ना चाहिये (यद्यपि यहां काञ्जी २६ आढक लिखी है तथापि आगे " काञ्जिकं मानतो द्रोणम् " इस श्लोकसे पूर्वका खण्डन कर १ द्रोण ही लिखा है) अतः काञ्जी १ द्रोण (१२ सेर ६४ तोला), दूध ८ सेर, दही ८ सेर, दहीका तोड़ १ आढक (३ सेर १६ तोला), ईखका रस ६ सेर ३२ तोला, बकरेका मास १५ सेर जल ३६ सेरमें पकाकर शेष १७ प्रस्थ अर्थात् १३ सेर ४८ तोला छानकर सिद्ध किया रस, मञ्जीठका काढ़ा ३ सेर तथा तिलतैल १३ सेर ४८ तोला तथा मिलावा, छोटी पीपल, सोंठ, कालीमिर्च प्रत्येक २४ तोला, मल्लातक यदि बर्दाश्त न हो तो उसके स्थानमें लाल चन्दन छोड़ना चाहिये। तथा हर्र, बहेड़ा, आंवला, सरल, सौंफ, काकड़ाशिंगी, बच, चोरपुष्पी (चोरहुली), कचूर, मोथा, नागरमोथा, कमल, नीलोफर, पिपरामूल, मञ्जीठ, असगन्ध, पुनर्नवा मिलित दशमूल, चकौड़ा, रसौंत, रोहिषघास, हल्दी तथा जीवनीयगणकी औषधियां प्रत्येक १२ तोला छोड़कर पकाना चाहिये। यह पहिला पाक हुआ पाक तैयार हो जानेपर उतार छानकर फिर कड़ाहीमें चढ़ाना चाहिये) । फिर लवङ्ग, चोष, तेजपात, शालका रस, छारछीला, प्रियङ्गु, खश, सौंफ, जटामासी, देवदारु, खरेटी, सुनहली चम्पा, गन्धाविरोजा, नाड़ीशाक, कुन्दरू खोटी, छोटी इलायची, मुरा, तीन प्रकारका नख, काला जीरा, पमरा (देवदारुभेद खट्टाशी, चम्पा, मैनफल, सम्भालूके बीज, मालतीके फूल, मरुवा प्रत्येक १२ तोला तथा गन्धोदक मिलाकर द्वितीय पाक करना चाहिये। गन्धोदकविधिः-तेजपात, दालचीनी, खश, मोथा, खरेटीकी जड़ प्रत्येक १। सेर कूठ १० छ० जल २० सेर मिलाकर पकाना चाहिये आधा रह जानेपर उतार छान लेना चाहिये। यही गन्धोदक छोड़ना चाहिये-इस प्रकार द्वितीय पाक करना चाहिये। फिर गंधोदक तथा चदनका जल छोड़ तथा नागकेशर, कूठ, दालचीनी, तगर, केशर, चंदन, भटेउर, लताकस्तूरी, लवङ्ग, अगर, ककोल, जावित्री, जायफल, इलायची, लवङ्ग, छल्लीका फूल लवङ्गके पेड़की छाल प्रत्येक १२ तोला, कस्तूरी २४ तो०, कपूर ६ तोला छोड़कर तृतीयपाक करना चाहिये। इसमें चन्दनोदकका विशेष वर्णन नहीं है अतः चदनका क्वाथ ही तैलसे समान भाग छोड़ना चाहिये। सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर विशेष सुगंधित बनानेके लिये कस्तूरी तथा कपूर उतना ही फिर छोड़ना चाहिये। यह महाराजप्रसारणी तैल महाराजाओंके ही लिये बनाया जा सकता है। यह पूर्वोक्त प्रसारणी तैलोंके समग्र गुणोंको विशेषताके साथ करता है ॥ २३१-२५१ ॥-

शुक्तविधिः।

अत्र शुक्तविधिर्मण्ड प्रस्थः पञ्चाढकोन्मितम् ॥२५२॥
काञ्जिकं कुडवं दध्नो गुडप्रस्थोऽम्लमूलकात्।
पलान्यष्टौ शोधितार्द्रात्पलषोडशकं तथा ॥ २५३ ॥
कणाजीरकसिन्धूत्थहरिद्रामरिचं पृथक्।
द्विपलं भाविते भाण्डे घृतेनाष्टदिनस्थितम् ॥२५४॥
सिद्धं भवति तच्छुक्तं यदा विस्राव्य गृह्यते।
तदा देयं चतुर्जातं पृथक्कर्पत्रयोन्मितम् ॥ २५५ ॥

मांड ६४ तोला, काञ्जी १६ सेर, दही १६ तोला, गुड़ ६४ तोला, खट्टी मूली ३२ तोला, अदरख छिली हुई ६४ तोला, छोटी पीपल, जीरा, सेधानमक, हल्दी, कालीमिर्च प्रत्येक ८ तोला सब एकमें मिलाकर घीसे भावित बर्तनमे ८ दिनतक रखना चाहिये, फिर इसे छानकर इसमें दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येक ३ तोले छोड़ने चाहिये। यह शुक्त हुआ। यही काञ्जीके स्थानमे महाराजप्रसारणीतैलमे छोड़ना चाहिये इस तैलमे द्रवद्वैगुण्यकी परिभाषाके अनुसार समस्त द्रवद्रव्य (क्वाथ व तैलादि द्विगुण छोड़ना चाहिये ॥ २५२-२५५ ॥

गन्धानां क्षालनम्।

पञ्चपल्लवतोयेन गन्धानां क्षालनं तथा।
शोधनं चापि संस्कारो विशेषश्चात्र वक्ष्यते ॥२५६॥

गन्धद्रव्योंका क्षालन, शोधन तथा संस्कार पञ्चपल्लवसे सिद्ध जलसे करना चाहिये। विशेष आगे लिखेंगे ॥ २५६ ॥

पञ्चपल्लवम् ।

आम्रजम्बूकपित्थानां बीजपूरकबिल्वयोः ।
गन्धकर्मणि सर्वत्र पत्राणि पञ्चपल्लवम् ॥ २५७ ॥

आम, जामुन, कैथा, बिजौरा तथा बेलके पत्ते गन्धादि कर्ममें पञ्चपल्लव नामसे लेना चाहिये ॥२५७॥

नखशुद्धिः ।

चण्डीगोमयतोयेन यदि वा तिन्तिडीजले. ।
नखं संक्वाथयेदेभिरलाभे मृण्मयेन तु ॥ २५८ ॥
पुनरुद्धृत्य प्रक्षाल्य भर्जयित्वा निषेचयेत्।
गुडपथ्याम्बुना ह्येवं शुध्यते नात्र संशयः ॥ २५९ ॥

भैंसके गोबरके रस अथवा इमलीके क्वाथ अथवा मिट्टी मिले पानीसे नख पकाना चाहिये फिर निकालकर धोना चाहिये फिर तपाकर गुड मिले छोटी हर्रके काढेमें बुझाना चाहिये ॥ २५८–२५९ ॥

वचाहरिद्रादिशोधनम् ।

गोमूत्रे चालम्बुपके पक्त्वा पञ्चदलोदके ।
पुनः सुरभितोयेन वाष्पस्वेदेन स्वेदयेत् ॥ २६० ॥
गन्धोग्रा शुध्यते ह्येवं रजनी च विशेषतः ।
मुस्तकं तु मनाक् क्षुण्णं काञ्जिके त्रिदिनोषितम् २६१॥
पञ्चपल्लवपानीयस्विन्नमातपशोषितम् ।
गुडाम्बुना सिच्यमानं भर्जयेच्चूर्णयेत्ततः ॥ २६२ ॥
भाजशोभाञ्जनजलैर्भावयेच्चेति शुध्यति ।
काञ्जिके क्वथितं शैलं भृष्टपथ्यागुडाम्बुना ॥ २६३ ॥
सिञ्चेदेवं पुनः पुष्पैर्विविधैराधिवासयेत् ।

गोमूत्र, मुण्डीके क्वाथ तथा पञ्चपल्लवके जलमें पकाकर फिर गन्धोदक द्वारा वाष्पस्वेदसे स्वेदन करना चाहिये इस प्रकार वच और हल्दी शुद्ध होती है। मोथाको दुरकुचाकर काञ्जीमें ३ दिन रखना चाहिये, फिर पञ्चपल्लवके जलमें दोलायन्त्रमें स्वेदित कर धूपमें सुखाना चाहिये। फिर गुडका शर्बत छोडकर पकाना चाहिये, शर्बत जल जानेपर उतार महीन चूर्णकर बकरेके मूत्र तथा सहिजनके क्वाथमें भावना देनी चाहिये। इस प्रकार मोथा शुद्ध होता है। शिलारसको काञ्जीमें पकाना चाहिये, फिर भुनी छोटी हर्र व गुडके जलमें मिलाना चाहिये। फिर अनेक सुगन्धित पुष्पोंसे अधिवासित करना चाहिये ॥ २६०–२६३ ॥

पूतिशोधनम् ।

यथालाभमपामार्गस्नुह्याद्विक्षारलेपितम् ॥ २६४ ॥
बाष्पस्वेदेन सस्वेद्य पूतिं निर्लोमतां नयेत् ।
दोलापके पचेत्पश्चात्पञ्चपल्लववारिणि ॥ २६५ ॥
खलः साधुमिवोत्पीड्य ततो निःस्नेहतां नयेत् ।
भाजशोभाञ्जनजलैर्भावयेच्च पुनः पुनः ॥ २६६ ॥
शिग्रुमूले च केतक्याः पुष्पपत्रपुटे च तम् ।
पचेदेवं विशुद्धः सन्मृगनाभिसमो भवेत् ॥ २६७ ॥

खट्टाशी (गन्धमार्जाराण्ड) को अपामार्गादि जितने क्षार मिल सके उनसे लेप कर पञ्चपल्लवके जलमें (दोलायन्त्रसे) स्वेदन करना चाहिये। फिर लोम साफ कर देना चाहिये। फिर पञ्चपल्लवके क्वाथमें पका निचोडकर निःस्नेह करना चाहिये। फिर अजमूत्र तथा सहिजनके क्वाथमें ७ भावनायें देनी चाहिये। फिर सहिजनके क्वाथमें केवडेके पुष्प वा पत्रोंके सम्पुटमें रखकर पकाना चाहिये। इस प्रकार खट्टाशी शुद्ध होकर कस्तूरीके समान होती है ॥ २६४–२६७ ॥

तुरुष्कादिशोधनम् ।

तुरुष्कं मधुना भाव्यं काश्मीरं चापि सर्पिषा ।
रुधिरेणायसं प्राज्ञैर्गोमूत्रैर्ग्रन्थिपर्णकम् ॥ २६८ ॥
मधूदकेन मधुरीं पत्रकं तण्डुलाम्बुना ।

तुरुष्ककी शहदसे भावना, केशरकी घीसे भावना, केशरके जलसे अगरकी भावना, गोमूत्रसे भटेउरकी भावना, शहदके जलसे सौंफकी, चावलके जलसे तेजपातकी भावना देनी चाहिये ॥ २६८ ॥–

कस्तूरीपरीक्षा ।

ईषत्क्षारानुगन्धा तु दग्धा याति न भस्मताम् ॥२६९॥
पीता केतकगन्धा च लघुस्निग्धा मृगोत्तमा ।

जिसका केवडेके समान गंध तथा कुछ क्षार अनुगन्ध हो और जलानेसे भस्म न हो, रगडनेसे पीली, हल्की तथा चिकनी हो वह कस्तूरी उत्तम होती है२६९

कर्पूरश्रेष्ठता ।

पक्वात्कर्पूरतः प्राहुरपक्वं गुणवत्तरम् ॥ २७० ॥
तत्रापि स्याद्यदक्षुद्रं स्फटिकाभं तदुत्तमम् ।
पक्वं च सदलं स्निग्धं हरितद्युति चोत्तमम् ॥ २७१ ॥
भङ्गे मनागपि न चेन्निपतन्ति ततः कणाः ।

पकाये कपूरकी अपेक्षा विना पका अच्छा होता है। कच्चा कपूर भी जो चूरा न हो तथा स्फटिकके समान साफ हो वह अच्छा होता है। पकाया हुआ भी दलके सहित, चिकना, हरितवर्ण युक्त और टूटनेसे यदि कुछ भी कण अलग न हो वह उत्तम होता है॥२७०–२७१॥–

कुष्ठादिश्रेष्ठता ।

मृगशृङ्गोपमं कुष्ठ चन्दनं रक्तपीतकम् ॥ २७२ ॥
काकतुण्डाकृति स्निग्धो गुरुश्चवोत्तमोऽगुरु ।
स्निग्धाल्पकेशर त्वस्त्र शालिजो वृत्तमासल ॥ २७३ ॥
मुरा पीता वरा प्रोक्ता मासी पिङ्गजटाकृतिः
रेणुका मुद्गसस्थाना शस्तमानूपज घनम् ॥ २७४ ॥
जातीफल सशब्द च स्निग्ध गुरु च शस्यते ।
एला सूक्ष्मफला श्रेष्ठा प्रियङ्गु श्यामपाण्डुरा ॥२७५॥
नखमश्वखुर हस्तिकर्णं चैवात्र शस्यते ।
एतेपमपरेषां च नवता प्रबलो गुण ॥ २७६ ॥

कूठ, मृगके सींगके समान, लाल, पीला चन्दन, कौआकी चोंचकी आकृतिवाला तथा भारी अगर उत्तम होता है । चिकना तथा पतली केशरवाला केशर, पूति गोल तथा मोटी, मुरा पीली तथा मासी पिलाई लिये हुए उत्तम होती हैं । सम्भालूके बीज मूगके बराबर तथा आनूपस्थलका नागरमोथा, जायफल शब्द करनेवाला भारी तथा चिकना, छोटे फलवाली इलायची, प्रियगु आसमानी तथा सफेद पीली, नख अश्वखुर तथा हस्तिकर्णके सदृश, उत्तम होते हैं यह तथा अनुक्त नवीन ओपधिया अधिक उत्तम होती हैं ॥ २७२–२७६ ॥

महासुगन्धितैलम् ।

जिङ्गीचोरकदेवदारुसरल व्याघ्रीवचा चेलक-
त्वक्पत्रै सह गन्धपत्रकशटीपथ्याक्षधात्रीघनै. ।
एतै शोधितसंस्कृतै पलयुगेत्याख्यातया संख्यया
तैलप्रस्थमवस्थितं स्थिरमति कल्कै पचेद्गान्धिकम् २७७
मासीमुरादमनचम्पकसुन्दरीत्वक्-
ग्रन्थ्यम्बुरुड्मरुत्वकर्द्विपलै सपृक्कै ।
श्रीवासकुन्दुरुनखीनलिकामिषीणा
प्रत्येकत पलमुपाद्य पुन पचेत्तु ॥ २७८ ॥
एलालवङ्गचलचन्दनजातिपूति--
कक्कोलकागुरुलताघुसृणं पलार्धं ।
कस्तूरिकाक्षसहितामलटीसियुक्तै
पक्वं तु मन्दशिखिनैव महासुगन्धम् ॥ २७९ ॥
पञ्चद्विकेन चार्धेन मदात्कर्पूरमिष्यते ।
कर्पूरमदयोरर्धं पत्रकल्कादिहेष्यते ॥ २८० ॥

मजीठ, भटेटा, देवदारु, धूपसरल, छोटी कटेरी, दूधिया वच, मुरारीकी छाल, तेजपात, गन्धपत्र (यूकेलिप्टस), कचूर, हर्र, बहेडा, आवला, नागरमोथा यह प्रत्येक पूर्वोक्त शोधनादिसे शुद्ध कर १६ तोला सब मिले हुए कल्क बनाकर १ प्रस्थ (१ सेर ४८ तो०) तैलमे चतुर्गुण पञ्चपल्लवोदक छोडकर पकाना चाहिये । प्रथम पाक हो जानेपर तैलसे चतुर्गुण गन्धोदक तथा मासी, मुरा, देवना, चम्पा, प्रियगु, दालचीनी, पिपरामूल, सुगन्धवाला, कूठ, मरुवा तथा मालतीके फूल सब मिलाकर ८ तोला, तार्पिन, गन्धाविरोजा, नखनखी, नाडी तथा सौंफ प्रत्येक ४ तोलाका कल्क छोडकर फिर पकाना चाहियें यह द्वितीय पाक हुआ । फिर तैलमे चतुर्गुण गन्धोदक अथवा गन्ध द्रव्योंसे धूपित जल तथा इलायची, लौंग, सुनहली चम्पा, चन्दन, जावित्री, खट्टाशी, कंकोल, अगर, लताकस्तूरी, केशर, कस्तूरी, बहेडा, आवला, अजवाइन प्रत्येक २ तोला, मिलाकर मन्द आचसे पकाना चाहिये । इसमे कस्तूरीसे पञ्चमाश कपूर मिलाना चाहिये । कस्तूरी और कपूरसे आधा इसमें पत्र कल्क छोडना चाहिये ॥ २७७–२८० ॥

पत्रकल्कविधिः ।

पक्वपूतेऽप्युष्ण एव सम्यक्पेषणवर्तितम् ।
दीयते गन्धवृद्ध्यर्थं पत्रकल्कं तदुच्यते ॥ २८१ ॥

पक जानेपर छानकर गरममें ही पीसकर जो द्रव्य गन्धवृद्धिके लिये छोडे जाते हैं वे पत्रकल्क कहे जाते हैं ॥ २८१ ॥

लक्ष्मीविलासतैलम् ।

प्रागुक्तौ शुद्धिसंस्कारौ गन्धानामिह तै पुन ।
द्विगुणैर्लक्ष्मीविलास स्यादय तैलेषु सत्तम ॥ २८२ ॥

पहिले गन्धद्रव्योंके शोधन तथा संस्कार बताये हैं । उनसे शुद्ध तथा मात्रामे जो पत्रकल्क महाराज प्रसारणीतैलमें लिखा है उससे दूना महासुगन्ध तैलमे छोडनेसे लक्ष्मीविलास तैल बनता है ॥ २८२ ॥

द्रवदानपरिभाषा ।

पञ्चपत्राम्बुना चाद्यो द्वितीयो गन्धवारिणा ।
तृतीयोऽपि च तेनैव पाको वा धूपिताम्बुना ॥ २८३ ॥

पहिला पाक पञ्चपल्लवोदकसे द्वितीय पाक गन्धोदकसे तथा तृतीय पाक भी गन्धोदक अथवा धूपित जलसे करना चाहिये ॥ २८३ ॥

अनयोर्गुणाः ।

तैलयुग्ममिदं तूर्णं विकारान्वातसम्भवान् ।
क्षपयेज्जनयेत्पुष्टिं कान्ति मेधा धृति धियम् ॥२८४॥

यह दोनों तैल वातरोगोंको शीघ्र ही नष्ट करते तथा पुष्टि, कान्ति, मेधा, धैर्य व बुद्धि बढाते हैं ॥२८४ ॥

विष्णुतैलम् ।

शालपर्णी पृश्निपर्णी बला च बहुपुत्रिका ।
एरण्डस्य च मूलानि बृहत्योः पूतिकस्य च ॥ २८५ ॥
गवेधुकस्य मूलानि तथा सहचरस्य च ।
एषां तु पलिकैः कल्कैस्तैलप्रस्थं विपाचयेत ॥ २८६ ॥
आज वा यदि वा गव्यं क्षीरं दद्याच्चतुर्गुणम् ।
अस्य तैलस्य पक्वस्य शृणु वीर्यमतः परम् ॥ २८७॥
अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां तथा नृणाम् ।
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्वव्याधिनिवारणम् ॥ २८८ ॥
आयुष्मांश्च नरः पीत्वा निश्चयेन दृढो भवेत् ।
गर्भमश्वतरी विन्द्यात्किम्पुनर्मानुषी तथा ॥ २८९ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च तथैवार्धावभेदकम् ।
कामलापाण्डुरोगघ्नं शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ २९० ॥
क्षीणेन्द्रिया नष्टशुक्रा जरया जर्जरीकृता ।
येषां चैव क्षयो व्याधिरन्त्रवृद्धिश्च दारुणा ॥ २९१ ॥
अर्दितं गलगण्डं च वातशोणितमेव च ।
स्त्रियो या न प्रसूयन्ते तासां चैव प्रयोजयेत् ।
एतद्धन्यं वरं तैलं विष्णुना परिकीर्तितम् ॥ २९२ ॥

शालपर्णी, पृष्टपर्णी, खरैंटी, शतावर, एरण्डकी जड, छोटी कटेरी तथा बड़ी कटेरीकी जड, पूतिकरञ्जकी जडकी छाल, कंघीकी जड तथा कटसैरयाकी जड प्रत्येक ४ तोले ले कल्क बना १ सेर ९ छ० ३ तो० तिल्तैल तथा ६ सेर ३२ तो० गाय अथवा बकरीका दूध तथा इतना ही जल मिलाकर सिद्ध करना चाहिये। इस तैलकी शक्ति वर्णन करते हैं सुनो। वातसे पीडित घोडे, हाथी तथा मनुष्योंको इस तैलका प्रयोग करना चाहिये। यह समस्त रोगोंको नष्ट कर देता है। आयुष्मान् तथा दृढ बनाता है। इससे खच्चरी (जिसके गर्भ रहता ही नहीं) के भी गर्भ रह सकता है। फिर स्त्रियोंके लिये क्या कहना ? यह हृदयके दर्द, पसलियोंके दर्द तथा अर्धावभेदको नष्ट करता है। तथा कामला, पाण्डुरोग, शर्करा व अश्मरीको नष्ट करता है। जिनकी इन्द्रियां शिथिल होगयी हैं वीर्य नष्ट हो चुका है, वृद्धावस्थासे जर्जर हो रहे हैं, जिनके क्षय अथवा अन्त्रवृद्धि, अर्दित, गलगण्ड तथा वातरक्तरूपी कठिन रोग हैं तथा जिन स्त्रियोंके सन्तान नहीं होती उनके लिये इसका प्रयोग करना चाहिये। यह धन्यवादार्ह श्रेष्ठ तैल विष्णुभगवान्ने कहा है ॥२८५–२९२ ॥

इति वातव्याध्यधिकारः समाप्तः ।

अथ वातरक्ताधिकारः ।

बाह्यगम्भीरादिचिकित्सा ।

बाह्यं लेपाभ्यङ्गसेकोपनाहैर्वातशोणितम् ।
विरेकास्थापनस्नेहपानैर्गम्भीरमाचरेत् ॥ १ ॥
द्वयोर्मुञ्चेदसृक् शृङ्गसूच्यलाबुजलौकसा ।
देशाद्देशं व्रजत्स्राव्यं शिराभिः प्रच्छनेन वा ।
अङ्गग्लानौ च स्राव्यं रूक्षे वातोत्तरे च यत् ॥ २ ॥

उत्तान वातरक्तको लेप अभ्यङ्ग, सेक तथा उपनाहसे और गम्भीरको विरेचन, आस्थापन तथा स्नेहपानसे दूर करना चाहिये। दोनों प्रकारके वातरक्तमें शृंग, सूची, तोम्बी अथवा जोंक द्वारा रक्त निकलवा देना चाहिये। जो एक स्थानसे दूसरे स्थानमें फैल रहा हो उसे शिराव्यधद्वारा अथवा पछने लगा खून निकालकर लगा खून निकालकर शान्त करना चाहिये। पर यदि रोगी शिथिल अथवा वाताधिक्यसे रूक्ष हो तो रक्त न निकालना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

अमृतादिक्वाथद्वयम् ।

अमृतानागरधन्याककर्षत्रयेण पाचनं सिद्धम् ।
जयति सरक्तं वातं सामं कुष्ठान्यशेषाणि ॥ ३ ॥
वत्सादन्युद्भवः क्वाथः पीतो गुग्गुलुसंयुतः ।
समीरणसमायुक्तं शोणितं संप्रसाधयेत् ॥ ४ ॥

गुर्च, सोंठ तथा धनिया प्रत्येक १ तोला ले क्वाथ बनाकर पीनेसे आमसहित वातरक्त तथा समस्त कुष्ठोंको नष्ट करता है। इसी प्रकार केवल गुर्चका क्वाथ गुग्गुलुके साथ पीनेसे वातरक्तको अवश्य नष्ट करता है ॥३॥४॥

वासादिक्वाथः ।

वासागुडूचीचतुरङ्गुलानामेरण्डतैलेन पिबेत्कषायम् ।
क्रमेण सर्वाङ्गजमप्यशेषं जयेदसृग्वातभवं विकारम् ॥५॥

अडूसा, गुर्च तथा अमलतासके गूदाका क्वाथ एरण्डतैल मिलाकर पीनेसे समस्त शरीरमें भी फैला हुआ वातरक्त नष्ट होता है ॥ ५ ॥

मुण्डितिकाचूर्णम् ।

लीढ्वा मुण्डितिकाचूर्णं मधुसर्पिः समन्वितम् ।
छिन्नाक्वाथं पिबन्हन्ति वातरक्तं सुदुस्तरम् ॥ ६ ॥

मुण्डीके चूर्णको शहद और घीके साथ चाटकर ऊपरसे गुर्चका काढा पीनेसे कठिन वातरक्त निसन्देह नष्ट होता है ॥ ६ ॥

पथ्याप्रयोगः ।

तिस्रोऽथवा पञ्च गुडेन पथ्या
जग्ध्वा पिबेच्छिन्नरुहाकषायम् ।
तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्ण-
माजानुसंभिन्नमपि ह्यवश्यम् ॥ ७ ॥

३ अथवा ५ छोटी हरड़ोंका चूर्ण गुड मिला खाकर ऊपरसे गुर्चका क्वाथ पीनेसे जानुपर्य्यन्त भी फैला हुआ वातरक्त शान्त होता है ॥ ७ ॥

गुडूचीप्रयोगाः ।

घृतेन वातं सगुडा विबन्धं
पित्तं सिताढ्या मधुना कफं वा ।
वातासृगुग्रं रुबुतैलमिश्रा
शुण्ठ्यामवातं शमयेद्गुडूची ॥ ८ ॥

गुर्च्ची घीके साथ वायुको, गुडके साथ विबन्ध (मलावरोध) को, मिश्रीके साथ पित्त, शहदके साथ कफ, एरण्डतैलके साथ वातरक्त तथा सोंठके साथ आमवातको नष्ट करती है ॥ ८ ॥

गुडूच्याश्चत्वारो योगाः ।

गुडूच्याः स्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्वाथमेव वा ।
प्रभूतकालमासेव्य मुच्यते वातशोणितात् ॥ ९ ॥

गुर्चका स्वरस, कल्क, चूर्ण या क्वाथ अधिक समयतक सेवन करनेसे वातरक्त नष्ट हो जाता है ॥ ९ ॥

वातप्रधानचिकित्सा ।

दशमूलीशृतं क्षीरं सद्यः शूलनिवारणम् ।
परिषेकोऽनिलप्राये तद्वत्कोष्णेन सर्पिषा ॥ १० ॥

दशमूलसे सिद्ध दूध शीघ्र ही शूलको नष्ट करता है । इसी प्रकार वातप्रधानमें गुनगुने घीसे सेक करना चाहिये ॥ १० ॥

पित्तरक्ताधिक्ये पटोलादिक्वाथः ।

पटोलकटुकाभीरुत्रिफलामृतसाधितम् ।
क्वाथं पीत्वा जयेज्जन्तुः सदाहं वातशोणितम् ॥ ११ ॥

परवलके पत्ते, कुटकी, शतावरी, त्रिफला तथा गुर्चसे सिद्ध किया गया क्वाथ पीनेसे दाहके सहित वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

लेपसेकाः ।

गोधूमचूर्णाजपयो घृतं वा
सच्छागदुग्धोरुबुबीजकल्कः ।
लेपे विधेयं शतधौतसर्पिः
सेके पयश्चाविकमेव शस्तम् ॥ १२ ॥
लेपः पिष्टास्तिलास्तद्वद्भृष्टाः पयसि निर्वृताः ।

गेहूँका आटा, बकरीका दूध और घी अथवा बकरीके दूधके साथ एरण्डबीजका कल्क अथवा सौ बार धोये हुए घीका लेप करना चाहिये तथा बकरीके दूधका सेक करना चाहिये । इसी प्रकार तिल पीस भून दूधमें पकाकर लेप करना चाहिये ॥ १२ ॥–

कफाधिक्यचिकित्सा ।

कटुकामृतयष्ट्याह्वशुण्ठीकल्कं समाक्षिकम् ॥ १३ ॥
गोमूत्रपीतं जयति सकफं वातशोणितम् ।
धात्रीहरिद्रामुस्तानां कषायो वा कफाधिके ॥ १४ ॥
कोकिलाक्षामृताक्काथे पिबेत्कृष्णां कफाधिके ।
पथ्यभोजी त्रिसप्ताहान्मुच्यते वातशोणितात् ॥ १५ ॥
कफरक्तप्रशमनं कच्छूवीसर्पनाशनम् ।
वातरक्तप्रशमनं हृद्यं गुडघृतं स्मृतम् ।

कुटकी, गुर्च, मौरेठी तथा सोंठका कल्क शहदके साथ चाटकर ऊपरसे गोमूत्र पीनेसे सकफ वातरक्त नष्ट होता है । अथवा आंवला, हल्दी, व नागरमोथाका क्वाथ अथवा तालमखाना व गुर्चका क्वाथ पीपलका चूर्ण छोडकर पीनेसे और पथ्यसे रहनेसे २१ दिनमें कफप्रधान वातरक्त नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार गुड मिलाकर घी खानेसे कफज वातरक्त कच्छू तथा विसर्प शान्त होते तथा हृदय बलवान् होता है ॥ १३–१५ ॥–

संसर्गसन्निपातजचिकित्सा ।

संसर्गेषु यथोद्रेकं मिश्रं वा प्रतिकारयेत् ॥ १६ ॥
सर्वेषु सगुडां पथ्यां गुडूचीक्वाथमेव वा ।
पिप्पलीवर्धमानं वा शीलयेत्सुसमाहितः ॥ १७ ॥

द्वन्द्वजमें जो दोष बढ़ा हुआ हो उसकी प्रधान चिकित्सा अथवा मिलित चिकित्सा करनी चाहिये । सन्निपातजमें गुडके साथ हर्र अथवा गुर्चका काढा अथवा वर्द्धमान पिप्पलीका प्रयोग करना चाहिये * ॥ १६ ॥ १७ ॥

---

* गुडूचीतैलम्–" गुडूचीक्वाथकल्काभ्यां पचेत्तैलं तिलस्य च । पयसा च समं पक्त्वा भिषङ्मन्देन वह्निना ॥ हन्ति वातं तथा रक्तं कुष्ठं जयति दुस्तरम् । त्वग्दोषव्रणवीसर्पकण्डूदद्रुविनाशनम् ॥ " गुर्चका

नवकार्षिकः क्काथः।

त्रिफलानिम्बमञ्जिष्ठावचाकटुकगेहिणी।
वत्सादनीदारुनिशाकषायो नवकार्षिक ॥ १८ ॥
वातरक्तं तथा कुष्टं पामान रक्तमण्डलम्।
कुष्टं कापालिकाकुष्ठ पानादेवापकर्षति ॥ १९ ॥
पञ्चरक्तिकमापेण कार्योऽयं नवकार्षिक ।
किंत्वेवं साधिते क्काथे योग्यमात्रा प्रदीयते ॥ २० ॥

त्रिफला, नीमकी छाल, मञ्जीठ, बच, कुटकी, गुर्च, दारुहल्दी एक एक कर्ष परिमित इन नौ औषधियोंका बनाया नवकर्षका क्वाथ पीनेसे वातरक्त, कुष्ठ, पामा, लाल चकत्ते, कापालिक कुष्ठ नष्ट होते हैं। यह पाच रत्तिके मापासे नव कर्ष लेकर क्काथ बनाना चाहिये और इस प्रकार सिद्ध क्काथ भी उचित मात्रामें ही पीना चाहिये ॥ १८–२० ॥

गुडूचीघृतम्।

गुडूचीक्काथकल्काभ्यां सपयस्कं शृत घृतम्।
हन्ति वातं तथा रक्त कुष्ठ जयति दुस्तरम् ॥ २१ ॥

गुर्चका क्काथ व कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध किया गया घृत वातरक्त तथा कुष्ठको नष्ट करता है॥२१॥

शतावरीघृतम्।

शतावरीकल्कगर्भं रसे तस्याश्चतुर्गुणे।
क्षीरतुल्यं घृतं पक्कं वातशोणितनाशनम् ॥ २२ ॥

शतावरीका कल्क चतुर्थांश और रस चतुर्गुण तथा समान भाग दूध मिलाकर सिद्ध किया गया घृत वातरक्तको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

अमृताद्यं घृतम्।

अमृता मधुक द्राक्षा त्रिफला नागरं बला।
वासारग्वधवृश्चीरदेवदारुत्रिकण्टकम् ॥ २३ ॥
कटुकाशवरीकृष्णाकाश्मर्यस्य फलानि च।

—क्काथ तथा कल्क तथा समान भाग दूध मिलाकर तिल तैल मन्द आंचसे वैद्यको पका लेना चाहिये । यह तैल वातरक्त, कुष्ठ, त्वग्दोष, व्रण, वीसर्प, कण्डू तथा दद्रूको नष्ट करता है ॥

१ इसे ग्रन्थान्तरमें मञ्जिष्ठादि क्काथके नामसे लिखा है इसमें बलाबलके अनुसार आधी छटाकसे १ छटाकतक क्काथ्य द्रव्य छोड़कर क्काथ बनाकर पिलाना चाहिये। इसके पीनेसे ४ या ५ तक दस्त प्रतिदिन आते हैं।

रास्नाक्षुरकगन्धर्ववृद्धदारघनोत्पलैः।
कल्कैरेभि समं कृत्वा सर्पि प्रस्थं विपाचयेत् ॥२४॥
धात्रीरससमं दत्त्वा वारि त्रिगुणसंयुतम्।
सम्यक् सिद्धं तु विज्ञाय भोज्ये पाने च शस्यते ॥२५॥
बहुदोषान्वित वात रक्तेन सह मूर्छितम्।
उत्तान चापि गम्भीर त्रिकजङ्घोरुजानुजम् ॥ २६ ॥
क्रोष्टुशीर्षे महाशूले चामवाते सुदारुणे।
वातरोगोपसृष्टस्य वेदना चातिदुस्तराम् ॥ २७ ॥
मूत्रकृच्छ्रमुदावर्तप्रमेह विषमज्वरम्।
एतान्सर्वान्निहन्त्याशु वातपित्तकफोत्थितान् ॥ २८ ॥
सर्वकालोपयोगेन वर्णायुर्बलवर्धनम्।
अश्विभ्यां निर्मित श्रेष्ठ घृतमेतदनुत्तमम् ॥ २९ ॥

गुर्च, मौरेठी, मुनक्का, त्रिफला, सोंठ, खरेटी, अडूसाके फूल, अमलतासका गूदा, पुनर्नवा, देवदारु, गोखरू, कुटकी, हल्दी, छोटी पीपल, खम्भारके फल, रासन, तालमखाना, एरण्डकी छाल, विधारा, नागरमोथा, नीलोफर सब समान भाग ले कल्क कर छोडना चाहिये तथा आंवलेका रस १ प्रस्थ तथा घी १ प्रस्थ और जल ३ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये, ठीक सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर पीना चाहिये तथा भोजनके साथ प्रयोग करना चाहिये। बहुदोषयुक्त, उत्तान तथा गहरा तथा त्रिक, जंघा, ऊरु, जानुतक फैला हुआ वातरक्त इससे नष्ट होता है तथा क्रोष्टुकशीर्ष, आमवात, वातव्याधिकी पीडा, मूत्रकृच्छ्र, उदावर्त, प्रमेह, विषमज्वर आदि वात, पित्त, कफके समस्त रोगोंको शीघ्र ही नष्ट करता है। हर समय प्रयोग करते रहनेसे वर्ण, आयु तथा बलकी वृद्धि होती है । भगवान् अश्विनीकुमारने यह घृत बनाया है ॥ २३–२९ ॥

दशपाकबलातैलम्।

बलाकषायकल्काभ्यां तैलं क्षीरचतुर्गुणम्।
दशपाक भवेदेतद्वातासृग्वातपित्तजित् ॥ ३० ॥
धन्य पुसवन चैव नराणां शुक्रवर्धनम्।
रेतोयोनिविकारघ्नमेतद्वातविकारनुत् ॥ ३१ ॥

खरेटीका क्काथ तथा कल्क और घीमें चतुर्गुण दूध मिलाकर तैल पकाना चाहिये, एक बार पक जानेपर फिर उतार छानकर इसी क्रमसे क्काथ, कल्क व दूध मिलाकर पकाना चाहिये, इस प्रकार दश बार पकाना चाहिये। इसमें क्काथ प्रतिवार घीमें चतुर्गुण ही छोडना चाहिये। यह तैल वातरक्त तथा वातपित्तको नष्ट करता,

वीर्य व, पुरुषत्वको बढाता, वात रोग तथा शुक्र और रजके दोषोंको नष्ट करता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

गुडूच्यादितैलम्।

गुडूचीक्वाथदुग्धाभ्यां तैलं लाक्षारसेन वा।
सिद्धं मधुककाश्मर्यरसैर्वा वातरक्तनुत् ॥ ३२ ॥

गुर्चके काढे और दूधके साथ अथवा लाखके रसके साथ अथवा मौरेठी व खम्भारके रसके साथ सिद्ध तैल वातरक्तको नष्ट करता है ॥ ३२ ॥

खुड्डाकपद्मकतैलम्।

पद्मकोशीरयष्ट्याह्वरजनीक्वाथसाधितम्।
स्यात्पिष्टे सर्जमञ्जिष्ठावीराकाकोलिचन्दनैः।
खुड्डाकपद्मकमिदं तैलं वातास्रदोषनुत् ॥ ३३ ॥

पद्माख, खश, मौरेठी व हल्दीकी क्वाथ तथा राल, मञ्जीठ, क्षीरकाकोली, काकोली, व चन्दनसे सिद्ध किया गया तैल खुड्डाक—पद्मक तैल कहा जाता है और वात ॥ रक्तको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

नागबलातैलम्।

शुद्धां पचेन्नागबलातुलां तु
विस्राव्य तैलाढकमत्र दद्यात्।
अजापयस्तुल्यविमिश्रितं तु
नतस्य यष्टीमधुकस्य कल्कम् ॥ ३४ ॥
पृथक्पचेत्पञ्चपलं विपक्वं
तद्वातरक्तं शमयत्युदीर्णम्।
वस्तिप्रदानादिह सप्तरात्रा-
त्पीतं दशाहात्प्रकरोत्यरोगम् ॥ ३५ ॥
तुलाद्रव्ये जलद्रोणो द्रोणे द्रव्यतुला मता।

साफ नागबलाका पञ्चाङ्ग ५ सेर २५ सेर ४८ तोला जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर १ आढक अर्थात् ६ सेर ३२ तोला तैल तथा इतना ही बकरीका दूध तथा तगर व मौरेठी प्रत्येक २० तोलाका कल्क मिलाकर पकाना चाहिये। यह बढ़े हुए वातरक्तको शान्त करता, वस्तिसे ७ दिन तथा पीनेसे १० दिनमें आरोग्यकर है। तुला अर्थात् ४०० तोलेभर द्रव्यमें एक द्रोण जल इसी प्रकार १ द्रोण जलमें १ तुला द्रव्य छोडना चाहिये॥३४—३५॥--

पिण्डतैलत्रयम्।

समधूच्छिष्टमञ्जिष्ठं ससर्जरससारिवम्।
पिण्डतैलं तदभ्यङ्गाद्वातरक्तरुजापहम् ॥ ३६ ॥
शारिवासर्जमञ्जिष्ठायष्टीसिक्थैः पयोऽन्वितैः।
तैलं पक्वं त्रिमञ्जिष्ठं रसोर्वा वातरक्तनुत् ॥ ३७ ॥

मोम, मञ्जीठ, राल और शारिवाका कल्क तथा जल मिलाकर सिद्ध किया गया तैल वातरक्तको नष्ट करता है इसी प्रकार शारिवा, राल, मञ्जीठ, मौरेठी व मोमका कल्क व दूध मिलाकर पकाया गया तैल अथवा मञ्जीठके विना और सब चीजें मिलाकर पकाया गया एरण्डतैल लगानेसे वातरक्त नष्ट होता है। यह पिण्डतैल है ३६॥३७॥

कैशोरगुग्गुलुः।

वरमहिषलोचनोदरसन्निभवर्णस्य गुग्गुलोः प्रस्थम्।
प्रक्षिप्य तोयराशौ त्रिफलां च यथोक्तपरिमाणाम्॥३८॥
द्वात्रिंशच्छिन्नरुहापलानि देयानि यत्नेन।
विपचेदप्रमत्तो दर्व्या संघट्टयन्मुहुर्यावत् ॥ ३९ ॥
अर्धक्षयितं तोयं जातं ज्वलनस्य सम्पर्कात्।
अवतार्य वस्त्रपूतं पुनरपि संसाधयेदयःपात्रे ॥ ४० ॥
सान्द्रीभूते तस्मिन्नवतार्य हिमोपलप्रख्ये।
त्रिफलाचूर्णार्धपलं त्रिकटोश्चूर्णं षडक्षपरिमाणम् ॥४१॥
क्रिमिरिपुचूर्णार्धपलं कर्षं कर्षं त्रिवृद्दन्त्योः।
पलमेकं च गुडूच्याः सर्पिषश्च पलाष्टकं क्षिपेदमलम्।
उपयुज्य चानुपानं यूषं क्षीरं सुगन्धिसलिलं च।
इच्छाहारविहारी भेषजमुपयुज्य सर्वकालमिदम् ॥४३॥
तनुरोधिवातशोणितमेकजमथ द्वन्द्वजं चिरोत्थं च।
जयति स्रुतं परिशुष्कं स्फुटितं च जानुजं चापि ॥४४॥
व्रणकासकुष्ठगुल्मश्वयथूदरपाण्डुमेहांश्च।
मन्दाग्निं च विबन्धं प्रमेहपिडकाश्च नाशयत्याशु॥४५॥
सततं निषेव्यमाणः कालवशाद्धन्ति सर्वगदान्।
अभिभूय जरादोषं करोति कैशोरकं रूपम् ॥ ४६ ॥
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थो जलं तत्र षडाढकम्।
गुडवद्गुग्गुलोः पाकः सुगन्धिस्तु विशेषतः ॥ ४७ ॥

उत्तम भैंसके नेत्र तथा उदरके समान नीला तथा कुछ हरापन व लालिमा युक्त गुग्गुलु १ प्रस्थ, आंवला, हर्र, बहेडा प्रत्येक १ प्रस्थ, गुर्च २ प्रस्थ, जल ६ आढक मिलाकर कलछीसे चलाते हुए पकाना चाहिये। जब आधा जल जल जाय तब उतार छानकर फिर लोहेके वर्तनमें पकाना चाहिये। गाढा हो जानेपर उतारना चाहिये। फिर ठण्ढा तथा कडा हो जानेपर कूट कूटकर त्रिफलाका चूर्ण प्रत्येक २ तोला, त्रिकटुका चूर्ण प्रत्येक २ तोला, वायविडंगका चूर्ण २ तोला, निसोथ व दन्ती प्रत्येकका चूर्ण

१ तोला व गुर्च ४ तोला मिलाना चाहिये, फिर घी ३२ तोला मिलाकर १ माशेकी मात्राकी गोली बनानी चाहिये। इसको खाकर ऊपरसे यूष दूध या सुगन्धित (दालचीनी आदिसे सिद्ध) जल पीना चाहिये। इस औषधिका सेवन करते हुए इच्छानुकूल आहार विहार करनेपर भी समस्त शरीरमें फैला हुआ, एकज तथा द्वन्द्वज बहता हुआ तथा सूखा, अधिक समयका भी वातरक्त नष्ट होता है तथा व्रण, कास, कुष्ठ, गुल्म, सूजन, उदररोग, मन्दाग्नि, विबन्ध व प्रमेहपिडका नष्ट होती है। सदा सेवन करनेसे उक्त समयमें सभी रोगोंको नष्ट करता है। वृद्धता मिटती तथा जवानी आ जाती है। ऊपर लिखे अनुसार त्रिफला प्रत्येक एक प्रस्थ तथा जल ६ आढक छोडना चाहिये तथा गुडके समान ही गुग्गुलुका पाक करना चाहिये पर गुग्गुलुकी जब सुगन्धि उठने लगे तब उतारना चाहिये ॥ ३८–४७ ॥

अमृताद्यो गुग्गुलुः ।

प्रस्थमेकं गुडूच्यास्तु अर्धप्रस्थं च गुग्गुलो ।
प्रत्येक त्रिफलायाश्च तत्प्रमाण विनिर्दिशेत् ॥ ४८ ॥
सर्वमेकत्र सक्षुद्य साधयेत्त्वर्मणेऽम्भसि ।
पादशेष परिस्राव्य पुनरग्नावधिश्रयेत् ॥ ४९ ॥
तावत्पचेत्कषाय तु यावत्सान्द्रत्वमागतम् ।
दन्तीव्योषविडङ्गानि गुडूचीत्रिफलात्वच ॥ ५० ॥
ततश्चार्धपलं पूतं गृह्णीयाच्च प्रति प्रति ।
कर्षं तु त्रिवृतायाश्च सर्वमेकत्र कारयेत् ॥ ५१ ॥
तस्मिन्सुसिद्धे विज्ञाय कवोष्णे प्रक्षिपेद्बुध ।
ततश्चाग्निबल ज्ञात्वा तस्य मात्रा प्रदापयेत ॥ ५२ ॥
वातरक्त तथा कुष्ठं गुदजान्यग्निसादनम् ।
दुष्टव्रणप्रमेहांश्च सामवातं भगन्दरम् ॥ ५३ ॥
नाड्याढयवातश्वयथून्सर्वोनेतान्व्यपोहति ।
अश्विभ्या निर्मित पूर्वममृताद्यो हि गुग्गुलु ॥
अर्धप्रस्थ त्रिफलाया प्रत्येकमिह गृह्यते ॥ ५४ ॥

गुर्च ६४ तोला, गुग्गुलु ३२ तोला, त्रिफला प्रत्येक ३२ तो० सबको कूटकर १ द्रोण(२५ सेर ४८ तो०) जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर फिर पकाना चाहिये, पाक हो जाने पर दन्ती, त्रिकटु, वायविडङ्ग, गुर्च, त्रिफला प्रत्येकका कुटा हुआ चूर्ण २ तोला निसोथका चूर्ण १ तोला मिलाकर गोली बना रखनी चाहिये। इसकी मात्रा अग्निबलके अनुसार देनी चाहिये। यह वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, अग्निमान्द्य, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर, नाडीव्रण, आढयवात (ऊरुस्तम्भ) तथा सूजनको नष्ट करता है। इसे भगवान् अश्विनीकुमारने बनाया था ॥ ४८–५४ ॥

अमृताख्यो गुग्गुलुः ।

अमृतायाश्च द्विप्रस्थ प्रस्थमेक च गुग्गुलो ।
प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थ वर्षाभूप्रस्थमेव च ॥ ५५ ॥
सर्वमेतच्च सक्षुद्य क्वाथयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
पुन पचेत्पादशेष यावत्सान्द्रत्वमागतम् ॥ ५६ ॥
दन्तीचित्रकमूलाना कणाविश्वफलत्रिकम् ।
गुडूचीत्वग्विडङ्गाना प्रत्येकार्धपलोन्मितम् ॥ ५७ ॥
त्रिवृता कर्षमेक तु सर्वमेकत्र चूर्णयेत् ।
सिद्धे चोष्णे क्षिपेत्तत्र त्वमृता गुग्गुलो.परम् ॥ ५८ ॥
यथाग्निबल खादेदम्लपित्ती विशेषत ।
वातरक्त तथा कुष्ठ गुदजान्यग्निसादनम् ॥ ५९ ॥
दुष्टव्रणप्रमेहाश्च सामवात भगन्दरम् ।
नाड्याढ्यवातश्वयथून्हन्यात्सर्वामयानयम् ॥ ६० ॥
अश्विभ्या निर्मितो ह्येषोऽमृताख्यो गुग्गुलु पुरा ।

गुर्च २ प्रस्थ, गुग्गुलु १ प्रस्थ, त्रिफला प्रत्येक १ प्रस्थ, पुनर्नवा १ प्रस्थ सबको दुरकुचाकर १ द्रोण जलमें मद अग्निसे पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर फिर पकाना चाहिये पाक सिद्ध हो जानेपर, दन्ती, चीतकी जड, छोटी पीपल, सोंठ त्रिफला, गुर्च दालचीनी, वायविडग प्रत्येक २ तोला, निसोथ १ तोला सबको चूर्ण कर गरम गुग्गुलुमें ही मिला देना चाहिये। यह अमृतागुग्गुलु अग्निबलादिके अनुसार सेवन करनेसे अम्लपित्त, वातरक्त, कुष्ठ, अर्श, अग्निमान्द्य, दुष्टव्रण, प्रमेह, आमवात, भगन्दर नाडीव्रण, ऊरुस्तम्भ, सूजन आदि समस्त रोगोंको यह नष्ट करता है। सर्व प्रथम भगवान् अश्विनीकुमारने इसे बनाया था ॥५५–६०॥--

योगसारामृतः ।

शतावरीनागबलावृद्धदारकमुषली ।
पुनर्नवामृताकृष्णावाजिगन्धात्रिकण्टकम् ॥ ६१ ॥
पृथग्दशपलान्येषा श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
तदर्धशर्करायुक्त चूर्णं समर्दयेद्बुध ॥ ६२ ॥
स्थापयेत्सुदृढे भाण्डे मध्वर्धाढकसंयुतम् ।
घृतप्रस्थे समालोड्य त्रिसुगन्धिपलेन तु ॥ ६३ ॥

१ गुग्गुलुका पाक कडा ही करना चाहिये अन्यथा फोफन्दी (सफेदी) लग जानेसे शीघ्र ही सड जाता है।

तं खादेदिष्टचेष्टान्नो यथावह्निबलं नरः ।
वातरक्तं क्षयं कुष्ठं कार्श्यं पित्तास्रसम्भवम् ॥ ६४ ॥
वातपित्तकफोत्थांश्च रोगानन्यांश्च तद्विधान् ।
हत्वा करोति पुरुषं वलीपलितवर्जितम् ॥ ६५ ॥
योगसारामृतो नाम लक्ष्मीकान्तिविवर्धनः ।
दिवास्वप्नाग्निसन्तापं व्यायामं मैथुनं तथा ।
कटूष्णगुर्वभिष्यन्दिलवणाम्लानि वर्जयेत् ॥ ६६ ॥

शतावरी, नागबला, विधारा, भुईआवला पुनर्नवा, गुर्च, छोटी पीपल, असगन्ध, गोखुरू, प्रत्येक ८ छ० कूट छानकर जितना चूर्ण तयार हो उससे आधी शक्कर तथा शहद १॥ सेर ८ तोला, घी ६४ तो० और दालचीनी, तेजपात, इलायची प्रत्येकका चूर्ण ४ तोला मिलाकर रखना चाहिये । इसको अग्निबलादिके अनुसार सेवन करने तथा यथेष्ट आहार विहार करनेसे वातरक्त, क्षय, कुष्ठ, कार्श्य, पित्तरक्त वात-पित्त-कफजन्य अन्य रोग नष्ट होते हैं और शरीर वलीपलित रहित होता है । यह योगसारामृत शोभा व कान्ति बढानेवाला है । इस औषधके सेवन कालमें दिनमें सोना, अग्नि तापना, व्यायाम, मैथुन तथा कटु, उष्ण, गुरु, अभिष्यन्दि, नमकीन और खट्टे पदार्थोंको त्यागना चाहिये ॥६१-६६॥

बृहद्गुडूचीतैलम् ।

तुला पचेज्जलद्रोणे गुडूच्याः पादशेषितम् ।
क्षीरद्रोणं च ताभ्यां तु पचेत्तैलाढकं शनैः ॥ ६७ ॥
कल्कैर्मधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयगणैस्तथा ।
कुष्ठैलागुरुमृद्वीका मांसी व्याघ्रनखं नखी ॥ ६८ ॥
हरेणु सारिवाणि व्योष शताह्वा भृङ्गशारिवे ।
त्वक्पत्रं वचवक्रान्ता स्थिरा चामलकी तथा ॥ ६९ ॥
नत केशरह्रीवेरपद्मकोत्पलचन्दनैः ।
सिद्धं कर्षसमैर्भागैः पानाभ्यङ्गानुवासनैः ॥ ७० ॥
पर वातास्रजान्हन्ति सर्वजानन्तरस्थितान् ।
धन्यं पुंसवनं स्त्रीणां गर्भदं वातपित्तनुत् ॥ ७१ ॥
स्वेदकण्डूरुजापामाशिरःकम्पार्दितामयान् ।
हन्याद्व्रणकृतान्दोषान्गुडूचीतैलमुत्तमम् ॥ ७२ ॥

गुर्च ५ सेर जल २५ से० ४८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छान लेना चाहिये । फिर उसी क्वाथमें दूध २५ सेर ४८ तो०, तिल तैल ६ सेर ३२ तो० तथा मौरेठी, मजीठ, जीवनीयगण (जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीर काकोली, मेदा, महामेदा, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, जीवंती, मौरेठी) कूठ, इलायची, अगर, मुनक्का, जटामांसी, व्याघ्रनख, नखी, सम्भालूके बीज, ऋद्धि, त्रिकटु, सौंफ, भागरा, सारिवा, दालचीनी, तेजपात, वच, वराहक्रान्ता, शालपर्णी, आंवला, तगर, नागकेशर, सुगन्धवाला, पद्माख, नीलोफर, तथा चन्दन प्रत्येक एक तोलेका कल्क बना छोडकर तैलपाक करना चाहिये । यह तैल पीने, मालिश तथा अनुवासन बस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे वातरक्तज तथा सन्निपातज अन्तरस्थ रोगोंको नष्ट करता है । यह सन्तान उत्पन्न करता, स्त्रियोंको गर्भधारण करता तथा वातपित्तज रोगोंको नष्ट करता, तथा स्वेद, खुजली, पीडा, पामा, शिरःकम्प, अर्दित तथा व्रणदोषोंको नष्ट करता है, यह उत्तम गुडूचीतैल है ॥ ६७-७२ ॥

इति वातरक्ताधिकारः समाप्तः ।

अथोरुस्तम्भाधिकारः ।

सामान्यतश्चिकित्साविचारः ।

श्लेष्मणः क्षपणं यत्स्यान्न च मारुतकोपनम् ।
तत्सर्वं सर्वदा कार्यमूरुस्तम्भस्य भेषजम् ॥ १ ॥
तस्य न स्नेहनं कार्यं न बस्तिर्न च रेचनम् ।
सर्वो रूक्षः क्रमः कार्यस्तत्रादौ कफनाशनः ॥ २ ॥
पश्चाद्वातविनाशाय कृत्स्नः कार्यः क्रियाक्रमः ।

जो कफको शान्त करे और वायुको न बढावे ऐसी चिकित्सा सदा ऊरुस्तम्भकी करनी चाहिये । इसमे स्नेहन, बस्ति और विरेचन न करना चाहिये । प्रथम कफको शान्त करनेके लिये समस्त रूक्ष चिकित्सा करनी चाहिये । फिर वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥--

केचन योगाः ।

शिलाजतुं गुग्गुलुं वा पिप्पलीमथ नागरम् ॥ ३ ॥
ऊरुस्तम्भे पिबेन्मूत्रैर्दशमूलीरसेन वा ।
भल्लातकामृताशुण्ठीदारुपथ्यापुनर्नवाः ॥ ४ ॥
पञ्चमूलीद्वयोन्मिश्रा ऊरुस्तम्भनिबर्हणाः ।
पिप्पलीपिप्पलीमूलभल्लातकाथ एव वा ॥ ५ ॥
कल्को वा ससमधुर्देय ऊरुस्तम्भविनाशनः ।
त्रिफलाचव्यकटुकग्रन्थिकं मधुना लिहेत् ॥ ६ ॥
ऊरुस्तम्भविनाशाय पुरं मूत्रेण वा पिबेत् ।
लिह्यात्क्षौद्रं त्रिफलाचूर्णं क्षौद्रेण कटुकायुतम् ॥ ७ ॥

सुखाम्बुना पिबेद्वापि चूर्णं षट्धरणं नरः ।
पिप्पलीवर्धमानं वा माक्षिकेण गुडेन वा ॥ ८ ॥
ऊरुस्तम्भे प्रशंसन्ति गण्डीरारिष्टमेव वा ।
चव्याभयाग्निदारूणा समधुः स्यादुरुग्रहे ॥ ९ ॥

शिलाजतु, गुग्गुलु, छोटी पीपल अथवा सोंठ, गोमूत्रके साथ अथवा दशमूलके काढेके साथ पीना चाहिये। इसी प्रकार भिलावा, गुर्च, सोंठ, देवदारु, हर्र, तथा पुनर्नवाका चूर्ण दशमूलके क्वाथके साथ पीनेसे ऊरुस्तम्भ नष्ट होता है। अथवा छोटी पीपल, पिपरामूल व भिलावेका क्वाथ अथवा कल्क शहदके साथ चाटना चाहिये। अथवा त्रिफला, चव्य, कुटकी, तथा पिपरामूलका चूर्ण शहदसे चाटना चाहिये अथवा (इन्हींके साथ सिद्ध) गुग्गुलु गोमूत्रके साथ पीना चाहिये। अथवा त्रिफला व कुटकीका चूर्ण शहदके साथ चाटना चाहिये। अथवा कुछ गरम जलके साथ षड्धरण (वातव्याधिमें कहा) योगका सेवन अथवा वर्धमान पिप्पलीका शहद अथवा गुडके साथ, अथवा गण्डीरारिष्ट अथवा चव्य, बडी, हर्रका छिल्का चीतकी जड और देवदारुका कल्क शहदके साथ सेवन करना चाहिये ॥ ३-९ ॥

लेपद्वयम् ।

कल्कं दिह्याच्च मूत्राढ्यैः करञ्जफलसर्षपैः ।
क्षौद्रसर्षपवल्मीकमृत्तिकासंयुतं भिषक् ॥ १० ॥
गाढमुत्सादनं कुर्यादूरुस्तम्भे सलेपनम् ।

कञ्जा और सरसोंका गोमूत्रके साथ कल्क कर लेप करना चाहिये अथवा शहद, सरसों, वल्मीककी मिट्टीका उबटन लगाना तथा इसीका लेप करना चाहिये ॥ १० ॥–

विहारव्यवस्था ।

कफक्षयार्थं व्यायामेष्वेनं शक्येषु योजयेत् ॥ ११ ॥
स्थलान्याक्रामयेत्कल्यं प्रतिस्रोतोनदीस्तरेत् ।

कफके क्षीण करनेके लिये जितना हो सके व्यायाम कराना चाहिये। प्रातःकाल कुदाना तथा बहाव जिस तरफका हो उसमे उल्टा नदियोमे तैराना चाहिये ॥११॥–

अष्टकट्वरतैलम् ।

पलाभ्यां पिप्पलीमूलनागरादष्टकट्वरं ॥ १२ ॥
तैलप्रस्थं समं दध्ना गृध्रस्यूरुग्रहापहं ।
अष्टकट्वरतैलेऽत्र तैलं सार्षपमिष्यते ॥ १३ ॥

छोटी पीपल, सोंठ प्रत्येक एक पल, सरसो का तैल १ प्रस्थ दही १ प्रस्थ तथा मठा (मक्खनसहित मथा) ८ प्रस्थ मिलाकर पकाया गया तैल मालिश करनेमे गृध्रसी और ऊरुस्तम्भको नष्ट करता है ॥१२॥१३॥

कुष्ठादितैलम् ।

कुष्ठश्रीवेष्टकोदीच्यं सरलं दारुकेशरम् ।
अजगन्धाश्वगन्धा च तैलं तैः सार्षपं पचेत् ॥ १४ ॥
सक्षौद्रं मात्रया तस्मादूरुस्तम्भार्दितः पिबेत् ।
सैन्धवाद्यं हितं तैलं वर्षाभ्वमृतगुग्गुलुः ॥ १५ ॥

कूठ, गन्धाबिरोजा, सुगन्धवाला, सरल धूप, देवदारु, नागकेशर, अजवाइन सरसोंके तैलसे चतुर्थांश तथा तैलसे चतुर्गुण जल मिलाकर पकाना चाहिये। सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर मात्राके अनुसार शहद मिलाकर इसे पीना चाहिये। अथवा सैन्धवादि तैल अथवा पुनर्नवायुक्त अमृता गुग्गुलुका सेवन करना हितकर है॥१४-१५

इत्यूरुस्तम्भाधिकारः समाप्तः ।

अथामवाताधिकारः ।

सामान्यतश्चिकित्सा ।

लङ्घनं स्वेदनं तिक्तं दीपनानि कटूनि च ।
विरेचनं स्नेहपानं वस्तयश्चाममारुते ॥ १ ॥
सैन्धवाद्येनानुवास्य क्षारवस्तिः प्रशस्यते ।
आमवाते पञ्चकोलसिद्धं पानान्नमिष्यते ॥ २ ॥
रूक्षः स्वेदो विधातव्यो वालुकापुटकैस्तथा ।

लघन, स्वेदन, तिक्त, कटु, अग्निदीपक, विरेचन, स्नेहपान और वस्ति आमवातमे हितकर होती है। सैन्धवादि तैलसे अनुवासन, क्षारवस्ति तथा पञ्चकोल सिद्ध अन्नपान तथा वालूकी पोटलीसे रूक्ष (गरम करके वेदनायुक्त अङ्गोमे, स्वेदन करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

शट्यादिपाचनम् ।

शटी शुण्ठ्यभया चोग्रा देवाह्वातिविषामृता ॥ ३ ॥
कषायमामवातस्य पाचनं रूक्षभोजनम् ।

कचूर, सोंठ, बडी हर्रका छिल्का, दूधिया बच, देवदारु, अतीस तथा गुर्च इनका क्वाथ आमवातका पाचन

करता है । तथा इस रोगमें रूखा ही भोजन करना चाहिये ॥ ३ ॥—

शट्यादिकल्कः।

शटीविश्वौषधीकल्कं वर्षाभूक्काथसंयुतम् ॥ ४ ॥
सप्तरात्रं पिबेज्जन्तुरामवातविपाचनम्।

कचूर तथा सोठका कल्क, पुनर्नवाके क्वाथके साथ ७ दिनतक आमवातके पाचनके लिये पीना चाहिये॥४॥

रास्नादशमूलक्काथः।

दशमूलामृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः ॥ ५ ॥
क्काथो रुवूकतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम्।

दशमूल, गुर्च, एरण्डकी छाल, रासन, सोठ तथा देवदारुका क्काथ एरण्डतैलके साथ पीनेसे कठिन आमवात नष्ट होता है ॥ ५ ॥—

एरण्डतैलप्रयोगः।

दशमूलीकषायेण पिबेद्वा नागराम्भसा।
कुक्षिबस्तिकटीशूले तैलमेरण्डसम्भवम् ॥ ६ ॥

दशमूलके क्काथ अथवा सोठके क्काथके साथ एरण्डतैल पीनेसे पेट मूत्राशय तथा कमरका दर्द शान्त होता है ॥ ६ ॥

रास्नापञ्चकम्।

रास्ना गुडूचीमेरण्डं देवदारुमहौषधम्।
पिबेत्सर्वाङ्गगे वाते सामे सन्ध्यस्थिमज्जगे ॥ ७ ॥

रासन, गुर्च, एरण्डकी छाल, देवदारु, तथा सोठका क्काथ सर्वाङ्गवात, सन्ध्यस्थि तथा मज्जागत वात तथा आमवातमें पीना चाहिये ॥ ७ ॥

रास्नासप्तकम्।

रास्नामृतारग्वधदेवदारुत्रिकण्टकैरण्डपुनर्नवानाम्।
क्काथं पिबेन्नागरचूर्णमिश्रंजङ्घोरुपृष्ठत्रिकपार्श्वशूली ॥८॥

रासन, गुर्च, अमलतासका गूदा, देवदारु, गोखुरू, एरण्डकी छाल तथा पुनर्नवाका काढा सोठका चूर्ण मिलाकर जघा, ऊरु, पृष्ठ, कमर व पसलियोके शूलमे पीना चाहिये ॥ ८ ॥

विविधा योगाः।

शुण्ठीगोक्षुरकक्काथः प्रातः प्रातर्निषेवितः।
सामवाते कटीशूले पाचनो रुक्प्रणाशनः ॥ ९ ॥
आमवाते कणायुक्तं दशमूलरसं पिबेत्।
खादेद्वाप्यभयाविश्वं गुडूचीं नागरेण वा ॥ १० ॥
एरण्डतैलयुक्तां हरीतकीं भक्षयेन्नरो विधिवत्।
आमानिलार्तियुक्तो गृध्रसीवृद्ध्यर्दितो नित्यम् ॥ ११ ॥
कर्षं नागरचूर्णस्य काञ्जिकेन पिबेत्सदा।
आमवातप्रशमनं कफवातहरं परम् ॥ १२ ॥
पञ्चकोलकचूर्णं च पिबेदुष्णेन वारिणा।
मन्दाग्निशूलगुल्मामकफारोचकनाशनम् ॥ १३ ॥

सोठ व गोखुरूका काढा प्रातःकाल सेवन करनेसे आमका पाचन व पीडाका नाश करता है, कटिशूलमे इसे विशेषतया पीना चाहिये । अथवा छोटी पीपलके चूर्णके साथ दशमूलका क्काथ अथवा बडी हर्रका छिल्का व सोठ, अथवा गुर्च, व सोठ अथवा एरण्ड तैलके साथ हर्रके छिल्केके चूर्णको आमवात, गृध्रसी वृद्धि तथा अर्दितसे पीडित पुरुष नित्य खावे । सोठका चूर्ण १ तोला काञ्जीके साथ सदा पीनेसे आमवात तथा कफवात नष्ट होता है । इसी प्रकार पञ्चकोलका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे मन्दाग्नि शूल, गुल्म, आम, कफ, तथा अरुचि नष्ट होती है ॥ ९–१३ ॥

अमृतादिचूर्णम्।

अमृतानागरगोक्षुरमुण्डतिकावरुणकैः कृतं चूर्णम्।
मस्त्वारनालपीतमामानिलनाशनं ख्यातम् ॥ १४ ॥

गुर्च, सोठ, गोखुरू, मुण्डी, तथा वरुणकी छालका चूर्ण दहीके तोड अथवा काञ्जीके साथ पीनेसे आमवात नष्ट होता है ॥ १४ ॥

वैश्वानरचूर्णम्।

माणिमन्थस्य भागौ द्वौ यमान्यास्तद्वदेव तु।
भागास्त्रयोऽजमोदाया नागराङ्गागपञ्चकम् ॥ १५ ॥
दश द्वौ च हरीतक्याः श्लक्ष्णचूर्णीकृता शुभा.।
मस्त्वारनालतक्रेण सर्पिषोष्णोदकेन वा ॥ १६ ॥
पीतं जयत्यामवातं गुल्मं हृद्बस्तिजान्गदान्।
प्लीहानं हन्ति शूलादीनानाहं गुदजानि च ॥ १७ ॥
विबन्धं जाठरान्रोगांस्तथा वै हस्तपादजान्।
वातानुलोमनमिदं चूर्णं वैश्वानरं स्मृतम् ॥ १८ ॥

सैंधानमक २ भाग, अजवाइन २ भाग, अजमोद ३ भाग, सोठ ५ भाग, बडी हर्रका छिल्का १२ भाग सबका महीन चूर्ण कर दहीके तोड, काञ्जी, मट्ठा, घी, अथवा गरम जलके साथ पीनेसे आमवात, गुल्म, हृदय तथा बस्तिके रोग, प्लीहा, शूल, अफारा, ववा-

सीर, मलकी बद्धता, उदर तथा हाथ, पैरोंके रोग नष्ट होते हैं। इसका नाम वैश्वानर चूर्ण, है । यह वायुका अनुलोमन करता है ॥ १५-१८ ॥

अलम्बुषादिचूर्णम् ।

अलम्बुषा गोक्षुरकं गुडूचीं वृद्धदारकम् ।
पिप्पलीं त्रिवृत्ता मुस्तं वरुणं सपुनर्नवम् ॥ १९ ॥
त्रिफला नागरं चैव सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत ।
मस्त्वारनालतक्रेण पयोमासरसेन वा ॥
आमवातं निहन्त्याशु श्वयथुं सन्धिसंस्थितम् ॥ २० ॥

गोरखमुण्डी, गोखुरू, गुर्च, विधारा, छोटी पीपल, निसोथ, नागरमोथा, वरुणाकी छाल, पुनर्नवा, त्रिफला, सोंठ इनका महीन चूर्णकर दहीके तोड, काञ्जी, मट्ठा, दूध अथवा मासरसके साथ सेवन करनेसे यह अलम्बुषादिचूर्ण आमवात तथा सन्धिगत सूजनको नष्ट करता है ॥ १९ ॥ २० ॥

शतपुष्पादिचूर्णम् ।

शतपुष्पा विडङ्गञ्च सैन्धवं मरिचं समम् ।
चूर्णमुष्णाम्बुना पीतमग्निसन्दीपनं परम् ॥ २१ ॥

सौंफ, वायविडङ्ग, सेंधानमक, काली मिर्च समान भाग ले चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे जठराग्नि दीप्त होती है ॥ २१ ॥

भागोत्तरचूर्णम् ।

हिंगु चव्यं बिडं शुण्ठी कृष्णाजाजीसपौष्करम् ।
भागोत्तरमिदं चूर्णं पीतं वातामजिद्भवेत् ॥ २२ ॥

भुनी हींग, चव्य, विडनमक, सोंठ, कालाजीरा, तथा पोहकरमूल उत्तरोत्तर भागवृद्ध (अर्थात् हींग १ भाग, चव्य २ भाग, विडनमक ३ भाग आदि) लेकर चूर्ण करना चाहिये। यह आमवातको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

योगराजगुग्गुलुः ।

चित्रकं पिप्पलीमूलं यमानीं कारवीं तथा ।
विडङ्गान्यजमोदाञ्च जीरकं सुरदारु च ॥ २३ ॥
चव्यैलासैन्धवं कुष्ठं रास्नागोक्षुरधान्यकम् ।
त्रिफलामुस्तकं व्योषं त्वगुशीरं यवाग्रजम् ॥ २४ ॥
तालीसपत्रं पत्रं च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम् ॥ २५ ॥
समर्थ सर्पिषा गाढं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
ततो मात्रां प्रयुञ्जीत यथेष्टाहारवानपि ॥ २६ ॥
योगराज इति ख्यातो योगोऽयममृतोपमः ।
आमवाताढ्यवातादीन्क्रिमिदुष्टव्रणानपि ॥ २७ ॥
प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् ।
अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ।
वातरोगाञ्जयत्येष सन्धिमज्जगतानपि ॥ २८ ॥

चीतकी, जड, पिपरामूल, अजवाइन, काला जीरा, वायविडंग, अजमोद, सफेद जीरा, देवदारु, चव्य, छोटी इलायची, सेंधानमक, कूठ, रासन, गोखुरू, धनिया त्रिफला, नागरमोथा, त्रिकटु, दालचीनी, खश, यवक्षार, तालीशपत्र, तथा तेजपात सबका महीन चूर्ण करना चाहिये। जितना यह हो उतना ही गुग्गुलु छोड मिलाकर घीसे गोली बना लेनी चाहिये । इसकी मात्रा सेवन करते हुए यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये। यह योगराजनामक योग अमृतके तुल्य गुण करता है। यह आमवात, ऊरुस्तम्भ, क्रिमिरोग, दुष्ट व्रण, प्लीहा, गुल्म, उदर, आनाह, अर्शको नष्ट करता, अग्निको दीप्त, तेज, तथा बलकी वृद्धि तथा सन्धि व मज्जागत वातरोगोंको भी नष्ट करता है ॥ २३-२८ ॥

सिंहनादगुग्गुलुः ।

पलत्रयं कषायस्य त्रिफलायाः सुचूर्णितम् ।
सौगन्धिकपलं चैकं कौशिकस्य पलं तथा २९ ॥
कुडवं चित्रतैलस्य सर्वमादाय यत्नतः ।
पाचयेत्पाकविद्वैद्य पात्रे लौहमये दृढे ॥ ३० ॥
हन्ति वातं तथा पित्तं श्लेष्माणं खञ्जपङ्गुताम् ।
श्वासं सुदुर्जयं हन्ति कासं पञ्चविधं तथा ॥ ३१ ॥
कुष्ठानि वातरक्तं च गुल्मशूलोदराणि च ।
आमवातं जयेदेतदपि वैद्यविवर्जितम् ॥ ३२ ॥
एतदभ्यासयोगेन जरापलितनाशनम् ।
सर्पिस्तैलरसोपेतमश्नीयाच्छालिषष्टिकम् ॥ ३३ ॥
सिंहनाद इति ख्यातो रोगवारणदर्पहा ।
वह्निवृद्धिकरः पुंसां भाषितो दण्डपाणिना ॥ ३४ ॥

त्रिफलाका क्वाथ १२ तोला, शुद्ध गन्धक ४ तोला, गुग्गुलु ४ तोला, एरण्डतैल १६ तोला सबको लोहेकी कढाईमें पकाना चाहिये। यह गुग्गुलु वातपित्तकफके

---

१ कुछ पुस्तकोंमें इसके गुणोंमें इतना और बढाया गया है " प्लीहगुल्मोदरानाहदुर्नामानि विनाशयेत् । अग्निं च कुरुते दीप्तं तेजोवृद्धिं बलं तथा ॥ वातरोगाञ्जयत्येष सन्धिमज्जागतानपि ॥ "

रोग, यथा खञ्ज, पंगुता, कठिन श्वास, पाचों प्रकारके कास, कुष्ठ, वातरक्त, गुल्म, शूल, उदररोग, तथा आमवातको नष्ट करता है तथा सदैव सेवन करनेसे रसायन होता, वृद्धावस्था व बालोंकी सफेदीको दूर करता है। इसमें घी, तैल, मांसरस युक्त शालि या साठीके चावलोंका पथ्य देना चाहिये। यह सिंहनाद-नामक गुग्गुलु रोगरूपी हाथीके दर्पको चूर्ण करता तथा अग्निवृद्धि करता है। इसे दण्डपाणिने प्रकाशित किया है * ॥ २९-३४ ॥

भागोत्तरमलम्बुषादिचूर्णम्।

अलम्बुषागोक्षुरकत्रिफलानागरामृता ।
यथोत्तर भागवृद्ध्या श्यामाचूर्ण च तत्समम् ॥ ३५ ॥
पिबन्मस्तुसुरातक्रकाञ्जिकोष्णोदकेन वा ।
पीतं जयत्यामवातं सशोथं वातशोणितम् ॥
त्रिकजानूरुसन्धिस्थं ज्वरारोचकनाशनम् ॥ ३६ ॥

गोरखमुण्डी १ भाग, गोखुरू २ भाग, त्रिफला मिलित ३ भाग, सोंठ ४ भाग, गुर्च ५ भाग, निसोथ १५ भाग सबका महीन चूर्ण कर दहीके तोड, शराब, मट्ठा, काञ्जी या गरमजलके साथ पीना चाहिये। यह आमवात, सूजन, वातरक्त, कमर, घुटने तथा जंघाओंके शूल, शोथ व ज्वर तथा अरुचिको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥ ३६ ॥

त्रिफलापथ्यादिचूर्णम्।

पथ्याक्षधात्रीत्रिफलाभागावृद्धाश्च क्रमः ।
पथ्याविश्वयमानीभिस्तुल्याभिश्चूर्णितं पिबेत ॥ ३७ ॥
तक्रेणोष्णोदकेनाथ अथवा काञ्जिकेन च ।
आमवातं निहन्त्याशु शोथं मन्दाग्नितामपि ॥ ३८ ॥

हर्र १ भाग, बहेडेका छिल्का २ भाग, आंवला ३ भाग, सबका महीन चूर्ण कर अथवा हर्र, अजवाइन व सोंठ समान भाग ले चूर्ण कर मट्ठा, गरम जल अथवा काञ्जीके साथ सेवन करनेसे आमवात, शोथ तथा मन्दाग्निको नष्ट करता है * ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

---

* बृहत्सिंहनादगुग्गुलुः। यहांपर एक बृहत्सिंहनाद-गुग्गुलुका भी पाठ मिलता है। वह इस प्रकार है— "पिण्डिता गुग्गुलोर्मात्रा कटुतैलपलाष्टके । प्रत्येकं त्रिफलाप्रस्थौ सार्द्धद्रोणे जले पचेत् ॥ पादशेषे च पूतं च पुनरग्नावधिश्रयेत्। त्रिकटु त्रिफला मुस्तं विडङ्गामरदारु च ॥ गुडूच्यग्निस्त्रिवृद्दन्तीचवीशूरणमानकम् । पारदं गन्धकं चैव प्रत्येकं शुक्तिसम्मितम् ॥ सहस्रं कानकफलं सिद्धं सच्चूर्ण्य निक्षिपेत् । ततो माषद्वयं जग्ध्वा पिबेत्तप्तजलादिकम् ॥" गुग्गुलु ३२ तोला, कडुआ तैल ३२ तोलामें मिलाकर आंवला १२८ तोला, हर्र १२८ तोला, बहेडा, १२८ तोला सब एकमें मिलाकर जल ३८ सेर ३२ तो० मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर फिर अग्निमें पकाना चाहिये। जब गाढा हो जावे तब त्रिकटु, त्रिफला, नागरमोथा, वायविडंग, देवदारु, गुर्च, चीतकी जड, निसोथ, दन्तीकी छाल, चव्य, शूरण, मानकन्द प्रत्येक २ तोलाका चूर्ण और पारा २ तो०, गन्धक २ तो० की कज्जली बनाकर छोडना चाहिये। तथा तैयार हो जानेपर १००० शुद्ध जमालगोटेके बीज मिला देने चाहिये। इसकी मात्रा २ माषा खाकर ऊपरसे गरम जल पीना चाहिये। इससे विरेचन होगा। इसकी मात्रा वर्तमान समयमें ४ रत्तीसे १ माषाकी होगी ॥

* बृहत्सैन्धवाद्यतैलम्। यहां सैन्धवाद्यतैल कुछ पुस्तकोंमें और मिलता है। उसका पाठ यह है—" सैन्धवं त्रिफला रास्ना पिप्पली गजपिप्पली। सर्जिका मरिचं कुष्ठं शुण्ठी सौवर्चलं विडम् ॥ यमान्यौ पुष्कराजाजी मधुकं शतपुष्पिका । पलार्द्धिकैः पचेदेतैः प्रस्थमेरण्डतैलतः॥ प्रस्थाम्बु शतपुष्पायाः प्रत्येकं मस्तुकाञ्जिके । दद्याद्द्विगुणिते पानवस्त्यभ्यङ्गप्रयोजितम् ॥ आमवातहरं श्रेष्ठं सर्ववातघ्नमग्निदम् । कटीजानूरुसन्धिस्थे पार्श्वहृद्वंक्षणाश्रये ॥ शस्तं वातान्त्रवृद्धौ च सैन्धवाद्यमिदं महत् ॥" सेंधानमक, त्रिफला, रासन, छोटी पीपल, गजपीपल, सज्जीखार, काली मिर्च, कूठ, सोंठ, कालानमक, विडनमक, अजवाइन, अजमोद, पोहकरमूल, जीरा सफेद, मौरेठी, सौंफ प्रत्येक २ तो० का कल्क तथा मूर्छित एरण्डतैल १ सेर ९ छ० ३ तो०, सौंफका क्वाथ १ सेर ९ छ० ३ तो०, दहीका तोड ३ सेर १६ तो०, काञ्जी ३ सेर १६ तो० मिलाकर तैल पाक कर लेना चाहिये। यह तैल पीने अथवा वस्ति या मालिशद्वारा प्रयोग करनेसे आमवातको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है। तथा समस्त वातरोगोंको नष्ट करता, अग्नि दीप्त करता तथा कमर, जानु, ऊरु, सन्धियों तथा पार्श्व, हृदय और वंक्षणाश्रित वायुको नष्ट करता तथा वातवृद्धि व अन्त्रवृद्धिको शान्त करता है।—

अजमोदाद्यवटकः ।

अजमोदामरिचपिप्पलीविडङ्गसुरदारुचित्रकशताह्वा ।
सैन्धवपिप्पलिमूल भागा नवकस्य पलिकाः स्यु ॥ ३९॥
शुण्ठी दशपलिका स्यात्पलानि तावन्ति वृद्धदारस्य ।
पथ्यापञ्चपलानि सर्वाण्येकत्र कारयेच्चूर्णम् ॥ ४० ॥
समगुडवटकं भजतश्चूर्णं वाप्युष्णवारिणा पिबत ।
नश्यन्त्यामानिलजाः सर्वे रोगाः सुकष्टास्तु ॥ ४१ ॥
विश्वाचीप्रतितूनीतूनीहृद्रोगाश्च गृध्रसी चोग्रा ।
कटिबस्तिगुदस्फुटनं स्फुटनं चैवास्थिजङ्घयोस्तीव्रम् ४२
श्वयथुस्तथाङ्गसन्धिषु ये चान्येऽप्यामवातसम्भूताः ।
सर्वे प्रयान्ति नाशं तम इव सूर्यांशुविध्वस्तम् ॥ ४३ ॥

अजमोद, काली मिर्च, छोटी पीपल, वायविडङ्ग, देवदारु, चीनकी जड, सौंफ, सेंधानमक, पिपरामूल, प्रत्येक एक एक पल, सोंठ १० पल, विधारा १० पल तथा हरड ५ पल सबका एकमें चूर्ण करना चाहिये। फिर समान गुड मिला गोली बना अथवा चूर्ण ही गरम जलके साथ खानेसे आमवातके समस्त रोग, तूनी, प्रतितूनी, विश्वाची, हृद्रोग, गृध्रसी, कमर, वस्ति व गुदाकी पीडा तथा हड्डियों व पिंडलियोंकी पीडा, शरीरकी सन्धियोंका शोथ तथा अन्य समस्त आम या वातसे उत्पन्न होनेवाले रोग सूर्यकी किरणोंसे नष्ट हुए अन्धकारके समान अदृश्य हो जाते हैं ॥ ३९-४३ ॥

नागरघृतम् ।

नागरक्वाथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
चतुर्गुणेन तेनाथ केवलेनोदकेन वा ॥ ४४ ॥
वातश्लेष्मप्रशमनमग्निसंदीपनं परम् ।
नागरं घृतमित्युक्तं कट्यामशूलनाशनम् ॥ ४५ ॥

चतुर्गुण सोंठका क्वाथ तथा चतुर्थांश उसीका कल्क अथवा केवल कल्क और चतुर्गुण जल मिलाकर घी १ प्रस्थ पकाना चाहिये। यह घी वात, कफको शान्त, अग्निको दीप्त तथा कमर आदिमें होनेवाले शूलको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

अमृताघृतम् ।

अमृतायाः कषायेण कल्केन च महौषधात् ।
मृद्वग्निना घृतप्रस्थं वातरक्तहरं परम् ॥ ४६ ॥
आमवाताढ्यवातादीन् क्रिमिदुष्टव्रणानपि ।
अर्शांसि गुल्मशूलं च नाशयत्याशु योजितम् ॥ ४७ ॥

गुर्चके काढे और सोंठके कल्कको छोडकर मन्द आंचसे पकाया गया १ प्रस्थ घी वातरक्त, आमवात, ऊरुस्तम्भ, क्रिमिरोग, दुष्टव्रण, अर्श तथा गुल्म व शूलको नष्ट करता है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

हिंग्वादिघृतम् ।

हिङ्गु त्रिकटुकं चव्यं माणिमन्थं तथैव च ।
कल्कान्कृत्वा च पलिकान्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४८ ॥
आरनालाढकं दत्त्वा तत्सर्पिर्जठरापहम् ।
शूलं विबन्धमानाहमामवातं कटीग्रहम् ।
नाशयेद्ग्रहणीदोषं मन्दाग्नेर्दीपनं परम् ॥ ४९ ॥

हींग, सोंठ, मिर्च, पीपल, चव्य, सेंधानमक, प्रत्येक ४ तोलाका कल्क, घी १ प्रस्थ (१ सेर ९ छ० ३ तो०) तथा काञ्जी ६ सेर ३२ तोला मिलाकर पकाया गया घृत सेवन करनेसे उदररोग, शूल, विबन्ध, अफारा, आमवात, कमरका दर्द तथा ग्रहणीरोग नष्ट होते हैं और अग्नि दीप्त होता है ॥ ४८ ॥ ४९ ॥

शुण्ठीघृतानि ।

पुष्ट्यर्थं पयसा साध्यं दध्ना विण्मूत्रसंग्रहे ।
दीपनार्थं मतिमता मस्तुना च प्रकीर्तितम् ॥ ५० ॥
सर्पिर्नागरकल्केन सौवीरकचतुर्गुणम् ।
सिद्धमग्निकरं श्रेष्ठमामवातहरं परम् ॥ ५१ ॥

पुष्टिके लिये दूधके साथ मल मूत्रकी रुकावटके लिये दहीके साथ तथा अग्निदीपनके लिये दहीके तोडके साथ सोंठका कल्क छोडकर घी सिद्ध करना चाहिये । इसी प्रकार सोंठका कल्क और चतुर्गुण सौवीरक (काञ्जी-भेद) मिलाकर पकाया गया घृत अग्निको दीप्त करता तथा आमवातको नष्ट करता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥

रसोनपिण्डः ।

रसोनस्य पलशतं तिलस्य कुडवं तथा ।
हिंगु त्रिकटुकं क्षारौ पञ्चैव लवणानि च ॥ ५२ ॥

—एरण्डतैलमूर्च्छाविधिः—" त्रिकसा मुस्तकं धान्य त्रिफला वैजयन्तिका । नाकुली वनखर्जूर वटशुङ्गा निशायुगम् ॥ नालिका भेषजं देयं केतकी च समं समम् । प्रस्थे देयं शाणमितं मूर्च्छने दधिकाञ्जिकम् ॥ " १ प्रस्थ द्रवद्वैगुण्यात् २ प्रस्थ एरण्डतैलमें मञ्जीठ, मोथा, धनिया, त्रिफला, अरणी, रासन, खजूर, बरगदके अंकुर, हल्दी, दारुहल्दी, नाडी, सोंठ, केवडाके फूल प्रत्येक ३ माशे छोडकर दही व काञ्जी प्रत्येक १प्रस्थ तथा जल ४ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये ॥

शतपुष्पा तथा कुष्ठं पिप्पलीमूलचित्रकौ ।
अजमोदा यमानी च धान्यकं चापि बुद्धिमान् ॥ ५३॥
प्रत्येकं तु पलं चैषां सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ।
घृतभाण्डे दृढे चैतत्स्थापयेद्दिनषोडश ॥ ५४ ॥
प्रक्षिप्य तैलमानी च प्रस्थार्धं काञ्जिकस्य च ॥
खादेत्कर्षप्रमाणं तु तोयं मद्यं पिबेदनु ॥५५॥
आमवाते तथा वाते सर्वाङ्गैकाङ्गसंश्रिते ।
अपस्मारेऽनले मन्दे कासे श्वासे गरेषु च ।
सोन्मादवातभग्ने च शूले जन्तुषु शस्यते ॥ ५६ ॥

शुद्ध लहसुन ५ सेर, तिल १६ तोला, भुनी हींग, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, यवाखार, सज्जीखार पाच, नमक, सौंफ, कूठ, पिपरामूल, चीतकी जड, अजमोदा अजवाइन तथा धनियां प्रत्येक ४ तोला सबका महीन चूर्ण कर मजबूत घीके वर्तनमें १६ दिनतक तिलतैल ६४ तोला, काञ्जी ४ तोला मिलाकर रखना चाहिये । फिर १तोलाकी मात्रासे खाना चाहिये, ऊपरसे जल या मद्य पीना चाहिये । यह आमवात, सर्वाङ्ग तथा एकाङ्ग गत वात, अपस्मार, मन्दाग्नि, कास, श्वास, कृत्रिमविष, उन्माद, वातभग्न, शूल तथा क्रिमियोंको नष्ट करता है ॥ ५२–५६ ॥

प्रसारणीरसोनपिंडः ।

प्रसारण्याढकक्काथे प्रस्थो गुडरसोनतः ।
पक्कः पञ्चोषणरजःपादः स्यादामवातहा ॥ ५७ ॥

गन्धप्रसारणीका क्वाथ १ आढक, गुड व लहसुन मिलाकर ६४ तोला तथा पञ्चकोलका चूर्ण १६ तोला मिलाकर पकाया गया लेह आमवातको नष्ट करता है ॥ ५७ ॥

रसोनसुरा ।

वल्कलाया सुरायास्तु सुपक्वाया शतं घटे ।
ततोऽर्धेन रसोनं तु संशुद्धं कुट्टितं क्षिपेत् ॥ ५८ ॥
पिप्पलीपिप्पलीमूलमजाजीकुष्ठचित्रकम् ।
नागरं मरिचं चव्यं चूर्णितं चाक्षसम्मितम् ॥ ५९ ॥
सप्ताहात्परतः पेया वातरोगामनाशिनी ।
क्रिमिकुष्ठक्षयानाहगुल्मार्शःप्लीहमेहनुत् ॥
अग्निसन्दीपनी चैव पाण्डुरोगविनाशिनी ॥ ६० ॥

एक घडेमें ५ सेर वल्कली नामक शराब २॥ सेर लहसुन कुटा हुआ तथा छोटी पीपल, पिपरामूल, सफेद जीरा, कूट, चीतकी जड, सोंठ, मिर्च व चव्य प्रत्येक एक एक तोला छोडकर ७ दिन रखनेके अनन्तर पीना चाहिये । यह वातरोग, आमवात, क्रिमि, कुष्ठ, क्षय, अफारा, गुल्म, अर्श, प्लीहा तथा प्रमेहको नष्ट करती, अग्निको दीप्त करती तथा पाण्डुरोगको विनष्ट करती है ॥ ५८–६० ॥

"१ वहुलया:" इति वा पाठः ।

शिण्डाकी ।

सिद्धार्थकखलीप्रस्थं सुधौतं निस्तुषं जले ।
मण्डप्रस्थं विनिक्षिप्य स्थापयेद्दिवसत्रयम् ॥ ६१ ॥
धान्यराशौ ततो दद्यात्सञ्चूर्ण्य पलिकानि च ।
अलम्बुषा गोक्षुरकं शतपुष्पापुनर्नवे ॥ ६२ ॥
प्रसारणी वरुणत्वक् शुण्ठी मदनमेव च ।
सम्यक्पाकं तु विज्ञाय सिद्धा तण्डुलमिश्रिता ॥ ६३ ॥
मृष्टा सर्षपतैलेन हिंगुसैन्धवसंयुता ।
भक्षिता लवणोपेता जयेदामं महारुजम् ॥ ६४ ॥
एकजं द्वन्द्वजं साध्यं सान्निपातिकमेव च ।
कटयूरुवातमानाहजानुजं त्रिकमागतम् ।
उदावर्तहरी पेया बलवर्णाग्निकारिणी ॥ ६५ ॥

सफेद सरसोंकी खली ६४ तोला पानीमें धो भुसी अलग कर पानीसहित खलीमें मण्ड १२८ तोला छोडकर ३ दिनतक धान्यराशिमें रखना चाहिये । फिर निकालकर मुण्डी, गोखुरू, सौंफ, पुनर्नवा, प्रसारणी, वरुणाकी छाल, सोंठ तथा मैनफल, प्रत्येकका ४ तोला चूर्ण मिलाना चाहिये । फिर पके भातके साथ सरसोंका तैल, हींग, सेंधानमक मिलाकर खानेसे आमवात, एकज, द्वन्द्वज तथा सन्निपातज रोग, कमरका दर्द, जंघाओंका दर्द, अफारा, घुटनोंका दर्द, त्रिकशूल तथा उदावर्त रोग नष्ट होता और बल व वर्ण उत्तम होता है ॥ ६१–६५ ॥

सिध्मला ।

त्वगादिहीना संशुष्का मत्स्यमा सकुलादयः ।
श्लक्ष्णचूर्णीकृतं तेषां शीते पलशतत्रयम् ॥ ६६ ॥
शतेन कटुतैलस्य व्योषरामठधान्यकैः ।
क्रिमिघ्नदीप्यकनिशाचविकाग्रन्थिकार्द्रकैः ।
जीरकद्वयवृश्चीरसुरसार्जकशिग्रुकैः ॥ ६७ ॥
दशमूलात्मगुप्ताभ्यां मार्कवैर्लवणैस्त्रिभिः ।
चूर्णितैः पलिकैः सार्धमारनालपरिप्लुतैः ॥ ६८ ॥
विन्यसेत्स्नेहपात्रे च धान्यराशौ पुनर्न्यसेत् ।
सप्तरात्रात्समुद्धृत्य पानभक्षणभोजनैः ॥ ६९ ॥

सिध्मलेयं प्रयोक्तव्या सामे वाते विशेषत ।
भग्नरुग्णाभ्युपहता. कम्पिन पीठसर्पिणः ॥ ७० ॥
गृध्रसीमाग्निसाद च शूलगुल्मोदराणि च।
वलीपलितखालित्यं हत्वा स्युरमलेन्द्रिया' ॥ ७१ ॥

शीत कालमे त्वगादि रहित नवीन सखी मछली१२०० तोला चूर्ण की हुई, कडुआ तैल ४०० तोला, सोंठ, मिर्च पीपल, धनिया, भुनी हींग, वायविडंग, अजवाइन, हल्दी, चव्य, पिपरामूल, अदरख, सफेद जीरा, स्याह जीरा पुनर्नवा, तुलसी, देवना, सहिजन, दशमूल, कौंचके बीज, भागरा तथा तीनों नमक प्रत्येक ४ तोला मिला काञ्जीसे भर देना फिर स्नेह पात्रमें भरकर अन्नके ढेरके अन्दर सात दिनतक रखना चाहिये। फिर निकाल भोजन तथा भक्षण आदिमे अथवा केवल इसका प्रयोग करना चाहिये। यह सिध्मला—आमवातमें विशेष लाभ करती है। तथा टूटे हुए, दर्दयुक्त, चोटवालोंको कम्पनेवालों, पीलेपर चलनेवालोंको तथा गृध्रसी, अग्निमान्द्य, शूल, गुल्म और उदररोगवालेको लाभ करती है। इसके सेवनसे पुरुष झुर्रियां, बालोंकी सफेदी और इन्द्रलुप्त आदिसे रहित होकर शुद्धेन्द्रिय होते हैं॥ ६६–७१ ॥

आमवाते वर्ज्यानि।

दधिमत्स्यगुडक्षीरपोतकीमाषपिष्टकम्।
वर्जयेदामवातार्तो गुर्वभिष्यन्दकारि च ॥ ७२ ॥

दही, मछली, गुड, दूध, पोय, उडदकी पिट्ठी तथा भारी और अभिष्यन्दी पदार्थ आमवातवालेको त्याग देना चाहिये ॥ ७२ ॥

इत्यामवाताधिकारः समाप्तः।

अथ शूलाधिकारः।

शूले वमनलंघनाद्युपायाः।

वमन लंघनं स्वेदः पाचन फलवर्तय. ।
क्षारचूर्णानि गुडिका शस्यन्ते शूलशान्तये ॥ १ ॥
पुंस शूलाभिपन्नस्य स्वेद एव सुखावह ।
पायसै कृशरै पिष्टै स्निग्धैर्वापि सितोत्कैरे ॥ २ ॥

वमन, लंघन, स्वेदन, पाचन, फलवर्ति, क्षार, चूर्ण तथा क्षारादि युक्त गोलियां शूलको शान्त करती हैं। विशेषतः शूलवालेको स्वेदन ही सुखदायक होता है। वह खीर, खिचडी, स्निग्ध पिट्ठी अथवा मिश्रीयुक्त हलवेसे करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

वातशूलचिकित्सा।

वातात्मक हन्त्यचिरेण शूल
स्नेहेन युक्तस्तु कुलत्थयूष ।
ससैन्धवो व्योषयुतः सलाव
सहिंगुसौवर्चलदाडिमाढ्यः ॥ ३ ॥

कुलथी व बटेरका मास दोनों मिलाकर (१ पल) चार तोला, जल ६४ तोला मिलाकर पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार मलकर कपडेसे छान ले फिर इस यूपको हिंग, व घीमें तैल, सेंधानमक, त्रिकटु, काला नमक, अनारका रस डालकर पीनेसे वातजन्य शूल शान्त होता है। यूषविधि यही शिवदासजीने लिखी है ॥ ३ ॥

बलादिक्वाथः।

बलापुनर्नवरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरै ।
सहिंगु लवण पीतं सद्यो वातरुजापहम् ॥ ४ ॥

खरेटी, पुनर्नवाकी जड, एरण्डकी छाल, छोटी कटेरी, बडी कटेरी तथा गोखुरुका क्वाथ, भुनी हींग व सौवर्चल नमक मिलाकर पीना चाहिये इससे तत्काल ही वातजशूल शान्त होता है ॥ ४ ॥

हिंग्वादिचूर्णम्।

शूली विबन्धकोष्ठोऽद्भिरुष्णाभिश्चूर्णिता. पिबेत्।
हिंगुप्रतिविषाव्योषवचासौवर्चलाभया. ॥ ५ ॥

भुनी हींग, अतीस, त्रिकटु, वच, कालानमक बडी हर्रका छिल्का चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे शूल तथा विबन्ध नष्ट होता है ॥ ५ ॥

तुम्बुर्वादिचूर्णम्।

तुम्बुरूण्यभयाहिंगुपौष्कर लवणत्रयम्।
पिबेद्यवाम्बुना वातशूलगुल्मापतन्त्रकी ॥ ६ ॥

तुम्बरू, बडी हर्रका छिल्का, भुनी हींग, पोहकरमूल, सेंधानमक, कालानमक तथा समुद्र नमकका चूर्ण, यवक्षार जल अथवा यवके क्वाथके साथ पीना चाहिये॥६॥

श्यामादिकल्कः ।

श्यामा त्रिवृत् बिडं शिग्रुफलानि पथ्या
विडङ्गकम्पिल्लकमश्वमूत्री ।
कल्क समं मद्ययुतं च पीत्वा
शूलं निहन्यादनिलात्मकं तु ॥ ७ ॥

निशोथ, विडलवण, सहिजनके बीज, हर्र, कबीला, तथा श्वेतकी (सातोमेद) सब समान भाग ले कल्क कर शराबके साथ पीनेसे वातात्मक शूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

यमान्यादिचूर्णम् ।

यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभया ।
सुरामण्डेन पातव्या वातशूलनिषूदना ॥ ८ ॥

अजवाइन, भुनी हींग, सेंधानमक, यवक्षार, कालानमक तथा बड़ी हर्रका छिल्का सब समान भाग ले चूर्ण कर शराबके स्वच्छभागके साथ पीनेसे वातजशूल नष्ट होता है ॥ ८ ॥

विविधा योगाः ।

विश्वमेरण्डजं मूलं क्वाथयित्वा जलं पिबेत् ।
हिङ्गुसौवर्चलोपेतं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ९ ॥
हिङ्गुपुष्करमूलाभ्यां हिङ्गुसौवर्चलेन वा ।
विश्वैरण्डयवक्वाथः सद्यः शूलनिवारणः ।
तद्वद्युवयवक्वाथो हिङ्गुसौवर्चलान्वितः ॥ १० ॥

सोंठ, व एरण्डकी जड़की छालका क्वाथ बनाकर भुनी हींग व कालानमक मिलाकर पीनेसे तत्काल शूल शान्त होता है । इसी प्रकार सोंठ, एरण्डकी छाल व व यवका क्वाथ, भुनी हींग व पोहकरमूलके चूर्णके साथ अथवा भुनी हींग व कालेनमकके साथ पीनेसे शूल नष्ट होता है । इसी प्रकार एरण्डकी छाल व यवका क्वाथ, भुनी हींग व काले नमकके साथ पीनेसे शूल नष्ट होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

द्वितीयं हिग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्ग्वम्लकृष्णालवणं यमानी-
क्षाराभयासैन्धवतुल्यभागम् ।
चूर्णं पिबेद्वारुणमण्डमिश्रं
शूले प्रवृद्धेऽनिलजे शिवाय ॥ ११ ॥

भुनी हींग, अम्लवेत, छोटी पीपल, सेंधानमक अजवाइन, यवक्षार, बड़ी हर्र तथा कालानमक समान भाग ले चूर्ण कर ताड़ीके स्वच्छ भागके साथ पीनेसे वातजन्य शूलकी शान्ति होती है*॥ ११ ॥

सौवर्चलादिगुटिका ।

सौवर्चलाम्लिकाजाजीमरिचैर्द्विगुणोत्तरैः ।
मातुलुङ्गरसैः पिष्ट्वा गुटिकानिलशूलनुत् ॥ १२ ॥

कालानमक १ भाग, इमली २ भाग, जीरा सफेद ४ भाग, काली मिर्च ८ भाग ले चूर्णकर बिजौरे निम्बूके रसमें गोली बना लेनी चाहिये यह वातशूलको नष्ट करती है ॥ १२ ॥

हिंग्वादिगुटिका ।

हिङ्ग्वम्लवेतसव्योषयमानीलवणत्रिकैः ।
बीजपूररसोपेतैर्गुडिका वातशूलनुत् ॥ १३ ॥

भुनी हींग, अम्लवेत, सोंठ, मिर्च, छोटी पीपल, अजवाइन, तीनों नमक, समान भाग ले चूर्ण कर

---

१ श्यामाऽत्र वृद्धदारकः इति शिवदासः ॥ ७ ॥

* नारिकेलखण्डः । " सुपक्वनारिकेलस्य शस्य पलचतुष्टयम् । पिष्ट्वा घृतपले भृष्ट्वा क्षिपेत्खण्डचतुष्पलम् ॥ नारिकेलस्य च प्रस्थे किञ्चिच्छस्यवतो जले । धान्यार्कं पिप्पलीं मुस्तं द्विजीरं वंशलोचनाम् ॥ शाणमानं चतुर्जातं चूर्णं शीते क्षिपेद्बुधः । हन्त्यम्लपित्तमरुचिं रक्तपित्तं क्षयं वमिम् ॥ शूलं च पित्तशूलं च पृष्ठरुग्घ्नं रसायनम् । विशेषाद्बलकृद्वृष्यं पुष्टिमोजस्करं स्मृतम् ॥" अच्छे पके हुए ताजे नारिकेल (नारियल) की गिरी १६ तोला को प्रथम खूब महीन कतर या त्रिपाकससे कसकर ४ तोला गायके घीमें भूनना चाहिये । जब सुखी आ जावे तथा सुगन्ध उठने लगे तब उसमें मिश्री १६ तोला तथा नारियलका जल १ सेर, ९ छ० ३ तो० डालकर पकाना चाहिये । गाढ़ा हो जानेपर उतार लेना चाहिये तथा ठढा हो जानेपर धनिया छोटी पीपल, नागरमोथा, दोनों जीरा, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, इलायची, तथा नागकेशर प्रत्येक ३ माशेका चूर्ण मिला देना चाहिये । यह अम्लपित्त, अरुचि, रक्तपित्त, क्षय, वमन, शूल, पृष्ठशूल तथा पित्तशूलको नष्ट करता तथा रसायन है (इसकी मात्रा ३ माशेसे १ तोले तक गुनगुने दूधके साथ देनी चाहिये । यह कुछ प्रतियोंमें मिलता है, कुलमें नहीं इसे योगरत्नाकरमें पाठभेदसे अम्लपित्ताधिकारमें लिखा है-यह- बहुत स्वादिष्ठ तथा गुणकारी है इसका कितने ही बार अनुभव किया गया है ।

त्रिजौरे निम्बूके रसमें गोली बनाकर सेवन करनेसे वात-शूल नष्ट होता है ॥ १३ ॥

बीजपूरकमूलयोगः ।

बीजपूरकमूलं च घृतेन सह पाययेत् ।
जयेद्वातभवं शूलं कर्षमेकं प्रमाणत ॥ १४ ॥

१ तोला बिजौरे निम्बूकी जडका चूर्ण अथवा कल्क घीके साथ पिलानेसे वातशूल नष्ट होता है ॥ १४ ॥

स्वेदनप्रयोगाः ।

बिल्वमूलतिलैरण्डं पिष्ट्वा चाम्लतुषाम्भसा ।
गुडिकां भ्रामयेदुष्णां वातशूलविनाशिनीम् ॥ १५ ॥
तिलैश्च गुडिका कृत्वा भ्रामयेज्जठरोपरि ।
गुडिका शमयत्येषा शूलं चैवातिदु.सहम् ॥ १६ ॥
नाभिलेपाज्जयेच्छूल मदन काञ्जिकान्वित' ।
जीवन्तीमूलकल्को वा सतैल पार्श्वशूलनुत् ॥ १७ ॥

बेलकी छाल, तिल तथा एरण्डकी छालको काञ्जीके साथ पीस गरम कर गुनगुनी गुनगुनी गोली पेटपर फिरानेसे शूल नष्ट होता है । इसी प्रकार काले तिलको पीस गोली बना गरम कर पेटपर फिरानेसे वातजन्य शूल नष्ट होता है । इसी प्रकार मैनफलका चूर्ण काञ्जीमें मिला गरम कर नाभीपर लेप करनेसे अथवा जीवन्तीकी जडका कल्क तैल मिलाकर लेप करनेसे पसलियोंका दर्द नष्ट होता है ॥ १५–१७ ॥

पित्तशूलचिकित्सा ।

गुड' शालिर्यवा क्षीरं सर्पिष्पानं विरेचनम् ।
जाङ्गलानि च मांसानि भेषजं पित्तशूलिनाम् ॥ १८ ॥
पैत्ते तु शूले वमनं पयोभी
रसैस्तथेक्षो. सपटोलनिम्बै ।
शीतावगाहा. पुलिनाः सवाता
कांस्यादि पात्राणि जलप्लुतानि ॥ १९ ॥
विरेचनं पित्तहरं च शस्त
रसाश्च शस्ता शशलावकानाम् ।
सन्तर्पण लाजमधूपपन्न
योगा. सुशीता मधुसम्प्रयुक्ता ॥ २० ॥
छर्द्यां ज्वरे पित्तभवेऽपि शूले
घोरे विदाहे त्वतितर्पिते च ।
यवस्य पेया मधुना विमिश्रा
पिबेत्सुशीता मनुज सुखार्थी ॥ २१ ॥
धात्र्या रसं विदार्या वा त्रायन्ती गोस्तनाम्बु वा ।
पिबेत्सशर्करं सद्य. पित्तशूलनिषूदनम् ॥ २२ ॥
शतावरीरसं क्षौद्रयुतं प्रातः पिबेन्नर' ।
दाहशूलोपशान्त्यर्थं सर्वपित्तामयापहम् ॥ २३ ॥

गुड, शालिके चावल, यव, दूध, घीपान, विरेचन तथा जांगलप्राणियोंके मांस पित्तशूलवालोंको सेवन करना चाहिये । पैत्तिक शूलमें परवलकी पत्ती व नीमकी पत्तीका कल्क दूधमें अथवा ईखके रसमें मिला पीकर वमन करना चाहिये । इसी प्रकार शीतल जलादिमें बैठाना, नदीका तट, शुद्ध वायु. तथा जलभरे कांस्यादि पात्र पेटपर फिराना, पित्तनाशक विरेचन, खरगोश अथवा वटेरका मांसरस, खील व शहदका सन्तर्पण अथवा शहदयुक्त शीतल पदार्थ सेवन करना हितकर है । पित्तजन्य छर्दि, ज्वर, शूल, दाह तथा तृष्णामें यवकी पेया ठण्ढी कर शहद मिला पीनेसे शांति मिलती है । इसी प्रकार आंवलेका रस, विदारीकन्दका रस त्रायमाणका रस अथवा अङ्गूरका रस शक्कर मिलाकर पीनेसे शीघ्र ही पित्तज शूल नष्ट होता है इसी प्रकार शतावरीका रस, शहद मिलाकर प्रातःकाल पीनेसे दाह, शूल तथा समस्त पित्तज रोग शांत होते हैं॥१८–२३॥

बृहत्यादिक्काथः ।

बृहत्यौ गोक्षुरैरण्डकुशकाशेक्षुवालिका' ।
पीता पित्तभव शूल सद्यो हन्यु सुदारुणम् ॥ २४ ॥

छोटी कटेरी, बडी कटेरी, गोखुरू, एरण्डकी छाल, कुश, काश, तथा ईखकी जडका क्काथ पित्तज शूलको तत्काल शांत करता है ॥ २४ ॥

शतावर्यादिजलम् ।

शतावरीमयष्ट्याह्ववाट्यालकुशगोक्षुरैः ।
शृतशीतं पिबेत्तोयं सगुडक्षौद्रशर्करम् ॥ २५ ॥
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं सद्यो दाहज्वरापहम् ।

शतावरी, मौरेठी, खरेटी, कुश, तथा गोखुरूका जल ठण्ढा कर गुड, शहद व शक्कर मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त, दाह, शूल तथा दाहयुक्त ज्वर शांत होता है ॥ २५ ॥–

त्रिफलादिक्काथः ।

त्रिफलानिम्बयष्ट्याह्वकटुकारग्वधै. शृतम् ॥ २६ ॥
पाययेन्मधुसमिश्रं दाहशूलोपशान्तये ।

त्रिफला, नीमकी छाल, मौरेठी, कुटकी, तथा अमलतासके गूदेका क्काथ ठढा कर शहद मिला पीनेसे दाहयुक्त शूल शान्त होता है ॥ २६ ॥–

एरण्डतैलयोगाः ।

तैलमेरण्डजं वापि मधुकक्काथसंयुतम् ॥ २७ ॥
शूलं पित्तोद्भवं हन्याद्गुल्मं पैत्तिकमेव च ।

अथवा एरण्डका तैल मौरेठीके क्काथके साथ पीनेसे पित्त शूल तथा पित्तज गुल्म शान्त होता है ॥ २७ ॥–

अपरस्त्रिफलादिकाथः ।

त्रिफलारग्वधक्काथं सक्षौद्रं शर्करान्वितम् ॥ २८ ॥
पाययेद्रक्तपित्तघ्नं दाहशूलनिवारणम् ।

त्रिफला तथा अमलतासका क्काथ शहद व शक्कर मिलाकर पीनेसे रक्तपित्त तथा दाहयुक्त शूल नष्ट होता है ॥ २८ ॥–

धात्रीचूर्णम् ।

प्रलिह्यात्पित्तशूलघ्नं धात्रीचूर्णं समाक्षिकम् ॥ २९ ॥

आंवलेका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे पित्तशूल नष्ट होता है * ॥ २९ ॥

* अपरो नारिकेलखण्डः।"नारिकेलपलान्यष्टौ शर्करा-प्रस्थसयुतम् । तज्जलं पात्रमेकं तु सर्पिषश्चपलानि च ॥ शुण्ठीचूर्णस्य कुडवं प्रस्थार्द्धं क्षीरमेव च । सर्वमेकीकृतं पात्रे शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ तुगात्रिकटुकं मुस्तं चतुर्जातं सधान्यकम् । द्वे कणे कर्षयुग्मं च जीरकं च पृथक्पृथक्॥ श्लक्ष्णचूर्णं विनिक्षिप्य स्थापयेद्भाजने मृदः। खादेत्प्रतिदिनं शाणं यथेष्टाहारवानपि ॥ सर्वदोषभवं शूलमामवातं विनाशयेत् । परिणामभवं शूलमम्लपित्तं विनाशयेत् ॥ बलपुष्टिकरं चैव वाजीकरणमुत्तमम् । रक्तपित्तहरं श्रेष्ठं छर्दिहृद्रोगनाशनम् ॥ अग्निसन्दीपनकरं सर्वरोगनिवर्ह-णम् ॥ " कच्ची गरी ३२ तोला, घी २० तोलामें प्रथम भून लेना चाहिये । फिर उसीमें शक्कर ६४ तोला और नरियलका जल ६ से० ३२ तोला, सोंठ १६ तोला, दूध ६४ तोला सब एकमें मिलाकर धीरे धीरे मन्द आंचसे पकाना चाहिये । पाक तैयार हो जानेपर उतार कर वंशलोचन, सोंठ, मिर्च, पीपल, नागरमोथा, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, धनिया, छोटी पीपल, गजपीपल, जीरा इनमेंसे प्रत्येक ओष-धिका यथा–विधि निर्मित २ तोला चूर्ण छोडकर मिट्टीके वर्तनमें रखना चाहिये । इससे प्रतिदिन ३ माशे खाना चाहिये तथा यथेच्छ आहार करना चाहिये । यह समस्त दोषज शूल, आमवात, परिणाम–शूल व अम्लपित्तको नष्ट करता है । यह रक्तपित्त, छर्दि व हृद्रोगको नष्ट अग्निको दीप्त तथा समस्त रोगोंको दूर करता है । यह प्रयोग भी कुछ पुस्तकोंमें है कुछमें नहीं अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है ॥

कफजशूलचिकित्सा ।

श्लेष्माधिके छर्दनलङ्घनानि
शिरोविरेकं मधुशीधुपानम् ।
मधूनि गोधूमयवानरिष्टान्
सेवेत रूक्षान्कटुकांश्च सर्वान् ॥ ३० ॥

कफाधिक शूलमें वमन, लंघन, शिरोविरेचन (नस्य) शहदके शीधु (मद्यविशेष) का पान, शहद, गेहूँ, यव, अरिष्ट तथा रूखे और कडुए समस्त पदार्थ हित-कर है ॥ ३० ॥

पञ्चकोलयवागूः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
यवागूर्दीपनीया स्याच्छूलघ्नी चोपसाधिता ॥ ३१ ॥

पिप्पली, पीपलामूल, चव्य, चीता, सोंठ इन ओष-धियोंके क्काथमें सिद्ध यवागू अग्निको दीप्त करती तथा कफजन्य शूलको नष्ट करती है ॥ ३१ ॥

पञ्चकोलचूर्णम् ।

लवणत्रयसंयुक्तं पञ्चकोलं सरामठम् ।
सुखोष्णेनाम्बुना पीतं कफशूलविनाशनम् ॥ ३२ ॥

तीनों नमक, पञ्चकोल, तथा भुनी हींग सब समान भाग ले चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे कफजन्य शूल नष्ट होता है ॥ ३२ ॥

बिल्वमूलादिचूर्णम् ।

बिल्वमूलमथैरण्डं चित्रकं विश्वभेषजम् ।
हिङ्गु सैन्धवसंयुक्तं सद्यः शूलनिवारणम् ॥ ३३ ॥

बेलकी जडकी छाल, एरण्डकी छाल, चीतकी जड, सोंठ तथा भुनी हींग व सेंधानमकका चूर्ण गरम जलके साथ पीनेसे तत्काल शूल नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

मुस्तादिचूर्णम् ।

मुस्तं वचां तिक्तकरोहिणीं च
तथाभयां निर्दहनीं च तुल्याम् ।
पिबेत्तु गोमूत्रयुतां कफोत्थ-
शूले तथामस्य च पाचनार्थम् ॥ ३४ ॥

नागरमोथा, दूर्विया, वच, कुटकी, बडी हरका छिल्का, तथा मूर्वा, समान भाग ले चूर्ण कर गोमूत्रके साथ पीनेसे कफज शूलका नाश तथा आमका पाचन होता है ॥ ३४ ॥

वचादिचूर्णम् ।

वचाब्दाग्न्यभयातिक्ताचूर्णं गोमूत्रसंयुतम् ।
सक्षारं वा पिबेत्क्वाथं बिल्वादेः कफशूलनुत् ॥ ३५ ॥

मीठा वच, नागरमोथा, चीतकी जड, बडी हर्रका छिल्का तथा कुटकीका चूर्ण गोमूत्रके साथ अथवा बिल्वादि गणकी औषधियोंका क्वाथ यवाखार मिलाकर पीनेसे कफजन्य शूल नष्ट होता है ॥ ३५ ॥

योगद्वयम् ।

मातुलुङ्गरसो वापि शिग्रुक्वाथस्तथापरः ।
सक्षारो मधुना पीतः पार्श्वहृद्बस्तिशूलनुत् ॥ ३६ ॥

बिजौरे निम्बूका रस अथवा सहिजनका क्वाथ यवाखार व शहद मिलाकर पीनेसे पसली, हृदय तथा वस्तिके शूलको नष्ट करते हैं ॥ ३६ ॥

आमशूलचिकित्सा ।

आमशूले क्रिया कार्या कफशूलविनाशिनी ।
सेव्यमामहरं सर्वं यदग्निबलवर्धनम् ॥ ३७ ॥

आमशूलमें कफशूल नाशक तथा अग्निदीपक व आमपाचक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३७ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

सहिङ्गुतुम्बुरुव्योषयमानीचित्रकाभयाः ।
सक्षारलवणाच्चूर्णं पिबेत्प्रातः सुखाम्बुना ॥ ३८ ॥
विण्मूत्रानिलशूलघ्नं पाचनं वह्निदीपनम् ।

भुनी हींग, तुम्बुरु, त्रिकटु, अजवायन, चीतकी जड, बडी हर्रका छिल्का, यवाखार, व सेंधानमक सब समान भाग ले चूर्ण कर गुनगुने गुनगुने जलके साथ पीनेसे विष्ठा, मूत्र तथा वायुकी रुकावट तथा शूल नष्ट होता है और आमका पाचन तथा अग्नि दीप्त होता है * ॥ ३८ ॥

चित्रकादिक्वाथः ।

चित्रकं ग्रन्थिकैरण्डशुण्ठीधान्यं जलैः शृतम् ॥ ३९ ॥
शूलानाहविबन्धेषु सहिङ्गु विडदाडिमम् ।

चीतकी जड, पिपरामूल, एरण्डकी छाल, सोंठ तथा धनियाका क्वाथ बना भुनी हींग, बिडनमक तथा अनारका रस मिलाकर पीनेसे शूल, अफारा तथा कब्जियत दूर होती है ॥ ३९ ॥

दीप्यकादिचूर्णम् ।

दीप्यकं सैन्धवं पथ्या नागरं च चतुःसमम् ॥
भृशं शूलं जयत्याशु मन्दस्याग्नेश्च दीपनम् ॥ ४० ॥

अजवायन, सेंधानमक, हर्र तथा सोंठ चारो समान

---

* धात्रीलौहम्–"पटपलं शुद्धमण्डूरं यवस्य कुडवं तथा । पाकाय नीरप्रस्थार्धं चतुर्भागावशेषितम् ॥ शतमूलीरसस्याढावामलक्या रसस्तथा । तथा दधिपयोभूमिकूष्माण्डस्य चतुष्पलम् ॥ चतुष्पलं शर्कराया घृतस्य च चतुष्पलम् । प्रक्षेपं जीरकं धान्यं त्रिजातं करि–पिप्पलीम् ॥ मुस्तं हरीतकी चैव अभ्रं लौहं कटुत्रयम् । रेणुकं त्रिफला चैव तालीशं नागकेशरम् ॥ प्रत्येकं कार्षिकं चूर्णं पेषयित्वा विनिक्षिपेत् । भोजनादौ तथा मध्ये चान्ते चैव समाहितः ॥ तोलैकं भक्षयेन्नित्यमनुपानं पयोऽथवा । शूलमष्टविधं हन्ति साध्यासाध्यमथापि वा ॥ वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । परिणामसमुत्थाश्च अन्नद्रवसमुद्भवान् ॥ द्वन्द्वजान्पक्तिशूलाश्च अम्लपित्तमुदारुणम् । सर्वशूलहरं श्रेष्ठं धात्रीलौहमिदं स्मृतम् ॥" शुद्ध मण्डूर २४ तो०, यव १६ तोला को ६४ तो० जलमें पकाकर १६ तो० शेष छना हुआ क्वाथ, शतावरका रस ३२ तोला, आंवलेका रस ३२ तो० तथा दही १६ तो०, दूध १६ तो० तथा विदारीकन्दका रस १६ तो०, शक्कर १६ तो० तथा घी १६ तो० सबको मिलाकर पकाना चाहिये । पाक तैयार हो जानेपर जीरा, धनिया, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेसर, गजपीपल, नागरमोथा, हर्र, अभ्रकभस्म, लौहभस्म, त्रिकटु, सम्भालूके बीज, त्रिफला तथा तालीशपत्र प्रत्येक १ तो० का चूर्ण छोडना चाहिये । इसको भोजनके पहिले मध्यमें तथा अन्तमें १ तो० की मात्रासे सेवन करना चाहिये । अनुपान दूध अथवा जल । यह साध्य तथा असाध्य वातिक, पैत्तिक, श्लैष्मिक तथा सान्निपातिक, अन्नद्रव, परिणामजन्य शूल तथा कठिन अम्लपित्तको नष्ट करता है । यह समस्त शूलोंको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ धात्रीलौह है । वर्तमान समयमें इसकी मात्रा ४ रत्तीसे २ माशेतक है । यह प्रयोग भी किसी किसीमें है किसीमें नहीं अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है ॥

भाग ले चूर्ण कर सेवन करनेसे शूलका नाश अग्निकी दीप्ति होती है ॥ ४० ॥

पित्तानिलात्मजशूलचिकित्सा ।

समाक्षिकं बृहत्यादि पिबेत्पित्तानिलात्मके ।
व्यामिश्र वा विधिं कुर्याच्छूले पित्तानिलात्मके ॥ ४१ ॥

पित्तानिलात्मक शूलमें बृहत्यादि ओषधियोंका क्वाथ शहद मिलाकर पीना चाहिये तथा वातापित्तकी अलग अलग कही हुई चिकित्सा अशाश कल्पना कर मिश्रित करनी चाहिये ॥ ४१ ॥

कफपित्तजशूलचिकित्सा ।

पित्तजे कफजे चापि या क्रिया कथिता पृथक् ।
एकीकृत्य प्रयुञ्जीत तां क्रियां कफपित्तजे ॥ ४२ ॥

पित्तज तथा कफजमें जो अलग अलग चिकित्सा कही गयी है उसे कफपित्तज शूलमें मिलाकर करनी चाहिये ॥ ४२ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलत्रिफलारिष्टाक्वाथं मधुयुतं पिबेत् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ ४३ ॥

परवलकी पत्ती, आंवला, हर्र, बहेड़ा तथा नीमकी छालका क्वाथ शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, छर्दि, दाह और शूल शान्त होते हैं ॥ ४३ ॥

वातश्लेष्मजचिकित्सा ।

रसोनं मधुसमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकाङ्क्षितः ।
वातश्लेष्मभवं शूलं विहन्तु वह्निदीप्तये ॥ ४४ ॥

लहसुनका कल्क प्रातःकाल शहद मिलाकर चाटनेसे वातकफजशूल नष्ट हो जाता है तथा अग्नि दीप्त होती है ॥ ४४ ॥

विश्वादिक्वाथः ।

विश्वोरुबूकदशमूलयवाम्भसा तु
द्विक्षारहिङ्गुलवणत्रयपुष्कराणाम् ।
चूर्णं पिबेद्धृदयपार्श्वकटीग्रहाम-
पक्वाशयांसभृशरुग्ज्वरगुल्मशूली ॥ ४५ ॥
क्वाथेन चूर्णपानं यत्तत्र क्वाथप्रधानता ।
प्रवर्तते न तेनात्र चूर्णापेक्षी चतुर्द्रवः ॥ ४६ ॥

सोंठ, एरण्डकी छाल, दशमूल और यवका क्वाथ बना यवाखार, सज्जीखार, भुनी हींग, तीनों नमक, तथा पोहकरमूलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे हृदय, पसलियों व कमरका दर्द, आमाशय व पक्वाशयकी पीड़ा ज्वरगुल्म व शूल नष्ट होते हैं। जहांपर क्वाथसे चूर्णपान लिखा है वहां क्वाथकी प्रधानता है। अतः चूर्णकी अपेक्षा चतुर्गुण द्रव छोड़ना यहां नहीं लगता॥४५॥४६

रुचकादिचूर्णम् ।

चूर्णं समं रुचकहिङ्गुमहौषधानां
शुण्ठ्यम्बुना कफसमीरणसम्भवासु ।
हृत्पार्श्वपृष्ठजठरार्तिविषूचिकासु
पेयं तथा यवरसेन तु विड्विबन्धे ॥ ४७ ॥
समं शुण्ठ्यम्बुनेत्येव योजना क्रियते बुधैः ।
तेनाल्पमानमेवात्र हिङ्गु सपरिदीयते ॥ ४८ ॥

कालानमक, भुनी हींग तथा सोंठका चूर्ण सोंठके क्वाथके साथ पीनेसे कफवातजन्य हृदय, पसलियों, पीठ व उदरकी पीड़ा तथा विषूचिका नष्ट होते हैं। मलकी रुकावटमें इसी चूर्णको यवके क्वाथके साथ पीना चाहिये। इस पद्यमें 'सम' का सम्बन्ध 'शुण्ठ्यम्बुना' से है अतः हींग भी समान डालना उचित नहीं। हींग उतनी ही छोड़ना चाहिये जितनीसे मिचलाई न हो ॥ ४७ ॥ ४८ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्गु सौवर्चलं पथ्याविडसैन्धवतुम्बुरु ।
पौष्करं च पिबेच्चूर्णं दशमूलयवाम्भसा ॥ ४९ ॥
पार्श्वहृत्कटिपृष्ठांसशूले तन्त्रापतानके ।
शोथे श्लेष्मामसेके च कर्णरोगे च शस्यते ॥ ५० ॥

भुनी हींग, तथा कालानमक, हर्र, विडलवण, सेंधानमक, तुम्बुरु तथा पोहकरमूल सब समान भाग ले चूर्ण कर दशमूल व यवके क्वाथके साथ सेवन करनेसे पसलियों, हृदय, कमर, पीठ और स्कन्धका शूल, अपतन्त्रक, अपतानक, शोथ, कफ व आमका गिरना तथा कर्णरोग शान्त होते हैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥

एरण्डादिक्वाथः ।

गुरुडबिल्वबृहतीद्वयमातुलुङ्ग-
पाषाणभित्त्रिकटुमूलकृतः कषायः ।
सक्षारहिङ्गुलवणो रुबुतैलमिश्रः
श्रोण्यंसमेढ्रहृदयस्तनरुक्षु पेयः ॥ ५१ ॥

एरण्डकी छाल, बेलका गूदा, बड़ी कटेरी, छोटी कटेरी, बिजौराकी छाल, पाषाणभेद, त्रिकटु और

---

१ "द्रवशुक्त्या स लेढव्यः पातव्यश्च चतुर्द्रवः" इस सिद्धान्तके अनुसार चूर्णसे चतुर्गुण ही क्वाथ मिलाना चाहिये था पर इस (क्वाथेन चूर्णपानम्) परिभाषासे क्वाथकी प्रधानता सिद्ध हो जानेपर क्वाथकी मात्रा २ पल ही लेनी चाहिये ।

पिपरामूलका क्वाथ, यवाखार, भुनी हींग, कालानमक तथा एरण्डका तैल मिलाकर कमर, कन्धे, लिङ्ग, हृदय और स्तनोंकी पीडामे पीना चाहिये ॥ ५१ ॥

हिंग्वादिचूर्णमपरम् ।

हिङ्गु त्रिकटुकं कुष्ठं यवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।
मातुलुङ्गरसोपेतं प्लीहशूलापहं रज ॥ ५२ ॥

भुनी हींग, त्रिकटु, कूठ, यवाखार तथा सेंधानमकका चूर्ण बिजौरे निम्बूके रसके साथ पीनेसे प्लीहाका शूल नष्ट होता है ॥ ५२ ॥

मृगशृङ्गभस्म ।

दग्धमनिर्गतधूमं मृगशृङ्गं गोघृतेन सह पीतम् ।
हृदयनितम्बजशूलं हरति शिखी दारुनिवहमिव ॥५३॥

सम्पुटमें बन्द कर गजपुटमे भस्म किया हुआ मृगशृङ्ग गायके घीके साथ चाटनेसे हृदय तथा कमरके शूलको अग्नि लकड़ियोंके ढेरके समान नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

विडङ्गचूर्णम् ।

क्रिमिरिपुचूर्णं लीढं स्वरसेन वङ्गसेनस्य ।
क्षपयत्यचिरान्नियतं लेहोऽजीर्णोद्भव शूलम् ॥५४॥

वायविडंगका चूर्ण अगस्त्यके स्वरसके साथ चाटनेसे शीघ्र ही अजीर्णजन्य शूल नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

सन्निपातजशूलचिकित्सा ।
विदार्यादिरसः ।

विदारीदाडिमरसः सव्योपलवणान्वित ।
क्षौद्रयुक्तो जयत्याशु शूलं दोषत्रयोद्भवम् ॥ ५५ ॥

विदारीकन्द और अनारका रस सोंठ, मिर्च, पीपल व सेंधानमकका चूर्ण व शहद मिलाकर पीनेसे सन्निपातजन्य शूल शीघ्र ही नष्ट होता है ॥ ५५ ॥

एरण्डद्वादशकक्वाथः ।

एरण्डफलमूलानि बृहतीद्वयगोक्षुरम् ।
पर्णिन्य सहदेवी च सिंहपुच्छी क्षुबालिका ॥ ५६ ॥
तुल्यैरेतैः शृतं तोयं यवक्षारयुतं पिबेत् ।
पृथग्दोषभव शूलं हन्यात्सर्वभवं तथा ॥ ५७ ॥

एरण्डके बीज तथा जडकी छाल, दोनों कटेरी, गोखुरू, मुद्गपर्णी, माषपर्णी, शालपर्णी, पृष्ठपर्णी, सहदेयी, पिठवन तथा ईखकी जड सब समान भाग ले क्वाथ बना यवाखार मिलाकर पीनेसे दोषोंसे अलग अलग उत्पन्न शूल तथा सान्निपातज शूल नष्ट होता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

गोमूत्रमण्डूरम् ।

गोमूत्रसिद्धं मण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ।
विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ५८ ॥

गोमूत्रमे बुझाया गया मण्डूर, त्रिफलाका चूर्ण मिलाकर शहद व घीके साथ चाटनेसे सन्निपातज शूल नष्ट होता है ॥ ५८ ॥

शंखचूर्णम् ।

शङ्खचूर्णं सलवणं सहिङ्गुव्योषसंयुतम् ।
उष्णोदकेन तत्पीतं शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥ ५९ ॥

शंखचूर्ण (भस्म) कालानमक, भुनी हींग व त्रिकटु-चूर्ण मिलाकर गरम जलके साथ पीनेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

लौहप्रयोगः ।

तीक्ष्णायश्चूर्णसंयुक्तं त्रिफलाचूर्णमुत्तमम् ।
प्रयोज्यं मधुसर्पिर्भ्यां सर्वशूलनिवारणम् ॥ ६० ॥

तीक्ष्ण लोह भस्म व त्रिफलाका चूर्ण मिलाकर शहद व घीके साथ चाटनेसे समस्त शूल नष्ट होते हैं ॥ ६० ॥

मूत्राभयायोगः ।

मूत्रान्त पाचिता शुद्धां लौहचूर्णसमन्विताम् ।
सगुडामभयामद्यात्सर्वशूलप्रशान्तये ॥ ६१ ॥

गोमूत्रमे पकायी हुई हर्रोका चूर्ण लौहभस्म तथा गुड मिलाकर खानेसे समस्त शूल शान्त होते हैं ॥ ६१ ॥

दाधिकं घृतम् ।

पिप्पल नागरं बिल्वं कारवीचव्यचित्रकम् ।
हिंगुदाडिमवृक्षाम्लवचाक्षाराम्लवेतसम् ॥ ६२ ॥
वर्षाभूकृष्णलवणमजाजीबिजपूरकम् ।
दधि त्रिगुणितं सर्पिस्तत्सिद्धं दाधिकं स्मृतम् ॥६३॥
गुल्मार्शः प्लीहहृत्पार्श्वशूलयोनिरुजापहम् ।
दोषसंशमनं श्रेष्ठ दाधिकं परमं स्मृतम् ॥ ६४ ॥

छोटी पीपल, सोंठ, बेलका गूदा, कलौंजी, चव्य, चीतकी जड, हींग, अनारदाना, बिजौरा, निम्बू, वच, यवाखार, अम्लवेत, पुनर्नवा, कालानमक, सफेद जीरा, तथा इमली सब समान भाग ले कल्क बना कल्कसे

चौगुना घी और घीसे तिगुना दही तथा घीके समान भाग जल मिलाकर सिद्ध किया गया घृत सेवन करनेसे गुल्म अर्श प्लीहा, हृद्रोग, पार्श्वशूल, योनिशूलको नष्ट करता तथा त्रिदोषको शान्त करता है । यह दाधिकघृत (दध्ना संस्कृत) है ॥ ६२–६४ ॥

शूलहरधूपः ।

कम्बलावृतगात्रस्य प्राणायाम प्रकुर्वत ।
कटुतैलाक्तसक्तूना धूप शूलहर पर ॥ ६५ ॥

कम्बल ओढकर प्राणायाम करते हुए कडुए तैलमें साने सत्तूका धूप शूलको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है॥६५॥

अपथ्यम् ।

व्यायाम मैथुन मद्य लवण कटु,वैदलम् ।
वेगरोध शुच क्रोध वर्जयेच्छूलवान्नर ॥ ६६ ॥

कसरत, मैथुन, मद्य, नमक, कटु द्रव्य, दाल, वेगावरोध, शोक तथा क्रोध शूलवान्को त्याग देना चाहिये ॥ ६६ ॥

इति शूलाधिकारः समाप्तः ।

अथ परिणामशूलाधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

वमन तिक्तमधुरैर्विरेकश्चापि शस्यते ।
वस्तयश्च हिता शूले परिणामसमुद्भवे ॥ १ ॥

तिक्त तथा मीठे द्रव्योंसे वमन तथा विरेचन कराना प्रशस्त है । और बस्तिकर्म कराना परिणामशूलमें हितकर है ॥ १ ॥

विडङ्गादिगुटिका ।

विडङ्गतण्डुलव्योष त्रिवृद्दन्तीसचित्रकम् ।
सर्वाण्येतानि संस्कृत्य सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत् ॥ २ ॥
गुडेन मोदकं कृत्वा भक्षयेत्प्रातरुत्थित ।
उष्णोदकानुपान तु दद्यादग्निविवर्धनम् ।
जयेत्त्रिदोषज शूल परिणामसमुद्भवम् ॥ ३ ॥

वायविडंग, सोंठ,मिर्च, पीपल, निसोथ, दन्ती, तथा चीतेकी जड सब साफ कर चूर्ण करना चाहिये । फिर चूर्णसे दूना गुड मिला गोली बनाकर प्रातःकाल गरम जलके साथ खानेसे त्रिदोषजन्य परिणामशूल नष्ट होता है तथा अग्नि दीप्त होती है ॥ २ ॥ ३ ॥

नागरादिलेहः ।

नागरतिलगुडकल्क पयसा ससाध्य य पुमानश्नाति ।
उग्र परिणतिशूल तस्यापैति त्रिसप्तरात्रेण ॥ ४ ॥

सोंठ, तिल व गुडका कल्क दूधके साथ पकाकर जो खाता है उसका परिणामशूल इक्कीस दिनके प्रयोगसे अवश्य नष्ट हो जाता है ॥ ४ ॥

शम्बूकभस्म ।

शम्बूकज भस्म पीत जलेनोष्णेन तत्क्षणात् ।
पक्तिजं विनिहन्त्येतच्छूलं विष्णुरिवासुरान् ॥ ५ ॥

शंख या घोंघाकी भस्म गरम जलके साथ पीनेसे परिणामशूलको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे विष्णु भगवान् राक्षसोंका नाश करते हैं ॥ ५ ॥

बिभीतकादिचूर्णम् ।

अक्षधात्र्यभयाकृष्णाचूर्ण मधुयुत लिहेत् ।
दध्ना तु लूनसारेण सतीनयवसक्तुकान् ॥ ६ ॥
भक्षयन्मुच्यते शूलात्तरोऽनुपरिवर्तनात् ।

बहेडा, आंवला, बडी हर्रका छिल्का तथा छोटी पीपलके चूर्णको शहदके साथ मिलाकर चाटना चाहिये । तथा मक्खन निकाले दहीके साथ, मटर व यवके सत्तुओंके खानेसे परिणामशूल नष्ट हो जाता है ॥ ६ ॥

तिलादिगुटिका ।

तिलनागरपथ्याना भाग शम्बूकभस्मनाम् ॥ ७ ॥
द्विभागं गुडसयुक्त गुडीं कृत्वाक्षभागिकाम् ।
शीताम्बुपाना पूर्वाह्णे भक्षयेत्क्षीरभोजन ॥ ८ ॥
सायाह्ने रसक पीत्वा नरो मुच्येत दुर्जयात् ।
परिणामसमुत्थाच्च शूलाच्चिरभवादपि ॥ ९ ॥

तिल, सोंठ, तथा हर्र प्रत्येक एक भाग, शम्बूकभस्म २ भाग सबसे द्विगुण गुड मिलाकर १ तो० की गोली बना ठण्डे जलके साथ सबेरे खाना चाहिये तथा दूधका पथ्य लेना चाहिये । सायङ्काल मांसरस पीना चाहिये । इससे मनुष्य कठिन पुराने परिणामशूलसे मुक्त हो जाता है ॥ ७–९ ॥

शम्बूकादिवटी ।

शम्बूक त्र्यूषण चैव पञ्चैव लवणानि च ।
समाशा गुटिका कृत्वा कलम्बरसकेन वा ॥ १० ॥

प्रातर्भोजनकाले वा भक्षयेत्तु यथाबलम् ।
शूलाद्विमुच्यते जन्तु सहसा परिणामजात् ॥ ११ ॥

शम्बूकभस्म, त्रिकटु तथा पाचों नमक, समान भाग लेकर करेमुवा (नाडी) के रसमे गोली बनाकर प्रातःकाल या भोजनके समय बलानुसार सेवन करना चाहिये। इससे परिणामशूल नष्ट होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

शक्तुप्रयोगः ।

य पिबति सप्तरात्रं शक्तूनेकान्कलाययूपेण ।
स जयति परिणामरुज चिरजामपि किमुत नूतनजाम्१२

जो सात दिनतक मटरके यूपके साथ केवल सत्तूका सेवन करता है, उसका नवीन क्या पुराना भी परिणामशूल नष्ट होता है ॥ १२ ॥

लौहप्रयोगः ।

लोहचूर्ण वरायुक्त विलीढं मधुसर्पिपा ।
परिणामशूलं शमयेत्तन्मल वा प्रयोजितम् ॥ १३ ॥
कृष्णाभयालौहचूर्ण गुडेन सह भक्षयेत् ।
पक्तिशूल निहन्त्येतज्जठराण्याग्निमन्दताम् ॥ १४ ॥
आमवातविकारांश्च स्थौल्य चैवापकर्पति ।
पथ्यालोहरज शुण्ठीचूर्ण माक्षिकसर्पिपा ॥ १५ ॥
परिणामरुज हन्ति वातपित्तकफात्मिकाम् ।

लौहभस्म और त्रिफलाको शहद व घीमे मिला चाटनेसे तथा इसी प्रकार मण्डूर सेवन करनेसे परिणामशूल नष्ट होता है । अथवा छोटी पीपल, बडी हर्रका छिल्का, लौहभस्म तथा गुड मिलाकर सेवन करनेसे परिणामशूल, उदररोग तथा अग्निमान्द्य और आमवात नष्ट होता है और स्थूलता मिटती है अथवा लौहभस्म, हर्र व सोठका चूर्ण शहद और घीमे मिलाकर चाटनेसे त्रिदोषज परिणामशूल नष्ट होता है ॥ १३–१५ ॥–

सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

सामुद्र सैन्धव क्षारो रुचक रौमकं विडम् ।
दन्ती लौहरज किट्ट त्रिवृच्छूरणकं समम् ॥ १६ ॥
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् ।
तद्यथाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ १७ ॥
जीर्णे जीर्णे तु भुञ्जीत मासादिघृतसाधितम् ।
नाभिशूलं यकृच्छूल गुल्मप्लीहकृत च यत् ॥ १८ ॥
विद्रध्यष्ठीलिका हन्ति कफवातोद्भवा तथा ।
शूलानामपि सर्वेपामौषध नास्ति तत्परम् ॥ १९ ॥
परिणामसमुत्थस्य विशेषेणान्तकृन्मतम् ।

सामुद्रनमक, सेधानमक, कालानमक, रुमानमक, (शाभरनमक,) खारीनमक, विडनमक, दन्ती, लौहभस्म, मण्डूर, निसोथ, तथा जिमीकन्द सब समान भाग ले चूर्ण कर दही, गोमूत्र, दूध प्रत्येक चूर्णसे चतुर्गुण छोडकर मन्द अग्निमे पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर अग्निबलके अनुसार गरम जलके साथ पीना चाहिये । औपधि हजम हो जानेपर घीके साथ पकाये मासका सेवन करना चाहिये । नाभिशूल, यकृच्छूल, गुल्म, प्लीहाका शूल, विद्रधि तथा कफ, वातज अष्ठीलिका, और समस्तशूलोंको नष्ट करनेके लिये इससे बढकर कोई प्रयोग नहीं है पर परिणामशूलको यह विशेष नष्ट करता है ॥ १६ ॥ १९ ॥–

नारिकेलामृतम् ।

नारिकेल सतोय च लवणेन प्रपूरितम् ॥ २० ॥
विपक्कमग्निना सम्यक्परिणामजशूलनुत् ।
वातिक पैत्तिक चैव श्लैष्मिक सान्निपातिकम् ॥ २१ ॥

जल भरे हुए नारियलके गोलेमे नमक भरकर अग्निसे अच्छी तरह पका लेना चाहिये । यह परिणामजशूलको तथा वातज, पित्तज, कफज व सन्निपातजन्य परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

सप्तामृतं लौहम् ।

मधुक त्रिफलाचूर्णमयोरज सम लिहन् ।
मधुसर्पिर्युत सम्यग्गव्य क्षीर पिबेदनु ॥ २२ ॥
छर्दि सतिमिरां शूलमम्लपित्तं ज्वर क्लमम् ।
आनाह मूत्रसङ्ग च शोथं चैव निहन्ति स ॥ २३ ॥

मौरेठी, त्रिफलाका चूर्ण और लौहभस्म प्रत्येक समान भाग लेकर घी और शहदमें मिलाकर चाट ऊपरसे गायका दूध पीना चाहिये । यह वमन, नेत्रोंकी निर्बलता अन्धकार, शूल, अम्लपित्त, ज्वर, ग्लानि, अफारा मूत्रकी, रुकावट तथा सूजनको नष्ट करता है॥२२॥२३॥

---

१ लौहभस्मकी मात्रा १ रत्तीसे २ रत्तीतक तथा चूर्ण ३ मासेतक मिलाना चाहिये । अथवा प्रत्येक चूर्णके समान लौहभस्म अथवा समस्त चूर्णके समान लोहभस्म मिलाकर सेवन करना चाहिये । इसकी मात्रा ४ रत्तीसे १ माशेतक लेनी चाहिये ॥

गुडपिप्पलीघृतम् ।

सपिप्पलीगुडं सर्पिः पचेत्क्षीरचतुर्गुणे ।
विनिहन्त्यम्लपित्तं च शूलं च परिणामजम् ॥ २४ ॥

छोटी पीपल, व गुडका कल्क तथा चतुर्गुण दूध मिलाकर पकाया गया घी अम्लपित्त व परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ २४ ॥

पिप्पलीघृतम् ।

क्वाथेन कल्केन च पिप्पलीनां
सिद्धं घृतं माक्षिकसंप्रयुक्तम् ।
क्षीरान्नपस्यैव निहन्त्यवश्यं
शूलं प्रवृद्धं परिणामसंज्ञम् ॥ २५ ॥

छोटी पीपलके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध किये घृतमें शहद मिलाकर चाटनेसे तथा दूध भातका पथ्य सेवन करनेसे अवश्य ही परिणामशूल नष्ट हो जाता है ॥२५॥

कोलादिमण्डूरम् ।

कोलाग्रन्थिकशृङ्गवेरचपलाक्षारैः समं चूर्णितं
मण्डूरं सुरभीजलेऽष्टगुणिते पक्त्वाथ सान्द्रीकृतम् ।
तं खादेदशनादिमध्यविरतौ प्रायेण दुग्धान्नभुग्
जेतुं वातकफामयान्परिणतौ शूलं च शूलानि च ॥२६॥

चव्य, पिपरामूल, सोंठ, पीपल, तथा यवाखार प्रत्येक समान भाग, सबके समान मण्डूरका चूर्ण अठगुने गायके मूत्रमें पका गाढा कर लेना चाहिये इसे भोजनके पहिले, मध्य तथा अन्तमे खाना चाहिये और दूधभातका पथ्य लेना चाहिये । इससे वात व कफके रोग, परिणामशूल तथा अन्य शूल नष्ट होते हैं ॥ २६ ॥

भीमवटकमण्डूरम् ।

कोलाग्रन्थिकसहितैर्विश्वौषधमागधीयवक्षारैः ।
प्रस्थमयोरजसामपि पलिकांशैश्चूर्णितैर्मिश्रैः ॥ २७ ॥
अष्टगुणमूत्रयुक्तं क्रमपाकात्पिण्डतां नयेत्सर्वम् ।
कोलप्रमाणा गुडिकास्तिस्रो भोज्यादिमध्यविरतौ ॥२८॥
रससर्पिर्यूषपयोमांसैरश्नन्नरो निवारयति ।
अन्नविवर्तनशूलं गुल्मं प्लीहाग्निसादांश्च ॥ २९ ॥

चव्य ४ तोला, पिपरामूल, सोंठ, छोटी, पीपल तथा यवाखार प्रत्येक ४ तोला तथा लौहभस्म ६४ तोला सबसे अठगुना गोमूत्र मिला क्रमशः मन्द मध्य तीक्ष्ण आंचसे पकाकर गोली बनानेके योग्य हो जानेपर ६ माशेके बराबर गोली बनानी चाहिये । इससे भोजनके पहिले मध्यमें तथा अन्तमे एक एक गोली खानी चाहिये और मासरस, घी, यूष तथा मांसके साथ भोजन करना चाहिये । इसमे परिणामशूल, गुल्म तथा प्लीहा व अग्निमांद्य नष्ट होते है ॥ २७–२९ ॥

क्षीरमण्डूरम् ।

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रार्धाढके पचेत् ।
क्षीरप्रस्थेन तत्सिद्धं पक्तिशूलहरं नृणाम् ॥ ३० ॥

लौहकिट्ट (मण्डूर) ३२ तोला, गोमूत्र आधा आढक तथा दूध एक प्रस्थ मिलाकर पकाया गया मनुष्योंके परिणामशूलको नष्ट करता है ॥ ३० ॥

चविकादिमण्डूरम् ।

लोहकिट्टपलान्यष्टौ गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् ।
चविकानागरक्षारपिप्पलीमूलपिप्पली. ॥ ३१ ॥
संचूर्ण्य निक्षिपेत्तस्मिन्पलांशा. सान्द्रतां गते ।
गुडिका कल्पयेत्तेन पक्तिशूलनिवारिणी. ॥ ३२ ॥

लौहकिट्ट ३२ तोला, गोमूत्र ६४ पल, छोटी पीपल, चव्य, सोंठ, यवाखार, पिपरामूल प्रत्येक ४ तोला छोडकर पकाना चाहिये । गाढा हो जानेपर गोली बनानी चाहिये । यह परिणामशूलको नष्ट करती है ॥३१॥३२॥

गुडमण्डूरप्रयोगः ।

मण्डूरं शोधितं भूतिं लोहजां वा गुडेन तु ।
भक्षयेन्मुच्यते शूलात्परिणामसमुद्भवात् ॥ ३३ ॥

शुद्ध किया मण्डूर अथवा लौहभस्मको गुडके साथ खानेसे परिणामशूल नष्ट होता है ॥ ३३ ॥

शतावरीमण्डूरम् ।

संशोध्य चूर्णितं कृत्वा मण्डूरस्य पलाष्टकम् ।
शतावरीरसस्याष्टौ दध्नस्तु पयसस्तथा ॥ ३४ ॥
पलान्यादाय चत्वारि तथा गव्यस्य सर्पिषः ।
विपचेत्सर्वमेकध्यं यावत्पिण्डत्वमागतम् ॥ ३५ ॥
सिद्धं तु भक्षयेन्मध्ये भोजनस्याग्रतोऽपि वा ।
वातात्मकं पित्तभवं शूलं च परिणामजम् ॥ ३६ ॥
निहन्त्येव हि योगोऽयं मण्डूरस्य न संशयः ।

शुद्ध तथा चूर्ण किया मण्डूर ३२ तोला, शतावरीका रस ३२ तोला, दही ३२ तोला, दूध २२ तोला तथा गायका घी १६ तोला, सबको एकमे मिलाकर पकाना चाहिये । सिद्ध होजानेपर भोजनके पहले अथवा मध्यमें खाना चाहिये । वातज तथा पित्तज परिणामशूलको यह शतावरीमण्डूर नष्ट करता है ॥ ३४–३६ ॥–

तारामण्डूरगुडः ।

विडङ्गं चित्रकं चव्यं त्रिफला त्र्यूषणानि च ॥ ३७ ॥

नवभागानि चैतानि लोहकिट्टसमानि च।
गोमूत्रं द्विगुणं दत्त्वा मूत्रार्धिकगुडान्वितम् ॥ ३८ ॥
शनैर्मृद्वग्निना पक्त्वा सुसिद्धं पिण्डतां गतम्।
स्निग्धे भाण्डे विनिक्षिप्य भक्षयेत्कोलमात्रया ॥ ३९ ॥
प्राङ्मध्यादिक्रमेणैव भोजनस्य प्रयोजित।
योगोऽयं शमयत्याशु पक्तिशूलं सुदारुणम् ॥ ४० ॥
कामलां पाण्डुरोगं च शोथं मन्दाग्नितामपि।
अर्शांसि ग्रहणीदोषं क्रिमिगुल्मोदराणि च ॥ ४१ ॥
नाशयेदम्लपित्तं च स्थौल्यं चैवापकर्षति।
वर्जयेच्छुष्कशाकानि विदाह्यम्लकटूनि च ॥ ४२ ॥
पक्तिशूलान्तको ह्येष गुडो मण्डूरसंज्ञकः।
शूलार्तानां कृपाहेतोस्तारया परिकीर्तितः ॥ ४३ ॥

वायविडङ्ग, चीतकी जड, चव्य, त्रिफला व त्रिकटु प्रत्येक एक भाग, सबके बराबर मण्डूर, सबसे द्विगुण गोमूत्र तथा गोमूत्रसे आधा गुड मिलाकर धीरे धीरे मन्दाग्निसे पकाकर गाढा हो जानेपर चिकने वर्तनमे रखना चाहिये। ६ माशेकी मात्रासे भोजनके पहिले, मध्य तथा अन्त्यमे इसका प्रयोग करना चाहिये। यह कठिनसे कठिन परिणामशूल, कामला, पाण्डुरोग, शोथ, मन्दाग्नि, अर्श, ग्रहणी, क्रिमिरोग, गुल्म, उदर तथा अम्लपित्तको नष्ट करता है तथा शरीरकी स्थूलताको कम करता है। इसमें सखे शाक, जलन करनेवाले, खट्टे व कडुए पदार्थोंका सेवन न करना चाहिये। यह परिणामशूलान्तक मण्डूर गुड शूलार्तोंके ऊपर दया कर तारानें बनाया था ॥ ३७–४३ ॥

राममण्डूरम्।

वशिरं श्वेतवाट्यालं मधुपर्णी मयूरकम्।
तण्डुलीयं च कर्षांर्धं दत्त्वाधश्चोर्ध्वमेव च ॥ ४४ ॥
पाक्यं सुजीर्णं मण्डूरं गोमूत्रेण दिनद्वयम्।
अन्तर्बाष्पमदग्धं च तथा स्थाप्यं दिनत्रयम् ॥ ४५ ॥
विचूर्ण्य द्विगुणेनैव गुडेन सुविमर्दितम्।
भोजनस्यादिमध्यान्ते भक्ष्यं कर्षत्रिभागतः ॥ ४६ ॥
तक्रानुपानं वर्ज्यं च वार्क्षमम्लकमत्र तु।
अम्लपित्ते च शूले च हितमेतद्यथामृतम् ॥ ४७ ॥

चव्य, सफेद खरेटी, मौरेठी, अपामार्ग तथा चौराई प्रत्येक समान भाग ले कल्क कर आधा नीचे आधा ऊपर मध्यमें कल्कके बराबर मण्डूर और सबसे चतुर्गुण गोमूत्र छोड बन्द कर दो दिनतक मन्द आंचसे पकाना चाहिये। फिर ३ दिन ऐसे ही रखकर चूर्ण बनाना चाहिये। फिर द्विगुण गुड मिला विमर्दन कर रखना चाहिये, इसकी १ तोलाकी ३ खुराक बनाकर भोजनके आदि, मध्य व अन्तमे मट्ठेके पीना चाहिये। इसमें वृक्षोसे उत्पन्न खटाई नहीं खानी चाहिये। यह अम्लपित्त तथा शूलमे अमृतके तुल्य गुणदायक है * ॥ ४४–४७ ॥

रसमण्डूरम्।

कुडवपथ्याचूर्णं द्विपलं गन्धाश्म लोहकिट्टं च।
शुद्धरसस्यार्धपलं भृङ्गस्य रसं च केशराजस्य ॥४८॥
प्रस्थोन्मितं च दत्त्वा लौहे पात्रेऽथ दण्डसंघृष्टम्।
शुष्कं घृतमधुयुक्तं मृदितं स्थाप्यं च भाण्डके स्निग्धे४९
उपयुक्तमेतदचिराग्निहन्ति कफपित्तजान्रोगान्।
शूलं तथाम्लपित्तं ग्रहणीमपि कामलामुग्राम् ॥ ५० ॥

हर्रे १६ तोला, शुद्धगन्धक तथा मण्डूर प्रत्येक ८ तोला, शुद्ध पारद २ तोला, भागरेका रस तथा काले भागरेका रस प्रत्येक १ प्रस्थ मिलाकर लोहेके खरलमे दण्डसे घोटना चाहिये। सूख जानेपर घी और शहद मिलाकर चिकने वर्तनमें रखना चाहिये। इसका

---

* बृहच्छतावरीमण्डूरम्–"शतावरीरसप्रस्थे प्रस्थे च सुरभीजले। अजायाः पयसः प्रस्थे प्रस्थे धात्रीरसस्य च॥ लोहकिट्टपलान्यष्टौ शर्करायाश्च षोडश। दत्त्वाज्यकुडवं चैव पचेन्मृद्वग्निना शनैः॥ सिद्धशीते घटे नीते चूर्णानीमानि दापयेत्। विडङ्गत्रिफलाव्योषयमानीगजपिप्पलीः॥ द्विजीरकघनानां च श्लक्ष्णान्यक्षसमानि च। खादेदग्निबलापेक्षी भोजनादौ विचक्षणः॥ निहन्ति पक्तिशूलं च अम्लपित्तं सुदारुणम्। रक्तपित्तं च शूलं च पाण्डुरोगं हलीमकम्॥" शतावरीका रस १ सेर ९ छ० ३ तोला, गोमूत्र १ सेर ९ छ० ३ तोला, बकरीका दूध १ सेर ९ छ० ३ तोला, आंवलेका रस १ सेर ९ छ० ३ तोला, लोहकिट्ट (मण्डूर) ३२ तोला, शक्कर ६४ तोला, तथा घी ३२ तो०सब एकमें मिलाकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये। तैयार हो जानेपर उतार ठण्ढा कर वायविडंग, त्रिफला, त्रिकटु, अजवाइन, गजपीपल, दोनों जीरा, तथा नागरमोथा प्रत्येक एक तोलाका चूर्ण छोडकर अग्निबलके अनुसार भोजनके आदिमें इसे खाना चाहिये। यह कठिन परिणामशूल, अम्लपित्त, रक्तपित्त, शूल, पाण्डुरोग और हलीमकको नष्ट करता है। सामान्य मात्रा ४ रत्तीसे १ माशेतक।

प्रयोग करनेसे शीघ्र ही कफपित्तजन्यरोग, शूल अम्लपित्त, ग्रहणी और भयकर कामलारोग नष्ट होते हैं ॥ ४८-५० ॥

त्रिफलालोहम् ।

अक्षामलकशिवानां स्वरसैः पक्वं सुलोहजं चूर्णम् ।
सगुडं यस्तूपभुंक्ते मुञ्चति सद्यस्त्रिदोषजं शूलम् ॥५१॥

बहेडा, आंवला तथा हर्रके स्वरस या क्वाथके साथ पकाया गया लौह भस्म गुडके साथ खानेसे त्रिदोषज शूल नष्ट होता है ॥ ५१ ॥

लोहावलेहः ।

लोहस्य रजसो भागास्त्रिफलायास्तथा त्रयः ।
गुडस्याष्टौ तथा भागा गुडान्मूत्रं चतुर्गुणम् ॥ ५२ ॥
एतत्सर्वं च विपचेद्गुडपाकविधानवित् ।
लिहेच्च तद्यथाशक्ति क्षये शूले च पाकजे ॥ ५३ ॥

लौहभस्म १ भाग, त्रिफला ३ भाग, गुड ८ भाग, गोमूत्र ३२ भाग सबको मिला पाक करना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर यथाशक्ति चाटना चाहिये । इससे क्षय तथा परिणामशूल नष्ट होता है ॥ ५२ ॥ ५३ ॥

धात्रीलोहम् ।

धात्रीचूर्णस्याष्टौ पलानि चत्वारि लोहचूर्णस्य ।
यष्टीमधुकरजश्च द्विपलं दद्यात्पटे घृष्टम् ॥ ५४ ॥
अमृताक्वाथेनैतच्चूर्णं भाव्यं च सप्ताहम् ।
चण्डातपेषु शुष्कं भूय पिष्ट्वा नवे घटे स्थाप्यम् ॥५५॥
घृतमधुना सह युक्तं भुक्त्वादौ मध्यतस्तथान्ते च ।
त्रीनपि वारान्खादेत्पथ्यं दोषानुबन्धेन ॥ ५६ ॥
भक्तस्यादौ नाशयति व्याधीन्पित्तानिलोद्भवान्सद्य. ।
मध्येऽन्नविष्टम्भं जयति नृणां संविदह्यते नान्नम् ॥५७॥
पानान्नकृतान्रोगान्भुक्तस्यन्ते शीलितं जयति ।
एवं जीर्यति चान्ने निहन्ति शूलं नृणां सुकष्टमपि ॥५८॥
हरति सहसा युक्तो योगश्चायं जरत्पित्तम् ।
चक्षुष्यः पलितघ्नः कफपित्तसमुद्भवाञ्जयेद्रोगान् ।
प्रसादयत्यपि रक्तं पाण्डुत्वं कामला जयति ॥ ५९ ॥

आवलेका चूर्ण ३२ तोला, लौहभस्म १६ तोला, तथा मौरेठीका चूर्ण ८ तोला सबको एकमें मिलाकर गुर्चके क्वाथकी सात दिनतक भावना देनी चाहिये । फिर कडी धूपमें सुखाय घोटकर नये घटमें रखना चाहिये । फिर घी और शहदके साथ भोजनके आदि, मध्य तथा अन्तमें इस रीतिसे प्रतिदिन तीन वार बलानुसार खाना चाहिये । पथ्य दोषोंके अनुसार लेना चाहिये । भोजनके पहिले खानेसे पित्त, वातजन्य रोगोंको शीघ्र ही नष्ट करता है । मध्यमें अन्नके विबन्धको नष्ट कर पचाता है । भोजनके अन्तमें सेवन करनेसे अन्नपानके दोषोंको नष्ट करता है । ऐसेही परिणामशूल तथा अन्नद्रव नामक शूलको भी नष्ट करता है । नेत्रोंको लाभ पहुँचाता, बालोंको काला करता, कफ, तथा पित्तज रोगोंको शान्त करता और रक्तको शुद्ध करता तथा पाण्डुरोग और कामलाको नष्ट करता है ॥ ५४-५९ ॥

लौहामृतम् ।

तनूनि लोहपत्राणि तिलोत्सेधसमानि च ।
कशिकामूलकल्केन संलिप्य सार्षपेण वा ॥ ६० ॥
विशोष्य सूर्यकिरणैः पुनरेवावलेपयेत् ।
त्रिफलाया जले ध्मातं वापयेच्च पुनः पुनः ॥ ६१ ॥
ततः संचूर्णितं कृत्वा कर्पटेन तु छानयेत् ।
भक्षयेन्मधुसर्पिर्भ्यां यथाग्न्येतत्प्रयोगत. ॥ ६२ ॥
माषकं त्रिगुणं वाथ चतुर्गुणमथापि वा ।
छागस्य पयस. कुर्यादनुपानमभावत. ॥ ६३ ॥
गव्यं शृतेन दुग्धेन चतुःषष्टिगुणेन च ।
पक्तिशूलं निहन्त्येतन्मासेनैकेन निश्चितम् ॥ ६४ ॥
लोहामृतमिदं श्रेष्ठं ब्रह्मणा निर्मितं पुरा ।
ककारपूर्वकं यच्च यच्चाम्लं परिकीर्तितम् ॥ ६५ ॥
सेव्यं तन्न भवेदत्र मांसं चानूपसम्भवम् ।

तिलके समान पतले लोहेके पत्रोंको कशिका (एक प्रकार चामर घास नामसे प्रसिद्ध) की जडके कल्कसे अथवा सरसोंके कल्कसे लिप्त कर फिर धूपमें लेप सुख जानेपर दूसरी बार सरसोंके कल्कसे लेप कर सुखाना चाहिये । फिर तपा तपा कर त्रिफलाके क्वाथमें बुझाना चाहिये । फिर चूर्ण कर कपडेसे छान लेना चाहिये । फिर इसे अग्निके अनुसार शहद व घीके साथ खाना चाहिये । १ माशा, ३ माशा अथवा ४ माशा तक, ऊपरसे लौहसे ६४ गुना बकरीका दूध अथवा गायका दूध गरम कर गुनगुना गुनगुना पीना चाहिये । यह एक महीनेमें परिणामशूलको नष्ट करता है । इसे ब्रह्माने सर्व प्रथम बनाया इसके सेवनमें ककारादि नामवाले द्रव्य तथा अम्ल पदार्थ व जलप्राय प्रदेशके प्राणियोंके मांसको न खाना चाहिये ॥ ६०-६५ ॥

खण्डामलकी ।

स्विन्नपीडितकूष्माण्डात्तुलार्धं भृष्टमाज्यत. ॥ ६६ ॥
प्रस्थार्धे खण्डतुल्यं तु पचेदामलकीरसात् ।
प्रस्थे सुस्विन्नकूष्माण्डरसप्रस्थे विघट्टयन् ॥ ६७ ॥
दर्व्या पाके गते तस्मिंश्चूर्णीकृत्य विनिक्षिपेत् ।
द्वे द्वे पले कणाजाजीशुण्ठीनां मरिचस्य च ॥ ६८ ॥
पलं तालीसधन्याकचातुर्जातकमुस्तकम् ।
कर्षप्रमाणं प्रत्येकं प्रस्थार्धं माक्षिकस्य च ॥ ६९ ॥
पक्तिशूलं निहन्त्येतद्दोषत्रयभवं च यत् ।
छर्द्यम्लपित्तमूर्च्छाश्च श्वासकासावरोचकम् ॥ ७० ॥
हृच्छूलं रक्तपित्तं च पृष्ठशूलं च नाशयेत् ।
रसायनमिदं श्रेष्ठं खण्डामलकसंज्ञितम् ॥ ७१ ॥

उबालकर निचोया गया कूष्माण्ड २॥ सेर, घी ६४ तो० छोडकर भूनना चाहिये । फिर इसमें २॥ सेर मिश्री १२८ तो० आवलेका रस, तथा १२८ तो० उबाले हुए कूष्माण्डका स्वरस मिलाकर पकाना चाहिये। पाक सिद्ध हो जानेपर छोटी पीपल, जीरा तथा सोंठ प्रत्येक ८ तोला, काली मिर्च ४ तोला, तालीसपत्र, धनिया, दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर, व नागरमोथा प्रत्येक १ तोला तथा ठण्डा होने पर शहद ६४ तोला मिलाकर रखना चाहिये । यह त्रिदोषजन्य परिणामशूल, वमन, अम्लपित्त, मूर्छा, श्वास, कास, अरुचि, हृदयके दर्द, रक्तपित्त तथा पीठके शूलको नष्ट करता है । यह खंडामलक श्रेष्ठ रसायन है ॥६६-७१॥

नारिकेलखण्डः ।

कुडवमितमिह स्यान्नारिकेलं सुपिष्टं
पलपरिमितसर्पिःपाचितं खण्डतुल्यम् ।
निजपयसि तदेतत्प्रस्थमात्रे विपक्वं
गुडवदथ सुशीते शाणभागान्क्षिपेच्च ॥ ७२ ॥
धन्याकपिप्पलिपयोदतुगाद्विजीरा-
न्शाणं त्रिजातमिभकेशरवह्निचूर्ण्य ।
हन्त्यम्लपित्तमरुचिं क्षयमस्रपित्तं
शूलं वमिं सकलपौरुषकारि हारि ॥ ७३ ॥

अच्छी तरह पिसा हुआ कच्चा नारियलका गूदा १६ तो० ४ तोला घीमें भूनना चाहिये सुगन्ध उठने लगनेपर बराबर मिश्री तथा नारियलका जल १२८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये । अवलेह तैयार हो जानेपर उतार ठंडा कर धनिया, छोटी पीपल, नागरमोथा, वंशलोचन सफेद जीरा तथा स्याह जीरा प्रत्येक ३ माशे तथा दालचीनी, तेजपात, इलायची, नागकेशर प्रत्येक ६ रत्तीका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त, अरुचि, क्षय, रक्तपित्त, शूल, वमन नष्ट होते हैं तथा पुरुषत्व बढता है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

कलायचूर्णादिगुटी ।

कलायचूर्णभागौ द्वौ लोहचूर्णस्य चापरः ।
कारवेल्लपलाशानां रसेनैव विमर्दितः ॥ ७४ ॥
कर्षमात्रां ततश्चैकां भक्षयेद्गुटिकां नरः ।
मण्डानुपानात्सा हन्ति जरत्पित्तं सुदारुणम् ॥ ७५ ॥

मटरका चूर्ण २ भाग, लौहभस्म १ भाग वर्तमान समयके लिये १ माशाकी वटी पर्याप्त होगी । भाग दोनोंको करेलेके पत्तेके रससे घोटकर १ तोलेकी गोली बना लेनी चाहिये। यह मण्डके अनुपानके साथ सेवन करनेसे जरत्पित्तको शान्त करती है ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

त्रिफलायोगौ ।

लिह्याद्वा त्रैफलं चूर्णमयश्चूर्णसमन्वितम् ।
यष्टीचूर्णेन वा युक्तं लिह्यात्क्षौद्रेण तद्वदे ॥ ७६ ॥

अथवा त्रिफलाका चूर्ण लौह भस्मके साथ अथवा मौरेटीके चूर्णके साथ शहद मिलाकर चाटनेसे जरत्पित्त शान्त होता है ॥ ७६ ॥

अन्नद्रवशूलचिकित्सा ।

पित्तान्तं वमनं कृत्वा कफान्तं च विरेचनम् ।
अन्नद्रवे च तत्कार्यं जरत्पित्ते यदीरितम् ॥ ७७ ॥
आमपक्वाशये शुद्धे गच्छेदन्नद्रवः शमम् ।

पित्तान्त वमन व कफान्त विरेचन करनेके अनन्तर जरत्पित्तकी जो चिकित्सा बतायी गयी वह अन्नद्रव शूलमें भी करनी चाहिये । आमाशय व पक्वाशय शुद्ध हो जाने पर अन्नद्रवशूल शान्त हो जाता है ॥ ७७ ॥—

विविधा योगाः ।

मापेण्डरी सतुपिका स्विन्ना सर्पिर्युता हिता ॥ ७८ ॥
गोधूममण्डकं तत्र सर्पिषा गुडसंयुतम् ।
ससितं शीतदुग्धेन मृदितं वा हितं मतम् ॥ ७९ ॥
शालितण्डुलमण्डं वा कवोष्णं सिक्थवर्जितम् ।
वाट्यं क्षीरेण संसिद्धं घृतपूरं सशर्करम् ॥ ८० ॥
शर्करां भक्षयित्वा वा क्षीरमुत्कथितं पिबेत् ।
पटोलपत्रयूषेण खादेच्चणकसक्तुकान् ॥ ८१ ॥

विना छिल्का निकाली उडदकी पिट्ठीके बडे घीमें पकाकर खाना चाहिये । अथवा गेहूंका मण्ड घी

व गुड मिलाकर खाना चाहिये अथवा मिश्री व ठण्डा दूध मिलाकर खाना चाहिये । अथवा शाली चावलोंका मण्ड कुछ गरम गरम मीथ रहित अथवा यवका मण्ड दूध, घी व शक्कर मिलाकर पीना चाहिये । अथवा शक्कर खाकर ऊपरसे गरम दूध पीना चाहिये । अथवा परवलके पत्तेके यूषके साथ चनाके सत्तुओंको खाना चाहिये ॥ ७८-८१ ॥

पथ्यविचारः।

अन्नद्रवे जरत्पित्ते वह्निर्मन्दो भवेद्यत.।
तस्मादत्रान्नपानानि मात्राहीनानि कल्पयेत् ॥ ८२ ॥

अन्नद्रव तथा जरत्पित्तमें अग्नि मन्द हो जाती है । अतः इसमे अन्नपान आदि सब पदार्थोंको अल्पमात्रामें ही देना उचित्त है ॥ ८२ ॥

इति परिणामशूलाधिकारः समाप्तः ।

अथोदावर्ताधिकारः।

सामान्यक्रमः।

त्रिवृत्सुधापत्रतिलादिशाक-
ग्राम्यौदकानूपरसैर्यवान्नम् ।
अन्यैश्च सृष्टानिलमूत्रविड्भि-
रद्यात्प्रसन्नागुडसीधुपायी ॥ १ ॥

निसोथ, सेहुण्डके पत्ते, व तिल आदिके शाक तथा ग्राम्य, आनूप जलमें रहनेवाले प्राणियोंके मांसरस तथा मल मूत्र व वायुको शुद्ध करनेवाले दूसरे पदार्थोंके साथ यवका दलिया तथा रोटी आदि खाना चाहिये और शराबका स्वच्छ भाग अथवा गुडसे बनाया गया सीधु पीना चाहिये ॥ १ ॥

कारणभेदेन चिकित्साभेदः।

आस्थापनं मारुतजे स्निग्धस्विन्नस्य शस्यते ।
पुरीषजे तु कर्तव्यो विधिरानाहिकश्च यः ॥ २ ॥
क्षारवैतरणौ वस्ती युञ्ज्यात्तत्र चिकित्सक.।

वातजन्य उदावर्तमें स्नेहन स्वेदनके अनन्तर आस्थापन वस्ति देना चाहिये । मलावरोधसे उत्पन्न उदावर्तमें आनाह नामकी चिकित्सा करनी चाहिये । तथा क्षार वस्ति और वैतरणवस्ति (आस्थापनका भेद) देना चाहिये ॥ २ ॥

श्यामादिगणः।

श्यामादन्तीद्रवन्तीत्वङ्महाश्यामास्नुहीत्रिवृत् ॥ ३ ॥
सप्तला शंखिनी श्वेता राजवृक्षः सतिल्वकः ।
कम्पिल्लकं करञ्जश्च हेमक्षीरीत्ययं गणः ॥ ४ ॥
सर्पिस्तैलरजःक्वाथकल्केष्वन्यतमेषु च ।
उदावर्तोदरानाहविषगुल्मविनाशन. ॥ ५ ॥

काला निसोथ, दन्ती द्रवन्ती (दन्तीभेद) की छाल विधारा, थूहर, सफेद निसोथ, सप्तला(सेहुण्डका भेद) कालादाना, सफेद विष्णुक्रान्ता, अमलतासका गूदा, पटानीलोध, कबीला, कञ्जा तथा हेमक्षीरी (इसे सत्यानाशी तथा भडभाड भी कहते हैं) इन औषधियोंके साथ घृत अथवा तैलका पाक करके अथवा इन औषधियोंका चूर्ण, क्वाथ अथवा कल्क आदि किसी प्रकार सेवन करनेसे उदावर्त, उदररोग, आनाह, विष और गुल्म नष्ट होता है ॥ ३-५ ॥

त्रिवृतादिगुटिका।

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुष्पञ्चभागिका.।
गुडिका गुडतुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहा. ॥ ६ ॥

निसोथ २ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, बडी हर्रका छिल्का ५ भाग कूट छान सबके बराबर गुड मिलाकर गोली बना लेनी चाहिये। यह मलकी रुकावटको नष्ट करती है ॥ ६ ॥

हरितक्यादिचूर्णम्।

हरीतकीयवक्षारपीलूनि त्रिवृता तथा ।
घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्तविनाशनम् ॥ ७ ॥

बडी हर्रका छिल्का, यवाखार, पीलु तथा निसोथ समान भाग ले चूर्ण बनाकर घीके साथ खानेसे उदावर्त नष्ट होता है ॥ ७ ॥

हिंग्वादिचूर्णम्।

हिंगुकुष्ठवचार्सर्जिविडं चेति द्विरुत्तरम् ।
पीतं मद्येन तच्चूर्णमुदावर्तहरं परम् ॥ ८ ॥

भुनी हींग १ भाग, कूठ २ भाग, बच ४ भाग, सज्जीखार ८ भाग तथा विडनमक १६ भाग ले चूर्ण बनाकर शराबके साथ पीनेसे उदावर्तरोग निःसन्देह नष्ट होता है ॥ ८ ॥

नाराचचूर्णम्।

खण्डपल त्रिवृता समसुपकुल्याकर्षचूर्णित श्लक्ष्णम् ।
प्राग्भोजने च समधु विडालपदकं लिहेत्प्राज्ञः ॥ ९ ॥

घृतद्राक्षपुरीषे पित्ते कफे च विनियोज्यम्।
स्वादुर्नृपयोग्योऽयं योगो नाराचको नाम्ना ॥ १० ॥

मिश्री ४ तोला, निसोथ ४ तोला छोटी पीपल १ तोला इन औषधियोंका महीन चूर्ण कर भोजनके पहिले १ तोलाकी मात्रा शहदके साथ चाटनी चाहिये। इसका कडे दस्तोंके आनेमें तथा पित्त और कफजन्य उदावर्तमें प्रयोग करना चाहिये। यह मीठा राजाओंके योग्य है। इसे नाराचचूर्ण कहते हैं ॥ ९ ॥ १० ॥

लशुनप्रयोगः।

रसोनं मद्यसमिश्रं पिबेत्प्रातः प्रकाङ्क्षितः।
गुल्मोदावर्तशूलघ्नं दीपनं बलवर्धनम् ॥ ११ ॥

प्रातःकाल भूख लगनेपर शुद्ध लहसुनको मद्यके साथ मिलाकर पीवे। यह गुल्म, उदावर्त व शूलको नष्ट करता अग्नि दीप्त करता तथा बलको बढाता है ॥ ११ ॥

फलवर्तयः।

हिङ्गुमाक्षिकसिन्धूत्थैः पक्त्वा वर्तिं सुनिर्मिताम्।
घृताभ्यक्तां गुदे दद्यादुदावर्तविनाशिनीम् ॥ १२ ॥
मदनं पिप्पली कुष्ठं वचा गौराश्च सर्षपाः।
गुडक्षारसमायुक्ताः फलवर्तिः प्रशस्यते ॥ १३ ॥
आगारधूमसिन्धूत्थतैलयुक्ताम्लमूलकम्।
क्षुण्णं निर्गुण्डिपत्रं वा स्विन्ने पायौ क्षिपेद्बुध ॥१४॥

हींग, शहद व सेंधानमकको पकाकर बनायी गयी बत्ती घी चुपरकर गुदामें रखनेसे उदावर्त नष्ट होता है, इसी प्रकार मैनफल, छोटी पीपल, कूठ, दूधिया वच व सफेद सरसों महीन पीस गुड और क्षार मिलाकर बनायी गयी बत्ती भी उत्तम है अथवा गृहधूम, सेंधानमक तथा तैलके साथ उठायी गयी खट्टी मूलीकी बत्ती अथवा केवल सम्भालूकी पत्तीके कल्ककी बत्ती गुदाका स्वेदन कर गुदामें रखनी चाहिये ॥ १२–१४ ॥

मूत्रजोदावर्तचिकित्सा।

सौवर्चलाढ्यां मदिरां मूत्रे त्वभिहते पिबेत्।
एलां वाप्यथ मद्येन क्षीरं वारि पिबेच्च सः ॥ १५ ॥
दुःस्पर्शास्वरसं वापि कषायं ककुभस्य च।
एर्वारुबीजं तोयेन पिबेद्वा लवणीकृतम् ॥ १६ ॥
पञ्चमूलीश्रृतं क्षीरं द्राक्षारसमथापि वा।
सर्वथैवोपयुञ्जीत मूत्रकृच्छ्राश्मरीविधिम् ॥ १७ ॥

मूत्रकी रुकावटसे उत्पन्न उदावर्तमें काला नमक छोडकर शराब पीना चाहिये। अथवा छोटी इलायचीका चूर्ण शराबके साथ अथवा जल व दूध एकमें मिलाकर पीना चाहिये। अथवा यवासाका स्वरस अथवा अर्जुनकी छालका क्वाथ अथवा ककडीके बीज पानीमें पीस लवण मिलाकर पीना चाहिये। अथवा पञ्चमूलसे सिद्ध दूध अथवा मुनक्केका रस पीना चाहिये। तथा मूत्रकृच्छ्र व अश्मरीनाशक विधिका सर्वथा सेवन करना चाहिये ॥ १५–१७ ॥

जृम्भजाद्युदावर्तचिकित्सा।

स्नेहस्वेदैरुदावर्तं जृम्भजं समुपाचरेत्।
अश्रुमोक्षोऽश्रुजे कार्यः स्वप्नो मद्यं प्रियाः कथाः ॥१८॥
क्षवजे क्षवपत्रेण घ्राणस्थेनानयेत्क्षवम्।
तथोर्ध्वजत्रुकोऽभ्यङ्गः स्वेदो धूमः सनावनः ॥ १९ ॥
हितं वातघ्नमद्यं च घृतं चौत्तरभक्तिकम्।
उद्गारजे क्रमोपेतं स्नैहिकं धूममाचरेत् ॥ २० ॥
छर्द्याघातं यथादोषं नस्यस्नेहादिभिर्जयेत्।
भुक्त्वा प्रच्छर्दनं धूमो लंघनं रक्तमोक्षणम् ॥ २१ ॥
रूक्षान्नपाने व्यायामो विरेकश्चात्र शस्यते।

जम्भाईके अवरोधसे उत्पन्न उदावर्तमें स्नेहन व स्वेदन करना चाहिये। आंसुओंके अवरोधसे उत्पन्नमें आंसुओंका लाना, सोना, मद्य पीना तथा प्रिय कथायें सुनना हितकर है। छिंकाके रोकनेसे उत्पन्नमें नकछिकनीके पत्तोंको पीस नाकमें रखकर छींक लाना चाहिये। तथा जत्रुके ऊपर अभ्यङ्ग, स्वेदन तथा धूमपान व नस्य तथा वातघ्न मद्य व घृतके साथ भोजन करना हितकर है। उद्गारजन्यमें विधिपूर्वक स्नेहयुक्त धूमपान करना चाहिये। वमनके रोकनेसे उत्पन्न उदावर्तमें दोषोंके अनुसार नस्य, स्नेहन आदि करना, भोजन कर वमन करना, धूमपान, लघन, रक्तमोक्षण, रूक्ष अन्नपान, व्यायाम तथा विरेचन देना हितकर होता है ॥ १८-२१ ॥

शुक्रजोदावर्तचिकित्सा।

बस्तिशुद्धिकरावापं चतुर्गुणजलं पयः ॥ २२ ॥
आवारिनाशात्क्वथितं पीतवन्तं प्रकामतः।
रमयेयुः प्रिया नार्यः शुक्रोदावर्तिनं नरम् ॥ २३ ॥
अत्राभ्यङ्गावगाहाश्च मदिराश्चरणायुधाः।
शालिः पयोनिरूहाश्च शस्तं मैथुनमेव च ॥ २४ ॥

बस्ति शुद्ध करनेवाले पदार्थोंका कल्क तथा चतुर्गुण जल छोडकर पकाये गये दूधको पिलाकर सुन्दरी स्त्रियोंका सहवास करावे तथा अभ्यङ्ग (विशेषतः बस्ति व लिङ्गमें) जलमें बैठाना, शराब, मुरगेका मांसरस,

शालिके चावल, दूध, निरूहण बस्ति और मैथुन करना विशेष हितकर है ॥ २२-२४ ॥

क्षुद्विघातादिजचिकित्सा।

क्षुद्विघाते हितं स्निग्धमुष्णमल्पं च भोजनम्।
तृष्णाघाते पिबेन्मन्थं यवागूं चापि शीतलाम् ॥ २५ ॥
रसेनाद्यात्सुविश्रान्तः श्रमघातातुरो नरः।
निद्राघाते पिबेत्क्षीरं स्वप्नं संवाहनानि च ॥ २६ ॥

भूखके रोकनेसे उत्पन्न विकारमें गरम व थोड़ा भोजन करना हितकर है। प्यासके रोकनेसे उत्पन्नमें मन्थ अथवा शीतल यवागू पीना चाहिये। श्रमज श्वाससे पीडित (थके हुए पुरुषको विश्राम कराकर मांसरसके साथ भोजन कराना चाहिये। निद्राघातजमें दूध पीना सोना तथा देह दबवाना हितकर है ॥ २५-२६ ॥

इत्युदावर्ताधिकारः समाप्तः।

अथानाहाधिकारः।

चिकित्साक्रमः।

उदावर्तक्रियानाहे सामे लङ्घनपाचनम् ॥ १ ॥

आनाहमें उदावर्तकी चिकित्सा तथा आमसहितमें लंघन व पाचन करना चाहिये ॥ १ ॥

द्विरुत्तरं चूर्णम्।

द्विरुत्तरा हिङ्गुवचा सकुष्ठा
सुवर्चिका चेति विडङ्गचूर्णम्।
सुखाम्बुनानाहविषूचिकार्ति-
हृद्रोगगुल्मोर्ध्वसमीरणघ्नम् ॥ २ ॥

भुनी हींग १ भाग, दूधिया बच २ भाग, कूठ ४ भाग, सज्जीखार ८ भाग, वायविडङ्ग १६ भाग सबका महीन चूर्ण कर गुनगुने जलके साथ पीनेसे अफारा, हैजा, हृद्रोग, गुल्म तथा डकारोंका अधिक आना शान्त होता है ॥ २ ॥

वचादिचूर्णम्।

वचाभयाचित्रकयावशूकान्
सपिप्पलीकातिविषान्सकुष्ठान्।
उष्णाम्बुनानाहविमूढवातान्
पीत्वा जयेदाशु हितौदनाशी ॥ ३ ॥

दूधिया बच, बड़ी हर्रका छिल्का, चीतकी जड, यवाखार, छोटी पीपल, अतीस तथा कूठ सबका महीन चूर्ण कर गुनगुने जलके साथ पीनेसे अफारा तथा वायुकी रुकावट शीघ्र ही नष्ट होती है। इसमें हितकारक पदार्थोंके साथ भात खाना चाहिये ॥ ३ ॥

त्रिवृतादिगुटिका।

त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुक्क्षीरेण भावयेत्।
वटिका मूत्रपीतास्ताः श्रेष्ठाश्चानाहभेदिकाः ॥ ४ ॥

निसोथ, बड़ी हर्रका छिल्का तथा काला निसोथ सबको महीन पीस थूहरके दूधकी भावना दे गोली बना गोमूत्रके साथ पीनेसे अफारा नष्ट होता है ॥ ४ ॥

क्षारलवणम्।

फलं च मूलं च विरेचनोक्तं
हिङ्ग्वर्कमूलं दशमूलमग्र्यम्।
स्नुक्चित्रकौ चैव पुनर्नवा च
तुल्यानि सर्वैर्लवणानि पञ्च ॥ ५ ॥
स्नेहैः समूत्रैः सह जर्जराणि
शरावसन्धौ विपचेत्सुलिप्ते।
पक्वं सुपिष्टं लवणं तदन्नैः
पानैस्तथानाहरुजाघ्नमग्र्यम् ॥ ६ ॥

विरेचनाधिकारोक्त फल तथा मूल, हींग, आककी जड़, दशमूल श्रेष्ठ, चीतकी जड़ तथा पुनर्नवा सब समान भाग, सबके समान पांचों नमक ले चूर्ण कर स्नेह तथा गोमूत्रमें मिला शरावसम्पुटमें बन्द कर फूंक देना चाहिये। इस तरह पकाये लवणको पीसकर अन्न तथा पीनेकी चीजोंके साथ प्रयोग करनेसे अफारा अवश्य दूर होता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

राठादिवर्तिः।

राठधूमविडव्योषगुडमूत्रैर्विपाचिता।
गुदेऽङ्गुष्ठसमा वर्तिर्विधेयानाहशूलनुत् ॥ ७ ॥

मैनफल, घरका धुआं, विडलवण, त्रिकटु, गुड तथा गोमूत्र सबको एकमें मिला पकाकर बनायी गयी अंगूठेके समान मोटी बत्तीको गुदामें रखनेसे अफारा व शूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥

---

१ जितने गुड तथा गोमूत्रसे पकाकर बत्ती बन सके उतना गुड व गोमूत्र छोडना चाहिये। यह शिवदासजीका मत है कुछ आचार्योंका मत है कि समस्त चूर्णके समान गुड, सबसे चतुर्गुण गोमूत्र छोडकर बत्ती बनानी चाहिये।

त्रिकटुकादिवर्तिः ।

वर्तिस्त्रिकटुकसैन्धवसर्षपगृहधूमकुष्ठमदनफलैः ।
मधुनि गुडे वा पक्त्वा पायावङ्गुष्ठमानतो वेश्या ॥ ८ ॥
वर्तिरियं दृष्टफला गुदे शनैः प्रणिहिता घृताभ्यक्ता ।
आमाहोदावर्तशमनी जठरगुल्मनिवारिणी ॥ ९ ॥

त्रिकटु, सेंधानमक, सरसों, घरका धुआं, कूठ, मैनफलका चूर्ण कर शहद अथवा गुडमे मिलाकर पकाकर अंगूठेके बराबर मोटी वत्ती घी चुपरकर गुदामें रखनी चाहिये । इसका फल देखा गया है । यह अफारा, उदावर्त, उदर व गुल्मको नष्ट करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

शुष्कमूलकाद्यं घृतम् ।

मूलकं शुष्कमार्द्रं च वर्षाभू पञ्चमूलकम् ।
आरेवतफल चापि पिष्ट्वा तेन पचेद्घृतम् ।
तत्पीयमानं शमयेदुदावर्तमसंशयम् ॥ १० ॥

सूखी और गीली मूली, पुनर्नवाकी जड, लघुपञ्चमूल तथा अमलतासका गूदा सब समान भाग ले कल्क करना चाहिये कल्कसे चौगुना घी और घीसे चौगुना जल मिला पकाकर सेवन किया गया घृत निःसन्देह उदावर्तको शान्त करता है ॥ १० ॥

स्थिराद्यं घृतम् ।

स्थिरादिवर्गस्य पुनर्नवाया
सम्पाकपूतीकरञ्जयोश्च ।
सिद्धः कषाये द्विपलांशिकानां
प्रस्थो घृतात्स्यादतिरुद्धवाते ॥ ११ ॥

शालपर्णी आदि पञ्चमूल,पुनर्नवा, अमलतासका गूदा, कञ्जा तथा दुर्गन्धितकञ्जा प्रत्येक ८ तोला ले काढा बनाकर घी १२८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । यह घी वायुकी रुकावटको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

इत्यानाहाधिकारः समाप्तः ।

१ यहांपर त्रिकटुकादि मिलाकर १ कर्ष, गुड १ कर्ष तथा मधु ४ कर्ष मिलाकर बत्ती बनानी कुछ आचार्योंको अभीष्ट है पर इस प्रकार बत्ती बननेमें ही सन्देह है अतः जितनेसे बन सके उतना परिमाण छोडना चाहिये ।

अथ गुल्माधिकारः ।

चिकित्साक्रमः ।

लघ्वन्नं दीपनं स्निग्धमुष्णं वातानुलोमनम् ।
बृंहणं यद्भवेत्सर्वं तद्धितं सर्वगुल्मिनाम् ॥ १ ॥
स्निग्धस्य भिषजा स्वेदः कर्तव्यो गुल्मशान्तये ।
स्रोतसां मार्दवं कृत्वा जित्वा मारुतमुल्बणम् ॥ २ ॥
भित्त्वा विबन्धं स्निग्धस्य स्वेदो गुल्ममपोहति ।
कुम्भीपिण्डेष्टकास्वेदान्कारयेत्कुशलो भिषक् ॥ ३ ॥
उपनाहाश्च कर्तव्याः सुखोष्णाः शाल्वणादयः ।
रक्तानेऽवसेको रक्तस्य बाहुमध्ये शिराव्यधः ॥ ४ ॥
स्वेदोऽनुलोमनं चैव प्रशस्तं सर्वगुल्मिनाम् ।
पेया वातहरैः सिद्धाः कौलत्था धन्वजा रसाः ॥ ५ ॥
खडाः सपञ्चमूलाश्च गुल्मिनां भोजने हिताः ।

जो पदार्थ हल्के, अग्निदीपक, स्निग्ध, वायुके अनुलोमन करनेवाले तथा बृंहण होते हैं वे समस्त गुल्मवालोंको हितकर है । गुल्मकी शान्तिके लिये स्नेहन कर स्वेदन करना चाहिये । स्नेहन करनेके अनन्तर किया गया स्वेदन छिद्रोंको मुलायम करता, बढे वायुको शान्त करता तथा बन्धे हुए मलकी गाठोंको फोडकर गुल्मको नष्ट करता है । इसलिये वैद्य जैसा उचित समझे कुम्भीस्वेद, पिण्डस्वेद, ईंष्टिकास्वेद तथा सुखोष्ण शाल्वणादि उपनाह करे । रक्तज गुल्ममें बाहुमे शिराव्यध कर रक्तको निकाल देना चाहिये । तथा स्वेदन व वायुका अनुलोमन सभी गुल्मोंमें हितकर है । तथा वातनाशक पदार्थोंसे सिद्ध पेया, कुलथीका यूष तथा जांगलप्राणियोंका मांसरस तथा पञ्चमूल मिलकर बनाये गये खड गुल्मवालोंको पथ्यके साथ देने चाहियें ॥ १-५ ॥

वातगुल्मचिकित्सा ।

मातुलुङ्गरसो हिङ्गु दाडिमं बिडसैन्धवम् ॥ ६ ॥
सुरामण्डेन पातव्यं वातगुल्मरुजापहम् ।
नागरार्धपलं पिष्ट्वा द्वे पले लुञ्चितस्य च ॥ ७ ॥

१ वातनाशक क्राथादिसे पूर्ण घडेकी भापसे स्वेदन करना कुम्भीस्वेदन, उबाले हुए उडद आदिकी पिण्टी बान्धकर स्वेदन करना पिण्डस्वेद और ईंटें गरम कर वातनाशक क्राथसे सिञ्चन करना इष्टिका स्वेद कहा जाता है । स्वेदका विस्तार चरक सूत्रस्थान १४ अध्यायमें देखिये ।

तिलस्यैकं गुडपलं क्षीरेणोष्णेन पाययेत् ।
वातगुल्ममुदावर्तं योनिशूलं च नाशयेत् ॥ ८ ॥

बिजौरे निम्बूका रस, भुनी हींग, अनारका रस, विडनमक, सेंधानमक और शराबका अन्दी भाग मिलाकर पीनेसे वातगुल्म नष्ट होता है। इसी प्रकार सोंठ २ तोला, बिजौरे निम्बूका रस ८ तोला, काला तिल ४ तोला, गुड ४ तोला मिलाकर गरम दूधके साथ पिलाना चाहिये। यह वातगुल्म, उदावर्त और योनिशूलको नष्ट करता है ॥ ६–८ ॥

एरण्डतैलप्रयोगः ।

पिबेदेरण्डतैलं वा वारुणीमण्डमिश्रितम् ।
तदेव तैलं पयसा वातगुल्मी पिबेन्नरः ॥ ९ ॥

अथवा एरण्डका तैल नाड़ीके साथ अथवा दूधके साथ पीनेसे वातगुल्म नष्ट होता है ॥ ९ ॥

लशुनक्षीरम् ।

साधयेच्छुद्धशुष्कस्य लशुनस्य चतुष्पलम् ।
क्षीरोदकेऽष्टगुणिते क्षीरशेषं च पाययेत् ॥ १० ॥
वातगुल्ममुदावर्तं गृध्रसीं विषमज्वरम् ।
हृद्रोगं विद्रधिं शोषं शमयत्याशु तत्पयः ॥ ११ ॥
एवं तु साधिते क्षीरं स्तोकमप्यत्र दीयते ।
सर्जिकाकुष्ठसहितः क्षारः केतकिजोऽपि वा ॥ १२ ॥
तैलेन पीतः शमयेद्गुल्मं पवनसम्भवम् ।

शुद्ध सुखाया गया लहसुन १६ तोला अठगुने दूध और पानीमें मिलाकर पकाना चाहिये, दूधमात्र शेष रहनेपर पीना चाहिये। इससे वातगुल्म, उदावर्त, गृध्रसी, विषमज्वर, हृद्रोग, विद्रधि तथा राजयक्ष्मा शीघ्र ही शान्त होता है तथा इसी प्रकार सिद्ध दूधमें सज्जीखार, कूठ तथा केवडेका क्षार थोड़ा छोड़ एरण्ड-तैल मिलाकर पीनेसे वातज गुल्म शान्त होता है ॥ १०–१२ ॥–

उत्पत्तिभेदेन चिकित्साभेदः ।

वातगुल्मे कफे वृद्धे वान्तिश्चूर्णादिरिष्यते ॥ १३ ॥
पैत्ते तु रेचनं स्निग्धं रक्ते रक्तस्य मोक्षणम् ।
स्निग्धोष्णेनोद्दिते गुल्मे पैत्तिके स्रंसनं हितम् ॥ १४ ॥

१ लशुनसे चतुर्गुण दूध और चतुर्गुण ही जल मिलाकर पाक करना चाहिये।

रूक्षोष्णेन तु सम्भूते सर्पिः प्रशमनं परम् ।
काकोल्यादिमहातिक्तवासाद्यैः पित्तगुल्मिनम् ॥ १५ ॥
स्नेहितं संस्रयेत्पश्चाद्योजयेद्बस्तिकर्मणा ।
स्निग्धोष्णोत्थे पित्तगुल्मे त्रिवृतं मधुना लिहेत् ॥ १६ ॥
रेचनार्थी रसं वापि द्राक्षायाः सगुडं पिबेत् ।

वातज गुल्ममें कफ बढ़ जानेपर चूर्णादि देना तथा वमन कराना हितकर है (यद्यपि गुल्ममें वमनका निषेध है पर अपक्वावस्थामें उसका भी अपवाद हो जाता है) पित्त गुल्ममें स्नेहयुक्त रेचन और रक्त-जमें रक्तमोक्षण हितकर है। गरम और चिकने पदार्थोंसे उत्पन्न पित्त गुल्ममें विरेचन देना चाहिये। तथा रूखे और गरम पदार्थोंसे उत्पन्न गुल्ममें घृतपान परम लाभ दायक होता है। पित्त-गुल्मवालेको काकोल्यादि, महातिक्त अथवा वासादि घृतसे स्नेहन कर विरेचन देना चाहिये फिर बस्ति देना चाहिये। चिकने और गरम पदार्थोंसे उत्पन्न पित्तगुल्ममें शहदके साथ निशोथ विरेचनार्थ देना चाहिये अथवा अंगूरका रस गुड मिलाकर पीना चाहिये ॥ १३–१६ ॥–

विदह्यमानगुल्मचिकित्सा ।

दाहशूलाऽनिलक्षोभस्वप्ननाशारुचिज्वरैः ॥ १७ ॥
विदह्यमानं जानीयाद्गुल्मं तमुपनाहयेत् ।
पक्वे तु व्रणवत्कार्यं व्यधशोधनरोपणम् ॥ १८ ॥
स्वयमूर्ध्वमधो वापि स चेद्दोषः प्रपद्यते ।
द्वादशाहमुपेक्षेत रक्षन्नन्यानुपद्रवान् ॥ १९ ॥
परं तु शोधनं सर्पिः शुभं समधुतिक्तकम् ।

यदि गुल्ममें जलन, शूल, वायुका इधर उधर घूमना, निद्रानाश, अरुचि और ज्वर हो तो गुल्मको पकता हुआ समझना चाहिये, अतः उसमें पुल्टिस बाधकर पकाना चाहिये, पक जानेपर व्रणके समान चीरना, साफ करना और घाव भरना चाहिये। यदि पक जाने पर दोष अपने आप ऊपरसे या नीचेसे निकलने लग जावें तो और उपद्रवोंकी रक्षा करते हुए १२ दिन तक उपेक्षा करनी चाहिये। इसके अनन्तर तिक्तरस युक्त शोधन द्रव्योंके साथ सिद्ध घृत शहदके साथ शोधनके लिये प्रयत्न करे ॥ १७–१९ ॥–

रोहिण्यादियोगः ।

रोहिणी कटुका निम्बं मधुकं त्रिफलात्वचः ॥ २० ॥
कर्षांशास्त्रायमाणा च पटोलत्रिवृतापले ।
द्विपलं च मसूराणां साध्यमष्टगुणेऽम्भसि ॥ २१ ॥

घृताच्छेष घृतसम सर्पिषश्च चतुष्पलम्।
पिबेत्संमूर्च्छितं तेन गुल्म. शाम्यति पैत्तिकः॥ २२॥
ज्वरस्तृष्णा च शूलं च भ्रममूर्च्छारतिस्तथा।

कुटकी, नीमकी छाल, मौरेठी, त्रिफला, त्रायमाण प्रत्येक १ तोला, परवलकी पत्ती व निसोथ प्रत्येक ४ तोला, मसूर ८ तोला, सबको दुरकुचाकर ४२ पल अर्थात् १६८ तोला, जलमें पकाना चाहिये, १६ तोला बाकी रहनेपर उतार छान १६ तोला घी मिलाकर पीना चाहिये* इससे पैत्तिकगुल्म, ज्वर, तृष्णा, शूल, भ्रम, मूर्छा तथा बेचैनी शान्त होती है॥ २०-२२॥-

दीप्ताग्न्यादिषु स्नेहमात्रा।

दीप्ताग्नयो महाकायाः स्नेहसात्म्याश्च ये नराः॥ २३॥
गुल्मिनः सर्पदष्टाश्च विसर्पोपहताश्च ये।
ज्येष्ठां मात्रां पिबेयुस्ते पलान्यष्टौ विशेषत.॥ २४॥

दीप्ताग्नि, बडे शरीरवाले, जिनको स्नेहका अधिक अभ्यास है वे, गुल्म व विसर्पवाले तथा सांपसे काटे हुए मनुष्य स्नेहकी बडी मात्रा अर्थात् ८ पल (३२ तोला) पीवे॥ २३॥ २४॥

कफजगुल्मचिकित्सा।

लङ्घनोल्लेखने स्वेदे कृतेऽग्नौ सम्प्रधुक्षिते।
घृतं सक्षारकटुकं पातव्य कफगुल्मिनाम्॥ २५॥

लंघन, वमन, स्वेदन करनेके अनन्तर अग्नि दीप्त हो जानेपर क्षार और कटुद्रव्य मिश्रित घृत पिलाना चाहिये॥ २५॥

वमनयोग्यता।

मन्दोऽग्निर्वेदना मन्दा गुरुस्तिमितकोष्ठता।
सोत्क्लेशा चारुचिर्यस्य स गुल्मो वमनोपग.॥ २६॥

जिसकी अग्नि मन्द हो, पीडा भी मन्द हो, पेट भारी तथा जकडा हुआ तथा मिचलाई और अरुचि हो उसे वमन कराना चाहिये॥ २६॥

गुटिकादियोग्यता।

मन्देऽग्नावनिले मूढे ज्ञात्वा सस्नेहमाशयम्।
गुडिकाश्चूर्णनिर्यूहा. प्रयोज्या कफगुल्मिनाम्॥ २७॥
क्षाराऽरिष्टगणश्चापि दाहशोषे विधीयते।
पञ्चमूलीकृत तोयं पुराण वारुणीरसम्॥ २८॥
कफगुल्मी पिबेत्काले जीर्णं माध्वीकमेव वा।

अग्नि मन्द, वायुकी रुकावट और आशय स्निग्ध होनेपर गोली, चूर्ण और क्वाथ कफगुल्मवालोंको देना चाहिये। तथा जलन व शोष इत्यादिमें क्षार व अरिष्टका प्रयोग करना चाहिये। पञ्चमूलका क्वाथ अथवा पुरानी ताडी अथवा पुराना माध्वीक (शहदसे बनाया गया आसव) पीना चाहिये॥ २७-२८॥-

लेपस्वेदौ।

तिलैरण्डातसीबीजसर्षपै. परिलिप्य वा॥ २९॥
श्लेष्मगुल्ममय' पात्रै सुखोष्णै. स्वेदयेद्भिषक्।

तिल, अण्डी, अलसी व सरसोंको पीस, लेप कर गरम किये हुए लोहेके पात्रसे स्वेदन करना चाहिये॥ २९॥-

तक्रप्रयोगः।

यमानीचूर्णित तक्रं विडेन लवणीकृतम्॥ ३०॥
पिबेत्सन्दीपन वातमूत्रवर्चोऽनुलोमनम्।

मट्ठेमे अजवायन तथा विडनमकका चूर्ण डालकर पीनेसे अग्निदीप्ति तथा वायु, मूत्र और, मलकी शुद्धता होती है॥ ३०॥-

द्वन्द्वजाचिकित्सा।

व्यामिश्रदोषे व्यामिश्र सर्व एव क्रियाक्रमः॥ ३१॥

मिले हुए दोषोंमें मिली हुई चिकित्सा करनी चाहिये॥ ३१॥

सन्निपातजचिकित्सा।

सन्निपातोद्भवे गुल्मे त्रिदोषघ्नो विधिर्हित।
यथोक्तेन सदा कुर्याद्भिषक् तत्र समाहित॥ ३२॥

सन्निपातज गुल्ममें त्रिदोषनाशक चिकित्सा यथोक्त विधिसे करनी चाहिये॥ ३२॥

वचादिचूर्णम्।

वचाविडाभयाशुण्ठीहिङ्गुकुष्ठाग्निदीप्यका।
द्वित्रिषट्चतुरेकाष्टसप्तपञ्चांशिका क्रमात्।
चूर्णं मद्यादिभि पीतं गुल्मानाहोदरापहम्॥ ३३॥
शूलार्शश्वासकासघ्नं ग्रहणीदीपनं परम्।

वच २ भाग, विडनमक ३ भाग, बड़ी हर्रका छिल्का ६ भाग, सोठ ४ भाग, भुनी हींग १ भाग,

* यद्यपि यह मात्रा बहुत अधिक है पर व्याधिके प्रभावसे इसकी अधिकता दोषकारक नहीं प्रत्युत लाभदायक होती है।

कूठ ८ भाग, चीतकी जड ७ भाग, तथा अजवायन ५ भाग सबका चूर्ण बना मद्य या गरम जल आदिसे पीनेसे गुल्म, आनाह उदररोग, शूल, अर्श, श्वास, कासको नष्ट करता तथा ग्रहणीको बलवान् बनाता है ॥ ३३ ॥-

यमान्यादिचूर्णम् ।

यमानीहिङ्गुसिन्धूत्थक्षारसौवर्चलाभया ।
सुरामण्डेन पातव्या गुल्मशूलनिवारणाः ॥ ३४ ॥

अजवायन, भुनी हींग, सेधानमक, यवाखार, कालानमक तथा बडी हर्रके छिल्केके चूर्ण शराबके स्वच्छ भागके साथ पीनेसे गुल्म व शूल नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

हिंग्वाद्यं चूर्णं गुटिका वा ।

हिङ्गु त्रिकटुकं पाठां हपुषामभया शटीम् ।
अजमोदाजगन्धे च तिन्तिडीकाम्लवेतसौ ॥ ३५ ॥
दाडिमं पौष्करं धान्यमजाजीं चित्रकं वचाम् ।
द्वौ क्षारौ लवणे द्वे च चव्यं चैकत्र चूर्णयेत् ॥ ३६ ॥
चूर्णमेतत्प्रयोक्तव्यमन्नपानेष्वनत्ययम् ।
प्राग्भक्तमथवा पेयं मद्येनोष्णोदकेन वा ॥ ३७ ॥
पार्श्वहृद्वस्तिशूलेषु गुल्मे वातकफात्मके ।
आनाहे मूत्रकृच्छ्रे च गुदयोनिरुजासु च ॥ ३८ ॥
ग्रहण्यर्शोविकारेषु प्लीह्नि पाण्डवामयेऽरुचौ ।
उरोविबन्धे हिक्कायां श्वासे कासे गलग्रहे ॥ ३९ ॥
भावितं मातुलुङ्गस्य चूर्णमेतद्रसेन वा ।
बहुशो गुडिकाः कार्याः कार्मुकाः स्युस्ततोऽधिकम् ॥ ४० ॥

भुनी हींङ्ग, सोंठ, मिर्च, पीपल, पाढ़, हाऊवेर, बडी हर्रका छिल्का, कचूर, अजमोद, अजवाइन, तिन्तिडीक, अम्लवेत, अनारदाना, पोहकरमूल, धनिया, जीरा, चीतकी जड, बच, यवाखार, सज्जीखार, सेंधानमक, कालानमक तथा चव्य सबका चूर्ण कर अन्नपानमें प्रयोग करना चाहिये। इसमें किसी प्रकारके परहेजकी आवश्यकता नहीं अथवा भोजनके पहिले मद्यके साथ अथवा गरम जलके साथ पीना चाहिये। यह पसलियों, हृदय और वस्तिके शूल, गुल्म (वातकफात्मक) अफारा, मूत्रकृच्छ्र, गुद व योनिकी पीडा, ग्रहणी, अर्श, प्लीहा, पाण्डुरोग, अरुचि, छातीकी जकडाहट, हिक्का, श्वास, कास तथा गलेकी जकडाहटको दूर करता है। अथवा बिजौरे निम्बूके रसमें अनेक भावना देकर इसकी (एक एक माशेकी मात्रासे) गोली बना लेनी चाहिये यह विशेष गुण करती है ॥ ३५-४० ॥

पूतीकादिक्षारः ।

पूतीकपत्रगजचिर्भटचव्यवह्नि-
व्योषं च संस्तरचितं लवणोपधानम् ।
दग्ध्वा विचूर्ण्य दधिमण्डयुतं प्रयोज्यं
गुल्मोदरश्वयथुपाण्डुगुदोद्भवेषु ॥ ४१ ॥

पूतिकरञ्जके पत्ते, इन्द्रायनकी जड, चव्य, चीतकी जड, त्रिकटु, तथा सेधानमक सब समान भाग ले मिट्टीकी हंडियामें बन्द कर फूक देना चाहिये। फिर महीन चूर्ण कर दहीके तोड़के साथ गुल्म, उदर, सूजन, पाण्डु व अर्श रोगमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४१ ॥

हिंग्वादिप्रयोगः ।

हिङ्गुपुष्करमूलानि तुम्बुरूणि हरीतकीम् ।
श्यामां बिडं सैन्धवं च यवक्षारं महौषधम् ॥ ४२ ॥
यवक्वाथोदकेनैतद्घृतभृष्टं तु पाययेत् ।
तेनास्य भिद्यते गुल्मः सशूलः सपरिग्रहः ॥ ४३ ॥

हींग, पोहकरमूल, तुम्बुरु, बडी हर्रका छिल्का, निसोथ, बिडनमक, सेंधानमक, यवाखार तथा सोंठ सब समान भाग ले घीमें भूनकर यवके काढेके साथ पीना चाहिये। इससे गुल्मका भेदन होता तथा शूलादि अन्य उपद्रव नष्ट होते हैं। ॥ ४२ ॥ ४३ ॥

वचादिचूर्णम् ।

वचा हरीतकी हिङ्गु सैन्धवं साम्लवेतसम् ।
यवक्षारं यमानीं च पिबेदुष्णेन वारिणा ॥ ४४ ॥
एतद्धि गुल्मनिचयं सशूलं सपरिग्रहम् ।
भिनत्ति सप्तरात्रेण वह्नेर्दीप्तिं करोति च ॥ ४५ ॥

बच, हर्र, भुनी हींग, सेधानमक, अम्लवेत, यवाखार, तथा अजवायनका चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे सात दिनमें शूल व जकडाहट युक्त गुल्म नष्ट होता और अग्नि दीप्त होती है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

सुराप्रयोगः ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचित्रकाजाजिसैन्धवैः ।
युक्ता पीता सुरा हन्ति गुल्ममाशु सुदुस्तरम् ॥ ४६ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चीतकी जड, सफेद जीरा तथा सेंधानमकका चूर्ण मिलाकर पी गयी शराब शूलको शीघ्र ही नष्ट करती है ॥ ४६ ॥

नादेय्यादिक्षारः।

नादेयीकुटजार्कशिग्रुबृहतीस्नुग्विल्वभल्लातक-
व्याघ्रीकिंशुकपारिभद्रकजटाऽपामार्गनीपाग्निकम्।
वासामुष्ककपाटला सलवणा दग्ध्वा जले पाचितं
हिंग्वादिप्रतिवापमेवदुदितं गुल्मोदराष्ठीलिषु ॥ ४७ ॥

अरणी, एरण्ड अथवा जामुनकी छाल, कुडेकी छाल, आक, सहिजनकी छाल, बडी कटेरी, थूहर, बेलकी छाल, भिलावाकी छाल, छोटी कटेरी, ढाक, नीमकी छाल, लटजीरा, कदम्ब, चीतकी जड, अडूसा, मोखा, पाढल, इनमें नमक डालकर सबको जला भस्म कर ६ गुने जलमें मिला २१ वार छानकर क्षारविधिसे पकाना चाहिये। तैयार हो जानेपर भुनी हींग, यवाखार, काला नमक आदिका प्रतिवाप छोडकर उतारना चाहिये। इसका गुल्म उदर तथा पथरीमें प्रयोग करना चाहिये ४७

हिंग्वादिभागोत्तरचूर्णम्।

हिंगूग्रगन्धाविडशुण्ठ्यजाजीहरीतकीपुष्करमूलकुष्टम्।
भागोत्तरं चूर्णितमेतदिष्टं गुल्मोदराजीर्णविषूचिकासु ४८

भुनी हींग १ भाग, वच २ भाग, विडनमक ३ भाग, सोंठ ४ भाग, जीरा ५ भाग, हर्र ६ भाग, पोहकरमूल ७ भाग, कूठ ८ भाग सबका चूर्ण कर गुल्म, उदररोग, अजीर्ण और विषूचिकामें प्रयोग करना चाहिये ॥ ४८ ॥

त्रिफलादिचूर्णम्।

त्रिफलाकाञ्चनक्षीरीसप्तलानीलिनीवचा।
त्रायन्तीहपुषातिक्तात्रिवृत्सैन्धवपिप्पली ॥ ४९ ॥
पिबेत्संचूर्ण्य मूत्रोष्णवारिमांसरसादिभिः।
सर्वगुल्मोदरप्लीहकुष्ठार्शःशोथखेदितः ॥ ५० ॥

त्रिफला, स्वर्णक्षीरी, सातला, नील, वच, त्रायमाण, हाऊबेर, कुटकी, निसोथ, सेंधानमक, तथा छोटी पीपल सबका चूर्ण कर गोमूत्र, गरम जल अथवा मांसरसके साथ सर्वगुल्म, उदररोग, प्लीहा, कुष्ठ और अर्श व शोथसे पीडित पुरुषको सेवन करना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

कांकायनगुटिका।

शटीं पुष्करमूलं च दन्तीं चित्रकमाढकीम्।
शृङ्गवेरं वचा चैव पलिकानि समाहरेत् ॥ ५१ ॥
त्रिवृतायाः पलं चैव कुर्यात्त्रीणि च हिङ्गुनः।
यवक्षारपले द्वे च द्वे पले चाम्लवेतसात् ॥ ५२ ॥
यमान्यजाजी मरिचं धान्यकं चेति कार्षिकम्।
उपकुञ्च्यजमोदाभ्यां तथा चाष्टमिकामपि ॥ ५३ ॥
मातुलुङ्गरसेनैव गुटिकां कारयेद्भिषक्।
तासामेकां पिबेद्द्वे च तिस्रो वापि सुखाम्बुना ॥ ५४ ॥
अम्लैश्च मद्ययूषैश्च घृतेन पयसाथवा।
एषा काङ्कायनेनोक्ता गुडिका गुल्मनाशिनी ॥ ५५ ॥
अर्शोहृद्रोगशमनी क्रिमीणां च विनाशिनी।
गोमूत्रयुक्ता शमयेत्कफगुल्मं चिरोत्थितम् ॥ ५६ ॥
क्षीरेण पित्तगुल्मं च मद्यैरम्लैश्च वातिकम्।
त्रिफलारसमूत्रैश्च नियच्छेत्सान्निपातिकम्।
रक्तगुल्मे च नारीणामुष्ट्रीक्षीरेण पाययेत् ॥ ५७ ॥

कचूर, पोहकरमूल, दन्ती, चीतकी जड, अरहर, सोंठ तथा वच प्रत्येक ४ तोला, निसोथ ४ तोला, भुनी हींग १२ तोला, यवाखार ८ तोला, अम्लवेत ८ तोला, अजवायन, जीरा, मिर्च, धनियां प्रत्येक १ तोला, कलौंजी तथा अजमोद प्रत्येक २ तोला, सबका चूर्णकर बिजौरे निम्बूके रससे गोली बना लेनी चाहिये। इनमेंसे १ या २ या ३ गोलियोंको गरम जल, काञ्जी, मद्य, यूष, घृत अथवा दूधके साथ सेवन करना चाहिये। यह काकायनकी बतायी हुई गोली गुल्म अर्श तथा हृद्रोगको शान्त करती और कीडोंको नष्ट करती है। गोमूत्रके साथ पुराने कफज गुल्मको, दूधके साथ पित्तज गुल्मको, मद्य तथा काञ्जीके साथ वातज गुल्मको, त्रिफलाके क्वाथ व गोमूत्रके साथ सान्निपातिक गुल्मको तथा ऊटिनीके दूधके साथ स्त्रियोंके रक्तगुल्मको नष्ट करती है ॥५१–५७॥

---

१ नादेयीभूमिजम्बू, अरणी, नारङ्गी, भूम्यामल, एरण्ड, काश और जलवेतके लिये आता है तथा यह पानीयक्षार है, अतः उसकी विधि इस प्रकार शिवदासजीने लिखी है। नादेयी आदि जला, एक आढक या एक तुला भस्म ले चतुर्गुण या षड्गुण जलमें २१ वार छान पकाकर चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर फिर २१वार छान कर रखना चाहिये। इसका १ कर्ष या २ कर्ष उसीके अनुसार चतुर्थांश हिंग्वादि प्रतीवाप छोडना चाहिये और फिर उसे मास,घी या दूधमेंसे किसी एकमें छोडकर पीना चाहिये। कुछ आचार्योंका सिद्धान्त है कि रखनेसे क्षार जल अम्लतामें परिणत हो जायगा, अतः प्रतिदिन पीने योग्य पका लेना चाहिये ॥

हपुषाद्यं घृतम् ।

हपुषाव्योषपृथ्वीकाचव्यचित्रकसैन्धवैः ।
साजाजीपिप्पलीमूलदीप्यकैर्विपचेद्घृतम् ॥ ५८ ॥
सकोलमूलकरसं सक्षीरं दधि दाडिमम् ।
तत्परं वातगुल्मघ्नं शूलानाहविबन्धनुत् ॥ ५९ ॥
योन्यर्शोग्रहणीदोषश्वासकासाऽरुचिज्वरम् ।
पार्श्वहृद्वस्तिशूलं च घृतमेतद्व्यपोहति ॥ ६० ॥

हाऊबेर, त्रिकटु, बडी इलायची, चव्य, चीतकी, जड, सेंधानमक, सफेद जीरा, पिपरामूल, अजवायन इनका कल्क और कल्कसे चतुर्गुण घृत तथा घृतके समान प्रत्येक बेर व मूलीका रस (क्वाथ) दूध, दही व अनारका रस छोडकर पकाना चाहिये । यह वातगुल्म, शूल, आनाह तथा विबन्ध, योनिदोष, अर्श, ग्रहणीदोष, श्वास, कास, अरुचि ज्वर, पसलियों, हृदय और वस्तिके शूलको नष्ट करता है ॥ ५८–६० ॥

पञ्चपलकं घृतम् ।

पिप्पल्याः पिचुरध्यर्धो दाडिमाद्द्विपलं पलम् ।
धान्यात्पञ्च घृताच्छुण्ठ्याः कर्षः क्षीरं चतुर्गुणम् ॥ ६१ ॥
सिद्धमेतैर्घृतं सद्यो वातगुल्मं चिकित्सति ।
योनिशूलं शिरःशूलमर्शांसि विषमज्वरान् ॥ ६२ ॥

छोटी पीपल १॥ तोला, अनारदानेका रस ८ तो०, धनिया ४ तोला, घी २० तोला, सोंठ १ तो० दूध १ सेर छोडकर पकाना चाहिये । यह घी वातगुल्म, योनिशूल, शिरःशूल, अर्श, और विषमज्वरको नष्ट करता है ६१-६२

त्र्यूषणाद्यं घृतम् ।

त्र्यूषणत्रिफलाधान्यविडङ्गचव्यचित्रकैः ।
कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं सक्षीरं वातगुल्मनुत् ॥ ६३ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, धनिया वायविडंग, चव्य, चीतकी जड इनका कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध किया गया घृत वातगुल्मको नष्ट करता है ॥ ६३ ॥

त्रायमाणाद्यं घृतम् ।

जले दशगुणे साध्यं त्रायमाणाचतुष्पलम् ।
पञ्चभागस्थितं पूतं कल्कैः संयोज्य कार्षिकैः ॥ ६४ ॥
रोहिणीकटुकामुस्तत्रायमाणादुरालभैः ।
कल्कैस्तामलकीवीराजीवन्तीचन्दनोत्पलैः ॥ ६५ ॥
रसस्यामलकीनां च क्षीरस्य च घृतस्य च ।
पलानि पृथगष्टाष्टौ दत्त्वा सम्यग्विपाचयेत् ॥ ६६ ॥
पित्तगुल्मं रक्तगुल्मं विसर्पं पैत्तिकं ज्वरम् ।
हृद्रोगं कामलां कुष्ठं हन्यादेतद्घृतोत्तमम् ॥ ६७ ॥
पलेलिखागते मानं न द्वैगुण्यमिहेष्यते ।
चत्वारिंशत्पलं तेन तोयं दशगुणं भवेत् ॥ ६८ ॥

त्रायमाण १६ तोला, जल २ सेर मिलाकर पकाना चाहिये, १ सेर बाकी रहनेपर उतार छानकर नीचे लिखी चीजोंका कल्क प्रत्येक एक तोला छोडना चाहिये। कल्कद्रव्य–कुटकी, मोथा, त्रायमाण, जवासा, भुंइ-आंवला, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, चन्दन तथा नीलोफर और आंवलेका रस ३२ तोला, दूध ३२ तो०, घी ३२ तो० मिलाकर पकाना चाहिये, घृतमात्र शेष रहनेपर उतारना चाहिये । यह घृत पित्तगुल्म रक्तगुल्म, विसर्प, पित्तज्वर, हृद्रोग, कामला तथा कुष्ठको नष्ट करता है । इस क्वाथमें पलके मानसे द्विगुण नहीं होता अतएव ४० पल अर्थात् १६० तोला (२ सेर) जल छोडा जाता है ॥ ६४–६८ ॥

द्राक्षाद्यं घृतम् ।

द्राक्षामधूकखर्जूरं विदारीं सशतावरीम् ॥
परूषकाणि त्रिफला साधयेत्पलसंमिताम् ॥ ६९ ॥
जलाढके पादशेषे रसमामलकस्य च ।
घृतमिक्षुरसं क्षीरमभयाकल्कपादिकम् ॥ ७० ॥
साधयेत्तु घृतं सिद्धं शर्कराक्षौद्रपादिकम् ।
योजयेत्पित्तगुल्मघ्नं सर्वपित्तविकारनुत् ॥ ७१ ॥
साहचर्यादिह पृथग्घृतादेः क्वाथतुल्यता ॥ ७२ ॥

मुनक्का, महुवा, छुहारा, विदारीकन्द, शतावरी, फाल्सा तथा त्रिफला प्रत्येक ४ तोला लेकर एक आढक जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथके बराबर आवलेका रस, उतना ही ईखका रस, उतना ही घी, उतना ही दूध और घृतसे चतुर्थांश हर्रका कल्क छोडकर पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर घीसे चतुर्थांश मिलित शहद व शक्कर छोडना चाहिये । यह पित्तगुल्म तथा समस्त पित्तरोगोंको नष्ट करता है । यहां अनुक्त मान होनेसे साहचर्यात् घृतादिक्वाथके समान ही छोडना चाहिये ॥ ६९–७२ ॥

धात्रीषट्पलकं घृतम् ।

धात्रीफलाना स्वरसे षडङ्ग पाचयेद्घृतम् ।
शर्करासैन्धवोपेतं तद्धित सर्वगुल्मिनाम् ॥ ७३ ॥

आंवलेके स्वरसमें पञ्चकोल व यवाखारका कल्क व घी मिलाकर सिद्ध करनेसे समस्त गुल्मोंको लाभ पहुंचाता है ॥ ७३ ॥

भार्ङ्गीषट्पलकं घृतम् ।

षड्भि. पलैर्मगधजाफलमूलचव्य-
विश्वौषधज्वलनयावजकल्कपक्वम्।
प्रस्थ घृतस्य दशमूल्युरुबूकभार्ङ्गी-
क्वाथेऽप्यथो पयसि दध्नि च षट्पलाख्यम् ॥७४॥
गुल्मोदरारुचिभगन्दरवह्निसाद-
कासज्वरक्षयशिरोग्रहणीविकारान् ।
सद्य. शमं नयति ये च कफानिलोत्था
भार्ङ्ग्यादयषट्पलमिदं प्रवदन्ति तज्ज्ञा. ॥७५॥

पञ्चकोल व यवाखार प्रत्येक एक पल (इस प्रकार ६ पल) का कल्क, घी १ प्रस्थ (१२८ तोला) और दशमूल, एरण्ड और भारङ्गीका क्वाथ घीसे चतुर्गुण, दूध समान तथा दही चतुर्गुण मिलाकर सिद्ध किया गया घृत गुल्म, उदर, अरुचि, भगन्दर अग्निमांद्य, कास,ज्वर, क्षय, शिरोरोग, ग्रहणीरोग तथा कफ, व वातजन्यरोगोंको शान्त करता है। इसे भार्ङ्गीषट्पल घृत कहते हैं ॥ ७४ ॥ ७५ ॥

क्षीरषट्पलकं घृतम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
पलिकैः सयवक्षारैः सर्पिष्प्रस्थं विपाचयेत् ॥ ७६ ॥
क्षीरप्रस्थेन तत्सर्पिर्हन्ति गुल्मं कफात्मकम् ।
ग्रहणीपाण्डुरोगघ्नं प्लीहकासज्वरापहम् ॥ ७७ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड, सोंठ तथा यवाखार प्रत्येक एक पल, घी २ प्रस्थ, दूध २ प्रस्थ, जल ६ प्रस्थ मिलाकर पकाना चाहिये। यह घी कफात्मक गुल्म, ग्रहणी, पाण्डुरोग, प्लीहा, कास और ज्वरको नष्ट करता है ॥ ७६ ॥ ७७ ॥

भल्लातकघृतम् ।

भल्लातकानां द्विपलं पञ्चमूलं पलोन्मितम् ।
साध्य विदारीगन्धाद्यमापोथ्य सलिलाढके ॥७८॥
पादावशेषे पूते च पिप्पलीं नागरं वचाम् ।
विडङ्गं सैन्धवं हिङ्गु यावशूकं विडं शटीम् ॥ ७९ ॥
चित्रकं मधुकं रास्ना पिष्ट्वा कर्षसमान्भिषक् ।
प्रस्थं च पयसो दत्त्वा घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८० ॥
एतद्भल्लातकं नाम कफगुल्महरं परम् ।
प्लीहपाण्ड्वामयश्वासग्रहणीकासगुल्मनुत् ॥ ८१ ॥

भिलावा ८ तोला, लघुपञ्चमूल प्रत्येक ४ तोला सबको दुरकुचाकर एक आढ़क जलमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर छोटी पीपल, सोंठ, वच, वायविडंग, सेंधानमक, हींग, यवाखार, विडनमक, कचूर, चीतकी जड़, मौरेठी, तथा रासन प्रत्येक एक तोला पीसकर छोडना चाहिये तथा घी १२८ तोला और दूध १२८ तोला छोडकर पकाना चाहिये। यह भल्लातक घृत कफज गुल्म, प्लीहा,पाण्डुरोग, श्वास, ग्रहणी,कास और गुल्मको नष्ट करता है ॥ ७८-८१ ॥

रसोनाद्यं घृतम् ।

रसोनस्वरसे सर्पिः पञ्चमूलरसान्वितम् ।
सुरारनालदध्यम्लमूलकस्वरसैः सह ॥ ८२ ॥
व्योषदाडिमवृक्षाम्लयमानीचव्यसैन्धवैः ।
हिङ्ग्वम्लवेतसाजाजीदीप्यकैश्च पलान्वितैः ॥ ८३ ॥
सिद्धं गुल्मग्रहण्यर्शःश्वासोन्मादक्षयज्वरान् ।
कासाऽपस्मारमन्दाग्निप्लीहशूलानिलाञ्जयेत् ॥ ८४ ॥

लहसुनका स्वरस, पञ्चमूलका क्वाथ, शराब, काञ्जी, दहीका तोड तथा मूलीका स्वरस प्रत्येक घीके समान तथा घीसे चतुर्थांश त्रिकटु, अनारदाना, इमली, अजवायन, चव्य, सेंधानमक, हींग, अम्लवेत, जीरा तथा अजवायन प्रत्येक समान भागका कल्क छोड़कर सिद्ध किया घृत गुल्म, ग्रहणी, अर्श, श्वास, उन्माद, क्षय, ज्वर, कास, अपस्मार, मन्दाग्नि, प्लीहा, शूल और वायुको नष्ट करता है ॥ ८२-८४ ॥

दन्तीहरीतकी ।

जलद्रोणे विपक्तव्या विंशतिः पञ्च चाभयाः ।
दन्त्याः पलानि तावन्ति चित्रकस्य तथैव च ॥ ८५ ॥
तेनाष्टभागशेषेण पचेद्दन्तीसमं गुडम् ।
ताश्चाभयास्त्रिवृच्चूर्णात्तैलाच्चापि चतुष्पलम् ॥ ८६ ॥
पलमेकं कणाशुण्ठ्योः सिद्धे लेहे च शीतले ।
क्षौद्रं तैलसमं दद्याच्चातुर्जातपलं तथा ॥ ८७ ॥
ततो लेहपलं लीढ्वा जग्ध्वा चैकां हरीतकीम् ।
सुखं विरिच्यते स्निग्धो दोषप्रस्थमनामयः ॥ ८८ ॥

प्लीहश्वयथुगुल्मार्शोहृत्पाण्डुग्रहणीगदाः ।
शाम्यन्त्युत्क्लेशविषमज्वरकुष्ठान्यरोचकाः ॥ ८९ ॥

बडी हरडैं २५, दन्ती १। सेर, चीतकी जड १। सेर, जल १ द्रोण (द्रवद्वैगुण्यात् २५ सेर ९ छ० ३ तो०) मे पकाना चाहिये, अष्टमाश शेष रहनेपर उतार छानकर दन्तीके बराबर गुड तथा पहिलेकी हर्रें मिलाना चाहिये तथा निसोथ १६ तोला और तिलतैल १६ तोला, छोटी पीपल २ तोला, तथा सौंठ २ तोला छोडकर पकाना चाहिये। अवलेह सिद्ध हो जानेपर उतार ठण्ढाकर तैलके समान शहद तथा दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, व नागकेशरका मिलित चूर्ण ४ तोला छोडना चाहिये । इससे ४ तोला, अवलेह चाटना और एक हर्र खाना चाहिये, इससे स्निग्ध पुरुष सुखपूर्वक १ प्रस्थ दोषोंको विरेचनसे निकालता है और प्लीहा, सूजन, गुल्म, अर्श, हृद्रोग, पाण्डुरोग, ग्रहणीरोग, मिचलाई, विषमज्वर, कुष्ठ और अरोचक रोग नष्ट होते हैं ८५-८९

वृश्चीराद्यरिष्टः ।

वृश्चीरमुरुबूकं च वर्षाह्व बृहतीद्वयम् ।
चित्रकं च जलद्रोणे पचेत्पादावशेषितम् ॥ ९० ॥
मागधीचित्रकक्षौद्रलिप्तकुम्भे निधापयेत् ।
मधुन प्रस्थमावाप्य पथ्याचूर्णार्धसंयुतम् ॥ ९१ ॥
तुषोषित दशाहं च जीर्णभक्त पिबेन्नर ।
अरिष्टोऽय जयेद्गुल्ममविपाकं सुदुस्तरम् ॥ ९२ ॥

पुनर्नवा, एरण्डकी छाल, सफेद पुनर्नवा, दोनों कटेरी, चीतकी जड सब मिला १ तुला, १ द्रोण जल (द्रवद्वैगुण्यात् २५ ॥ सेर ८ तो०) मे पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर छोटी पीपल, चीतकी जड और शहदसे लिंगे घडेमें रखना चाहिये तथा शहद १२८ तो० और हरडेंका चूर्ण ३२ तोला मिलाकर १० दिनतक भुसके अन्दर रखना चाहिये फिर निकाल छानकर अन्न हजम होनेके बाद पीना चाहिये । यह अरिष्ट गुल्म और मन्दाग्निको नष्ट करता है ॥ ९०-९२ ॥

रक्तगुल्मचिकित्सा ।

रौधिरस्य तु गुल्मस्य गर्भकालव्यतिक्रमे ।
स्निग्धस्विन्नशरीराय दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥ ९३ ॥

रक्तगुल्मकी चिकित्सा गर्भकाल व्यतीत हो जानेपर ही करनी चाहिये । उस समय स्नेहन स्वेदन कर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये ॥ ९३ ॥

शताह्वादिकल्कः ।

शताह्वाचिरबिल्वत्वग्दारुभार्ङ्गीकणोद्भवः ।
कल्क. पीतो हरेद्गुल्मं तिलक्वाथेन रक्तजम् ॥ ९४ ॥

सौंफ, कञ्जाकी छाल, देवदारु, भारंगी तथा छोटी पीपलका कल्क तिलके काढेके साथ पीनेसे रक्तगुल्म नष्ट होता है ॥ ९४ ॥

तिलक्वाथः ।

तिलक्वाथो गुडव्योषहिङ्गुभार्ङ्गीयुतो भवेत् ।
पानं रक्तभवे गुल्मे नष्टपुष्पे च योषिताम् ॥ ९५ ॥

तिलका क्वाथ, गुड, त्रिकटु, भुनी हींग तथा भारंगीका चूर्ण मिलाकर रक्तगुल्म तथा मासिकधर्म न होनेपर देना चाहिये ॥ ९५ ॥

विविधा योगाः ।

सक्षारत्र्यूषणं मद्यं प्रपिबेदस्रगुल्मिनी ।
पलाशक्षारतोयेन सिद्धं सर्पिः पिबेच्च सा ॥ ९६ ॥
उष्णैर्वा भेदयेद्भिन्ने विधिरासृग्दरो हित ।
न प्रभिद्येत यद्येवं दद्याद्योनिविशोधनम् ॥ ९७ ॥
क्षारेण युक्तं पललं[1] सुधाक्षीरेण वा पुन. ।
रुधिरेऽतिप्रवृत्ते तु रक्तपित्तहरी क्रिया ॥ ९८ ॥

रक्तगुल्मिनी यवाखार व त्रिकटुके सहित मद्य पीवे अथवा पलाशके क्षार जलसे सिद्ध घृत पीवे अथवा गरम प्रयोगोंसे गुल्मको फोडना चाहिये, फिर रक्तप्रदरकी चिकित्सा करनी चाहिये । यदि इस प्रकार न फूटे तो योनिविशोधनके लिये क्षारयुक्त मांस (या तिल कल्क) अथवा थूहरके दूधके सहित मांसपिण्ड योनिमें धारण करे और रक्तके अधिक बहनेपर रक्तपित्तनाशक चिकित्सा करे ॥ ९६-९८ ॥

भल्लातकघृतम् ।

भल्लातकात्कल्ककषायपक्वं
सर्पिः पिबेच्छर्करया विमिश्रम् ।
तद्रक्तपित्तं विनिहन्ति पीतं
बलासगुल्मं मधुना समेतम् ॥ ९९ ॥

---

१ कुछ पुस्तकोंमे पलल शब्दका ऐसा विवरण है कि—पलाशक्षारके साथ पलल (तिलचूर्ण) को मिला कर जलके साथ घोटकर वर्तिका बना ले । अथवा पलाश क्षार तथा तिलकल्कको थोहरके साथ घोटकर वर्तिका बना ले (इस वर्तिकाको योनिमें रखनेसे योनि विशुद्ध हो जाती है) ॥

भिलावेके कल्क और क्वाथसे पकाया गया घृत शक्करके साथ पीनेसे रक्तपित्त और शहदके साथ पीनेसे कफगुल्मको नष्ट करता है ॥ ९९ ॥

अपथ्यम् ।

वल्लूरं मूलकं मत्स्याञ्छुष्कशाकानि वैदलम् ।
न खादेदालुकं गुल्मी मधुराणि फलानि च ॥ १०० ॥

सूखा मांस, मूली, मछली, सूखे शाक, दाल, आलू और मीठे फल गुल्मवालेको नहीं खाने चाहिये ॥१००॥

इति गुल्माधिकारः समाप्तः ।

अथ हृद्रोगाधिकारः ।

वातजहृद्रोगचिकित्सा ।

वातोपसृष्टे हृदये वामयेत्स्निग्धमातुरम् ।
द्विपञ्चमूलीक्वाथेन सस्नेहलवणेन च ॥ १ ॥

वातहृद्रोगयुक्त पुरुषको स्निग्ध कर दशमूलके क्वाथमे स्नेह, नमक और वमनकारक द्रव्य मिलाकर वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पल्येलावचाहिङ्गुयवक्षारोऽथ सैन्धवम् ।
सौवर्चलमथो शुण्ठीमजमोदावचूर्णितम् ॥ २ ॥
फलधान्याम्लकौलत्थदधिमद्यासवादिभिः ।
पाययेच्छुद्धदेह च स्नेहेनान्यतमेन वा ॥ ३ ॥

छोटी पीपल, बडी इलायची, वच, भुनी हींग, यवाखार, सेंधानमक, कालानमक, सोंठ, तथा अजवाइन व समान भाग ले चूर्ण कर फलरस, काञ्जी, कुलत्थक्वाथ, दधि, मद्य, आसव आदिमेसे किसी एकके साथ अथवा किसी स्नेहके साथ शुद्ध पुरुषको पिलाना चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

नागरक्वाथः ।

नागरं वा पिबेदुष्णं कषाय चाग्निवर्धनम् ।
कासश्वासानिलहर शूलहृद्रोगनाशनम् ॥ ४ ॥

अथवा सोंठका गरम गरम क्वाथ पीना चाहिये । इससे अग्नि बढती है तथा कास, श्वास, वायु, शूल व हृद्रोग नष्ट होते हैं ॥ ४ ॥

पित्तजहृद्रोगचिकित्सा ।

श्रीपर्णीमधुकक्षौद्रसितागुडजलैर्वमेत् ।
पित्तोपसृष्टे हृदये सेवेत मधुरं शृतम् ।
घृतं कषायांश्चोद्दिष्टान्पित्तज्वरविनाशनान् ॥ ५ ॥

खम्भारके फल, मौरेठी, शहद, मिश्री, गुड और जल मिला पीकर वमन करना चाहिये । तथा मधुर औषधियोंसे सिद्ध घृत तथा पित्तज्वरनाशक क्वाथका सेवन करना चाहिये * ॥ ५ ॥

अन्ये उपायाः ।

शीता प्रदेहा परिषेचनानि
तथा विरेको हृदि पित्तदुष्टे ।
द्राक्षासिताक्षौद्रपरूषकैः स्या-
च्छुद्धे च पित्तापहमन्नपानम् ॥ ६ ॥
पिष्ट्वा पिबेद्वापि सिताजलेन
यष्ट्याह्वय तिक्तकरोहिणी च ॥ ७ ॥

पित्तज हृद्रोगमे शीतल लेप, शीतल सेक तथा विरेचन देना चाहिये । शुद्ध हो जानेपर मुनक्का, मिश्री, शहद, फाल्सा इत्यादिके साथ पित्तनाशक अन्नपानका सेवन करना चाहिये । अथवा मौरेठी और कुटकीका चूर्णकर मिश्रीके शर्बतके साथ पीना चाहिये ॥६॥७॥

क्षीरप्रयोगः ।

अर्जुनस्य त्वचा सिद्धं क्षीरं योज्यं हृदामये ।
सितया पञ्चमूल्या वा बलया मधुकेन वा ॥

अर्जुनकी छाल अथवा लघुपञ्चमूल अथवा बलामूल अथवा खरेटी और मौरेठीसे सिद्ध किया दूध मिश्री मिलाकर पीना चाहिये ॥ ८ ॥

ककुभचूर्णम् ।

घृतेन दुग्धेन गुडाम्भसा वा
पिबन्ति चूर्णं ककुभत्वचो ये ।
हृद्रोगजीर्णज्वररक्तपित्तं
हत्वा भवेयुश्चिरजीविनस्ते ॥९॥

जो लोग अर्जुनकी छालका चूर्ण घी, दूध अथवा गुडके शर्बतके साथ पीते हैं वे हृद्रोग जीर्णज्वर व रक्तपित्तरहित होकर चिरजीवी होते हैं ॥ ९ ॥

---

* मधुर औषधियोंसे यहां काकोल्यादि गण लेना चाहिये उसका पाठ सुश्रुतमें इस प्रकार है । काकोलीक्षीरकाकोलीजीवकर्षभमुकद्गपर्णीमेदामहामेदाछिन्नरुहाकर्कटशृङ्गीतुगाक्षीरीपद्मकप्रपौण्डरीकर्द्धिवृद्धिमृद्वीकाजीवन्त्यो मधुकं चेति "काकोल्यादिरयं पित्तशोणितानिलनाशनः।जीवनो बृंहणो वृष्यः स्तन्य श्लेष्मकरः सदा॥"

कफजहृद्रोगचिकित्सा ।

वचानिम्बकषायाभ्यां वान्तं हृदि कफोत्थिते ।
वातहृद्रोगहृच्चूर्णं पिप्पल्यादि च योजयेत् ॥ १० ॥

कफज हृद्रोगमें वच व नीमके काढेसे वमन कराकर वातरोगनाशक पिप्पल्यादि चूर्ण खिलाना चाहिये ॥ १० ॥

त्रिदोषजहृद्रोगचिकित्सा ।

त्रिदोषजे लङ्घनमादितः स्या-
दन्नं च सर्वेषु हितं विधेयम् ।
हीनाधिमध्यत्वमवेक्ष्य चैव
कार्यं त्रयाणामपि कर्म शस्तम् ॥ ११ ॥

त्रिदोषजमें पहिले लघन कराना चाहिये । फिर त्रिदोषनाशक अन्नपान तथा दोषोंकी न्यूनाधिकता देखकर उचित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

पुष्करमूलचूर्णम् ।

चूर्णं पुष्करजं लिह्यान्माक्षिकेण समायुतम् ।
हृच्छूलकासश्वासघ्नं क्षयहिक्कानिवारणम् ॥ १२ ॥

पोहकरमूलका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे हृद्रोग, श्वास, कास, क्षय और हिक्कारोग नष्ट होते हैं ॥१२॥

गोधूमपार्थप्रयोगः ।

तैलाज्यगुडविपक्वं
गौधूमं वापि पार्थजं चूर्णम् ।
पिबति पयोऽनु च स भवे-
ज्जितसकलहृदामयः पुरुषः ॥ १३ ॥

जो मनुष्य तैल, घी और गुड मिलाकर पकाया गेहूँके आटे और अर्जुनकी छालके चूर्णका हलुवा खाता है और ऊपरसे दूध पीता है उसके सकल हृद्रोग नष्ट होते हैं ॥ १३ ॥

गोधूमादिलप्सिका ।

गोधूमककुभचूर्णं छागपयोगव्यसर्पिषि विपक्वम् ।
मधुशर्करासमेतं शमयति हृद्रोगमुद्धतं पुंसाम् ॥१४॥

गेहूँके आटा और अर्जुनकी छालका चूर्ण मिला बकरीके दूध व गौके घीमें पका शहद व शक्कर मिलाकर खानेसे उद्धत हृद्रोग शान्त होता है ॥ १४ ॥

नागबलादिचूर्णम् ।

मूलं नागबलायास्तु चूर्णं दुग्धेन पाययेत् ।
हृद्रोगश्वासकासघ्नं ककुभस्य च वल्कलम् ॥ १५ ॥
रसायनं परं बल्यं वातजिन्मासयोजितम् ।
संवत्सरप्रयोगेण जीवेद्वर्षशतं ध्रुवम् ॥ १६ ॥

गंगेरनकी जड और अर्जुनकी छालका चूर्ण दूधके साथ पीनेसे हृद्रोग, श्वास, कासको नष्ट करता तथा रसायन और बलकारक है । एक मास प्रयोग करनेसे वातको नष्ट करता १ वर्षतक निरन्तर प्रयोग करनेसे १०० वर्षतक मनुष्य जीता है ॥ १५–१६ ॥

हिंग्वादिचूर्णम् ।

हिङ्गूग्रगन्धाविडविश्वकृष्णा-
कुष्ठाभयाचित्रकयावशूकम् ।
पिबेच्च सौवर्चलपुष्कराढ्यं
यवाम्भसा शूलहृदामयेषु ॥ १७ ॥

भुनी हींग, वच, विडनमक, सोंठ, छोटी पीपल, कूठ, बडी हर्रका छिल्का, चीतकी जड, जवाखार, कालानमक तथा पोहकरमूलका चूर्ण बनाकर यवके काढेके साथ पीनेसे शूल और हृद्रोग नष्ट होता है॥१७॥

दशमूलक्वाथः ।

दशमूलीकषायं तु लवणक्षारयोजितम् ।
कासं श्वासं च हृद्रोगं गुल्मं शूलं च नाशयेत् ॥ १८ ॥

दशमूलका काढा नमक और जवाखार मिलाकर पिलानेसे कास, श्वास, हृद्रोग, गुल्म और शूल नष्ट होते हैं ॥ १८ ॥

पाठादिचूर्णम् ।

पाठां वचां यवक्षारमभयामम्लवेतसम् ।
दुरालभां चित्रकं च त्र्यूषणं च फलत्रिकम् ॥ १९ ॥
शठीं पुष्करमूलं च तिन्तिडीकं सदाडिमम् ।
मातुलुङ्गस्य मूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ २० ॥
सुखोदकेन मद्यैर्वा चूर्णान्येतानि पाययेत् ।
अर्शः शूलञ्च हृद्रोगं गुल्मं चाशु व्यपोहति ॥ २१ ॥

पाढ, वच, यवाखार, बडी हर्रका छिल्का, अम्लवेत, यवासा, चीतकी जड, त्रिकटु, त्रिफला, कचूर, पोहकरमूल, तिन्तिडीक, अनारदाना तथा बिजौरे निम्बूकी जड सबका महीन चूर्ण कर कुछ गरम जल अथवा मद्यके साथ पिलाना चाहिये । यह अर्श, शूल, हृद्रोग और गुल्मको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ १९–२१ ॥

मृगशृङ्गभस्म ।

पुटदग्धमश्मपिष्टं हरिणविषाणं तु सर्पिषा पिबतः ।
हृत्पृष्ठशूलमुपशममुपयात्यचिरेण कष्टमपि ॥ २२ ॥

पुटमें पकाकर पीसा गया मृगशृंग घीके साथ चाटनेसे कष्टसाध्य भी हृद्रोग तथा पृष्ठशूल शीघ्र ही शान्त होता है ॥ २२ ॥

क्रिमिहृद्रोगचिकित्सा ।

क्रिमिहृद्रोगिणं स्निग्धं भोजयेत्पिशितौदनम् ।
दध्ना च पललोपेतं त्र्यहं पश्चाद्विरेचयेत् ॥ २३ ॥
सुगन्धिभिः सलवणैर्योगैः साजाजिशर्करैः ।
विडङ्गगाढं धान्याम्लं पाययेद्धितमुत्तमम् ॥ २४ ॥
क्रिमिजे च पिबेन्मूत्रं विडङ्गाभयसंयुतम् ।
हृदि स्थिताः पतन्त्येवमधस्तात्क्रिमयो नृणाम् ।
यवान्नं वितरेच्चास्मै सविडङ्गमतः परम् ॥ २५ ॥

क्रिमिज हृद्रोगवालेको स्नेहयुक्त मास मिश्रित भातको दही व तिल कल्क मिला ३ दिन खिलाकर विरेचन देना चाहिये । तथा नमक, जीरा व शक्करके सहित वायविडङ्ग छोडकर सुगन्धयुक्त काञ्जी पिलाना हितकर है । अथवा कूठ और वायविडंगका चूर्ण छोड गोमूत्र पीना चाहिये । इससे हृदयस्थित कीडे दस्तद्वारा निकल जाते है । इसके अनन्तर यवका पथ्य वायविडंगका चूर्ण मिलाकर देना चाहिये ॥२३-२५ ॥

वल्लभकं घृतम् ।

मुख्यं शतार्धं च हरीतकीनां
सौवर्चलस्यापि पलद्वयं च ।
पक्कं घृतं वल्लभकेति नाम्ना
हृच्छ्वासशूलोदरमारुतघ्नम् ॥ २६ ॥

उत्तम ५० हरडे व काला नमक ८ तोलाका कल्क छोडकर घृत पकाना चाहिये । यह वल्लभ घृत हृद्रोग, श्वास, शूल, उदररोग और वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

श्वदंष्ट्राद्यं घृतम् ।

श्वदंष्ट्रोशीरमञ्जिष्ठाबलाकाश्मर्यकत्तृणम् ।
दर्भमूलं पृथक्पर्णी पलाशर्षभकौ स्थिरा ॥ २७ ॥
पलिकान्साधयेत्तेषां रसे क्षीरे चतुर्गुणे ।
कल्कैः स्वगुप्तर्षभकमेदाजीवन्तिजीरकैः ॥ २८ ॥
शतावर्यृद्धिमृद्वीकाशर्कराश्रावणीबिसैः ।
प्रस्थः सिद्धो घृताद्वातपित्तहृद्रोगशूलनुत् ॥ २९ ॥
मूत्रकृच्छ्रप्रमेहार्शःश्वासकासक्षयापहः ।
धनुःस्त्रीमद्यभाराध्वक्षीणानां बलमांसदः ॥ ३० ॥

गोखुरू, खश, मञ्जीठ, खरेटी, खम्भार, रोहिष घास, कुशकी जड, पृश्निपर्णी, ढाकके बीज, ऋषभक, शालपर्णी, प्रत्येक एक पल लेकर क्वाथ बनाना चाहिये । इस छने क्वाथमें १ प्रस्थ घी, ४ प्रस्थ दूध और केवाचके बीज, ऋषभक, मेदा, जीवन्ती, जीरा, शतावरी, ऋद्धि, मुनक्का, मिश्री, मुण्डी तथा अतीसका कल्क छोडकर सिद्ध किया गया घृत वातपित्तज शूल, हृद्रोग, मूत्रकृच्छ्र, प्रमेह, अर्श, श्वास, कास, तथा धातुक्षयको नष्ट करता और धनुष चढाना, स्त्रीगमन, मद्यपान, बोझा ढोना और मार्गमें चलना इन कारणोंसे क्षीण पुरुषोंके बल व मासको बढाता है ॥ २७-३० ॥

बलार्जुनघृतद्वयम् ।

घृतं बलानागबलार्जुनाम्बु-
सिद्धं सयष्टीमधुकल्कपादम् ।
हृद्रोगशूलक्षतरक्तपित्त-
कासानिलासृक् शमयत्युदीर्णम् ॥ ३१ ॥
पार्थस्य कल्कस्वरसेन सिद्धं
शस्तं घृतं सर्वहृदामयेषु ॥ ३२ ॥

खरेटी, गंगेरन तथा अर्जुनके क्वाथ और मौरेठीके कल्कसे सिद्ध घृत हृद्रोग, शूल, व्रण, रक्तपित्त, कास व वातरक्तको शान्त करता है । इसी प्रकार केवल अर्जुनके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध घृत भी समस्त हृद्रोगोंमे हितकर है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

इति हृद्रोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ मूत्रकृच्छ्राधिकारः ।

वातजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा ।

अभ्यञ्जनस्नेहनिरूहबस्तिस्वेदोपनाहोत्तरबस्तिसेकान् ।
स्थिरादिभिर्वातहरैश्च सिद्धान्दद्याद्रसांश्चानिलमूत्रकृच्छ्रे ॥ १

मालिश, स्नेहबस्ति, निरूहबस्ति, स्वेद, उपनाह, उत्तरबस्ति, तथा सेकका सेवन करना चाहिये । शालिपर्णी आदि वातनाशक औषधियोंसे सिद्ध मांसरसादिको वातजमूत्रकृच्छ्रमे देना चाहिये ॥ १ ॥

अमृतादिक्वाथः ।

अमृतां नागरं धात्रीं वाजिगन्धां त्रिकण्टकान् ।
प्रपिबेद्वातरोगार्तः सशूलो मूत्रकृच्छ्रवान् ॥ २ ॥

गुर्च, सोंठ, आवला, असगन्ध, तथा गोखुरूका क्वाथ, वातरोगपीडित, शूलयुक्त, मूत्रकृच्छ्रवालेको पीना चाहिये २

पित्तजकृच्छ्रचिकित्सा।

सेकावगाहाः शिशिराः प्रदेहा
ग्रैष्मो विधिर्बस्तिपयोविकाराः।
द्राक्षाविदारीक्षुरसैर्घृतैश्च
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु कार्याः ॥ ३ ॥

सिञ्चन, जलमें बैठना, ठण्डे लेप, ग्रीष्मऋतुके योग्य विधान, बस्ति, दूधके बनाये पदार्थ, मुनक्का, विदारीकन्द और ईखके रस तथा घृतका पित्तज-मूत्रकृच्छ्रमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३ ॥

तृणपञ्चमूलम्।

कुशः काशः शरो दर्भ इक्षुश्चेति तृणोद्भवम्।
पित्तकृच्छ्रहरं पञ्चमूलं बस्तिविशोधनम्।
एतत्सिद्धं पयः पीतं मेढ्रगं हन्ति शोणितम् ॥ ४ ॥

कुश, काश, शर, डाभ, ईख यह तृणपञ्चमूल पित्तज कृच्छ्रको नष्ट करता, बस्तिको शुद्ध करता तथा इन औषधियोंसे सिद्ध दूधको पीनेसे लिङ्गसे जानेवाला रक्त शान्त होता है ॥ ४ ॥

शतावर्यादिक्वाथः।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्रा-
विदारिशालीक्षुकशेरुकाणाम्।
क्वाथं सुशीतं मधुशर्कराक्तं
पिबञ्जयेत्पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रम् ॥ ५ ॥

शतावरी, काश, कुश, गोखुरू, विदारीकन्द, धानकी जड़, ईख और कशेरूका क्वाथ ठण्डाकर शहद और शक्कर डालकर पीनेसे पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ ५ ॥

हरीतक्यादिक्वाथः।

हरीतकीगोक्षुरराजवृक्षपाषाणभिद्धन्वयवासकानाम्।
क्वाथं पिबेन्माक्षिकसंप्रयुक्तं कृच्छ्रे सदाहे सरुजे विबन्धे ॥ ६ ॥

बड़ी हर्रका छिल्का, गोखुरू, अमलतासका गूदा, पाषाणभेद तथा जवासा इन औषधियोंके यथाविधि निकाले क्वाथमें शहद मिला पीनेसे दाह और पीड़ासहित मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ ६ ॥

गुडामलकयोगः।

गुडेनामलकं वृष्यं श्रमघ्नं तर्पणं परम्।
पित्तासृग्दाहशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ७ ॥

गुड़के साथ आंवलेका चूर्ण सेवन करनेसे बल[illegible] होता है, [illegible] रक्तपित्त, दाह और शूल [illegible] मूत्रकृच्छ्रको दूर करता है ॥ ७ ॥

एर्वारुबीजादिचूर्णम्।

एर्वारुबीजं मधुकं सदार्वी पैत्ते पिबेत्तण्डुलधावनेन।
दार्वीं तथैवामलकीरसेन समाक्षिकां पैत्तिकमूत्रकृच्छ्रे ॥ ८ ॥

ककड़ीके बीज, मौरेठी तथा दारुहल्दीका चूर्ण चावलके धोवनके साथ पैत्तिक मूत्रकृच्छ्रमें पीना चाहिये। इसी प्रकार केवल दारुहल्दीका चूर्ण आंवलेके रस और शहदके साथ सेवन करनेसे पैत्तिक मूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ ८ ॥

कफजचिकित्सा।

क्षारोष्णतीक्ष्णौषधमन्नपानं
स्वेदो यवान्नं वमनं निरूहाः।
तक्रं सतिक्तौषधसिद्धतैला-
न्यभ्यङ्गपानं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ९ ॥
मूत्रेण सुरया वापि कदलीस्वरसेन वा।
कफकृच्छ्रविनाशाय श्लक्ष्णं पिष्ट्वा त्रुटिं पिबेत् ॥ १० ॥
तक्रेण युक्तं शितिमारकस्य
बीजं पिबेत्कृच्छ्रविनाशहेतोः।
पिबेत्तथा तण्डुलधावनेन
प्रवालचूर्णं कफमूत्रकृच्छ्रे ॥ ११ ॥
श्वदंष्ट्राविश्वतोयं वा कफकृच्छ्रविनाशनम् ॥ १२ ॥

क्षार, उष्ण, तीक्ष्ण तथा कटु अन्नपान, स्वेद, यवका पथ्य, वमन, निरूहणबस्ति, मट्ठा तथा तिक्त औषधियोंसे सिद्ध तैल मालिश और पीनेके लिये कफज मूत्रकृच्छ्रमें प्रयोग करना चाहिये। इसी प्रकार गोमूत्र, शराब अथवा केलेके स्वरसके साथ छोटी इलायचीका चूर्ण पीना चाहिये, अथवा मट्ठेके साथ शितिमार (वङ्गदेशे शालिञ्च) के बीज मूत्रकृच्छ्रके नाशार्थ पीना चाहिये, अथवा चावलके धोवनके साथ मूंगेका चूर्ण या भस्म पीना चाहिये। तथा गोखुरू और सोंठका क्वाथ कफज कृच्छ्रको नष्ट करता है ॥ ९-१२ ॥

त्रिदोषजचिकित्सा।

सर्वं त्रिदोषप्रभवे तु वायोः
स्थानानुपूर्व्या प्रसमीक्ष्य कार्यम्।
त्रिभ्योऽधिके प्राग्वमनं कफे स्यात्
पित्ते विरेकः पवने तु बस्तिः ॥ १३ ॥

त्रिदोषजकृच्छ्रमें वायुके स्थानपर ध्यान देते हुए सभी चिकित्सा करनी चाहिये, तथा यदि तीनोंमें कफ अधिक हो तो पहिले वमन, पित्तमें विरेचन तथा वायुमें बस्ति देना चाहिये ॥ १३ ॥

बृहत्यादिक्वाथः।

बृहतीधावनीपाठायष्टीमधुकलिङ्गका'।
पाचनीयो बृहत्यादि· कृच्छ्रदोषत्रयापह ॥१४॥

बडी कटेरी, छोटी कटेरी, पाढ, मौरेठी तथा इन्द्रयव यह बृहत्यादि गण पाचन करता तथा त्रिदोषज मूत्रकृच्छ्र· को नष्ट करता है ॥ १४ ॥

उत्पत्तिभेदेन चिकित्साभेदः।

तथाभिघातजे कुर्यात्सद्योव्रणाचिकित्सितम्।
मूत्रकृच्छ्रे सदा चास्य कार्या वातहरी क्रिया ॥१५॥
स्वेदचूर्णक्रियाभ्यगवस्तय स्यु पुरीषजे
क्वाथ गोक्षुरबीजस्य यवक्षारयुतं पिबेत।
मूत्रकृच्छ्र शकृज्ज च पीत शीघ्र निवारयेत् ॥१६॥
हिता क्रिया त्वश्मरिशर्करायां
या मूत्रकृच्छ्रे कफमारुतोत्थे ॥ १७ ॥
लेह्यं शुक्रविबन्धोत्थे शिलाजतु समाक्षिकम्।
वृष्यैर्बृंहितधातोश्च विधेया प्रमदोत्तमा ॥ १८ ॥

अभिघातज मूत्रकृच्छ्रमे सद्योव्रणाचिकित्सा करनी चाहिये, तथा वातनाशक क्रिया इसमें सदैव करनी चाहिये। पुरीष (मल) ज मूत्रकृच्छ्रमे, सदा स्वेद, चूर्ण, मालिश तथा वस्ति देनी चाहिये। गोखरूके क्वाथमे जवाखार डालकर पीनेसे मलज मूत्रकृच्छ्र शीघ्र ही नष्ट होता है। अश्मरी तथा शर्करासे उत्पन्न मूत्रकृच्छ्रमे कफवातज कृच्छ्रकी चिकित्सा करनी चाहिये। शुक्रके विबन्धसे उत्पन्न कृच्छ्रमे शहदके साथ शिलाजतु चाटना चाहिये। तथा वाजीकरणके सेवनसे धातुओंके बढ जानेपर उत्तम स्त्रियोंके साथ मैथुन कराना चाहिये ॥ १५–१८ ॥

एलादिक्षीरम्।

एलाहिंगुयुतं क्षीर सर्पिर्मिश्र पिबेन्नर।
मूत्रदोषविशुद्ध्यर्थं शुक्रदोषहर च तत् ॥१९॥

मूत्रदोष तथा शुक्रदोष दूर करनेके लिये छोटी इलायची, भुनी हींग तथा घीसे युक्त दूधको पीना चाहिये ॥ १९ ॥

रक्तजमूत्रकृच्छ्रचिकित्सा।

यन्मूत्रकृच्छ्रे विहित तु पैत्ते
तत्कारयेच्छोणितमूत्रकृच्छ्रे ॥ २० ॥

जो पित्तज मूत्रकृच्छ्रकी चिकित्सा बतायी गयी वही रक्तजमे करनी चाहिये ॥ २० ॥

त्रिकण्टकादिक्वाथः।

त्रिकण्टकारग्वधदर्भकाश-
दुरालभापर्वतभेदपथ्या।
निघ्नन्ति पीता मधुनाश्मरी च
सम्प्राप्तमृत्योरपि मूत्रकृच्छ्रम् ॥ २१ ॥
कषायोऽतिबलामूलसाधित सर्वकृच्छ्रजित्।

गोखुरू, अमलतासका गूदा, दर्भ, काश, यवासा, पाषाणभेद, तथा हर्रके क्वाथमें शहद मिलाकर पीनेसे अश्मरी तथा कठिन मूत्रकृच्छ्र भी शान्त होता है। तथा कघीकी जडका क्वाथ भी समस्त मूत्रकृच्छ्रोंको नष्ट करता है ॥ २१ ॥–

एलादिचूर्णम्।

एलाश्मभेदकशिलाजतुपिप्पलीना
चूर्णानि तण्डुलजलैर्लुलितानि पीत्वा।
यद्वा गुडेन सहितान्यवलिह्य तानि
चासन्नमृत्युरपि जीवति मूत्रकृच्छ्री ॥ २२ ॥

इलायची, पाषाणभेद, शिलाजतु तथा छोटी पीपलका चूर्ण चावलके धोवनके जलमे मिलाकर पीनेसे अथवा गुड मिलाकर चाटनेसे आसन्नमृत्युवाला भी मूत्रकृच्छ्र रोगी बच जाता है ॥ २२ ॥

लोहयोगः।

अयोरज श्लक्ष्णपिष्ट मधुना सह योजितम्।
मूत्रकृच्छ्रं निहन्त्याशु त्रिभिर्लेहैर्न संशय ॥ २३ ॥

लौहभस्म शहदके साथ चाटनेसे तीन खुराकमें ही मूत्रकृच्छ्र नष्ट हो जाता है ॥ २३ ॥

यवक्षारयोगः।

सितातुल्यो यवक्षार सर्वकृच्छ्रनिवारण।
निदिग्धिकारसो वापि सक्षौद्र कृच्छ्रनाशन ॥ २४ ॥

मिश्रीके बराबर जवाखार अथवा शहदके साथ छोटी कटेरीका रस समस्त मूत्रकृच्छ्रोंको शान्त करता है ॥ २४ ॥

शतावर्यादिघृतं क्षीरं वा।

शतावरीकाशकुशश्वदंष्ट्रा-
विदारिकेक्ष्वामलकेषु सिद्धम्।
सर्पि पयो वा सितया विमिश्रं
कृच्छ्रेषु पित्तप्रभवेषु योज्यम् ॥ २५ ॥

शतावरी, काश, कुश, गोखुरू, बिदारीकन्द, ईखकी जड और आवलेसे सिद्ध घी अथवा दूध मिश्री मिलाकर सेवन करनेसे पित्तजमूत्रकृच्छ्र शान्त होता है ॥ २५ ॥

त्रिकण्टकादिसर्पिः ।

त्रिकण्टकैरण्डकुशाद्यभीरु-
कर्कारुकेक्षुस्वरसेन सिद्धम् ।
सर्पिर्गुडार्धांशयुत प्रपेयं
कृच्छ्राश्मरीमूत्रविघातहेतोः ॥ २६ ॥

गोखुरू, एरण्डकी छाल, कुशादि तृणपञ्चमूल, शतावरी, खरबूजाके बीज और ईख प्रत्येकके स्वरससे सिद्ध घीमें आधा गुड मिलाकर पीनेसे, मूत्रकृच्छ्र मूत्राघात अश्मरीका नाश होता हे ॥ २६ ॥

सुकुमारकुमारकं घृतम् ।

पुनर्नवामूलतुला दशमूलं शतावरी ।
बला तुरगगन्धा च तृणमूलं त्रिकण्टकम् ॥ २७ ॥
विदारिवंशनागाह्वागुडूच्यतिबला तथा ।
पृथग्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ २८ ॥
तेन पादावशेषेण घृतस्यार्धाढकं पचेत् ।
मधुकं श्रृङ्गवेरं च द्राक्षासैन्धवपिप्पलीः ॥ २९ ॥
पृथग्द्विपलिका दद्याद्यवान्या कुडवं तथा ।
त्रिंशद्गुडपलान्यत्र तैलस्यैरण्डजस्य च ॥ ३० ॥
प्रस्थं दत्त्वा समालोड्य सम्यङ्मृद्वग्निना पचेत् ।
एतदीश्वरपुत्राणां प्राग्भोजनमनिन्दितम् ॥ ३१ ॥
राज्ञां राजसमानां च बहुस्त्रीपतयश्च ये ।
मूत्रकृच्छ्रे कटिस्तम्भे तथा गाढपुरीषिणाम् ॥ ३२ ॥
मेढ्रवङ्क्षणशूले च योनिशूले च शस्यते ।
यथोक्तानां च गुल्मानां वातशोणितकाश्च ये ॥ ३३ ॥
बल्यं रसायनं शीतं सुकुमारकुमारकम् ।
पुनर्नवाशते द्रोणो देयोऽन्येषु तथापरः ॥ ३४ ॥

पुनर्नवा ५ सेर, दशमूल, शतावरी, खरेटी, अश्वगन्धा, तृणपञ्चमूल, गोखुरू, विदारीकन्द, बासकी पत्ती, नागकेशर, गुर्च, कघी प्रत्येक ८ छ. लेकर २ द्रोण जलमें पकाना चाहिये चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर घी ३ सेर १६ तोला तथा मौरेठी, सोंठ, मुनक्का, सेंधानमक, तथा छोटी पीपल प्रत्येक ८ तोला, अजवायन १६ तोला, गुड १॥ सेर, एरण्डतैल ६४ तो० छोडकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । इसका प्रयोग अमीरोंके लिये भोजनके पहिले करना चाहिये । इससे मूत्रकृच्छ्र, कमरका शूल, दस्तोंका कडा आना, लिङ्ग व वंक्षणसन्धियोंका शूल, योनिशूल, गुल्म और वातरक्त नष्ट होता, बल बढता तथा यह शीतवीर्य व रसायन है । इसे सुकुमारकुमारक कहते हैं । शतपल पुनर्नवामें जल १ द्रोण तथा इतर औषधियोंमें १ द्रोण अर्थात् "द्रवद्वैगुण्यात्" इसमें ४ द्रोण छोडना चाहिये ॥ २७-३४ ॥

इति मूत्रकृच्छ्राधिकारः समाप्तः ।

अथ मूत्राघाताधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

मूत्राघातान्यथादोषं मूत्रकृच्छ्रहरैर्जयेत् ।
बस्तिमुत्तरबस्तिं च दद्यात्स्निग्धं विरेचनम् ॥१॥

दोषानुसार मूत्रकृच्छ्रनाशक प्रयोगोंसे मूत्राघातकी चिकित्सा करनी चाहिये और बस्ति उत्तरबस्ति तथा स्नेहयुक्त विरेचन देना चाहिये ॥१॥

विविधा योगाः ।

कल्कमेर्वारुबीजानामक्षमात्रं ससैन्धवम् ।
धान्याम्लयुक्तं पीत्वैव मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥२॥
पाटल्या यावशूकाच्च पारिभद्रात्तिलादपि ।
क्षारोदकेन मदिरां त्वगेलोपणसंयुताम् ॥३॥
पिबेद्गुडोपदंशान्वा लिह्यादेतान्पृथक्पृथक् ।
त्रिफलाकल्कसंयुक्तं लवणं वापि पाययेत् ॥४॥
निदिग्धिकायाः स्वरसं पिबेद्वस्त्रान्तरस्रुतम् ।
जले कुंकुमकल्कं वा सक्षौद्रमुषितं निशि ॥५॥
सतैलं पाटलाभस्म क्षारवद्वा परिस्रुतम् ।
सुरां सौवर्चलवतीं मूत्राघाती पिबेन्नरः ॥६॥
दाडिमाम्बुयुतं मुख्यमेलाबीजं सनागरम् ।
पीत्वा सुरां सलवणां मूत्राघाताद्विमुच्यते ॥७॥
पिबेच्छिलाजतु क्वाथे गणे वीरतरादिके ।
रसं दुरालभाया वा कषायं वासकस्य वा ॥८॥

ककडीके बीजोंका कल्क १ तोला, सेंधानमक और काञ्जी मिलाकर पीनेसे मूत्राघात नष्ट होता है अथवा शराबमें पाढल, जव, नीम या तिलका क्षार जल तथा दालचीनी, इलायची व काली मिर्चका चूर्ण मिलाकर पीना चाहिये अथवा उपरोक्त क्षार गुडके साथ चाटना चाहिये, अथवा त्रिफलाके कल्कमें नमक मिलाकर पिलाना चाहिये अथवा छोटी कटेरीका स्वरस कपडेसे छानकर पीना चाहिये, अथवा जलमें केशरका कल्क व शहद मिला रातभर रखकर सवेरे पीना चाहिये, अथवा पाटलाकी भस्म अथवा

क्षार जल तैलके साथ पीना चाहिये, अथवा कालानमक मिलाकर शराब पीना चाहिये, अथवा अनारका रस, इलायचीका चूर्ण, सोंठका चूर्ण, शराब व नमक मिलाकर पीना चाहिये, अथवा वीरतरादि गणके क्वाथमें शिलाजतु मिलाकर अथवा जवासाका रस अथवा अड्सेका क्वाथ पीना चाहिये ॥ २–८ ॥

त्रिकण्टकादिक्षीरम् ।

त्रिकण्टकैरण्डशतावरीभिः
सिद्धं पयो वा तृणपञ्चमूले ।
गुडप्रगाढं सघृतं पयो वा
रोगेषु कृच्छ्रादिषु शस्तमेतत् ॥ ९ ॥

गोखुरू, एरण्डकी छाल तथा शतावरीमें सिद्ध दूध अथवा तृणपञ्चमूलसे सिद्ध दूधमें गुड़ मिलाकर अथवा दूधमें घी डालकर पीनेसे मूत्रकृच्छ्र तथा मूत्राघात आदि विकार दूर हो जाते हैं ॥ ९ ॥

नलादिक्वाथः ।

नलकुशकाशेक्षुशिफा क्वथितां प्रातः सुशीतलां ससिताम् ।
पिबतः प्रयाति नियतं मूत्रग्रह इत्युवाच कचः ॥ १० ॥

नरसल, कुश, काश, वा ईख की जड़ोंका शीत कषाय बना प्रातःकाल मिश्री मिला पीनेसे मूत्राघात नष्ट होता है । यह कचने कहा है ॥ १० ॥

पाषाणभेदक्वाथः ।

गोधावत्या मूलं क्वथितं घृततैलगोरसैर्मिश्रम् ।
पीतं निरुद्धमचिराद्भिनत्ति मूत्रस्य सवातम् ॥ ११ ॥

पाषाणभेदकी जड़के क्वाथमें घी, तैल व गोरस (मट्ठा) मिलाकर पीनेसे शीघ्र ही मूत्राघात नष्ट होता है ॥ ११ ॥

उपायान्तरम् ।

जलेन खदिरीबीजं मूत्राघाताश्मरीहरम् ।
मूलं तु त्रिजटायाश्च तक्रपीतं तदर्थकृत् ॥ १२ ॥
मूत्रे विबद्धे कर्पूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् ।
शृतशीतपयोऽन्नाशी चन्दनं तण्डुलाम्बुना ॥ १३ ॥
पिबेत्सशर्करं श्रेष्ठमुष्णवाते सशोणिते ।
शीतोऽवगाह आबस्तिमुष्णवातनिवारणः ॥ १४ ॥
कूष्माण्डकरसश्चापि पीतः सक्षारशर्करः ।

जलके साथ अशोकके बीजोंके चूर्णको अथवा मट्ठेके साथ बेलकी जड़के चूर्णको पीनेसे मूत्राघात तथा अश्मरी नष्ट होती हैं । यदि मूत्र न उतरता हो तो कपूरका चूर्ण लिङ्गमें रखना चाहिये तथा गरम कर ठंढे किये दूधके साथ पथ्य लेते हुए चन्दनका कल्क, चावलका जल व शक्कर मिलाकर पीनेसे रक्तयुक्त उष्णवात नष्ट होता है । इसीप्रकार बस्तिपर्यन्त अङ्ग डूबने लायक जलमें बैठनेसे उष्णवात नष्ट होता है । तथा कुम्हड़ेका रस क्षार व शक्कर मिलाकर पीना चाहिये ॥ १२–१४ ॥–

अतिव्यवायजमूत्राघातचिकित्सा ।

स्त्रीणामतिप्रसंगेन शोणितं यस्य सिच्यते ॥१५॥
मैथुनोपरमाश्चास्य बृंहणीयो हितो विधिः ।
स्वगुप्ताफलमृद्वीकाकृष्णेक्षुरसितारजः ॥१६॥
समांशमर्धभागानि क्षीरक्षौद्रघृतानि च ।
सर्वं सम्यग्विमथ्याक्षमात्रं लीढ्वा पयः पिबेत् ॥१७॥
हन्ति शुक्राशयोत्थांश्च दोषान्वन्ध्यासुतप्रदम् ।

जिसको अधिक स्त्रीगमन करनेसे रक्त आता है उसे मैथुन बन्द करना तथा बृंहण (बलवीर्यवर्धक) उपाय करना चाहिये । कौंचके बीज, मुनक्का, छोटी पीपल, तालमखानाके बीज तथा मिश्रीका चूर्ण प्रत्येक समान भाग, सबसे आधे प्रत्येक दूध, घी व शहद मिला मथकर १ तोलाकी मात्रामें चाटकर ऊपरसे दूध पीनेसे शुक्राशयके दोष नष्ट होते हैं तथा वंध्याओंके भी सन्तान उत्पन्न होती है ॥ १५–१७ ॥–

चित्रकाद्यं घृतम् ।

चित्रकं शारिवा चैव बला कालानुशारिवा ॥ १८ ॥
द्राक्षा विशाला पिप्पल्यस्तथा चित्रफला भवेत् ।
तथैव मधुकं दद्याद्दद्यादामलकानि च ॥ १९ ॥
घृताढकं पचेदेभिः कल्कैरक्षसमन्वितैः ।
क्षीरद्रोणे जलद्रोणे तत्सिद्धमवतारयेत् ॥ २० ॥
शीतं परिस्रुतं चैव शर्कराप्रस्थसंयुतम् ।
तुगाक्षीर्याश्च तत्सर्वं मतिमान्प्रतिमिश्रयेत् ॥ २१ ॥
ततो मितं पिबेत्काले यथादोषं यथाबलम् ।
वातरेता पित्तरेता श्लेष्मरेताश्च यो भवेत् ॥ २२ ॥
रक्तरेता ग्रन्थिरेता पिबेदिच्छन्नरोगताम् ।
जीवनीयं च वृष्यं च सर्पिरेतन्महागुणम् ॥ २३ ॥
प्रजाहितं च धन्यं च सर्वरोगापहं शिवम् ।
सर्पिरेतत्प्रयुञ्जाना स्त्री गर्भं लभतेऽचिरात् ॥ २४ ॥
असृग्दोषाञ्जयेच्चैव योनिदोषांश्च सहतान् ।
मूत्रदोषेषु सर्वेषु कुर्यादेतच्चिकित्सितम् ॥ २५ ॥

चीतकी जड़, शारिवा, खरेटी, काली शारिवा, मुनक्का, इन्द्रायनकी जड़, छोटी पीपल, ककड़ीके

बीज, मौरेठी तथा आंवला प्रत्येक एक एक तोलाभर ले कल्ककर २५६ तोलेभर घृत एक द्रोण दूध तथा एक द्रोण जल मिला पकावे पाक सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर १ प्रस्थ मिश्री तथा एक प्रस्थ वंशलोचन मिलाना चाहिये । इसकी मात्रायुक्त अनुपानके साथ सेवन करनेसे वात, पित्त, कफके दूषित शुक्र रक्त तथा गांठियासे युक्त शुक्र शुद्ध होता है। यह जीवनीय वाजीकर सन्तानको बढानेवाला तथा समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाला है। इसके प्रयोगसे स्त्रीको गर्भ प्राप्त होता है तथा रक्तदोष, योनिदोष और मूत्रदोषोंमें इसका उपयोग करना चाहिये ॥१८-२५॥

इति मूत्राघाताधिकारः समाप्तः ।

अथाश्मर्यधिकारः ।

वरुणादिक्काथः ।

वरुणस्य त्वचं श्रेष्ठां शुण्ठीगोक्षुरसंयुताम् ।
यवक्षारगुडं दत्त्वा क्वाथयित्वा पिबेद्धिताम् ॥ १ ॥
अश्मरीं वातजां हन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ।

वरुणाकी उत्तम छाल, सोंठ व गोखुरूका क्वाथ बना गुड व जवाखार छोडकर पीनेसे पुरानी वातज अश्मरी नष्ट होती है ॥ १ ॥-

वीरतरादिक्काथः ।

वीरतर' सहचरो दर्भो वृक्षादनी नलः ॥ २ ॥
गुन्द्राकाशकुशावश्मभेदमोरटटुण्टुकाः ।
कुरुण्टिका च वशिरो वसुकः साग्निमन्थकः ॥ ३ ॥
इन्दीवरी श्वदंष्ट्रा च तथा कापोतवक्रकः ।
वीरतरादिरित्येष गणो वातविकारनुत् ॥ ४ ॥
अश्मरीशर्करामूत्रकृच्छ्राघातरुजापहः ।

शरकी जड,पीले फूलका पियावासा, डाभ,बांदा, नर, सल, गुर्च, काश, कुश, पाषाणभेद, इन्द्रकी जड, सोनापाठा, नीले फूलका पियावासा, गजपीपल, अगस्त्यकी छाल, अरणी, नीलोफर, गोखुरू, और काकमाची यह वीरतरादिगण वातरोग, अश्मरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र, मूत्राघातकी पीडाको नष्ट करता है ॥ २-४ ॥-

शुण्ठ्यादिक्काथः ।

शुण्ठ्यग्निमन्थपाषाणशिग्रुवरुणगोक्षुरैः ॥ ५ ॥
अभयारग्वधफलैः क्वाथं कुर्याद्विचक्षणः ।
रामठक्षारलवणचूर्णं दत्त्वा पिबेन्नरः ॥ ६ ॥
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं पाचनं दीपनं परम् ।
हन्यात्कोष्ठाश्रितं वातं कटयूरुगुदमेढ्रगम् ॥ ७ ॥

सोंठ, अरणी, पाषाणभेद, सहिजनकी छाल, वरुणाकी छाल, गोखरू, बडी हर्रोका छिल्का तथा अमलतासका गूदा प्रत्येक समान भागले क्वाथ कर भुनी हींग, जवाखार और नमक डालकर पीनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र नष्ट होता, पाचन और दीपन होता तथा कोष्ठाश्रित, कटि, ऊरु, गुदा व लिंगगत वायु नष्ट होते है ॥ ५-७ ॥

पाषाणभेदाद्यं घृतम् ।

पाषाणभेदो वसुको वशिरोऽश्मन्तकं तथा ।
शतावरी श्वदंष्ट्रा च बृहती कण्टकारिका ॥ ८ ॥
कपोतवक्रार्तगलकाञ्चनोशीरगुल्मकाः ।
वृक्षादनी भल्लुकश्च वरुणः शाकजं फलम् ॥ ९ ॥
यवाः कुलत्थाः कोलानि कतकस्य फलानि च ।
ऊपकादिप्रतीवापमेषां क्वाथे शृतं घृतम् ॥ १० ॥
भिनत्ति वातसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ।
क्षारान्यवागूः पेयाश्च कषायाणि पयांसि च ॥
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्वातनाशने ॥ ११ ॥

पाषाणभेद, अगस्त्य, गजपीपल, काञ्चनार खट्टे पत्तोवाला, शतावरी, गोखरू, बडी कटेरी, छोटी कटेरी, मकोय, नीली कटसैरैया, लाल कचनारकी छाल, खश, नागकेशर, बांदा, सोनापाठा, वरुणाकी छाल, शाकवृक्ष (सहिजन) के फल, यव, कुलथी, बेर, तथा निर्मलीके क्वाथमें सिद्ध घृत ऊपकादि गणका प्रतिवाप छोडकर सेवन करनेसे वातज अश्मरी शीघ्र ही नष्ट होती है। इसी वातनाशक वर्गमें क्षार, यवागू, पेया, क्वाथ, क्षीर तथा भोजन बनाना चाहिये ॥ ८-११ ॥

---

१ कपोत वक्रकसे शिरीषसदृश स्वल्पपत्रक स्वल्पविटप शिवदासजी बतलाते हैं। वैद्यकशब्दसिन्धुमें वीरतरादिगणमें काकमाची ही लिखा है अतः यही यहां लिखा गया है। पर वाग्भटमें इसी गणमें अर्जुन आया है यहां अर्जुनका नाम नहीं है। मेरे विचारसे अर्जुन भी कपोतवक्रकका अर्थ हो सकता है। अथवा कपोतवर्णा पाठ कर इलायची अर्थ करना चाहिये ॥

ऊषकादिगणः ।

ऊषकं सैन्धव हिङ्गु काशीसद्वयगुग्गुलु ।
शिलाजतु तुत्थक च ऊषकादिरुदाहृत ॥ १२ ॥
ऊषकादि कफ हन्ति गणो मेदोविशोधनः ।
अश्मरीशर्करामूत्रशूलघ्न कफगुल्मनुत् ॥ १३ ॥

रेहूमिट्टी, सेंधानमक, हींग, दोनों कशीस, गुग्गुल, शिलाजीत, तूतिया यह ऊषकादि गण कहा जाता है तथा कफ, मेद, पथरी, शर्करा, मूत्रकृच्छ्र व कफज गुल्मको नष्ट करता है ॥ १२ ॥ १३ ॥

कुशाद्यं घृतम् ।

कुश काश शरो गुल्म इत्कटो मोरटोऽश्मभित् ।
दर्भो विदारी वाराही शालिमूल त्रिकण्टक ॥ १४ ॥
भल्लूकः पाटली पाठा पत्तूरोऽथ कुरुण्टिका ।
पुनर्नवे शिरीषश्च क्वथितास्तेषु साधितम् ॥ १५ ॥
घृत शिलाह्वामधुकर्बीजैरिन्दीवरस्य च ।
त्रपुसैर्वारुकाणा वा बीजैश्चावापितं श्रुतम् ॥ १६ ॥
भिनत्ति पित्तसम्भूतामश्मरीं क्षिप्रमेव तु ।
क्षारान्यवागू पेयाश्च कषायाणि पयासि च ।
भोजनानि च कुर्वीत वर्गेऽस्मिन्पित्तनाशने ॥ १७ ॥

कुश, काश, शर, ग्रन्थिपर्णी, रोहिष घास, ईखकी जड, पाषाणभेद, दर्भ, विदारीकन्द, वाराहीकन्द, धानकी जड, गोखुरू, सोनापाठा, पाढला, पाढी, लाल चन्दन, कटसरैया, दोनों पुनर्नवा तथा सिरसाकी छाल समान भाग ले क्वाथ बना क्वाथसे चतुर्थांश घी मिला पका शिलाजीत, मौरेठी व नीलोफरके बीजका प्रतिवाप छोडकर अथवा खीरेके बीज व खर्बूजेके बीजोंका प्रतिवाप छोडकर सेवन करनेसे पित्तज अश्मरी शान्त होती है। तथा यह गण पित्तनाशक है इसमें क्षार, यवागू, पेया, काढे, दूध अथवा भोजन भी बनाना चाहिये ॥ १४–१७ ॥

कफजाश्मरीचिकित्सा ।

गणे वरुणकादौ च गुग्गुल्वेलाहरेणुभिः ।
कुष्ठमुस्ताह्वमरिचचित्रकैः ससुराह्वयैः ॥ १८ ॥
घृतैः सिद्धमजासर्पिरूषकादिगणेन च ।
भिनत्ति कफसम्भूतामश्मरी क्षिप्रमेव तु ॥ १९ ॥
क्षारान्यवागू पेयाश्च कषायाणि पयासि च ।
भोजनानि प्रकुर्वीत वर्गेऽस्मिन्कफनाशने ॥ २० ॥

वरुणादि गणके क्वाथमें गुग्गुल, इलायची, सम्भालूके बीज, कूठ मोथा, मिर्च, चीतकी जड, देवदारु तथा ऊषकादि गणका कल्क छोडकर सिद्ध किया गया बकरीका घृत कफजन्य अश्मरीको शीघ्र ही नष्ट करता है तथा इसी कफनाशक वर्गमें क्षार, यवागू, पेया, काढे और दूध तथा भोजन आदि बनाकर देना चाहिये ॥ १८–२० ॥

वरुणादिगणः ।

वरुणोऽर्तगलः शिग्रुतर्कारीमधुशिग्रुका ।
मेषशृङ्गीकरञ्जौ च बिम्ब्यग्निमन्थमोरटा ॥ २१ ॥
सैरीयो बाशिरो दर्भो वरी वसुकचित्रकौ ।
बिल्वं चैवाजशृङ्गी च बृहतीद्वयमेव च ॥ २२ ॥
वरुणादिगणो ह्येष कफमेदोनिवारण ।
विनिहन्ति शिर शूल गुल्माद्यन्तरविद्रधीन् ॥ २३ ॥

वरुणाकी छाल, नीला कटसरैया, सहिजन, अरणी, मीठा सहिजन, मेढाशिंगी, कञ्जा, कुन्दरु, अरणी, मोरट, पीला कटसरैया, गजपीपल, दर्भ, शतावरी, अगस्त्य, चीतकी जड, बेलका गूदा, मेढाशिंगी छोटी कटेरी, बडी कटेरी यह वरुणादि गण कफ, मेद, शिरःशूल, गुल्म तथा अन्तर्विद्रधिको नष्ट करता है॥२१-२३॥

विविधा योगाः ।

वरुणत्वक्कषायं तु पीत च गुडसंयुतम् ।
अश्मरीं पातयत्याशु वस्तिशूलनिवारणम् ॥ २४ ॥
यवक्षार गुडोन्मिश्र पिबेत्पुष्पफलोद्भवम् ।
रस मूत्रविबन्धघ्न शर्कराश्मरिनाशनम् ॥ २५ ॥
पिबेद्वरुणमूलत्वक्क्वाथ तत्कल्कसयुतम् ।
क्वाथश्च शिग्रुमूलोत्थ कदुष्णोऽश्मरिघातक ॥ २६ ॥

वरुणाकी छालके क्वाथमें गुड मिलाकर पीनेमें अश्मरी गिरती तथा मूत्राशय, शूल शान्त होता है । अथवा जवाखार व गुड मिलाकर कूष्माण्डका रस पीना चाहिये इससे मूत्राघात, शर्करा व अश्मरी नष्ट होती है। अथवा वरुणकी छालके क्वाथमें उसीका कल्क छोड कर पिलानेसे अथवा कुछ गरम गरम सहिजनकी छालके क्वाथको पिलानेसे अश्मरी नष्ट होती है ॥ २४–२६ ॥

नागरादिक्वाथः ।

नागरवारुणगोक्षुरपाषाणभेदकपोतवङ्कज क्वाथ ।
गुडयावशूकमिश्र पीतो हन्त्यश्मरीमुग्राम् ॥ २७ ॥

सोंठ, वरुणाकी छाल, गोखुरू, पाषाणभेद तथा मकोयके क्वाथमें गुड व जवाखार मिलाकर पीनेसे उग्र अश्मरी नष्ट होती है ॥ २७ ॥

वरुणादिक्काथः ।

वरुणत्वक्शिलाभेदशुण्ठीगोक्षुरकैः कृतः ।
कषायः क्षारसंयुक्तः शर्करां च भिनत्त्यपि ॥ २८ ॥

वरुणाकी छाल, पाषाणभेद, सोंठ तथा गोखुरू इनके क्वाथमें क्षार मिलाकर पीनेसे मूत्रशर्करा नष्ट होती है ॥ २८ ॥

श्वदंष्ट्रादिक्काथः ।

श्वदंष्ट्रैरण्डपत्राणि नागरं वरुणत्वचम् ।
एतत्क्वाथवरं प्रातः पिबेदश्मरिभेदनम् ॥ २९ ॥

गोखुरू, एरण्डके पत्ते, सोंठ तथा वरुणाकी छालके क्वाथको प्रातःकाल पीनेसे अश्मरीका भेदन होता है ॥ २९ ॥

श्वदंष्ट्रादिकल्कः ।

मूलं श्वदंष्ट्रेक्षुरकोरुबूकात्
क्षीरेण पिष्टं बृहतीद्वयाच्च ।
आलोड्य दध्ना मधुरेण पेयं
दिनानि सप्ताश्मरिभेदनार्थम् ॥ ३० ॥

गोखुरू, तालमखाना, एरण्ड तथा दोनो कटेरीकी जड़ दूधके साथ पीस मीठा दही मिलाकर पीनेसे ७ दिनमें अश्मरी कट जाती है ॥ ३० ॥

अन्य योगाः ।

पक्वेक्ष्वाकुरसः क्षारसितायुक्तोऽश्मरीहरः ॥ ३१ ॥
पाषाणरोगपीडां सौवर्चलयुक्ता सुरा जयति ।
तद्वन्मधुदुग्धयुक्ता त्रिरात्रं तिलनालभूतिश्च ॥ ३२ ॥

पकी कडुई तोम्बीके रसमें क्षार और मिश्रीको मिलाकर पीनेसे अश्मरी नष्ट होती है । इसी प्रकार काले नमकके साथ शराबको पीनेसे अथवा शहद व दूधके साथ तिलपिञ्जीकी भस्मको पीनेसे ३ रातमें पथरी नष्ट होती है ॥ ३१-३२ ॥

एलादिक्काथः ।

एलोपकुल्यामधुकाश्मभेदकौन्तीश्वदंष्ट्रावृषकोरुबूकैः ।
क्वाथं पिबेदश्मजतुप्रगाढं सशर्करे साश्मरिमूत्रकृच्छ्रे ३३

इलायची, छोटी पीपल, मौरेठी, पाषाणभेद, सम्भालूके बीज, गोखुरू, अडूसा, एरण्डकी छाल इनके क्वाथमें शिलाजतुको मिलाकर शर्करा, अश्मरी व मूत्रकृच्छ्रमें पीना चाहिये ॥ ३३ ॥

त्रिकण्टकचूर्णम् ।

त्रिकण्टकस्य बीजानां चूर्णं माक्षिकसंयुतम् ।
अविक्षीरेण सप्ताहं पिबेदश्मरिनाशनम् ।
शुक्राश्मर्यां तु सामान्यो विधिरश्मरिनाशनः ॥ ३४ ॥

गोखुरूके बीजोंके चूर्णको शहद व भेड़के दूधके साथ सात दिन पीनेसे अश्मरी नष्ट होती है । इसीप्रकार शुक्राश्मरीमें सामान्य अश्मरीनाशक विधिका सेवन करना चाहिये ॥ ३४ ॥

पाषाणभेदादिचूर्णम् ।

पाषाणभेदो वृषकः श्वदंष्ट्रा
पाठाभयाव्योषशटीनिकुम्भाः ।
हिंस्राखराश्वासितिमारकाणां
सर्वारुकाच्च त्रपुषाच्च बीजम् ॥ ३५ ॥
उपकुञ्चिकाहिङ्गुसवेतसाम्लं
स्याद्द्वे बृहत्यौ हपुषा वचा च ।
चूर्णं पिबेदश्मरिभेदि पक्वं
सर्पिश्च गोमूत्रचतुर्गुणं तैः ॥ ३६ ॥

पाषाणभेद, अडूसा, गोखुरू, पाढ़, त्रटी इनका छिल्का, त्रिकटु, कचूर, दन्तीकी छाल, जटामासी, अजमोदा, शालिञ्चशाक, ककडीके बीज व खीराके बीज, कलौंजी, सुर्मा, हींग, अम्लवेत, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, हाऊबेर तथा वच इनका चूर्णकर अश्मरी नाशनार्थ सेवन करना चाहिये तथा इनके कल्क व चतुर्गुण गोमूत्रमें सिद्ध घीका सेवन करनेसे अश्मरी नष्ट होती है ॥ ३५-३६ ॥

कुलत्थाद्यं घृतम् ।

कुलत्थसिन्धूत्थविडङ्गसारं
सशर्करं शीतलियावशूकम् ।
बीजानि कूष्माण्डकगोक्षुराभ्यां
घृतं पचेद्वा वरुणस्य तोये ॥ ३७ ॥
दुःसाध्यसर्वाश्मरिमूत्रकृच्छ्रं
मूत्राभिघातं च समूत्रबन्धनम् ।
एतानि सर्वाणि निहन्ति शीघ्रं
प्ररूढवृक्षानिव वज्रपातः ॥ ३८ ॥

कुलथी, सेंधानमक, वायविडङ्ग, शक्कर, शीतली (जलवृक्ष सफेदफूलयुक्त), जवाखार, कूष्माण्डबीज तथा गोखुरूके बीजका कल्क तथा वरुणाका क्वाथ छोड़कर घृत सिद्ध करना चाहिये । यह घृत दुःसाध्य समग्र अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र व मूत्राघातको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे बढ़े वृक्षोंको बिजलीका गिरना ॥ ३७-३८ ॥

तृणपञ्चमूलघृतम् ।

शरादिपञ्चमूल्या वा कषायेण पचेद्घृतम् ।
प्रस्थ गोक्षुरकल्केन सिद्धमद्यात्सशर्करम् ।
अश्मरीमूत्रकृच्छ्रघ्नं रेतोमार्गरुजापहम् ॥ ३९ ॥

तृणपञ्चमूलके क्वाथ व गोखुरूके कल्कसे घृत सिद्ध कर शक्कर मिला सेवन करनेसे अश्मरी, मूत्रकृच्छ्र और शुक्रमार्गकी पीडा नष्ट होती है ॥ ३९ ॥

वरुणाद्यं घृतम् ।

वरुणस्य तुलां क्षुण्णा जलद्रोणे विपाचयेत् ।
पादशेष परिस्राव्य घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ४० ॥
वरुण कदलीं विल्वं तृणजं पञ्चमूलकम् ।
अमृता चाश्मज देयं वीज च त्रपुपोद्भवम् ॥ ४१ ॥
शतपर्वतिलक्षारं पलाशक्षारमेव च ।
यूथिकायाश्च मूलानि कार्षिकाणि समावपेत् ॥ ४२ ॥
अस्य मात्रां पिवेजन्तुर्देशकालाद्यपेक्षया ।
जीर्णे तस्मिन्पिवेत्पूर्वं गुड जीर्णं तु मस्तुना ।
अश्मरीं शर्करां चैव मूत्रकृच्छ्रं च नाशयेत् ॥ ४३ ॥

वरुणाकी छाल ५ सेर १ द्रोण जलमें पकाना चाहिये चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान १ प्रस्थ घृत तथा वरुणाकी छाल, केला, वेल, तृणपञ्चमूल, गुर्च, शिला-जतु, खीरेके वीज, ईख, तिलका क्षार, पलाशक्षार तथा जूहीकी जड प्रत्येक १ कर्षका कल्क छोडकर पकाना चाहिये । इसका मात्राके साथ सेवन करना चाहिये तथा हजम हो जानेपर पुराना गुड दहीके तोडके साथ पीना चाहिये । यह अश्मरी, शर्करा व मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करता है ॥ ४०–४३ ॥

सैन्धववीरतरादितैलम् ।

अश्माधिकारे यत्तैलं सैन्धवाद्यं प्रकीर्तितम् ।
तत्तैलं द्विगुणक्षीरं पचेद्वीरतरादिना ॥ ४४ ॥
क्वाथेन पूर्वकल्केन साधित तु भिषग्वरैः ।
एतत्तैलवरं श्रेष्ठमश्मरीणा विनाशनम् ॥ ४५ ॥
मूत्राघाते मूत्रकृच्छ्रे पिच्चिते मथिते तथा ।
भग्ने श्रमाभिपन्ने च सर्वथैव प्रशस्यते ॥ ४६ ॥

अश्माधिकारमें जो सैंधवादि तेल कहेंगे उस सिद्ध तैलसे द्विगुण दूध और द्विगुण वीरतरादिगणका क्वाथ तथा सैन्धवादि तैलका कल्क मिलाकर पुनः पकानेसे जो तैल वनेगा वह अश्मरी, मूत्राघात, मूत्रकृच्छ्र पिच्चित, माथित, भग्न तथा थके हुएको परम हितकारी होगा ॥ ४४–४६ ॥

वरुणाद्यं तैलम् ।

त्वक्पत्रमूलपुष्पस्य वरुणात्सत्रिकण्टकात् ।
कषायेण पचेत्तैल वस्तिना स्थापनेन च ।
शर्कराश्मरिशूलघ्नं मूत्रकृच्छ्रनिवारणम् ॥ ४७ ॥

वरुणा व गोखुरूके पञ्चाङ्गके क्वाथसे सिद्ध तैलका अनुवासन द्वारा प्रयोग करनेसे मूत्रशर्करा, अश्मरी, वस्तिशूल व मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते है ॥ ४७ ॥

शस्त्रचिकित्सा ।

शल्यवित्तामशाम्यन्तीं प्रत्याख्याय समुद्धरेत् ।
पायुक्षिप्ताङ्गुलीभ्या तु गुदमेढ्रान्तरे गताम् ॥ ४८ ॥
सेवन्या सव्यपार्श्वे च यवमात्र विमुच्य तु ।
व्रण कृत्वाश्मरीमात्र कर्षेत्ता शस्त्रकर्मवित् ॥ ४९ ॥
भिन्ने वस्तौ तु दुर्ज्ञानान्मृत्यु' स्यादश्मरीं विना ।
नि शेषामश्मरीं कुर्याद्वस्तौ रक्त च निर्हरेत् ॥ ५० ॥
हताश्मरीकमुष्णाम्भो गाहयेद्भोजयेच्च तम् ।
गुडं मूत्रविशुद्ध्यर्थं मध्वाज्याक्तव्रणं तत ॥ ५१ ॥
दद्यात्साज्या त्र्यह पेया साधिता मूत्रशोधिभि ।
आदशाह ततो दद्यात्पयसा मृदुभोजनम् ॥ ५२ ॥
स्वेदयेद्यवमध्वाढ्यं कषाये क्षालयेद्व्रणम् ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठायष्टिलोध्रैश्च लेपयेत् ॥ ५३ ॥
एतैश्च सनिशैः सिद्धं घृतमभ्यञ्जने हितम् ।
अप्रशान्ते तु सप्ताहाद्व्रणे दाहोऽपि चेष्यते ॥
दैवात्ताभ्यां तु या लग्ना ता विपाट्यापकर्षयेत् ॥५४॥

यदि उपरोक्त उपायोंसे अश्मरी शांत न हो तो शल्यशास्त्रवेत्ता प्रत्याख्यान कर शस्त्र द्वारा उसे निकाले । गुदामें २ अगुली छोडकर अश्मरीको गुदा व लिंगके मध्यमे लावे । फिर सेवनीसे वाम और यवमात्र छोड अश्मरीके वरावर व्रणकर अश्मरीको निकाल दे । ठीक ज्ञान न होनेके कारण यदि पथरी न हुई तो व्रण करनेसे वस्ति कट जायगी और रोगी मर जायगा, अतः अच्छी तरह निश्चय कर शस्त्रकर्म करना चाहिये । यदि अश्मरी निकाले ही तो समग्र निकाल ले तथा जो रक्त जमा हो उसे भी साफ कर दे तथा अश्मरी निकाल देनेपर गरम जलमें वैठावे तथा मूत्रशुद्धिके लिये गुड खिलावे, फिर घावमें शहद व घी लगावे तथा मूत्रशोधक द्रव्योंसे सिद्ध पेया घी मिलाकर ३ दिनतक पिलावे, फिर दूधके साथ पथ्य हलका भात आदि १० दिनतक खिलावे तथा यव व शहदसे वनायी पोटलीसे स्वेदन करे तथा कषाय-

रस युक्त काढोंसे व्रणको साफ करे तथा पुण्डरिया, मझीठ, मौरेठी व लोध्रसे लेप करे तथा हल्दीके सहित इन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध घृतकी मालिश करे । सात दिनतक ऐसा करनेसे यदि व्रण ठीक न हो तो उसे जला देना चाहिये । यदि भाग्यवश पथरी नाभीमें अटक गयी हो तो काट कर निकालना चाहिये ॥ ४८–५४ ॥

इत्यश्मर्याविकारः समाप्तः ।

अथ प्रमेहाधिकारः । *

पथ्यम् ।

श्यामाककोद्रवोद्दालगोधूमचणकाढकी ।
कुलत्थाश्च हिता भोज्ये पुराणा मेहिनां सदा ॥ १ ॥
जाङ्गलं तिक्तशाकानि यवान्नं च तथा मधु ।

पुराने सावा कोदव, जगली कोदव, गेहू, चना, अरहर और कुथली प्रमेहवालोंके लिये सदा पथ्य हैं इसी प्रकार जागल प्राणियोंका मांसरस, तिक्तशाक, यवके पदार्थ तथा मधु हितकर है ॥ १ ॥–

अष्टमेहापहा अष्टौ क्वाथाः ।

पारिजातजयानिम्बवह्निगायत्रिणां पृथक् ॥ २ ॥
पाठाया सागुरोः पीताद्वयस्य शारदस्य च ।
जलेक्षुमद्यसिकताशनैर्लवणपिष्टकान् ।
सान्द्रमेहान्क्रमाद्धन्ति ह्यष्टौ क्वाथा समाक्षिका ॥ ३॥

पारिजात, अरणी, नीम, चीतकी जड, कत्था, अगुरु, और पाढका क्वाथ तथा हल्दी व दारुहल्दी (शरदृतुमें उत्पन्न) का क्वाथ इस प्रकार बताये गये ८ क्वाथ क्रमशः जलमेह, इक्षुमेह, मद्यमेह, सिकतामेह, शनैर्मेह, लवणमेह पिष्टमेह और सान्द्रमेहको नष्ट करते हैं ॥ २ ॥ ३ ॥

शुक्रमेहहरः क्वाथः ।

दूर्वाकशेरुपूतीककुम्भीपल्वलशैवलम् ।
जलेन क्वथितं पीतं शुक्रमेहहरं परम् ॥ ४ ॥

दूब, कशेरू, पूतिकरञ्ज, जलकुम्भी तथा सेवार इनका क्वाथ शुक्रमेहको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

फेनमेहहरः क्वाथः ।

त्रिफलारग्वधद्राक्षाकषायो मधुसंयुत ।
पीतो निहन्ति फेनाख्यं प्रमेहं नियतं नृणाम् ॥ ५ ॥

त्रिफला, अमलतासके गूदा तथा मुनक्केके क्वाथमें शहद डालकर पीनेसे फेनमेह नष्ट होता है ॥ ५ ॥

कषायचतुष्टयी ।

लोध्राभयाकट्फलमुस्तकाना
विडङ्गपाठार्जुनधन्वनानाम् ।
कदम्बशालार्जुनदीप्यकाना
विडङ्गदार्वीधवशल्लकीनाम् ॥ ६ ॥
चत्वार एते मधुना कषाया
कफप्रमेहेषु निषेवणीया ॥ ७ ॥

(१) पठानी लोध, बडी हर्रका छिल्का, कायफल नागरमोथाका क्वाथ (२) अथवा वायविडंग, पाढ अर्जुन और धामिनका क्वाथ (३) अथवा कदम्ब शाल, अर्जुन और अजवाइनका क्वाथ (४) अथव वायविडग, दारुहल्दी, धव और शल्लकी (शालभेदः) का क्वाथ इनमेंसे किसी एकमें शहद मिलाकर कफप्रमेहवालोको पीना चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥

---

* कुशावलेहः–"वरिणश्च कुशः काशः कृष्णेक्षुः खागडस्तथा । एतान्दशपलान्भागाञ्जलद्रोणे विपाचयेत् ॥ अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत् । अवतार्य ततः पश्चाच्चूर्णानीमानि दापयेत् ॥ मधुकं कर्कटीबीजं कर्कारु त्रपुषं तथा । शुभामलकपत्राणि एलात्वङ्नागकेशरम् ॥ वरुणामृताप्रियंगूणां प्रत्येकं चाक्षसम्मितम् । प्रमेहान्विंशतिं चैव मूत्राघातं तथाश्मरीम् ॥वातिकं पैत्तिकं चैव श्लैष्मिकं सान्निपातिकम् । हन्त्यरोचकमेवोग्रं तुष्टिपुष्टिकरस्तथा ॥" खश, कुश, काश, काली, ईख, रामशर प्रत्येक द्रव्य ८ छ० जल २५ सेर ९ छ० ३ तो० मिलाकर पकाना चाहिये, अष्टमांश शेष रहनेपर काढा उतारे छानकर पुनः पाक करना चाहिये । गाढा हो जानेपर मौरेठी, ककडीके बीज, पेठेके बीज, खीराके बीज, वंशलोचन, आवला, तेजपात, इलायची, दालचीनी, नागकेशर, वरुणाकी छाल, गुर्च, तथा प्रियगु प्रत्येक १ तोलेका चूर्ण मिलाकर उतार लेना चाहिये । यद्यपि इसमें शक्करका वर्णन नहीं है पर वैद्यलोग अवलेह पकाते समय ६४ तो० शक्कर भी डालते हैं । यह २० प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी, तथा हर प्रकारके अरोचक नष्ट करता है । इसकी मात्रा ६ माशेसे २ तोले तक है यह प्रयोग किसी पुस्तकमें है किसीमें नहीं और इसके ऊपर शिवदासजीने टीका भी नहीं की अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है) ।

षण्मेहनाशकाः षट्क्वाथाः ।

अश्वत्थाच्चतुरङ्गुल्या न्यग्रोधादेः फलत्रिकात् ।
मञ्जिष्ठारक्तसाराच्च क्वाथाः पञ्च समाक्षिकाः ॥ ८ ॥
नीलहारिद्रफेनाख्यक्षारमाञ्जिष्ठकाह्वयान् ।
मेहान्हन्युः क्रमादेते सक्षौद्रो रक्तमेहनुत् ।
क्वाथः खर्जूरकाश्मर्यतिन्दुकास्थ्यमृताकृतः ॥ ९ ॥

(१) पीपलकी छालका क्वाथ, (२) अमलतासके गूदेका क्वाथ (३) न्यग्रोधादि गणका क्वाथ, (४) त्रिफलाका क्वाथ, (५) मजीठ व लालचन्दनका क्वाथ यह पाच क्वाथ शहदके साथ क्रमशः नील, हारिद्र, फेन, क्षार और माञ्जिष्ठमेहको नष्ट करते हैं । (६) तथा छुहारा, खम्भार, तेन्दूकी गुठली और गुर्चका क्वाथ शहदके साथ रक्त प्रमेहको नष्ट करता है ॥ ८-९ ॥

कषायचतुष्टयी ।

लोध्रार्जुनोशीरकुचन्दनाना-
मरिष्टसेव्यामलकाभयानाम् ।
धात्र्यर्जुनारिष्टकवत्सकानां
नीलोत्पलैलातिनिशार्जुनानाम् ॥ १० ॥
चत्वार एते विहिताः कषायाः
पित्ते प्रमेहे मधुसंप्रयुक्ताः ॥ ११ ॥

(१) लोध, अर्जुन, खश, लालचन्दन (२) नीमकी छाल, खश, आवला, बडी हर्रे (३) आवला, अर्जुनकी छाल, नीमकी छाल, कुरैयाकी छाल (४) अथवा नीलोफर, इलायची, तिनिश और अर्जुनकी छाल इस प्रकार लिखे चार क्वाथोंमेंसे कोई भी शहद मिलाकर सेवन करनेसे पित्तप्रमेह नष्ट होता है ॥ १० ॥ ११ ॥

वातजमेहचिकित्सा ।

छिन्नावह्निकषायेण पाठाकुटजरामठम् ।
तिक्तां कुष्ठं च संचूर्ण्य सर्पिर्मेहे पिबेन्नरः ॥ १२ ॥
कदरखदिरपूगक्वाथं क्षौद्राह्वये पिबेत् ।
अग्निमन्थकषायं तु वसामेहे प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥
पाठाशिरीषदुस्पर्शमूर्वाकिंशुकतिन्दुकम् ।
कपित्थानां भिषक् क्वाथं हस्तिमेहे प्रयोजयेत् ॥ १४ ॥

गुर्च और चीतकी जडके काढेके साथ पाढ, कुरैयाकी छाल, भुनी हींग, कुटकी और कूठके चूर्णका सेवन करनेसे सर्पिर्मेह नष्ट होता है । तथा दुर्गन्धित खैर, खैर और सुपारीका क्वाथ मधुमेहमें पीना चाहिये । तथा अरणीका क्वाथ वसामेहमे पीना चाहिये । तथा पाढ सिरसाकी छाल, यवासा, मूर्वा, ढाकके फूल और तेन्दू तथा कैथेका क्वाथ हस्तिमेहमे देना चाहिये ॥ १२-१४ ॥

कफपित्तमेहचिकित्सा ।

कम्पिल्लसप्तच्छदशालजानि
विभीतरौहीतककौटजानि ।
कपित्थपुष्पाणि च चूर्णितानि
क्षौद्रेण लिह्यात्कफपित्तमेही ॥ १५ ॥

कबीला, सप्तपर्ण, शाल, बहेडा, रुहेडा, कुटज और कैथेके फूलका चूर्ण कर शहदके साथ कफपित्तज प्रमेहमें चाटना चाहिये ॥ १५ ॥

त्रिदोषजमेहचिकित्सा ।

सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौद्रनिशायुतः
कषायस्त्रिफलादारुमुस्तकैरथवा कृतः ॥ १६ ॥
फलत्रिकं दारुनिशा विशाला
मुस्तं च निःक्वाथ्य निशांशकल्कम् ।
पिबेत्कषायं मधुसंप्रयुक्तं
सर्वेषु मेहेषु समुत्थितेषु ॥ १७ ॥

आंवलेका रस शहद और हल्दीके चूर्णके साथ समस्त प्रमेहोंके नष्ट करता है अथवा त्रिफला, देवदारु और नागरमोथाका क्वाथ पीना चाहिये । अथवा त्रिफला, दारुहल्दी, इन्द्रायणकी जड तथा नागरमोथाका क्वाथ हल्दीका कल्क और शहद मिलाकर समस्त प्रमेहोंमें सेवन करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

विविधाः क्वाथाः ।

कटकटेरीमधुकत्रिफलाचित्रकैः समैः ।
सिद्धः कषायः पातव्यः प्रमेहाणां विनाशनः ॥ १८ ॥
त्रिफलादारुदार्व्यब्दक्वाथः क्षौद्रेण मेहहा ।
कुटजाशनदार्व्यब्दफलत्रयभवोऽथवा ॥ १९ ॥

दारुहल्दी, मौरेठी, त्रिफला तथा चीतकी जडका क्वाथ समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता है । तथा त्रिफला, देवदारु, दारुहल्दी व नागरमोथाका क्वाथ शहदके साथ पीनेसे प्रमेहको नष्ट करता है । इसी प्रकार कुटज, विजैसार, दारुहल्दी, नागरमोथा और त्रिफलाका क्वाथ समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥ १९ ॥

चूर्णकल्काः ।

त्रिफलालोहशिलाजतुपथ्याचूर्णं च लीढमेकैकम् ।
मधुनामरास्वरस इव सर्वान्मेहान्निरस्यति ॥ २० ॥

शालसुष्ककम्पिल्लकल्कमक्षसमं पिबेत् ।
धात्रीरसेन सक्षौद्रं सर्वमेहहरं परम् ॥ २१ ॥

त्रिफला, लौह, शिलाजतु, तथा हर्रे, इनमेंसे किसी एकका चूर्ण शहदके साथ चाटनेसे शहदके साथ गुर्चके स्वरसके समान समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता है । तथा शाल, मोखा और कबीलाका कल्क १ तोला आंवलेका रस और शहद मिलाकर पीनेसे समस्त मेह नष्ट होते हैं ॥ २० ॥ २१ ॥

न्यग्रोधाद्यं चूर्णम् ।

न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थस्योनाकारग्वधासनम् ।
आम्रजम्बूकपित्थं च प्रियालं ककुभं धवम् ॥ २२ ॥
मधूको मधुकं लोध्रं वरुणं पारिभद्रकम् ।
पटोलं मेषशृङ्गी च दन्ती चित्रकमाढकी ॥ २३ ॥
करञ्जत्रिफलाशक्रभल्लातकफलानि च ।
एतानि समभागानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ॥ २४ ॥
न्यग्रोधाद्यमिदं चूर्णं मधुना सह लेहयेत् ।
फलत्रयरसं चानु पिबेन्मूत्रं विशुध्यति ॥ २५ ॥
एतेन विंशतिर्मेहा मूत्रकृच्छ्राणि यानि च ।
प्रशमं यान्ति योगेन पिडका न च जायते ।
न्यग्रोधाद्यमिदं त्वत्र चाम्रजम्ब्वस्थि गृह्यते ॥ २६ ॥

वट, गूलर, पीपल, सोनापाठा, अमलतास, विजैसार, आम, जामुन, कैथा, चिरौंजी, अर्जुन, धव, महुआ, मौरेठी, लोध, वरुणाकी छाल, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, मेषशृङ्गी, दन्ती, चीतकी जड, अरहर, कञ्जा, त्रिफला, इन्द्रयव तथा भिलावा सब समान भाग ले चूर्ण कर शहदके साथ चाटना चाहिये ऊपरसे त्रिफलाका क्वाथ पीना चाहिये इससे मूत्र शुद्ध आता, बीसों प्रमेह, पिडका, तथा मूत्रकृच्छ्र नष्ट होते हैं । इसे न्यग्रोधादिचूर्ण कहते हैं । इसमें आम व जामुनकी गुठली छोडनी चाहिये ॥ २२-२६ ॥

त्रिकण्टकाद्याः स्नेहाः ।

त्रिकण्टकाश्मन्तकसोमवल्कै-
र्भल्लातकैः सातिविषैः सलोध्रैः ।
वचापटोलार्जुननिम्बमुस्तै-
र्हरिद्रया दीप्यकपद्मकैश्च ॥ २७ ॥
मञ्जिष्ठपाठागुरुचन्दनैश्च सर्वैः समस्तैः कफवातजेषु ।
मेहेषु तैलं विपचेद्घृतं तु पित्तेषु मिश्रं त्रिषु लक्षणेषु २८

गोखुरू, काञ्चनार, कत्था, भिलावा अतीस, लोध, वच, परवल, अर्जुन, नागरनीम, मोथा, हल्दी, अजवायन, पद्माख, मजीठ, पाठी, अगर तथा चन्दनसे सिद्ध किया तैल कफवातज प्रमेहमें तथा इन्हींसे सिद्ध घृत पित्तप्रमेहमें तथा दोनों मिलाकर त्रिदोषज प्रमेहमें पिलाना चाहिये ॥ २७ ॥ २८ ॥

कफपित्तमेहयोः सर्पिषी ।

कफमेहहरक्वाथसिद्धं सर्पिः कफे हितम् ।
पित्तमेहघ्ननिर्यूहसिद्धं पित्ते हितं घृतम् ॥ २९ ॥

कफमेह-नाशक क्वाथमें सिद्ध घृत कफमेहमें तथा पित्तमेह-नाशक क्वाथमें सिद्ध घृत पित्तमेहमें देना चाहिये ॥ २९ ॥

धान्वन्तरं घृतम् ।

दशमूलं करञ्जौ द्वौ देवदारु हरीतकी ।
वर्षाभूर्वरुणो दन्ती चित्रकं सपुनर्नवम् ॥ ३० ॥
सुधानीपकदम्बाश्च बिल्वभल्लातकानि च ।
शटी पुष्करमूलं च पिप्पलीमूलमेव च ॥ ३१ ॥
पृथग्दशपलान्भागांस्ततस्तोयार्मणे पचेत् ।
यवकोलकुलत्थानां प्रस्थं प्रस्थं च दापयेत् ।
तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३२ ॥
निचुलं त्रिफला भार्ङ्गी रोहिषं गजपिप्पली ।
शृङ्गवेरं विडङ्गानि वचा कम्पिल्लकं तथा ॥ ३३ ॥
गर्भेणानेन तत्सिद्धं पाययेत्तु यथाबलम् ।
एतद्धान्वन्तरं नाम विख्यातं सर्पिरुत्तमम् ॥ ३४ ॥
कुष्ठं गुल्मं प्रमेहांश्च श्वयथुं वातशोणितम् ।
प्लीहोदरं तथार्शांसि विद्रधिं पिडकाश्च याः ।
अपस्मारं तथोन्मादं सर्पिरेतन्नियच्छति ॥ ३५ ॥
पृथक्तोयार्मणे तत्र पचेद्द्रव्याच्छतं शतम् ।
शतत्रयाधिके तोयमुत्सर्गक्रमतो भवेत् ॥ ३६ ॥

दशमूल, दोनों करञ्जा, देवदारु, हर्र, रक्त पुनर्नवा, वरुणाकी छाल, दन्ती, चीतकी जड, श्वेत पुनर्नवा, सेहुड, वेत, कदम्ब, बेल, भिलावा, कचूर, पोहकरमूल तथा पिपरामूल प्रत्येक १० पल, यव, बेर, कुलथी प्रत्येक १ प्रस्थ छोडकर उचित मात्रामें जल मिलाकर क्वाथ बनाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान १ प्रस्थ घृत मिलाकर पकाना चाहिये तथा घृतमें चतुर्थांश माजूफल, त्रिफला, भारंगी, रोहिषघास, गजपीपल, अदरख, वच व कबीलाका कल्क छोडकर पकाना चाहिये, इसका बलानुसार सेवन करना चाहिये । यह धान्वन्तर घृत कुष्ठ, गुल्म, प्रमेह, सूजन, वातरक्त, प्लीहोदर, अर्श, विद्रधि, प्रमेह, पिडिका, अपस्मार तथा उन्मादको नष्ट करता है । ओषधियां १ तुला होनेपर जल १

द्रोण छोडना चाहिये और ३ तुला द्रव्यसे अधिक होनेपर जल स्वाभाविक नियमसे अर्थात् चतुर्गुण छोडा जाता है । क्वाथ्य द्रव्य प्रत्येक १० पल लेनेसे १३॥ सेर और १ प्रस्थके मानके ३ द्रव्य २ सेर ६ छ० २ तो० अर्थात् समग्र १५ सेर १४ छ० २ तोला क्वाथ द्रव्य हुआ । अतः जल तीन द्रोण तथा ३ सेर ९ छ० ३ तो० छोडना चाहिये * ॥ ३०–३६ ॥

---

* महादाडिमाद्य घृतम्–"दाडिमस्य फलप्रस्थ यवप्रस्थौ तथैव च । कुलत्थकुडव चैव क्काथयित्वा यथाविधि ॥ तेन पादावशेषेण घृतप्रस्थ विपाचयेत् । चतुःषष्टिपलं क्षीरं क्षीरतुल्य वरीरसम् ॥ दत्त्वा मृद्वग्निना कल्कैरक्षमात्रायुतैः सह । द्राक्षाखर्जूरकाकोलीदन्तीदाडिमजीरकैः ॥ तथा मेदामहामेदात्रिवलादारुरेणुकैः । विशालारजनीदारुहरिद्राविकसामयैः ॥ कृमिघ्नभूमिकूष्माण्डश्यामैलाभिर्भिषग्वरः । पाने भोज्ये प्रदातव्य सर्वर्तुषु च मात्रया ॥ प्रमेहान्विंशतिं चैव मूत्राघातास्तथाश्मरीम् । कृच्छ्रं सुदारुणं चैव हन्यादेतद्रसायनम् ॥ शूलमष्टविधं हन्ति ज्वरमष्टविध तथा । कामला पाण्डुरोगाश्च हलीमकमथारुचिम् ॥ श्लीपद च विशेषेण घृतेनानेन नश्यति । इदमायुष्यमोजस्य सर्वरोगहर परम् ॥ दाडिमाद्यमिद नाम अश्विभ्या निर्मितं महत् ॥" अनारके दाने ६४ तोला यव १२८ तो०, कुलथी, १६ तो० सबसे अष्टगुण जल मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार, छानकर सिद्ध क्वाथमें घी १ सेर ९ छ० ३ तो० तथा दूध ३ सेर १६ तो०, शतावरीका रस ३ सेर १६ तो० तथा मुनक्का, छुहारा, काकोली, दन्तीका छाल, अनारदाना, जीरा, मेदा, महामेदा, त्रिफला, देवदारु, सम्भालूके बीज, इन्द्रायण, हल्दी, दारुहल्दी, मजीठ, कूठ, वायविडंग, विदारीकन्द, कालीसारिवा, इलायची प्रत्येक १ तो० का कल्क छोडकर पाक करना चाहिये । इसका अनुकूल मात्रामें प्रत्येक ऋतुमें पान व भोजनके साथ प्रयोग करना चाहिये । यह २० प्रकारके प्रमेह, मूत्राघात, अश्मरी तथा दारुण मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करता और रसायन है । तथा आठ प्रकारके शूल, आठों ज्वर, कामला, पाण्डुरोग, हलीमक, अरुचि और श्लीपदको नष्ट करता है । यह भगवान् अश्विनकुमारद्वारा बनाया हुआ महादाडिमादिघृत आयुष्य, ओजस्य व सर्वरोगनाशक है (यह कुछ प्रतियोंमें मिलता, कुछमें नहीं अतः टिप्पणीमें लिखा गया है)

त्र्यूषणादिगुग्गुलुः ।

त्रिकटुत्रिफलाचूर्णतुल्ययुक्तं च गुग्गुलम् ।
गोक्षुरक्काथसंयुक्तं गुटिकां कारयेद्भिषक् ॥३७॥
देशकालबलापेक्षी भक्षयेच्चानुलोमिकीम् ।
न चात्र परिहारोऽस्ति कर्मकुर्याद्यथेप्सितम् ।
प्रमेहान्मूत्रदोषांश्च बालरोगोदरं जयेत् ॥ ३८ ॥

त्रिकटु, त्रिफलाका चूर्ण समान भाग, सबके समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर गोखरूके क्काथसे गोली बना लेनी चाहिये । इसे दोष, काल व बलके अनुसार सेवन करनेसे वायुका अनुलोमन होता है तथा प्रमेह, मूत्रदोष और बालरोग नष्ट होते हैं । इसमें कोई परिहार नहीं है । यथेष्ट आहार विहार करना चाहिये ॥३७॥३८॥

शिलाजतुप्रयोगः ।

शालसारादितोयेन भावित यच्छिलाजतु ।
पिबेत्तेनैव सशुद्धदेह पिष्टं यथाबलम् ॥ ३९ ॥
जाङ्गलाना रसैः सार्धं तस्मिञ्जीर्णे च भोजनम् ॥
कुर्यादेवं तुला यावदुपयुञ्जीत मानव. ॥ ४० ॥
मधुमेह विहायासौ शर्करामश्मरीं तथा ।
वपुर्वर्णबलोपेता शतं जीवत्यनामय ॥ ४१ ॥

शालसारादि गणकी औषधियोंसे शुद्ध शिलाजतु इन्हींके क्काथके साथ पीसकर बलानुसार पीना चाहिये । तथा औषध हजम हो जानेपर जाङ्गल प्राणियोंके मासरसके साथ भोजन करना चाहिये । इस प्रकार १ तुला शिलाजतुका प्रयोग कर जानेमें मधुमेह, शर्करा, अश्मरी नष्ट होते और शरीर निरोग, वर्ण बलपूर्ण होकर १०० वर्षतक जीवन धारण करता है ॥ ३९–४१ ॥

विडंगादिलौहम् ।

विडंगत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च ।
जीरकाभ्या युतो हन्ति प्रमेहानतिदुस्तरान् ।
लौहो मूत्रविकाराश्च सर्वानेव न सशय.॥ ४२ ॥

वायविडंग, त्रिफला, नागरमोथा, छोटी पीपल, सोंठ, सफेद जीरा और स्याह जीरासे युक्त लौहभस्म कठिन प्रमेह, तथा मूत्रदोषोंको नष्ट करता है इसमें सशय नहीं॥४२॥

माक्षिकादियोगः ।

माक्षिकं धातुमप्येव युञ्ज्यात्तस्याप्ययं गुण ।
शालसारादिवर्गस्य क्वाथे तु घनता गते ॥४३॥
दन्तीलोध्रशिवाकान्तलौहताम्ररज. क्षिपेत् ।
घनीभूतमदग्धं च प्राश्य मेहान्व्यपोहति ॥४४॥

स्वर्णमाक्षिक धातुका भी इसी प्रकार प्रयोग करना चाहिये उसका भी यही गुण है । तथा शालसारादि

वर्गके क्वाथको पुनः पका क्वाथ गाढा हो जानेपर दन्ती, लोध, छोटी हरें, कान्तलौहभस्म तथा ताम्रभस्मको छोड कर पकाना चाहिये। कडा हो जानेपर जलने न पावे उसी दशामें उतारना चाहिये। इसको चाटनेसे प्रमेह नष्ट होते हैं ॥ ४३ ॥ ४४ ॥

मेहनाशकविहाराः ।

व्यायामजातमखिलं भजेन्मेहान्व्यपोहति ।
पादत्रच्छत्ररहितो भैक्षाशी मुनिवद्यत ॥४५॥
योजनानां शतं गच्छेदधिकं वा निरन्तरम् ।
मेहाञ्जेतुं बलेनापि नीवारामलकाशनः ॥४६॥

अनेक प्रकारके व्यायामसे प्रमेह नष्ट होते है। तथा जूता और छाता विना अर्थात् नगे पैर और नगे शिर मुनियोंके समान जितेंद्रिय हो भिक्षा मागकर भोजन करते हुए ४०० कोश या और अधिक निरन्तर पैदल चलना चाहिये। और पसईके चावल व आवलेको खाना चाहिये ॥ ४५ ॥ ४६ ॥

प्रमेहपिडिकाचिकित्सा ।

शराविकाद्याः पिटकाः साधयेच्छोथवद्भिषक् ।
पक्वाश्चिकित्सेद्व्रणवत्तासां पाने प्रशस्यते ॥४७॥
क्वाथं वनस्पतेर्बास्तं मूत्रं च व्रणशोधनम् ।
एलादिकेन कुर्वीत तैलं च व्रणरोपणम् ॥४८॥
आरग्वधादिना कुर्यात्क्वाथमुद्वर्तनानि च ।
शालसारादिसेकं च भोज्यादिं च कणादिना ॥ ४९ ॥

शराविका आदि पिटिकाओंकी शोथके समान चिकित्सा करनी चाहिये। फूटनेपर व्रणके समान पीनेके लिये वनस्पतियोंका क्वाथ तथा बकरेका मूत्र देना चाहिये। इससे व्रण शुद्ध होते हैं। एलादिगणसे व्रणरोपण तैल बनाना चाहिये। आरग्वधादिका क्वाथ देना चाहिये। शालसारादिवर्गसे उबटन तथा सेकादि करना चाहिये। और छोटी पीपल आदि मिलाकर भोजन करना चाहिये ॥४७–४९॥

वर्ज्यानि ।

सौवीरं सुरां शुक्तं तैलं क्षीरं घृतं गुडम् ।
अम्लेक्षुरसपिष्टान्नानूपमांसानि वर्जयेत् ॥५०॥

कांजी, शराब, सिरका, तैल, दूध, घी, गुड, खट्टी चीजें, ईखका रस, पिट्ठीके अन्न और आनूपमांस न खाने चाहिये । ॥ ५० ॥

इति प्रमेहाधिकारः समाप्तः ।

अथ स्थौल्याधिकारः ।

स्थौल्ये पथ्यानि ।

श्रमचिन्ताव्यवायाध्वक्षौद्रजागरणप्रियः ।
हन्त्यवश्यमतिस्थौल्यं यवश्यामाकभोजनः ॥ १ ॥
अस्वापं च व्यवायं च व्यायामं चिन्तनानि च ।
स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्धयेत् ॥ २ ॥

परिश्रम, चिन्ता, मैथुन, मार्गगमन, शहदका सेवन और जागरण करनेवाला तथा यव व सावाका भोजन करनेवाला अवश्य अतिस्थूलतासे मुक्त होता है। अतः स्थौल्य दूर करनेकी इच्छा करनेवाला पुरुष क्रमशः जागरण, मैथुन, व्यायाम, चिन्ता अधिक बढावे १॥२॥

केचनोपायाः ।

प्रातर्मधुयुतं वारि सेवितं स्थौल्यनाशनम् ।
उष्णमन्नस्य मण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत् ॥ ३ ॥
सचव्यजीरकव्योषहिङ्गुसौवर्चलानलाः ।
मस्तुना शक्तवः पीता मेदोघ्ना वह्निदीपनाः ॥ ४ ॥
विडङ्गनागरक्षारकाललोहरजो मधु ।
यवामलकचूर्णं तु प्रयोगः स्थौल्यनाशनः ॥ ५ ॥

प्रातःकाल शहदका शर्बत पीनेसे अथवा गरम गरम अन्नका माड पीनेसे शरीर पतला होता है। इसी प्रकार चव्य, जीरा, त्रिकटु, हिंगु, कालानमक, और चीतकी जडके चूर्ण तथा दहीके तोडके साथ सत्तू पीनेसे मेदका नाश तथा अग्निकी वृद्धि होती है। इसी प्रकार वायविडंग, सोंठ, जवाखार, लौहभस्म, शहद और यव व आवलेका चूर्ण मिलाकर सेवन करनेसे स्थूलता नष्ट होती है * ॥ ३–५ ॥

। प्रमेहमुक्तिलक्षणम्—"प्रमेहिणो यदा मूत्रमनाविलमपिच्छिलम्। विशदं कटु तिक्तं च तदारोग्यं प्रचक्षते ॥" प्रमेहके रोगियोंका मूत्र जब साफ, लासारहित, फैलनेवाला, कटु व तिक्त आने लगे तब समझना चाहिये कि अब प्रमेह नहीं रहा ॥

* विडंगाद्यं लौहम्—"विडंगत्रिफलामुस्तैः कणया नागरेण च । बिल्वचन्दनह्रीवेरपाठोशीरैः तथा बला ॥

व्योषादिसक्तुयोगः ।

व्योष विडङ्गशिग्रूणि त्रिफलां कटुरोहिणीम् ।
बृहत्यौ द्वे हरिद्रे द्वे पाठामतिविषा स्थिराम् ॥ ६ ॥
हिङ्गु केवूकमूलानि यमानीधान्यचित्रकम् ।
सौवर्चलमजाजीं च हपुषा चेति चूर्णयेत् ॥ ७ ॥
चूर्णतैलघृतक्षौद्रभागा स्युर्मानत समा. ।
सक्तूना षोडशगुणो भाग सतर्पणं पिबेत् ॥ ८ ॥
प्रयोगात्तस्य शाम्यन्ति रोगा सन्तर्पणोत्थिता ।
प्रमेहा मूढवाताश्च कुष्ठान्यर्शांसि कामला ॥ ९ ॥
प्लीहपाण्ड्वामय शोथो मूत्रकृच्छ्रमरोचक ।
हृद्रोगो राजयक्ष्मा च कासश्वासौ गलग्रह. ॥ १० ॥
क्रिमयो ग्रहणीदोषा. श्वैत्र्यं स्थौल्यमतीव च ।
नराणा दीप्यते चाग्नि. स्मृतिर्बुद्धिश्च जायते ॥ ११ ॥

त्रिकटु, वायविडग, सहिजनकी छाल, त्रिफला, कुटकी, दोनों कटेरी, हल्दी, दारुहल्दी, पाढ, अतीस, शालिपर्णी, भुनी हींग, केवुकमूल अजवायन, धनिया, चीतकी जड, कालानमक, जीरा, हाऊवेर इनका चूर्ण करना चाहिये। पुनः चूर्ण १ भाग, तैल १ भाग, घृत १ भाग, शहद १ भाग, और सक्तू १६ भाग जल मिलाकर पीना चाहिये। इस प्रयोगसे सन्तर्पणजन्य रोग तथा प्रमेह, मूढवात, कुष्ठ, अर्श, कामला प्लीहा, पाण्डुरोग, शोथ, मूत्रकृच्छ्र, अरुचि, हृद्रोग, राजयक्ष्मा, कास, श्वास, गलेकी जकडाहट, क्रिमिरोग, ग्रहणीदोष, श्वित्र तथा अतिस्थूलताका नाश होता है अग्नि दीप्त होती तथा बुद्धि और स्मरणशक्ति बढती है ॥ ६–११ ॥

प्रयोगद्वयम् ।

बदरीपत्रकल्केन पेया काञ्जिकसाधिता ।
स्थौल्यनुत्स्यात्साग्निमन्थरसं वापि शिलाजतु ॥ १२ ॥

बेरकी पत्तीके कल्क और काञ्जी मिलाकर सिद्ध पेया अथवा अरणीके रसके साथ शिलाजतु स्थौल्यको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

अमृतादिगुग्गुलुः ।

अमृतात्रुटिवेल्लवत्सकं
कलिङ्गपथ्यामलकानि गुग्गुलु[१] ।
क्रमवृद्धमिदं मधुप्लुतं
पिडकास्थौल्यभगन्दर जयेत् ॥ १३ ॥

गुर्च १ भाग, छोटी इलायची २ भाग, वायविडङ्ग ३ भाग, कुरैयाकी छाल ४ भाग, इन्द्रयव ५ भाग, छोटी हर्र ६ भाग, आवला ७ भाग, तथा गुग्गुलु ८ भाग सबको शहदमें मिलाकर मात्रानुसार सेवन करनेसे पिडका, स्थौल्य और भगन्दर नष्ट होता है ॥ १३ ॥

नवकगुग्गुलुः ।

व्योषाग्नित्रिफलामुस्तविडङ्गैर्गुग्गुलु समम् ।
खादन्सर्वाञ्जयेद्व्याधीन्मेद श्लेष्मामवातजान् ॥ १४ ॥

त्रिकटु, त्रिफला, त्रिमद (नागरमोथा, चीतकी जड, वायविडग) प्रत्येक समान भाग चूर्ण कर सबके समान गुग्गुलु मिलाकर सेवन करनेसे मेद, कफ और आमवातजन्य समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥ १४ ॥

लौहरसायनम् ।

गुग्गुलुस्तालमूली च त्रिफला खादिरं वृषम् ।
त्रिवृतालम्बुषा स्नुक्च निर्गुण्डी चित्रक तथा ॥ १५ ॥
एषा दशपलान्भागांस्तोये पञ्चाढके पचेत् ।
पादशेषं तत कृत्वा कषायमवतारयेत् ॥ १६ ॥
पलद्वादशक देयं तीक्ष्ण लौह सुचूर्णितम् ।
पुराणसर्पिष प्रस्थं शर्कराष्टपलोन्मितम् ॥ १७ ॥
पचेत्ताम्रमये पात्रे सुशीते चावतारिते ।
प्रस्थार्धं माक्षिक देयं शिलाजतु पलद्वयम् ॥ १८ ॥

—एषा सर्वसम लौह जलेन वटिका कुरु। घृतयोगेन कर्तव्या माषैका वटिका शुभा ॥ अनुपान प्रयोक्तव्यं लौहस्याष्टगुणं पयः। सर्वमेहहर बल्य कान्त्यायुर्बलवर्द्धनम् ॥ अग्निसन्दीपनकर वाजीकरणमुत्तमम् । सोमरोग निहन्त्याशु भास्करस्तिमिर यथा ॥ विडगाद्यमिद लौह सर्वरोगनिषूदनम् ॥ ” वायविडग, त्रिफला, नागरमोथा, छोटी पीपल, सोंठ, बेलकी छाल, चन्दन, सुगन्धवाला, पाढ, खस, खरेटी सब समान भाग, सबके समान लौहभस्म मिलाकर जलमें घोट घी मिलाकर गोली १ माशेकी बना लेनी चाहिये, इसके ऊपर अनुपान दूध लौहसे आठ गुणा लेना चाहिये। यह समस्त प्रमेहोंको नष्ट करता, बल, कान्ति, आयुर्बल बढाता, अग्नि दीप्त करता तथा उत्तम वाजीकरण है । सोमरोगको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे अन्धकारको सूर्य। यह विडगादिलौह सभी रोगोंको नष्ट करता है (यह प्रयोग भी कुछ पुस्तकोंमें ही मिलता है अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है)

१ कलिङ्गस्थाने कलीति पाठान्तरम्। कलिः-बिभीतकः॥

एलात्वक्च पलार्धं च विडङ्गानि पलद्वयम् ।
मरिचं चाञ्जनं कृष्णाद्विपलं त्रिफलान्वितम् ॥ १९ ॥
पलद्वयं तु कासीसं सूक्ष्मचूर्णीकृतं बुधैः ।
चूर्णं दत्त्वा सुमथितं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ॥ २० ॥
ततः संशुद्धदेहस्तु भक्षयेदक्षमात्रकम् ।
अनुपानं पिबेत्क्षीरं जाङ्गलानां रसं तथा ॥ २१ ॥
वातश्लेष्महरं श्रेष्ठं कुष्ठमेहोदरापहम् ।
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं सभगन्दरम् ॥ २२ ॥
मूर्च्छामोहविषोन्मादगराणि विविधानि च ।
स्थूलानां कर्षणे श्रेष्ठं मेदुरे परमौषधम् ॥ २३ ॥
कर्षयेच्चातिमात्रेण कुक्षिं पातालसन्निभम् ।
बल्यं रसायनं मेध्यं वाजीकरणमुत्तमम् ॥ २४ ॥
श्रीकरं पुत्रजननं वलीपलितनाशनम् ।
नाश्नीयात्कदलीकन्दं काञ्जिकं करमर्दकम् ।
करीरं कारवेल्लं च षट् ककाराणि वर्जयेत् ॥ २५ ॥

गुग्गुलु, मुसली, त्रिफला, कत्था, अडूसा, निसोथ, मुण्डी, सेहुण्ड, सम्भालू तथा चीतकी जड प्रत्येक १० पल (४० तोला) जल ५ आढक (द्रवद्वैगुण्यात् ३२ सेरमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतारकर छानना चाहिये । फिर लौहभस्म ४८ तोला, पुराना घी १२८ तोला, मिश्री ३२ तोला तथा क्वाथ मिलाकर पकाना चाहिये । तैयार होनेपर उतार ठण्ढा कर शहद ६४ तोला, शिलाजित ८ तोला, छोटी इलायची, दालचीनी प्रत्येक २ तोला, वायविडङ्ग ८ तोला, काली मिर्च, रसौत तथा छोटी पीपल प्रत्येक ८ तोला, त्रिफला प्रत्येक ८ तोला तथा कासीस ८ तोला, सबका चूर्ण अवलेहमें मिला मथकर चिकने पात्रमें रखना चाहिये । फिर विरेचनादिसे शुद्ध पुरुषको १ तोला की मात्रासे सेवन करना चाहिये । अनुपान दूध अथवा जागल प्राणियोंका मासरस रक्खे यह वातश्लेष्म, कुष्ठ, प्रमेह, उदर, कामला, पाण्डुरोग, सूजन, भगन्दर, मूर्छा, मोह, उन्माद, विष, कृत्रिमविषको नष्ट करता तथा मेदस्वी व स्थूल पुरुषको परम हितकर है । पेटको अतिमात्र कृश कर देता है । बल्य है, रसायन, मेध्य तथा वाजीकर है। शोभा बढाता, सन्तान उत्पन्न करता तथा शरीरकी झुर्रियों व बालोंकी सफेदीको नष्ट करता है । इसका सेवन करते हुए कला, कोई भी कन्द, काञ्जी, करौंदा, करीर, करेला इनका त्याग करना चाहिये ॥१९–२५॥

त्रिफलाद्यं तैलम् ।

त्रिफलातिविषामूर्वात्रिवृच्चित्रकवासकैः ।
निम्बारग्वधषड्ग्रन्थासप्तपर्णनिशाद्वयैः ॥ २६ ॥
गुडूचीन्द्रसुराकृष्णाकुष्ठसर्षपनागरैः ।
तैलमेभिः समं पक्वं सुरसादिरसाप्लुतम् ॥ २७ ॥
पानाभ्यञ्जनगण्डूषनस्यबस्तिषु योजितम् ।
स्थूलतालस्यकण्ड्वादीञ्जयेत्कफकृतान्गदान् ॥ २८ ॥

त्रिफला, अतीस, मूर्वा, निसोथ, चीतकी जड अडूसा, नीम, अमलतास, बच, सप्तपर्ण, हल्दी, दारुहल्दी, गुर्च, इन्द्रायण, छोटी पीपल, कूठ, सरसों तथा सोंठका कल्क और सुरसादि गणका रस मिलाकर पकाये गये तैलका पान, मालिश, गण्डूष, नस्य और बस्तिद्वारा प्रयोग करनेसे स्थूलता, आलस्य, कण्डू आदि कफजन्य रोग नष्ट होते हैं ॥ २६–२८ ॥

प्रघर्षप्रदेहाः ।

शिरीषलामज्जकहेमलोध्रैस्त्वग्दोषसस्वेदहरः प्रघर्षः ।
पत्राम्बुलोहाभयचन्दनानि शरीरदौर्गन्ध्यहरः प्रदेहः ॥ २९ ॥
वासादलरसो लेपाच्छङ्खचूर्णेन संयुतः ।
बिल्वपत्ररसैर्वापि गात्रदौर्गन्ध्यनाशनः ॥ ३० ॥

सिरसाकी छाल, रोहिषघास, नागकेशर, तथा लोधका उबटन करनेसे त्वग्दोष व पसीनेकी दुर्गन्धि नष्ट होती है । तथा तेजपात, सुगन्धवाला, अगुरु, तथा लाल व सफेद चन्दनका जलके साथ लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध नष्ट होती है । इसी प्रकार अडूसेके पत्तोंका रस शङ्खचूर्ण मिलाकर लेप करनेसे अथवा बेलके पत्तोंके रसके साथ लेप करनेसे शरीरकी दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ २९॥३०॥

अङ्गरागः ।

हरीतकीलोध्रमरिष्टपत्रं
चूतत्वचो दाडिमवल्कलं च ।
एषोऽङ्गरागः कथितोऽङ्गनानां
जङ्घाकषायश्च नराधिपानाम् ॥ ३१ ॥

हर्र, लोध, नीमकी पत्ती, आमकी छाल, अनारका छिल्का और काकजघाका कषाय मिलाकर लेप करनेसे स्त्रियोंके अङ्गोंको उत्तम बनाता है तथा राजाओंको इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३१ ॥

दलादिलेपः ।

दलजललघुमलयभवविलेपनं हरति देहदौर्गन्ध्यम् ।
विमलारनालसहितं पातमिवालम्बुषाचूर्णम् ॥ ३२ ॥
गोमूत्रपिष्टं विनिहन्ति कुष्ठं
वर्णोज्ज्वलं गोपयसा च युक्तम् ।
कक्षादिदौर्गन्ध्यहरं पयोभिः
शस्तं वशीकृद्रजनीद्वयेन ॥ ३३ ॥

तेजपात, सुगन्धवाला, अगर व चन्दन काञ्जीके साथ पीसकर लेप करनेमें तथा उसीके साथ मुण्डीका चूर्ण पीनेसे देह दौर्गन्ध्य नष्ट होता है इसी प्रकार मुण्डीका चूर्ण गोमूत्रके साथ कुष्ठको नष्ट करता, गोदुग्धके साथ लेप करनेसे वर्णको उत्तम बनाता तथा हल्दी दारुहल्दी व दूधके साथ लेप करनेसे कक्षादि दौर्गन्ध्यको नष्ट करता तथा वशीकरण है ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

चिञ्चाहरिद्रोद्वर्तनम्।

चिञ्चापत्रस्वरससमुक्षित कक्षादियोजितं जयति ।
दग्धहरिद्रोद्वर्तनमचिराद्देहस्य दौर्गन्ध्यम् ॥ ३४ ॥

इमलीकी पत्तीके स्वरसके साथ भुनी हल्दीका चूर्ण कक्षा आदिमें मलनेसे शीघ्र ही देह दौर्गन्ध्य नष्ट होता है ॥ ३४ ॥

हस्तपादस्वेदाधिक्यचिकित्सा।

हस्तपादस्रुतौ योज्य गुग्गुलु पञ्चतिक्तकम् ।
अथवा पञ्चतिक्ताख्य घृतं खादेदतन्द्रित ॥ ३५ ॥

हाथ व पैरोंसे अधिक पसीना आनेपर पञ्चतिक्तगुग्गुलु अथवा पञ्चतिक्तघृत खाना चाहिये ॥ ३५ ॥

इति स्थौल्याधिकारः समाप्तः ।

अथोदराधिकारः।

सामान्यतश्चिकित्सा:।

उदरे दोषसम्पूर्णे कुक्षौ मन्दो यतोऽनल ।
तस्माद्भोज्यानि योज्यानि दीपनानि लघूनि च ॥ १ ॥
रक्तशालीन्यवान्मुद्गाञ्जाङ्गलांश्च मृगद्विजान् ।
पयोमूत्रासवारिष्टमधुशीधु तथा पिबेत् ॥ २ ॥

उदर रोगमें पेट दोषोंसे भर जाता है और अग्नि मन्द हो जाती है । अतः दीपनीय और लघु भोजन करना चाहिये । तथा लाल चावल, यव, मूंग, जांगल प्राणियोंके मांसरस, दूध, मूत्र, आसव, अरिष्ट, मधु और शीधु (एक प्रकारका मद्य) का प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

वातोदरचिकित्सा।

वातोदर बलवत पूर्व स्नेहैरुपाचरेत् ।
स्निग्धाय स्वेदिताङ्गाय दद्यात्स्नेहविरेचनम् ॥ ३ ॥
हृते दोषे परिम्लान वेष्टयेद्वाससोदरम् ।
तथास्यानवकाशत्वाद्वायुर्नाध्मापयेत्पुनः ॥ ४ ॥

बलवान् पुरुषके वातोदरकी पहिले स्नेहन कर चिकित्सा करनी चाहिये । स्नेहन व स्वेदनके अनन्तर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये। दोषोंके निकल जानेपर जब पेट मुलायम हो जावे तब कपडा कसकर बांध देना चाहिये । जिससे कि वायु स्थान पाकर पेटको फुला न दे ॥ ३॥४॥

सर्वोदराणां सामान्यचिकित्सा।

दोषातिमात्रोपचयात्स्रोतोमार्गनिरोधनात् ।
सम्भवत्युदरं तस्मान्नित्यमेनं विरेचयेत् ॥५॥
विरिक्ते च यथादोषपहरं पेया शृता हिता ।
वातोदरी पिबेत्तक्रं पिप्पलीलवणान्वितम् ॥ ६ ॥
शर्करामरिचोपेतं स्वादु पित्तोदरी पिबेत् ।
यमानीसैन्धवाजाजीव्योषयुक्तं कफोदरी ॥७॥

दोषोंके अधिक इकट्ठे होनेसे तथा स्रोतोंके मार्ग बन्द हो जानेसे उदर उत्पन्न होते हैं अतः उदरवालेको नित्य विरेचन देना चाहिये । विरेचनानन्तर जो दोष प्रधान हो तन्नाशक द्रव्योंसे सिद्ध पेया देनी चाहिये। तथा वातोदरी छोटी पीपल व नमकयुक्त मट्ठा पीवे । पित्तोदरी शक्कर व मिर्च मिलाकर मीठा मट्ठा पीवे । तथा कफोदरी अजवायन, सेंधानमक, जीरा, और त्रिकटु मिलाकर मट्ठा पीवे ॥ ५-७ ॥

तक्रविधानम्।

पिबेन्मधुयुतं तक्रं व्यक्ताम्लं नातिपेलवम् ।
मधुतैलवचाशुण्ठीशताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ॥ ८ ॥
युक्तं प्लीहोदरी जातं सव्योषं तु दकोदरी ।
बद्धोदरी तु हपुषायष्टीप्यकाजाजिसैन्धवैः ॥ ९ ॥
पिबेच्छिद्रोदरी तक्रं पिप्पलीक्षौद्रसंयुतम् ।
त्र्यूषणक्षारलवणैर्युक्तं तु निचयोदरी ॥ १० ॥
गौरवारोचकार्तानां समन्दाग्न्यतिसारिणाम् ।
तक्रं वातकफार्तानाममृतत्वाय कल्प्यते ॥ ११ ॥

प्लीहोदरी शहद मिलाकर खट्टा तथा गाढा मट्ठा पीवे अथवा शहद, तैल, वच, सोंठ, सौंफ, कूठ तथा सेंधानमक मिलाकर पीवे । जलोदरी त्रिकटु मिलाकर ताजा मट्ठा पीवे । बद्धगुदोदरी हाऊवेर, अजवायन, जीरा तथा सेंधानमक मिलाकर पीवे। छिद्रोदरी छोटी पीपल व शहद मिलाकर मट्ठा पीवे । सन्निपातोदरी त्रिकटु, क्षार और लवण मिलाकर मट्ठा पीवे। गौरव, अरोचक, मन्दाग्नि, अतिसार तथा वातकफसे पीडित पुरुषोंके लिये मट्ठा अमृततुल्य गुणदायक होता है ८-११॥

दुग्धप्रयोगः ।

वातोदरे पयोऽभ्यासो निरूहो दशमूलकः ।
सोदावर्ते वातहाम्लश्रृतैरण्डानुवासनम् ॥१२॥

वातोदरमें दूधका अभ्यास, दशमूलके क्वाथसे अनुवासन तथा उदावर्तयुक्त वातोदरमें वातनाशक खट्टे पदार्थोंसे सिद्ध एरण्डतैलका अनुवासन देना चाहिये ॥१२॥

सामुद्राद्यं चूर्णम् ।

सामुद्रसौवर्चलसैन्धवानि
क्षारं यवानामजमोदकं च ।
सपिप्पलीचित्रकशृङ्गवेरं
हिंगुर्विडं चेति समानि कुर्यात् ॥१३॥
एतानि चूर्णानि घृतप्लुतानि
भुञ्जीत पूर्वं कवलं प्रशस्तम् ।
वातोदरं गुल्ममजीर्णभुक्त
वायुप्रकोपं ग्रहणी च दुष्टाम् ॥१४॥
अर्शांसि दुष्टानि च पाण्डुरोगं
भगन्दरं चेति निहन्ति सद्यः ॥१५॥

समुद्रनमक, कालानमक, सेंधानमक, यवाखार, अजमोद, छोटी पीपल, चीतकी जड, सोंठ, भुनी हींग तथा विडनमक सब समान भाग लेकर चूर्ण बनाना चाहिये । इस चूर्णको घीके साथ भोजनके प्रथम कौरमें खाना चाहिये । यह वातोदर, गुल्म, अजीर्ण भोजन, वायुप्रकोप, ग्रहणीदोष, अर्श, पाण्डुरोग तथा भगन्दरको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ १३-१५ ॥

पित्तोदरचिकित्सा ।

पित्तोदरे तु बलिनं पूर्वमेव विरेचयेत् ।
अनुवास्याबलं क्षीरबस्तिशुद्धं विरेचयेत् ॥ १६ ॥
पयसा सत्रिवृत्कल्केनोरुबूकशृतेन वा ।
शातलात्रायमाणाभ्यां शृतेनारग्वधेन वा ॥ १७ ॥

पित्तोदरमें बलवान् पुरुषको पहिले ही विरेचन देना चाहिये । निर्बलको अनुवासन कर तथा क्षीरबस्ति देकर निसोयके कल्कके साथ दूधसे अथवा एरण्डके साथ औटे हुए दूधसे अथवा सातला (सेहुण्डभेद) व त्रायमाणासे सिद्ध दूधसे अथवा अमलतासके सिद्ध दूधसे विरेचन देना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

कफोदरचिकित्सा ।

कफोदरिणं शुद्धं कटुक्षारान्नभोजितम् ।
मूत्रारिष्टायस्कृतिभिर्योजयेच्च कफापहैः ॥ १८॥

कफोदरवालेको कटु, क्षार अन्न भोजन कराके शुद्ध कर गोमूत्र, अरिष्ट तथा लोहभस्म आदि कफनाशक प्रयोगोंसे युक्त करना चाहिये ॥ १८ ॥

सन्निपातोदरचिकित्सा ।

सन्निपातोदरे सर्वा यथोक्ता कारयेत्क्रियाम् ।
प्लीहोदरे प्लीहहरं कर्मोदरहरं तथा ॥१९॥
स्विन्नाय बद्धोदरिणे मूत्रं तीक्ष्णौषधान्वितम् ।
सतैलं लवणं दद्यान्निरूहं सानुवासनम् ॥ २० ॥
परिस्रंसीनि चान्नानि तीक्ष्णं चैव विरेचनम् ।
छिद्रोदरमृते स्वेदाच्छ्लेष्मोदरवदाचरेत् ॥ २१ ॥
आर्ते जातं जलं स्राव्य शास्त्रोक्तं शस्त्रकर्म च ।
जलोदरे विशेषेण द्रवमेवा विवर्जयेत् ॥ २२ ॥

सन्निपातोदरमें सभी चिकित्सा करनी चाहिये । प्लीहोदरमें प्लीहानाशक तथा उदरनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । बद्धोदरमें स्वेदनकर तीक्ष्णौषधयुक्त मूत्र तथा तैल व लवणयुक्त अनुवासन व आस्थापन वस्ति देनी चाहिये । दस्त लानेवाले अन्न तथा तीक्ष्ण विरेचन देना चाहिये । छिद्रोदरमें स्वेदके सिवाय शेष सब कफोदरकी चिकित्सा करनी चाहिये । जलोदरमें उत्पन्न जलको निकालना चाहिये तथा शास्त्रोक्त शस्त्र कर्म करना चाहिये । इसमें जलीय द्रव्योंको न खाना चाहिये ॥ १९-२२ ॥

लेपः ।

देवदारुपलाशार्कहस्तिपिप्पलिशिग्रुकैः ।
साश्वगन्धैः सगोमूत्रैः प्रदिह्यादुदरं शनैः ॥२३॥

देवदारु, ढाकके बीज, आककी जड, गजपीपल, सहिजनकी छाल, असगन्ध इनको गोमूत्रमें पीसकर धीरे धीरे पेटपर लेप करना चाहिये ॥ २३ ॥

विविधा योगाः ।

मूत्राण्यष्टावुदरिणां सेके पाने च योजयेत् ।
स्नुहीपयोभावितानां पिप्पलीनां पयोऽशनः ॥ २४ ॥
सहस्रं च प्रयुञ्जीत शक्तितो जठरामयी ।
शिलाजतूनां मूत्राणां गुग्गुलोस्त्रैफलस्य च ॥ २५ ॥
स्नुहीक्षीरप्रयोगश्च शमयत्युदरामयम् ।
स्नुक्पयसा परिभाविततण्डुलचूर्णैर्विनिर्मितः पूपः॥२६॥
उदरमुदारं हिरयाद्योगोऽयं सप्तरात्रेण ।
पिप्पलीवर्धमानं वा कल्पदृष्टं प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥
जठराणां विनाशाय नास्ति तेन समं भुवि ।

उदरवालोंको सिञ्चन तथा पानके लिये आठों मूत्रोंका प्रयोग करना चाहिये। तथा दूधका सेवन करते हुए सेहुण्डके दूधसे भावित १००० पिप्पलियोंका प्रयोग शक्तिके अनुसार करना चाहिये। अथवा शिलाजतु, मूत्र अथवा त्रिफला, गुग्गुलु, अथवा थूहरके दूधका प्रयोग उदररोगको शान्त करता है। इसी प्रकार थूहरके दूधसे भावित चावलके आटेकी पुडी ७ दिनमें बढे हुए उदररोगको नष्ट करती है अथवा कल्पोक्त वर्द्धमान पिप्पलीका प्रयोग करना चाहिये। इससे बढकर उदररोगोंके नाशार्थ कोई प्रयोग नहीं है॥ २४-२७॥

पटोलाद्यं चूर्णम्।

पटोलमूलं रजनी विडङ्गं त्रिफलात्वचम्॥ २८॥
कम्पिल्लकं नीलिनीं च त्रिवृतां चेति चूर्णयेत्।
पडाद्यान्कार्षिकानन्त्यांस्त्रींश्च द्वित्रिचतुर्गुणान्॥ २९॥
कृत्वा चूर्णं ततो मुष्टिं गवां मूत्रेण ना पिबेत्।
विरिक्तो जाङ्गलरसैर्भुञ्जीत मृदुमोदनम्॥ ३०॥
मण्डं पेयां च पीत्वा च सव्योषं पडहं पयः।
शृतं पिबेत्तु तच्चूर्णं पिबेदेव पुनः पुनः॥ ३१॥
हन्ति सर्वोदराण्येतच्चूर्णं जातोदकान्यपि।
कामलां पाण्डुरोगं च श्वयथुं चापकर्षति॥ ३२॥

परवलकी जड १ तोला, हल्दी १ तोला, वायविडङ्ग १ तो०, आवला १ तो०, हर्रे १ तो०, बहेडा १ तो०, कबीला २ तो०, नीलकी पत्तिया ३ तो०, निसोथ ४ तो०, सबका चूर्ण कर ४ तोलाकी मात्रा गोमूत्रमे मिलाकर पीना चाहिये, इससे विरेचन होगा। दस्त आजानेके अनन्तर जागल प्राणियोंके मासरससे हल्का भात खाना चाहिये अथवा माड, पेया, विलेपी अथवा त्रिकटुसे सिद्ध दूध ६ दिनतक पीना चाहिये। ७ वें दिन यही चूर्ण फेर गोमूत्रके साथ पीना चाहिये। इस तरह बारबार प्रयोग करनेसे यह चूर्ण जलोदरादि समस्त उदर तथा कामला, पाण्डुरोग और सूजनको नष्ट करता है॥२८-३२॥

नारायणचूर्णम्।

यमानी हपुषा धान्यं त्रिफला सोपकुञ्चिका।
कारवी पिप्पलीमूलमजगन्धा शटी वचा॥ ३३॥
शताह्वा जीरकं व्योषं स्वर्णक्षीरी सचित्रकम्।
द्वौ क्षारौ पौष्करं मूलं कुष्ठं लवणपञ्चकम्॥ ३४॥

१ "सैरिभाजाविकरभागोखराद्विपनाजिनाम्। मूत्राणीति भिषग्वर्यैर्मूत्राष्टकमुदाहृतम्॥"

विडङ्गं च समांशानि दन्त्या भागत्रयं तथा।
त्रिवृद्विशाले द्विगुणे शातला स्याच्चतुर्गुणा॥ ३५॥
एष नारायणो नाम चूर्णो रोगगणापहः।
नैनं प्राप्याभिवर्धन्ते रोगा विष्णुमिवासुराः॥ ३६॥
तक्रेणोदरिभिः पेयो गुल्मिभिर्बदराम्बुना।
आनद्धवाते सुरया वातरोगे प्रसन्नया॥ ३७॥
दधिमण्डेन विट्सङ्गे दाडिमाम्बुभिरर्शसि।
परिकर्ते च वृक्षाम्लैरुष्णाम्बुभिरजीर्णके॥ ३८॥
भगन्दरे पाण्डुरोगे कासे श्वासे गलग्रहे।
हृद्रोगे ग्रहणीदोषे कुष्ठे मन्दानले ज्वरे॥ ३९॥
दंष्ट्राविषे मूलविषे सगरे कृत्रिमे विषे।
यथार्हं स्निग्धकोष्ठेन पेयमेतद्विरेचनम्॥ ४०॥

अजवायन, हाऊबेर, धनियां, त्रिफला, कलौंजी, कालाजीरा, पिपरामूल, अजवाइन, कचूर, वच, सौंफ, जीरा, त्रिकटु, स्वर्णक्षीरी, चीतकी जड, जवाखार, सज्जीखार, पोहकरमूल, कूठ, पाचोंनमक तथा वायविडंग, प्रत्येक १ भाग, दन्ती ३ भाग, निसोथ और इन्द्रायण प्रत्येक २ भाग, शातला (सेहुण्डभेद) ४ भाग इनका चूर्ण करना चाहिये। यह चूर्ण रोगसमूहको नष्ट करता है इसके सेवनसे रोग इस भांति नष्ट होते हैं जैसे विष्णु भगवान्से राक्षस। उदरवालोंको मट्ठेके साथ, गुल्मवालोंको बेरके क्वाथके साथ, वायुकी रुकावटमें शराबके साथ, वातरोगमें शराबके स्वच्छभागके साथ, मलकी रुकावटमें दहीके तोडके साथ, अनारके रससे अर्शमें, परिकर्तन (गुदामें कैंचीसे काटना सा प्रतीत होने) में बिजौरेके रससे, तथा अजीर्णमें गरम जलसे पीना चाहिये स्निग्धकोष्ठ पुरुषको विरेचनके लिये यथोचित अनुपानके साथ, भगन्दर, पाण्डुरोग, कास श्वास, गलग्रह, हृद्रोग, ग्रहणीदोष, कुष्ठ, मन्दाग्नि, ज्वर दंष्ट्राविष, मूलविष, गरविष तथा कृत्रिमविषमें इसे पीना चाहिये॥३३-४०॥

दन्त्यादिकल्कः।

दन्ती वचा गवाक्षी च शंखिनी तिल्वकं त्रिवृत्।
गोमूत्रेण पिबेत्कल्कं जठरामयनाशनम्॥ ४१॥

दन्ती, वच, इन्द्रायण, कालादाना, लोध तथा निसोथका कल्क कर गोमूत्रके साथ पीना चाहिये। इससे उदररोग नष्ट होता है॥ ४१॥

माहिषमूत्रयोगः।

सक्षीरं माहिषं मूत्रं निराहारः पिबेन्नरः।
शाम्यत्यनेन जठरं सप्ताहादिति निश्चयः॥ ४२॥

निराहार रहकर गायके दूधको भैंसेके मूत्रके साथ पीनेसे ७ दिनमें उदररोग नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

गोमूत्रयोगः।

गवाक्षीशङ्खिनीदन्तीनीलिनीकल्कसंयुतम्।
सर्वोदरविनाशाय गोमूत्रं पातुमाचरेत् ॥ ४३ ॥

इन्द्रायण, कालादाना, दन्ती तथा नीलके कल्कके साथ गोमूत्र पीनेसे समस्त उदररोग नष्ट होते हैं ॥४३॥

अर्कलवणम्।

अर्कपत्रं सलवणमन्तर्धूमं दहेत्ततः।
मस्तुना तत्पिबेत्क्षारं गुल्मप्लीहोदरापहम् ॥ ४४ ॥

आकके पत्ते और नमक दोनोंको अन्तर्धूम पकाकर महीन पीस दहीके तोडके साथ पीनेसे गुल्म और प्लीहा नष्ट होता है ॥ ४४ ॥

शिग्रुक्काथः।

पीतः प्लीहोदरं हन्यात्पिप्पलीमरिचान्वितः।
अम्लवेतससंयुक्तः शिग्रुक्काथः ससैन्धवः ॥ ४५ ॥

सहिजनका क्काथ छोटी पीपल, काली मिर्च, अम्लवेत और सेधानमकका चूर्ण मिलाकर पीनेसे प्लीहोदर नष्ट होता है ॥ ४५ ॥

इन्द्रवारुणीमूलोत्पाटनम्।

गृहीत्वा यस्य संज्ञां पाटयित्वेन्द्रवारुणीमूलम्।
प्रक्षिप्यते सुदूरे शाम्येत प्लीहोदरं तस्य ॥ ४६ ॥

जिसका नाम लेकर इन्द्रायणकी जड उखाड दूर फेंक दी जाय उसका प्लीहोदर शान्त हो जाता है॥४६॥

रोहितकयोगः।

रोहीतकाभयाक्षोदभावितं मूत्रमसृग्वा।
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शः क्रिमिगुल्मनुत् ॥ ४७ ॥

रुहेडेकी छाल व बडी हर्रका चूर्ण कर गोमूत्र अथवा रक्तके साथ पीनेसे समस्त उदर, प्लीहा, मेह, अर्श, क्रिमि और गुल्म नष्ट होते है ॥ ४७ ॥

देवद्रुमादिचूर्णम्।

देवद्रुमं शिग्रु मयूरकं च
गोमूत्रपिष्टानथ साऽश्वगन्धान्।
पीत्वाशु हन्यादुदरं प्रवृद्धं
कृमीन्सशोथानुदरं च दूष्यम् ॥ ४८ ॥

देवदारु, सहिंजनकी छाल, लटजीरा, और असगन्धको गोमूत्रमें पीसकर पीनेमें उदर, क्रिमि शोथ तथा सन्निपातोदर नष्ट होता है ॥ ४८ ॥

दशमूलादिक्काथः।

दशमूलदारुनागरछिन्नरुहापुनर्नवाभयाक्काथः।
जयति जलोदरशोथश्लीपदगलगण्डवातरोगांश्च ॥ ४९ ॥

दशमूल, देवदारु, सोंठ, गुर्च, पुनर्नवा और बडी हर्रके छिल्केका क्काथ जलोदर, शोथ, श्लीपद, गलगण्ड और वातरोगोंको नष्ट करता है ॥ ४९ ॥

हरीतक्यादिक्काथः।

हरीतकीनागरदेवदारुपुनर्नवाछिन्नरुहाकषायः।
सगुग्गुलुर्मूत्रयुतश्च पेयः शोथोदराणां प्रवरः प्रयोगः ॥५०॥

बडी हर्रके छिल्के, सोंठ, देवदारु, पुनर्नवा और गुर्चका क्काथ गुग्गुलु और गोमूत्र मिलाकर पीनेसे शोथयुक्त उदरको नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ५० ॥

एरण्डतैलादियोगत्रयी।

एरण्डतैलं दशमूलमिश्रं गोमूत्रयुक्तस्त्रिफलारसो वा।
निहन्ति वातोदरशोथशूलं क्काथः समूत्रो दशमूलजश्च॥५१॥

दशमूल क्काथके साथ एरण्डतैल, अथवा गोमूत्रके साथ त्रिफलाका रस, अथवा गोमूत्रयुक्त दशमूलका क्काथ वातोदर, शोथ और शूलको नष्ट करता है ॥५१॥

पुनर्नवाष्टकः क्काथः।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठी-
तिक्ताभयादार्वमृताकषायः।
सर्वाङ्गशोथोदरकासशूल-
श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ५२ ॥

पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, सोंठ, कुटकी, बडी हर्रका छिल्का, देवदारु, तथा गुर्चका क्काथ, सर्वाङ्गशोथ, उदर, कास, शूल, श्वास और पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

पुनर्नवागुग्गुलुयोगः।

पुनर्नवा दार्वभया गुडूचीं
पिबेत्समूत्रां महिषाक्षयुक्ताम्।
त्वग्दोषशोथोदरपाण्डुरोग-
स्थौल्यप्रसेकोर्ध्वकफामयेषु ॥ ५३ ॥

पुनर्नवा, देवदारु, बडीहर्रका छिल्का, तथा गुर्चका क्काथ या चूर्ण गोमूत्र और गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे त्वग्दोष, शोथ, उदर, पाण्डुरोग, स्थौल्य, मुखसे पानी आना तथा ऊर्ध्व भागके कफरोग नष्ट होते हैं ॥ ५३ ॥

गोमूत्रादियोगाः।

गोमूत्रयुक्तं महिषीपयो वा
क्षीरं गवा वा त्रिफलाविमिश्रम्।
क्षीराम्नभुक्केवलमेव गव्यं
मूत्रं पिबेद्वा श्वयथूदरेषु ॥५४॥

गोमूत्रके साथ भैंसीका दूध अथवा गोदुग्धके साथ त्रिफलाका चूर्ण अथवा केवल गोमूत्र पीनेसे तथा दूधका ही पथ्य लेनेसे सूजन उदररोग नष्ट होता है ॥ ५४ ॥

पुनर्नवादिचूर्णम्।

पुनर्नवा दार्वमृता पाठा बिल्वं श्वदंष्ट्रिका।
बृहत्यौ द्वे रजन्यौ द्वे पिप्पल्यश्चित्रकं वृषम् ॥ ५५ ॥
समभागानि संचूर्ण्य गवां मूत्रेण ना पिबेत्।
बहुप्रकारं श्वयथुं सर्वगात्रविसारिणम्।
हन्ति शूलोदराण्यष्टौ व्रणांश्चैवोद्धतानपि ॥५६॥

पुनर्नवा, देवदारु, गुर्च, पाढ, बेलका गूदा, गोखरू, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, हल्दी, दारुहल्दी, छोटी पीपल, चीतकी जड तथा अडूसा सब समान भाग चूर्ण कर गोमूत्रके साथ पीनेसे समस्त शरीरमें फैली हुई अनेक प्रकारकी सूजन शूलयुक्त आठों उदर तथा उद्धत व्रण नष्ट होते हैं ॥५५॥५६॥

माणपायसम्।

पुराणं माणकं पिष्ट्वा द्विगुणीकृततण्डुलम्।
साधितं क्षीरतोयाभ्यामभ्यसेत्पायसं ततः ॥५७॥
हन्ति वातोदरं शोथं ग्रहणीं पाण्डुतामपि।
सिद्धो भिषग्भिराख्यातः प्रयोगोऽयं निरत्ययः ॥५८॥

पुराने मानकन्दको पीसकर कन्दसे द्विगुण चावल मिला दूध और जलके साथ खीर बनाकर खानेसे वातोदर, शोथ, ग्रहणी व पाण्डुरोग, नष्ट होते हैं । इस प्रयोगमें कोई आपत्ति नहीं होती यह वैद्योंका अनुभूत है ॥५७-५८॥

दशमूलषट्पलकं घृतम्।

दशमूलतुलार्धरसे सक्षारैः पञ्चकोलकैः पलिकैः।
सिद्धं घृतार्धपात्रं द्विमस्तुकमुदरगुल्मघ्नम् ॥५९॥

दशमूल २॥ सेरका क्वाथ, पञ्चकोल प्रत्येक १ पल, जवाखार १ पल, गायका घी अर्द्धाढक तथा दहीका तोड १ आढक मिलाकर यथाविधि पाक हो जानेपर सेवन करनेसे उदर तथा गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥५९॥

चित्रकघृतम्।

चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकात्पले।
कल्के सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षारं जठरी पिबेत् ६० ॥

घी १ प्रस्थ, गोमूत्र २ प्रस्थ, जल ४ प्रस्थ तथा चीतकी जड २ पल मिलाकर सिद्ध किये गये घृतमें जवाखार मिलाकर पीनेसे उदररोग नष्ट होता है॥६०॥

बिन्दुघृतम्।

अर्कक्षीरपले द्वे च स्नुहीक्षीरपलानि षट्।
पथ्याकम्पिल्लकं श्यामासम्पाकं गिरिकर्णिका ॥ ६१ ॥
नीलिनी त्रिवृता दन्ती शङ्खिनी चित्रकं तथा।
एतेषां पलिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६२ ॥
अथास्य मलिने कोष्ठे बिन्दुमात्रं प्रदापयेत्।
यावतोऽस्य पिबेद्बिन्दूंस्तावद्वारान्विरिच्यते ॥ ६३ ॥
कुष्ठं गुल्ममुदावर्तं श्वयथुं सभगन्दरम्।
शमयत्युदराण्यष्टौ वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा।
एतद्बिन्दुघृतं नाम येनाभ्यक्तो विरिच्यते ॥ ६४ ॥

आकका दूध ८ तोला, थूहरका दूध २४ तोला, हर्र, कबीला, कालानिसोथ, अमलतासका गूदा, इन्द्रायण, नील, निसोथ, दन्ती, कालादाना, तथा चीतकी जड प्रत्येक १ पल, घृत १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्य कर १२८ तोला) मिलाकर पकाना चाहिये । इसकी बिन्दुमात्रा मलिन कोष्ठवालोंको देनी चाहिये । जितने बिन्दु इसके पिये जाते हैं उतने ही दस्त आते हैं । यह कुष्ठ, गुल्म, उदावर्त, सूजन, भगन्दर तथा उदररोगोंको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे वृक्षको इन्द्रवज्र । इस बिन्दु घृतकी नाभिमें मालिश करनेसे भी दस्त आते हैं ॥६१-६४॥

स्नुहीक्षीरघृतद्वयम्।

दधिमण्डाढके सिद्धात्स्नुक्क्षीरपलकल्कितात्।
घृतप्रस्थात्पिबेन्मात्रां तद्वज्जठरशान्तये ॥ ६५ ॥
तथा सिद्धं घृतप्रस्थं पयस्यष्टगुणे पिबेत्।
स्नुक्क्षीरपलकल्केन त्रिवृता षट्पलेन च ॥ ६६ ॥

दहीका तोड ३ सेर १६ तोला, थूहरका दूध ४ तोला, गायका घी ६४ तोला मिलाकर सिद्ध किया हुआ घृत उदर शान्तिके लिये पीना चाहिये । इसी प्रकार घी १ प्रस्थ, दूध ८ प्रस्थ, थूहरका दूध १ पल और निसोथका कल्क ६ पल मिलाकर सिद्ध किया गया घृत पीना चाहिये ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

नाराचघृतम्।

स्नुक्क्षीरदन्तीत्रिफलाविडङ्ग-
सिंहीत्रिवृच्चित्रककल्कयुक्तम्।

घृत विपक्व कुडवप्रमाण
तोयेन तस्याक्षमथार्धकर्षम् ॥ ६७ ॥
पीत्वोष्णमम्भोऽनु पिबेद्विरिक्ते
पेयां सुखोष्णां वितरेद्विधिज्ञः ।
नाराचमेतज्जठरामयानां
युक्त्योपयुक्तं शमनं प्रदिष्टम् ॥ ६८ ॥

थूहरका दूध, दन्ती, त्रिफला, वायविडंग, छोटी कटेरी, निसोथ तथा चीतकी जडका कल्क और एक कुडव घृत चतुर्गुण जलमें छोडकर पाक करना चाहिये। इसका एक कर्ष अथवा अर्धकर्ष गरम जलके साथ पीना चाहिये। इससे विरेचन हो जानेपर कुछ गरम गरम पेया देनी चाहिये। इस नाराचघृतका युक्तिपूर्वक प्रयोग करनेसे उदररोग शान्त होते हैं ॥ ६७ ॥ ६८ ॥

इत्युदराधिकारः समाप्तः ।

अथ प्लीहाधिकारः ।

यमान्यादिचूर्णम् ।

यमानिकाचित्रकयावशूक-
षड्ग्रन्थिदन्तीमगधोद्भवानाम् ।
प्लीहानमेतद्विनिहन्ति चूर्ण-
मुष्णाम्बुना मस्तुसुरासवैर्वा ॥ १ ॥

अजवायन, चीतकी, जड, जवाखार, वच, दन्ती, तथा छोटी पीपलके चूर्णको गरम जल, दहीके तोड, शराब अथवा आसवके साथ सेवन करनेसे प्लीहा नष्ट होती है ॥ १ ॥

विविधाः योगाः ।

पिप्पलीं किंशुकक्षारभावितां सम्प्रयोजयेत् ।
गुल्मप्लीहापहा वह्निदीपनीं च रसायनीम् ॥ २ ॥
विडङ्गाग्न्यग्निसिन्धूत्थशक्रूदग्ध्वा वचान्वितान् ।
पिबेत्क्षीरेण संचूर्ण्य गुल्मप्लीहोदरापहान् ॥ ३ ॥
तालपुष्पभवं क्षारं सगुडं प्लीहनाशनम् ।
क्षारं वा बिडकृष्णाभ्यां पूतीकस्याम्लनि सुतम् ॥४॥
प्लीहयकृत्प्रशान्त्यर्थं पिबेत्प्रातर्यथाबलम् ।
पातव्यो युक्तितः क्षारः क्षीरेणोदधिशुक्तिजः ॥ ५ ॥
पयसा वा प्रयोक्तव्या पिप्पल्यः प्लीहशान्तये ।

ढाकके क्षारमें भावित पिप्पलीका प्रयोग करना चाहिये। यह गुल्म और प्लीहाको नष्ट करती, अग्निको दीप्त करती तथा रसायन है। इसी प्रकार वायविडंग, घृत चीतकी जड, सेंधानमक, सत्तू और वचको अन्तर्धूम जला कर चूर्ण बना दूधके साथ पीनेसे गुल्म, प्लीहा तथा उदररोग शान्त होते हैं। इसी प्रकार तालपुष्पका क्षार गुडके साथ प्लीहाको नष्ट करता है। अथवा विडलवण, छोटी पीपल और कञ्जीका क्षार काञ्जीके साथ बलानुसार पीनेसे प्लीहा व यकृत् शान्त होते हैं। अथवा दूधके साथ समुद्रसीपके क्षारका प्रयोग करना चाहिये। अथवा दूधके साथ छोटी पीपलका प्रयोग करना चाहिये ॥२-५॥-

भल्लातकमोदकः ।

भल्लातकाभयाजाजी गुडेन सह मोदकः ॥६॥
ससरात्रान्निहन्त्याशु प्लीहानमतिदारुणम् ।

भिलावां, बडी हर्रका छिल्का तथा जीरको गुडमें मिलाकर बनायी गयी गोलियां सात रात्रिमें प्लीहाको नष्ट करती हैं ॥ ६ ॥-

प्रयोगद्वयम् ।

शोभांजनकनिर्यूहं सैन्धवाग्निकणान्विताम् ॥७॥
पलाशक्षारयुक्तं वा यवक्षारं प्रयोजयेत् ।

सहिजनके क्वाथके साथ सेंधानमक, चीतकी जड व छोटी पीपलके चूर्णको मिलाकर पीना चाहिये अथवा ढाकके क्षारके साथ जवाखारका प्रयोग करनेसे प्लीहा दूर होती है ॥ ७ ॥-

यकृच्चिकित्सा ।

तिलान्सलवणांश्चैव घृतं षट्पलकं तथा ॥८॥
प्लीहोद्दिष्टां क्रियां सर्वां यकृति सम्प्रयोजयेत् ।

काले तिल व नमक अथवा षट्पलघृत तथा प्लीहाकी समस्त चिकित्सा यकृत्में प्रयुक्त करनी चाहिये ॥ ८ ॥

विविधा योगाः ।

लशुनं पिप्पलीमूलमभयां चैव भक्षयेत् ।
पिबेद्गोमूत्रगण्डूषं प्लीहरोगविमुक्तये ॥९॥
प्लीहजिच्छरपुङ्खाया कल्कस्तक्रेण सेवितः ।
शरपुङ्खैव संचर्व्य जग्धापेयाभुजाथवा ॥१०॥
शार्ङ्गेष्टानिर्यूहः ससैन्धवस्तिन्तिडीकसमिश्रः ।
प्लीहव्युपरमयोग्यः पक्वाम्ररसोऽथवा समधु ॥११॥

लहसुन, पिपरामूल व बडी हर्रका प्रयोग करे अथवा गोमूत्रको गण्डूषप्रमाणकी मात्रामें प्लीहरोगकी शान्तिके लिये पीवे तथा शरपुंखाका कल्क मट्ठेके

साथ पीनेसे प्लीहा नष्ट होती है । प्लीह नाशक पेयाका पथ्य लेते हुए शरपुखाको चबानेसे अथवा काक जघाके क्वाथमें सेंधानमक और तितिडीकको मिलाकर पीनेसे अथवा पके हुए आमके रसको शहद मिलाकर चाटनेसे प्लीहाकी शांति होती है ॥ ९–११ ॥

अत्र शिराव्यधविधिः ।

दध्ना भुक्तवतो वामबाहुमध्ये शिरा भिषक् ।
विध्येत्प्लीहविनाशाय यकृन्नाशाय दक्षिणे ॥ १२ ॥
प्लीहानं मर्दयेद्गाढं दुष्टरक्तप्रवृत्तये ।

दहीके साथ भोजन कराकर वैद्यको प्लीहानाशार्थ वामबाहुमें तथा यकृत्शान्त्यर्थ दक्षिणबाहुमें शिराव्यध करना चाहिये तथा दूषितरक्तके निकालनेके लिये प्लीहा-को जोरसे दबाना चाहिये ॥ १२ ॥–

परिकरो योगः ।

माणमार्गीमृतावासास्थिराचित्रकसैन्धवम् ॥ १३ ॥
नागरं तालखण्डं च प्रत्येकं तु त्रिकार्षिकम् ।
विडसौवर्चलक्षारपिप्पल्यश्चापि कार्षिका ॥ १४ ॥
एतच्चूर्णीकृतं सर्वं गोमूत्रस्याढके पचेत् ।
सान्द्रीभूते गुडीं कुर्याद्दत्त्वा त्रिपलमाक्षिकम् ॥ १५ ॥
यकृत्प्लीहोदरहरो गुल्मार्शोग्रहणीहरः ।
योगः परिकरो नाम्ना चाग्निसन्दीपनः परः ॥ १६ ॥

माणकन्द, अपामार्ग, गुर्च, अडूसा, शालिपर्णी, चीतकी जड, सेंधानमक, सोंठ तथा ताडकी फली (जो आजकल नकली गजपीपलके नामसे बेचते हैं) प्रत्येक ३ तोला, विडनमक, कालानमक, जवाखार व छोटी पीपल प्रत्येक १ कर्ष सबका चूर्ण कर गोमूत्र १ आढक (द्रवद्वैगुण्यात् ६ सेर ३२ तो०) में पकाना चाहिये । गाढा हो जानेपर शहद १२ तोला छोडकर गोली बनानी चाहिये । यह यकृत्, प्लीहा, उदर, गुल्म, अर्श, ग्रह-णीको नष्ट करता तथा अग्निको दीप्त करता है । इसे परिकरयोग कहते हैं ॥ १३–१६ ॥

रोहीतकचूर्णम् ।

रोहीतकाभयाक्षोदभावितं मूत्रमम्बु वा ।
पीतं सर्वोदरप्लीहमेहार्शःक्रिमिगुल्मनुत् ॥ १७ ॥

रोहीतककी छाल व बडी हर्रके छिल्कोंके चूर्णको गोमूत्र अथवा जलमें मिलाकर पीनेसे समस्त उदर-रोग, प्लीहा, प्रमेह, अर्श, कृमि और गुल्मरोग नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पली नागरं दन्ती समांशं द्विगुणाभयम् ।
चूर्णं पीतं विडार्धांशं प्लीहघ्नं ह्युष्णवारिणा ॥ १८ ॥

छोटी पीपल, सोंठ, तथा दन्ती प्रत्येक १ भाग, बडी हर्रका छिल्का २ भाग, विडनमक आधाभाग सबका चूर्ण कर गरम जलके साथ पीनेसे प्लीहा नष्ट होती है ॥ १८ ॥

वर्द्धमानपिप्पलीयोगः ।

क्रमवृद्ध्या दशाहानि दशपिप्पलिकं दिनम् ।
वर्धयेत्पयसा सार्धं तथैवापनयेत्पुनः ॥ १९ ॥
जीर्णे जीर्णे च भुञ्जीत षष्टिकं क्षीरसर्पिषा ।
पिप्पलीनां प्रयोगोऽयं सहस्रस्य रसायनः ॥ २० ॥
दशपिप्पलिकः श्रेष्ठो मध्यमः षट् प्रकीर्तितः ।
यस्त्रिपिप्पलिपर्यन्तः प्रयोगः सोऽवरः स्मृतः ॥ २१ ॥
बृंहणं वृष्यमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम् ।
वयसः स्थापनं मेध्यं पिप्पलीनां रसायनम् ॥ २२ ॥
पञ्चपिप्पलिकश्चापि दृश्यते वर्धमानकः ।
पिष्टास्ता बलिभिः पेया शृता मध्यबलैर्नरैः ।
शीतीकृता ह्रस्वबलैर्देहदोषामयान्प्रति ॥ २३ ॥

१० दिनतक क्रमशः प्रतिदिन १० पिप्पलियोंको बढाते हुए दूधके साथ सेवन करना चाहिये और इसी प्रकार कम करना चाहिये औषध पच जानेपर साठीके चावलोंका भात दूध व घीके साथ खाना चाहिये । इस प्रकार २० दिनमें १००० पिप्पलियां हो जाती है । यह उत्तम रसायन प्रयोग है । प्रतिदिन ६ पिप्पली बढाना मध्यम और प्रतिदिन ३ पिप्पली बढाना निकृष्ट कहा जाता है । यह वर्द्धमान पिप्पली बृंहण, वृष्य आयुष्य, प्लीहा, उदरको नष्ट करनेवाली अवस्थाको स्थिर रखने-वाली तथा मेध्य है । पञ्चपिप्पलीका भी वर्द्धमान प्रयोग करते है । बलवान् पुरुषको पीसकर मध्य बलवालोंको क्वाथकर तथा अल्पबलवालोंको शीतकषाय बनाकर पीना चाहिये ॥ १९–२३ ॥

पिप्पलीचित्रकघृतम् ।

पिप्पलीचित्रकान्मूलं पिष्ट्वा सम्यग्विपाचयेत् ।
घृतं चतुर्गुणक्षीरं यकृत्प्लीहोदरापहम् ॥ २४ ॥

छोटी पीपल व चीतकी जडके कल्कमें चतुर्गुण

दूध मिलाकर सिद्ध किया घृत यकृत्, प्लीहा और अन्य उदररोगोंको नष्ट करता है * ॥ २४ ॥

पिप्पलीघृतम्।

पिप्पलीकल्कसंयुक्तं घृतं क्षीरचतुर्गुणम्।
पिबेत्प्लीहाग्निसादाढ्ययकृद्रोगहरं परम् ॥ २५ ॥

छोटी पीपलका कल्क तथा चतुर्गुण दूधके साथ सिद्ध घृतको प्लीहा, अग्निमांद्य, यकृत् आदिके नाशानार्थ पीना चाहिये ॥ २५ ॥

---

* लोकनाथरसः—“ शुद्धसूतं द्विधा गन्धं खल्वे कुर्याच्च कज्जलीम्। सूततुल्यं जारिताभ्रं सम्मर्द्य कन्यकाम्बुना ॥ गोलं कुर्यात्ततो लौहं ताम्रं च द्विगुणीकृतम्। काकमाचीरसैः पिष्ट्वा गोलं ताभ्यां च वेष्टयेत् ॥ वराटिकाया भस्माथ रसतास्त्रिगुणं क्षिपेत्। ततश्च सम्पुटं कृत्वा मूषामध्ये प्रकल्पयेत् ॥ तन्मध्ये गोलकं कृत्वा शरावेण पिधापयेत्। पुटेद्गजपुटे विद्वान्स्वाङ्गशीतं समुद्धरेत् ॥ शिवं सम्पूज्य यत्नेन द्विजांश्च परितोषयेत्। खादेद्रक्तिद्वयं चूर्णं मूत्रं चापि पिबेदनु ॥ मधुना पिप्पलीचूर्णं सगुडाम्बुहरीतकीम्। अजाजीं वा गुडेनैव भक्षयेदस्य मानतः ॥ यकृद्गुल्मोदरप्लीहश्वयथुज्वरनाशनम्। वह्निमान्द्यप्रशमनं सर्वान्व्याधीन्नियच्छति ॥ ” शुद्ध पारद १ भाग शुद्ध गन्धक २ भाग दोनोंको घोटकर उत्तम कज्जली बनावे। फिर इस कज्जलीमें पारदके बराबर अभ्रक भस्म मिला घीकुमारके रससे घोटकर गोला बना लेवे। पुनः लौहभस्म तथा ताम्रभस्म प्रत्येक पारदसे दुनी लेकर मकोयके रसमें घोटकर पूर्वोक्त गोलेके ऊपर लेपकरे। फिर पारदसे त्रिगुण कौडीकी भस्म लेकर शरावसम्पुटमें आधी भस्म नीचे, बीचमें गोला, आधीभस्म ऊपर रखकर दूसरे शरावसे बन्दकर कपडमिट्टीकर दे। फिर इसको गजपुटमें भस्म करे। स्वाङ्गशीतल हो जानेपर निकाल ले। फिर घोटले, पुनः शंकरजीका पूजन कर तथा ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट कर इसकी २ रत्तीकी मात्रा खावे, ऊपरसे गोमूत्र पीवे तथा इतना ही पीपलका चूर्ण शहदके साथ अथवा हरीतकी चूर्ण गुडके शर्बतके साथ अथवा जीरा गुडके साथ खाना चाहिये। यह यकृत्, गुल्म उदर, प्लीह, सूजन, ज्वर, अग्निमान्द्य आदि सर्व रोगोंको नष्ट करता है (यह रसप्रयोग कुछ पुस्तकोंमें ही मिलता है अतः क्षेपक प्रतीत होता है) ॥

चित्रकघृतम्।

चित्रकस्य तुलाक्वाथे घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
आरनालं तद्द्विगुणं दधिमण्डं चतुर्गुणम् ॥२६॥
पञ्चकोलकतालीसक्षारैर्लवणसंयुतैः।
द्विजीरकनिशायुग्ममरिचैः कल्कमावपेत् ॥२७॥
प्लीहगुल्मोदराध्मानपाण्डुरोगारुचिज्वरान्।
बस्तिहृत्पार्श्वकट्यूरुशूलोदावर्तपीनसान् ॥२८॥
हन्यात्पीतं तदर्शांसि शोथघ्नं वह्निदीपनम्।
बलवर्णकरं चापि भस्मकं च नियच्छति ॥ २९ ॥

चीतकी जड ५ सेरके क्वाथमें १२८ तोला घृत पकाना चाहिये तथा इसमें काञ्जी ३ सेर १३ छ० १ तो०, दहीका तोड ६ सेर ३२ तोला तथा पञ्चकोल, तालीशपत्र, जवाखार, सेंधानमक, दोनों जीरे, हल्दी, दारुहल्दी, व काली मिर्चका कल्क छोडकर पकाना चाहिये। यह घृत प्लीहा, गुल्म, उदर, आध्मान, पाण्डुरोग, अरुचि, ज्वर, बस्ति, हृदय, पसलियों, कमर और जंघोंका शूल, उदावर्त पीनस, अर्श और शोथको नष्ट करता बल और वर्णको उत्तम बनाता तथा अग्निको इतना दीप्त करता है कि भस्मक हो जाता है ॥२६–२९॥

रोहीतकघृतम्।

रोहितकत्वचः श्रेष्ठाः पलानां पञ्चविंशतिः।
कोलद्विप्रस्थसंयुक्तं कषायमुपकल्पयेत् ॥ ३० ॥
पलिकैः पञ्चकोलैश्च तत्सर्वैश्चापि तुल्यया।
रोहितकत्वचापिष्टैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३१ ॥
प्लीहाभिवृद्धिं शमयेदेतदाशु प्रयोजितम्।
तथा गुल्मज्वरश्वासक्रिमिपाण्डुत्वकामला ॥ ३२ ॥

रुहेडेकी छाल १। सेर तथा बेर १ सेर ९ छ० ३ तो० का क्वाथ बनाना चाहिये। इस क्वाथमें पञ्चकोल प्रत्येक १ पल, रुहेडेकी छाल ५ पलका कल्क मिलाकर घी १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यात् १२८ तोला) मिलाकर सिद्ध करना चाहिये। यह घी प्लीहाको शीघ्र नष्ट करता तथा गुल्म, ज्वर, श्वास, क्रिमि, पाण्डु और कामलाको भी शान्त करता है ॥ ३०–३२ ॥

महारोहीतकं घृतम्।

रोहीतकात्पलशतं क्षोदयेद्बदराढकम्।
साधयित्वा जलद्रोणे चतुर्भागावशेषिते ॥३३॥
घृतप्रस्थं समावाप्य छागक्षीरचतुर्गुणम्।
तस्मिन्दद्यादिमान्कल्कान्सर्वांस्तानक्षसम्मितान् ॥३४॥

व्योष फलत्रिकं हिङ्गु यमानी तुम्बुरु बिडम् ।
अजाजीं कृष्णलवणं दाडिम देवदारु च ॥ ३५ ॥
पुनर्नवां विशालां च यवक्षार सपौष्करम् ।
विडङ्गं चित्रक चैव हपुषा चविका वचाम् ॥ ३६ ॥
एतैर्घृतं विपक्क तु स्थापयेद्भाजने दृढे ।
पाययेत्त्रिपला मात्रा व्याधि बलमपेक्ष्य च ॥ ३७ ॥
रसकेनाथ यूषेण पयसा वापि भोजयेत् ।
उपयुक्तं घृतञ्चैतद्व्याधीन्हन्यादिमान्बहून् ॥ ३८ ॥
यकृत्प्लीहोदर चैव प्लीहशूलं यकृत्तथा ।
कुक्षिशूल च हृच्छूल पार्श्वशूलमरोचकम् ॥ ३९ ॥
विबन्धशूलं शमयेत्पाण्डुरोगं सकामलम् ।
छर्द्यतीसारशमनं तन्द्राज्वरविनाशनम् ।
महारोहितक नाम प्लीहघ्नं तु विशेषतः ॥ ४० ॥

रोहीतककी छाल ५ सेर, बेरकी ३ सेर १६ तोला सब २ द्रोण (द्रवद्वैगुण्यात् ४ द्रोण) जलमे पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर घृत १ प्रस्थ, बकरीका दूध ४ प्रस्थ तथा त्रिकटु, त्रिफला, हींग, अजवायन, तुम्बुरु, विडनमक, जीरा, कालानमक, अनारदाना, देवदारु, पुनर्नवा, इन्द्रायण, जवाखार, पोहकर मूल, वायविडङ्ग, चीतकी जड, हाऊबेर, चव्य, वच प्रत्येक १ तोलाका कल्क छोडकर पकाना चाहिये । इसकी मात्रा व्याधि, बल आदिका निश्चयकर ३ पल तक देना चाहिये । मास रस, यूप अथवा दूधके साथ भोजन करना चाहिये । यह घृत अनेक रोगोंको नष्ट करता है । यथा यकृत्, प्लीहा, उदर, प्लीहशूल, यकृच्छूल पेटके दर्द, हृदयके दर्द, पसलियोंके दर्द, अरुचि, मलकी रुकावट, पाण्डुरोग, कामला, वमन, अतीसार, तथा तन्द्रायुक्त ज्वरको नष्ट करता है विशेषकर प्लीहाको नष्ट करता है ॥ ३३–४० ॥

इति प्लीहाधिकारः समाप्तः ।

अथ शोथाधिकारः ।

वातशोथचिकित्सा ।

शुण्ठीपुनर्नवैरण्डपञ्चमूलशृतं जलम् ।
वातिके श्वयथौ शस्तं पानाहारपरिग्रहे ।
दशमूल सर्वथा च शस्तं वाते विशेषत. ॥ १ ॥

सोंठ, पुनर्नवा, एरण्डकी छाल तथा पञ्चमूलसे सिद्ध जल वातजन्य शोथमे पीने तथा आहार बनानेके लिये हितकर है । तथा दशमूल सभी शोथोंमे हितकर है वातमे विशेष हितकर है * ॥ १ ॥

पित्तजशोथचिकित्सा ।

क्षीराशनः पित्तकृतेऽथ शोथे
त्रिवृद्गुडूचीत्रिफलाकषायम् ।
पिबेद्गवा मूत्रविमिश्रितं वा
फलत्रिकाच्चूर्णमताक्षमात्रम् ॥ २ ॥
अभयादारुमधुकतिक्ता दन्ती सपिप्पली ।
पटोल चन्दनं दार्वी त्रायमाणेन्द्रवारुणी ॥ ३ ॥
एषां क्काथ. ससर्पिष्कः श्वयथुज्वरदाहहा ।
विसर्पतृष्णासन्तापसन्निपातविषापहा ।
शीतवीर्यैर्हिमजलैरभ्यङ्गादींश्च कारयेत् ॥ ४ ॥

पित्त प्रधान शोथमे दूध पीता हुआ निसोथ, गुर्च और त्रिफलाका क्काथ पीवे अथवा १ तोला त्रिफलाका चूर्ण गोमूत्रमें मिलाकर पीवे । इसी प्रकार बडी हर्रका छिल्का, देवदारु, मोरेठी, कुटकी, दन्ती, छोटी पीपल, परवलकी पत्ती, चन्दन, दारुहल्दी, त्रायमाण, व इन्द्रायणके क्काथमे घी मिलाकर पीनेसे सूजन, ज्वर, दाह, विसर्प, तृष्णा, जलन सन्निपात और विषदोष नष्ट होते हैं । तथा शीत वीर्य स्नेह तथा ठण्डे जलसे मालिश सिञ्चन व अवगाहनादि कराना चाहिये ॥ २–४ ॥

कफजशोथचिकित्सा ।

पुनर्नवाविश्वत्रिवृद्गुडूची-
सम्पाकपथ्यामरदारुकल्कम् ।
शोथे कफोत्थे महिषाक्षयुक्तं
मूत्रं पिबेद्वा सलिलं तथैषाम् ॥ ५ ॥
कफे तु कृष्णासिकतापुराण-
पिण्याकशिग्रुत्वगुमाप्रलेप ।
कुलत्थशुण्ठीजलमूत्रसेक-
श्चण्डागुरुभ्यामनुलेपन च ॥ ६ ॥

कफजन्यशोथमें पुनर्नवा, सोंठ, निसोथ, गुर्च, अमलतासका गूदा, हर्र, तथा देवदारुका कल्क गुग्गुलु व गोमूत्र मिलाकर पीवे अथवा इन्हीका क्काथ बनाकर पीवे तथा छोटी पीपल, बालू, पुराना पीना (तिलकी खली)

---

* पृश्निपर्ण्यादिकषायः “ पृश्निपर्णीघनोदीच्यशुण्ठी-सिद्धं तु पैत्तिके । ” पैत्तिकशोथमें पिठवन, मोथा, सुगन्धवाला तथा सोठ इन औषधियोंसे सिद्ध क्काथका सेवन करना चाहिये (यहांपर यह कषाय कई प्रतियोंमें पाया जाता है कईमे नहीं । अतः टिप्पणीरूपमें लिखा गया है)

साहिजनकी छाल और अलसीका लेप करना चाहिये । तथा कुलथी और सोंठका जल बना गोमूत्र मिलाकर सेक करना चाहिये । तथा अजमोद और अगरका लेप करना चाहिये ॥ ५-६ ॥

सन्निपातजशोथचिकित्सा ।

अजाजिपाठाघनपञ्चकोल-
व्याघ्रीरजन्यः सुखतोयपीताः ।
शोथं त्रिदोषं चिरजं प्रवृद्धं
निघ्नन्ति भूनिम्बमहौषधे च ॥ ७ ॥

जीरा, पाढ, नागरमोथा, पञ्चकोल, छोटी कटेरी, तथा हल्दी सब समान भाग ले चूर्णकर गरम गरम जलके साथ पीनेसे त्रिदोषज बढे पुराने शोथ नष्ट होते हैं । इसी प्रकार चिरायता और सोंठके चूर्णको गरम गरम जलके साथ पीनेसे पुराने शोथ नष्ट होते हैं॥ ७॥

पुनर्नवाष्टकः क्वाथः ।

पुनर्नवानिम्बपटोलशुण्ठी
तिक्तामृतादार्वभयाकषायः ।
सर्वाङ्गशोथोदरकासशूल-
श्वासान्वितं पाण्डुगदं निहन्ति ॥ ८ ॥

पुनर्नवा, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, सोंठ, कुटकी, गुर्च, देवदारु तथा बडी हर्रका छिल्का इनका क्वाथ सर्वाङ्गशोथ, उदर, कास शूल और श्वासयुक्त पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

विविधा योगाः ।

आर्द्रकस्य रसः पीतः पुराणगुडमिश्रितः ।
अजाक्षीराशिना शीघ्रं सर्वशोथहरो भवेत् ॥ ९ ॥
पुनर्नवादारुशुण्ठीक्वाथे मूत्रे च केवले ।
दशमूलरसे वापि गुग्गुलुः शोथनाशनः ॥ १० ॥
बिल्वपत्ररसः पूतः सोषणः श्वयथौ त्रिजे ।
विट्सङ्गे चैव दुर्नाम्नि विदध्यात्कामलास्वपि ॥ ११ ॥
गुडपिप्पलिशुण्ठीनां चूर्णं श्वयथुनाशनम् ।
आमाजीर्णप्रशमनं शूलघ्नं वस्तिशोधनम् ॥ १२ ॥
पुरो मूत्रेण सेव्येत पिप्पली वा पयोऽन्विता ।
गुडेन वाभया तुल्या विश्वं वा शोथरोगिणाम् ॥ १३॥

बकरीके दूधका सेवन करते हुए पुराना गुड मिलाकर अदरखका रस पीनेसे शीघ्र ही समस्त शोथ नष्ट होते हैं । इसी प्रकार पुनर्नवा, देवदारु और सोंठके क्वाथमें अथवा केवल गोमूत्रमें अथवा दशमूलके क्वाथमें गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे शोथ नष्ट होता है । इसी प्रकार बेलके पत्तोंका रस छानकर कालीमिर्चके चूर्णके साथ पीनेसे सान्निपातज शोथ, मलकी रुकावट, अर्श तथा कामलारोग नष्ट होते हैं । इसी प्रकार गुड, पिप्पली व सोंठका चूर्ण सूजन, आमाजीर्ण व शूलको नष्ट करता तथा वस्तिको शुद्ध करता है । अथवा गोमूत्रके साथ गुग्गुलु अथवा छोटी पीपल दूधके साथ अथवा गुडके साथ बडी हर्रका छिल्का अथवा सोंठका प्रयोग शोथवालोंको करना चाहिये ॥ ९-१३ ॥

गुडयोगाः ।

गुडार्द्रकं वा गुडनागरं वा
गुडाभयं वा गुडपिप्पलीं वा ।
कर्षाभिवृद्ध्या त्रिपलप्रमाणं
खादेन्नरः पक्षमथापि मासम् ॥ १४ ॥
शोथप्रतिश्यायगलास्यरोगान्
सश्वासकासारुचिपीनसांश्च ।
जीर्णज्वरार्शोग्रहणीविकारान्
हन्यात्तथान्यान्कफवातरोगान् ॥ १५ ॥

गुड, अदरख, अथवा गुड, सोंठ, अथवा गुडहर्र, अथवा गुड पिप्पली प्रतिदिन १ कर्ष (तोला) बढाते हुए १ तोलासे १२ तोलातक खाना चाहिये । फिर ऐसे ही १ तोलाकी मात्रातक क्रमशः कम कर फिर बढाना चाहिये इस प्रकार एक पक्ष अथवा १ मासतक खाना चाहिये । यह शोथ, प्रतिश्याय, गले तथा मुखके रोग, श्वास, कास, अरुचि और पीनस, जीर्णज्वर, अर्श, ग्रहणी तथा अन्य कफवातज रोगोंको नष्ट करता है ॥ १४—१५ ॥

अन्ये योगाः ।

स्थलपद्ममयं कल्कं पयसालोड्य पाययेत् ।
प्लीहामयहरं चैव सर्वाङ्गैकाङ्गशोथजित् ॥१६ ॥
दारुगुग्गुलुशुण्ठीनां कल्को मूत्रेण शोथजित् ।
वर्षाभूशृङ्गवेराभ्यां कल्को वा सर्वशोथजित् ॥ १७ ॥
सिंहास्यामृतभण्टाकीक्वाथं कृत्वा समाक्षिकम् ।
पीत्वा शोथं जयेज्जन्तुः श्वासं कासं वमिं ज्वरम् ॥१८॥
भूनिम्बविश्वकल्कं जग्ध्वा पेयः पुनर्नवाक्वाथः ।
अपहरति नियतमाशु शोथं सर्वाङ्गगं नृणाम् ॥ १९ ॥
शोथघ्नकोकिलाक्षस्य भस्म मूत्रेण वाम्भसा ।
क्षीरं शोथहरं दारुवर्षाभूनागरैः शृतम् ॥ २० ॥
पेयं वा चित्रकव्योषत्रिवृद्दारुप्रसाधितम् ।

स्थलकमलके कल्कको दूधमें मिलाकर पीनेसे प्लीहा तथा सर्वाङ्गगत व एकाङ्गगत शोथ नष्ट होते हैं (स्थल-

पद्म कई प्रकारके होते हैं । यथा—" एतानि स्थलपद्मानि सेवन्ती गुलदावदी । नेवाली च गुलावश्च वकुलश्च कदम्बकः ॥ वैद्यकशब्द सिन्धुः) ऐसे ही देवदारु, गुग्गुलु व सोंठका कल्क गोमूत्रके साथ शोथको नष्ट करता है । अथवा पुनर्नवा और सोंठका कल्क समस्त शोथको नष्ट करता है । ऐसे ही वासा, गुर्च, बडी कटेरीका क्वाथ शहद मिलाकर पीनेसे शोथ, श्वास, कास तथा ज्वर नष्ट होते हैं । ऐसे ही चिरायता और सोंठका कल्क खाकर पुनर्नवाका क्वाथ पीनेसे निःसंदेह समस्त शरीरगत शोथ नष्ट होता है । इसी प्रकार तालमखानेकी भस्म गोमूत्र अथवा जलके साथ पीनेसे शोथ नष्ट होते हैं। अथवा देवदारु, पुनर्नवा और सोंठसे सिद्ध दूध अथवा चीतेकी जड, त्रिकटु, निसोथ और देवदारु इनसे सिद्ध दूधको पीना चाहिये ॥ १९–२० ॥–

पुनर्नवादिरसादयः ।

पुनर्नवामूलकपित्थदारु-
छिन्नोद्भवाचित्रकमूलसिद्धाः ।
रसा यवाग्वश्च पयांसि यूपाः
शोथे प्रदेया दशमूलगर्भाः ॥ २१ ॥

पुनर्नवाकी जड, कैथा, देवदारु, गुर्च, चीतेकी जड तथा दशमूलके जलसे सिद्ध मांसरस, यवागू , दूध तथा यूष शोथमें देने चाहियें ॥ २१ ॥

क्षारगुटिका ।

क्षारद्वयं स्याल्लवणानि चत्वा-
र्ययोरजो व्योपफलत्रिके च ।
सपिप्पलीमूलविडङ्गसार
मुस्ताजमोदामरदारुबिल्वम् ॥ २२ ॥
कलिङ्गकश्चित्रकमूलपाठे
यष्ट्याह्वयं सातिविषं पलाशम् ।
सहिंगु कर्षं त्वथ शुष्कचूर्णं
द्रोणं तथा मूलकशुण्ठकानाम् ॥ २३ ॥
स्याद्भस्मनस्तत्सलिलेन साध्य-
मालोड्य यावद्घनमप्यदग्धम् ।
स्त्यानं ततः कोलसमां च मात्रां
कृत्वा सुशुष्का विधिना प्रयुञ्ज्यात् ॥ २४ ॥
प्लीहोदरश्वित्रहलीमकार्श -
पाण्ड्वामयारोचकशोथशोषान् ।
विपूचिकागुल्मगराश्मरीश्च
सश्वासकासान्प्रणुदेत्सकुष्ठान् ॥ २५ ॥
सौवर्चलं सैन्धवं च विडमौद्भिदमेव च ।
चतुर्लवणमत्र स्याज्जलमष्टगुणं भवेत् ॥ २६ ॥

जवाखार, सज्जीखार, सोंचर्चल, सेंधा, विड तथा खारी नमक, लोह भस्म, त्रिकटु, त्रिफला, पिपरामूल, वायविडंग, नागरमोथा, अजमोद, देवदारु, बेलका गूदा, इन्द्रयव, चीतकी जड, पाढ, मौरेठी, अतीस, ढाकके बीज तथा भुनीहींग प्रत्येक १ कर्षका चूर्ण तथा मूलीके टुकडोंकी भस्म १२ सेर ६४ तोला छः गुने जलमें मिला (७ बार छान) कर पकाना चाहिये फिर गोली बनानेके योग्य गाढा हो जानेपर ६ माशेकी मात्रासे गोली बना सुखाकर विधिपूर्वक सेवन करना चाहिये । इससे प्लीहा, उदर, श्वेतकुष्ठ, हलीमक, अर्श, पाण्डुरोग, अरोचक, शोथ, शोप, विषूचिका, गुल्म, गरविष, पथरी, श्वास, कास तथा कुष्ठ भी नष्ट होते हैं ॥ २२–२६ ॥

पुनर्नवाद्यं घृतम् ।

पुनर्नवाचित्रकदेवदारुपञ्चोषणक्षारहरीतकीनाम् ।
कल्केन पक्वं दशमूलतोये घृतोत्तमं शोथनिषूदनं च ॥ २७ ॥

पुनर्नवा, चीतकी जड, देवदारु, पञ्चकटु, जवाखार और हर्रके कल्क और दशमूलके क्वाथसे सिद्ध घृत शोथको नष्ट करता है ॥ २७ ॥

पुनर्नवाशुण्ठीदशमूलघृते ।

पुनर्नवाक्वाथकल्कसिद्धं शोथहरं घृतम् ।
विश्वौपधस्य कल्केन दशमूलजले शृतम् ।
घृतं निहन्याच्छ्वयथुं ग्रहणीं पाण्डुतामयम् ॥ २८ ॥

पुनर्नवाके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध घृत शोथको नष्ट करता है । इसी प्रकार सोंठका कल्क और दशमूलका क्वाथ मिलाकर सिद्ध घृत सूजन, ग्रहणी तथा पाण्डुरोगको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

चित्रकाद्यं घृतम् ।

सचित्रका धान्ययमानिपाठाः
सदीप्यकत्र्यूपणवेतसाम्लाः ।
बिल्वात्फलं दाडिमयावशूकं
सपिप्पलीमूलमथापि चव्यम् ॥ २९ ॥
पिष्ट्वाक्षमात्राणि जलाढकेन
पक्त्वा घृतप्रस्थमथोपयुञ्ज्यात् ।
अर्शांसि गुल्माञ्छ्वयथुं च कृच्छ्रं
निहन्ति वह्निं च करोति दीप्तम् ॥ ३० ॥

चीतकी जड, धनिया, अजवायन, पाढ, अजमोद, त्रिकटु, अम्लवेत, बेलका गूदा, अनारदाना, यवाखार

पिपरामूल तथा चव्य, प्रत्येक १ तोलेका कल्क घी ६४ तोला तथा जल ३ सेर १६ तो० मिलाकर पकाना चाहिये । यह घी अर्श, गुल्म, शोथ व मूत्रकृच्छ्रको नष्ट करता तथा अग्निको दीप्त करता है ॥ २९-३० ॥

पञ्चकोलादिघृतम् ।

रसे विपाचयेत्सर्पिः पञ्चकोलकुलत्थयोः ।
पुनर्नवायाः कल्केन घृतं शोथविनाशनम् ॥ ३१ ॥

पञ्चकोल और कुलथीके क्वाथ तथा पुनर्नवाके कल्कसे सिद्ध घृत शोथको नष्ट करता है ॥ ३१ ॥

चित्रकघृतम् ।

क्षीरं घटे चित्रककल्कलिप्ते दध्यागतं साधु विमथ्य तेन
तज्जं घृतं चित्रकमूलकल्कं
तक्रेण सिद्धं श्वयथुप्रशमघ्नम् ॥ ३२ ॥
अर्शोऽतिसारानिलगुल्ममेहां-
स्तद्धन्ति संवर्धयते नलं च ॥ ३३ ॥

चीतके कल्कसे लिप्त घडेमे दूध जमाकर दही हो जानेपर मथकर निकाला गया घृत और चीतकी जडका कल्क तथा मठा मिलाकर सिद्ध करना चाहिये । यह घृत सूजनको तथा अर्श, अतिसार, वातगुल्म और प्रमेहको नष्ट करता और अग्निदीप्त करता है॥३२-३३॥

माणकघृतम् ।

माणकक्काथकल्काभ्यां घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
एकजं द्वन्द्वजं शोथं त्रिदोषं च व्यपोहति ॥ ३४ ॥

माणकके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध किया गया घृत समस्त शोथोंको नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

स्थलपद्मघृतम् ।

स्थलपद्मपलान्यष्टौ व्यूषणस्य चतु पलम् ।
घृतप्रस्थं पचेदेभि क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ।
पञ्च कासान्हरेच्छीघ्रं शोथं चैव सुदुस्तरम् ॥ ३५ ॥

स्थलपद्म ३२ तोला, त्रिकटु मिलित ४ पल (१६ तोला) घी १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यकर १॥ से० ८ तो०) तथा घीसे चतुर्गुण दूध मिलाकर सिद्ध किये गये घृतका सेवन करनेसे पाचों काम तथा दुस्तर शोथ नष्ट होते हैं ॥ ३५ ॥

शैलेयाद्यं तैलं प्रदेहो वा ।

शैलेयकुष्ठागुरुदारुकौन्तीत्वक्पद्मकैलाबुपलाशमुस्तैः ।
प्रियङ्गुथौणेयकहेममांसीतालीसपत्रप्लवपत्रधान्यैः ३६॥
श्रीवेष्टकध्यामकपिप्पलीभिः
पृक्कानखैर्वापि यथोपलाभम् ।
वातान्वितेऽभ्यङ्गमुशन्ति तैलं
सिद्धं सुपिष्टैरपि च प्रदेहम् ॥ ३७ ॥

छरीला, कूठ, अगर, देवदारु, सम्भालूके बीज, दालचीनी, पद्माख, इलायची, सुगन्धवाला, ढाकके फूल, मोथा, प्रियङ्गु, मालतीके फूल, नागकेशर, जटामांसी, तालीशपत्र, केवटीमोथा, तेजपात, धनिया, गन्धाविरोजा, रोहिषघास, छोटी पीपल, गठेउना तथा नख इनमेंसे जितने द्रव्य मिल सकें उनसे सिद्ध तैलकी मालिश करनी चाहिये । तथा इन्हींको पीसकर लेप करना चाहिये ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

शुष्कमूलाद्यं तैलम् ।

शुष्कमूलकवर्षाभूदारुरास्नामहौषधैः ।
पक्वमभ्यञ्जनात्तैलं सशूलं श्वयथुं जयेत् ॥ ३८ ॥

सूखी मूली, पुनर्नवा, देवदारु, रासन, तथा सोंठके कल्कसे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे शूलयुक्त शोथ नष्ट होता है ॥ ३८ ॥

पुनर्नवावलेहः ।

पुनर्नवामृतादारुदशमूलरसाढके ।
आर्द्रकस्वरसप्रस्थे गुडस्य तु तुलां पचेत् ॥ ३९ ॥
तत्सिद्धं व्योषचव्यैलात्वक्पत्रैः कार्षिकैः पृथक् ।
चूर्णीकृतैः क्षिपेच्छीते मधुनः कुडवं लिहेत् ॥ ४० ॥
लेहः पौनर्नवो नाम शोथशूलनिषूदनः ।
श्वासकासाऽरुचिहरो बलवर्णाग्निवर्धनः ॥ ४१ ॥

पुनर्नवा, गुर्च, देवदारु व दशमूलके एक आढक क्वाथ अदरखके १ प्रस्थरसमें गुड ५ सेर मिलाकर पकाना चाहिये लेह तैयार होजानेपर त्रिकटु, चव्य, इलायची, दालचीनी और तेजपातका चूर्ण प्रत्येक १ तोला छोडना चाहिये । तथा उतारकर ठण्डा हो जानेपर शहद १६ तोले छोडना चाहिये । यह पुनर्नवावलेह शोथ, शूल, श्वास, कास, अरुचिको नष्ट करता तथा बल, वर्ण व अग्निको बढाता है ॥ ३९-४१ ॥

दशमूलहरीतकी ।

दशमूलकषायस्य कंसे पथ्याशतं पचेत् ।
तुलां गुडाद्घने दद्याद्व्योषक्षारं चतुः पलम् ॥ ४२ ॥
त्रिसुगन्धं सुवर्णांशं प्रस्थार्धं मधुनो हिमे ।
दशमूलीहरीतक्यः शोथान्हन्युः सुदारुणान् ॥ ४३ ॥

ज्वरारोचकगुल्मार्शोमेहपाण्डूदरामयान् ।
प्रत्येकमेककर्षांश त्रिसुगन्धामितो भवेत् ॥ ४४ ॥
कंसहरीतकी चैपा चरके पठ्यतेऽन्यथा ।
एतस्मान्नेन तुल्यत्वं तेन तत्रापि वर्ण्यते ॥ ४५ ॥

दशमूलके एक आढक क्वाथमें १०० हर्रे तथा गुड ५ सेर छोडकर पकाना चाहिये, गाढा हो जानेपर त्रिकटु तथा जवाखारका मिलित चूर्ण १६ तो० दालचीनी, तेजपात, इलायची प्रत्येक १ तो० छोडना चाहिये तथा ठण्डा हो जाने पर मधु ३२ तो० छोडना चाहिये यह दशमूल हरीतकी कठिन शोथोंको नष्ट करती तथा ज्वर, अरोचक, गुल्म, अर्श, प्रमेह, पाण्डु और उदर-रोगोंको नष्ट करती है इसीको चरकमें कंस हरीतकीके नामसे लिखा है वहां भी ऐसा ही मान है । (इसमें १०० हर्रे प्रथम क्वाथ बनाते ही छोड देने चाहिये, क्वाथ हो जानेपर हर्रोंको भी निकाल लेना चाहिये और इन्हीं हर्रोंको क्वाथके साथ पुनः पकाना चाहिये) ॥ ४२–४५ ॥

कंसहरीतकी ।

द्विपञ्चमूलस्य पचेत्कषाये
　कंसेऽभयानां च शतं गुडाच्च ।
लेहे सुसिद्धे च विनीय चूर्णं
　व्योषत्रिसौगन्ध्यमुपस्थिते च ॥ ४६ ॥
प्रस्थार्धमात्रं मधुनः सुशीते
　किंचिच्च चूर्णादपि यावशूकात् ।
एकाभयां प्राश्य ततश्च लेह्या-
　च्छुक्तिं निहन्ति श्वयथुं प्रवृद्धम् ॥ ४७ ॥
कासज्वरारोचकमेहगुल्मान्
　प्लीहात्रिदोषोदरपाण्डुरोगान् ।
कार्श्यामवातासृगम्लपित्तं
　वैवर्ण्यमूत्रानिलशुक्रदोषान् ॥ ४८ ॥
अत्र व्याख्यान्तरं नोक्तं
　व्याख्या पूर्वैव यच्छुभा ॥ ४९ ॥

यह तथा पूर्वोक्त दशमुल हरीतकी दोनों एक ही हैं अतः विशेष लिखनेकी आवश्यकता नहीं । इसकी एक हर्रे खाकर २ तो० अवलेह चाटना चाहिये । यह सूजन, कास, ज्वर, अरोचक, प्रमेह, गुल्म, प्लीहा, त्रिदोषज, पाडुरोग, दुर्बलता आमवात, रक्तदोष, अम्ल-पित्त, वैवर्ण्य तथा मूत्रवायु और वीर्यदोषोंको नष्ट करता है ॥४६–४९ ॥

अरुष्करशोथचिकित्सा ।

लेपेऽरुष्करशोथं निहन्ति तिलदुग्धनवनीतैः ।
तत्तरुतलमृद्भिर्वा शालदलैर्वा तु न चिरेण ॥ ५० ॥

भिलावाकी सूजनको तिल, दूध तथा मक्खनका लेप अथवा भिलावेके वृक्षके नीचेकी मट्टीका लेप अथवा शालके पत्तोंका लेप नष्ट करता है ॥५०॥

विषजशोथचिकित्सा ।

शोथे विषनिमित्ते तु विषोक्ता संमता क्रिया ॥ ५१ ॥
विषजशोथमें विषोक्त चिकित्सा करनी चाहिये॥५१॥

शोथे वर्ज्यानि ।

ग्राम्यानूप पिशितलवणं शुष्कशाक नवान्नं
गौडं पैष्टं दधि सकृशरं विजलं मद्यमम्लम् ।
शुष्कं मांसं समशनमथो गुर्वसात्म्यं विदाहि
स्वप्नं चाह्नि श्वयथुगदवान्वर्जयेन्मैथुनं च ॥ ५२ ॥

ग्राम्य तथा आनूप प्राणियोंके मांस नमक, सूखेशाक नवीन अन्न, गुड तथा पिट्टीका मद्य, दही, खिचडी, विजल (दहीभेद) मद्य, खट्टे पदार्थ, सूखे मांस, गुरु, असात्म्य तथा विदाही पदार्थोंका सेवन, दिनमें सोना तथा मैथुन शोथवालेको त्याग देना चाहिये ॥५२॥

इति शोथाधिकारः समाप्तः ।

अथ वृद्ध्यधिकारः ।

वातवृद्धिचिकित्सा ।

गुग्गुलु रुबुतैलं वा गोमूत्रेण पिबेन्नर ।
वातवृद्धिं निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १ ॥
सक्षीरं वा पिबेत्तैलं मासमेरण्डसम्भवम् ।
पुनर्नवायास्तैलं वा तैलं नारायणं तथा ॥ २ ॥
पाने वस्तौ रुबोस्तैलं पेयं वा दशकाम्भसा ।

मनुष्य गुग्गुलु अथवा एरण्डतैलको गोमूत्रके साथ पीवे इससे पुरानी वातवृद्धि नष्ट होती है अथवा दूधके साथ एक मासतक एरण्डतैल अथवा पुनर्नवातैल अथवा नारायणतैल पीवे अथवा दशमूलके क्वाथके साथ एरण्ड-तैलको पीवे और बस्तिका प्रयोग करे ॥१॥२॥

पित्तरक्तवृद्धिचिकित्सा ।

चन्दनं मधुकं पद्ममुशीरं नीलमुत्पलम् ॥ ३ ॥
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्याद्दाहशोथरुजापहः ।

पञ्चवल्कलकल्केन सघृतेन प्रलेपनम् ॥ ४ ॥
सर्वं पित्तहरं कार्यं रक्तजे रक्तमोक्षणम् ।

चन्दन, मौरेठी, खश कमलके फूल तथा नीलोफरको दूधमें पीसकर लेप करनेसे दाह, शोथ और पीडा नष्ट होती है । अथवा पञ्चवल्कलके कल्कको घीके साथ लेप करना चाहिये । तथा रक्तजवृद्धिमें समस्त पित्तनाशकचिकित्सा तथा रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥–

श्लेष्ममेदोमूत्रजवृद्धिचिकित्सा ।

श्लेष्मवृद्धिं तूष्णवीर्यैर्मूत्रपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ५ ॥
पीतदारुकषायं च पिबेन्मूत्रेण संयुतम् ।
स्विन्नं मेदः समुत्थं तु लेपयेत्सुरसादिना ॥ ६ ॥
शिरोविरेकद्रव्यैर्वा सुखोष्णैर्मूत्रसंयुतैः ।
सस्वेदं मूत्रप्रभवं वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ ७ ॥

श्लेष्मवृद्धिमे पीसे हुए उष्णवीर्य पदार्थोंसे लेप करना चाहिये । तथा दारुहल्दीका क्वाथ गोमूत्र मिलाकर पीना चाहिये । मेदोज वृद्धिका स्वेदन कर सुरसादिगणकी औषधियोंका लेप करना चाहिये । मूत्रजवृद्धिमें शिरोविरेचन द्रव्यों (कैफरा नकछिकनी आदि) को मूत्रमें पीस गरम गरम लेप कर कपडेसे बांध देना चाहिये ॥५–७॥

शिराव्यधदाहविधीः ।

सीवन्याः पार्श्वतोऽधस्ताद्विध्येद्व्रीहिमुखेन वै ।
शङ्खोपरि च कर्णान्ते त्यक्त्वा सीवानिमादहेत् ॥ ८ ॥
व्यत्यासाद्वा शिरां विध्येदन्त्रवृद्धिनिवृत्तये ।
अङ्गुष्ठमध्ये त्वक् छित्त्वा दहेदङ्गविपर्यये ॥ ९ ॥

अण्डकोषोंके नीचे सीवनीके बगलमें व्रीहिमुखशस्त्रसे शिराव्यध करना चाहिये । तथा शंखके ऊपर कर्णके समीप सीवनको छोडकर दाह करना चाहिये, अन्त्रवृद्धि दूर करनेके लिये जिस अण्डमें वृद्धि है उसके दूसरी ओरके अँगूठेमें शिरव्यध करना चाहिये । अथवा चर्म काटकर दूसरी ही ओर जला देना चाहिये ॥ ८॥९॥

रास्नादिक्वाथः ।

रास्नायष्ट्यमृतैरण्डबलागोक्षुरसाधितः ।
क्वाथोऽन्त्रवृद्धिं हन्त्याशु रुबुतैलेन मिश्रितः ॥ १० ॥

रासन, मौरेठी, गुर्च एरण्डकी, छाल, खरेटी तथा गोखुरूसे सिद्ध क्वाथ एरण्डतैलके साथ अन्त्रवृद्धिको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥१०॥

बलाक्षीरम् ।

तैलमेरण्डजं पीत्वा बलासिद्धपयोऽन्वितम् ।
आध्मानशूलोपचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥ ११ ॥

खरेटीके सिद्ध दूधके साथ एरण्डका तैल पीनेसे पेटकी गुडगुडाहट तथा शूलयुक्त अन्त्रवृद्धि नष्ट होती है ॥११॥

हरीतकीयोगौ ।

हरीतकीं मूत्रसिद्धां सतैलां लवणान्विताम् ।
प्रातः प्रातश्च सेवेत कफवातामयापहाम् ॥ १२ ॥
गोमूत्रसिद्धां रुबुतैलभृष्टां
हरीतकीं सैन्धवसंप्रयुक्ताम् ।
खादेन्नरः कोष्णजलानुपानां
निहन्ति वृद्धिं चिरजां प्रवृद्धाम् ॥ १३ ॥

हर्रको मूत्रमें पकाय एरण्ड तैल तथा नमक मिलाकर प्रतिदिन प्रातः सेवन करनेसे कफवातजवृद्धि नष्ट होती है । ऐसे ही गोमूत्रमें पके एरण्डतैलमें भून सेंधानमक मिलाकर गरम जलके साथ खानेसे पुरानी बढी हुई अण्डवृद्धि नष्ट होती है ॥१२॥१३॥

त्रिफलाक्वाथः ।

त्रिफलाक्वाथगोमूत्रं पिबेत्प्रातरतन्द्रितः ।
कफवातोद्भवं हन्ति श्वयथुं वृषणोत्थितम् ॥ १४ ॥

त्रिफलाक्वाथ व गोमूत्र प्रतिदिन प्रातःकाल पीनेसे कफवातज अण्डकोषोंका शोथ नष्ट होता है ॥ १४ ॥

सरलादिचूर्णम् ।

सरलागुरुकुष्ठानि देवदारुमहौषधम् ।
मूत्रारनालसंयुक्तं शोथघ्नं कफवातनुत् ॥ १५ ॥

सरलधूप, अगर, कूठ, देवदारु तथा सोंठका चूर्ण गोमूत्र और काञ्जी मिलाकर पीनेसे सूजनको नष्ट तथा कफवातको दूर करता है ॥ १५ ॥

पथ्यायोगः ।

भृष्टो रुबूकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः ।
कृष्णसैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥ १६ ॥

छोटी हर्रका कल्क एरण्डतैलमें भून छोटी पीपल व सेंधानमक मिलाकर सेवन करनेसे वृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ १६ ॥

आदित्यपाकघृतम् ।

गव्यं घृतं सैन्धवसंप्रयुक्तं
शम्बूकभाण्डे निहितं प्रयत्नात् ।
सप्ताहमादित्यकरैर्विपक्वं
निहन्ति कूरण्डमतिप्रवृद्धम् ॥ १७ ॥

गायका घी व सेंधानमक एकमें मिला घोंघों (क्षुद्रशंखों) मे रखकर ७ दिनतक सूर्यके तापमें पकाकर मालिश करने तथा खानेसे अण्डवृद्धि नष्ट होती है॥१७॥

ऐन्द्रीचूर्णम् ।

ऐन्द्रीमूलभवं चूर्णं खुतैलेन मर्दितम् ।
त्र्यहाद्गोपयसा पीतं सर्ववृद्धिनिवारणम् ॥ १८ ॥

इन्द्रायणकी जडके चूर्णको एरण्डतैलके साथ घोटकर ३ दिन गोदुग्धके साथ पीनेसे हर प्रकारका वृद्धिरोग नष्ट होता है ॥ १८ ॥

रुद्रजटालेपः ।

रुद्रजटामूललिप्ता करटव्यङ्कचर्मणा ।
बद्धा वृद्धिः शमं याति चिरजापि न संशयः ॥ १९ ॥

ईश्वरी (रुद्रजटा) की जडको पीस लेप कर ऊपरसे वृक्षमूषिका(गिलहरी)के चमडेको बान्धनेसे पुरानी भी अंडवृद्धि शात हो जाती है इसमे सन्देह नहीं ॥ १९ ॥

अन्ये लेपाः ।

निष्पिष्टमारनालेन स्नुपिकामूलवल्कलम् ।
लेपो वृद्ध्यामयं हन्ति बद्धमूलमपि द्रुतम् ॥ २० ॥
वचासर्षपकल्केन प्रलेपो वृद्धिनाशनः ।
लज्जागृध्रमलाभ्यां च लेपो वृद्धिहर पर. ॥ २१ ॥

काञ्जीके साथ पिसी हुई सफेद आककी जडकी छालका लेप पुरानी अण्डवृद्धिको नष्ट करता है । तथा वच व सरसोंके कल्कका लेप वृद्धिको नष्ट करता है। इसी प्रकार सफेद लज्जावंती व गृध्रके वीटको लेप करनेसे अण्डवृद्धि नष्ट करती है ॥ २०-२१ ॥

बिल्वमूलादिचूर्णम् ।

मूलं बिल्वकपित्थयोररलुकस्याग्नेर्बृहत्योर्द्वयो
श्यामापूतिकरञ्जशिग्रुकतरोर्बिम्बीपधारुष्करम् ।
कृष्णाग्रन्थिकचव्यपञ्चलवणक्षाराजमोदान्वितं
पीतं काञ्जिककोष्णतोयमथितं चूर्णीकृतं ब्रध्नवुत्॥२२॥

बेल, कैथा, सोनापाठा, चीत, छोटी बडी कटेरी, निसोथकाला, पूतिकरञ्ज और सहिजन प्रत्येककी जडकी छाल, सोंठ, भिलावां छोटी पीपल, पिपरामूल चव्य, पांचो नमक, क्षार और अजमोदका चूर्ण कर काञ्जी और गरम जलमें मिला पीनेसे ब्रध्नरोग (बद) नष्ट होता है ॥ २२ ॥

ब्रध्नरोगस्य विशिष्टचिकित्सा ।

अविक्षीरेण गोधूमकल्कं कुन्दुरुकस्य वा ।
प्रलेपनं सुखोष्णं स्याद्ब्रध्नशूलहरं परम् ॥२३ ॥
मृतमात्रे तु वै काके विशस्ते संप्रवेशयेत् ।
ब्रध्नं मुहूर्तं मेधावी तत्क्षणादरुज भवेत् ॥ २४ ॥
अजाजी हपुषा कुष्ठं गोधूमं बदराणि च ।
काञ्जिकेन समं पिष्ट्वा कुर्याद्ब्रध्नप्रलेपनम् ॥ २५ ॥

भेडके दूधके साथ गेहूंके कल्क अथवा गन्धाविरोजेके कल्कका कुछ गरम गरम लेप करनेसे बदरोग नष्ट होता है। तथा मरे हुए काकको चीरकर बदके ऊपर थोडी देर लगा देनेसे ही यह रोग नष्ट हो जाता है । अथवा जीरा, हाऊबेर, कूठ, गेहूं और बेरको काञ्जीके साथ पीसकर बदके ऊपर लेप करना चाहिये ॥ २३-२५ ॥

सैन्धवाद्यं तैलम् ।

सैन्धवं मदनं कुष्ठं शताह्वां निचुलं वचाम् ।
ह्रीबेरं मधुक भार्ङ्गी देवदारु सनागरम् ॥ २६ ॥
कट्फल पौष्करं मेदां चविकं चित्रकं शठीम् ।
विडङ्गातिविषे श्यामां रेणुकां नलिनीं स्थिराम् ॥२७॥
बिल्वाजमोदे कृष्णां च दन्तीरास्ने प्रपिष्य च ।
साध्येमेरण्डजं तैलं तैल वा कफवातनुत् ॥ २८ ॥
ब्रध्नोदावर्तगुल्मार्श प्लीहमेहाढ्यमारुताम् ।
आनाहमश्मरी चैव हन्यात्तदनुवासनात् ।
घृतं गौरेश्वरं योज्य ब्रध्नवृद्धिनिवृत्तये ॥ २९ ॥

सेंधानमक, मैनफल, कूठ, सौंफ, जलवेत, वच, सुगंधवाला, मौरेठी, भार्ङ्गी देवदारु, सोंठ, कायफल, पोहकरमूल, मेदा, चव्य, चीतकी जड, कचूर, वायविडंग, अतीस, निसोथ, सम्भालूके बीज, कमलिनी, शालिपर्णी, बेल, अजमोद, छोटी पीपल, दन्ती तथा रासनका कल्क छोडकर सिद्ध किया गया एरण्डतैल अथवा तिल, तैल कफ वातरोग, बद, उदावर्त, गुल्म, अर्श प्लीहा प्रमेह, ऊरुस्तम्भ, आनाह तथा पथरीको नष्ट करता है इस तैलका अनुवासन करना चाहिये । तथा गौरेश्वर घृतको बद और वृद्धिरोगके नाशार्थ देना चाहिये२६-२९

शतपुष्पाद्यं घृतम् ।

शतपुष्पामृता दारु चन्दनं रजनीद्वयम् ।
जीरके द्वे बचानागत्रिफलागुग्गुलुत्वच ॥ ३० ॥
मासी कुष्ठं पत्रकैलारास्नाशृङ्गीः सचित्रकाः ।
क्रिमिघ्नमश्वगन्धं च शैलेयं कटुरोहिणीम् ॥ ३१ ॥
सैन्धवं तगरं पिष्ट्वा कुटजातिविषे समे ।
एतैश्च कार्षिकैः कल्कैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ३२ ॥
वृषमुण्डितिकैरण्डनिम्बपत्रभवं रसम् ।
कण्टकार्यास्तथाक्षीरं प्रस्थं प्रस्थं विनिक्षिपेत् ॥ ३३ ॥
सिद्धमेतद्घृतं पीतमन्त्रवृद्धिमपोहति ।
वातवृद्धिं पित्तवृद्धिं मेदोवृद्धिं च दारुणाम् ॥ ३४ ॥
मूत्रवृद्धिं श्लीपदं च यकृत्प्लीहानमेव च ।
शतपुष्पाघृतं रोगान्हन्यादेव न संशयः ॥ ३५ ॥

सौंफ, गुर्च, देवदारु, चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी, सफेद जीरा, स्याह जीरा, वच, नागकेशर, त्रिफला, गुग्गुलु, दालचीनी, जटामासी, कूठ, तेजपात, इलायची, रासन, काकडाशिंगी, चीतकी जड, वायविडंग, असगन्ध, छरीला, कुटकी, सेंधानमक, तगर, कुड़ेकी छाल तथा अतीस प्रत्येक एक तोलेका कल्क, घी १ सेर ९ छ. ३ तो० तथा इतनी ही मात्रामें प्रत्येक अड़ूसेका स्वरस, मुण्डी, एरण्ड, नीमकी पत्ती तथा भटकटैयाका रस तथा दूध मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत पीनेसे वात वृद्धि, अन्त्रवृद्धि, पित्तवृद्धि, दारुणमेदोवृद्धि, मूत्रवृद्धि, श्लीपद, यकृत्, तथा प्लीहा निःसन्देह नष्ट हो जाते हैं । इसे शत पुष्पाघृत कहते हैं ॥ ३०-३५ ॥

इति वृद्ध्यधिकारः समाप्तः ।

अथ गलगण्डाधिकारः ।

पथ्यम् ।

यवमुद्गपटोलानि कटु रूक्षं च भोजनम् ।
छर्दिं सरक्तमुक्तिं च गलगण्डे प्रयोजयेत् ॥ १ ॥

यव, मूंग, परवल, कडुआ, रूक्ष भोजन, वमन, तथा रक्तमोक्षणका गलगण्डमें प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

लेपाः ।

तण्डुलोदकपिष्टेन मूलेन परिलेपितः ।
हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डः प्रशाम्यति ॥ २ ॥
सर्षपाञ्शिग्रुबीजानि शणबीजातसीयवान् ।
मूलकस्य च बीजानि तक्रेणाम्लेन पेषयेत् ॥ ३ ॥
गण्डानि ग्रन्थयश्चैव गलगण्डाः सुदारुणाः ।
प्रलेपात्तेन शाम्यंति विलयं यान्ति चाचिरात् ॥ ४ ॥

हस्तिकर्ण पलाशकी जडको चावलके धोवनके साथ पीसकर लेप करनेसे गलगण्ड शान्त होता है । तथा सरसो, सहिजनके बीज, सन, अलसी, यव तथा मूलीके बीजोंको खट्टे मट्ठेके साथ पीसकर लेप करनेसे गण्ड, ग्रन्थि तथा कठिन गलगण्ड शान्त होते हैं ॥ २-४ ॥

नस्यम् ।

जीर्णकर्कारुकरसो बिडसैन्धवसंयुतः ।
नस्येन हन्ति तरुणं गलगण्डं न संशयः ॥ ५ ॥

पकी कडुई ताम्बीका रस, विडनमक तथा सेंधानमक मिलाकर नस्य लेनेसे नवीन गलगण्ड शान्त होता है ॥ ५ ॥

जलकुम्भीभस्मयोगः ।

जलकुम्भीकजं भस्म पक्वं गोमूत्रगालितम् ।
पिबेत्कोद्रवभक्ताशी गलगण्डप्रशान्तये ॥ ६ ॥

जलकुम्भीकी भस्मको गोमूत्रमें मिला छानकर पीनेसे तथा कोदवके भातका पथ्य लेनेसे गलगण्ड शान्त होता है ॥ ६ ॥

उपनाहः ।

सूर्यावर्तरसोनाभ्यां गलगण्डोपनाहने ।
स्फोटास्रावे शमं याति गलगण्डो न संशयः ॥ ७ ॥

सूर्यावर्त तथा लहसुनकी पुल्टिस बनाकर गलगण्डपर बान्धनेसे फफोला पडकर फूटता और बहता है । इससे गलगण्ड शान्त होता है । इसमें सन्देह नहीं है ॥ ७ ॥

उषितजलादियोगौ ।

तिक्तालाबुफले पक्वे सप्ताहमुषितं जलम् ।
मद्यं वा गलगण्डघ्नं पानात्पथ्यानुसेविनः ॥ ८ ॥

कडुई तोम्बीके पके फलमें ७ दिन रक्खा गया जल अथवा मद्य पीनेसे तथा पथ्यसे रहनेसे गलगण्ड शान्त होता है ॥ ८ ॥

अपरे योगाः ।

कट्फलचूर्णान्तर्गलघर्षो गलगण्डमपहरति ।
घृतमिश्रं पीतमिव श्वेतगिरिकर्णिकामूलम् ॥ ९ ॥

महिषीमूत्रविमिश्रं लोहमलं संस्थितं घटे मासम् ।
अन्तर्धूमगविदग्धं लिह्यान्मधुनाथ गलगण्डे ॥ १० ॥

कैफरेका चूर्ण गलेके अन्दर घिसनेसे तथा घीमें मिलाकर सफेद विष्णुक्रान्ताका कल्क पीनेसे गलगण्ड नष्ट होता है । तथा मण्डूर चूर्ण भैंसीके मूत्रमें मिलाकर १ मासतक घडेमें रखकर फिर अन्तर्धूम पकाना चाहिये। पक जानेपर शहदके साथ चाटनेसे गलगण्ड शान्त होता है ॥ ९ ॥ १० ॥

शस्त्रचिकित्सा ।

जिह्वायाः पार्श्वतोऽधस्ताच्छिरा द्वादश कीर्तिताः ।
तासां स्थूलशिरे द्वेऽधश्छिन्द्यात्ते च शनैः शनैः ॥ ११ ॥
बडिशेनैव संगृह्य कुशपत्रेण बुद्धिमान् ।
स्रुते रक्ते व्रणे तस्मिन्दद्यात्सगुडमार्द्रकम् ॥ १२ ॥
भोजनं चानभिष्यन्दि यूषः कौलत्थ इष्यते ।
कर्णयुग्मबहिः सन्धिमध्याभ्यासे स्थितं च यत् ॥१३॥
उपर्युपरि तच्छिन्द्याद्गलगण्डे शिरात्रयम् ।

जिह्वाके नीचे बगलमें १२ शिरायें बताई गयी हैं । उनमेंसे नीचेकी २ शिराए बडिशसे पकडकर कुशपत्रसे धीरे धीरे काट देना चाहिये, रक्त बह जानेपर उस व्रणमें गुड व अदरखका रस लगाना चाहिये । पथ्य अनभिष्यन्दि तथा कुलथीका यूष देना चाहिये । तथा दोनोकानोंकी बाहरी सन्धिके समीप जो ऊपर तीन शिराएँ हैं उनका भी व्यधन करना चाहिये ॥११-१३॥–

नस्यं तैलम् ।

विडङ्गक्षारसिन्धूत्थरास्नाग्निव्योषदारुभिः ॥ १४ ॥
कटुतुम्बीफलरसैः कटुतैलं विपाचयेत् ।
चिरोत्थमपि नस्येन गलगण्डं निवारयेत् ॥ १५ ॥

वायविडङ्ग, जवाखार, सेंधानमक, बच, रासन, चीतकी जड, त्रिकटु व देवदारुके कल्क तथा कडुई तोम्बीके रसमें सिद्ध कडुए तैलके नस्य देनेसे पुराना गलगण्ड नष्ट होता है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अमृतादितैलम् ।

तैलं पिबेच्चामृतवल्लिनिम्ब-
हंसाह्वयावृक्षकपिप्पलीभिः ।
सिद्धं बलाभ्यां च सदेवदारु
हिताय नित्यं गलगण्डरोगी ॥ १६ ॥

गुर्च, नीमकी छाल, हंसपादी, कुटज, छोटी पीपल, दोनों खरेटी तथा देवदारुके कल्कसे सिद्ध तैल गलगण्डवालेको नित्य पीना चाहिये ॥ १६ ॥

वरुणमूलक्वाथः ।

माक्षिकाढ्योऽसकृत्पीतः क्वाथो वरुणमूलजः ।
गण्डमालां निहन्त्याशु चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ १७॥

वरुणाकी जडके क्वाथमें शहद मिलाकर सेवन करनेसे पुरानी गण्डमाला नष्ट होती है ॥१७॥

काञ्चनारकल्कः ।

पिष्टा ज्येष्ठाम्बुना पेया काञ्चनारत्वचः शुभाः ।
विश्वभेषजसंयुक्ता गण्डमालापहाः पराः ॥ १८ ॥

कचनारकी छालको पीस चावलका जल तथा सोंठका चूर्ण मिलाकर पीनेसे गण्डमाला नष्ट होती है ॥१८॥

आरग्वधशिफाप्रयोगः ।

आरग्वधशिफाक्षिप्रं पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा ।
सम्यङ्नस्यप्रलेपाभ्यां गण्डमालां समुद्धरेत् ॥ १९ ॥

अमलतासकी जडको पीसकर चावलके जलके साथ नस्य लेने तथा प्रलेप करनेसे गण्डमाला नष्ट होती है ॥ १९ ॥

निर्गुण्डीनस्यम् ।

गण्डमालामयार्तानां नस्यकर्मणि योजयेत् ।
निर्गुण्ड्याश्च शिफां सम्यग्वारिणा परिपेषिताम् ॥ २० ॥

जलमें अच्छीतरह पीसी हुई सम्भालूकी जडको नस्यके लिये गण्डमालावालोंको प्रयोग करना चाहिये ॥ २० ॥

विविधानि नस्यानि ।

कोषातकीनां स्वरसेन नस्यं
तुम्ब्यास्तु वा पिप्पलिसंयुतेन ।
तैलेन वारिष्टभवेन कुर्या-
द्वचोपकुल्ये सह माक्षिकेण ॥ २१ ॥

छोटी पीपलके चूर्णके सहित कडुई तोरईके स्वरसका नस्य अथवा कडुई तोम्बीके स्वरसका नस्य अथवा नीमके तैलका नस्य अथवा दूधिया वच और छोटी पीपलके चूर्णका नस्य शहदके साथ करना चाहिये ॥२१॥

विविधानि पानानि ।

ऐन्द्र्या वा गिरिकर्ण्या वा मूलं गोमूत्रयोगतः ।
गण्डमालां हरेत्पीतं चिरकालोत्थितामपि ॥ २२ ॥
अलम्बुपादलोद्भूतात्स्वरसाद्द्विपलं पिबेत् ।
अपच्या गण्डमालाया कामलायाश्च नाशनः ॥ २३ ॥

इन्द्रायण अथवा विष्णुक्रान्ताकी जडको गोमूत्रके साथ पीसकर पीनेसे पुरानी गण्डमाला नष्ट होती है ।

इसी प्रकार मुण्डीका स्वरस २ पलकी मात्रासे सेवन करनेसे अपची गण्डमाला व कामला नष्ट होती है ॥ २२–२३ ॥

लेपः ।

गलगण्डगण्डमालाकुरण्डांश्च विनाशयेत्।
पिष्टं ज्येष्ठाम्बुना मूलं लेपाद्ब्राह्मणयष्टिजम् ॥ २४ ॥

भारङ्गीकी जडको पीसकर चावलके साथ लेप करनेसे गलगण्ड, गण्डमाला तथा अण्डवृद्धि नष्ट होती है ॥२४॥

छुछुन्दरीतैलम् ।

अभ्यङ्गान्नाशयन्नृणां गण्डमालां सुदारुणाम् ।
छुछुन्दर्या विपक्वं तु क्षणात्तैलवरं ध्रुवम् ॥ २५ ॥

छुछुन्दरसे पकाये तैलकी मालिशसे गण्डमाला एक क्षणमें नष्ट होती है ॥२५ ॥

शाखोटत्वगादितैलद्वयम् ।

गलगण्डापहं तैलं सिद्धं शाखोटकत्वचा ।
बिम्ब्याश्वमारनिर्गुण्डीसाधितं चापि नावनम् ॥ २६ ॥

सिहोरेकी छालसे पकाया गया तैल अथवा कुन्दुरू कनेर व सम्भालूसे सिद्ध तैलका नस्य लेनेसे गण्डमाला नष्ट होती है ॥२६ ॥

निर्गुण्डीतैलम् ।

निर्गुण्डीस्वरसं चाथ लाङ्गलीमूलकल्कितम् ।
तैलं नस्यान्निहन्त्याशु गण्डमालां सुदारुणाम् ॥ २७ ॥

सम्भालूके स्वरसमें कलिहारीकी जडका कल्क मिलाकर सिद्ध किये गये तैलके नस्यसे कठिन गण्डमाला नष्ट होती है ॥२७ ॥

कार्पासपूपिकाः ।

वनकार्पासिकामूलं तण्डुलैः सह योजितम् ।
पक्त्वा तु पूपिकां खादेदपचीनाशनाय तु ॥ २८ ॥

जङ्गली कपासकी जड और चावलको पीसकर बनायी गयी पूडीको खानेसे अपची नष्ट होती है ॥ २८ ॥

लेपः ।

शोभाञ्जनं देवदारु काञ्जिकेन तु पेषितम् ।
कोष्णं प्रलेपनाद्धन्यादपचीमतिदुस्तराम् ॥ २९ ॥
सर्षपारिष्टपत्राणि दग्ध्वा भल्लातकैः सह ।
छागमूत्रेण संपिष्टमपचीघ्नं प्रलेपनम् ॥ ३० ॥
अश्वत्थकाष्ठं निचुलं गवां दन्तं च दाहयेत् ।
वराहमज्जसंयुक्तं भस्म हन्त्यपचीव्रणान् ॥ ३१ ॥

सहिजन व देवदारुको काञ्जीके साथ पीस कुछ गरम गरम लेप करनेसे कठिन अपची नष्ट होती है । तथा सरसों, नीमकी पत्ती व भिलावाँ सबको अन्तर्धूम पका बकरेके मूत्रमें पीस लेप करनेसे अपची नष्ट होती है । इसी प्रकार पीपलकी लकडी, जलवेत व गोदन्तको जलाकर भस्म करना चाहिये इस भस्मको शूकरकी मज्जाके साथ लेप करनेसे अपची व्रण नष्ट होते हैं ॥ २९–३१ ॥

शस्त्रचिकित्सा ।

पार्ष्णिं प्रति द्वादश चाङ्गुलानि
भित्त्वेन्द्रवस्तिं परिवर्ज्य सम्यक् ।
विदार्य मत्स्याण्डनिभानि वैद्यो
निकृष्य जालान्यनलं विदध्यात् ॥ ३२ ॥
मणिबन्धोपरिष्टाद्वा कुर्याद्रेखात्रयं भिषक् ।
अङ्गुल्यान्तरितं सम्यगपचीनां प्रशान्तये ॥ ३३ ॥
दण्डोत्पलाभवं मूलं बद्धं पुष्येऽपचीं जयेत् ।
अपामार्गस्य वा छिन्द्याज्जिह्वातलगते शिरे ॥ ३४ ॥

एँडीकी ओर १२ अंगुल नाप इन्द्रवस्तिको छोडकर शस्त्रसे चीरकर मछलीके अण्डके समान जालोंको दूरकर अग्नि लगा देनी चाहिये । अथवा मणिबन्धके ऊपर एक एक अंगुलके बीचसे ३ रेखायें करे । इससे अपची शान्त होती है । अथवा जिह्वातलगत २ शिराओंका व्यध करना चाहिये अथवा पुष्य नक्षत्रमें पीले फूलकी सहदेवीकी जड अथवा अपामार्गकी जड अपचीको नष्ट करती है ॥ ३२–३४ ॥

व्योषादितैलम् ।

व्योष विडङ्गं मधुकं सैन्धवं देवदारु च ।
तैलमेतैः शृतं नस्यात्कृच्छ्रमप्यपचीं जयेत् ॥ ३५ ॥

त्रिकटु, वायविडंग, मोरेठी, सेंधानमक, तथा देवदारुसे तैल सिद्ध करना चाहिये इस तैलका नस्य लेनेसे अपची नष्ट होती है ॥ ३५ ॥

चन्दनाद्यं तैलम् ।

चन्दनं साभया लाक्षा वचा कटुकरोहिणी ।
एतैस्तैलं शृतं पीतं समूलामपचीं जयेत् ॥ ३६ ॥

चन्दन, बडी हर्रका छिल्का, लाख, बच तथा कुटकीके कल्कसे सिद्ध तैल नस्यादियोगादिसे समूल अपचीका नष्ट करता है ॥ ३६ ॥

गुञ्जाद्यं तैलम् ।

गुञ्जाहयारिश्यामाकमर्पमूत्रसाधितम् ।
तैलं नु दराधा पश्चात्कणालवणपञ्चकम् ॥ ३७ ॥

मरिचैश्चूर्णितैर्युक्तं सर्वावस्थागतां जयेत्।
अभ्यङ्गादपचीमुग्रां वल्मीकार्शोऽर्बुदव्रणान् ॥ ३८ ॥

गुञ्जा, कनैर, काला निसोथ और सरसोका कल्क तथा गोमूत्र छोडकर १० बार सिद्ध तैलमें छोटी पीपल, पाचों नमक और मिर्चका चूर्ण मिला मर्दन करनेसे हर प्रकारकी अपची, वल्मीक, अर्श, अर्बुद और व्रण नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

ग्रन्थिचिकित्सा।

ग्रन्थिष्वामेषु कुर्वीत भिषक् शोथप्रतिक्रियाम्।
पक्वानापाट्य संशोध्य रोपयेद्व्रणभेषजैः ॥ ३९ ॥

कच्ची गांठोंमें वैद्यको शोथकी चिकित्सा करनी चाहिये। पकी गांठोंको चीर साफकर व्रणकी ओषधियोंसे रोपण करना चाहिये ॥ ३९ ॥

वातजग्रन्थिचिकित्सा।

हिंस्रा सरोहिण्यमृता च भार्ङ्गी
श्यामाकबिल्वागुरुकृष्णगन्धा।
गोपित्तपिष्टा सह तालपर्ण्या
ग्रन्थौ विधेयोऽनिलजे प्रलेप ॥ ४० ॥

जटामासी, कुटकी, गुर्च, भारङ्गी, निसोथ, बिल्व, अगुरु, सहिंजन, तथा मुसलीको गोपित्तमें पीसकर वातज ग्रन्थिमें लेप करना चाहिये ॥ ४० ॥

पित्तजग्रन्थिचिकित्सा।

जलायुका पित्तकृते हितास्तु
क्षीरोदकाभ्यां परिषेचनं च।
काकोलिवर्गस्य तु शीतलानि
पिबेत्कषायाणि सशर्कराणि ॥ ४१ ॥
द्राक्षारसेनेक्षुरसेन वापि
चूर्णं पिबेद्वापि हरीतकीनाम्।
मधूकजम्ब्वर्जुनवेतसानां
त्वग्भिः प्रदेहानवतारयेच्च ॥ ४२ ॥

पित्तज ग्रन्थिमें जोंक लगाना, दूध तथा जलसे सिञ्चन, तथा काकोल्यादिवर्गके काढे ठण्ढे कर शक्कर मिला पीना चाहिये। अथवा हर्रोंका चूर्ण मुनक्केके रससे अथवा ईखके रससे पीवे तथा महुआ, जामुनकी छाल, अर्जुन, और वेतकी छालका लेप करे ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

श्लेष्मग्रन्थिचिकित्सा।

हृतेषु दोषेषु यथानुपूर्व्या
ग्रन्थौ भिषक् श्लेष्मसमुत्थिते तु।
स्विन्ने च विम्लापनमेव कुर्या-
दङ्गुष्ठरेण्वादृषदासुतैश्च ॥ ४३ ॥

कफज ग्रन्थिमें वमन द्वारा दोष निकाल स्वेदन कर अगूठेमें मिट्टी लेकर रगडना चाहिये, अथवा पत्थरके टुकडेसे रगडना चाहिये ॥ ४३ ॥

लेपः।

विकङ्कतारग्वधकाकणन्ती-
काकादनीतापसवृक्षमूलैः।
आलेपयेदेनमलाबुभार्ङ्गी-
करञ्जकालामदनैश्च विद्वान् ॥ ४४ ॥
दन्ती चित्रकमूलत्वक् सुधार्कपयसी गुडः।
भल्लातकास्थिकासीसं लेपो भिन्द्याच्छिलामपि।
ग्रन्थ्यर्बुदादिजिल्लेपो मातृवाहककीटजः ॥ ४५ ॥
मर्जिकामूलकक्षारं शङ्खचूर्णसमन्वितं।
प्रलेपो विहितस्तीक्ष्णो हन्ति ग्रन्थ्यर्बुदादिकान् ॥ ४६ ॥

कण्टाई, अमलतास, गुञ्जा, मकोय, हिंगोट, प्रत्येकको जड तथा कडुई तोम्बी, भारङ्गी, करञ्ज, निसोथ और मैनफलसे लेप करना चाहिये। अथवा दन्ती, चीतकी जडकी छाल, सेहुण्ड और आकका दूध, गुड, भिलावाकी मज्जा और कसीसका लेप पत्थरको भी फोड देता है। इसी प्रकार मातृवाहककीट (बगला पेदापोका) का लेप ग्रन्थि, अर्बुद आदिको नष्ट करता है। इसी प्रकार सज्जीखार, मूलीका खार तथा शखचूर्ण इनको पीसकर लेप करनेसे ग्रन्थि और अर्बुद आदि नष्ट होते है ॥ ४४–४६ ॥

शस्त्रचिकित्सा।

ग्रन्थीनमर्मप्रभवानपक्वा-
नुद्धृत्य वाग्नि विदधीत वह्निं।
क्षारेण वै तान्प्रतिसारयेत्तु
संलिख्य संलिख्य यथोपदेशम् ॥ ४७ ॥

जो ग्रन्थियां मर्म स्थानमें न हों उन्हें निकालकर अग्निसे जला दे अथवा खुरच खुरच कर क्षारका प्रतिसारण करे ॥ ४७ ॥

अर्बुदचिकित्सा।

ग्रन्थ्यर्बुदानां न यतो विशेषः
प्रदेशहेत्वाकृतिदोषदूष्यैः।
ततश्चिकित्सेद्भिषगर्बुदानि
विधानविद्ग्रन्थिचिकित्सितेन ॥ ४८ ॥

ग्रन्थि और अर्बुदमे स्थान, कारण, लक्षण, दोष और दूष्यमें कोई विशेषता नहीं है इस लिये अर्बुदकी चिकित्सा ग्रन्थिके समान ही करनी चाहिये ॥ ४८ ॥

वातार्बुदचिकित्सा ।

वातार्बुदे चाप्युपनाहनानि
स्निग्धैश्च मांसैरथ वेसवारैः ।
स्वेदं विदध्यात्कुशलस्तु नाड्या
शृङ्गेण रक्तं बहुशो हरेच्च ॥ ४९ ॥

वातार्बुदमें चिकने मांस अथवा वेसवारकी पुल्टिस बाँधनी चाहिये । तथा नाडीस्वेद करना चाहिये और शृङ्गसे अनेक बार रक्त निकालना चाहिये ॥ ४९ ॥

पित्तार्बुदचिकित्सा ।

स्वेदोपनाहा मृदवस्तु पथ्या
पित्तार्बुदे कायविरेचनानि ।
विघृष्य चोदुम्बरशाकगोजी-
पत्रैर्भृशं क्षौद्रयुतैः प्रलिम्पेत् ॥ ५० ॥
श्लक्ष्णीकृतैः सर्जरसप्रियङ्गु-
पतङ्गलोध्रार्जुनयष्टिकाह्वैः ॥ ५१ ॥

पित्तज अर्बुदमें मृदुस्वेद तथा उपनाह करना चाहिये तथा विरेचन देना चाहिये । तथा कठूमर शाक और गोजिह्वा (गाउजुवा) की पत्तीसे घिस (खुरचकर)शहदमें महीन पिसी राल, प्रियङ्गु, पतग, लोध, अर्जुन और मौरेठीका लेप करना चाहिये ॥ ५०–५१ ॥

कफजार्बुदचिकित्सा ।

लेपनं शङ्खचूर्णेन सह मूलकभस्मना ।
कफार्बुदापहं कुर्याद्ग्रन्थ्यादिषु विशेषतः ॥ ५२ ॥

कफज ग्रन्थिमें मूलीकी भस्म और शखके चूर्णका लेप करना चाहिये ॥ ५२ ॥

विशेषचिकित्सा ।

निष्पावपिण्याककुलत्थकल्कै-
र्मांसप्रगाढैर्दधिमर्दितैश्च ।
लेपं विदध्यात्क्रिमयो यथात्र
मुञ्चन्त्यपत्यान्यथ मक्षिका वा ॥ ५३ ॥
अल्पावशिष्टे क्रिमिभिः प्रजग्धे
लिखेत्ततोऽग्निं विदधीत पश्चात् ।
यदल्पमूलं त्रपुताम्रसीसैः
संवेष्ट्य पत्रैरथवायसैर्वा ॥ ५४ ॥
क्षाराग्निशस्त्राण्यवचारयेच्च
मुहुर्मुहुः प्राणमवेक्ष्यमाणः ।
यदृच्छया चोपगतानि पाकं
पाकक्रमेणोपचरेद्यथोक्तम् ॥ ५५ ॥

सेमके बीज, पीना, कुल्थीका कल्क तथा मासको दहीमें मर्दितकर लेप करना चाहिये । जिससे इसमें कीडे पडजायँ । या मक्खियाँ कीडे उत्पन्न कर दें । फिर कीडोंसे बहुत अंश खा जानेपर अल्पावशिष्ट खुरच कर अग्निसे जला देना चाहिये । जो थोडी जड रह जाय उसे रांगा, तामा, शीशा अथवा लोहेके पत्रोंसे लपेट क्षार अग्नि अथवा शस्त्रका प्रयोग रोगीके बलका ध्यान रखकर करे । यदि अपने आप पक जावे तो पाकक्रमसे चिकित्सा करे ॥ ५३–५५ ॥

सशेषदोषाणि हि योऽर्बुदानि
करोति तस्याशु पुनर्भवन्ति ।
तस्मादशेषाणि समुद्धरेत्तु
हन्युः सशेषाणि यथा विषाग्नी ॥ ५६ ॥

जिसके अर्बुदके दोष कुछ शेष रह जाते हैं उसके फिर शीघ्र ही बढ जाते हैं अतः अर्बुद समस्त निकाल देना चाहिये क्योंकि अर्बुदके दोष यदि कुछ शेष रह जाते हैं तो वह विष तथा अग्निके समान शीघ्र ही मार डालते हैं ॥ ५६ ॥

उपोदिकाप्रयोगः ।

उपोदिका रसाभ्यक्तास्तत्पत्रपरिवेष्टिताः ।
प्रणश्यन्त्यचिरान्नॄणां पिडकार्बुदजातयः ॥ ५७ ॥
उपोदिका काञ्जिकतक्रपिष्टा
तयोपनाहो लवणेन मिश्रः ।
दृष्टोऽर्बुदानां प्रशमाय कैश्चि-
द्दिने दिने वा त्रिषु मर्मजानाम् ॥ ५८ ॥

पोयके रसकी मालिश कर पोयके पत्ते ही बाँधनेसे शीघ्र ही मनुष्योंकी पिडिका व अर्बुद नष्ट हो जाते हैं । अथवा पोयको काञ्जी और मट्ठेके साथ पीस नमक मिला गरमकर पुल्टिस बान्धनेसे ३ दिनमें मर्मस्थानमें भी उत्पन्न अर्बुद नष्ट हो जाते हैं ॥ ५७–५८ ॥

अन्ये लेपाः ।

लेपोऽर्बुदजिद्रम्भामोचकभस्मतुषशङ्खचूर्णकृतः ।
सरटरुधिरार्द्रगन्धकयवजविडङ्गनागरैर्वाथ ॥ ५९ ॥

स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि च ।
शिरीषेनाथ लवणं पिण्डारकफलेन वा ॥ ६० ॥
हरिद्रालोध्रपत्तङ्गगृहधूममन शिला ।
मधुप्रगाढो लेपोऽयं मेदोऽर्बुदहर पर ।
एतामेव क्रियां कुर्याद्शेषां शर्करार्बुदे ॥ ६१ ॥

केला और सेमरकी भस्म, धान्यकी भूमी और शंखके चूर्णका लेप अर्बुदको नष्ट करता है । अथवा गिरदानका रक्त, अदरख, गन्धक, यवाखार, वायविडङ्ग और सोंठका लेप अथवा सिरसेकी छाल अथवा नमक अथवा काले मैनफलका लेप करना हितकर है तथा सेहुण्ड और मञ्जीठकी पुल्टिस बान्धना हितकर है । तथा हल्दी, लोध, लालचन्दन, गृहधूम और मैनशिलको शहदमें मिलाकर लेप करनेसे मेदोऽर्बुद शान्त होता है। तथा यही क्रिया शर्करार्बुदमें करनी चाहिये ॥५९-६१॥

इति गलगण्डाधिकारः समाप्तः ।

अथ श्लीपदाधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

लङ्घनालेपनस्वेदरेचनै रक्तमोक्षणै ।
प्राय श्लेष्महरैरुष्णै श्लीपद समुपाचरेत् ॥ १ ॥

लंघन, आलेपन, स्वेद, रेचन, रक्तमोक्षण तथा श्लेष्महर उष्ण उपायोंसे श्लीपदकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

लेपद्वयम् ।

धत्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपै ।
प्रलेप श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमतिदारुणम् ॥ २ ॥
निष्पिष्टमारनालेन रूपिकामूलवल्कलम् ।
प्रलेपाच्छ्लीपद हन्ति बद्धमूलमथो दृढम् ॥ ३ ॥

धतूर, एरण्ड, सम्भालू, पुनर्नवा, सहिजन और सरसोंका लेप करना पुराने कठिन श्लीपदको लाभ करता है । तथा सफेद आककी जडकी छालको काञ्जीमें पीस कर लेप करनेसे बद्धमूल श्लीपद नष्ट होता है ॥२॥३ ॥

प्रयोगान्तरम् ।

पिण्डारकतरुसम्भववन्दाकाशिफा जयति सर्पिषा पीता ।
श्लीपदमुग्रं नियतं बद्ध्वा सूत्रेण जंघायाम् ॥ ४ ॥

काले मैनफलके ऊपरके बान्देकी जड घीके साथ पीने तथा डोरेसे जघोंमें बाधनेसे नियमसे उग्र श्लीपद नष्ट हो जाता है ॥४॥

अन्ये लेपाः ।

हितश्चालेपने नित्य चित्रको देवदारु वा ।
सिद्धार्थशिग्रुकल्को वा सुखोष्णो मूत्रपेषित. ॥ ५ ॥

चीता अथवा देवदारु अथवा सहिजन व सरसो गोमूत्रमें पीस गरम कर नित्य लेप करना हितकर है ॥५॥

शस्त्रचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदोपनाहाश्च श्लीपदेऽनिलजे भिषक् ।
कृत्वा गुल्फोपरि शिरा विध्येत्तु चतुरंगुले ॥६॥
गुल्फस्याध शिरा विध्येच्छ्लीपदे पित्तसम्भवे ।
पित्तघ्नीं च क्रियां कुर्यात्पित्तार्बुदविसर्पवत् ॥७॥

वातज श्लीपदमें स्नेहन स्वेदन तथा पुल्टिस बाधकर गुल्फके चार अगुल ऊपर वैद्यको शिराव्यध करना चाहिये । तथा पित्तजश्लीपदमें गुल्फके नीचे शिराव्यध करना चाहिये । तथा पित्तार्बुदविसर्पके समान पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥६॥७॥

पित्तजश्लीपदे लेपः ।

मञ्जिष्ठा मधुक रास्ना सहिस्रा सपुनर्नवाम् ।
पिष्ट्वारनालैर्लेपोऽय पित्तश्लीपदशान्तये ॥८॥

मञ्जीठ, मौरेठी, रासन, जटामासी व पुनर्नवाको कांजीके साथ पीसकर लेप करनेसे पित्तज श्लीपद शान्त होता है ॥ ८ ॥

कफश्लीपदचिकित्सा ।

शिरा सुविदिता विध्येदङ्गुष्ठे श्लेष्मश्लीपदे ।
मधुयुक्तानि चाभीक्ष्ण कषायाणि पिबेन्नर ॥९॥
पिबेत्सर्षपतैलेन श्लीपदाना निवृत्तये ।
पूतीकरञ्जच्छदज रसं वापि यथाबलम् ॥१०॥
अनेनैव विधानेन पुत्रजीवकज रसम् ।
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं मूत्रैर्वा वृद्धदारजम् ॥११॥
रजनीं गुडसयुक्तां गोमूत्रेण पिबेन्नर ।
वर्षोत्थं श्लीपद हन्ति दद्रुकुष्ठ विशेषत ॥१२॥

कफज श्लीपदमें अँगूठेकी स्पष्ट शिराका व्यध करना चाहिये । तथा शहदके साथ कफनाशक क्वाथ सदैव पीना चाहिये । अथवा पूतिकरञ्जके पत्तोंका रस सरसोंका तैल मिलाकर पीना चाहिये । इसी प्रकार पुत्रजीवाका

रस पीना चाहिये अथवा काञ्जी या गोमूत्रके साथ विधारे-का चूर्ण पीना चाहिये, तथा हल्दीका चूर्ण गुड मिला गोमूत्रके साथ पीनेसे एक वर्षका पुराना श्लीपद तथा दद्रु (दाद) नामका कुष्ठ दूर हो जाता है ॥९-१२॥

वातकफजश्लीपदचिकित्सा ।

गन्धर्वतैलभृष्टां हरीतकीं गोजलेन यः पिबति ।
श्लीपदबन्धनमुक्तो भवत्ययमो सप्तरात्रेण ॥१३॥
धान्याम्लं तैलसंयुक्तं कफवातविनाशनम् ।
दीपनं चामदोषघ्नमेतच्छ्लीपदनाशनम् ॥१४॥
गोधावतीमूलयुक्तां खादेन्माषेण्डरीं नरः ।
जयेच्छ्लीपदकोपोत्थं ज्वरं सद्यो न संशयः ॥१५॥
श्लीपदघ्नो रसोऽभ्यासाद्गुडूच्यास्तैलसंयुतः ।

जो मनुष्य एरण्ड तैलमे भुनी हर्रको गोमूत्रके साथ खाता है वह ७ दिनमें श्लीपद बन्धनसे मुक्त हो जाता है । तथा काञ्जी, तैलके साथ कफ वातको नष्ट करती दीपन आमदोषनाशक तथा श्लीपदनाशक है । वटपत्री-पाषाणभेदकी जडके साथ उडदके बडे खानेसे श्लीपद-कोपोत्थ ज्वर नष्ट होता है । गुर्चके रसका तैलके साथ सेवन करनेसे श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥१३-१५॥-

त्रिकट्वादिचूर्णम् ।

त्रिकटु त्रिफला चव्यं दार्वीवरुणगोक्षुरम् ॥१६॥
अलम्बुषा गुडूचीं च समभागानि चूर्णयेत् ।
सर्वेषां चूर्णमाहृत्य वृद्धदारस्य तत्समम् ॥ १७ ॥
काञ्जिकेन च तत्पेयमक्षमात्रं प्रमाणतः ।
जीर्णे चापरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥१८॥
नाशयेच्छ्लीपदं स्थौल्यमामवातं सुदारुणम् ।
गुल्मकुष्ठानिलहरं वातश्लेष्मज्वरापहम् ॥१९॥

त्रिकटु, त्रिफला, चव्य, दारुहल्दी, वरुणाकी छाल, गोखरू, मुण्डी तथा गुर्च सब समान भाग सबके समान विधारेका चूर्ण बनाकर १ तोलेकी मात्रासे काञ्जीके साथ पीना चाहिये । औषध पच जानेपर यथेच्छ भोजनादि करना चाहिये यह श्लीपद, स्थौल्य, आम-वात, गुल्म, कुष्ठ वात तथा वातश्लेष्मज्वरको नष्ट करता है ॥१६-१९॥

पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पलीत्रिफलादारुनागरं सपुनर्नवम् ।
भागैर्द्विपलिकैरेषां तत्समं वृद्धदारकम् ॥२०॥
काञ्जिकेन पिबेच्चूर्णं कर्षमात्रं प्रमाणतः ।
जीर्णे चापरिहारं स्याद्भोजनं सार्वकामिकम् ॥ २१ ॥
श्लीपदं वातरोगांश्च हन्यात्प्लीहानमेव च ।
अग्निं च कुरुते घोरं भस्मकं च नियच्छति ॥ २२ ॥

छोटी पीपल, त्रिफला, देवदारु, सोंठ तथा पुनर्नवा प्रत्येक ८ तोला और सबके समान विधाराका चूर्णकर १ कर्षकी मात्रासे काञ्जीके साथ पीना चाहिये । हजम हो जानेपर यथारुचि भोजन करना चाहिये । यह श्लीपद वातरोग तथा प्लीहाको नष्ट करता और अग्निको प्रदीप्त करता है ॥ २०-२२ ॥

कृष्णाद्यो मोदकः ।

कृष्णाचित्रकदन्तीनां कर्षमर्धपलं पलम् ।
विंशतिश्च हरीतक्यो गुडस्य तु पलद्वयम् ।
मधुना मोदकं खादेच्छ्लीपदं हन्ति दुस्तरम् ॥ २३ ॥

छोटी पीपल, चीतकी जड, दन्ती क्रमशः १ तो० २ तो० और ४ तो० तथा २० हर्रें सबका महीन चूर्णकर गुड ८ तोला और शहद मिला गोली बनानी चाहिये । यह गोलिया श्लीपदको नष्ट करती है ॥२३ ॥

सौरेश्वरं घृतम् ।

सुरसां देवकाष्ठं च त्रिकटुत्रिफले तथा ।
लवणान्यथ सर्वाणि विडङ्गान्यथ चित्रकम् ॥ २४ ॥
चविका पिप्पलीमूलं गुग्गुलुर्हपुषा वचा ।
यवाग्रजं च पाठा च शट्येला वृद्धदारुकम् ॥ २५ ॥
कल्कैश्च कार्षिकैरेभिर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
दशमूलीकषायेण धान्ययूषद्रवेण च ॥ २६ ॥
दधिमण्डसमायुक्तं प्रस्थं प्रस्थं पृथक् पृथक् ।
पक्वं स्यादुद्धृतं कल्कात्पिबेत्कर्षत्रयं हविः ॥२७॥
श्लीपदं कफवातोत्थं मांसरक्ताश्रितं च यत् ।
मेदःश्रितं च पित्तोत्थं हन्यादेव न संशयः ॥ २८ ॥
अपचीं गण्डमालां च अन्त्रवृद्धिं तथार्बुदम् ।
नाशयेद्ग्रहणीदोषं श्वयथुं गुदजानि च ॥ २९ ॥
परमग्निकरं हृद्यं कोष्ठक्रिमिविनाशनम् ।
घृतं सौरेश्वरं नाम श्लीपदं हन्ति सेवितम् ।
जीवकेन कृतं ह्येतद्रोगानीकविनाशनम् ॥ ३० ॥

तुलसी, देवदारु, त्रिकटु, त्रिफला समस्त नमक, वाय-विडङ्ग, चीतकी जड, चव्य, पिपरामूल, गुग्गुलु, हाऊबेर, वच, जवाखार, पाढ, कचूर, इलायची, विधारा प्रत्ये-कका कल्क १ कर्ष, घी २ प्रस्थ, दशमूलका क्वाथ १ प्रस्थ, धान्ययूष काञ्जी १ प्रस्थ, दहीका तोड १ प्रस्थ तथा

जल १ प्रस्थ छोडकर घी पकाना चाहिये । इसमे ३ तोलेकी मात्राका सेवन करना चाहिये यह कफवातज मांसरक्ताश्रित, मेदःश्रित तथा पित्तजन्य श्लीपदको नष्ट करता है इसमे सन्देह नही । इसके अतिरिक्त अरुची, गण्डमाला, अन्त्रवृद्धि, अर्बुद, ग्रहणीदोष, सूजन तथा अर्शको नष्ट करता, अग्निको, दीप्त करता, हृत्, पेटके कीडोको नष्ट करता अधिक क्या कहा जाय । यह जीवकका बनाया हुआ घृत रोग समूहको नष्ट करता है ॥२४-३०॥

विडंगाद्यं तैलम् ।

विडङ्गमरिचार्केषु नागरे चित्रके तथा ।
भद्रदार्व्येलकाख्येषु सर्वेषु लवणेषु च ।
तैलं पक्वं पिबेद्वापि श्लीपदानां निवृत्तये ॥ ३१ ॥

वायविडंग, कालीमिर्च, अर्ककी छाल, सोंठ, चीतकी जड, देवदारु, इलायची, तथा समस्त लवणोंके साथ पकाया गया तैल पीनेसे श्लीपदरोग नष्ट होता है ॥३१॥

इति श्लीपदाधिकारः समाप्तः ।

अथ विद्रध्यधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

जलौकापातनं शस्तं सर्वस्मिन्नेव विद्रधौ ।
मृदुर्विरेको लघ्वन्नं स्वेदः पित्तोत्तरं विना ॥ १ ॥

समस्त विद्रधियोंमें जोंक लगाना, मृदु विरेचन, लघु अन्न तथा पित्तविद्रधिके सिवाय अन्यमें स्वेदन करना हितकर है ॥ १ ॥

वातविद्रधिचिकित्सा ।

वातघ्नमूलकल्कैस्तु वसातैलघृतप्लुतैः ।
सुखोष्णो बहलो लेपः प्रयोज्यो वातविद्रधौ ॥ २ ॥
स्वेदोपनाहाः कर्तव्याः शिग्रुमूलसमान्विताः ।
यवगोधूममुद्गैश्च सिद्धपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ३ ॥
विलीयते क्षणेनैवमपक्वश्चैव विद्रधिः ।
पुनर्नवादारुविश्वदशमूलाभयाम्भसा ॥ ४ ॥
गुग्गुलुं रुबुतैलं वा पिबेन्मारुतविद्रधौ ।

वातनाशकमूल (दशमूल) के कल्कको चर्बी, घी, और तैल मिला कुछ गरम कर मोटा लेप करनेसे वातविद्रधि शान्त होती है । तथा सहिजनकी जडसे स्वेदन व लेप करना चाहिये तथा जव गेहूँ और मूंगको पीस पकाकर लेप करना चाहिये इस प्रकार अपक्वविद्रधि क्षणभरमें ही शान्त हो जाती है । तथा पुनर्नवा, देवदारु, सोंठ, दशमूल और हर्रके क्वाथके साथ गुग्गुलु अथवा एरण्डतैलका प्रयोग करनेसे वातजविद्रधि शान्त होती है ॥ २–४ ॥–

पित्तविद्रधिचिकित्सा ।

पैत्तिकं शर्करालाजामधुकैः शारिवायुतैः ॥५॥
प्रदिह्यात्क्षीरपिष्टैर्वा पयस्योशीरचन्दनैः ।
पिबेद्वा त्रिफलाक्वाथं त्रिवृत्कल्काक्षसंयुतम् ॥६॥
पञ्चवल्कलकल्केन घृतमिश्रेण लेपनम् ।
यष्ट्याह्वशारिवादूर्वानलमूलैः सचन्दनैः ॥७॥
क्षीरपिष्टैः प्रलेपस्तु पित्तविद्रधिशान्तये ।

पित्तजविद्रधिमें दूधके साथ शक्कर, खील, मौरेठी तथा शारिवा अथवा क्षीरविदारी, खश और चन्दनका लेप करना चाहिये अथवा त्रिफलाका क्वाथ निसोथका कल्क १ तोला मिलाकर पीना चाहिये । तथा घी मिलाकर पञ्चवल्कलके कल्कका लेप करना चाहिये । अथवा मौरेठी, शारिवा, दूब, नरसलकी मूल और चन्दनको दूध मे पीसकर लेप करनेसे पित्तज विद्रधि शान्त होती है ॥ ५–७ ॥–

श्लेष्मजविद्रधिचिकित्सा ।

इष्टकासिकतालोहगोशकृत्तुषपांशुभिः ॥ ८ ॥
मूत्रपिष्टैश्च सततं स्वेदयेच्छ्लेष्मविद्रधिम् ।
दशमूलकषायेण सस्नेहेन रसेन वा ॥ ९ ॥
शोथं व्रणं वा कोष्णेन सशूलं परिषेचयेत् ।
त्रिफलाशिग्रुवरुणदशमूलाम्भसा पिबेत् ॥ १० ॥
गुग्गुलुं मूत्रयुक्तं वा विद्रधौ कफसम्भवे ।

कफजविद्रधिको ईंट, बालू, लोह, गायके गोबर, धानकी भूसी अथवा मिट्टीको गोमूत्रमें पीस गरम कर निरन्तर स्वेदन करना चाहिये । तथा दशमूलका क्वाथ अथवा, स्नेहसहित मांसरस कुछ गरम गरम सिञ्चन करनेसे शोथव्रण और शूल नष्ट होता है । अथवा त्रिफला, सहिजनकी छाल, वरुणाकी छाल और दशमूलके क्वाथके साथ अथवा गोमूत्रके साथ गुग्गुलुको पीनेसे कफज विद्रधि शान्त होती है ॥ ८–१० ॥–

रक्तागन्तुविद्रधिचिकित्सा ।

पित्तविद्रधिवत्सर्वां क्रियां निरवशेषतः ॥ ११ ॥
विद्रध्योः कुशलः कुर्याद्रक्तागन्तुनिमित्तयोः ।

रक्तज तथा आगन्तुज विद्रधिमे पित्तविद्रधिके समान ही समग्र चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

अपक्वान्तर्विद्रधिचिकित्सा ।

शोभाञ्जनकनिर्यूहो हिङ्गुसैन्धवसंयुत ॥१२॥
अचिराद् विद्रधि हन्ति प्रात प्रातर्निषेवित ।
शिग्रुमूल जले धौत दरपिष्ट प्रगालयेत ॥१३॥
तद्रस मधुना पीत्वा हन्त्यन्तर्विद्रधि नर ।
श्वेतवर्षाभुवो मूल मूल वरुणकस्य च ॥ १४ ॥
जलेन क्वथितं पीतमपक्वं विद्रधि जयेत ।
वरुणादिगणक्वाथमपक्वेऽभ्यन्तरोत्थिते ।
ऊषकादिप्रतीवाप पिबेत्प्रशमनाय वै ॥१५॥
शमयति पाठामूल क्षौद्रयुत तण्डुलाम्भसा पीतम् ।
अन्तर्भूत विद्रधिमुद्धतमाश्वेव मनुजस्य ॥१६॥

सहिजनका क्वाथ भुनी हींग व सैंधानमक मिलाकर प्रातःकाल सेवन करनेसे विद्रधि शीघ्र ही नष्ट होती है । इसी प्रकार सहिजनकी छाल जलमें धो पीस छानकर स्वरस निकालना चाहिये । इस स्वरसको शहदके साथ पीनेसे अन्तर्विद्रधि नष्ट होती है । तथा सफेद पुनर्नवाकी जड व वरुणाकी जडका क्वाथ बनाकर पीनेसे अपक्वविद्रधि शान्त होती है । वरुणादिगणके क्वाथमें रेहमिट्टी आदि डालकर पीनेसे अपक्व अभ्यन्तर विद्रधि शान्त होती है । इसी प्रकार पाठाकी जड शहद और चावलके जलके साथ पीनेसे मनुष्यकी अन्तर्विद्रधि शीघ्र ही शान्त होती है ॥ १२–१६ ॥

पक्वविद्रधिचिकित्सा ।

अपक्वे त्वेतदुद्दिष्ट पक्वे तु व्रणवत्क्रिया ॥
स्रुतेऽप्यूर्ध्वमधश्चैव मैरेयाम्लसुरासवैः ।
पेयो वरुणकादिस्तु मधुशिग्रुरसोऽथवा ॥ १७ ॥

अपक्वविद्रधिकी चिकित्सा ऊपर लिखी है पक्वविद्रधिमें व्रणके समान क्रिया करनी चाहिये । ऊर्ध्वमार्ग अथवा अधोमार्गसे बहनेपर मैरेय (मद्यविशेष) काञ्जी, शराब और आसवके साथ वरुणादिगणके कल्कका रस अथवा मीठे सहिजनका रस पीना चाहिये ॥ १७ ॥

रोपणं तैलम् ।

प्रियङ्गुधातकीलोध्र कट्फलं तिनिशत्वचम् ।
एभिस्तैल विपक्तव्य विद्रधौ रोपणं परम् ॥ १८ ॥

प्रियङ्गु, धायके फूल, लोध्र, कैफरा तथा तिनिशकी छालके कल्कमें सिद्ध तैल परम रोपण (घाव भरने-वाला) होता है ॥ १८ ॥

इति विद्रध्यधिकारः समाप्तः ।

अथ व्रणशोथाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

आदौ विम्लापन कुर्याद्द्वितीयमवसेचनम् ।
तृतीयमुपनाहं च चतुर्थीं पाटनक्रियाम् ॥ १ ॥
पञ्चम शोधनं चैव षष्ठं रोपणमिष्यते ।
एते क्रमा व्रणस्योक्ता सप्तमो वैकृतापहः ॥ २ ॥

व्रणशोथमें सबसे पहिले विम्लापन (अंगुली आदिसे घिसकर सूजन मिटाना) करना चाहिये । व्रण शोथकी दूसरी अवस्थामें अवसेचन (शिराव्यध कर रक्त निकालना), तीसरी अवस्थामें पुल्टिस बांधनी, चौथी अवस्थामें फाडना, पांचवी अवस्थामें शोधन, छठी अवस्थामें रोपण तथा सातवीं अवस्थामें उपद्रवोंका नाश इस तरह व्रणशोथकी चिकित्साके क्रम हैं ॥ १ ॥ २ ॥

वातशोथे लेपः ।

मातुलुङ्गाग्निमन्थौ च भद्रदारु महौषधम् ।
अहिंस्रा चैव रास्ना च प्रलेपो वातशोथहा ॥ ३ ॥

बिजौरानिम्बू, अरणी, देवदारु, सोंठ, जटामांसी, और रासनका लेप वातशोथको नष्ट करता है ॥ ३ ॥

अपरो लेपः ।

कल्क काञ्जिकसम्पिष्ट स्निग्ध' शाखोटकत्वच' ।
सुपर्ण इव नागानां वातशोथविनाशन ॥ ४ ॥

सिहोरेकी छालको काञ्जीके साथ पीस मिलाकर लेप करनेसे नागोंको गरुडके समान वातज शोथको नष्ट करता है ॥ ४ ॥

पित्तागन्तुजशोथलेपाः ।

दूर्वा च नलमूलं च मधुकं चन्दन तथा ।
शीतलाश्च गणा सर्वे प्रलेप पित्तशोथहा ॥ ५ ॥
न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थप्लक्षवेतसवल्कलैः ।
ससर्पिष्कै प्रलेप. स्याच्छोथनिर्वापण स्मृत ॥ ६ ॥
आगतौ शोणितोत्थे च एष एव क्रियाक्रम ।

दूब, नरसलकी जड, मौरेठी, चन्दन तथा समस्त शीतल पदार्थोंका लेप पित्तशोथको नष्ट करता है । इसी प्रकार बरगद, गूलर, पीपल, पकरिया तथा वेतकी छालका घीके साथ लेप करनेसे शोथकी दाह शान्त होता है । आगन्तुज तथा रक्तज शोथमें भी यही चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

कफजशोथचिकित्सा।

अजगन्धाश्वगन्धा च काला सरलया सह ॥ ७ ॥
एकैषिकाजशृङ्गी च प्रलेपः श्लेष्मशोथहा।

अजवाइन, असगन्ध, काला निसोथ, सफेद निसोथ, अगस्तिके फूल और काकड़ाशिंगीका लेप कफज शोथको नष्ट करता है ॥ ७ ॥–

कफवातजशोथचिकित्सा।

पुनर्नवाशिग्रुदारुदशमूलमहौषधैः ॥ ८ ॥
कफवातकृते शोथे लेपः कोष्णो विधीयते।

पुनर्नवा, सहिंजन, देवदारु, दशमूल तथा सोंठका कुछ गरम गरम लेप वातकफज शोथको नष्ट करता है ॥ ८ ॥–

लेपव्यवस्था।

न रात्रौ लेपनं दद्याद्दत्तं च पतितं तथा ॥ ९ ॥
न च पर्युषितं शुष्यमाणं नैवाधारयेत्।
शुष्यमाणमुपेक्षेत न लेपं पीडनं प्रति ॥ १० ॥
न चापि मुखमालिम्पेत्तेन दोषः प्रसिच्यते।

रात्रिमें लेप न लगाना चाहिये। एक बार लगाया लेप यदि गिर गया हो तथा बासी तथा रक्खे ही रक्खे सूखा हुआ न लगाना। सूखता हुआ लेप छुटा डालना चाहिये। तथा व्रणके मुखपर लेप न लगाना चाहिये, जिससे मवाद निकलता रहे ॥ ९ ॥ १० ॥–

विम्लापनम्।

स्थिरान्मन्दरुजः शोथान्स्नेहैर्वातकफापहैः ॥ ११ ॥
अभ्यज्य स्वेदयित्वा च वेणुनाड्या ततः शनैः।
विम्लापनार्थं मृद्नीयात्तलेनाङ्गुष्ठकेन वा ॥ १२ ॥

मन्द पीडायुक्त अधिक समयसे स्थिर शोथोंको वातकफनाशक स्नेहोंसे मालिश कर बासकी नलीसे नाडीस्वेद करना चाहिये। फिर तल अथवा अगूठेसे विलयनके लिये रगडना चाहिये ॥ ११ ॥ १२ ॥

रक्तावसेचनम्।

रक्तावसेचनं कुर्यादादावेव विचक्षणः।
शोथे महति सवद्धे वेदनावति च व्रणे ॥ १३ ॥
यो न याति शमं लेपस्वेदसेकापतर्पणैः।
सोऽपि नाशं व्रजत्याशु शोथः शोणितमोक्षणात् ॥ १४ ॥
एकतश्च क्रिया सर्वा रक्तमोक्षणमेकतः।
रक्तं हि व्यम्लतां याति तच्चेन्नास्ति न चास्ति रुक् ॥ १५ ॥

बडी जकडाहटयुक्त सूजन तथा पीडायुक्त व्रणमे पहले ही रक्तमोक्षण करना चाहिये। जो सूजन लेप, स्वेद, सेक और लंघनसे शान्त नहीं होती वह भी रक्तमोक्षणसे शीघ्र ही शान्त हो जाती है। व्रणशोथमे समस्त क्रिया एक ओर और रक्तमोक्षण एक ओर है, क्योंकि रक्त ही बिगड जाता है अतः विकृत रक्त निकल जानेपर पीडा भी नहीं रहती ॥ १३–१५ ॥

पाटनम्।

स चेदेवमुपाक्रान्तः शोथो न प्रशमं व्रजेत्।
तस्योपनाहैः पक्वस्य पाटनं हितमुच्यते ॥ १६ ॥

इस प्रकारकी चिकित्सा करनेपर भी यदि शोथ शान्त न हो तो पुल्टिससे पकाकर चीर देना चाहिये ॥ १६ ॥

उपनाहाः।

तैलेन सर्पिषा वापि ताभ्यां वा शक्तुपिण्डिका।
सुखोष्णः शोथपाकार्थमुपनाहः प्रशस्यते ॥ १७ ॥
सातिला सातसीबीजा दध्यम्ला शक्तुपिण्डिका।
सकिण्वकुष्ठलवणा शस्ता स्यादुपनाहने ॥ १८ ॥

तैलके साथ अथवा घीके साथ अथवा दोनोंके साथ बनायी गयी सत्तूकी पिण्डीको गरम कर सूजन पकानेके लिये प्रयोग करना चाहिये। अथवा तिल, अलसी, दही, सत्तू, शराबकिट्ट, कूठ और नमककी पुल्टिस बनाकर बांधना चाहिये ॥ १७ ॥ १८ ॥

गोदन्तप्रयोगः।

बालवृद्धासहक्षीणभीरूणां योषितामपि।
मर्मोपरि च जाते च पक्वे शोथे च दारुणे।
गवां दन्तं जले घृष्टं बिन्दुमात्रं प्रलेपयेत् ॥ १९ ॥
अत्यन्तकठिने चापि शोथे पाचनभेदनम्।

बालक, वृद्ध, सुकुमार, क्षीण, डरपोक तथा स्त्रियोंके पके हुए कठिन व्रण पर तथा मर्मस्थानपर उत्पन्न हुए व्रणपर गायका दांत जलमें घिसकर १ बिन्दु लगाना चाहिये। यह अत्यन्त कठिन शोथको भी पकाकर फोड देता है ॥ १९ ॥–

सर्पनिर्मोकयोगः।

कटुतैलान्वितैर्लेपात्सर्पनिर्मोकभस्मभिः ॥ २० ॥
चयः शाम्यति गण्डस्य प्रकोपः स्फुटति द्रुतम्।

सापकी केंचलकी भस्मको कडुए तेलके साथ मिलाकर लेप करनेसे शोथके सञ्चितदोष शान्त हो जाते हैं। तथा प्रकुपित दोष फूट जाते हैं ॥ २० ॥–

दारणप्रयोगाः ।

चिरबिल्वाग्निकौ दन्ती चित्रको हयमारकः ॥२१॥
कपोतकङ्कगृध्राणां पुरीषाणि च दारणम् ।
क्षारद्रव्याणि वा यानि क्षारो वा दारणः परः ॥२२॥
द्रव्याणां पिच्छिलानां तु त्वङ्मूलानि प्रपीडनम् ।
यवगोधूममाषाणां चूर्णानि च समासतः ॥२३॥

कञ्जा, चीतकी जड, दन्ती, अजमोद कनेर तथा कबूतर, कङ्क और गृध्रकी विष्ठा मिला गरम कर बान्धनेसे व्रण फूट जाता है, अथवा क्षारद्रव्य अथवा केवल क्षारके प्रयोगसे व्रण फूट जाता है। इसीप्रकार लाबेदार द्रव्योंके त्वचा और मूल तथा जव, गेहूँ और उडदके चूर्णोंका लेपन व्रणको फोड देता है ॥२१-२३॥

प्रक्षालनम् ।

ततः प्रक्षालनं क्वाथः पटोलीनिम्बपत्रजः ।
अविशुद्धे विशुद्धे च न्यग्रोधादित्वगुद्भवः ॥२४॥
पञ्चमूलद्वयं वाते न्यग्रोधादिश्च पैत्तिके ।
आरग्वधादिको योज्यः कफजे सर्वकर्मसु ॥२५॥

यदि व्रण शुद्ध न हुआ हो तो परवल व नीमकी पत्तियोंके क्वाथसे और यदि शुद्ध हो गया तो न्यग्रोधादि पञ्चवल्कलके क्वाथसे धोना चाहिये तथा वातमें दशमूल पित्तमें न्यग्रोधादि और कफ आरग्वधादि गणका क्वाथ सब कामोंके लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥२४॥२५॥

तिलादिलेपः ।

तिलकल्कः सलवणो द्वे हरिद्रे त्रिवृद्घृतम् ।
मधुकं निम्बपत्राणि लेपः स्याद्व्रणशोधनः ॥२६॥

तिलका कल्क, नमक, हल्दी, दारुहल्दी, निसोथ, घी, मौरेठी तथा नीमकी पत्तीको पीसकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है ॥२६॥

व्रणशोधनलेपः ।

निम्बपत्रं तिलादन्ती त्रिवृत्सैन्धवमाक्षिकम् ।
दुष्टव्रणप्रशमनो लेपः शोधनकेशरी ॥२७॥
एकं वा शारिवामूलं सर्वव्रणविशोधनम् ।
पटोलं तिलयष्ट्याह्वत्रिवृद्दन्तीनिशाह्वयम् ॥२८॥
निम्बपत्राणि चालेपः सपटुर्व्रणशोधनः ।

नीमकी पत्ती, तिल, दन्ती, निसोथ, सेधानमक, और शहदका लेप दुष्ट व्रणको शान्त करता तथा शोधनमें श्रेष्ठ है। अथवा अकेले सारिवाकी जड समस्त व्रणोंको शुद्ध करती है। ऐसे ही परवलकी पत्ती, तिल, मौरेठी, निसोथ, दन्ती, हल्दी, और नीमकी पत्तीको पीस नमक मिलाकर लेप करनेसे व्रण शुद्ध होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥-

शोधनरोपणयोगाः ।

त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधादिर्बला कुशाः ॥ २९ ॥
निम्बकोलकपत्राणि कषायः शोधने हितः ।
अपेतपूतिमांसानां मांसस्थानामरोहताम् ॥ ३० ॥
कल्कः संरोपणः कार्यस्तिलानां मधुकान्वितः ।
निम्बपत्रमधुभ्यां तु युक्तः संशोधनः स्मृतः ॥ ३१ ॥
पूर्वाभ्यां सर्पिषा वापि युक्तश्चाप्युपरोहणः ।
निम्बपत्रतिलैः कल्को मधुना क्षतशोधनः ।
रोपणः सर्पिषा युक्तो यवकल्केऽप्ययं विधिः ॥ ३२ ॥
निम्बपत्रघृतक्षौद्रदार्वीमधुकसंयुता ।
वर्तिस्तिलानां कल्को वा शोधयेद्रोपयेद्व्रणम् ॥ ३३ ॥

त्रिफला, कत्था, दारुहल्दी, न्यग्रोधादि, गणकी औषधियां खरेटी तथा कुश, नीम व बेरीकी पत्तीका क्वाथ व्रणको शोधन करता है इससे मांसस्थ, दुर्गन्धितमांसयुक्त न भरनेवाले व्रण शुद्ध होते हैं । इसी प्रकार तिलका कल्क मौरेठीके चूर्णके साथ घावको भरता है तथा नीमकी पत्ती व शहद उसीमें मिला देनेसे शोधन करता है। अथवा पूर्वकी औषधियां तिल व मुलेठी घी मिलाकर लगानेसे घाव भरता है, इसी प्रकार नीमकी पत्ती और तिलका कल्क शहदके साथ घावको शुद्ध करता तथा घीके साथ घावको भरता है तथा यवकल्कमें भी यही विधि है। इसी प्रकार नीमकी पत्ती, घी, शहद, दारुहल्दी और मौरेठीकी बत्ती अथवा तिलका कल्क घावको शुद्ध कर भरता है ॥ २९-३३ ॥

रोपणयोगाः ।

सप्तदलदुग्धकल्कः शमयति दुष्टव्रणं प्रलेपेन ।
मधुयुक्ता शरपुङ्खा सर्वव्रणरोपणी कथिता ॥ ३४ ॥
मानुषशिरःकपालं तदस्थि वा लेपयेत मूत्रेण ।
रोपणमिदं क्षतानां योगशतैरप्यसाध्यानाम् ॥ ३५ ॥

सप्तच्छदके दूधका लेप व्रणको शान्त करता है इसी प्रकार शहदके साथ शरपुखा समस्त घावोंको भरती है। मनुष्यके शिरका खपडा अथवा दूसरी हड्डी गोमूत्रके साथ पीसकर लेप करनेसे अनेक योगोंसे असाध्य घाव शान्त हो जाते हैं ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

सूक्ष्मास्यव्रणचिकित्सा ।

व्रणान्विशोधयेद्वर्त्या सूक्ष्मास्यान्मर्मसन्धिगान् ।
अभयात्रिवृतादन्तीलाङ्गलीमधुसैन्धवैः ॥ ३६ ॥

सुपवीपत्रपत्तूरकर्णमोटकुठेरका ।
पृथगेते प्रलेपेन गम्भीरव्रणरोपणाः ॥ ३७ ॥
पञ्चवल्कलचूर्णैर्वा शुक्तिचूर्णसमन्वितैः ।
धातकीचूर्णलोध्रैर्वा तथा रोहन्ति ते व्रणाः ॥ ३८ ॥

गम्भ मुखवाले मर्म और सन्धिगत व्रणोंके भीतर बत्ती रखकर उन्हें शुद्ध करना चाहिये । तथा बटी हरेका छिल्का, निसोथ, दन्ती, करियारी, शहद, सेंधानमक, कालाजीराके पत्र, लाल चन्दन, बबई और मरुवा इनमेंसे किसी एकके लेप करनेसे गम्भीर व्रण शुद्ध होते हैं । अथवा शुक्तिचूर्णके साथ पञ्चवल्कल चूर्णसे अथवा धायके चूर्ण व लोधसे वे घाव भर जाते हैं ॥ ३६-३८ ॥

दाहादिचिकित्सा ।

सदाहा वेदनावन्तो व्रणा ये मारुतोत्तराः ।
तेषां तिलानुमांश्चैव भृष्टान्पयसि निर्वृतान् ॥ ३९ ॥
तेनैव पयसा पिष्ट्वा दद्यादालेपनं भिषक् ।
वातादिभूतान्सास्रावान्धूपयेदुग्रवेदनान् ॥ ४० ॥

जो व्रण दाह और वेदनाके सहित तथा वातप्रधान हों उनमें तिल और अलसीको भून दूधमें पका उसी दूधके साथ पीसकर लेप करना चाहिये । तथा वातप्रधान स्राव युक्त उग्र वेदनवाले व्रणोंको धुपाना चाहिये ॥ ३९ ॥ ४० ॥

यवादिधूपः ।

यवाज्यभूर्जमदनश्रीवेष्टकसुराह्वयैः ।
श्रीवासगुग्गुल्वगुरुशालनिर्यासधूपिताः ॥ ४१ ॥
कठिनत्वं व्रणा यान्ति नश्यन्त्युग्राश्च वेदनाः ॥ ४२ ॥

यव, घी, भोजपत्र, मैनफल, गन्धाविरोजा, देवदारु, लोहवान, गुग्गुलु, अगर तथा रालकी धूप देनेसे व्रण कड़े हो जाते हैं और उग्र पीड़ा शान्त होती है ४१ । ४२

व्रणदाहघ्नो लेपः ।

तिलाः पयः सिता क्षौद्रं तैलं मधुकचन्दनम् ।
लेपनं शोथरुग्दाहरक्तं निर्वापयेद्व्रणात् ॥ ४३ ॥

तिल, दूध, मिश्री, शहद, तेल, मौरेठी, तथा चन्दनका लेप व्रणके शोथ, पीड़ा और दाह व लालिमाको शान्त करता है ॥ ४३ ॥

अग्निदग्धव्रणचिकित्सा ।

पित्तविद्रधिवीसर्पशमनं लेपनादिकम् ।
अग्निदग्धे व्रणे सम्यक्प्रयुञ्जीत चिकित्सकः ॥ ४४ ॥
महाराष्ट्रीजटालेपो दग्धपिष्टावचूर्णितम् ।
जीर्णगेहतृणाच्चूर्णं दग्धव्रणहितं मतम् ॥ ४५ ॥

अग्निदग्धज-व्रणमें पित्तज विद्रधि और विसर्प शान्त करनेवाले लेपादिका प्रयोग अच्छी तरहसे वैद्यको करना चाहिये । तथा जलपिप्पलीका लेप अथवा पुराने मकानोंके तृणको जला पीसकर लेप करना जले हुए व्रणोंके लिये हितकर है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

जीरकघृतम् ।

जीरककल्कं पश्चात्सिक्थकमर्जरससमिश्रितं हरति ।
घृतमभ्यङ्गात्पावकदग्धजदुःखं क्षणार्धेन ॥ ४६ ॥

जीराके कल्कसे सिद्ध घृतमें मोम व राल मिलाकर लगानेसे अग्निदग्धज दुःख क्षणभरमें शान्त हो जाता है ॥ ४६ ॥

विविधा योगाः ।

अन्तर्दग्धकुठेरको दहनजं लेपान्निहन्ति व्रण-
मश्वत्थस्य विशुष्कवल्कलकृतं चूर्णं तथा गुण्डनात् ।
अभ्यङ्गाद्विनिहन्ति तैलमचिरं गण्डूपदैः साधितं
पिष्ट्वा शाल्मलितूलकैर्जलगता लेपात्तथा वालुका ॥४७॥

अन्तर्दग्ध सफेद तुलसीका लेप करनेसे अग्निसे जले व्रण शान्त होते हैं तथा पीपलकी सूखी छालके चूर्णको उर्रानेसे भी शान्ति होती है । तथा केंचुवोंसे सिद्ध तैल अग्नि दग्धज समग्र पीड़ा शान्त करते हैं तथा सेमरकी रुईके साथ बालूको जलमें पीसकर लेप करनेसे शान्ति होती है ॥ ४७ ॥

सद्योव्रणचिकित्सा ।

सद्यः क्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ।
यष्टीमधुककल्केन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा ॥ ४८ ॥
बुद्ध्वागन्तुव्रणं वैद्यो घृतं क्षौद्रसमन्वितम् ।
शीतां क्रियां प्रयुञ्जीत पित्तरक्तोष्मनाशिनीम् ॥ ४९ ॥
कान्तकामकमेकं सुश्लक्ष्णं गव्यसर्पिषा पिष्टम् ।
शमयति लेपान्नियतं व्रणमागन्तूद्भवं न सन्देहः ॥५०॥
अपामार्गस्य संसिक्तं पत्रोत्थेन रसेन वा ।
सद्योव्रणेषु रक्तं तु प्रवृत्तं परितिष्ठति ॥ ५१ ॥
कर्पूरपूरितं बद्धं सघृतं सम्प्ररोहति ।
सद्यः शस्त्रक्षतं पुंसां व्यथापाकविवर्जितम् ॥ ५२ ॥
शरपुंखा काकजंघा प्रसूतमहिषीमलम् ।
लज्जावती च सद्यस्कव्रणघ्नं पृथगेव तु ॥ ५३ ॥
शुनो जिह्वाकृतश्चूर्णं सद्यः क्षतविरोहणम् ।
चक्रतैलं क्षते विद्धे रोपणं परमं मतम् ॥ ५४ ॥

शूलयुक्त व्रण (सद्योव्रण—तत्काल लगे घाव) में मौरेठीसे सिद्ध घीका कुछ गरम गरम सिञ्चन करना चाहिये । तथा वैद्य आगन्तुव्रण जानकर उसमें प्रथम घी व शहदको लगावे । फिर पित्तरक्त और गर्मी नष्ट करनेवाली शीतल चिकित्सा करे । एक नागरमोथाकी जड गायके घीके साथ पीसकर लेप करनेसे आगन्तुक व्रण निःसन्देह नष्ट होता है । तात्कालिक घावके बहते हुए रक्तको लटजीरेके पत्तोंके रससे सिञ्चन कर रोकना चाहिये । तथा घीके साथ कपूर भरकर बान्ध देनेसे घाव भर जाता है । पुरुषोंके सद्योव्रण जिनमें पीडा नहीं होती या जो पके नहीं हैं उनको शरपुंखा, काकजंघा, ब्याई भैंसीका गोबर तथा लज्जावती ये सब अलग अलग तत्काल शान्त करते हैं । कुत्तेकी जिह्वाका चूर्ण सद्यो-व्रणको भरता है । तथा चक्रतैल (ताजातैल क्षत तथा) विन्धेको भरनेवाला है ॥ ४८–५४ ॥

नष्टशल्यचिकित्सा ।

यवक्षारं भक्षयित्वा पिण्ड दद्याद्व्रणोपरि ।
शृगालकोलिमूलेन नष्टशल्यं विनि सरेत् ॥ ५५ ॥
लाङ्गलीमूललेपाद्वा गवाक्षीमूलतस्तथा ।

जवाखार खाकर घावके ऊपर छोटे बेरकी जडका कल्क रखना चाहिये । इससे नष्टशल्य निकल आता है। इसी प्रकार कलिहारीकी जडके लेप तथा इन्द्रायणकी जडके लेपसे भी नष्ट शल्य निकल आता है ॥ ५५ ॥–

विशेषचिकित्सा ।

क्षतोष्मणो निग्रहार्थं तत्काल विसृतस्य च ॥५६॥
कषायशीतमधुरा स्निग्धा लेपादयो हिता ।
आमाशयस्थे रुधिरे वमनं पथ्यमुच्यते ॥ ५७ ॥
पक्वाशयस्थे देय च विरेचनमसंशयम् ।
क्काथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राश्मभिदाकृत ॥ ५८ ॥
सहिङ्गुसैन्धव पीत कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् ।
यवकोलकुलत्थानां नि स्नेहेन रसेन च ॥ ५९ ॥
भुञ्जीतान्न यवागू वा पिबेत्सैन्धवसंयुताम् ।
अत्यर्थमस्र स्रवति प्रायशो यत्र विक्षते ॥ ६० ॥
ततो रक्तक्षयाद्वायौ कुपितेऽतिरुजाकरे ।
स्नेहपानं परिषेक स्नेहलेपोपनाहनम् ॥ ६१ ॥
स्नेहबस्तिं च कुर्वीत वातघ्नौषधसाधिताम् ।
इति साप्ताहिक प्रोक्त सद्योव्रणहितो विधि ॥६२॥
सप्ताहात्परत कुर्याच्छारीरव्रणवत्क्रियाम् ।

तत्काल लगे हुए घावकी गर्मी शान्त करनेके लिये तथा रक्तको रोकनेके लिये कषैले, ठण्ढे, मधुर, तथा चिकने लेपादिक हितकर हैं । आमाशयमें यदि रक्त भर गया हो तो वमन कराना चाहिये । तथा पक्वाशयमें भरे रक्तको निकालनेके लिये विरेचन देना चाहिये । बांसकी छाल, एरण्ड, गोखुरू व पाषाणभेदका क्काथ हींग व सेंधानमक मिलाकर पीनेसे कोष्ठमें भरा हुआ रक्त बह जाता है । तथा यव, बेर व कुलथीके स्नेहरहित रससे भोजन करे अथवा इन्हींकी यवागू सेंधानमक मिलाकर पीवे । तथा अधिक रक्त बह जाने-पर वायु कुपित होकर जिस व्रणमें पीडा अधिक करे उसमें स्नेहपान, स्नेहसिञ्चन तथा स्निग्ध पदार्थोंका लेप व उपनाहन करना चाहिये तथा वातनाशक औषधियोंसे सिद्ध क्काथ करके स्नेहबस्तिका प्रयोग करना चाहिये । यह सात दिनतक सद्योव्रणमें करने योग्य चिकित्सा बतायी है । सप्ताहके अनन्तर शारीरव्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५६–६२ ॥–

व्रणक्रिमिचिकित्सा ।

करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥ ६३ ॥
कलायविदलीपत्रं कोषाम्रास्थि च पूरणात् ।
सुरसादिरसै सेको लेपनं स्वरसेन वा ॥ ६४ ॥
निम्बसम्पाकजात्यर्कसप्तपर्णाश्वमारका ।
क्रिमिघ्ना मूत्रसयुक्ता. सेकालेपनधावनै ॥ ६५ ॥
प्रच्छाद्य मांसपेश्या वा क्रिमीनपहरेद्व्रणात् ।
लशुनेनाथवा दद्याल्लेपन क्रिमिनाशनम् ॥ ६६ ॥

कञ्जा, नीम और सम्भालूके पत्तोंका रस घावके कीडोंको मारता है । इसी प्रकार मटरकी पत्ती तथा छोटे आमकी गुठलीका लेप अथवा तुलसी आदिके रसका सेक अथवा लेप क्रिमियोंको नष्ट करता है । इसी प्रकार नीमकी छाल, अमलतास, चमेली, आक, सात-वन तथा कनैरको पीस गोमूत्रमें मिलाकर सिञ्चन, लेप तथा प्रक्षालन करनेसे क्रिमि नष्ट हो जाते हैं । अथवा घावके ऊपर मांसका टुकडा रखना चाहिये उसमें जब क्रिमि चिपट जायँ तब उसे घावके ऊपरसे हटा देना चाहिये । अथवा लहसुनका लेप करना चाहिये । इससे क्रिमि नष्ट हो जाते हैं ॥ ६३–६६ ॥

त्रिफलागुग्गुलुवटक: ।

ये क्लेदपाकस्रुतिगन्धवन्तो
व्रणा महान्त सरुज सशोथा ।
प्रयान्ति ते गुग्गुलुमिश्रितेन
पीतेन शान्तिं त्रिफलारसेन ॥ ६७ ॥

जो व्रण सडे, पके, स्राव गन्ध, पीडा तथा शोथयुक्त होते हैं वे गुग्गुलु मिलाकर त्रिफलारसको पीनेसे शान्त हो जाते हैं ॥ ६७ ॥

त्रिफलागुग्गुलुवटकः ।

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृत. ।
निर्यन्त्रणो विबन्धघ्नो व्रणशोधनरोपण ॥ ६८ ॥
अमृतागुग्गुल शस्तो हित तैल च वज्रकम् ।

त्रिफला चूर्णके साथ गुग्गुलुकी बनायी हुई गोलियोंका सेवन करनेमे कोई पथ्यका यन्त्रण नहीं है । इससे विबन्ध नष्ट होता, घाव शुद्ध होकर भरता है । तथा इसमें अमृतागुग्गुलु व वज्रक तैल हितकर है॥ ६८ ॥–

विडंगादिगुग्गुलुः ।

विडङ्गत्रिफलाव्योपचूर्ण गुग्गुलुना समम् ॥ ६९ ॥
सर्पिपा वटकीकृत्य खादेद्वा हितभोजन. ।
दुष्टव्रणापचीमेहकुष्ठनाडीव्रणापह ॥ ७० ॥

वायविडग, त्रिफला, तथा त्रिकटुका चूर्ण समान भाग गुग्गुलुके साथ घी मिला गोली बनाकर पथ्य भोजनके साथ खाते रहनेसे दुष्टव्रण, अपची, प्रमेह, कुष्ठ और नाडीव्रण नष्ट होते हैं ॥ ६९ ॥ ७० ॥

अमृतागुग्गुलुः ।

अमृतापटोलमूलत्रिफलात्रिकटुक्रिमिघ्नानाम् ।
समभागाना चूर्णं सर्वसमो गुग्गुलोर्भाग ॥ ७१ ॥
प्रतिवासरमेकैका गुडिकां खादेदुदक्षणप्रमाणाम् ।
जेतुं व्रणान्वातरक्तगुल्मोदरश्वयथुपाण्डुरोगादीन् ॥७२॥

गुर्च, परवलकी जड, त्रिफला, त्रिकटु, तथा वायविडग प्रत्येक समान भाग चूर्णकर सबके समान गुग्गुलु मिला प्रतिदिन १ तो० की मात्राका सेवन करनेसे व्रण, वातरक्त, गुल्म, उदर, सूजन तथा पाडु आदि रोग नष्ट होते है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

जात्याद्यं घृतम् ।

जातीनिम्बपटोलपत्रकटुकादार्वीनिशाशारिवा-
मञ्जिष्ठाभयतुत्थसिक्थमधुकैर्नक्ताह्वबीजै समैः ।
सर्पि सिद्धमनेन सूक्ष्मवदनामर्माश्रिता स्राविणो
गम्भीरा सरुजो व्रणा सगतिका.शुष्यन्ति रोहन्तिच७३॥

चमेली अथवा जावित्री नीम तथा परवलकी पत्ती, कुटकी, दारुहल्दी, हल्दी, शारिवा, मञ्जीठ, खश,तूतिया, मोम, मौरेठी, कञ्जाके बीज प्रत्येक समान भागका कल्क मिलाकर सिद्ध किया गया घृत सूक्ष्ममुखवाले,मर्मस्थानके, बहते हुए, गहरे, पीडायुक्त नासूर सूख जाते तथा भर जाते हैं ॥ ७३ ॥

गौराद्यं घृतं तैलं च ।

गौरा हरिद्रा मञ्जिष्ठा मांसी मधुकमेव च ।
प्रपौण्डरीक ह्रीवेर भद्रमुस्तं सचन्दनम् ॥ ७४ ॥
जातीनिम्बपटोलं च करञ्ज कटुरोहिणी ।
मधूच्छिष्ट समधुकं महामेदा तथैव च ॥ ७५ ॥
पञ्चवल्कलतोयेन घृतप्रस्थ विपाचयेत् ।
एप गौरो महावीर्यं सर्वव्रणविशोधन ॥ ७६ ॥
आगन्तु सहजश्चैव सुचिरोत्थाश्च ये व्रणा ।
विपमामपि नाडीं च शोधयेच्छीघ्रमेव च ॥ ७७ ॥
गौराद्य जातिकाद्यं च तैलमेव प्रसाध्यते ।
तैल सूक्ष्मानने दुष्टे व्रणे गम्भीर एव च ॥ ७८ ॥

गोरोचन, हल्दी, मञ्जीठ, जटामासी, मौरेठी, पुण्डरिया, सुगन्धवाला, नागरमोथा, चन्दन, चमेली अथवा जावित्री, नीमकी पत्ती,परवलकी पत्ती,कञ्जा,कुटकी, मोम, मौरेठी तथा महामेदाका कल्क व पञ्चवल्कलका क्वाथ मिलाकर १ प्रस्थ घृत पकाना चाहिये । यह गौरादि घृत महाशक्तिशाली, समस्त व्रणोंको शुद्ध करनेवाला, आगन्तुक, सहज (जन्मसे ही होनेवाले) पुराने घावोंको तथा नासूरको भी शुद्ध करता है । इसी प्रकार गौरादि और जात्यादि तैल भी सिद्ध किया जाता है । तैल सूक्ष्म मुखवाले, दुष्ट और गम्भीर व्रणको शान्त करता है ॥ ७४–७८ ॥

करंजाद्यं घृतम् ।

नक्तमालस्य पत्राणि तरुणानि फलानि च ।
सुमनायाश्च पत्राणि पटोलारिष्टयोस्तथा ॥ ७९ ॥
द्वे हरिद्रे मधूच्छिष्ट मधुक तिक्तरोहिणी ।
मञ्जिष्ठाचन्दनोशीरमुत्पल शारिवे त्रिवृत् ।
एतेपा कार्पिकैर्भागैर्घृतप्रस्थ विपाचयेत् ॥ ८० ॥
दुष्टव्रणप्रशमन तथा नाडीविशोधनम् ।
सद्यश्छिन्नव्रणाना च करञ्जाद्यमिहेष्यते ॥ ८१ ॥

कञ्जाके पत्ते, तथा कच्चे फल, चमेलीके पत्ते, परवल और नीमकी पत्ती, हल्दी, दारुहल्दी, मोम, मौरेठी, कुटकी, मञ्जीठ, चन्दन, खश,नीलोफर,सारिवा, काली सारिवा तथा निसोथ, प्रत्येकका एक एक तोला कल्क छोड १ प्रस्थ घृत पकाना चाहिये । यह घृत दुष्ट व्रणोंको शान्त करता तथा नाडीव्रणको शुद्ध करता और सद्योव्रणोंको हितकर है ॥ ७९–८१ ॥

प्रपौण्डरीकाद्यं घृतम् ।

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।
सहरिद्रैः शृतं सर्पिः सक्षीरं व्रणरोपणम् ॥८२॥

पुण्डरिया, मञ्जीठ, मौरेठी, खश, पद्माख तथा हल्दी-के कल्क और दूधके साथ सिद्ध घृत घावको भरता है ॥ ८२ ॥

तिक्ताद्यं घृतम् ।

तिक्तासिक्थनिशायष्टीनक्ताह्वफलपल्लवैः ।
पटोलमालतीनिम्बपत्रैर्व्रण्यं घृतं पचेत् ॥८३॥

कुटकी, मोम, हल्दी, मौरेठी, कञ्जाके फल और पत्ती तथा परवल, चमेली और नीमकी पत्तीसे सिद्ध घृत घावके लिये हितकर है ॥८३॥

विपरीतमल्लतैलम् ।

सिन्दूरकुष्ठविषहिंगुरसोनचित्र-
बाणाङ्घ्रिलांगलिककल्कविपक्वतैलम् ।
प्रास्मादमन्त्रयुतफूत्कृततुत्रफेनो
दुष्टव्रणप्रशमनो विपरीतमल्लः ॥८४॥
खड्गाभिघातगुरुगण्डमहोपदंश-
नाडीव्रणव्रणविचर्चिककुष्ठपामाः ।
एतान्निहन्ति विपरीतकमल्लनाम
तैलं यथेष्टशयनासनभोजनस्य ॥ ८५ ॥

सिंदूर, कूठ, सींगिया, हींग, लहसुन, चीतकी जड, मूञ्जकी जड तथा कलिहारीके कल्कसे सिद्ध तैल, जिसका फेन प्रसन्नताकारक मन्त्रोंसे फूंक डालकर शान्त किया गया है दुष्ट व्रणोंको शान्त करनेवाला विपरीतमल्लनामक है । यह तलवारके घाव, बडे गलगण्ड, उपदंश, नाडीव्रण, व्रण, विचर्चिका, कुष्ठ तथा पामाको शान्त करता है । इसमें इच्छानुसार सोना, बैठना और भोजन करना चाहिये (इसमें तैल कडुआ ही लेना चाहिये) ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

अङ्गारकं तैलम् ।

कुठारकात्पलशतं साधयेन्नल्वणेऽम्भसि ।
तेन पादावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ८६ ॥
कल्कैः कुठारापामार्गप्रोष्ठिकामाक्षिकायुतैः ।
एतदंगारकं नाम व्रणशोधनरोपणम् ।
नाडीषु परमाभ्यंगो निजास्वागन्तुकीषु च ॥ ८७ ॥

कुठारक (बबई) ५ सेर, जल २५ सेर ९॥ छ० मिलाकर पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर तैल १ प्रस्थ (१२८ तो०) तथा बबई, लटजीरा, प्रोष्ठिका मछली भेद, तथा मक्षिकाका कल्क मिलाकर पकाना चाहिये । इसे अङ्गारक तैल कहते हैं । यह शारीर तथा आगन्तुक व्रण या नाडीव्रणके लिये परमोत्तम है ॥ ८६ ॥ ८७ ॥

प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ।

प्रपौण्डरीकं मधुकं काकोल्यौ द्वे सचन्दने ।
सिद्धमेभिः समं तैलं तत्परं व्रणरोपणम् ॥ ८८ ॥

पुण्डरिया, मौरेठी, काकोली, क्षीरकाकोली तथा चन्दनके कल्कसे सिद्ध तैल घावका रोपण करता है ॥८८॥

दूर्वाद्यं तैलं घृतं च ।

दूर्वास्वरससिद्धं वा तैलं कम्पिल्लकेन च ।
दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं रोपणं व्रणे ॥ ८९ ॥
येनैव विधिना तैलं घृतं तेनैव साधयेत् ।
रक्तपित्तोत्तरं ज्ञात्वा सर्पिरेवावचारयेत् ॥ ९० ॥

दूर्वाके स्वरस तथा कबीला और दारुहल्दीकी छालके कल्कसे सिद्ध तैल घावको भरता है । जिस विधिसे तैल लिखा है उसी विधिसे घृत भी पकाना चाहिये और रक्तपित्त प्रधान समझकर घीका ही प्रयोग करना चाहिये ॥ ८९ ॥ ९० ॥

माञ्जिष्ठाद्यं घृतम् ।

माञ्जिष्ठं चन्दनं मूर्वां पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
सर्वेषामग्निदग्धानामेतद्रोपणमिष्यते ॥ ९१ ॥

मञ्जीठ, चन्दन, तथा मूर्वाके कल्कसे सिद्ध घृत समस्त अग्निसे जले हुए घावोंके लिये लाभदायक होता है ॥ ९१ ॥

पाटलीतैलम् ।

सिद्धं कषायकल्काभ्यां पाटल्या कटुतैलकम् ।
दग्धव्रणरुजास्रावदाहविस्फोटनाशनम् ॥ ९२ ॥

पाढलके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध कडुआ तैल जले व्रणोंकी पीडा, स्राव, जलन व फफोलोंको नष्ट करता है ॥ ९२ ॥

चन्दनाद्यं यमकम् ।

चन्दनं वटशुङ्गं च माञ्जिष्ठा मधुकं तथा ।
प्रपौण्डरीकं मूर्वा च पतङ्गं धातकी तथा ॥ ९३ ॥
एभिस्तैलं विपक्तव्यं सर्पिः क्षीरसमन्वितम् ।
अग्निदग्धव्रणेष्विष्टं म्रक्षणाद्रोपणं परम् ॥ ९४ ॥

चन्दन, वरगदके कोमल अकुर, मञ्जीठ, मौरेठी, पुण्ड-रिया, मूर्वा, लाल चन्दन तथा धायके फूल इनका कल्क

छोडकर तैल, घी और दूध मिलाकर पकाना चाहिये । यह तैल लगानेसे अग्निदग्धव्रण शीघ्र भर जाते हैं ॥ ९३ ॥ ९४ ॥

मनःशिलादिलेपः ।

मनःशिलाले मञ्जिष्ठा सलाक्षारजनीद्वयम् ।
प्रलेपः सघृतक्षौद्रस्त्वग्विशुद्धिकरः परः ॥ ९५ ॥

मनशिल, हरताल, मजीठ, लाख, हल्दी व दारुहल्दी, इनका घी व शहदके साथ लेप त्वचाको शुद्ध करता है ॥ ९५ ॥

अयोरजसादिलेपः ।

अयोरजः सकासीसं त्रिफलाकुसुमानि च ।
प्रलेपः कुरुते काष्र्ण्यं सद्य एव नवत्वचि ॥ ९६ ॥

लौहचूर्ण, कासीस तथा त्रिफलाके फूलोंका लेप नवीन त्वचाको काला करता है ॥ ९६ ॥

सवर्णकरणो लेपः ।

कालीयकलताम्रास्थिहेमकालारसोत्तमैः ।
लेपः सगोमयरसः सवर्णकरणः परः ॥ ९७ ॥

दारुहल्दी, दूब, आमकी गुठली, नागकेशर, काला निसोथ तथा रसौतका गोबरके रसके साथ लेप करनेसे त्वचा समानवर्णवाली होती है ॥ ९७ ॥

रोमसञ्जननो लेपः ।

चतुष्पदां हि त्वग्रोमखुरश्रृङ्गास्थिभस्मना ।
तैलाक्ता चूर्णिता भूमिर्भवेद्रोमवती पुनः ॥ ९८ ॥

चौपायोंकी खाल, रोम, खुर, शृंग और हड्डियोंकी भस्मको तैलमें मिलाकर लगानेसे व्रणवाले स्थानपर रोम जम जाते हैं ॥ ९८ ॥

व्रणग्रन्थिचिकित्सा ।

व्रणग्रन्थिं ग्रन्थिवच्च जयेत्क्षारेण वा भिषक् ॥९९॥

घावकी गाठकी चिकित्सामें अथवा प्रयोगमें शान्त करना चाहिये ॥ ९९ ॥

इति व्रणशोथाधिकारः समाप्तः ।

अथ नाडीव्रणाधिकारः ।

नाडीव्रणचिकित्साक्रमः ।

नाडीनां गतिमन्विष्य शस्त्रेणापाट्य कर्मवित् ।
सर्वव्रणक्रमं कुर्याच्छोधनं रोपणादिकम् ॥ १ ॥

नाडी (नासूर) की गतिका पता लगा शस्त्रसे चीरकर शोधन तथा रोपणादि समस्त व्रणचिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

वातजचिकित्सा ।

नाडीं वातकृतां साधु पाटितां लेपयेद्भिषक् ।
प्रत्यक्पुष्पीफलयुतैस्तिलैः पिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ २ ॥

वातज-नाडीको ठीक चीरकर लटजीराके फल और तिलको पीसकर लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

पित्तकफशल्यजचिकित्सा ।

पैत्तिकीं तिलमञ्जिष्ठानागदन्तीनिशायुगैः ।
श्लैष्मिकीं तिलयष्ट्याह्वनिकुम्भारिष्टसैन्धवैः ।
शल्यजां तिलमध्वाज्यैर्लेपयेच्छिन्नशोधिताम् ॥ ३ ॥

पित्तज-नासूरमें तिल, मजीठ, नागदमन, हल्दी तथा दारुहल्दीको पीसकर तथा कफजमें तिल, मौरेठी, दती, नीम तथा सेंधानमकको पीसकर लेप करे तथा शल्यजन्यको भी पूर्ववत् चीरकर तथा शोधन कर तिल, मधु और घृतसे लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥

सूत्रवर्तिः ।

आरग्वधनिशाकालाचूर्णाज्यक्षौद्रसंयुता ।
सूत्रवर्तिर्व्रणे योज्या शोधनी गतिनाशिनी ॥ ४ ॥

अमलतास, हल्दी तथा निसोथके चूर्णको घी और शहदमें मिला लपेटकर बनायी गयी सूत्रवर्ती (व्रणके अन्दर भरनेसे) व्रणको शुद्धकर नासूरको नष्ट करती है ॥ ४ ॥

वर्तयः ।

घोण्टाफलत्वङ्मदनात्फलानि
पूगस्य च त्वक् लवणं च मुख्यम् ।
स्नुह्यर्कदुग्धेन सहैष कल्को
वर्तीकृतो हन्त्यचिरेण नाडीम् ॥ ५ ॥
वर्तीकृतं माक्षिकसंप्रयुक्तं
नाडीघ्नमुक्तं लवणोत्तमं वा ।
दुष्टव्रणे यद्विहितं च तैलं
तत्सेव्यमानं गतिमाशु हन्ति ॥ ६ ॥
जात्यर्कसम्पाककरञ्जदन्ती-
सिन्धूत्थसौवर्चलयावशूकैः ।
वर्तिं कृता हन्त्यचिरेण नाडीं
स्नुक्क्षीरपिष्टा सह माक्षिकेण ॥ ७ ॥

बेरके फल और छाल, मैनफल, सुपारीका छाल तथा सेंधानमकके कल्कमें सेहुण्ड और आकका दुग्ध मिलाकर बनायी गयी वत्ती शीघ्र ही नासूरको नष्ट करती है। तथा केवल सेंधानमककी वत्ती बना शहद मिलाकर रखनेसे नासूर ठीक होता है, इसी प्रकार दुष्ट व्रणके लिये जो तैल कहे हैं वे भी नासूरको शुद्ध करते हैं।

तथा चमेली, आक, कञ्जा, अमलतास, दन्ती, सेधानमक, कालानमक, और जवाखारको पीस सेहुण्डदुग्ध और शहद मिलाकर लगानेसे नासूर नष्ट होता है ५-७॥

कंगुनिकामूलचूर्णम् ।

माहिषदधिकोद्रवान्नमिश्रं हरति चिरविरूढा च ।
भुक्तं कंगुनिकामूलचूर्णमतिदारुणां नाडीम् ॥ ८ ॥

भैंसीका दही और कोद्रवके भातके साथ काकुनकी जडके चूर्णको खानेसे नासूर शीघ्र ही शान्त होता है॥८॥

क्षारप्रयोगः ।

कृशदुर्बलभीरूणां गतिर्मर्माश्रिता च या ।
क्षारसूत्रेण तां छिन्द्यान्न शस्त्रेण कदाचन ॥ ९ ॥
एषण्या गतिमन्विष्य क्षारसूत्रानुसारिणीम् ।
सूचीं विदध्याद्गत्यन्तश्चोन्नाम्याशु च निर्हरेत् ॥ १० ॥
सूत्रस्यान्तं समानीय गाढं बन्धं समाचरेत् ।
ततः क्षीणबलं वीक्ष्य सूत्रमन्यत्प्रवेशयेत् ॥ ११ ॥
क्षाराक्तं मतिमान्वैद्यो यावन्न छिद्यते गतिः ।
भगन्दरेऽप्येष विधिः कार्यो वैद्येन जानता ॥ १२ ॥
अर्बुदादिषु चोत्क्षिप्य मूले सूत्रं निधापयेत् ।
सूचीभिर्यववक्त्राभिराचितं चासमन्ततः ॥ १३ ॥
मूले सूत्रेण बध्नीयाच्छिन्ने चोपचरेद्व्रणम् ।

पतले, कमजोर, डरपोक पुरुषोंकी नाडी तथा जो मर्मस्थानमें हुई है उसे शस्त्रसे कभी न काटना चाहिये। पता लगानेवाली सलाईसे कहांतक नाडीकी गति अर्थात् पूयकी उत्पत्ति हो गयी है इसका पता लगाकर उतना ही लम्बा क्षारसूत्र सूचीके द्वारा अन्दर रखना चाहिये और मुखसे कुछ ऊपर उठाकर निकाल लेना चाहिये तथा सूत्र निकल न जाय इसलिये ऊपरसे कसकर बांध देना चाहिये तथा जब सूत्रमें क्षारकी शक्तिकी शिथिलता प्रतीत होने लगे तब दूसरा क्षारसूत्र प्रविष्ट करना चाहिये, जबतक गति कट न जावे। भगन्दरमें भी यही चिकित्सा वैद्यको करनी चाहिये। अर्बुद आदिको ऊपर उठाकर चारों ओर यवके समान मुखवाली सुइयोंसे [illegible] क्षारसूत्रसे बान्धना चाहिये तथा कट जानेपर व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये ९-१३॥

सप्ताङ्गगुग्गुलुः ।

गुग्गुलुस्त्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितः ।
नाडीदुष्टव्रणशूलभगन्दरविनाशनः ॥ १४ ॥

गुग्गुलु, त्रिफला तथा त्रिकटुका समान भाग ले घी मिला सेवन करनेसे नाडी, दुष्टव्रण, शूल और भगन्दर नष्ट होते है ॥ १४ ॥

सर्जिकाद्यं तैलम् ।

सर्जिकासिन्धुदन्त्यग्निरूपिकानलनीलिका ।
खरमञ्जरिबीजेषु तैलं गोमूत्रपाचितम् ।
दुष्टव्रणप्रशमनं कफनाडीव्रणापहम् ॥ १५ ॥

सज्जीखार, सेधानमक, दन्ती, चीतकी जड, सफेद आक, नल, नील और अपामार्ग बीजके कल्क तथा गोमूत्रमें सिद्ध तैल दुष्टव्रण तथा कफज नाडीव्रणको शान्त करता है ॥ १५ ॥

कुम्भीकाद्यं तैलम् ।

कुम्भीखर्जूरकपित्थबिल्व-
वनस्पतीनां तु शलाटुवर्गे ।
कृत्वा कषायं विपचेत्तु तैल-
मवाप्य मुस्तं सरलं प्रियङ्गुम् ॥ १६ ॥
सौगन्धिकामोचरसाहिपुष्प-
लोध्राणि दत्त्वा खलु धातकीं च ।
एतेन शल्यप्रभवा हि नाडी
रोहेद्व्रणो वै सुखमाशु चैव ॥ १७ ॥

सुपारी, छुहारा, कैथा, बेल और अन्य वनस्पतियोंके कच्चे फलोंके क्वाथमें तैल पकाना चाहिये तथा नागरमोथा, धूपकाष्ठ, प्रियङ्गु, दालचीनी, तेजपात इलायची, मोचरस, नागकेशर लोध और धायके फूलका कल्क छोडना चाहिये । इससे शल्यजनाडी तथा व्रण भर जाता है ॥ १६ ॥ १७ ॥

भल्लातकाद्यं तैलम् ।

भल्लातकार्कमरिचैर्लवणोत्तमेन
सिद्धं विडङ्गरजनीद्वयचित्रकैश्च ।
स्यान्मार्कवस्य च रसेन निहन्ति तैलं
नाडीं कफानिलकृतामपचीं व्रणांश्च ॥ १८ ॥

भिलावा अकौडा, काली मिर्च, सेधानमक वायविडङ्ग, हल्दी, दारुहल्दी व चीतेकी जडके कल्क तथा भांगरेके रसमें सिद्ध तैल कफवातज नाडी तथा अपची और व्रणोंको नष्ट करता है ॥ १८ ॥

निर्गुण्डीतैलम् ।

समूलपत्रां निर्गुण्डीं पीडयित्वा रसेन तु ।
तेन सिद्धं समं तैलं नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ १९ ॥

हितं पामापचीनां तु पानाभ्यञ्जननावने ।
विविधेषु च स्फोटेषु तथा सर्वव्रणेषु च ॥ २० ॥

सम्भालूके पञ्चांगके स्वरसमें समान भाग तैल सिद्ध किया गया नाडीव्रण, दुष्टव्रण, पामा, अपची, फफोले तथा समस्त व्रणोंको पान, मालिश तथा नस्यसे नष्ट करता है ॥ १९ ॥ २० ॥

हंसपादादितैलम् ।

हंसपाद्यरिष्टपत्रं जातीपत्रं ततो रसे ।
तत्कल्कैर्विपचेत्तैलं नाडीव्रणविरोहणम् ॥ २१ ॥

लाल लज्जावन्तीकी पत्ती, नीमकी पत्ती तथा चमेलीकी पत्ती इनके कल्क तथा स्वरससे सिद्ध तैल नाडीव्रणको भरता है ॥ २१ ॥

इति नाडीव्रणाधिकारः समाप्तः ।

अथ भगन्दराधिकारः ।

रक्तमोक्षणम् ।

गुदस्य श्वयथुं ज्ञात्वा विशोष्य शोधयेत्ततः ।
रक्तावसेचनं कार्यं यथा पाकं न गच्छति ॥ १ ॥

गुदामें सूजन जानकर लङ्घनादिकर्षण द्वारा सुखाकर वमन, विरेचनादिसे शोधन करना चाहिये तथा फस्त खुलाना चाहिये जिससे पके नहीं ॥ १ ॥

वटपत्रादिलेपः ।

वटपत्रेष्टकाशुण्ठीगुडूच्यः सपुनर्नवाः ।
सुपिष्टाः पिडकारम्भे लेपः शस्तो भगन्दरे ॥ २ ॥

बरगदके कोमल पत्ते, ईंटका चूरा, सोंठ, गुर्च, तथा पुनर्नवाको महीन पीसकर भगन्दरकी उठती हुई पिडकामें लेप करना चाहिये ॥ २ ॥

पक्वापक्वपिडकाविशेषः ।

पिडकानामपक्वानामपतर्पणपूर्वकम् ।
कर्म कुर्याद्विरेकान्तं भिन्नानां वक्ष्यते क्रियाम् ॥ ३ ॥
एषणीपाटनं क्षारवह्निदाहादिकं क्रमम् ।
विधाय व्रणवत्कार्यं यथादोषं यथाक्रमम् ॥ ४ ॥

अपक्व पिडकाओंमें अपतर्पणपूर्वक विरेचनान्त चिकित्सा करनी चाहिये तथा फूट जानेपर नाडीका पता लगाकर चीरना तथा क्षार व अग्निसे दाह कर व्रणके समान यथादोष यथाक्रम चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३ ॥ ४ ॥

त्रिवृदाद्युत्सादनम् ।

त्रिवृत्तिलानागदन्तीमञ्जिष्ठा सह सर्पिषा ।
उत्सादनं भवेदेतत्सैन्धवक्षौद्रसंयुतम् ॥ ५ ॥

निसोथ, तिल, नागदमन तथा मञ्जीठको पीसकर, घी, शहद व सेधानमक मिलाकर अपक्व पिडकाओंमें उबटन लगाना चाहिये ॥ ५ ॥

रसाञ्जनादिकल्कः ।

रसाञ्जनं हरिद्रे द्वे मञ्जिष्ठानिम्बपल्लवाः ।
त्रिवृत्तेजोवतीदन्तीकल्को नाडीव्रणापहः ॥ ६ ॥

रसौत, हल्दी, दारुहल्दी, मञ्जीठ, नीमकी पत्ती, निसोथ, चव्य और दन्तीका कल्क नाडीव्रणको शान्त करता है ॥ ६ ॥

कुष्ठादिलेपः ।

कुष्ठं त्रिवृत्तिलादन्तीमागध्यः सैन्धवं मधु ।
रजनीत्रिफलातुत्थं हितं व्रणविशोधनम् ॥ ७ ॥

कूठ, निसोथ, तिल, दन्ती, छोटी पीपल, सेंधानमक, शहद, हल्दी, त्रिफला तथा तूतियाका लेप घावको शुद्ध करता है ॥ ७ ॥

स्नुहीदुग्धादिवर्तिः ।

स्नुह्यर्कदुग्धदार्वीभिर्वर्तिं कृत्वा विचक्षणः ।
भगन्दरगतिं ज्ञात्वा पूरयेत्तां प्रयत्नतः ॥ ८ ॥
एषा सर्वशरीरस्थां नाडीं हन्यान्न संशयः ॥ ९ ॥

सेहुण्डका दूध, आकका दूध और दारुहल्दीके चूर्णकी बत्ती बनाकर भगन्दरके नासूरमें रखना चाहिये । यह समस्त शरीरके नाडीव्रणको नष्ट करती है ॥ ८ ॥ ९ ॥

तिलादिलेपः ।

तिलाभयालोध्रमरिष्टपत्रं निशावचाकुष्ठमगारधूमः ।
भगन्दरे नाड्युपदंशयोश्च दुष्टव्रणे शोधनरोपणोऽयम् ॥ १० ॥

तिल, बड़ी हर्रे, लोध, नीमकी पत्ती तथा हल्दी, बच, कूठ, व गृहधूमका लेप भगन्दर, नाडीव्रण, उपदंश तथा दुष्टव्रणको क्रमशः शुद्ध करता और भरता है ॥ १० ॥

विविधा लेपाः ।

खरास्रपक्वभूरोहचूर्णलेपो भगन्दरम् ।
हन्ति दन्त्यग्न्यतिविषालेपस्तद्वच्छुनोऽस्थि वा ॥ ११ ॥
त्रिफलारससंयुक्तं विडालास्थिप्रलेपनम् ।
भगन्दरं निहन्त्याशु दुष्टव्रणहरं परम् ॥ १२ ॥

गधेके रक्तमें केंचुवाका चूर्ण पकाकर बनाया गया लेप तथा दन्ती, चीतकी जड़ व अतीसका लेप अथवा

कुत्तेकी हड्डीका लेप अथवा त्रिफलाके रसके साथ बिलारीकी हड्डीका लेप भगन्दर तथा दुष्ट व्रणको शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

नवांशको गुग्गुलुः ।

त्रिफलापुरकृष्णानां त्रिपञ्चैकांशयोजिता ।
गुडिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ १३ ॥

त्रिफला (मिलित) ३ भाग, गुग्गुलु ५ भाग, छोटी पीपल १ भागकी गोली भगन्दर, शोथ, गुल्म और अर्शवालोंको हितकर है ॥ १३ ॥

सप्तविंशतिको गुग्गुलुः ।

त्रिकटुत्रिफलामुस्तविडङ्गामृतचित्रकम् ।
शठयेलापिप्पलीमूलं हपुषा सुरदारु च ॥ १४ ॥
तुम्बुरु पुष्करं चव्यं विशाला रजनीद्वयम् ।
बिडं सौवर्चलं क्षारौ सैन्धवं गजपिप्पली ॥ १५ ॥
यावन्त्येतानि चूर्णानि तावद्द्विगुणगुग्गुलु ।
कोलप्रमाणां गुटिकां भक्षयेन्मधुना सह ॥ १६ ॥
कासश्वासं तथा शोथमर्शांसि सभगन्दरम् ।
हृच्छूलं पार्श्वशूलं च कुक्षिबस्तिगुदे रुजम् ॥ १७ ॥
अश्मरीं मूत्रकृच्छ्रं च अन्त्रवृद्धिं तथा क्रिमीन् ।
चिरज्वरोपसृष्टानां क्षयोपहतचेतसाम् ॥ १८ ॥
आनाहं च तथोन्मादं कुष्ठानि चोदराणि च ।
नाडीदुष्टव्रणान्सर्वान्प्रमेहं श्लीपदं तथा ।
सप्तविंशतिको ह्येष सर्वरोगनिषूदनः ॥ १९॥

पञ्चतिक्तं घृतं शस्तं पञ्चतिक्तश्च गुग्गुलुः ।
न्यग्रोधादिगणो यस्तु हितः शोधनरोपणः ॥ २१ ॥
तैलं घृतं वा तत्पक्वं भगन्दरविनाशनम् ।

जम्बूकका मांस व्यञ्जनादिमें खाना चाहिये । अजीर्णका त्याग करना चाहिये । इस प्रकार करनेसे १ मासमें भगन्दर नष्ट हो जाता है । पञ्चतिक्त घृत, पञ्चतिक्त गुग्गुलु तथा न्यग्रोधादिगणसे सिद्ध घृत अथवा तैल भगन्दरको नष्ट करता है ॥ २० ॥ २१ ॥–

विष्यन्दनतैलम् ।

चित्रकार्कौ त्रिवृत्पाठे मलपूहयमारकौ ॥ २२ ॥
सुधां वचां लाङ्गलिकीं हरितालं सुवर्चिकाम् ।
ज्योतिष्मतीं च संयोज्य तैलं धीरो विपाचयेत् ॥ २३ ॥
एतद्विष्यन्दनं नाम तैलं दद्याद्भगन्दरे ।
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ॥ २४ ॥

चीतकी जड, आक, निसोथ पाठा, कठूमर, कनेर, सेहुण्ड, वच, कलियारी, हरिताल, सर्जी तथा मालकांगुनीका कल्क छोडकर तैल पकाना चाहिये । यह विष्यन्दन तैल भगन्दरमें लगाना चाहिये । यह शोधन, रोपण तथा सवर्णकारक है ॥ २२–२४ ॥

करवीराद्यं तैलम् ।

करवीरनिशादन्तीलाङ्गलीलवणाग्निभिः ।
मातुलुङ्गार्कवत्साह्वैः पचेत्तैलं भगन्दरे ॥ २५ ॥

कनेर, हल्दी, दन्ती, कलिहारी, सेंधानमक, चीतकी जड, बिजौरा, आक तथा कुरैयाकी छालके कल्कसे सिद्ध तैल भगन्दरको नष्ट करता है ॥ २५ ॥

निशाद्यं तैलम् ।

निशार्कक्षीरसिन्ध्वग्निपुराश्वहनवत्सकैः ।
सिद्धमभ्यञ्जने तैलं भगन्दरविनाशनम् ॥ २६ ॥

हल्दी, आकका दूध, सेंधानमक, चीतकी जड, गुग्गुल, कनेर तथा कुटजके कल्कसे सिद्ध तैल अभ्यञ्जनद्वारा भगन्दरको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

वर्ज्यानि ।

व्यायामं मैथुनं युद्धं पृष्ठयानं गुरूणि च ।
संवत्सरं परिहरेदुपरूढव्रणो नरः ॥ २७ ॥

व्यायाम, मैथुन, युद्ध, घोडे आदिकी पीठकी सवारी तथा गुरुद्रव्यका घाव भर जानेके अनन्तर १ वर्षतक सेवन न करना चाहिये ॥ २७ ॥

इति भगन्दराधिकारः समाप्तः ।

अथोपदंशाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

स्निग्धस्विन्नशरीरस्य ध्वजमध्ये शिराव्यधः ।
जलौकःपातनं वा स्यादूर्ध्वाधःशोधनं तथा ॥ १ ॥
सद्यो निर्हृतदोषस्य रुक्शोथावुपशाम्यतः ।
पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ २ ॥

स्नेहन स्वेदन कर लिङ्गमें शिराव्यध करना चाहिये । अथवा जोंक लगाना चाहिये तथा वमन, विरेचन कराना चाहिये । प्रयत्नपूर्वक पकनेसे रोकना चाहिये । क्योंकि पकनेसे लिङ्गक्षय हो जाता है ॥ १ ॥ २ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलनिम्बत्रिफलागुडूची-
क्वाथं पिबेद्वा खदिरासनाभ्याम् ।
सगुग्गुलुं वा त्रिफलायुतं वा
सर्वोपदंशापहराः प्रयोगाः ॥ ३ ॥

परवलकी पत्ती, नीमकी छाल, त्रिफला तथा गुर्चके क्वाथ अथवा कत्था व विजैसारके क्वाथमें गुग्गुलु अथवा त्रिफलाचूर्ण डालकर सेवन करनेसे समस्त उपदंश नष्ट होते हैं ॥ ३ ॥

वातिके लेपसेकौ ।

प्रपौण्डरीकं मधुकं रास्ना कुष्ठं पुनर्नवा ।
सरलागुरुभद्राह्वैर्वातिके लेपसेचने ॥ ४ ॥

पुण्डरिया, मौरेठी, रासन, कूठ, पुनर्नवा, सरल, अगर व देवदारुसे वातजमें लेप तथा सेक करना चाहिये ॥ ४ ॥

पैत्तिके लेपः ।

गैरिकाञ्जनमञ्जिष्ठामधुकोशीरपद्मकैः ।
सचन्दनोत्पलैः स्निग्धैः पैत्तिकं सम्प्रलेपयेत् ॥ ५ ॥

गेरू, सुरमा, मञ्जीठ, मौरेठी, खश, पद्माख, चन्दन, तथा नीलोफरको पीस स्नेह मिलाकर लेप करना चाहिये ॥५॥

पित्तरक्तजे ।

निम्बार्जुनाश्वत्थकदम्बशालजम्बूवटोदुम्बरवेतसेषु ।
प्रक्षालनालेपघृतानि कुर्याच्चूर्णानि पित्तास्रभवोपदंशे ६

नीम, अर्जुन, पीपल, कदम्ब, शाल, जामुन, वरगद, गूलर, वेतस इनके चूर्णोंसे पित्तरक्तके उपदंशमें प्रक्षालन व लेप हितकर है तथा इन औषधियोंके क्वाथमें सिद्ध घृत सबमें हितकर है ॥ ६ ॥

प्रक्षालनम् ।

त्रिफलायाः कषायेण भृङ्गराजरसेन वा ।
व्रणप्रक्षालनं कुर्यादुपदंशप्रशान्तये ॥ ७ ॥

त्रिफलाके क्वाथ अथवा भांगरेके रसमें उपदंशव्रणको धोना चाहिये ॥ ७ ॥

त्रिफलामसीलेपः ।

दहेत्कटाहे त्रिफलां समांशां मधुसंयुताम् ।
उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयति व्रणम् ॥ ८ ॥

कड़ाहीमें त्रिफला जला समभाग शहद मिलाकर लेप करनेसे उपदंशका घाव शीघ्र ही भर जाता है ॥ ८ ॥

रसाञ्जनलेपः ।

रसाञ्जनं शिरीषेण पथ्यया वा समन्वितम् ।
सक्षौद्रं वा प्रलेपेन सर्वलिङ्गगदापहम् ॥९॥

रसौतको शिरीषकी छाल अथवा छोटी हर्रके चूर्ण अथवा शहद मिलाकर लेप करनेसे लिंगके समस्त रोग नष्ट होते हैं ॥९॥

बब्बूलदलादियोगाः ।

बब्बूलदलचूर्णेन दाडिमत्वग्भवेन वा ।
गुण्डनं नरास्थिचूर्णेन उपदंशहरं परम् ॥ १० ॥

बबूलकी पत्तीका चूर्ण अथवा अनारके छिल्केका चूर्ण अथवा मनुष्यकी हड्डीका चूर्ण उर्रानेसे उपदंश नष्ट होता है ॥ १० ॥

सामान्योपायाः ।

लेपः पूगफलेनाश्वमारमूलेन वा तथा ।
सेवेन्नित्यं यवान्नं च पानीयं कौपमेव च ॥११॥

सुपारीके फल अथवा कनेरकी जड़का लेप करना चाहिये तथा यवके पदार्थ और कुएँका जल पीना चाहिये ॥ ११ ॥

पाकप्रक्षालनक्वाथः ।

जयाजात्यश्वमारार्कसम्पाकानां दलैः पृथक् ।
कृतं प्रक्षालने क्वाथं मेढ्पाके प्रयोजयेत् ॥१२॥

अरणी, चमेली, कनेर, आक तथा अमलतासमेंसे किसी एकके पत्तोंका क्वाथ लिंगके पक जानेपर धोनेके लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १२ ॥

भूनिम्बाद्यं घृतम् ।

भूनिम्बनिम्बत्रिफलापटोलकरञ्जजातीखदिरासनानाम् ।
सतोयकल्कैर्घृतमाशुपक्वं सर्वोपदंशापहरं प्रदिष्टम् ॥१३॥

चिरायता, नीम, त्रिफला, परवलकी पत्ती, कञ्जा, चमेली, कत्था तथा विजैसारके क्वाथ और कल्कसे पकाया गया घृत समस्त उपदंशोंको नष्ट करता है ॥१३॥

करञ्जाद्यं घृतम् ।

करञ्जनिम्बार्जुनशालजम्बू-
वटादिभिः कल्ककषायसिद्धम् ।
सर्पिर्निहन्यादुपदंशदोषं
सदाहपाकं स्रुतिरागयुक्तम् ॥१४॥

कञ्जा, नीमकी पत्ती, अर्जुन, शाल, जामुन, तथा वटादिके कषाय और कल्कसे सिद्ध घृत दाह, पाक, स्राव और लालिमासहित उपदंशको नष्ट करता है ॥१४॥

अगारधूमाद्यं तैलम् ।

अगारधूमरजनीसुराकिट्टं च तैस्त्रिभिः ।
भागोत्तरैः पचेत्तैलं कण्डूशोथरुजापहम् ॥१५॥
शोधनं रोपणं चैव सवर्णकरणं तथा ।

गृहधूम १ भाग, हल्दी २ भाग, शराबका किट्ट ३ भाग इनका कल्क छोडकर पकाया गया तैल खुजली, सूजन, और पीडाको नष्ट करता, शोधन, रोपण तथा सवर्णताकारक है ॥ १५ ॥–

लिंगार्शश्चिकित्सा ।

अर्शसां छिन्नदग्धानां क्रिया कार्योपदंशवत् ॥ १६ ॥

अर्शको काट जलाकर उपदंशके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १६ ॥

इत्युपदंशाधिकारः समाप्तः ।

अथ शूकदोषाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

हितं च सर्पिषः पानं पथ्यं चापि विरेचनम् ।
हितः शोणितमोक्षश्च यच्चापि लघुभोजनम् ॥१॥

घृतपान विरेचन रक्तस्राव तथा लघुभोजन हितकर है ॥१॥

प्रतिभेदचिकित्सा ।

सर्षपीं लिखितां सूक्ष्मैः कषायैरवचूर्णयेत् ।
तैरेवाभ्यञ्जनं तैलं साधयेद्व्रणरोपणम् ॥ २ ॥
क्रियेयमधिमन्थेऽपि रक्तं स्राव्यं तथोभयोः ।
अष्ठीलाया हृते रक्ते श्लेष्मग्रन्थिवदाचरेत् ॥ ३ ॥
कुम्भिकायां हरेद्रक्तं पक्वायां शोधिते व्रणे ।
तिन्दुकत्रिफलालोध्रैर्लेपस्तैलं च रोपणम् ॥ ४ ॥
अलज्यां हृतरक्तायामयमेव क्रियाक्रमः ।
स्वेदयेद्ग्रथितं स्निग्धं नाडीस्वेदेन बुद्धिमान् ॥ ५ ॥
सुखोष्णैरुपनाहैश्च सस्निग्धैरुपनाहयेत् ।
उत्तमाख्यां तु पिटकां सञ्छिद्य बडिशोद्धृताम् ॥ ६ ॥
कल्कैश्चूर्णैः कषायाणां क्षौद्रयुक्तैरुपाचरेत् ।
क्रमः पित्तविसर्पोक्तः पुष्करीमूढयोर्हितः ॥ ७ ॥
त्वक्पाके स्पर्शहान्यां च सेचयेन्मृदितं पुनः ।
बलातैलेन कोष्णेन मधुरैश्चोपनाहयेत् ॥ ८ ॥
रसक्रिया विधातव्या लिखिते शतपोनके ।
पृथक्पर्ण्यादिसिद्धं च तैलं देयमनन्तरम् ॥ ९ ॥
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रिया शोणितजेऽर्बुदे ।
कषायकल्कसर्पींषि तैलं चूर्णं रसक्रियाम् ॥ १० ॥
शोधने रोपणे चैव वीक्ष्य वीक्ष्यावतारयेत् ।

सर्षपीको खुरचकर कषायद्रव्योंका चूर्ण उर्राना चाहिये तथा इन्हींसे घाव भरनेके लिये तैल सिद्धकर लगाना चाहिये । अविमन्थमें भी यही चिकित्सा करनी चाहिये तथा रक्त दोनोंमे निकालना चाहिये । अष्ठीलामें रक्त निकालकर कफजग्रन्थिके समान चिकित्सा करनी चाहिये। कुम्भिकामें भी रक्त निकालना चाहिये पर यदि पक गयी हो तो घावको शुद्धकर तेन्दू, त्रिफला और लोधका लेप करना चाहिये तथा रोपण तैलका प्रयोग करना चाहिये। अलजीका रक्त निकालकर यही चिकित्सा करनी चाहिये। ग्रथितको स्निग्ध कर नाडीस्वेदसे स्विन्न करना चाहिये। तथा स्नेहयुक्त गरम पुल्टिस बांधनी चाहिये । उत्तमा पिडकाको बडिशसे पकड काटकर कषायरसयुक्त द्रव्योंके कल्क और चूर्णमें शहद डालकर लगाना चाहिये। पुष्करी और मूढशूकमें पित्तविसर्पोक्त चिकित्सा करनी चाहिये । त्वक्पाक और स्पर्शज्ञान न होनेपर मर्दनकर कुछ गरम गरम बलातैलका सिञ्चन करना चाहिये । तथा मीठी चीजोंकी पुल्टिस बान्धनी चाहिये । शतपोनकको खुरचकर रसक्रिया (क्वाथको गाढा कर लगाने) का प्रयोग करना चाहिये । तदनन्तर पृथक्पर्ण्यादिसे सिद्ध तैल देना चाहिये । रक्तजार्बुदमें कषाय, कल्क, घृत, तैल, चूर्ण, रसक्रिया जहा जो आवश्यक हो शोधन रोपणादिके लिये विचारकर प्रयुक्त करना चाहिये२-१०–

प्रत्याख्येयाः ।

अर्बुद मासपाक च विद्राधिं तिलकालकम् ।
प्रत्याख्याय प्रकुर्वीत भिषक्तेषा प्रतिक्रियाम् ॥ ११ ॥

अर्बुद, मासपाक, विद्राधि और तिलकालकका प्रत्याख्यान कर चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ११ ॥

इति शूकदोषाधिकारः समाप्तः ।

अथ भग्नाधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना ।
पङ्केनालेपनं कार्यं बन्धनं च कुशान्वितम् ।
सुश्रुतोक्त च भग्नेषु वीक्ष्य बन्धादिमाचरेत् ॥ १ ॥

पहिले भग्न (टूटा हुआ) जानकर ठण्ढे जलका सिञ्चन करना चाहिये । फिर कीचड़का लेप तथा व्रण-बन्धक द्रव्योंमे बाधना चाहिये । बन्धादि सुश्रुतोक्त भग्नविधानके अनुसार करना चाहिये ॥ १ ॥

स्थानापन्नताकरणम् ।

अवनामितमुन्नह्येदुन्नत चावनामयेत् ।
आञ्छेदतिक्षिप्तमधोगत चोपरि वर्तयेत ॥ २ ॥

जो अस्थि नीचेको लच गयी हो उसे ऊपर उठा देना चाहिये । जो ऊपरको लौट गयी हो उसे नीचे लाना चाहिये अर्थात् जिसप्रकार अस्थि अपने स्थानपर ठीक बैठ जाय वैसा उपाय करे ॥ २ ॥

लेपः ।

आलेपनार्थं मञ्जिष्ठामधुक चाम्लपेषितम् ।
शतधौतघृतोन्मिश्र शालिपिष्टं च लेपनम् ॥ ३ ॥

मञ्जीठ व मौरेठीको काञ्जीमे पीसकर अथवा शालि चावलोंको पीस १०० वार धोये हुए घृतम मिलाकर लेप करना चाहिये ॥ ३ ॥

बन्धमोक्षणविधिः ।

सप्तरात्रात्सप्तरात्रात्सौम्येष्वृतुषु मोक्षणम् ।
कर्तव्यं स्यात्त्रिरात्राच्च तथाग्नेयेषु जानता ॥ ४ ॥
काले च समशीतोष्णे पञ्चरात्राद्विमोक्षयेत् ।

शीतकालमें ७ सात दिनमे, उष्णकालमें ३ तीन दिनमें तथा साधारण कालमें पाच दिनमे बन्धन खोलना चाहिये ॥ ४ ॥—

सेकादिकम् ।

न्यग्रोधादिकषाय च सुशीत परिषेचने ॥ ५ ॥
पञ्चमूलीविपक्व तु क्षीर दद्यात्सवेदने ।
सुखोष्णमवचार्यं वा चक्रतैल विजानता ॥ ६ ॥

सिञ्चनके लिये न्यग्रोधादि गणका शीतल क्वाथ तथा पीडायुक्त होनेपर लघुपञ्चमूलसे पकाये दूधका सिञ्चन करना चाहिये । तथा ताजा तैल गरमकर मलना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

पथ्यम् ।

मांस मासरस सर्पि क्षीर यूप सतीनज ।
बृंहण चान्नपानं च देय भग्ने विजानता ॥ ७ ॥
गृष्टिक्षीर ससर्पिष्कं मधुरौषधसाधितम् ।
शीतल द्राक्षया युक्त प्रातर्भग्न. पिबेन्नरः ॥ ८ ॥

मास और मासरस, घी, दूध, मटरका यूप, तथा बृंहण अन्नपान भग्नवालेको देना चाहिये । तथा एक बार व्याई हुई गायका दूध मधुर औषधियोंके साथ सिद्ध कर घीमें मिला प्रातःकाल मुनक्काके साथ ठण्ढा ठण्ढा पीना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

अस्थिसंहारयोगः ।

सघृतेनास्थिसहारं लाक्षागोधूममर्जुनम् ।
सन्धिमुक्तेऽस्थिभग्ने च पिबेत्क्षीरेण मानव ॥ ९ ॥

घी मिले दूधके साथ लाख, गेहूँ, अर्जुनकी छाल, अस्थिसंहारके चूर्णका सेवन करनेसे सन्धिभग्न तथा अस्थिभग्न दोनो ठीक होते हैं ॥ ९ ॥

रसोनोपयोगः ।

रसोनमधुलाक्षाज्यसिताकल्क समश्नताम् ।
छिन्नभिन्नच्युतास्थीना सधानमचिराद्भवेत् ॥ १० ॥

लहसुन, शहद, लाख, घी तथा मिश्रीकी चटनी चाटनेसे छिन्न, भिन्न, च्युत (अलग हुई) हड्डिया शीघ्र ही जुड जाती हैं ॥ १० ॥

वराटिकायोगः ।

पीतवराटिकाचूर्णं द्विगुञ्ज वा त्रिगुञ्जकम् ।
अपक्वक्षीरपीत स्यादस्थिभग्नप्ररोहणम् ॥ ११ ॥

पीली कौडीके चूर्णको २ रत्ती अथवा ३ रत्तीकी मात्रामें कच्चे दूधके साथ पीनेसे टूटी हड्डी शीघ्र ही जुड जाती है ॥ ११ ॥

विविधा योगाः ।

क्षीरं सलाक्षामधुकं ससर्पि
स्याज्जीवनीयं च सुखावहं च ।
भग्नः पिबेत्त्वक्पयसार्जुनस्य
गोधूमचूर्णं सघृतेन वाथ ॥ १२ ॥

जीवनीयगणसे सिद्ध दूध, लाख और मौरेठीके चूर्ण तथा घीके साथ पीनेसे सुख मिलता है अथवा अर्जुनकी छालका चूर्ण दूधके साथ अथवा गेहूँका चूर्ण घी व दूधके साथ पकाकर पीना चाहिये ॥ १२ ॥

लाक्षागुग्गुलुः ।

लाक्षास्थिसंहृतककुभाश्वगन्धा-
श्चूर्णीकृता नागबला पुरश्च ।
सभग्नयुक्तास्थिरुजं निहन्या-
दङ्गानि कुर्यात्कुलिशोपमानि ॥ १३ ॥
अत्रान्यतोऽपि दृष्टत्वात्तुल्यश्चूर्णेन गुग्गुलुः ॥ १४ ॥

लाख अस्थिसंहार, अर्जुन, असगन्ध तथा नागबलाका चूर्ण कर सबके समान गुग्गुलु मिला खानेसे भग्नयुक्त अस्थिकी पीडा नष्ट होती है तथा शरीर वज्रके समान दृढ होता है । यहां ग्रन्थान्तरोंके प्रमाणसे चूर्णके समान ही गुग्गुलु छोडना चाहिये १३॥१४

आभागुग्गुलुः ।

आभाफलत्रिकैर्व्योषैः सर्वैरेभिः समीकृतैः ।
तुल्यो गुग्गुलुरायोज्यो भग्नसन्धिप्रसाधकः ॥ १५ ॥

बबूलकी फली, त्रिफला, त्रिकटु सब समान भाग, सबके समान गुग्गुलु मिलाकर सेवन करनेसे टूटी सन्धियां जुड जाती हैं ॥ १५ ॥

सव्रणभग्नचिकित्सा ।

सव्रणस्य तु भग्नस्य व्रणं सर्पिर्मधूत्तमैः ।
प्रतिसार्य कषायैश्च शेषं भग्नवदाचरेत् ॥ १६ ॥
भग्नं नैति यथा पाकं प्रयतेत तथा भिषक् ।
वातव्याधिविनिर्दिष्टान्स्नेहानत्र प्रयोजयेत् ॥ १७ ॥

जहां टूटनेके साथ घाव भी हो गया है वहां क्वाथकी रसक्रिया कर घी शहद मिला लेप करना चाहिये । भग्नस्थान पके नहीं ऐसा उपाय करना चाहिये । वातव्याधिमें कहे हुए स्नेहोंका प्रयोग करना चाहिये १६॥१७

गन्धतैलम् ।

रात्रौ रात्रौ तिलान्कृष्णान्वासयेदस्थिरे जले ।
दिवादिवैव संशोष्य क्षीरेण परिभावयेत् ॥ १८ ॥
तृतीयं सप्तरात्रं च भावयेन्मधुकाम्बुना ।
ततः क्षीरं पुनः पीतान्सुशुष्कांश्चूर्णयेद्भिषक् ॥ १९ ॥
काकोल्यादिश्वदंष्ट्रा च मञ्जिष्ठा शारिवां तथा ।
कुष्ठं सर्जरसं मांसीं सुरदारु सचन्दनम् ॥ २० ॥
शतपुष्पा च संचूर्ण्य तिलचूर्णेन योजयेत् ।
पीडनार्थं च कर्तव्यं सर्वगन्धैः शृतं पयः ॥ २१ ॥
चतुर्गुणेन पयसा तत्तैलं विपचेत्पुनः ।
एलामंशुमतीं पत्रं जीरकं तगरं तथा ॥ २२ ॥
लोध्रं प्रपौण्डरीकं च तथा कालानुशारिवाम् ।
शैलेयकं क्षीरशुक्लामनन्तां समधूलिकाम् ॥ २३ ॥
पिष्ट्वा शृङ्गाटकं चैव प्रागुक्तान्यौषधानि च ।
एभिस्तद्विपचेत्तैलं शास्त्रविन्मृदुनाग्निना ॥ २४ ॥
एतत्तैलं सदा पथ्यं भग्नानां सर्वकर्मसु ।
आक्षेपके पक्षवधे चाङ्गशोषे तथार्दिते ॥ २५ ॥
मन्यास्तम्भे शिरोरोगे कर्णशूले हनुग्रहे ।
बाधिर्ये तिमिरे चैव ये च स्त्रीषु क्षयं गताः ॥ २६ ॥
पथ्ये पाने तथाभ्यङ्गे नस्ये वस्तिषु योजयेत् ।
ग्रीवास्कन्धोरसां वृद्धिरनेनैवोपजायते ॥ २७ ॥
मुखं च पद्मप्रतिमं स्यात्सुगन्धिसमीरणम् ।
गन्धतैलमिदं नाम्ना सर्ववातविकारनुत् ॥ २८ ॥
राजार्हमेतत्कर्तव्यं राज्ञामेव विचक्षणैः ।
तिलचूर्णचतुर्थांशं मिलितं चूर्णमिष्यते ॥ २९ ॥

काले तिलोंकी रात्रिमें बहते जलमें पोटली बांधकर रखना चाहिये और दिनमें सुखाना चाहिये, इस प्रकार एक सप्ताह करना चाहिये । दूसरे सप्ताहमें दूधकी भावना देनी चाहिये । तीसरे सप्ताहमें तिलके समान मौरेठीका क्वाथ बनाकर भावना देनी चाहिये । फिर एक सप्ताह दूधकी भावना दे सुखाकर चूर्णकर लेना चाहिये । फिर तिलोंसे चतुर्थांश मिलित चूर्ण काकोल्यादिगण, गोखुरू, मजीठ, शारिवा, कूठ, राल, जटामांसी, देवदारु, चन्दन व सौंफका मिलाकर एलादिगणसे सिद्ध दूधसे तरकर कोल्हूमें पीडित कर तैल निकलवा लेना चाहिये । फिर उस तैलमें चतुर्गुण दूध, इलायची, शालिपर्णी, तेजपात, जीरा, तगर, लोध, पुण्डरिया, काली शारिवा, छरीला, क्षीरविदारी, यवासा, गेहूँ और सिंघाडेका कल्क छोडकर मन्दाग्निसे तैल पकाना चाहिये । यह तैल भग्नवालोंको सब कामोंमें हितकर है । यह आक्षेपक, पक्षा-

घात, अङ्गशोष, अर्दित, मन्यास्तम्भ, शिरोरोग, कर्णशूल, हनुग्रह, बाधिर्य, तिमिरवालोंको तथा जो स्त्रीगमनमें क्षीण हैं उन्हें पथ्यमें पीनेके लिये, मालिश, नस्य तथा वस्तिमें प्रयोग करना चाहिये। गरदन, कन्धे और छातीकी वृद्धि इसीसे होती है। मुख कमलके समान तथा सुगन्धित वायुयुक्त होता है। यह गन्धतैल समस्त वातरोगोंको नष्ट करता है। यह तैल राजाओंके योग्य है इसे राजाओंके लिये ही बनाना चाहिये। तिल चूर्णसे चौथाई सब चीजोंका मिलित चूर्ण होना चाहिये। (तिल इतने लेने चाहिये जिनमें १ आढक तैल निकल आवे)॥ १८-२९॥

भग्ने वर्ज्यानि।

लवणं कटुकं क्षारमम्लं मैथुनमातपम्।
व्यायामं च न सेवेत भग्नो रूक्षान्नमेव च॥ ३०॥

भग्नरोगीको लवण, कटु, क्षार, खट्टे पदार्थ, मैथुन, आतप, व्यायाम और रूक्षान्न, इनका सेवन न करना चाहिये॥ ३०॥

इति भग्नाधिकारः समाप्तः।

अथ कुष्ठाधिकारः।

वातोत्तरेषु सर्पिर्वमनं श्लेष्मोत्तरेषु कुष्ठेषु।
पित्तोत्तरेषु मोक्षो रक्तस्य विरेचनं चाग्र्यम्॥ १॥
प्रच्छनमल्पे कुष्ठे महति च शस्तं शिराव्यधनम्।
बहुदोषः संशोध्यः कुष्ठी बहुशोऽनुरक्षता प्राणान्॥ २॥

वातप्रधान कुष्ठमें घी पीना, कफप्रधानमें वमन, पित्तप्रधानमें रक्तमोक्षण तथा शिराव्यध उत्तम है तथा थोड़े कुष्ठमें पछने लगाना, बहुतमें शिराव्यध करना तथा बहुदोषयुक्त कुष्ठीको बलकी रक्षा करते हुए संशोधन करना चाहिये॥ १॥ २॥

वमनम्।

वचावासापटोलानां निम्बस्य फलिनीत्वचः।
कषायो मधुना पीतो वान्तिकृन्मदनान्वितः॥ ३॥

वच, अडूसा, परवलकी पत्ती, नीमकी पत्ती तथा प्रियङ्गुकी छालके क्वाथमें मैनफलका चूर्ण मिलाकर पीनेसे वमन होता है॥ ३॥

विरेचनम्।

विरेचनं तु कर्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः॥ ४॥

निसोथ, दन्ती और त्रिफलासे विरेचन देना चाहिये॥ ४॥

लेपयोग्यता।

ये लेपाः कुष्ठानां प्रयुज्यन्ते निर्गतास्रदोषाणाम्।
संशोधिताशयानां सद्यः सिद्धिर्भवति तेषाम्॥ ५॥

वमन, विरेचनद्वारा कोष्ठ तथा रक्तमोक्षणद्वारा रक्त शुद्ध हो जानेपर कुष्ठवालोंको जिन लेपोंका प्रयोग किया जाता है उनकी सिद्धि शीघ्रही होती है॥ ५॥

लेपाः।

मनःशिलाले मरिचानि तैल-
मार्कं पयः कुष्ठहरः प्रदेहः।
करञ्जबीजैडगजं सकुष्ठं
गोमूत्रपिष्टश्च वरः प्रदेहः॥ ६॥
पर्णानि पिष्ट्वा चतुरङ्गुलस्य
तक्रेण पर्णान्यथ काकमाच्याः।
तैलाक्तगात्रस्य नरस्य कुष्ठा-
न्युद्वर्तयेदश्वहनच्छदैश्च॥ ७॥
आरग्वधः सैडगजः करञ्जो
वासा गुडूची मदनं हरिद्रे।
श्याह्वः सुराह्वः खदिरो धवश्च
निम्बो विडङ्गं करवीरकत्वक्॥ ८॥
ग्रन्थिश्च भौर्जो लशुनः शिरीषः
सलोमशो गुग्गुलुकृष्णगन्धे।
फणिज्जको वत्सकसप्तपर्णौ
पीलूनि कुष्ठं सुमनःप्रवालाः॥ ९॥
वचाहरेणुस्त्रिवृतानि कुम्भो
भल्लातकं गैरिकमञ्जनं च।
मनःशिलाले गृहधूम एला-
कासीसलोध्रार्जुनमुस्तसर्जाः॥ १०॥
इत्यर्धरूपैर्विहिताः षडेते
गोपित्तपीताः पुनरेव पिष्टाः।
सिद्धाः परं सर्षपतैलयुक्ता-
श्चूर्णप्रदेहा भिषजा प्रयोज्याः॥ ११॥
कुष्ठानि कृच्छ्राणि नवं किलासं
सुरेन्द्रलुप्तं किटिभं सदद्रुम्।
भगन्दरार्शांस्यपचीं सपामां
हन्युः प्रयुक्ता अचिरान्नराणाम्॥ १२॥

मनःशिला, हरिताल, काली मिर्च व आकके दूधका लेप कुष्ठको नष्ट करता है। तथा कञ्जाके बीज, पवाड़के

बीज व कूठको गोमूत्रमे पीसकर लेप करना चाहिये। अथवा अमलतासकी पत्ती, मकोयकी पत्ती तथा कनेरकी पत्तीको मट्ठेमे पीसकर लेप करना चाहिये।तथा अमलतास, पवाड, कञ्जा, वासा, गुर्च, मैनफल, हल्दी तथा दारुहल्दी अथवा नवनीत खोटि (गन्धाविरोजाभेद) देवदारु, कत्था, धायके फूल, नीम, वायविडङ्ग व कनेरकी छाल। अथवा भोजपत्रकी गाठ, लहसुन, सिर्साकी छाल, कासीस, गुग्गुलु व सहिजन । अथवा मरुवा, कुटज, सतवन, पीलु, कूठ तथा चमेलीकी पत्ती । अथवा वच, सम्भालूके बीज, निसोथ, दन्ती, भिलावा, गेरू व सुरमा। अथवा मनसिल, हरताल, घरका धुवॉं, इलायची, कासीस, लोध, अर्जुन, मोथा, राल । यह आवे आधे श्लोकमे कहे गये ६ लेप गोपित्त (गोरोचन अथवा गोमूत्रमें) भावना देकर पीसे गये सरसोंके तैलमे मिलाकर लेप करना चाहिये । ये लेप कठिन, कुष्ठ नवीन किलास, इन्द्रलुप्त, किटिभ, दद्रु, भगन्दर, अर्श, अपची व पामाको शीघ्र ही नष्ट करते हैं ॥ ६–१२ ॥

मनःशिलादिलेपः ।

मनःशिलात्वक्कुटजास्सकुष्ठा-
त्सलोमशः सैडगजः करञ्जः ।
ग्रन्थिश्च भौर्जः करवीरमूल
चूर्णानि साध्यानि तुषोदकेन ॥ १३ ॥
पलाशनिर्दाहरसेन वापि
कर्षोद्धृतान्याढकसंमितेन ।
दार्वीप्रलेप प्रवदन्ति लेप-
मेतत्परं कुष्ठविनाशनाय ॥ १४ ॥

मनशिल, कुरैयाकी छाल, कूठ, कसीस, पवाडके बीज, कञ्जा, भोजपत्रकी गाठ, तथा कनैरकी जड प्रत्येक एक एक तोलेका चूर्ण एक आढक भूसी सहित अन्नकी काञ्जी अथवा ढाकके वृक्षको जलाकर नीचे टपके हुए रसके साथ अवलेहके समान कल्छीमें चिपटने तक पकाना चाहिये । यह कुष्ठ नाश करनेमें श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ १४ ॥

कुष्ठादिलेपः ।

कुष्ठ हरिद्रे सुरस पटोल
निम्बाश्वगन्धे सुरदारुशिग्रू ।
ससर्षप तुम्बुरुधान्यवन्य
चण्डाञ्च दूर्वाञ्च समानि कुर्यात् ॥ १५ ॥
तैस्तक्रयुक्तैः प्रथमं शरीरं
तैलाक्तमुद्वर्तयितु यतेत ।
तथास्य कण्डू पिडका· सकोठा
कुष्ठानि शोथाश्च शमं प्रयान्ति ॥ १६ ॥

कूठ, हल्दी, दारुहल्दी, तुलसी, परवलकी पत्ती, नीम, असगन्ध, देवदारु, सहिजन, तुम्बुरु, सरसो, धनिया, केवटीमोथा, दन्ती और दूर्वा समान भाग ले मट्ठेमे मिलाकर पहिले तैल लगाये हुए शरीरमे उवटन करना चाहिये । इससे खुजली, फुन्सिया ददरे, कुष्ठ और सूजन शान्त होती है ॥ १५ ॥ १६ ॥

त्रिफलादिलेपः ।

धात्र्यक्षपथ्याक्रिमिशत्रुवह्नि-
भल्लातकावल्गुजलौहभृङ्गः ।
भागाभिवृद्धैस्तिलतैलमिश्रैः
सर्वाणि कुष्ठानि निहन्ति लेप ॥ १७ ॥

आमला १ भाग बहेडा २ भाग, हर्र ३ भाग, वायविडग ४ भाग, चीतकी जड ५ भाग, भिलावा ६ भाग, बकुची ७ भाग, लौहचूर्ण ८ भाग तथा भगरा ९ भाग सबको पीस तिलतैलमे मिलाकर लेप करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १७ ॥

विडंगादिलेपः ।

विडङ्गसैन्धवशिवाशशिरेखासर्षपकरञ्जरजनीभि ।
गोजलपिष्टो लेप कुष्ठहरो दिवसनाथसमः ॥ १८ ॥

वायविडग, सेधानमक, हर्र, बकुची, सरसो, कञ्जा, व हल्दीको गोमूत्रमे पीसकर बनाया गया लेप कुष्ठको नष्ट करनेमे सूर्यके समान है (सूर्यचिकित्सा) रश्मिचिकित्सासे भी कुष्ठ नष्ट होता है ॥ १८ ॥

अपरो विडंगादिः ।

विडङ्गैडगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः ।
धान्याम्लपिष्टैर्लेपोऽय दद्रूकुष्ठरुजापह ॥ १९ ॥

वायविडग, पवाड, कूठ, हल्दी, सेधानमक व सरसोंको काञ्जीमे पीसकर लेप करनेसे दद्रुकुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

दूर्वादिलेपः ।

दूर्वाभयासैन्धवचक्रमर्द-
कुठेरका काञ्जिकतक्रपिष्टा· ।
त्रिभि· प्रलेपैरतिबद्धमूल
दद्रु च कुष्ठ च निवारयन्ति ॥ २० ॥

दूर्वा, बडीहर्रे, सेधानमक, चकवड, तथा वनतुलसीको काञ्जी तथा मट्ठेमें पीसकर तीन बार लेप करनेसे ही गहरे दाद और कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ २० ॥

दद्रुगजेन्द्रसिंहो लेपः ।

तुल्यो रस. सालतरोस्तुपेण
सचक्रमर्दोऽप्यभयाविमिश्र ।
पानीयभक्तेन तदाम्नुपिष्टो
लेपः कृतो दद्रुगजेन्द्रसिंह. ॥ २१ ॥

शालका रस (राल) धानकी भुसी, चकवड, तथा वडी हर्रका छिल्का इनको चावलके जलमें पीसकर लेप करनेसे दद्रुरूपी गजेन्द्रको सिंहके समान नष्ट करता है ॥ २१ ॥

विविधा लेपाः ।

प्रपुन्नाडस्य बीजानि धात्री सर्जरस स्नुही ।
सौवीरपिष्टं दद्रूणामेतदुद्वर्तन परम् ॥ २२ ॥
चक्रमर्दकबीजानि करञ्ज च समाशकम् ।
स्तोकं सुदर्शनामूलं दद्रुकुष्ठविनाशनम् ॥ २३ ॥
लेपनाद्भक्षणाच्चैव तृणकं दद्रुनाशनम् ।
यूथीपुन्नागमूल च लेपात्काञ्जिकपेषितम् ॥ २४ ॥
कासमर्दकमूलं च सौवीरेण च पेषितम् ।
दद्रूकिटिभकुष्ठानि जयेदेतत्प्रलेपनात् ॥ २५ ॥

पवाडके बीज, आमला, राल, तथा सेहुण्डको काञ्जीमें पीसकर लेप करना चाहिये । चकवडके बीज, कञ्जाके बीजके समान कुछ सुदर्शनकी जड मिलाकर लगानेसे दद्रु नष्ट होता है । गन्धतृणके खाने तथा लगानेसे दद्रु नष्ट होता है । काञ्जीमें जूही और सुपारीकी जडको पीसकर अथवा कसौंदीकी जडको काञ्जीमें पीसकर लगानेसे दाद व किटिभकुष्ठ नष्ट होता है२२-२५

सिध्मे लेपाः ।

शिखरिरसेन सुपिष्ट मूलकबीजं प्रलेपत. सिध्म ।
क्षारेण वा कदल्या रजनीमिश्रेण नाशयति ॥ २६ ॥
गन्धपाषाणचूर्णेन यवक्षारेण लेपितम् ।
सिध्मनाश व्रजत्याशु कटुतैलयुतेन वा ॥ २७ ॥
कासमर्दकबीजानि मूलकाना तथैव च ।
गन्धपाषाणमिश्राणि सिध्माना परमौषधम् ॥ २८ ॥
धात्रीरस सर्जरस सपाक्य
सौवीरपिष्टश्च तथा युतश्च ।
भवन्ति सिध्मानि यथा न भूय-
स्तथैवमुद्वर्तनक करोति ॥ २९ ॥
कुष्ठं मूलकबीज प्रियङ्गव सर्षपास्तथा रजनी ।
एतत्केशरयुक्तं निहन्ति बहुवार्षिक सिध्म ॥ ३० ॥
नीलकुरुण्टकपत्र स्वरसेनालिप्य गात्रमतिबहुश. ।
लिम्पेन्मूलकबीजैस्तक्रेणैतद्धि सिध्मनाशाय ॥ ३१ ॥

अपामार्गके रसमे अथवा हल्दीयुक्त केलेके क्षारके साथ मूलीके बीजोको पीसकर लगाया गया लेप सिध्म कुष्ठको नष्ट करता है । इसी प्रकार गन्धकको जवाखार तथा कडुआ तैलमें मिलाकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट होता है । इसी भांति कसौंदीके बीज, मूलीके बीज व गन्धक मिलाकर लेप करना सिध्मकी परम औषधि है तथा अमलेका रस, राल और खारीनमक इनको काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे सिध्म नष्ट होकर फिर नही होता । कूट, मूलीके बीज, प्रियगु, सरसो, हल्दी व नागकेशर इनका लेप पुराने सिध्मको नष्ट करता है । नील कटसैलाके स्वरसको देहमें लगाकर मट्ठेमें पिसे मूलीके बीजोंका लेप करना सिध्मको नष्ट करता है ॥ २६–३१ ॥

किटिभादिनाशका लेपाः ।

चक्राह्वयं स्नुहीक्षीरभावित मूत्रसंयुतम् ।
रवितप्तं हि किञ्चित्तु लेपनात्किटिभापहम् ॥ ३२ ॥
आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत् ।
दद्रुकिटिभकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥ ३३ ॥
बीजानि वा मूलकसर्षपाणा
लाक्षारजन्यौ प्रपुनाडबीजम् ।
श्रीवेष्टकव्योषविडङ्गकुष्ठ
पिष्ट्वा च मूत्रेण तु लेपनं स्यात् ॥ ३४ ॥
दद्रूणि सिध्म किटिभानि पामा
कापालकुष्ठ विषमं च हन्यात् ॥ ३५ ॥
एडगजकुष्ठसैन्धवसौवीरसर्षपैः क्रिमिघ्नैश्च ।
क्रिमिसिध्मदद्रुमण्डलकुष्ठानां नाशनो लेपः ॥ ३६ ॥

पवाडके बीजोंको सेहुण्डके दूधमें भावना दे गोमूत्र मिला धूपमें गरम कर लेप करनेसे किटिभकुष्ठ नष्ट होता है । अथवा अमलतासके पत्तोंको काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे दद्रु, किटिभ, कुष्ठ और सिध्म नष्ट होते हैं । मूली, सरसोंके बीज, लाख, हल्दी, पवांडके बीज, गन्धाविरोजा, त्रिकटु, वायविडङ्ग तथा कूठको गोमूत्रमें पीस कर लेप करनेसे दद्रु सिध्म किटिभ पामा और कापालकुष्ठ तथा विषमकुष्ठ नष्ट होते हैं । तथा पवाड, कूट, सेंधानमक, काञ्जी, सरसो तथा वायविडगसे बनाया गया लेप, क्रिमि, सिध्म, दद्रु और मण्डलकुष्ठोंको नष्ट करता है ॥ ३२–३६ ॥

अन्ये लेपाः ।

स्नुक्काण्डे सर्षपात्कल्क. कुकूलानलपाचित. ।
लेपाद्विचर्चिकां हन्ति रागवेग इव त्रपाम् ॥ ३७ ॥

स्नुक्काण्डशुषिरे दग्ध्वा गृहधूमं ससैन्धवम् ।
अन्तर्धूमं तैलयुक्तं लेपाद्धन्ति विचर्चिकाम् ॥ ३८ ॥
एडगजातिलसर्षपकुष्ठ मागधिकालवणत्रयमस्तु ।
पूतिकृत दिवसत्रयमेतद्धन्ति विचर्चिकदद्रुसकुष्ठम् ३९॥

सेहुण्डकी शाखामें सरसोंका कल्क रखकर कोयलोंकी आंचमें पकाकर लेप करनेसे प्रेम वेगसे लज्जाके समान विचर्चिका नष्ट होती है । तथा सेहुण्डकी डालमें छिद्रकर अन्दर गृहधूम सेंधानमक तैल भरकर अन्तर्धूम पकाकर लेप करनेसे विचर्चिका नष्ट होती है तथा पवाड, तिल, सरसों, कूठ छोटी पीपल, व तीनों नमकोंको दहीके तोड़के साथ तीन दिन एकमें रखनेके अनन्तर लगानेसे विचर्चिका दद्रु व कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ३७-३९ ॥

उन्मत्तकतैलम् ।

उन्मत्तकस्य वीजेन माणकक्षारवारिणा ।
कटुतैलं विपक्तव्यं शीघ्रं हन्याद्विपादिकम् ॥ ४० ॥

धतूरेके बीजोंके कल्क तथा मानकन्दके क्षारजलसे सिद्ध कटुतैल विपादिकाको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

तण्डुललेपाः ।

नारिकेलोदके न्यस्तास्तण्डुला पूतितां गताः ।
लेपाद्विपादिका घ्नन्ति चिरकालानुबन्धिनीम् ॥ ४१ ॥

नारियलके जलमें रक्खे चावल सड जानेपर लेप करनेसे विपादिकाको नष्ट करते हैं ॥ ४१ ॥

पादस्फुटननाशको लेपः ।

सर्जरस सिन्धूद्भवगुडमधुमहिषाक्षगैरिक सघृतम् ।
सिक्थकमेतत्पक्वं पादस्फुटनापह सिद्धम् ॥ ४२ ॥

राल, सेंधानमक, गुड, शहद, गुग्गुलु, गेरू, घी तथा मोमको मिला पकाकर लेप करनेसे पैरोंका फटना शान्त होता है ॥ ४२ ॥

कच्छ्रहरलेपौ ।

अवल्गुज कासमर्द चक्रमर्द निशायुतम् ।
माणिमन्थेन तुल्यांश मस्तुकाञ्जिकपेषितम् ।
कच्छ्रं कण्डूं जयत्युग्रां सिद्ध एष प्रयोगराट् ॥४३॥
कोमल सिंहास्यदलं सनिशं सुरभिजलेन संपिष्टम् ।
दिवसत्रयेण नियत क्षपयति कच्छ्रं विलेपनत ॥४४॥

बकुची, कसौंदी, चकवड, हल्दी तथा सेंधानमक समान भाग ले दहीके तोड व काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे उग्र कच्छू व कण्डू नष्ट होती है अथवा कोमल अडूसेके पत्ते और हल्दीको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे निःसन्देह ३ दिनमें कच्छू नष्ट होती है ॥४३॥ ४४ ॥

पानम् ।

हरिद्राकल्कसंयुक्तं गोमूत्रस्य पलद्वयम् ।
पिबेन्नरः कामचारी कच्छूपामाविनाशनम् ॥ ४५ ॥

हल्दीके कल्कके साथ गोमूत्र २ पल पीनेसे यथेष्ट आहार विहार करनेपर भी कच्छू व पामा नष्ट होती हैं ॥ ४५ ॥

पथ्यायोगः ।

शोथपाण्ड्वामयहरी गुल्ममेहकफापहा ।
कच्छूपामाहरी चैव पथ्यागोमूत्रसाधिता ॥ ४६ ॥

गोमूत्रमें पकायी गयी छोटी हर्रोंके सेवन करनेसे सूजन पाण्डुरोग, गुल्म, प्रमेह, कफ, कच्छू और पामा नष्ट होती हैं ॥ ४६ ॥

गन्धकयोगः ।

पिबति सकटुतैलं गन्धपाषाणचूर्णं
रविकिरणसुतप्तं पामलो यः पलार्धम् ।
त्रिदिनतदनुसिक्तः क्षीरभोजी च शीघ्रं
भवति कनकदीप्त्या कामयुक्तो मनुष्यः ॥ ४७ ॥

जो मनुष्य शुद्ध गन्धकका चूर्ण २ तोला कडुए तैलमें मिला सूर्यकी किरणोंमें तपाकर ३ दिनतक पीता है और स्नान कर दूधका पथ्य लेता है उसका शरीर कनकके सामन देदीप्यमान कामयुक्त होता है (यह मात्रा १ दिनकी न समझना चाहिये किन्तु ३ दिनमें इतना कई बारमें खिलाना चाहिये) ॥ ४७ ॥

उद्वर्तनम् ।

निशासुधारग्वधकाकमाची
पत्रैः सदार्वीप्रपुनाडबीजैः ।
तक्रेण पिष्टैः कटुतैलमिश्रं
पामादिषूद्वर्तनमेतदिष्टम् ॥ ४८ ॥

हल्दी, सेहुण्ड, अमलतास तथा मकोयके पत्ते और दारुहल्दी, व पवाडके बीज सबको मट्ठेमें पीस कडुआ तैल मिलाकर उबटन लगाना पामादिमें हितकर है ४८

सिन्दूरयोगः ।

सिन्दूरमरिचचूर्णं महिषीनवनीतसयुतं बहुशः ।
लेपान्निहन्ति पामां तैलं करवीरसिद्धं वा ॥ ४९ ॥

सिन्दूर, व काली मिर्चका चूर्ण भैंसीके मक्खनमें मिलाकर अनेक वार लेप करनेसे तथा कनैरमें सिद्ध तैल लगानेसे पामा नष्ट होती है ॥ ४९ ॥

कुष्ठहरो गणः।

मासी चन्दनसम्पाककारिष्टसर्षपम्।
शटीकुटजदार्व्यब्द हन्ति कुष्ठमयं गणः ॥ ५० ॥

जटामासी, चन्दन, अमलतास, कञ्जा, नीम, सरसों, कचूर, कुटज, दारुहल्दी और नागरमोथा यह गण, कुष्ठको नष्ट करता है ॥ ५० ॥

भल्लातकादिलेप।

भल्लातकद्वीपिसुधार्कमूल
गुञ्जाफलं त्र्यूषणशङ्खचूर्णम्।
तुत्थं सकुष्ठं लवणानि पञ्च
क्षारद्वयं लाङ्गलिका च पक्त्वा ॥ ५१ ॥
स्नुह्यर्कदुग्धे घनमायसस्थं
शलाकया तं विदधीत लेपम्।
कुष्ठे किलासे तिलकालके च
अर्शोपदुर्नामसु चर्मकीले ॥ ५२ ॥

भिलावा, चीता, सेहुण्ड व आककी जड, गुञ्जाफल, त्रिकटु, शंख, तूतिया, कूठ, पाचों नमक, यवाखार, सज्जीखार, कलिहारी इनको सेहुंड व आकके दूधके साथ लोहेके पात्रमें पाककर गाढा हो जानेपर सलाईसे लेप करना चाहिये। यह कुष्ठ, किलास, तिलकालक, अर्श और चर्मकीलको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥ ५२ ॥

विषादिलेपः।

विषवरुणहरिद्राचित्रकागारधूम-
मनलमरिचदूर्वा. क्षीरमर्कस्नुहीभ्याम्।
दहति पतितमात्रात्कुष्ठजातीरशेषाः
कुलिशमिव सरोषाच्छक्रहस्ताद्विमुक्तम् ॥ ५३ ॥

सींगिया, वरुणा, हल्दी, चीतकी जड, गृहधूम्र, भिलावां, मरिच तथा दूबके चूर्णको आक और सेहुडके दूधमें मिलाकर लेप करना चाहिये। यह लगते ही समस्त कुष्ठकी जातियोंको इन्द्रके हाथसे छुटे हुए वज्रके समान नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

शशांकलेखादिलेहः।

शशाङ्कलेखा सविडङ्गसारा
सपिप्पलीका सहुताशमूला।
सायोमला सामलका सतैला
सर्वाणि कुष्ठान्युपहन्ति लीढा ॥ ५४ ॥

बकुची, वायविडंग, छोटी पीपल, चीतकी जड, मण्डूर तथा आमलाके चूर्णको तैलके साथ चाटनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ५४ ॥

सोमराजी प्रयोगः।

तीव्रेण कुष्ठेन परीतदेहो
यः सोमराजीं नियमेन खादेत्।
संवत्सरं कृष्णतिलद्वितीयां
स सोमराजीं वपुषातिशेते ॥ ५५ ॥

तीव्र कुष्ठसे व्याप्त देहवाला जो मनुष्य काले तिलके साथ बकुची नियमसे खाता है उसका शरीर चंद्रमाके समान प्रकाशमान होता है ॥ ५५ ॥

अवल्गुजायोगः।

धर्मसेवी कदुष्णेन वारिणा वागुजीं पिबेत्।
क्षीरभोजी त्रिसप्ताहात्कुष्ठरोगाद्विमुच्यते ॥ ५६ ॥
एकस्तिलस्य भागौ द्वौ सोमराज्यास्तथैव च।
भक्ष्यमाणमिदं प्रातर्गुह्यदद्रुविनाशनम् ॥ ५७ ॥
अवल्गुजाद्बीजकर्षं पीत्वा कोष्णेन वारिणा।
भोजनं सर्पिषा कार्यं सर्वकुष्ठप्रणाशनम् ॥ ५८ ॥

धर्मका सेवन करते हुए कुछ गरम जलके साथ २१ दिनतक बकुची पीना चाहिये तथा दूधका पथ्य लेना चाहिये इससे २१ दिनमें कुष्ठरोग नष्ट होता है। तथा एक भाग तिल और २ भाग बकुची मिलाकर खानेसे गुह्यस्थानका दद्रु नष्ट होता है। अथवा बकुचीके बीज १ कर्ष कुछ गरम जलके साथ पीकर घीके साथ भोजन करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ५६–५८ ॥

त्रिफलादिक्वाथः।

त्रिफलापटोलरजनीमञ्जिष्ठारोहिणीवचानिम्बैः।
एष कषायोऽभ्यस्तो निहन्ति कफपित्तजं कुष्ठम् ॥५९॥

त्रिफला, परवलकी पत्ती, हल्दी, मञ्जीठ, कुटकी, वच, नीमका क्वाथ कुछ दिनतक सेवन करनेसे कफपित्तज कुष्ठ नष्ट होता है ॥ ५९ ॥

छिन्नाप्रयोगः।

छिन्नाया स्वरसो वापि सेव्यमानो यथाबलम्।
जीर्णे घृतेन भुञ्जीत स्वल्पं यूषोदकेन वा।
अतिपूतिशरीरोऽपि दिव्यरूपो भवेन्नरः ॥ ६० ॥

शक्तिके अनुसार गुर्चका स्वरस सेवन करते हुए औषधि पच जानेपर घी अथवा यूषके साथ भोजन करनेसे अति दुर्गन्धित शरीरवाला भी निःसन्देह स्वरूपवान् हो जाता है ॥ ६० ॥

पटोलादिक्वाथः।

पटोलखदिरारिष्टत्रिफलाकृष्णवेत्रजम्।
सिक्ताशन. पिबेत्क्वाथं कुष्ठी कुष्ठं व्यपोहति ॥ ६१ ॥

परवलकी पत्ती, कत्था, नीमकी छाल, त्रिफला काला वेत इनके क्वाथको पीने तथा तिक्त पदार्थ सेवन करनेसे कुष्ठरोग नष्ट होता है ॥ ६१ ॥

सप्तसमो योगः।

तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः।
चूर्ण्याः सप्तसमो मेध्यः कुष्ठहा कामचारिणः ॥ ६२ ॥

तिल, घृत, त्रिफला, शहद, त्रिकटु, भिलावां शक्कर सब समान भाग मिलाकर सेवन करनेसे कुष्ठ नष्ट होता है इसे सप्तसमयोग कहते हैं इसमें किसी प्रकारके नियमकी आवश्यकता नहीं ॥ ६२ ॥

विडङ्गादिचूर्णम्।

विडङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढं समाक्षिकम्।
हन्ति कुष्ठक्रिमीन्मेहान्नाडीव्रणभगन्दरान् ॥ ६३ ॥

वायविडङ्ग, त्रिफला तथा छोटी पीपलके चूर्णको शहदके साथ सेवन करनेसे कुष्ठ, क्रिमि, प्रमेह, नाडीव्रण व भगन्दररोग नष्ट होते हैं ॥ ६३ ॥

विजयामूलयोगः।

इन्द्राशनं समादाय प्रशस्तेऽहनि चोद्धृतम्।
तच्चूर्णं मधुसर्पिर्भ्यां लिहेत्क्षीरघृताशनः ॥ ६४ ॥
हत्वा च सर्वकुष्ठानि जीवेद्वर्षशतद्वयम्।

अच्छे दिन भागके वृक्षोंको उखाड चूर्ण बनाकर शहद व घीके साथ चाटना चाहिये तथा दूध व घीका पथ्य लेना चाहिये। यह समस्त कुष्ठोंको नष्ट करता तथा पुरुषको दीर्घायु बनाता है ॥ ६४ ॥

विविधा योगाः।

यः खादेदभयारिष्टमरिष्टामलकानि वा ॥ ६५ ॥
स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः।
दह्यमानाच्च्युतः कुम्भे मूलगे खादिराद्रसः ॥ ६६ ॥
साज्यधात्रीरसक्षौद्रो हन्यात्कुष्ठं रसायनम् ॥ ६७ ॥

जो हर्र व नीमकी पत्ती, अथवा नीमकी पत्ती व आमला एक मासतक खाता है उसके समस्त कुष्ठ निःसन्देह नष्ट होते हैं। अथवा हरे खडे कत्थेके वृक्षको जलाकर मूलमें टपके हुए रसको ले घी, आमलेके रस तथा शहदके साथ सेवन करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ६५-६७ ॥

वायस्यादिलेपः।

वायस्येडगजाकुष्ठकृष्णाभिर्गुटिका कृता।
वस्तमूत्रेण संपिष्टा लेपाच्छ्वित्रविनाशिनी ॥ ६८ ॥

मकोय, पवांडके बीज, कूठ तथा छोटी पीपल पीस बकरेके मूत्रमें घोट गोली बनाकर बकरेके मूत्रमें ही पीसकर लेप करनेसे श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ६८ ॥

पूतीकादिलेपः।

पूतीकार्कस्नुङ्नरेन्द्रद्रुमाणां
मूत्रे पिष्टाः पल्लवाः सौमनाश्च।
लेपाच्छ्वित्रं घ्नन्ति दद्रुव्रणांश्च
कुष्ठान्यर्शांस्युग्रनाडीव्रणांश्च ॥ ६९ ॥

पूतिकरञ्ज, आक, सेहुण्ड, अमलतास और चमेलीके पत्तोंको गोमूत्रमें पीस लेप करनेसे श्वेतकुष्ठ, दद्रुव्रण, कुष्ठ अर्श तथा नाडीव्रण नष्ट होते हैं ॥ ६९ ॥

गजादिचर्ममसीलेपः।

गजचित्रव्याघ्रचर्ममसीतैलविलेपनात्।
श्वित्रं नाशं व्रजेत्कि वा पूतिकीटविलेपनात् ॥ ७० ॥

हाथी, चीता, तथा व्याघ्रके चर्मकी भस्मको तैलमें मिलाकर लेप करनेसे अथवा दुर्गन्धित कीटके लेप करनेसे नष्ट होता है ॥ ७० ॥

अवल्गुजहरितालेलपः।

कुडवोऽवल्गुजबीजाद्धरितालचतुर्थभागसंमिश्रः।
मूत्रेण गवां पिष्टः सवर्णकरणः परः श्वित्रे ॥ ७१ ॥

बकुचीके बीज १६ तोला, हरिताल ४ तोला दोनोंको गोमूत्रमें पीसकर लेप करनेसे शरीरके समान वर्ण हो जाता है ॥ ७१ ॥

धात्र्यादिक्वाथः।

धात्रीखादिरयोः क्वाथं पीत्वा वल्गुजसंयुतम्।
शङ्खेन्दुधवलं श्वित्रं तूर्णं हन्ति न संशयः ॥ ७२ ॥

आंवला और कत्थेका क्वाथ बकुचीका चूर्ण मिलाकर पीनेसे शंख और चन्द्रमाके समान श्वित्र भी नष्ट होता है ॥ ७२ ॥

गजलेण्डजक्षारयोगः।

क्षारेण दग्धे गजलेण्डजे च
गजस्य मूत्रेण बहुस्रुते च।
द्रोणप्रमाणे दशभागयुक्तं
दत्त्वा पचेद्बीजमवल्गुजस्य ॥ ७३ ॥
एतद्यदा चिक्कणतामुपैति
तदा सुसिद्धां गुडिकां प्रयुञ्ज्यात्।
श्वित्रं विलिम्पेदथ तेन घृष्टं
तदा प्रजात्याशु सवर्णभावम् ॥ ७४ ॥

क्षार द्रव्योंके साथ हाथीकी विष्ठाको जला भस्मको अनेक बार हाथीके मूत्रमें ही छानकर छने हुए १

द्रोण जलको दशमाश वकुचीका चूर्ण मिलाकर पकाना चाहिये, जब यह गोली बनानेके योग्य चिकना हो जावे तब उतार ठण्डा कर गोली बना लेनी चाहिये, फिर इस गोलीको घिसे हुए श्वित्रके ऊपर हाथीके मूत्रमें ही घिसकर लेप करना चाहिये। इससे श्वेतकुष्ठ नष्ट होता है ॥ ७३ ॥ ७४ ॥

जयन्तीयोगः ।

श्वेतजयन्तीमूलं पिष्टं पीतं च गव्यपयसैव ।
श्वित्रं निहन्ति नियतं रविवारे वैद्यनाथाज्ञा ॥ ७५ ॥

सफेद जयन्तीकी जडको पीसकर गायके दूधके साथ रविवारके दिन पीनेसे श्वित्र नष्ट हो जाता है यह वैद्यनाथकी प्रतिज्ञा है ॥ ७५ ॥

पञ्चनिम्बचूर्णम् ।

पुष्पकाले तु पुष्पाणि फलकाले फलानि च ।
सञ्चूर्ण्य पिचुमर्दस्य त्वङ्मूलानि दलानि च ॥ ७६ ॥
द्विरशानि समाहृत्य भागिकानि प्रकल्पयेत् ।
त्रिफलाव्यूषणं ब्राह्मी श्वदंष्ट्रारुष्कराग्निका ॥ ७७ ॥
विडङ्गसारवाराहीलोहचूर्णामृता. समाः ।
द्विहरिद्रावल्गुजकव्याधिघाताः सशर्करा ॥ ७८ ॥
कुष्ठेन्द्रयवपाठाश्च कृत्वा चूर्णं सुसयुतम् ।
खदिरासननिम्बानां घनक्वाथेनभावयेत् ॥ ७९ ॥
सप्तधा पञ्चनिम्बं तु मार्कवस्वरसेन तु ।
स्निग्धशुद्धतनुर्धीमान्योजयेच्च शुभे दिने ॥ ८० ॥
मधुना तिक्तहविषा खदिरासनवारिणा ।
लेह्यमुष्णाम्बुना वापि कोलवृद्ध्या पलं पिबेत् ॥ ८१ ॥
जीर्णे च भोजनं कार्यं स्निग्धं लघु हितं च यत् ॥८२ ॥
विचर्चिकोदुम्बरपुण्डरीक-
कपालदद्रुकिटिमालसादीन् ।
शतारुविस्फोटविसर्पपामा
कफप्रकोपं त्रिविधं किलासम् ॥ ८३ ॥
भगन्दरश्लीपदवातरक्तं
जाताऽन्ध्यनाडीव्रणशीर्षरोगान् ।
सर्वान्प्रमेहान्प्रदरांश्च सर्वान्
दंष्ट्राविषं मूलविषं निहन्ति ॥ ८४ ॥
स्थूलोदरः सिंहकृशोदरश्च
सुश्लिष्टसन्धिर्मधुनोपयोगात् ।
समोपयोगादपि ये दशन्ति
सर्पादयो यान्ति विनाशमाशु ॥ ८५ ॥
जीवेच्चिरं व्याधिजराविमुक्तः
शुभे रतश्चन्द्रसमानकान्तिः ॥ ८६ ॥

नीमके फूलोंके समय फूल और फलोंके समय फल ले सुखाकर तथा नीमकी ही छाल, मूल व पत्तीको सुखाकर प्रत्येक २ भाग तथा त्रिफला, त्रिकटु, ब्राह्मी, गोखुरू, भिलावा, चीतकी जड, वायविडंग, वाराहीकन्द, लोहभस्म, गुर्च, हल्दी, दारुहल्दी, वकुची, अमलतास, शक्कर, कूठ, इन्द्रयव तथा पाढ प्रत्येक एक भाग ले चूर्ण कर कत्था विजैसार और नीमके गाढे क्वाथकी ७ भावना देनी चाहिये। फिर इस चूर्णको भांगरेके स्वरसके ७ भावना देनी चाहिये । फिर शुष्क चूर्ण कर स्निग्ध और विरेचनादिसे शुद्ध शरीर होकर शुभ मुहूर्तमें शहद अथवा तिक्त घृत अथवा कत्था व विजैसारके क्वाथके साथ अथवा गरम जलके साथ ६ माशेसे १ पल तक प्रयोग करना चाहिये । औषध पच जानेपर चिकना लघु हितकारक भोजन करना चाहिये। यह विचर्चिका, उदुम्बर, पुंडरीक, कपाल, दद्रु, किटिभ, अलस, शतारु, विस्फोटक, विसर्प, पामा, कफरोग, किलास, भगन्दर, श्लीपद, वातरक्त, दृष्टिदोष, नाडीव्रण, शिरोरोग, प्रमेह, प्रदर, दंष्ट्राविष तथा मूलविष आदिको नष्ट करता है। शहदके साथ सेवन करनेसे मोटे पेटवाले सिंहके समान कृशोदर हो जाते हैं इसको एक वर्षभर लेनेवालेको यदि सर्प काट खाते हैं तो वे सर्पही) तत्काल मर जाते हैं । इसका सेवन करनेवाला व्याधि तथा वृद्धतादिसे रहित हो चन्द्रसमान कान्तियुक्त शुभकर्म करता हुआ अधिक समयतक जीता है ॥ ७६-८६ ॥

चित्रकादिगुग्गुलुः ।

चित्रकं त्रिफलां व्योषमजाजीं कारवीं वचाम् ।
सैन्धवातिविषे कुष्ठं चव्यैलायावशूकजम् ॥ ८७ ॥
विडङ्गान्यजमोदां च मुस्तान्यमरदारु च ।
यावन्त्येतानि सर्वाणि तावन्मात्रं तु गुग्गुलुम् ॥ ८८ ॥
संक्षुद्य सर्पिषा सार्धं गुडिकां कारयेद्भिषक् ।
प्रातर्भोजनकाले च भक्षयेत्तु यथाबलम् ॥ ८९ ॥
हन्त्यष्टादशकुष्ठानि क्रिमीन्दुष्टव्रणानि च ।
ग्रहण्यर्शोविकारांश्च मुखामयगलग्रहान् ॥ ९० ॥
गृध्रसीमथ भग्नं च गुल्मं चाशु नियच्छति ।
व्याधीन्कोष्ठगतांश्चान्याञ्जयेद्विष्णुरिवासुरान् ॥ ९१ ॥

चीतकी जड, त्रिफला, त्रिकटु, जीरा, काला जीरा, बच, सैंधव, अतीस, कूठ, चव्य, इलायची, जवाखार, वायविडंग, अजमोद, नागर मोथा तथा देवदारु प्रत्येक समान भाग कूट छान सबके समान गुग्गुलु मिलाकर गोली बना लेनी चाहिये। प्रातः तथा भोजनके समय बलानुसार इसका सेवन करना चाहिये। यह अठारह प्रकारके

कुष्ठ, क्रिमि, दुष्टव्रण, ग्रहणी, अर्शोरोग, मुखरोग गल-रोग, गृध्रसी, भग्न तथा ओष्ठगतरोगोंको जैसे विष्णु राक्षसोंको नष्ट करते हैं वैसे ही नष्ट करता है॥८७-९१॥

भल्लातकप्रयोगः।

पञ्च भल्लातकाञ्छित्त्वा साधयेद्विधिवज्जले।
कषायं तं पिबेच्छीतं घृतेनाक्तोष्ठतालुकः ॥ ९२ ॥
पञ्चवृद्ध्या पिबेद्यावत्सप्ततिं ह्रासयेत्ततः।
जीर्णेऽद्यादोदनं शीतं घृतक्षीरोपसंहितम् ॥ ९३ ॥
एतद्रसायनं मेध्यं वलीपलितनाशनम्।
कुष्ठार्शःक्रिमिदोषघ्नं दुष्टशुक्रविनाशनम् ॥ ९४ ॥

पञ्च भिलावोंको दुरकुचाकर जलमें विधिपूर्वक क्वाथ बनाना चाहिये। फिर ओठों तथा तालुमें घी लगाकर ठण्डा क्वाथ पीना चाहिये। इसी प्रकार दूसरे दिन ५ बढाकर अर्थात् १० भिलावोंका क्वाथ पीना चाहिये। इस प्रकार जबतक ७० भिलावा न हो जायँ तबतक बढाना चाहिये। फिर क्रमशः ५ पांच ही प्रतिदिन घटाना चाहिये। औषध पच जानेपर घी और दूधके साथ भात खाना चाहिये। यह रसायन है। मेधाको बढाता, झुर्रियों तथा बालोंकी सफेदीको नष्ट करता, कुष्ठ, अर्श, क्रिमिदोषको दूर करता तथा दूषित शुक्रको शुद्ध करता है ॥ ९२-९४ ॥

भल्लातकतैलप्रयोगः।

तैलं भल्लातकानां च पिबेन्मासं यथाबलम्।
सर्वोपतापनिर्मुक्तो जीवेद्वर्षशतं दृढम् ॥ ९५ ॥

१ महीनेतक भिलावेके तैलका बलानुसार सेवन करनेसे समस्त दुःखरहित होकर १०० वर्षतक जीता है ॥ ९५ ॥

खदिरप्रयोगः।

प्रलेपोद्वर्तनस्नानपानभोजनकर्मणि।
शीलितं खादिरं वारि सर्वत्वग्दोषनाशनम् ॥ ९६ ॥

लेप, उबटन, स्नान, पान तथा भोजनमें खादिरके जलका सेवन करनेसे समस्त त्वग्दोष नष्ट होते हैं॥९६॥

तिक्तषट्पलकं घृतम्।

निम्बं पटोलं दार्वीं दुरालभां तिक्तकरोहिणीं त्रिफलाम् ९७
कुर्यादर्धपलांशान्पर्पटकं त्रायमाणां च।
सलिलाढकसिद्धानां रसेऽष्टभागस्थिते क्षिपेत्पूते।
चन्दनकिराततिक्तकमागधिकात्रायमाणांश्च ॥ ९८ ॥
मुस्तावत्सकबीजं कल्कीकृतमर्धकार्षिकान्भागान्।
नवसर्पिषश्च षट् पलमेतत्सिद्धं घृतं पेयम् ॥ ९९ ॥
कुष्ठज्वरगुल्मार्शोग्रहणीपाण्डूवामयश्वयथून्।
पामाविसर्पपिडकाकण्डूगलगण्डनुत्सिद्धम् ॥ १०० ॥

नीमकी छाल, परवलकी पत्ती, दारुहल्दी, यवासा, कुटकी, त्रिफला, पित्तपापड़ा तथा त्रायमाणा प्रत्येक २ तोले, जल द्रवद्वैगुण्यात् २ आढक अर्थात् ६ सेर ३२ तोले मिलाकर अष्टमांश शेष क्वाथ बना उतार, छानकर २४ तो० नया घृत तथा चन्दन, चिरायता, छोटी पीपल, त्रायमाणा, नागरमोथा व इन्द्रयव प्रत्येक ६ माशेका कल्क छोड़कर घृत सिद्ध करना चाहिये। इसका मात्रासे सेवन करनेसे कुष्ठ, ज्वर, गुल्म, अर्श, ग्रहणी, पाण्डुरोग, शोथ, पामा, विसर्प, पिडका, कण्डू, और गलगण्ड रोग नष्ट होते हैं ॥ ९७-१०० ॥

पञ्चतिक्तकं घृतम्।

निम्बं पटोलं व्याघ्रीं च गुडूचीं वासकं तथा।
कुर्याद्दशपलान्भागानेकैकस्य सुकुट्टितान् ॥ १०१ ॥
जलद्रोणे विपक्तव्य यावत्पादावशेषितम्।
घृतप्रस्थं पचेत्तेन त्रिफलागर्भसंयुतम् ॥ १०२ ॥
पञ्चतिक्तमिदं ख्यातं सर्पिः कुष्ठविनाशनम्।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ १०३ ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव पानादेवापकर्षति।
दुष्टव्रणक्रिमीनर्शः पञ्चकासांश्च नाशयेत् ॥ १०४ ॥

नीम, परवल, छोटी कटेरी, गुर्च, तथा अडूसा प्रत्येक ४० तोला ले दुरकुचाकर जल १ द्रोणमें पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार, छानकर घी १ प्रस्थ तथा त्रिफलाका मिलित कल्क १६ तोला मिलाकर सिद्ध करना चाहिये, यह पञ्चतिक्तघृत कुष्ठ, वात, कफ, पित्तके समस्त रोग, दुष्ट व्रण, कीड़े और अर्शको पीनेसे ही नष्ट करता है ॥ १०१-१०४ ॥

तिक्तकं घृतम्।

त्रिफलाद्विनिशावासायासपर्पटकुलकान्।
त्रायन्तीकटुकानिम्बान्प्रत्येकं द्विपलोन्मितान् ॥ १०५ ॥
क्वाथयित्वा जलद्रोणे पादशेषेण तेन तु।
घृतप्रस्थं पचेत्कल्कैः पिप्पलीवन्यचन्दनैः ॥ १०६ ॥
त्रायन्तीशक्रभूनिम्बैस्तत्पीतं तिक्तकं घृतम्।
हन्ति कुष्ठज्वरार्शांसि श्वयथुं ग्रहणीगदम्।
पाण्डुरोगं विसर्पं च क्लीबानामपि शस्यते ॥ १०७ ॥

त्रिफला, हल्दी, दारुहल्दी, अडूसा, यवासा, पित्तपापड़ा, परवलकी पत्ती, त्रायमाण, कुटकी तथा नीमकी

छाल प्रत्येक ८ तोला, जल १५ सेर ४८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर घी १२८ तोला तथा छोटी पीपल, केवटीमोथा, चन्दन, त्रायमाण,इन्द्रयव व चिरायता प्रत्येक २ तोलाका कल्क छोडकर सिद्ध करना चाहिये । यह घृत कुष्ठ, ज्वर, अर्श, सूजन, ग्रहणीरोग, पाण्डुरोग और विसर्पको नष्ट करता है । नपुसकोंके लिये भी हितकर है ॥ १०५–१०७ ॥

महातिक्तकं घृतम् ।

सप्तच्छदं प्रतिविषां सम्पाकं तिक्तरोहिणीं पाठाम्॥१०८॥
मुस्तमुशीरं त्रिफलां पटोलपिचुमर्दपर्पटकम् ।
धन्वयवासं चन्दनमुपकुल्ये पद्मकं रजन्यौ च ।
षड्ग्रन्थां सविशालां शतावरीशारिवे चोभे ॥ १०९ ॥
वत्सकबीजं वासां मूर्वाममृतां किराततिक्तं च ।
कल्कान्कुर्यान्मतिमान्यष्ट्याह्वं त्रायमाणां च ॥ ११० ॥
कल्कश्चतुर्थभागो जलमष्टगुणं रसोऽमृतफलानाम् ।
द्विगुणो घृताच्च देयस्तत्सर्पिः पाययेत्सिद्धम् ॥ १११ ॥
कुष्ठानि रक्तपित्तं प्रबलान्यर्शांसि रक्तवाहीनि ।
विसर्पमम्लपित्तं वातासृक्पाण्डुरोगं च ॥ ११२ ॥
विस्फोटकान्सपामानुन्मादं कामलां ज्वरं पाण्डुम् ।
हृद्रोगगुल्मपिडकामसृग्दरं गण्डमालां च ॥ ११३ ॥
हन्यादेतत्सद्यः पीतं काले यथाबलं सर्पिः ।
योगशतैरप्यजितान्महाविकारान्महातिक्तम् ॥ ११४ ॥

सप्तपर्ण, अतीस, अमलतासका गूदा,कुटकी, पाढ, नागरमोथा, खश, त्रिफला, पटोल, निम्ब, पित्तपापडा, यवासा, चन्दन, छोटी व बडी पीपल, पद्माख, हल्दी, दारुहल्दी, वच, इन्द्रायण, शतावर, दोनों सारिवा इन्द्रयव, अडूसा, मूर्वा, गुर्च, चिरायता, तथा त्रायमाणका घीसे चतुर्थांश कल्क, जल अठगुना तथा परवलके फलोंका क्काथ विधिवत् बनाकर घीमें दूना छोडकर घी पकाना चाहिये । यह घृत सैंकडो योगोंसे असाध्य कुष्ठ, रक्तपित्त रक्तस्रावी अर्श, विसर्प, अम्लपित्त, वातरक्त, पाण्डुरोग विस्फोटक, पामा, उन्माद, कामला, ज्वर, पाण्डुरोग, हृद्रोग, गुल्म, पिडिका, रक्तप्रदर तथा गण्डमालाको बलानुसार सेवन करनेसे नष्ट करता है । इसे महातिक्तक घृत कहते हैं ॥ १०८–११४ ॥

महाखदिरं घृतम् ।

खदिरस्य तुलाः पञ्च शिंशपाशनयोस्तुले ।
तुलार्धाः सर्व एवैते करञ्जारिष्टवेतसाः ॥ ११५ ॥
पर्पटः कुटजश्चैव वृषः क्रिमिहरस्तथा ।
हरिद्रे कृतमालश्च गुडूची त्रिफला त्रिवृत् ॥ ११६ ॥
सप्तपर्णस्तु सक्षुण्णो दशद्रोणे च वारिणः ।
अष्टभागावशेषं तु कषायमवतारयेत् ॥ ११७ ॥
धात्रीरसं च तुल्यांशं सर्पिषश्चाढकं पचेत् ।
महातिक्तककल्कैश्च यथोक्तैः फलसंमितैः ॥ ११८ ॥
निहन्ति सर्वकुष्ठानि पानाभ्यङ्गनिषेवणात् ।
महाखदिरमित्येतत्परं कुष्ठविनाशनम् ॥ ११९ ॥

कत्था २५ सेर शीशम व विजैसार दोनों मिलाकर १० सेर तथा कञ्जा, नीमकी छाल, वेत, पित्तपापडा, कुरैयेकी छाल, आवला, वायविडग, हल्दी, दारुहल्दी, गुर्च, त्रिफला, निसोथ, व सप्तपर्ण प्रत्येक २॥ सेर, जल १० द्रोण द्रवद्वैगुण्य कर २५६ सेरमें मिलाकर पकाना चाहिये, अष्टमांश शेष रहनेपर उतार कर छानना चाहिये । फिर आवलेका रस ६ सेर ३२ तो० तथा घी ६ सेर ३२ तोला तथा महातिक्त घृतकी प्रत्येक औषधिका कल्क ४ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । यह घृत पीने तथा मालिश करनेसे समस्त कुष्ठ नष्ट होते हैं । यह महाखदिर नामक घृत कुष्ठके नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ॥ ११५ ॥ ११९ ॥

पञ्चतिक्तकगुग्गुलुः ।

निम्बामृतावृषपटोलनिदिग्धिकानां
भागान्पृथग्दशपलान्विपचेद्घटेऽपाम् ।
अष्टांशशेषितजलेन सुनि स्रुतेन
प्रस्थं घृतस्य विपचेत्पिचुभागकल्कैः ॥१२०॥
पाठाविडङ्गसुरदारुगजोपकुल्या-
द्विक्षारनागरनिशामिशिचव्यकुष्ठैः ।
तेजोवतीमरिचवत्सकदीप्यकाग्नि-
रोहिण्यरुष्करवचाकणमूलयुक्तैः ॥ १२१ ॥
मञ्जिष्ठयाऽतिविषया वरया यमान्या
संशुद्धगुग्गुलुपलैरपि पञ्चसङ्ख्यैः ।
तत्सेवितं विषमतिप्रबलं समीर
सन्ध्यस्थिमज्जगतमप्यथ कुष्ठमीदृक् ॥१२२॥
नाडीव्रणार्बुदभगन्दरगण्डमाला
जत्रूर्ध्वसर्वगतगुल्मगुदोत्थमेहान् ।
यक्ष्मारुचिश्वसनपीनसकासशोष-
हृत्पाण्डुरोगगलविद्रधिवातरक्तम् ॥१२३॥

नीमकी छाल, गुर्च, अडूसा, परवल, तथा छोटी कटेरी प्रत्येक ४० तो० लेकर जल २५ सेर ४८ तो०

मिलाकर पकाना चाहिये । अष्टमांश रह जानेपर उतार छानकर घी १२८ तो० तथा पाढ,वायविडङ्ग, देवदारु, गजपीपल, जवाखार, सज्जीखार, सोंठ, हल्दी सौंफ, चव्य, कूठ, तेजोवती, मरिच, कुडेकी छाल, अजवायन, चीतकी जड, कुटकी, भिलावा, दूधिया, वच, पिपरामूल, मञ्जीठ,अतीस, त्रिफला, व अजमोद प्रत्येकका एक तोला महीन पिसा हुआ कल्क तथा शुद्ध गुग्गुलु २० तोला मिलाकर पकाना चाहिये । यह विष, अति प्रबल वायु सन्धि अस्थि तथा मज्जागत कुष्ठ, नाडीव्रण, अर्बुद, भगन्दर, गण्डमाला, जत्रूर्ध्वजरोग, सर्वगतरोग, गुल्म, अर्श, प्रमेह, यक्ष्मा, अरुचि, श्वास पीनस, कास, शोथ,हृद्रोग, पाण्डुरोग, गलविद्रधि और वातरक्तको नष्ट करता है ॥ १२०–१२३ ॥

वज्रकं घृतम् ।

वासागुडूचीत्रिफलापटोल-
करञ्जनिम्बाशनकृष्णवेत्रम् ।
तत्क्वाथकल्केन घृतं विपक्वं
तद्वज्रकं कुष्ठहरं प्रदिष्टम् ॥ १२४ ॥
विशीर्णकर्णाङ्गुलिहस्तपादः
क्रिम्यर्दितो भिन्नगलोऽपि मर्त्यः ।
पौराणिकीं कान्तिमवाप्य जीवे-
द्व्याहतो वर्षशतं च कुष्ठी ॥ १२५ ॥

अडूसा, गुर्च, त्रिफला, परवलकी पत्ती, कञ्जा, नीमकी छाल, विजैसार तथा कालवेतके क्वाथ व कल्कसे पकाया घृत वज्रक कहा जाता है । यह कुष्ठको नष्ट करता है, इससे कीडोंसे पीडित स्वरभेदयुक्त कुष्ठी पुनः पुरानी कान्तिको प्राप्त कर १०० वर्षतक सुखपूर्वक जीता है ॥ १२४ ॥ १२५ ॥

आरग्वधादितैलम् ।

आरग्वधं धवं कुष्ठं हरितालं मनःशिलाम् ।
रजनीद्वयसंयुक्तं पचेत्तैलं विधानवित् ।
एतेनाभ्यञ्जयेच्छ्वित्री क्षिप्रं श्वित्रं विनश्यति ॥१२६॥

अमलतास, धायके फूल, कूठ, हरिताल, मैनसिल, हल्दी तथा दारुहल्दीके कल्कके साथ तैल पकाकर श्वित्र वालोंको मालिश करना चाहिये इससे श्वित्र नष्ट होता है ॥ १२६ ॥

तृणकतैलम् ।

मञ्जिष्ठाकुष्ठनिशाचक्रमर्दारग्वधपल्लवैः ।
तृणकस्वरसे सिद्धं तैलं कुष्ठहरं कटु ॥ १२७ ॥

मञ्जीठ, कूठ, हल्दी, चकवड तथा अमलतासके पत्तोंका कल्क और तृणपञ्चमूलका स्वरस छोडकर सिद्ध कडुआ तैल कुष्ठको नष्ट करता है ॥ १२७ ॥

महातृणकतैलम् ।

हरिद्रात्रिफलादारुद्वयमारकचित्रकम् ।
सप्तच्छदश्च निम्बत्वक्करञ्जो वालकं नखी ॥ १२८ ॥
कुष्ठमेडगजावीजं लाङ्गली गणिकारिका ॥ १२९ ॥
जातीपत्रं च दार्वी च हरितालं मनःशिला ।
कलिङ्गा तिलपत्रं च अर्कक्षीरं च गुग्गुलुः ॥ १३० ॥
गुडत्वङ्मरिचं चैव कुङ्कुमं ग्रन्थिपर्णकम् ।
सर्जपर्णाशखदिरविडङ्गं पिप्पलीं वचाम् ॥ १३१ ॥
घनरेण्वमृतायष्टिकेशरं ध्यामकं विषम् ।
विश्वकट्फलमञ्जिष्ठावोलस्तुम्बीफलं तथा ॥ १३२ ॥
स्नुहीसम्पाकयोः पत्रं वाकुचीवीजमांसिके ।
एलाज्योतिष्मतीमूलं शिरीषो गोमयाद्रसः ॥ १३३ ॥
चन्दने कुष्ठनिर्गुण्डी विशाला मल्लिकाद्वयम् ।
वासाश्वगन्धा ब्राह्मी च स्याद्वा चम्पककट्फलम् १३४॥
एतैः कल्कैः पचेत्तैलं तृणकस्वरसद्रवम् ।
सर्वत्वग्दोषहरणं महातृणकसञ्ज्ञितम् ॥ १३५ ॥

हल्दी, त्रिफला, देवदारु, कनेर, चीतकी जड, सप्तपर्ण, नीमकी छाल, कञ्जा, सुगन्धवाला, नख, कूठ, पवाडके बीज, कलिहारी, अरणी, जावित्री, दारुहल्दी, हरताल, मैनशिल, इन्द्रयव, तिलकी पत्ती, आकका दूध, गुग्गुलु, दालचीनी, काली मिर्च, केशर, भटेउर, राल, छोटी तुलसी, कत्था, वायविडंग, छोटी पीपल, दूधिया वच, नागरमोथा, सम्भालूके बीज, गुर्च, मौरेठी, नागकेशर, रोहिषघास, शुद्ध सींगिया, सोंठ, कैफरा, मञ्जीठ, बोल, तोम्बीके बीज, थूहरके पत्ते, अमलतासके पत्ते, वकुचीके बीज, जटामासी, छोटी इलायची, मालकागनीकी जड, सिरसाकी छाल, गोवरका रस,सफेद चन्दन, लाल चन्दन, कूठ, सम्भालूकी पत्ती, इन्द्रायणकी जड, चमेलीके फूल, वेलाके फूल अडूसा, असगन्ध, ब्राह्मी, गन्धाविरोजा चम्पाके फूल व कैफराका कल्क और तृणपञ्चमूलका स्वरस छोडकर तैल पकाना चाहिये । यह तैल समस्त त्वग्दोषोंको नष्ट करता है ॥ १२८–१३५ ॥

वज्रकं तैलम् ।

सप्तपर्णकरञ्जार्कमालतीकरवीरजम् ।
मूलं स्नुहीशिरीषाभ्यां चित्रकास्फोतयोरपि ॥ १३६ ॥
करञ्जवीजं त्रिफला त्रिकटु रजनीद्वयम् ।
सिद्धार्थकं विडङ्गं च प्रपुन्नाडतिलैः सह ॥ १३७ ॥

मूत्रपिष्टैः पचेत्तैलमेभि कुष्ठविनाशनम् ।
अभ्यङ्गाद्व्रणकं नाम नाडीदुष्टव्रणापहम् ॥ १३८ ॥

सप्तपर्ण, कञ्जा, आक, चमेली और कनेरकी जड तथा थूहर, सिरसा और चीता व आस्फोतेकी जड, कञ्जाके बीज, त्रिफला, त्रिकटु, हल्दी, दारुहल्दी, सरसों, वायविडङ्ग, पवांडके बीज तथा काले तिल इनको गोमूत्रमें पीस कल्क बना छोडकर जलके साथ तैल पकाना चाहिये यह तैल मालिश करनेसे कुष्ठ तथा नाडीव्रण व दुष्ट व्रणको नष्ट करता है ॥ १३६-१३८ ॥

मरिचाद्यं तैलम् ।

मरिचालशिलाह्वार्कपयोश्वारिजटात्रिवृत् ।
शकृद्रसविशालारुड्निशायुग्दारुचन्दनैः ॥ १३९ ॥
कटुतैलात्पचेत्प्रस्थं द्व्यक्षैर्विषपलान्वितैः ।
सगोमूत्रं तदभ्यङ्गाद्दद्रुश्वित्रविनाशनम् ।
सर्वेष्वपि च कुष्ठेषु तैलमेतत्प्रशस्यते ॥ १४० ॥

कालीमिर्च, हरताल, मैनसिल, आकका दूध, कनेरकी जड, निसोथ, गोवरका रस, इन्द्रायण, कूट, हल्दी, दारुहल्दी, देवदारु तथा चन्दन प्रत्येक दो तोला, विष ४ तोला, कडुआ तैल १२८ तोला तथा चतुर्गुण गोमूत्र छोडकर पकाना चाहिये । यह तैल मालिश करनेसे दद्रु, श्वित्र तथा समस्त कुष्ठोंको नष्ट करता है ॥१३९॥१४०॥

बृहन्मरिचाद्यं तैलम् ।

मरिचं त्रिवृता दन्ती क्षीरमार्कं शकृद्रसः ।
देवदारु हरिद्रे द्वे मांसी कुष्ठं सचन्दनम् ॥ १४१ ॥
विशाला करवीरं च हरितालं मनःशिला ।
चित्रको लाङ्गलाख्या च विडङ्गं चक्रमर्दकम् ॥ १४२ ॥
शिरीषं कुटजो निम्बं सप्तपर्णस्नुहामृता ।
सम्पाको नक्तमालोऽब्दं खदिरं पिप्पली वचा ॥१४३॥
ज्योतिष्मती च पलिका विषस्य द्विपलं भवेत् ।
आढकं कटुतैलस्य गोमूत्रं तु चतुर्गुणम् ॥ १४४ ॥
मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
पक्त्वा तैलवरं ह्येतन्म्रक्षयेत्कौष्ठिकान्व्रणान् ॥ १४५ ॥
पामाविचर्चिकादद्रुकण्डूविस्फोटकानि च ।
वलयः पलितं छायानीलीव्यङ्गस्तथैव च ।
अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति सौकुमार्यं च जायते ॥ १४६ ॥
प्रथमे वयसि स्त्रीणां यासां नस्यं तु दीयते ।
परामपि जरां प्राप्य न स्तना यान्ति नम्रताम् ॥ १४७॥
बलीवर्दस्तुरगो वा गजो वा वायुपीडितः ।
एभिरभ्यञ्जनैर्गाढं भवेन्मारुतविक्रमः ॥ १४८ ॥

काली मिर्च, निसोथ, दन्ती, आकका दूध, गोवरका रस, देवदारु, हल्दी, दारुहल्दी, जटामांसी, कूठ, चन्दन, इन्द्रायण, कनेरकी छाल, हरताल, मैनशिल, चीतकी जड कलिहारी, वायविडंग, चकवडके बीज, सिरसेकी छाल, कुरैयेकी छाल, नीमकी छाल, सतौना, सेहुण्ड, गुर्च, अमलतासके पत्ते, कञ्जा, नागरमोथा, कत्था, छोटी पीपल, दूधिया बच, तथा मालकांगनी प्रत्येक ४ तोला, सींगिया ८ तोला, कडुआ तैल १ आढक (द्रवद्वैगुण्यकर ६ सेर ३२ तोला) गोमूत्र २५ सेर ४८ तोला छोडकर मिट्टी या लौहके पात्रमे मन्द आंचसे पकाना चाहिये । इस उत्तम तैलको कुष्ठवालोंके व्रणोमें लगाना चाहिये । इससे पामा, बिवाई, दाद, खुजली, फफोले झुर्रिया बालोंकी सफेदी, स्यउहां तथा झांई नष्ट होते हैं और शरीर सुन्दर होता है । जिन स्त्रियोंको छोटी अवस्थामे इस तैलका नस्य दिया जाता है उनके बहुत बुढापामे भी स्तन कडे बने रहते हैं । वायुसे पीडित बैल घोडा अथवा हाथी इसकी मालिशसे वायुके समान वेगवाला होता है ॥ १४१-१४८ ॥

विषतैलम् ।

नक्तमालं हरिद्रे द्वे अर्कस्तगरमेव च ।
करवीरं वचाकुष्ठमास्फोता रक्तचन्दनम् ॥ १४९ ॥
मालती सप्तपर्णं च मञ्जिष्ठा सिन्धुवारिका ।
एषामर्धपलान्भागान्विषस्यापि पलं तथा ॥ १५० ॥
चतुर्गुणे गवां मूत्रे तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
श्वित्रविस्फोटकिटिभकीटलूताविचर्चिकाः ॥ १५१ ॥
कण्डूकच्छुविकाराश्च ये व्रणा विषदूषिताः ।
विषतैलमिदं नाम्ना सर्वव्रणविशोधनम् ॥१५२ ॥

कञ्जा, हल्दी, दारुहल्दी, आक, तगर, कनेर, बच, कूठ, आस्फोता, लालचन्दन, चमेली, सतौना, मजीठ तथा सम्भालू प्रत्येक २ तोला, सींगिया ४ तोला, तैल, एक प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यसे १ सेर ९ छ. ३ तोला) चतुर्गुण गोमूत्र मिलाकर पकाना चाहिये । यह तैल सफेद कुष्ठ, फफोले, किटिभ, कीट, मकडीका विष, विचर्चिका, खुजली, कच्छू तथा विषसे दूषित व्रण इससे नष्ट होते हैं । यह विषतैल समस्त व्रणोंको शुद्ध करता है ॥ १४९-१५२ ॥

करवीराद्यं तैलम्।

श्वेतकरवीरकरसो गोमूत्रं चित्रक विडङ्गं च।
कुष्ठेषु तैलयोग.सिद्धोऽयं संमतो भिषजाम्॥१५३॥

सफेद कनेरका रस, गोमूत्र, चीतकी जड और वायविडग मिलाकर विधिपूर्वक सिद्ध तैल सब कुष्ठोंको नष्ट करनेवाला है ऐसा वैद्यलोग बताते हैं॥ १५३॥

अपरं करवीराद्यं तैलम्।

श्वेतकरवीरमूलं विपाशसाधित गवा मूत्रे।
चर्मदलसिध्मपामाविस्फोटक्रिमिकिटिभजित्तैलम् १५४॥

सफेद कनेरकी जड और सींगियाका कल्क तथा गोमूत्र मिलाकर सिद्ध तैल चर्मदल, खुजली, सिध्मकुष्ठ, फफोले, कीडे और किटिभकुष्ठको नष्ट करता है॥१५४॥

सिन्दूराद्यं तैलम्।

सिन्दूरार्धपल पिष्ट्वा जीरकस्य पल तथा।
कटुतैल पचेन्मार्नी सद्यः पामाहरं परम्॥ १५५॥

सिन्दूर २ तोला, जीरा ४ तोला, कडुआ तैल ३२ तो० मिला पकाकर लगानेसे तत्काल खुजली नष्ट होती है॥ १५५॥

महासिन्दूराद्यं तैलम्।

सिन्दूरं चन्दनं मांसी विडंग रजनीद्वयम्।
प्रियङ्गु पद्मक कुष्ठ मञ्जिष्ठा खदिर वचाम्॥ १५६॥
जात्यर्कत्रिवृतानिम्बकरञ्जविषमेव च।
कृष्णवेत्रकलोध्र च प्रपुन्नाड च सहरेत्॥ १५७॥
श्लक्ष्णपिष्टानि सर्वाणि योजयेत्तैलमात्रया।
अभ्यङ्गेन प्रयुजीत सर्वकुष्ठविनाशनम्॥ १५८॥
पामाविचर्चिकाकण्डूविसर्पादिविनाशनम्।
रक्तपित्तोत्थितान्हन्ति रोगानेवविधान्बहून्॥ १५९॥

सिन्दूर, चन्दन, जटामासी, वायविडग, हल्दी, दारुहल्दी, फूलप्रियङ्गु, पद्माख, कूठ, मजीठ, कत्था वच, चमेली, आक, निसोथ, नीमकी छाल, कञ्जा, सींगिया, काला बेत, लोध तथा पवाडके बीज सबको महीन पीस तैल मिलाकर पकाना चाहिये। इसकी मालिश करनेसे समस्त कुष्ठ, पामा, विचर्चिका, कण्डू, विसर्प तथा रक्तपित्त रोग नष्ट होते हैं॥१५६-१५९॥

आदित्यपाकं तैलम्।

मञ्जिष्ठात्रिफलालाक्षानिशागन्धशिलालकैः।
चूर्णितैस्तैलमादित्यपाकं पामाहर परम्॥ १६०॥

मञ्जीठ, त्रिफला, लाख, हल्दी, मनशिल, तथा गन्धकका चूर्ण कर तैल मिला सूर्यकी किरणोसे (७दिनतक) पकाना चाहिये। यह तैल पामाको नष्ट करता है १६०

दूर्वाद्यं तैलम्।

स्वरसे चैव दूर्वाया पचेत्तैलं चतुर्गुणे।
कच्छूविचर्चिकापामा अभ्यङ्गादेव नाशयेत्॥ १६१॥

दूबके स्वरसमें चतुर्थांश तेल मिला पकाकर मालिश करनेसे कच्छू, बिवाई और पामा नष्ट होती है १६१॥

अर्कतैलम्।

अर्कपत्ररसे पक्वं कटुतैल निशायुतम्।
मन.शिलायुत वापि पामाकच्छ्वादिनाशनम्॥१६२॥

आकके पत्तोके रस और हल्दी अथवा मनशिलके कल्कके साथ सिद्ध तैल पामा, कच्छू आदिको नष्ट करता है॥ १६२॥

गण्डीराद्यं तैलम्।

गण्डीरिकाचित्रकमार्कवार्क कुष्ठद्रुमत्वग्लवणैः समूत्रैः।
तैलं पचेन्मण्डलदद्रुकुष्ठदुष्टव्रणारुःकिटिभापहारि १६३॥

थूहरका दूध, चीतकी जड, भागरा, आक, कूठ तथा आमलतासकी छाल,लवण और गोमूत्र मिलाकर सिद्ध किया गया तैल मण्डल, दद्रु, कुष्ठ, दुष्ट व्रण, अरुंषिका और किटिभको नष्ट करता है॥ १६३॥

चित्रकादितैलम्।

चित्रकस्याथ निर्गुण्ड्या हयमारस्य मूलत।
नाडी च बीजाद्विपत काञ्जिपिष्ट पल पलम्॥१६४॥
करञ्जतैलाष्टपलं काञ्जिकस्य पलं पुन।
मिश्रित सूर्यसन्तप्त तैल कुष्ठव्रणास्रजित्॥ १६५॥

चीतकी जड, सम्भालूकी जड, कनेरकी जड, नाडीचके बीज, तथा सींगिया प्रत्येक ४ तोला काञ्जीमें पीस, कञ्जाका तैल ३२ तोला और काञ्जी ४ तोला, मिलाकर सूर्यकी किरणोंमे तपाना चाहिये यह तैल कुष्ठ, व्रण और रक्तदोषको नष्ट करता है॥ १६४॥ १६५॥

सोमराजीतैलम्।

सोमराजी हरिद्रे द्वे सर्षपारग्वध गदम्।
प्रपुन्नाडगजावीज गर्भं दत्त्वा विपाचयेत्॥ १६६॥
तैल सर्षपसम्भूतं नाडीदुष्टव्रणापहम्।
अनेनाशु प्रशाम्यन्ति कुष्ठान्यष्टादशैव तु॥ १६७॥

नीलिकापिडकाव्यङ्ग गम्भीरं वातशोणितम् ।
कण्डूकच्छूप्रशमनं कच्छूपामाविनाशनम् ॥ १६८ ॥

बकुची, हल्दी, दारुहल्दी, सरसों, अमलतास, कूठ, रुखा तथा पवाडके बीजका कल्क छोडकर सरसोंका तैल पकाना चाहिये । यह तैल नाडीव्रण, दुष्ट व्रण, अठारह प्रकारके कुष्ठ, झाईं, फुंसिया, स्यउहा, गम्भीर वातरक्त तथा खुजली आदि नष्ट करता है ॥ १६६–१६८ ॥

सामान्यनियमः ।

पक्षात्पक्षाच्छर्दनान्यभ्युपेया-
न्मासान्मासात्स्रंसनं चाप्यधस्तात् ।
त्र्यहात्त्र्यहान्नस्ततश्चावपीडा-
न्मासेष्वसृङ्मोक्षयेत्षट्सु षट्सु ॥ १६९ ॥

पन्द्रह, पन्द्रह दिनमें वमन करना चाहिये । एक एक महीनेमें विरेचन लेना चाहिये । तीन तीन दिनमें अवपीडक नस्य लेना चाहिये । तथा छः छः महीनेमे शिराव्यध करना (फस्त खोलना) चाहिये ॥ १६९ ॥

पथ्यम् ।

योषिन्मांससुरात्यागः शालिमुद्गयवादयः ।
पुराणास्तिक्तशाकं च जाङ्गलं कुष्ठिनां हितम् ॥ १७० ॥

स्त्रीगमन, मांस और शराबका त्याग, पुराने चावल, मूग, यव तथा जगली तिक्तशाक कुष्ठवालोंको हितकर होते है ॥ १७० ॥

इति कुष्ठाधिकारः समाप्तः ।

अथोदर्दकोठशीतपित्ताधिकारः ।

साधारणः क्रमः ।

अभ्यङ्गः कटुतैलेन सेकश्चोष्णाम्बुभिस्ततः ।
उदर्दे वमनं कार्यं पटोलारिष्टवारिणा ॥ १ ॥

उदर्दमें कडुए तैलकी मालिश कर गरम जलसे सिंचन करना चाहिये । तथा परवलकी पत्ती और नीमकी पत्ती वमन कराना चाहिये ॥ १ ॥

विरेचनयोगः ।

त्रिफलापुरकृष्णाभिर्विरेकश्चात्र शस्यते ।
त्रिफलां क्षौद्रसहितां पिबेद्वा नवकार्षिकम् ।
विसर्पोक्तममृतादि भिषगत्रापि योजयेत् ॥ २ ॥

त्रिफला, गुग्गुलु और छोटी पीपलसे विरेचन लेना चाहिये । अथवा शहदके साथ त्रिफला अथवा नवकार्षिक क्वाथ (वातरक्तोक्त) विसर्पोक्त अमृतादि क्वाथका प्रयोग करे ॥ २ ॥

कंचन योगः ।

सितां मधुकसंयुक्तां गुडमामलकैः सह ।
सगुडं दीप्यकं यस्तु खादेत्पथ्यान्नभुङ्नरः ॥ ३ ॥
तस्य नश्यति सप्ताहादुदर्दः सर्वदेहजः ।

मौरेठीके साथ मिश्री अथवा आंवलाके साथ गुड अथवा गुडके साथ अजवायन पथ्यान्न सेवन करते हुए जो मनुष्य खाता है उसका उदर्द सात दिनमें नष्ट हो जाता है ॥ ३ ॥–

उद्वर्तनं लेपश्च ।

सिद्धार्थरजनीकल्कैः प्रपुन्नाडतिलैः सह ॥ ४ ॥
कटुतैलेन संमिश्रमेतदुद्वर्तनं हितम् ।
दूर्वानिशायुतो लेपः कच्छूपामाविनाशनः ॥ ५ ॥
क्रिमिदद्रुहरश्चैव शीतपित्तहरः परः ।

सरसों, हल्दी, पवाडके बीज तथा तिलका कल्क, कडुआ तैल मिलाकर उबटन करना चाहिये । इसी प्रकार दूब और हल्दीका लेप कच्छू पामा तथा क्रिमि, दद्रु, और शीतपित्तको नष्ट करता है ॥ ४ ॥ ५ ॥–

अग्निमन्थमूललेपः ।

अग्निमन्थभवं मूलं पिष्टं पीतं च सर्पिषा ॥ ६ ॥
शीतपित्तोदर्दकोठान्सप्ताहादेव नाशयेत् ।

अरणीकी जड पीसकर घीके साथ पीनेसे सात दिनोंमें शीतपित्त, उदर्द और कोठको नष्ट करती है ॥ ६ ॥–

कोठसामान्यचिकित्सा ।

कुष्ठोक्तं च कर्मं कुर्यादम्लपित्तघ्नमेव च ॥ ७ ॥
उदर्दोक्ता क्रिया चापि कोठरोगे समासतः ।
सर्पिष्पीत्वा महातिक्तं कार्यं शोणितमोक्षणम् ॥ ८ ॥

कोठरोगमें कुष्ठोक्त, अम्लपित्तघ्न तथा उदर्दोक्त चिकित्सा करनी चाहिये । तथा महातिक्तघृतको पीकर फस्त खुलाना चाहिये ॥ ७ ॥ ८ ॥

निम्बपत्रयोगः ।

निम्बस्य पत्राणि सदा घृतेन
धात्रीविमिश्राण्यथवोपयुञ्ज्यात् ।
विस्फोटकोठक्षतशीतपित्तं
कण्डूस्रपित्तं रकसां च हन्यात् ॥ ९ ॥

नीमके पत्तोंके चूर्णको सदा घीके साथ अथवा आंवलेके साथ उपयोग करना चाहिये । इससे फफोले, ददरे, व्रण, शीतपित्त, खुजली और रक्तपित्त तथा रकसा नागके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ ९ ॥

विविधा योगाः ।

क्षारसिन्धूत्थतैलैश्च गात्राभ्यङ्गं प्रयोजयेत् ।
गम्भारिकाफलं पक्वं शुष्कमुत्स्वेदितं पुनः ॥ १० ॥
क्षीरेण शीतपित्तघ्नं खादितं पथ्यसेविना ।
तैलोद्वर्तनयोगेन योज्य एलादिको गणः ॥ ११ ॥
शुष्कमूलकयूषेण कौलत्थेन रसेन वा ।
भोजनं सर्वदा कार्यं लावतित्तिरिजेन वा ॥ १२ ॥

क्षार और सेंधानमकके चूर्णको तेलमें मिलाकर मालिश करना चाहिये । खम्भारका पका फल सूखा हुआ उबालकर दूधके साथ खाने तथा पथ्यसे रहनेसे शीतपित्त नष्ट होती है तथा तैलके साथ एलादिगणका उबटन लगाना चाहिये । सूखी मूलीके यूष, कुलथीके रस अथवा लवा व तीतरके मांसरसके साथ सदा भोजन करना चाहिये ॥ १०-१२ ॥

सामान्यचिकित्सा ।

शीतलान्यन्नपानानि बुद्ध्वा दोषगतिं भिषक् ।
उष्णानि वा यथाकालं शीतपित्ते प्रयोजयेत् ॥ १३ ॥

दोषोंकी गति समझकर शीत अथवा उष्ण अन्नपानका यथासमय प्रयोग करावे ॥ १३ ॥

इत्युदर्दकोठशीतपित्ताधिकारः समाप्तः ।

अथाम्लपित्ताधिकारः ।



सामान्यचिकित्सा ।

वान्तिं कृत्वाम्लपित्ते तु विरेकं मृदु कारयेत् ।
सम्यग्वान्तविरिक्तस्य सुस्निग्धस्यानुवासनम् ॥ १ ॥
आस्थापनं चिरोद्भूते देयं दोषाद्यपेक्षया ।
क्रिया शुद्धस्य शमनी ह्यनुबन्धव्यपेक्षया ॥ २ ॥
दोषसंसर्गजे कार्या भेषजाहारकल्पना ।
ऊर्ध्वगं वमनैर्धीमानधोगं रेचनैर्हरेत् ।
तिक्तभूयिष्ठमाहारं पानं वापि प्रकल्पयेत् ॥ ३ ॥
यवगोधूमविकृतीस्तीक्ष्णसंस्कारवर्जिताः ।
यथास्वं लाजसक्तून्वा सितामधुयुतान्पिबेत् ॥ ४ ॥

अम्लपित्तमें वमन करनेके अनन्तर मृदु विरेचन करना चाहिये । ठीक वमन विरेचन कर लेनेके बाद स्नेहन कर पुराने अम्लपित्तमें दोषादिके अनुसार अनुवासन या आस्थापन बस्ति देना चाहिये । शुद्ध हो जानेपर शान्त करनेवाली औषध व आहारकी कल्पना करनी चाहिये । तथा ऊर्ध्वग अम्लपित्तको वमनसे और अधोगको विरेचनसे शान्त करना चाहिये । तथा तिक्तरसयुक्त आहार अथवा पान देना चाहिये । यव तथा गेहूंके पदार्थ तीक्ष्णसंस्कारके विना अथवा खीलके सत्तू मिश्री व शहद मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ १-४ ॥

यवादिक्काथः ।

निस्तुषयववृषधात्रीक्काथस्त्रिसुगन्धिमधुयुतः पीतः ।
अपनयति चाम्लपित्तं यदि भुङ्क्ते मुद्गयूषेण ॥ ५ ॥

भूसीरहित यव, अडूसा तथा आवलेका काढा, दालचीनी, तेजपात व इलायचीका चूर्ण तथा शहद मिलाकर पीनेसे तथा मूंगकी दालके साथ भोजन करनेसे अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ ५ ॥

शृङ्गवेरादिक्काथः ।

कफपित्तवमीकण्डूज्वरविस्फोटदाहहा ।
पाचनो दीपनः क्काथः शृङ्गवेरपटोलयोः ॥ ६ ॥

अदरख व परवलका क्काथ कफपित्तज वमन, खुजली, ज्वर, फफोले, व दाहको नष्ट करता, पाचन तथा दीपन है ॥ ६ ॥

पटोलादिक्काथः ।

पटोलं नागरं धान्यं क्काथयित्वा जलं पिबेत् ।
कण्डूपामार्तिशूलघ्नं कफपित्ताग्निमान्द्यजित् ॥ ७ ॥

परवल, सोंठ व धनियांका क्काथ पीनेसे खुजली पामा, कफ, पित्त व अग्निमान्द्यको नष्ट करता है ॥ ७ ॥

अपरः पटोलादिः ।

पटोलविश्वामृतरोहिणीकृतं जलं पिबेत्पित्तकफोच्छ्रये तु ।
शूलभ्रमारोचकवह्निमान्द्यदाहज्वरच्छर्दिनिवारणं तत् ॥ ८ ॥

परवल, सोंठ, गुर्च तथा कुटकीका क्काथ पित्तकफाधिक अम्लपित्तमें देना चाहिये । यह शूल, भ्रम, अरोचक, अग्निमान्द्य, दाह, ज्वर और वमनको नष्ट करता है ॥ ८ ॥

अपरो यवादिः ।

यवकृष्णापटोलानां क्वाथं क्षौद्रयुतं पिबेत् ।
नाशयेदम्लपित्तं च अरुचिं च वमिं तथा ॥ ९ ॥

यव, छोटी पीपल व परवलके क्वाथको शहद मिलाकर पीनेसे अम्लपित्त, अरुचि तथा वमन नष्ट होता है ॥ ९ ॥

वासादिक्काथः ।

वासामृतापर्पटकनिम्बभूनिम्बमार्कवैः ।
त्रिफलाकुलकैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लनाशनः ॥ १० ॥

अडूसा, गुर्च, पित्तपापडा, नीमकी छाल, चिरायता, भागरा, त्रिफला तथा परवलका क्वाथ शहदके साथ लेनेसे अम्लपित्तको नष्ट करता है ॥ १० ॥

फलत्रिकादिक्काथः ।

फलत्रिकं पटोलं च तिक्ताक्काथः सितायुतः ।
पीतः क्षौद्रकमधुकाक्तो ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित् ॥ ११ ॥

त्रिफला, परवल तथा कुटकीका काढा, मिश्री, मौरेठी और शहदके साथ ज्वर, वमन व अम्लपित्तको नष्ट करता है ॥ ११ ॥

पथ्यादिचूर्णम् ।

पथ्याभृङ्गरजश्चूर्णं युक्तं जीर्णगुडेन तु ।
जयेदम्लपित्तजन्यां छर्दिमन्नविदाहजाम् ॥ १२ ॥

छोटी हर्र व भागरेका चूर्ण पुराने गुडके साथ अम्लपित्त तथा अन्नविदाहजन्य छर्दिको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

वासादिगुग्गुलुः ।

वासानिम्बपटोलत्रिफलाशनयासयोजितो जयति ।
अधिककफमम्लपित्तं प्रयोजितो गुग्गुलुः क्रमेण ॥ १३॥

अडूसा, नीमकी छाल, परवल त्रिफला तथा विजैसार युक्त गुग्गुलु क्रमशः अधिककफयुक्त अम्लपित्तको नष्ट करता है ॥ १३ ॥

विविधा योगाः ।

छिन्नाखदिरयष्ट्याह्वदार्व्यम्भो वा मधुद्रवम् ।
सद्राक्षामभयां खादेत्सक्षौद्रां सगुडां च ताम् ॥ १४ ॥
कटुका सितावलेह्या पटोलविश्वं च क्षौद्रसयुक्तम् ।
रक्तस्रुतौ च युक्त्या वा खण्डकूष्माण्डकं श्रेष्ठम् ॥ १५ ॥

गुर्च, कत्था, मौरेठी व दारुहल्दीके क्वाथको शहदके साथ अथवा हरडके चूर्णको मुनक्का, शहद व पुराने गुडके साथ मिलाकर सेवन करनेसे अथवा कुटकीके चूर्णको मिश्रीके साथ अथवा परवल तथा सोठके चूर्णको शहदके साथ खानेसे अम्लपित्त दूर होता है तथा रक्त गिरनेपर खण्डकूष्माण्डका प्रयोग उत्तम है ॥ १४ ॥ १५ ॥

अपरःपटोलादिः ।

पटोलधन्याकमहौषधाब्दैः
कृतः कषायो विनिहन्ति शीघ्रम् ।
मन्दानलं पित्तबलासदाह-
च्छर्दिज्वरामानिलशूलरोगान् ॥ १६ ॥

परवल, धनिया, सोठ तथा नागरमोथाका क्वाथ शीघ्र ही मन्दाग्नि, पित्त, कफ, दाह वमन, ज्वर, आमवात और शूल आदि रोगोंको नष्ट करता है ॥ १६ ॥

गुडूच्यादिक्कायः ।

छिन्नोद्भवानिम्बपटोलपत्रं
फलत्रिकं सुक्वथितं सुशीतम् ।
क्षौद्रान्वितं पित्तमनेकरूपं
सुदारुणं हन्ति हि चाम्लपित्तम् ॥ १७ ॥

गुर्च, नीमकी छाल, परवलकी पत्ती तथा त्रिफलाका क्वाथ बनाय ठण्ढा होनेपर शहद मिलाकर पीनेसे अनेक प्रकारका पित्तरोग तथा अम्ल पित्त नष्ट होता है ॥ १७ ॥

अन्ये योगाः ।

पटोलत्रिफलानिम्बशृतं मधुयुतं पिबेत् ।
पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहशूलोपशान्तये ॥ १८ ॥
सिंहास्यामृतभण्टाकीक्वाथं पीत्वा समाक्षिकम् ।
अम्लपित्तं जयेज्जन्तुः कासं श्वासं ज्वरं वमिम् ॥१९॥
वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च ।
अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं गुडकूष्माण्डकं तथा ॥ २० ॥
पक्तिशूलापहा योगास्तथा खण्डामलक्यपि ।
पिप्पलीमधुसयुक्ता चाम्लपित्तविनाशिनी ॥२१॥
जम्बीरस्वरसः पीतः सायं हन्त्यम्लपित्तकम् ॥ २२ ॥

परवल, त्रिफला तथा नीमके क्वाथको शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकफज्वर, वमन दाह व शूल शान्त होते हैं। इसी प्रकार-अडूसा, गुर्च व बडी कटेरीके क्वाथको शहद मिलाकर पीनेसे मनुष्य अम्लपित्त, कास, श्वास, ज्वर, और वमनको जीतता है। अम्लपित्तमें वासाघृत, तिक्तघृत, पिप्पलीघृत और गुड कूष्माण्डका प्रयोग करना

चाहिये । तथा परिणाम शूलको नष्ट करनेवाले योग अथवा खण्डामलकी अथवा शहदके साथ पीपल अम्लपित्तको नष्ट करती है । इसीप्रकार जम्बीरी निम्बूका स्वरस सायंकाल पीनेसे अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ ॥ १८–२२ ॥

गुडादिमोदकः ।

गुडपिप्पलिपथ्याभिस्तुल्याभिर्मोदकः कृत ।
पित्तश्लेष्मापहः प्रोक्तो मन्दमग्निं च दीपयेत् ॥ २३ ॥

गुड, छोटी पीपल व हर्र समान भाग ले गोली बना सेवन करनेसे अम्लपित्त व कफ नष्ट होता तथा अग्नि दीप्त होती है ॥ २३ ॥

हिंग्वादिपुटपाकः ।

हिंगु च कतकफलानि
चिञ्चात्वचो घृतं च पुटदग्धम् ।
शमयति तदम्लपित्त-
मम्लभुजो यदि यथोत्तरं द्विगुणम् ॥ २४ ॥

भुनी हींग १ भाग, निर्मली २ भाग इम्लीकी छाल ४ भाग घी ८ भाग सबको पुटपाक विधिसे पकाकर सेवन करने तथा खट्टे पदार्थ खानेसे अम्लपित्त शान्त होता है ॥ २४ ॥

वरायोगः ।

कान्तापात्रे वराकल्को व्युषितोऽभ्यासयोगतः ।
सिताक्षौद्रसमायुक्तः कफपित्तहर. स्मृत ॥२५॥

कान्तलौहके पात्रमे त्रिफलाका कल्क वासी रख मिश्री और शहदमे मिलाकर सेवन करनेसे अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ २५ ॥

पञ्चनिम्बादिचूर्णम् ।

पुंकोऽश पञ्चनिम्बाना द्विगुणो वृद्धदारक. ।
शक्तुर्दशगुणो देय. शर्करामधुरीकृत. ॥ २६ ॥
शीतेन वारिणा पीत शूलं पित्तकफोत्थितम् ।
निहन्ति चूर्ण सक्षौद्रमम्लपित्त सुदारुणम् ॥ २७ ॥

निम्बका पञ्चांग (फूल, फल, पत्र, छाल तथा मूल) मिलित १ भाग, विधारा २ भाग, सत्तू १० भाग, तथा शक्करसे मीठाकर ठण्ढे जलके साथ शहद मिलाकर पीनेसे पित्तकफज शूल तथा अम्लपित्त नष्ट होता है ॥ ॥ २६ ॥ २७ ॥

अभ्रादिशोधनमारणम् ।

आशुभक्तोदकैः पिष्टमभ्रकं पात्रसंस्थितम् ॥ २८ ॥
कन्दमाणास्थिसंहारखण्डकर्णरसैरथ ।
तण्डुलीयं च शालिं च कालमारिषजैश्च ॥ २९ ॥
वृश्चीरबृहतीभृङ्गलक्ष्मणाकेशराजजैः ।
पेषणं भावनं कुर्यात्पुट चानेकशो भिषक् ॥ ३० ॥
यावन्निश्चन्द्रक तत्स्याच्छुद्धिरेव विहायसः ।
स्वर्णमाक्षिकशालिं च ध्मातं निर्वापितं जले ॥ ३१ ॥
त्रैफलेऽथ विचूर्ण्यैवं लोह कान्तादिक पुन. ।
वृहत्पत्रकरीकर्णत्रिफलावृद्धदारजैः. ॥ ३२ ॥
माणकन्दास्थिसंहारशृङ्गवेरभवैं रसैः ।
दशमूलीमुण्डितिकातालमूलीसमुद्भवैः ॥ ३३ ॥
पुटित साधु यत्नेन शुद्धिमेवमयो व्रजेत ।
वशिर श्वेतवाट्याल मधुपर्णी मयूरकम् ॥ ३४ ॥
तण्डुलीयं च वर्षाह्वं दत्त्वाधश्चोर्ध्वमेव च ।
पाच्यं मजीर्णमण्डूरं गोमूत्रेण दिनत्रयम् ॥ ३५ ॥
अन्तर्बाष्पमदग्धं च तथा स्थाप्यं दिनत्रयम् ।
विचूर्णित शुद्धिरियं लोहकिट्टस्य दर्शिता ॥ ३६ ॥
जयन्त्या वर्द्धमानस्य आर्द्रकस्य रसेन तु ।
वायस्याश्चानुपूर्व्यैव मर्दन रसशोधनम् ॥ ३७ ॥
गन्धक नवनीताख्य क्षुद्रितं लौहभाजने ।
त्रिधा चण्डातपे शुष्कं भृङ्गराजरसाप्लुतम् ॥ ३८ ॥
ततो वह्नौ द्रवीभूतं त्वरित वस्त्रगालितम् ।
यस्माद्भृङ्गरसे क्षिप्त पुन. शुष्कं विशुध्यति ॥ ३९ ॥

ताजे चावलके मांडसे अभ्रकको पीसकर मानकन्द, अस्थिसंहार तथा खण्डकर्ण (खारकोना) के रस तथा चौराई व शालिञ्च व मर्सा तथा पुनर्नवा, वडी कटेरी, भागरा, लक्ष्मणा व काला भागरा इनसे घोट घोट कर अनेक पुट उस समयतक देना चाहिये जबतक निश्चन्द्र न हो जाय । इस प्रकार अभ्रक कार्ययोग्य होता है । तथा स्वर्णमाक्षिकको शालिञ्चशाकके रसके साथ पीसकर कान्त लौहपर लेप कर उसे त्रिफलाके क्वाथमें बुझाना चाहिये । फिर उस कान्तलौहकी श्वेत लोध्र, हस्तिकर्ण, पलाश, त्रिफला, विधारा, मानकन्द, अस्थिसंहार, अदरख, दशमूल, मुण्डी तथा मुसलीके रसमे अनेक बार पुट देनेसे वह शुद्ध हो जाता है । इसी प्रकार सफेद सूर्यावर्त, सफेद खरेटी, अपामार्ग, चौराई, पुनर्नवा तथा गुर्चका कल्क नीचे ऊपर आधा आधा रखकर ३ दिन तक गोमूत्रके साथ मण्डूर अन्तर्बाष्प पकाना चाहिये और जलने न पावे । फिर उसका चूर्णकर लेना चाहिये । इस प्रकार मण्डूर शुद्ध हो जाता है । तथा जयंती, विधारा, अदरख,

और मकोयके रससे पारद शुद्ध होता है। आवलासार गन्धकके टुकडेकर भांगरेके रसमें लोहेके वर्तनमें ३ दिन तक धूपमें सुखानेके अनन्तर आग्निमें तपाकर कपडेसे भांगरेके रसमें ही छानकर सुखालेनेसे शुद्ध हो जाता है। इस प्रकार समस्त वस्तुओंका शोधन कर क्षुधावती गुटीमें छोडना चाहिये ॥ २८-३९ ॥

क्षुधावती गुटी।

गगनाद्द्विपलं चूर्णं लौहस्य पलमात्रकम्।
लौहकिट्टपलार्धं च सर्वमेकत्र संस्थितम् ॥ ४० ॥
मण्डूकपर्णीवशिरतालमूलीरसैः पुनः।
वरीभृङ्गकेशराजकालमारिपजैरथ ॥ ४१ ॥
त्रिफलाभद्रमुस्ताभिः स्थालीपाकाद्विपाचितम्।
रसगन्धकयोः कर्षौ प्रत्येकं ग्राह्यमेकतः ॥ ४२ ॥
तन्मर्दनाच्छिलाखल्वे यत्नतः कज्जलीकृतम्।
वचा चव्य यमानी च जीरके शतपुष्पिका ॥ ४३ ॥
व्योषं मुस्तं विडङ्गं च ग्रन्थिकं खरमञ्जरी।
त्रिवृता चित्रको दन्ती सूर्यावर्तोऽसितस्तथा ॥ ४४ ॥
भृंगमाणककन्दश्च खण्डकर्णक एव च।
दण्डोत्पलाकेशराजकालाककर्कटकोऽपि च ॥ ४५ ॥
एषामर्धपलं ग्राह्यं पटघृष्टं सुचूर्णितम्।
प्रत्येकं त्रिफलायाश्च पलार्धं पलमेव च ॥ ४६ ॥
एतत्सर्वं समालोड्य लोहपात्रे तु भावयेत्।
आतपे दण्डसंघृष्टमार्द्रकस्य रसैस्त्रिधा ॥ ४७ ॥
तद्रसेन शिलापिष्टा गुडिका कारयेद्भिषक्।
बदरास्थिनिभा शुष्का सुनिगुप्ता निधापयेत् ॥ ४८ ॥
तत्प्रातर्भोजनादौ तु सेवितं गुडिकात्रयम्।
अम्लोदकानुपानं च हितं मधुरवर्जितम् ॥ ४९ ॥
दुग्धं च नारिकेलं च वर्जनीयं विशेषतः।
भोज्यं यथेष्टमिष्टं च वारि भक्ताम्लकाञ्जिकम् ॥ ५० ॥
हन्त्यम्लपित्तं विविधं शूलं च परिणामजम्।
पाण्डुरोगं च गुल्मं च शोथोदरगुदामयान् ॥ ५१ ॥
यक्ष्माणं पञ्चकासांश्च मन्दाग्नित्वमरोचकम्।
प्लीहानं श्वासमानाहमामवातं सुदारुणम्।
गुटी क्षुधावती सेयं विख्याता रोगनाशिनी ॥ ५२ ॥

अभ्रक ८ तो०, लौह ४ तो०, मण्डूर २ तो० सबको खरलमें छोडकर मण्डूकपर्णी (ब्राह्मिभेद), गजपीपल, मुसलीके रस तथा शतावरी, भांगरा, काला भांगरा तथा मर्साके रस तथा त्रिफला व नागरमोथाके स्वरससे स्थालीपाक विधिसे पकाकर प्रत्येक पारा व गन्धक २ तोले की कज्जली कर मिलाना चाहिये। फिर वच, चव्य, अजवायन, दोनों जीरे, सौंफ, त्रिकटु, नागरमोथा, वायविडंग, पिपरामूल, लटजीरा, निशोथ, चीत, दन्ती, काला सूर्यावर्त, भांगरा, मानकन्द, खण्डकर्ण (शकरकन्द) नीलोफर, काला भांगरा तथा काकडासिंही प्रत्येक २ तोला ले कूट कपडछान चूर्णकर त्रिफला प्रत्येक ६ तोला चूर्णकर सब चीजोंको लोहपात्रमें अदरखके रसकी भावना दे, दण्डसे घोटकर तीन दिन धूपमें रखना चाहिये। फिर अदरखके ही रससे सिलपर पीसकर बेरकी गुठलीके बराबर गोली बनानी चाहिये खुख जानेपर रखना चाहिये इसे प्रातःकाल भोजनके पहिले ३ गोलियोंकी मात्रामें काञ्जीके साथ सेवन करना चाहिये। मीठे पदार्थ, दूध तथा नरियलका जल नहीं खाना चाहिये। शेष पदार्थ यथेष्ट खाना चाहिये। विशेषतः काञ्जी और भात तथा जलका सेवन करना चाहिये। यह क्षुधावती गुटी अम्लपित्त, परिणामशूल, पाण्डुरोग, गुल्म, शोथ, उदररोग, अर्श, यक्ष्मा, पाचों कास, मन्दाग्नि, अरुचि, प्लीहा, श्वास, अफारा, आमवात इन सब रोगोंको नष्ट करती है ॥ ४०-५२ ॥

जीरकाद्यं घृतम्।

पिष्टाजाजीं सधन्याकां घृतप्रस्थं विपाचयेत्।
कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं जयेत् ॥ ५३ ॥

जीरा व धनियाके कल्कमें १ प्रस्थ घृत पकाना चाहिये। यह कफपित्त, अरुचि, मन्दाग्नि व वमनको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

पटोलशुण्ठीघृतम्।

पटोलशुण्ठयोः कल्काभ्यां केवलं कुलकेन वा।
घृतप्रस्थं विपक्तव्यं कफपित्तहरं परम् ॥ ५४ ॥

परवल व सोंठके कल्क अथवा केवल परवल्के कल्कसे सिद्ध घृत कफपित्तको नष्ट करता है ॥ ५४ ॥

पिप्पलीघृतम्।

पिप्पलीक्वाथकल्केन घृतं सिद्धं मधुप्लुतम्।
पिबेत्तत्प्रातरुत्थाय अम्लपित्तनिवृत्तये ॥ ५५ ॥

पीपलके क्वाथ व कल्कसे सिद्ध घृतमें शहद मिलाकर प्रातःकाल अम्लपित्तके निवारणार्थ पीना चाहिये ॥ ५५ ॥

द्राक्षाद्यं घृतम्।

द्राक्षामृताशक्रपटोलपत्रैः
सोशीरधात्रीघनचन्दनैश्च।

त्रायन्तिकापर्पटकिरातधान्यैः ।
कल्कैः पचेत्सर्पिरुपेतमेभिः ॥ ५६ ॥
युञ्जीत मात्रां सह भोजनेन
सर्वत्र पानेऽपि भिषग्विदध्यात् ।
बलासपित्तं ग्रहणीं प्रवृद्धां
कासाग्निसाद ज्वरमम्लपित्तम् ।
सर्वं निहन्यादूघृतमेतदाशु
सम्यक्प्रयुक्तं ह्यमृतोपमं च ॥ ५७ ॥

मुनका, गुर्च, इन्द्रयव, परवलकी पत्ती, रसौत, आंवला, नागरमोथा, चन्दन, त्रायमाण, कमलके फूल, चिरायता, धनिया इनके कल्कसे युक्त घीको (विधिपूर्वक) पकाना चाहिये । इसे भोजनके साथ मात्रासे देना चाहिये । सब ऋतुओंमें इसका प्रयोग करना चाहिये । यह कफपित्त, ग्रहणी, कास, अग्निमान्द्य, ज्वर व अम्लपित्तको नष्ट करता है । विधिपूर्वक प्रयोग करनेसे अमृतके तुल्य गुण देता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

शतावरीघृतम् ।

शतावरीमूलकल्कं घृतप्रस्थं पयःसमम् ।
पचेन्मृद्वग्निना सम्यक् क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् ॥ ५८ ॥
नाशयेदम्लपित्तं च वातपित्तोद्भवान्गदान् ।
रक्तपित्तं तृषां मूर्च्छां श्वासं सन्तापमेव च ॥ ५९ ॥

शतावरीका कल्क, घृत समान भाग जल तथा चतुर्गुण दूध मिलाकर मन्दाग्निसे पकाना चाहिये । यह अम्लपित्त, वातपित्तके रोग, रक्तपित्त, प्यास, मूर्छा, श्वास और सन्तापको नष्ट करता है ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

इत्यम्लपित्ताधिकारः समाप्तः ।

अथ विसर्पविस्फोटाधिकारः ।

विसर्पे सामान्यतश्चिकित्सा ।

विरेकवमनालेपसेचनासृग्विमोक्षणैः ।
उपाचरेद्यथादोषं विसर्पानविदाहिभिः ॥ १ ॥

विसर्पोंको दोषोंके अनुसार विरेचन, वमन, आलेप, सिञ्चन, रक्तमोक्षण और अविदाहि (जलन न करनेवाले) प्रयोगोंसे चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

वमनम् ।

पटोलपिचुमर्दाभ्यां पिप्पल्या मदनेन च ।
विसर्पे वमनं शस्तं तथैवेन्द्रयवैः सह ॥ २ ॥

परवलकी पत्ती, नीमकी छाल, छोटी पीपल, मैनफल तथा इन्द्रयवके साथ विसर्पमें वमन कराना चाहिये ॥ २ ॥

विरेचनम् ।

त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह ।
प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥ ३ ॥
रसमामलकानां वा घृतमिश्रं प्रदापयेत् ।

त्रिफलाके रस तथा निसोथके चूर्णके साथ घृतका प्रयोग विरेचन द्वारा विसर्प तथा ज्वरको शान्त करता है । अथवा आंवलेके रसको घीमें मिलाकर पिलाना चाहिये ॥ ३ ॥–

वातविसर्पचिकित्सा ।

तृणवर्जं प्रयोक्तव्यं पञ्चमूलचतुष्टयम् ।
प्रदेहसेकसर्पिर्भिर्विसर्पे वातसम्भवे ॥ ४ ॥

तृणपञ्चमूलको छोड़कर शेष चारों पञ्चमूलोंका लेप, सेक और घृतसे वातज विसर्पमें प्रयोग करना चाहिये ४

कुष्ठादिगणः ।

कुष्ठं शताह्वासुरदारुमुस्ता-
वाराहिकुस्तुम्बुरुकृष्णगन्धाः ।
वातर्कवंशार्तगलाश्च योज्याः
सेकेषु लेपेषु तथा घृतेषु ॥ ५ ॥

कूठ, सोंफ, देवदारु, नागरमोथा, वाराहीकन्द, धनिया, सहिजन, आक, वांस तथा कटसैलाका सेक, लेप तथा घृतद्वारा प्रयोग करना चाहिये ॥ ५ ॥

पित्तविसर्पचिकित्सा ।

प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मकोशीरचन्दनैः ।
सयष्टीन्दीवरैः पित्ते क्षीरपिष्टैः प्रलेपयेत् ॥ ६ ॥
कशेरुशृङ्गाटकपद्मगुन्द्राः
सशैवलाः सोत्पलकर्दमाश्च ।
वस्त्रान्तराः पित्तकृते विसर्पे
लेपा विधेयाः सघृताः सुशीताः ॥ ७ ॥
प्रदेहाः परिषेकाश्च शस्यन्ते पञ्चवल्कलैः ।
पद्मकोशीरमधुकचन्दनैर्वा प्रशस्यते ॥ ८ ॥
पित्ते तु पद्मिनीपङ्कं पिष्टं वा शङ्खशैवलम् ।
गुन्द्रामूलं तु शुक्तिर्वा गैरिकं वा घृतान्वितम् ॥ ९ ॥
न्यग्रोधपादा गुन्द्रा च कदलीगर्भ एव च ।
बिसग्रन्थिकलेपः स्याच्छतधौतघृताप्लुतः ॥ १० ॥

हरेणवो मसूराश्च मुद्गाश्चैव सशालय ।
पृथक्पृथक्प्रदेहाः स्युः सर्वैर्वा सर्पिषा सह ॥ ११ ॥

पुण्डरिया, मञ्जीठ, पद्माख, खश, चन्दन, मौरेठी तथा नीलोफरको दूधमें पीसकर लेप करना चाहिये । अथवा कशेरू, सिंघाडा, कमलके फूल, गुर्च, सेवार, नीलोफर तथा उसके पासका कीचड इनको घीमें मिला पतले कपडेपर शीत लेप करना चाहिये । पञ्चवल्कल अथवा पद्माख, खश मौरेठी व चन्दनसे लेप करना चाहिये पित्तमें कमलिनीका कीचड अथवा शंखका सेवा-रके साथ कल्क अथवा गुर्चकी जड अथवा शुक्ति अथवा घीके साथ गेरू अथवा नरगदकी बौं व गुर्च अथवा केलेका सार अथवा कमलकी दण्डीका लेप सौ वार धोये हुए घीके साथ अथवा मटर, मसूर, मूङ्ग, चावल अलग अलग अथवा सब मिलाकर घीके साथ लेप करना चाहिये ॥ ६–११ ॥

विरेचनम् ।

द्राक्षारग्वधकाश्मर्यत्रिफलैरण्डपीलुभिः ।
त्रिवृद्धरीतकीभिश्च विसर्पे शोधनं हितम् ॥ १२ ॥

मुनक्का, अमलतास, खम्भार, त्रिफला, एरण्ड, पीलु, निसोथ तथा हर्रीको विरेचनके लिये देना चाहिये ॥ १२ ॥

श्लेष्मजविसर्पचिकित्सा ।

गायत्रीसप्तपर्णाब्दवासारग्वधदारुभिः ।
कुटन्नटैर्मवेल्लेपो विसर्पे श्लेष्मसम्भवे ॥ १३ ॥
अजाश्वगन्धा सरलाथ काला
सैकेशिका वाप्यथवाजशृङ्गी ।
गोमूत्रपिष्टो विहितः प्रलेपो
हन्याद्विसर्पं कफजं सुशीघ्रम् ॥ १४ ॥

कत्था, सतौना, नागरमोथा, अडूसा, अमलतासका गूदा, देवदारु व कैवटीमोथेका लेप कफज-विसर्पमें करना चाहिये । अथवा बबई, असगन्ध, धूप, काला निसोथ, पाढी, अथवा मेढाशिंगी इनको गोमूत्रमें पीस-कर कफजमें लेप करना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

वमनम् ।

मदनं मधुकं निम्बं वत्सकस्य फलानि च ।
वमनं च विधातव्यं विसर्पे कफसम्भवे ॥ १५ ॥

मैनफल, मौरेठी, नीमकी छाल तथा इन्द्रयवको कफ-जविसर्पमें वमनके लिये प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १५ ॥

अन्ये योगाः ।

त्रिफलापद्मकोशीरसमङ्गाकरवीरकम् ।
फलमूलमनन्ता च लेपः श्लेष्मविसर्पहा ॥ १६ ॥
आरग्वधस्य पत्राणि त्वच श्लेष्मातकोद्भवाः ।
शिरीषपुष्पकामाची हिता लेपावचूर्णनैः ॥ १७ ॥

त्रिफला, पद्माख, खश, लज्जालु, कनेर, मैनफलकी जड तथा यवासाका कफज--विसर्पनाशार्थ प्रयोग करना चाहिये । तथा अमलतासके पत्ते, लसोढेकी छाल, सिरसाके फूल व मकोयका लेप व अवचूर्णन द्वारा प्रयोग करना चाहिये ॥ १६ ॥ १७ ॥

त्रिदोषजविसर्पचिकित्सा ।

मुस्तारिष्टपटोलानां क्वाथः सर्वविसर्पनुत् ।
धात्रीपटोलमुद्गानामथवा घृतसंप्लुतः ॥ १८ ॥

नागरमोथा, नीमकी छाल व परपवलकी पत्तीका क्वाथ समस्त विसर्पोंको नष्ट करता है अथवा आंवला, परवल और मूंगका क्वाथ घीके साथ समस्त विसर्प नष्ट करता है ॥ १८ ॥

अमृतादिगुग्गुलुः ।

अमृतवृषपटोलं निम्बकल्कैरुपेतं
त्रिफलखदिरसारं व्याधिघातं च तुल्यम् ।
क्वथितमिदमशेषं गुग्गुलोर्भागयुक्तं
जयति विषविसर्पान्कुष्ठमष्टादशाख्यम् ॥ १९ ॥

गुर्च, अडूसा, परवल, नीमकी पत्ती, त्रिफला, कत्था, अमलतासका गूदा प्रत्येक समान भाग, सबके समान शुद्ध गुग्गुलु मिलाकर सेवन करनेसे विषदोष, विसर्प तथा अठारह प्रकारके कुष्ठ नष्ट होते हैं ॥ १९ ॥

अमृतादिक्वाथद्वयम् ।

अमृतवृषपटोलं मुस्तकं सप्तपर्णं
खदिरमसितवेत्रं निम्बपत्रं हरिद्रे ।
विविधविषविसर्पान्कुष्ठविस्फोटकण्डू-
रपनयति मसूरीं शीतपित्तं ज्वरं च ॥ २० ॥
पटोलामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः
खदिराब्दयुतैः क्वाथो विस्फोटार्तिज्वरापहः ॥ २१ ॥

गुर्च, अडूसा, परवल, नागरमोथा, सप्तपर्ण, कत्था, काला वेत, नीमकी पत्ती, हल्दी तथा दारुहल्दीका क्वाथ अनेक प्रकारके विष, विसर्प, कुष्ठ, विस्फोटक, खुजली, मसूरी, शीतपित्त और ज्वरको नष्ट करता है । इसी प्रकार परवल, गुर्च, चिरायता, अडूसा, नीमकी पत्ती, पित्तपापडा, कत्था, नागरमोथाका क्वाथ, फफोला, बेचैनी व ज्वरको नष्ट करता है ॥ २० ॥ २१ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलत्रिफलारिष्टगुडूचीमुस्तचन्दनैः ।
समूर्वा रोहिणी पाठा रजनी सदुरालभा ॥ २२ ॥
कषाय पाययेदेतच्छ्लेष्मपित्तज्वरापहम् ।
कण्ड्वग्दोपविस्फोटविषवीसर्पनाशनम् ॥ २३ ॥

परवलकी पत्ती, त्रिफला, नीमकी पत्ती, गुर्च नागरमोथा, चन्दन, मूर्वा, कुटकी, पाढ, हल्दी व यवासाका क्वाथ बनाकर पिलानेसे कफपित्तज्वर, खुजली, त्वग्दोष फफोले, विष और विसर्प नष्ट होते हैं ॥ २२ ॥ २३ ॥

भूनिम्बादिक्वाथः ।

भूनिम्बवासाकटुकापटोल-
फलत्रिकाचन्दननिम्बसिद्धः ।
विसर्पदाहज्वरवक्त्रशोष-
विस्फोटतृष्णावमिनुत्कषायः ॥ २४ ॥

चिरायता, अडूसा, कुटकी, परवलकी पत्ती, त्रिफला, चन्दन और नीमका क्वाथ विसर्प, दाह, ज्वर, मुखका सूखना, फफोले, तृष्णा और वमनको नष्ट करता है ॥ २४ ॥

अन्ये योगाः ।

सकफे पित्तयुक्ते तु त्रिफलां योजयेत्पुरैः ॥ २५ ॥
दुरालभां पर्पटकं पटोलं कटुकां तथा ।
सोष्णं गुग्गुलुसंमिश्रं पिबेद्वा खदिराष्टकम् ॥ २६ ॥
कुण्डलीपिचुमर्दाम्बु खदिरेन्द्रयवाम्बु वा ।
विस्फोटं नाशयत्याशु वायुर्जलधरानिव ॥ २७ ॥

पित्तकफजन्य विसर्पमें गुग्गुलुके साथ त्रिफलाका प्रयोग करना चाहिये । अथवा यवासा, पित्तपापड़ा, परवलकी पत्ती व कुटकीके गरम गरम क्वाथको गुग्गुलु मिलाकर पीना चाहिये अथवा खदिराष्टकका क्वाथ (मसूरिकाधिकारोक्त) पीना चाहिये अथवा गुर्च व नीमकी छालका क्वाथ अथवा कत्था व इन्द्रयवका क्वाथ विसर्पको मेघोंको वायुके समान नष्ट करता है॥२५–२७॥

चन्दनादिलेपः ।

चन्दनं नागपुष्पं च तण्डुलीयकशारिवे ।
शिरीषवल्कलं जातीलेपः स्याद्दाहनाशनः ॥ २८ ॥

चन्दन, नागकेशर, चौराई, शारिवा, सिरसेकी छाल, व चमेलीका लेप दाहको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

शुकतर्वादिलेपः ।

शुकतरुनते च मांसी रजनी पद्मा च तुल्यानि ।
पिष्टानि शीतवारा लेपः स्यात्सर्वविस्फोटे ॥ २९ ॥

सिर्साकी छाल, तगर, जटामांसी, हल्दी, भारङ्गी इनको समान भाग ले ठण्डे जलमें पीसकर लेप करनेसे यह समस्त फफोलोंको नष्ट करता है ॥ २९ ॥

कवलग्रहः ।

शिरीषमूलमञ्जिष्ठाचव्यामलकयष्टिकाः ।
सजातीपल्लवक्षौद्रा विस्फोटे कवलग्रहाः ॥ ३० ॥

सिर्साकी छाल, मञ्जीठ, चव्य, आंवला, मौरेठी तथा चमेलीकी पत्तीका चूर्ण बनाकर शहदमें मिला कवल धारण करनेसे मुखके फफोले नष्ट होते हैं ॥ ३० ॥

शिरीषादिलेपाः ।

शिरीषोदुम्बरौ जम्बु सेकालेपनयोर्हिताः ।
श्लेष्मातकत्वचो वापि प्रलेपाश्च्योतने हिताः ॥ ३१ ॥

सिर्साकी छाल, गूलरकी छाल व जामुनकी छाल लेप और सेकमें हितकर हैं । अथवा लसौढाकी छाल प्रलेप और आश्च्योतनमें हितकर हैं ॥ ३१ ॥

दशाङ्गलेपः ।

शिरीषयष्टीनतचन्दनैला-
मांसीहरिद्राद्वयकुष्ठवालैः ।
लेपो दशाङ्गः सघृतः प्रदिष्टो
विसर्पकण्डूज्वरशोथहारी ॥ ३२ ॥

सिर्साकी छाल, मौरेठी, तगर, सफेद चन्दन, छोटी इलायची, जटामासी, हल्दी, दारुहल्दी, कूठ व सुगन्धवालाका लेप घीके साथ विसर्प, कण्डू, ज्वर और शोथको नष्ट करता है । इसे दशाङ्गलेप कहते हैं ॥ ३२ ॥

शिरीषादिलेपः ।

शिरीषोशीरनागाह्वहिंस्राभिर्लेपनाद्द्रुतम् ।
विसर्पविषविस्फोटाः प्रशाम्यन्ति न संशयः ॥ ३३ ॥

सिर्सेकी छाल, खश, नागकेशर व जटमासीका लेप विसर्प, विष और फफोलोंको नष्ट करता है ॥ ३३ ॥

विषाद्यं घृतम् ।

वृषखदिरपटोलपत्रनिम्ब-
त्वगमृतामलकीकषायकल्कैः ।
घृतमभिनवमेतदाशु पक्वं
जयति विसर्पगदान्सकुष्ठगुल्मान् ॥ ३४ ॥

अडूसा, कत्था, परवलकी पत्ती, नीमकी छाल, गुर्च व आंवलाके क्वाथ व कल्कमे सिद्ध घृत विसर्प, कुष्ठ व गुल्मको नष्ट करता है ॥ ३४ ॥

पञ्चतिक्तं घृतम् ।

पटोलसप्तच्छदनिम्बवासा-
फलत्रिकं छिन्नरुहाविपक्वम् ।
तत्पञ्चतिक्तं घृतमाशु हन्ति
त्रिदोषविस्फोटविसर्पकण्डूः ॥ ३५ ॥

परवलकी पत्ती, सप्तपर्ण, नीमकी छाल, अडूसा, त्रिफला तथा गुर्चसे सिद्ध घृत पञ्चतिक्त कहा जाता है। यह त्रिदोषजन्य विस्फोटक, विसर्प व खुजलीको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥

महापद्मकं घृतम् ।

पद्मकं मधुकं लोध्रं नागपुष्पस्य केशरम् ।
द्वे हरिद्रे विडङ्गानि सूक्ष्मैला तगरं तथा ॥ ३६ ॥
कुष्ठं लाक्षापत्रकं च सिक्थकं तुत्थमेव च ।
पद्मुवारं शिरीषश्च कपित्थफलमेव च ॥ ३७ ॥
तोयेनालोड्य तत्सर्वं घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
य इश्व रोगाल्लिहन्त्याद्वै तान्निबोध महामुने ॥ ३८ ॥
सर्पकीटाखुदष्टेषु लूतामूत्रकृतेषु च ।
विविधेषु स्फोटकेषु तथा कुष्ठविसर्पिषु ॥ ३९ ॥
नाडीषु गण्डमालासु प्रभिन्नासु विशेषतः ।
अगस्त्यविहितं धन्यं पद्मकं तु महाघृतम् ॥ ४० ॥

पद्माख, मौरेठी, लोध, नागकेशर, हल्दी, दारुहल्दी, बायविडंग, छोटी इलायची, तगर, कूट, लाख, तजपात, मोम, तूतिया, लसोढा, सिरसेकी छाल व कथा इन सबका कल्क जलमें मिलाकर १ प्रस्थ घृत सिद्ध करना चाहिये। इससे सर्प, कीडों व मूसोंके विषमें, मकडीके विषमें, फफोलेमें तथा कुष्ठविसर्प, नासूर, व गण्डमालामें विशेष लाभ होता है। यह अगस्त्यका बनाया महापद्मक नामक घृत है ॥ ३६–४० ॥

स्नायुकचिकित्सा ।

रोगस्तु स्नायुकाख्यो यः क्रिया तत्र विसर्पवत् ।
गव्यं सर्पिस्त्र्यहं पीत्वा निर्गुण्डीस्वरसं त्र्यहम् ।
पिबेत्स्नायुकमत्युग्रं हन्त्यवश्यं न संशयः ॥ ४१ ॥

स्नायुक (नहरुवा) नामक रोगमें विसर्पके समान चिकित्सा करनी चाहिये। ३ दिन गायका घी पीकर ३ दिन सम्भालूका स्वरस पीना चाहिये। इससे उग्र स्नायुकरोग नष्ट होता है ॥ ४१ ॥

लेपः ।

शोभाञ्जनमूलदलैः काञ्जिकपिष्टैः सलवणैर्लेपः ।
हन्ति स्नायुकरोगं यद्वा मोचकत्वचो लेपः ॥ ४२ ॥

सहिंजनकी मूल और पत्तोंको नमक मिला काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे अथवा सेमरकी छालका लेप करनेसे स्नायुक रोग नष्ट होता है ॥ ४२ ॥

इति विसर्पविस्फोटाविकारः समाप्तः ।

अथ मसूर्यधिकारः ।

सामान्यक्रमः ।

सर्वासां वमनं पथ्यं पटोलारिष्टवासकैः ।
कषायैश्च वचावत्सयष्ट्याह्वफलकल्कितैः ॥ १ ॥
सक्षौद्रं पाययेद्ब्राह्मया रसं वा हैलमोचिकम् ।
वान्तस्य रेचनं देयं शमनं चाबले नरे ॥ २ ॥

समस्त मसूरिकाओंमे परवलकी पत्ती, नीमकी पत्ती तथा अडूसेकी पत्तीके क्वाथमें बच, कुडेकी छाल, मौरेठी, व मैनफलका कल्क छोडकर वमनके लिये पिलाना हितकर है। तथा शहदके साथ ब्राह्मीके रसको अथवा हिलमोचिकाके रसको पिलाना चाहिये। वमन कराकर विरेचन कराना चाहिये तथा निर्बल पुरुषको शमनकारक उपाय करना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

शमनम् ।

सुषवीपत्रनिर्यासं हरिद्राचूर्णसंयुतम् ।
रोमान्तीज्वरविस्फोटमसूरीशान्तये पिबेत् ॥ ३ ॥

काले जीरेके पत्तोके रसमें अथवा करेलेके पत्तोंके रसमें हल्दीके चूर्णको मिलाकर पीनेसे रोमान्तिका, ज्वर, फफोले तथा मसूरीकी शान्ति होती है ॥ ३ ॥

वमनविरेचनफलम् ।

उभाभ्यां हृतदोषस्य विशुष्यन्ति मसूरिकाः ।
निर्विकाराश्चाल्पपूया पच्यते चाल्पवेदना ॥ ४ ॥

वमन तथा विरेचनसे दोषोंके निकाल देनेसे मसूरिकाएं सूख जाती हैं अथवा विना उपद्रव व पीडाके शीघ्र ही पक जाती हैं और मवाद कम आता है ॥ ४ ॥

विविधा योगाः ।

कण्टाकुम्भाण्डमूलं कथनविधिकृतं हिङ्गुमापैर्युक्तं
पीतं बीजं जयायाः सघृतमुपितवाः पीतमङ्घ्रिः सिकल्याः ।

माध्यामूलं शिफा वा दमनककुसुमजा सोषणा वाथ पूतिः
योगा वास्यम्बुनैते प्रथममवगदे दृश्यमाने प्रयोज्याः ॥५॥

कण्टाकुम्भाण्ड (कटीली लताविशेष) की जडका क्काथ हींग १ माशे (वर्तमान कालके लिये १ रत्ती) के साथ अथवा भागके बीजोंको घीके साथ अथवा शिकटी (लताविशेष) की जडके चूर्णको बासी जलके साथ अथवा कुन्दकी जडको अथवा दैवनाकी जडको अथवा कालीमिर्चमिलित पूतिकरञ्जको मसूरिकाके दिखाई देनेपर बासी जलके साथ पीना चाहिये ॥ ५ ॥

मुष्टियोगपरिभाषा ।

उद्धृत्य मुष्टिमाच्छाद्य भेषजं यत्प्रयुज्यते ।
तन्मुष्टियोगमित्याहुर्मुष्टियोगपरायणाः ॥ ६ ॥

ओषधि उखाड मुट्ठीमें बन्द कर रोगीको देना मुष्टियोग कहा जाता है, ऐसा मुष्टियोगको जाननेवाले वैद्य कहते हैं ॥ ६ ॥

विविधा योगाः ।

उष्ट्रकण्टकमूलं वाप्यनन्तामूलमेव वा ।
विधिगृहीतं ज्येष्ठाम्बु पीतं हन्ति मसूरिकाम् ॥ ७ ॥
तद्वच्छृगालकण्टकमूलं व्युषिताम्भसा युक्तम् ।
मसूरीं मूर्च्छितो हन्ति गन्धकार्धस्तु पारदः ॥ ८ ॥
निशाचिञ्चाच्छदे शीतवारिपीते तथैव तु ।
यावत्संख्या मसूर्यङ्गे तावद्भिः शैलुजैर्दलैः ॥ ९ ॥
छिन्नैरातुरनाम्ना तु गुटी च्यवति न वर्धते ।
व्युषितं वारि मक्षौद्रं पीतं दाहगुटीहरम् ॥ १० ॥
शेलुत्वक्कृतशीताम्भःसेको वा कायशोषणे ।

ऊंटकटारेकी जडको अथवा अनन्तमूलकी जडको चावलके जलके साथ पीनेसे मसूरिका नष्ट होती है । इसी प्रकार शृगालकण्टककी जडको बासी जलके साथ अथवा पारदमें आधा गन्धक मिला कज्जली बनाकर सेवन करने अथवा हल्दी व अम्लीकी पत्तीको ठण्डे जलके साथ पीनेसे मसूरी नष्ट होती है । तथा शरीरमें जितनी मसूरिकाएँ हों उतने ही लसोढेके पत्तोंको तोड रोगीका नाम लेकर फेंक देनेसे मसूरिकाएँ नष्ट होती हैं । इसी प्रकार बासी जलको शहदमें मिलाकर पीनेसे जलन और मसूरिकाएँ नष्ट होती हैं । अथवा लसोढेके पत्तोंका शीतकषाय जलनको शान्त तथा मसूरिकाओंका शोषण करता है ॥ ७–१० ॥

धूपाः ।

वचाघृतवासनीलीयववृषकार्पासकीकसब्राह्मी ॥ ११ ॥
सुरसमयूरकलाक्षाधूपो रोमान्तिकादिहरः ।

वच, घी, वास, नील, यव, अडूसा, कपासकी मींगी, ब्राह्मी, तुलसी, अपामार्ग तथा लाखकी धूप रोमान्तिकाको नष्ट करती है ॥ ११ ॥

वातजचिकित्सा ।

तर्पणं वातजायां प्राग्लाजचूर्णैः सशर्करैः ॥ १२ ॥
भोजनं तिक्तयूषैश्च प्रतुदानां रसेन वा ।
द्विपञ्चमूलं रास्ना च दार्व्युशीरं दुरालभा ॥ १३ ॥
सामृतं धान्यकं मुस्तं जयेद्वातसमुत्थिताम् ।
गुडूचीं मधुकं रास्नां पञ्चमूलं कनिष्ठकम् ॥ १४ ॥
चन्दनं काश्मर्यफलं बलामूलं विकङ्कतम् ।
पाककाले मसूर्यां तु वातजायां प्रयोजयेत् ॥ १५ ॥

वातजन्यमसूरिकामें प्रथम शक्करके सहित खीलके चूर्णके द्वारा तर्पण करावे अथवा तिक्तयूष और प्रतुद (खजूरआदि) प्राणियोंके मांसरसके साथ भोजन देना चाहिये । दशमूल, रासन, दारुहल्दी, खश, यवासा, गुर्च, धनिया, नागरमोथा इनका क्काथ वातजमसूरिकाको नष्ट करता है । तथा गुर्च, मौरेठी, रासन, लघुपञ्चमूल, चन्दन, खम्भारके फल खरेटीका जड, कत्था इनके क्काथका वातजमसूरिकाके समय प्रयोग करना चाहिये ॥ १२–१५ ॥

पित्तजचिकित्सा ।

द्राक्षाकाश्मर्यखर्जूरपटोलारिष्टवासकैः ।
लाजामलकदुस्पर्शैः सितायुक्तैश्च पैत्तिके ॥ १६ ॥
शिरीषोदुम्बराश्वत्थशेलुन्यग्रोधवल्कलैः ।
प्रलेपः सघृतः शीघ्रं व्रणविस्फोटदाहहा ॥ १७ ॥
दुरालभां पर्पटकं भूनिम्बं कटुरोहिणीम् ।
श्लैष्मिकया पित्तजायां वा पाने निष्क्काथ्य दापयेत् ॥ १८ ॥

मुनक्का, खम्भार, छुहारा, परवल, नीमकी पत्ती, अडूसा, खील, आंवला तथा यवासाके क्काथमें मिश्री मिलाकर पित्तजमें पीना चाहिये । तथा सिरसाकी छाल, गूलर, पीपल, लसोढा व बरगदकी छालको पीस घी मिला लेप करनेसे शीघ्र ही व्रण फफोले तथा दाह नष्ट होते हैं । तथा यवासा, पित्तपापडा, चिरायता, व कुटकीका क्काथ पित्तज अथवा श्लेष्मज-मसूरिकामें देना चाहिये ॥ १६–१८ ॥

निम्बादिक्काथः ।

निम्बं पर्पटकं पाठां पटोलं कटुरोहिणीम् ।
वासां दुरालभां धात्रीमुशीरं चन्दनद्वयम् ॥ १९ ॥
एष निम्बादिकः ख्यातः पीतः शर्करया युतः ।

हन्ति त्रिदोषमसूरीं ज्वरवीसर्पसम्भवाम् ॥ २० ॥
उत्थिता प्रविशेद्या तु पुनस्तां बाह्यतो नयेत् ॥२१॥

नीमकी छाल, पित्तपापडा, पाढ़, परवल कुटकी, अडूसा, यवासा, आंवला, खश तथा दोनों चन्दनका क्वाथ निम्बादि क्वाथ है इसको शक्करके साथ पीनेसे त्रिदोषजमसूरिका ज्वर तथा विसर्प जनित मसूरिकाए नष्ट होती हैं। जो उठती हुई मसूरिका दबजाती है उसे फिर निकाल देता है ॥ १९–२१ ॥

पटोलादिक्वाथः ।

पटोलकुण्डलीमुस्तवृषधन्वयवासकैः ।
भूनिम्बनिम्बकटुकापर्पटैश्च शृतं जलम् ॥ २२ ॥
मसूरीं शमयेदामां पक्वां चैव विशोषयेत् ।
नातः परतरं किञ्चिद्विस्फोटज्वरशान्तये ॥ २३ ॥

परवलकी पत्ती, गुर्च, नागरमोथा, अडूसा, यवासा, चिरायता, नीमकी छाल, कुटकी, तथा पित्तपापड़ाका क्वाथ आम (अपक्व) मसूरीको शान्त करता, तथा पक्वको सुखाता है। इससे बढ़कर फफोले तथा ज्वरको शान्त करनेवाला कोई प्रयोग नहीं है ॥ २२ ॥ २३ ॥

अन्यत्पटोलादिद्वयम् ।

पटोलमूलारुणतण्डुलीयक
पिबेद्धरिद्रामलककल्कसंयुतम् ।
मसूरिकास्फोटविदाहशान्तये
तदेव रोमान्तिवमिज्वरापहम् ॥ २४ ॥
पटोलमूलारुणतण्डुलीयक
तथैव धात्रीखदिरेण संयुतम् ।
पिबेज्जलं सुक्वथितं सुशीतलं
मसूरिकारोगविनाशनं परम् ॥ २५ ॥

परवलकी जड़ व लाल चौराईका क्वाथ हल्दी व आंवलेके कल्कके साथ मसूरिका, फफोले, जलन, ज्वर, रोमान्तिका व वमनको नष्ट करता है। तथा परवलकी जड़, लाल चौराईका क्वाथ, आंवला व कत्थेके कल्कके साथ ठण्ढा कर पीनेसे मसूरिका रोग नष्ट होता है ॥ २४ ॥ २५ ॥

खदिराष्टकः ।

खदिरत्रिफलारिष्टपटोलामृतवासकैः ।
क्वाथोऽष्टकाह्वो जयति रोमान्तिकमसूरिकाः ।
कुष्ठवीसर्पविस्फोटकण्ड्वादीनपि पानतः ॥ २६ ॥

कत्था, त्रिफला, नीमकी पत्ती, परवलकी पत्ती, गुर्च तथा अडूसाका क्वाथ रोमान्तिका, मसूरिका, कुष्ठ, विसर्प, विस्फोट, खुजली आदिको नष्ट करता है ॥२६॥

अमृतादिक्वाथः ।

अमृतादिकषायस्तु जयेत्पित्तकफात्मिकाम् ।

अमृतादि क्वाथ पित्तकफात्मक मसूरिकाको नष्ट करता है।

प्रलेपः ।

सौवीरेण तु संपिष्टं मातुलुङ्गस्य केशरम् ॥ २७ ॥
प्रलेपात्पातयत्याशु दाहं चाशु नियच्छति ।

बिजौरे निम्बूकी केशरको काञ्जीके साथ पीसकर लेप करनेसे दाह अवश्य नष्ट होता है तथा मसूरिकाओंकी पपडी गिर जाती है ॥ २७ ॥–

पादपिडकाचिकित्सा ।

पाददाहं प्रकुरुते पिडका पादसंभवा ॥ २८ ॥
तत्र सेकं प्रशंसन्ति बहुशस्तण्डुलाम्बुना ।

पैरोंमें पिडका उत्पन्न होकर दाह करती है उनमें चावलके जलका सिञ्चन हितकर है ॥ २८ ॥–

पाकावस्थाप्रयोगाः ।

पाककाले तु सर्वास्ता विशोषयति मारुतः ॥ २९ ॥
तस्मात्संबृंहणं कार्यं न तु पथ्यं विशोषणम् ।
गुडूची मधुकं द्राक्षा मोरटं दाडिमैः सह ॥ ३० ॥
पाककाले तु दातव्यं भेषजं गुडसंयुतम् ।
तेन पाकं व्रजत्याशु न च वायुः प्रकुप्यति ॥ ३१ ॥
लिहेद्वा बादरं चूर्णं पाचनार्थं गुडेन तु ।
अनेनाशु विपच्यन्ते वातपित्तकफात्मिकाः ॥ ३२ ॥

पाककालमें सभी प्रकारकी मसूरिकाओंको वायु सुखा देता है अतः सभीमें बृंहण चिकित्सा हितकर होती है शोषण नहीं। अतः गुर्च, मौरेठी, मुनक्का, इक्षुमूल तथा अनारदानाके चूर्णको गुडके साथ पाकके समय देना चाहिये । इससे मसूरिकाएँ पक जाती हैं वायु नहीं बढती। अथवा पकानेके लिये बेरका चूर्ण गुडके साथ खाना चाहिये । इससे वातपित्त कफात्मक मसूरिकाएँ शीघ्र ही पक जाती हैं ॥ २९–३२ ॥

विविधास्ववस्थासु विविधा योगाः ।

शूलाध्मानपरीतस्य कम्पमानस्य वायुना ।
धन्वमांसरसाः शस्ता ईषत्सैन्धवसंयुताः ॥ ३३ ॥
दाडिमाम्लरसैर्युक्ता यूषाः स्युरुरुचौ हिताः ।
पिबेदम्भस्तप्तशीतं भावितं खादिराशनैः ॥ ३४ ॥
शौचे वारि प्रयुञ्जीत गायत्रीबहुवारजम् ।
जातीपत्रं समञ्जिष्ठं दार्वीपूगफलं शमीम् ॥ ३५ ॥

धात्रीफलं समधुकं क्वथितं मधुसंयुतम् ।
मुखरोगे कण्ठरोगे गण्डूषार्थं प्रशस्यते ॥ ३६ ॥
अक्ष्णोः सेकं प्रशंसन्ति गवेधुमधुकाम्बुना ।
मधुकं त्रिफलामूर्वादार्वीत्वङ्नीलमुत्पलम् ॥ ३७ ॥
उशीरलोध्रमञ्जिष्ठाः प्रलेपाश्च्योतने हिताः ।
नश्यन्त्यनेन दृग्जाता मसूर्यो न भवन्ति च ॥ ३८ ॥
पञ्चवल्कलचूर्णेन क्लेदिनीमवचूर्णयेत् ।
भस्मना केचिदिच्छन्ति केचिद्गोमयरेणुना ॥ ३९ ॥
क्रिमिपातभयाच्चापि धूपयेत्सरलादिना ।
वेदनादाहशान्त्यर्थं स्रुतानां च विशुद्धये ॥ ४० ॥
सगुग्गुलुं वराक्वाथं युञ्ज्याद्वा खदिराष्टकम् ।
कृष्णाभयारजो लिह्यान्मधुना कण्ठशुद्धये ॥ ४१ ॥
अथाष्टाङ्गावलेहो वा कवलश्चार्द्रकादिभिः ।
पञ्चतिक्तं प्रयुञ्जीत पानाभ्यञ्जनभोजनैः ४२ ॥
कुर्याद्व्रणविधानं च तैलादीन्वर्जयेच्चिरम् ।
विषघ्नैः सिद्धमन्त्रैश्च प्रमृज्यात्तु पुनः पुनः ।
तथा शोणितसंसृष्टाः काश्चिच्छोणितमोक्षणैः ॥ ४३ ॥

शूल तथा पेटकी गुडगुडाहटसे युक्त तथा वायुसे कंपते हुए पुरुषको जांगल प्राणियोंका मांसरस कुछ सेंधानमक मिलाकर देना हितकर है । अरुचिमें अनार आदि खट्टे रसोंसे युक्त यूष हितकर है । जल गरमकर ठण्डा किया हुआ अथवा कत्था व बिजैसारमें सिद्धकर देना चाहिये । शौचादिके लिये कत्था व लसोढ़ेका जल देना चाहिये । मुख तथा कण्ठके रोगोंमें चमेलीके पत्ते, मजीठ, दारुहल्दी, सुपारी, शमी, आवला, तथा मौरेठीके क्वाथमें शहद मिलाकर गण्डूष धारण करना चाहिये । और पसही तथा मौरेठीके जलसे आंखोंमें सेक करना चाहिये तथा मौरेठी, त्रिफला, मूर्वा, दारुहल्दीकी छाल, नीलोफर, खश, लोध, व मञ्जीठका लेप तथा आश्च्योतन (इनके रसका प्रक्षेप) करना आंखोंमें हितकर है । इससे दृष्टिमें उत्पन्न मसूरिकाएँ नष्ट हो जाती हैं और फूटती नहीं । फूट गयी मसूरिकामें पञ्चवल्कलका चूर्ण उर्राना चाहिये । कुछ आचार्योंका मत है कि राख तथा कुछका मत है कि गोबरका चूर्ण उर्राना चाहिये । कीडे न पड जावें अतः सरल आदिकी धूप देनी चाहिये। पीडा व जलनकी शान्ति तथा बहती हुई मसूरिकाओंको शुद्ध करनेके लिये गुग्गुलुके साथ त्रिफलाका क्वाथ अथवा खदिराष्टकका प्रयोग करना चाहिये । कण्ठ शुद्धिके लिये छोटी पीपल व हर्रके चूर्णको शहदके साथ चाटना चाहिये । अथवा अष्टांगावलेहिका चाटनी चाहिये तथा अदरख आदिके रसका कवल धारण करना चाहिये । पीने मालिश तथा भोजनमें पञ्चतिक्त घृतका प्रयोग करना चाहिये । तथा व्रणोक्त चिकित्सा करनी चाहिये और तैलआदिका चिरकालतक त्याग करना चाहिये विषनाशक सिद्ध मन्त्रोंसे बारबार मार्जन करना चाहिये तथा जिन मसूरिकाओंमें रक्त दूषित हो उनमें रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ ३३-४३ ॥

निशादिलेपः ।

निशाद्वयोशीरशिरीषमुस्तकैः
सलोध्रभद्रश्रियनागकेशरैः ।
सस्वेदविस्फोटविसर्पकुष्ठ-
दौर्गन्ध्यरोमान्तिहरः प्रदेहः ॥ ४४ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, खश, सिरसेकी छाल, नागरमोथा, लोध, चन्दन तथा नागकेशरका लेप स्वेद, फफोले, विसर्प, कुष्ठ, दुर्गन्धि तथा रोमान्तिकाको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥

बिम्ब्यादिक्काथः ।

बिम्ब्यतिमुक्तकाऽशोकप्लक्षवेतसपल्लवैः ।
निशि पर्युषितः क्वाथो मसूरीभयनाशनः ॥ ४५ ॥

कुदरू, अतिमुक्तक (माधवीलता), अशोक पकरिया वेतके पत्तोंको रात्रिमें जलमें भिगोकर प्रातः मल छानकर पीनेसे मसूरिकाका भय नष्ट होता है * ॥ ४५ ॥

प्रभावः ।

चैत्रासितभूतदिने रक्तपताकान्वितः स्नुही भवने ।
धवलितकलशन्यस्ता पापरुजो दूरतो धत्ते ॥ ४६ ॥

चैत्र कृष्णपक्षकी चतुर्दशीके दिन सफेद कलशके ऊपर लाल पताकासे युक्त सेहुण्डको घरमें रखनेसे पापरोग (मसूरिका) दूर ही रहते हैं ॥ ४६ ॥

इति मसूर्यधिकारः समाप्तः ।

---

* कूर्परादिशोथचिकित्सा—" मसूरीस्फोटयोरन्ते कूर्परे मणिबन्धके । मुखे ऽसफलके शोथो जायते दुःसुदारुणः ॥ व्रणशोथहरैर्योगैर्वातघ्नैश्च जलौकसा । हर्तव्यस्तैलभृष्टस्य वृश्चिकस्य विलेपनैः ॥ " मसूरीके फफोलोंके अनन्तर कूर्पर, मणिबन्ध, मुख और अंसफलकमें जो कठिन सूजन हो जाती है उसे व्रणशोथनाशक तथा वातघ्न योगोंसे अथवा जोंक लगाकर अथवा तैलमें भूने हुए बीछू (या वृश्चिकनामक ओषधिविशेष) को पीस लेप कर नष्ट करना चाहिये ॥

१ मसूरिका ही शीतला है ।

अथ क्षुद्ररोगाधिकारः।

अजगल्लिकादिचिकित्सा।

तत्राजगल्लिकामामां जलौकाभिरुपाचरेत्।
शुक्तिसौराष्ट्रिकाक्षारकल्कैश्चालेपयेन्मुहुः ॥ १ ॥
नवीनकण्टकार्यास्तु कण्टकैर्वेधमात्रतः।
किमाश्चर्यं विपच्याशु प्रशाम्यत्यजगल्लिका ॥
कठिनां क्षारयोगैश्च द्रावयेदजगल्लिकाम्।
श्लेष्मविद्रधिकल्पेन जयेदनुशयीं भिषक् ॥ २ ॥
विवृतामिन्द्रवृद्धां च गर्दभीं जालगर्दभम्।
इरिवेल्लिका गन्धनाम्नीं जयेत्पित्तविसर्पवत् ॥ ३ ॥
मधुरौषधसिद्धेन सर्पिषा शमयेद्व्रणान्।
रक्तावसेकैर्बहुभिः स्वेदैरपतर्पणैः ॥ ४ ॥
जयेद्विदारिकां लेपैः शिग्रुदेवद्रुमोद्भवैः।
पनसिकां कच्छपिकामनेन विधिना भिषक् ॥ ५ ॥
साधयेत्कठिनानन्यान्शोथान्श्लेष्मसमुद्भवान्।
अन्त्रालजीं कच्छपिकां तथा पाषाणगर्दभम् ॥ ६ ॥
सुरदारुशिलाकुष्ठैः स्वेदयित्वा प्रलेपयेत्।
कफमारुतशोथघ्नो लेपः पाषाणगर्दभे ॥ ७ ॥

कच्ची अजगल्लिकाको जोंक लगाकर शान्त करना चाहिये तथा शुक्ति व फिटकरीके क्षारकल्कको बार बार लगाना चाहिये नवीन कण्टकारीके काँटेसे छेद देनेसे अजगल्लिका पककर शान्त हो जाती है। इसमें कोई सन्देह नहीं तथा कठिन अजगल्लिकाको क्षारयोगसे बहाना चाहिये। अनुशयीको श्लेष्मविद्रधिकी विधिसे जीतना चाहिये। तथा विवृता, इन्द्रवृद्धा, गर्दभी, जालगर्दभ, इरिवेल्लिका और गन्धनामिकाको पित्तविसर्पके समान जीतना चाहिये। व्रणोंको मीठी ओषधियोंसे सिद्ध घीसे जीतना चाहिये तथा रक्तावसेक, स्वेदन तथा अपतर्पणसे विदारिकाको जीतना चाहिये तथा सहिजन व देवदारुका लेप लगाना चाहिये। इसी प्रकार पनसिका और कच्छपिका तथा दोषजन्य अन्य शोथोंको सिद्ध करना चाहिये। तथा अन्त्रालजी, कच्छपिका तथा पाषाणगर्दभमें स्वेदन कर देवदारु, मनशिल और कूठका लेप करना चाहिये। पाषाणगर्दभमें कफ व वायुशोथनाशक लेप लगाना चाहिये ॥ १–७ ॥

वल्मीकचिकित्सा।

शस्त्रेणोत्कृत्य वल्मीकं क्षाराग्निभ्यां प्रसाधयेत्।
मनःशिलाभल्लातसूक्ष्मैलागुरुचन्दनैः ॥ ८ ॥
जातीपल्लवकल्कैश्च निम्बतैलं विपाचयेत्।
वल्मीकं नाशयेत्सद्धिं बहुच्छिद्रं बहुस्वनम् ॥ ९ ॥

वल्मीकको शस्त्रसे काटकर क्षार तथा अग्निका प्रयोग करना चाहिये तथा मनशिल, हरताल, भिलावा, छोटी इलायची, अगर, चन्दन तथा चमेलीके पत्तोंके कल्कसे नीमका तैल सिद्ध करना चाहिये। यह तैल बहुत छिद्र तथा बहुत शब्दयुक्त वल्मीक रोगको नष्ट करता है ॥ ८ ॥ ९ ॥

पाददारीचिकित्सा।

पाददारीषु च शिरां व्यधयेत्तलशोधिनीम्।
स्नेहस्वेदोपपन्नौ तु पादौ चालेपयेन्मुहुः ॥ १० ॥
मधूच्छिष्टवसामज्जाघृतक्षारैर्विमिश्रितैः।
सर्जाख्यसिन्धूद्भवयोश्चूर्णं मधुघृताप्लुतम्।
निमथ्य कटुतैलाक्तं हितं पादप्रमार्जनम् ॥ ११ ॥

पाददारीमें तलशोधनी शिराका व्यध करना चाहिये तथा पैरोंका स्नेहन, स्वेदन कर मोम, चर्बी, मज्जा, घी व क्षारका लेप करना चाहिये तथा राल व सेंधानमकके चूर्णको शहद, घी तथा कडुए तैलमें मिलाकर पैरोंमें लगाना हितकर है ॥ १० ॥ ११ ॥

उपोदिकादिक्षारतैलम्।

उपोदिकासर्षपनिम्बमोच
कर्कारुकैर्वारुकभस्मतोये।
तैलं विपक्वं लवणांशयुक्तं
तत्पाददारीं विनिहन्ति लेपात् ॥ १२ ॥

पोय, सरसों, नीमकी पत्ती, सेमर तथा ककडी व खीरा इन ओषधियोंको यथाविधि जलाकर भस्म बना ले इस भस्मके जलमें पकाया गया तैल नमक मिलाकर लेप करनेसे पाददारीको नष्ट करता है ॥ १२ ॥

अलसकचिकित्सा।

अलसेऽम्लैश्चिरं सिक्तौ चरणौ परिलेपयेत्।
पटोलारिष्टकाशीसत्रिफलाभिर्मुहुर्मुहुः ॥ १३ ॥
करञ्जबीजं रजनी काशीसं मधुकं मधु।
रोचना हरितालं च लेपोऽयमलसे हितः ॥ १४ ॥
लाक्षाभयारसो लेपः कार्यो वा रक्तमोक्षणम्।
जातीपत्रं च समर्थं दद्यादलसके भिषक् ॥ १५ ॥
बृहतीरससिद्धेन तैलेनाभ्यज्य बुद्धिमान्।
शिलारोचनकाशीसचूर्णैर्वा प्रतिसारयेत् ॥ १६ ॥

अलसकमें पैरोंको काञ्जीसे तर कर परवल, नीम, काशीस व त्रिफलाके कल्कका वारवार लेप करे। अथवा कञ्जाके बीज, हल्दी, काशीस, मौरेठी, शहद, गोरोचन व हरितालका लेप लगाना चाहिये। अथवा लाख, हर्र

और रालका लेप करना चाहिये अथवा रक्तमोक्षण करना चाहिये । अथवा चमेलीके पत्तोंको पीसकर अलसकमें लगाना चाहिये अथवा वर्त्ता कटेरी रससे सिद्ध तैलसे मालिश कर मनशिल, गोरोचन व कासीसके चूर्णको उरीवे ॥ १३-१६ ॥

कदरचिप्पचिकित्सा ।

दहेत्कदरमुद्धृत्य तैलेन दहनेन वा ।
चिप्पमुष्णाम्बुना स्विन्नमुत्कृत्याभ्यज्य तं व्रणम् ॥ १७ ॥
दत्त्वा सर्जरसं चूर्णं बद्ध्वा व्रणवदाचरेत् ।
स्वरसेन हरिद्रायाः पात्रे कृष्णायसेऽभयाम् ॥ १८ ॥
घृष्ट्वा सजेन कल्केन लिम्पेच्चिप्प पुनः पुनः ।
चिप्पे सटङ्कणास्फोतामूललेपो नखप्रद' ॥ १९ ॥

कदरको खुरचकर तैल अथवा अग्निसे जलाना चाहिये । चिप्पकको गरम जलमे स्वेदित करनेके अनन्तर खुरच कर उस व्रणमें रालका चूर्ण उरीकर व्रणके समान चिकित्सा करनी चाहिये तथा काले लोहके पात्रमे हल्दीके स्वरससे हर्रको घिसकर चिप्पमें वारवार लेप करना चाहिये तथा चिप्पमे सुहागा और आस्फोतेकी जडका लेप नाखूनको उत्पन्न करता है॥१७-१९॥

पद्मिनीकण्टकचिकित्सा ।

निम्बोदकेन वमनं पद्मिनीकण्टके हितम् ।
निम्बोदककृतं सर्पि' सक्षौद्रं पानमिष्यते ॥ २० ॥
पद्मनालकृतः क्षारः पद्मिनीं हन्ति लेपत. ।
निम्बारग्वधकल्कैर्वा मुहुरुद्वर्तनं हितम् ॥ २१ ॥

नीमके जलसे वमन कराना पद्मिनीकण्टकमे हितकर है तथा नीमके जलसे सिद्ध घृतमे शहदको मिलाकर पीना चाहिये तथा कमलकी डण्डीकी क्षारका लेप पद्मिनीको नष्ट करता है तथा नीम व अमलतासके कल्कका वार वार उबटन करना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

जालगर्दभचिकित्सा ।

नीलीपटोलमूलाभ्यां साज्याभ्यां लेपनं हितम् ।
जालगर्दभरोगे तु सद्यो हन्ति च वेदनाम् ॥ २२ ॥

घीसे मिलित नील व परवलकी जडका लेप जालगर्दभ रोगको नष्ट करता तथा पीडाको शान्त करता है ॥२२॥

अहिपूतनकचिकित्सा ।

अहिपूतनके धात्र्या. पूर्वं स्तन्यं विशोधयेत् ।
त्रिफलाखदिरक्काथैर्व्रणानां धावनं सदा ॥ २३ ॥
करञ्जत्रिफलातिक्तैः सर्पिः सिद्धं शिशोर्हितम् ।
स्याञ्जनं विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ २४ ॥

अहिपूतनामें पहिले धायका दूध शुद्ध करना चाहिये तथा त्रिफला व कत्थाके क्काथसे सदा घावोंको धोना चाहिये । तथा कञ्जा, त्रिफला व तिक्तद्रव्योंसे सिद्ध घृत बालकोंके लिये हितकर है तथा पीने व लेपके लिये विशेषकर रसौत हितकर है ॥ २३॥२४ ॥

गुदभ्रंशचिकित्सा ।

गुदभ्रंशे गुदं स्नेहैरभ्यज्याशु प्रवेशयेत् ।
प्रविष्टं स्वेदयेच्चापि बध्नं गोफणया भृशम् ॥ २५ ॥
कोमलं पद्मिनीपत्रं य. खादेच्छर्करान्वितम् ।
एतन्निश्चित्य निर्दिष्टं न तस्य गुदनिर्गमः ॥ २६ ॥
वृक्षाम्लानलचाङ्गेरीबिल्वपाठायवाग्रजम् ।
तक्रेण शीलयेत्पायुभ्रंशार्तोऽनलदीपनम् ॥ २७ ॥
गुदं च गव्यपयसा संक्षयेदविशङ्कितः ।
दुष्प्रवेशो गुदभ्रंशो विशत्याशु न संशयः ॥ २८ ॥
मूषिकाणां वसाभिर्वा गुदे सम्यक्प्रलेपनम् ।
स्विन्नमूषिकमांसेन चाथवा स्वेदयेद्गुदम् ॥ २९ ॥

गुदभ्रंशमें स्नेहकी मालिश कर गुदाको प्रविष्ट करना चाहिये । प्रविष्ट हो जानेपर स्वेदन कर गोफणाबन्धसे बान्ध देना चाहिये । तथा जो कोमल कमलिनीके पत्तोंको शक्करके साथ खाता है उसकी गुदा निःसन्देह नहीं निकलती तथा कोकम अथवा अम्लवेत, चीत, चाङ्गेरी, बेल, पाठा तथा जवाखार इन ओषधियोंके चूर्णको मट्ठेके साथ खानेसे गुदभ्रंश नष्ट होता है और अग्नि दीप्त होती है यदि गुदा बैठती न हो तो गायके दूधका सिञ्चन करना चाहिये इससे गुदा शीघ्र ही बैठ जाती है । मूसोंकी वसासे गुदामें लेप करना अथवा मूषिकामांससे स्वेदन करना चाहिये ॥ २५-२९ ॥

चांगेरीघृतम् ।

चाङ्गेरीकोलदध्यम्लनागरक्षारसंयुतम् ।
घृतमुत्क्वथितं पेयं गुदभ्रंशरुजापहम् ।
शुण्ठीक्षारावत्र कल्कौ शिष्टं तु द्रवमिष्यते ॥ ३० ॥

अमलोनिया, बेर, दही, काञ्जी, सोंठ और क्षारसे सिद्ध घृत गुदभ्रंशको नष्ट करता है । इसमें सोंठ व क्षारका कल्क तथा शेषद्रव छोडना चाहिये ॥ ३० ॥

मूषिकातैलम् ।

क्षीरे महत्पञ्चमूलं मूषिकामन्त्रवर्जिताम् ।
पक्त्वा तस्मिन्पचेत्तैलं वातघ्नौषधसाधितम् ॥ ३१ ॥
गुदभ्रंशमिदं तैलं पानाभ्यङ्गात्प्रसाधयेत् ॥ ३२ ॥

दूधमें महत्पञ्चमूल और आन्तोंरहित मूषिकाको पकाकर उसी क्काथमें वातनाशक ओषधियोंके सहित

तैल सिद्ध करना चाहिये । यह तैल पीने तथा मालिश करनेसे गुदभ्रंशको नष्ट करता है ॥ ३१ ॥ ३२ ॥

परिवर्तिकाचिकित्सा ।

स्वेदोपनाहो परिवर्तिकाया
कृत्वा समभ्यज्य घृतेन पश्चात् ।
प्रवेशयेच्चर्म शनैः प्रविष्टे
मांसैः सुखोष्णैरुपनाहयेच्च ॥ ३३ ॥

परिवर्तिकामें स्वेदन तथा उपनाह कर घीसे मालिश कर धीरे धीरे चर्म प्रविष्ट करना चाहिये फिर कुछ गरम गरम मांससे स्वेदन करना चाहिये ॥ ३३ ॥

अवपाटिकादिचिकित्सा ।

स्नेहस्वेदैस्तथैवंना चिकित्सेदवपाटिकाम् ।
निरुद्धप्रकशे नाडीं द्विमुखीं कनकादिजाम् ॥ ३४ ॥
क्षिप्त्वाऽभ्यक्त्वा चुलकादिस्नेहेन परिषेचयेत् ।
तैलेन वा वचादारुकल्कैः सिद्धेन च त्र्यहात् ॥ ३५ ॥
पुनः स्थूलतरा नाडी देया स्रोतोविवृद्धये ।
शस्त्रेण सेवनीं त्यक्त्वा भित्त्वा व्रणवदाचरेत् ॥ ३६ ॥
स्निग्धं च भोजनं बद्धे गुदेऽप्येष क्रियाक्रमः ।
चर्मकीलं जतुमणिं मशकांस्तिलकालकान् ॥ ३७ ॥
उद्धृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ।
स्नुहीनालस्य चूर्णेन वर्षो मशकनाशनः ॥ ३८ ॥
निर्मोकभस्मनर्षाद्वा मशः शान्तिं व्रजेत्सदा ।

अवपाटिकाकी स्नेहन व स्वेदन कर चिकित्सा करनी चाहिये । निरुद्धप्रकशमें सोने आदिकी द्विमुखी नाडी छोडे फिर चुल्लकादि जल जन्तुओंके स्नेहसे सिञ्चन करे । अथवा वच व देवदारुके कल्कसे सिद्ध तैलसे सिञ्चन करे । फिर ३ दिनके बाद छिद्र बढानेके लिये बडी नली लगावे तथा सेवनीको छोड शस्त्रसे काटकर व्रणवत् चिकित्सा करे तथा स्नेहयुक्त भोजन देवे । बद्धगुदमें भी यही चिकित्सा करनी चाहिये । चर्मकील, जतुमणि, मशक, तिलकालक इनको शस्त्रसे काटकर क्षार तथा अग्निसे समग्र जलाना चाहिये । एरण्डनालके चूर्णसे मसेमें घिसना मसेको नष्ट करता है । तथा सांपकी केंचुलकी भस्म घिसनेसे मसा शान्त होता है ॥ ॥ ३४–३८ ॥–

युवानपिडकादिचिकित्सा ।

युवानपिडकान्यच्छनीलिकान्यङ्गशर्करा ॥ ३९ ॥
शिराव्यधैः प्रलेपैश्च जयेदभ्यञ्जनैस्तथा ।
लोध्रधान्यवचालेपस्तारुण्यपिडकापहः ॥ ४० ॥
तद्वद्गोरोचनायुक्तं मरिचं मुखलेपतः ।
सिद्धार्थकवचालोध्रसैन्धवैश्च प्रलेपनम् ॥ ४१ ॥
वमनं च निहन्त्याशु पिडका यौवनोद्भवाम् ।

मुहासे, स्याउहा, झाँई, नीलिका तथा शर्कराको शिराव्यध, लेप, तथा मालिशसे जीतना चाहिये । पठानी लोध, धनिया तथा वचका लेप मुहासोंको नष्ट करता है इसी प्रकार गोरोचन, मिर्च मिलाकर लेप करनेसे लाभ करता है । तथा सरसो, वच, लोध व सेधानमकका लेप तथा वमन कराना मुहासोंको नष्ट करता है॥३९–४१॥–

मुखकान्तिकरा लेपाः ।

व्यङ्गेषु चार्जुनत्वग्वा मञ्जिष्ठा वा समाक्षिका ॥ ४२ ॥
लेपः सनवनीता वा श्वेताश्वखुरजा मसी ।
रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालोध्रकुष्ठप्रियङ्गवः ॥ ४३ ॥
वटाङ्कुरमसूराश्च व्यङ्गघ्ना मुखकान्तिदाः ।
व्यङ्गानां लेपनं शस्तं रुधिरेण शशस्य च ॥ ४४ ॥
मसूरैः सर्पिषा पिष्टैर्लिप्तमास्यं पयोऽन्वितैः ।
सप्ताहाच्च भवेत्सत्यं पुण्डरीकदलप्रभम् ॥ ४५ ॥
मातुलुङ्गजटासर्पिः शिलागोशकृतो रसः ।
मुखकान्तिकरो लेपः पिडकातिलकालजित् ॥ ४६ ॥
नवनीतगुडक्षौद्रकोलमज्जाप्रलेपनम् ।
व्यङ्गजिद्वरुणत्वग्वा छागक्षीरप्रपेषिता ॥ ४७ ॥
जातीफलकल्कैर्लेपो नीलिव्यङ्गादिनाशनः ।
सायं च कटुतैलेनाभ्यङ्गो वक्त्रप्रसादनः ॥ ४८ ॥

व्यङ्गमें अर्जुनकी छाल अथवा मञ्जीठको पीस शहद मिलाकर लेप करना चाहिये । अथवा मक्खनके साथ सफेद घोडेके खुरकी राख लगाना चाहिये । तथा लाल चन्दन, मञ्जीठ, लोध, कूठ, प्रियङ्गु बरगदके अङ्कुर व मसूरका लेप व्यङ्गको नष्ट करता तथा मुखकी शोभाको बढाता है । तथा खरगोशके रक्तसे व्यङ्गमें लेप करना उत्तम है । इसी प्रकार मसूरको पीस दूध व घीमें मिलाकर मुखमें लेप करनेसे ७ दिनमें कमलके सदृश मुख होता है । तथा बिजौरे निम्बूकी जड, घी, मैनशिल व गायके गोबरके रसका लेप मुखकी शोभाको बढाता तथा फुन्सियां व तिल आदिको नष्ट करता है । इसी प्रकार मक्खन, गुड, शहद व बेरकी गुठलीका लेप अथवा वरुणाकी छालको बकरीके दूधमें पीसकर लेप करनेसे मुखकी झाइयां मिटती हैं । तथा जायफलके कल्कका लेप नीली व्यङ्ग आदिको नष्ट करता है तथा सायंकाल कडुए तैलकी मालिश मुखको प्रसन्न करती है ॥ ४२–४८ ॥

कालीयकादिलेपः ।

कालीयकोत्पलामयदधिसरबदरास्थिमध्यफालिनीभिः ।
लिप्तं भवति च वदनं शशिप्रभं सप्तरात्रेण ॥ ४९ ॥

दारुहल्दी, नीलोफर, कूठ, दहीका तोड, बेरकी गुठलीकी मींगी तथा प्रियङ्गुका लेप करनेसे मुख ७ दिनमें चन्द्रमाके समान शोभायमान होता है ॥ ४९ ॥

यवादिलेपः ।

तुपरहितमसृणयवचूर्णसयष्टीमधुकलोध्रलेपेन ।
भवति मुखं परिनिर्जितचामीकरचारुसौभाग्यम् ॥५०॥

छिलके रहित चिकने यवका चूर्ण, मौरेठी और लोधके लेपसे मुख सुवर्णसे अधिक मनोहर होता है५०॥

रक्षोघ्नादिलेपः ।

रक्षोघ्नशर्वरीद्वयमञ्जिष्ठागैरिकाज्यवस्तपयः ।
सिद्धेन लिप्तमाननमुद्यद्विधुबिम्बवद्भाति ॥ ५१ ॥

सफेद सरसों, हल्दी, दारुहल्दी, मञ्जीठ तथा गेरूको घी व दूधमें मिलाकर बनाये गये लेपको लगानेसे मुख उदय होते हुए चन्द्रमाके समान स्वच्छ होता है॥५१॥

दध्यादिलेपः ।

परिणतदधिशरपुङ्खैः कुवलयदलकुष्ठचन्दनोशीरैः ।
मुखकमलकान्तिकारी भ्रुकुटीतिलकालकाञ्जयति ॥५२॥

जमा दही, सरफोका, कमलकी पत्ती, कूठ, चन्दन व खशका लेप मुखकी कान्तिको बढाता तथा भौंहोंके तिल आदिको नष्ट करता है ॥ ५२ ॥

हरिद्रादिलेपः ।

हरिद्राद्वययष्ट्याह्वकालीयककुचन्दनैः ।
प्रपौण्डरीकमञ्जिष्ठापद्मपद्मककुङ्कुमैः ॥ ५३ ॥
कपित्थतिन्दुकप्लक्षवटपत्रैः पयोऽन्वितैः ।
लेपयेत्कल्कितैरेभिस्तैलं वाऽभ्यञ्जने चरेत् ॥ ५४ ॥
पिडका नीलिकाव्यङ्गांस्तिलकान्मुखदूषिकान् ।
नित्यसेवी जयेत्क्षिप्रं मुखं कुर्यान्मनोरमम् ॥ ५५ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मौरेठी, दारुहल्दी, लालचन्दन, पुण्डरिया, मजीठ, कमल, पद्माख, केशर, कैथा, तेन्दू, पकरिया तथा बरगदके पत्तोंका दूधके साथ कल्ककर लेप करनेसे अथवा इनसे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे मुहासे, नाईंमा, व्यङ्ग, तिल, मुहासे आदि शीघ्र नष्ट होते हैं तथा मुख मनोहर होता है ॥ ५३–५५ ॥

कनकतैलम् ।

मधुकस्य कषायेण तैलस्य कुडवं पचेत् ।
कल्कैः प्रियङ्गुमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलकेशरैः ॥ ५६ ॥
कनकं नाम तत्तैलं मुखकान्तिकरं परम् ।
अभीरुनीलिकाव्यङ्गशोधनं परमार्चितम् ॥ ५७ ॥

मौरेठीके काढे तथा प्रियङ्गु, मञ्जीठ, चन्दन, नीलोफर नागकेशरके कल्कसे सिद्ध तैल मुखकान्तिको बढाता तथा मुहासे, नीलिका, व्यंग आदिको नष्ट करता है इसे कनकतैल कहते है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

मञ्जिष्ठादितैलम् ।

मञ्जिष्ठा चन्दनं लाक्षा मातुलुङ्गं सयष्टिकम् ।
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ॥ ५८ ॥
आजं पयस्तद्द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
नीलिकापिडकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ५९ ॥
मुखं प्रसन्नोपचितं वलीपलितवर्जितम् ।
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्कनकसन्निभम् ॥ ६० ॥

मञ्जीठ, चन्दन, लाख, बिजौरा निम्बू, तथा मौरेठी, प्रत्येक एक तोला, तैल १६ तोला, बकरीका दूध ३२ तो० सबको मिलाकर मन्द आंचसे पकावे। इसकी मालिशसे झाई, फुन्सियां, व्यङ्ग नष्ट होते हैं, मुख प्रसन्न और स्थूल होता है तथा झुर्रियां व बालोंकी सफेदी नष्ट होती हैं, सात रातके प्रयोगसे मुख सोनेके समान सुन्दर होता है ॥ ५८–६० ॥

कुंकुमादितैलम् ।

कुङ्कुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका ।
कालीयकमुशीरं च पद्मकं नीलमुत्पलम् ॥ ६१ ॥
न्यग्रोधपादाः प्लक्षस्य शुङ्गाः पद्मस्य केशरम् ।
द्विपञ्चमूलसहितैः कषायैः पालिकैः पृथक् ॥ ६२ ॥
जलाढके विपक्तव्यं पादशेषमथोद्धरेत् ।
मञ्जिष्ठा मधुकं लाक्षा पतङ्गं मधुयष्टिका ॥ ६३ ॥
कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं तथा ।
अजाक्षीरं तद्द्विगुणं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ ६४ ॥
सम्यक्पक्वं परं ह्येतन्मुखवर्णप्रसादनम् ।
नीलिकापिडकाव्यङ्गानभ्यङ्गादेव नाशयेत् ॥ ६५ ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण भवेत्काञ्चनसन्निभम् ।
कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमश्विभ्यां निर्मितं पुरा ॥ ६६ ॥

केशर, चन्दन, लाख, मञ्जीठ, मौरेठी, दारु हल्दी, खश, पद्माख, नीलोफर, बरगदकी बौं, पकरियाकी मुला-

यम पत्ती, कमलका केशर तथा दशमूल प्रत्येक ४ तोलाका काढ़ा ३ सेर १६ तो० जल (द्रवद्वैगुण्यात् ६ सेर ३२ तो०) में पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रह-नेपर उतारकर छान लेना चाहिये फिर इसी क्वाथमें मजीठ १ तो०, मौरेठी, लाख, पीला चन्दन, मौरेठी प्रत्येक १ तोलाका कल्क तथा तैल १६ तो० और बक-रीका दूध दूना मिलाकर मन्द आंचसे पकाना चाहिये । अच्छी तरह पका हुआ यह मुखके वर्णको उत्तम करता है । झाई, फुन्सिया, व्यङ्ग आदिको मालिशसे नष्ट करता है । सात रातके प्रयोगसे मुख सोनेके समान उत्तम होता है । यह कुंकुमादि तैल पहिले पहिल अश्विनीकुमारने बनाया था * ॥ ६१–६६ ॥

द्वितीयं कुंकुमादितैलम् ।

कुङ्कुमं किंशुकं लाक्षा मञ्जिष्ठा रक्तचन्दनम् ।
कालीयकं पद्मकं च मातुलुङ्गस्य केशरम् ॥ ६७ ॥
कुसुम्भं मधुयष्टीकं फलिनी मदयन्तिका ।
निशे द्वे रोचना पद्ममुत्पलं च मनःशिला ॥ ६८ ॥
काकोल्यादिसमायुक्तैरेतैरक्षसमैर्भिषक् ।
लाक्षारसपयोभ्यां च तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ६९ ॥
कुङ्कुमाद्यमिदं तैलमभ्यङ्गात्काञ्चनोपमम् ।
करोति वदनं सद्यः पुष्टिलावण्यकान्तिदम् ।
सौभाग्यलक्ष्मीजननं वशीकरणमुत्तमम् ॥ ७० ॥

केशर, ढाकके फूल, लाख, मजीठ, लालचन्दन, दारुहल्दी, पद्माख, बिजौरे निम्बूका केशर, कुसुम, मौरेठी, प्रियगु, चमेली, हल्दी, दारुहल्दी, गोरोचन, कमल नीलोफर, मनशिल तथा काकोल्यादि गणकी ओषधियां प्रत्येक १ तोले लाखका रस तथा दूध तैलमे चतुर्गुण मिलाकर तैल १२८ तो० छोडकर पकाना चाहिये यह कुकुमादि तैल मालिश करनेसे मुखको कम-लके समान बनाता तथा पुष्टि, मनोहरता, कांति सौभाग्य व लक्ष्मीको बढाता तथा उत्तम वशीकरण है॥६७-७०॥

* यहांपर इसी तैलके अनन्तर एक दूसरा तैल भी द्वितीय कुंकुमादिके नामसे है यह पूर्व तैलका एक बहुत छोटा अंश है । यथा,—"कुकुमं चन्दनं लाक्षा मञ्जिष्ठा मधुयष्टिका । कर्षप्रमाणैरेतैस्तु तैलस्य कुडवं पचेत् ॥ " शेष प्रथमके ६४, ६५, ६६ के अनुसार अर्थात् केवल केशर, चन्दन, लाख, मजीठ, मौरेठी इनके १ तो०की मात्रासे कल्क छोडकर एक कुडव तैल, २ कुडव बक-रीका दूध और २ कुडव जल मिलाकर पकाना चाहिये। हम इसे लघुकुंकुमादि कह सकते हैं ॥

वर्णकं घृतम् ।

मधुकं चन्दनं कङ्गु सर्षपं पद्मकं तथा ।
कालीयकं हरिद्रा च लोध्रमभिश्च कल्कितैः ॥ ७१ ॥
विपचेद्धि घृतं वैद्यस्तत्पक्वं वस्त्रगालितम् ।
पादांशं कुङ्कुमं सिक्थं क्षिप्त्वा मन्दानले पचेत्॥७२॥
तत्सिद्धं शिशिरे नीरे प्रक्षिप्याकर्षयेत्ततः ।
तदेतद्वर्णकं नाम घृतं वर्णप्रसादनम् ॥ ७३ ॥
अनेनाभ्यासलिप्तं हि वलीभूतमपि क्रमात् ।
निष्कलङ्केन्दुबिम्बाभं स्याद्विलासवतीमुखम् ॥ ७४ ॥

मौरेठी, चन्दन, काकुन, सरसों, पद्माख, तगर, हल्दी तथा लोधके कल्कको छोडकर घीको पकावे फिर उसे छानकर चतुर्थांश केशर व मोम मिलाकर मन्द आंचसे पकावे फिर इसे ठण्ढे जलमें छोडकर निकाल लेवे, यह वर्णकनाम घृत वर्णको उत्तम बनाता है । इसे नियमसे लगानेसे स्त्रियोंका मुख चन्द्रमाके समान सुन्दर होता है ॥ ७१–७४ ॥

अरूंषिकाचिकित्सा ।

अरूंषिकायां रुधिरेऽवसिक्ते
शिराव्यधेनाथ जलौकसा वा ।
निम्बाम्बुसिक्ते शिरसि प्रलेपो
देयोऽश्ववर्चोरससैन्धवाभ्याम् ॥ ७५ ॥
पुराणमथ पिण्याकं पुरीषं कुक्कुटस्य वा ।
मूत्रपिष्टं प्रलेपोऽयं शीघ्रं हन्यादरूंषिकाम् ॥ ७६ ॥
अरूंषिघ्नं भृष्टकुष्ठचूर्णं तैलेन संयुतम् ।

अरूंषिकाओंमें शिराव्यध अथवा जोंकोंसे रक्त निकाल नीमके जलका सिञ्चनकर घोडेकी लीदके रस तथा सेंधानमकसे लेप करना चाहिये । अथवा पुराना पीना अथवा मुर्गेकी विष्ठाको मूत्रमें पीसकर लेप करनेसे फुन्सियां दूर होती हैं । इसी प्रकार भुने कूठके चूर्णको तैलमें मिलाकर लेप करनेसे अरूंषिका नष्ट होती है ॥ ७५ ॥ ७६ ॥—

हरिद्राद्यतैलम् ।

हरिद्राद्वयभूनिम्बत्रिफलारिष्टचन्दनैः ।
एतत्तैलमरूंषीणां सिद्धमभ्यञ्जने हितम् ॥ ७७ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, चिरायता, आंवला, हर्र, बहेडा, नीमकी छाल, चन्दनके कल्कमें सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे अरूंषिकाएं नष्ट होती हैं ॥ ७७ ॥

दारुणाचिकित्सा ।

दारुणे तु शिरां विध्येत्स्निग्धां स्विन्नां ललाटजाम् ।
१ अवपीडांश्च वस्तींश्च नस्याभ्यङ्गांश्च चारयेत् ॥ ७८ ॥

कोद्रवाणां तृणक्षारपानीयं परिधावने ।
कार्यो दारुणके मूर्ध्नि प्रलेपो मधुसंयुत ॥ ७९ ॥
प्रियालबीजमधुककुष्ठमिश्रै ससैन्धवै. ।
काञ्जिकस्थास्त्रिसप्ताहं माषा दारुणकापहा. ॥ ८० ॥

दारुण रोगमे स्नेहन व स्वेदन कर मस्तककी शिराका व्यध करना चाहिये । तथा अवपीडक नस्य, शिरोबस्ति और मालिश भी करनी चाहिये । धोनेके लिये कोदवके क्षार जलका प्रयोग करना चाहिये । तथा चिरौंजी, मौरेठी, कूठ व सेंधानमकको पीसकर शहदके साथ शिरमें लेप करना चाहिये । इसी प्रकार काञ्जीमें उड़द भिगो पीसकर २१ दिनतक लगानेसे दारुण रोग नष्ट होता है ॥ ७८–८० ॥

नीलोत्पलादिलेपः ।

सहनीलोत्पलकेशरयष्टीमधुकातैल सदृशमामलकम् ।
चिरजातमपि च शीर्षे दारुणरोग शमं नयति ॥ ८१ ॥

नीलोफर, नागकेशर, मौरेठी, तिल तथा सबके समान आंवला मिलाकर लेप करनेसे पुराना दारुणरोग नष्ट होता है ॥ ८१ ॥

त्रिफलादितैलम् ।

त्रिफलाया रजो मासीमार्कवोत्पलशारिवै ।
ससैन्धवै पचेत्तैलमभ्यङ्गाद्रूक्षिकां जयेत् ॥ ८२ ॥

त्रिफलाका चूर्ण, जटामासी, भांगरा, नीलोफर, सारिवा तथा सेंधानमकसे सिद्ध तैल रूक्षिका फिहासको नष्ट करता है ॥ ८२ ॥

चित्रकादितैलम् ।

चित्रक दन्तिमूलं च कोपातकिसमन्वितम् ।
कल्क पिष्ट्वा पचेत्तैल केशदद्रुविनाशनम् ॥ ८३ ॥

चीतकी जड, दन्तीकी जड, तथा कडुई तोरईका कल्क छोड़कर सिद्ध तैल बालोंके दादको नष्ट करता है ॥ ८३ ॥

गुञ्जातैलम् ।

गुञ्जाफलै. शृत तैलं भृङ्गराजरसेन तु ।
कण्डूदारुणहत्कुष्ठकपालव्याधिनाशनम् ॥ ८४ ॥

गुंजाके कल्क और भांगरेके रससे सिद्ध तैल खुजली, दारुण, कुष्ठ और कपाल व्याधिको नष्ट करता है ॥ ८४ ॥

भृंगराजतैलम् ।

भृङ्गरजस्त्रिफलोत्पलशारिलौहपुरीषसमन्वितकारि ।
तैलमिदं पच दारुणहारि कुञ्चितकेशघनस्थिरकारि ॥ ८५ ॥

भांगरा, त्रिफला, नीलोफर, सारिवा, लोहकिट्ट इन सबके कल्कमे तैलको छोड़कर पकाना चाहिये । यह दारुणको नष्ट करता तथा बालोंको घन, स्थिर तथा घुंघुराले बनाता है ॥ ८५ ॥

प्रतिमर्शतैलम् ।

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलै: ।
कार्षिकैस्तैलकुडवं तैर्द्विरामलकीरस ॥ ८६ ॥
साध्य स प्रतिमर्श: स्यात्सर्वशीर्षगदापहः ।

पुण्डरिया, मौरेठी, छोटी पीपल, चन्दन व नीलोफर प्रत्येक एक तोला, तैल १६ तोला तथा आंवलेका रस ३२ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । इसका प्रतिमर्श नस्य लेनेसे समस्त शिरोरोग नष्ट होते हैं ॥ ८६ ॥

इन्द्रलुप्तचिकित्सा ।

मालतीकरवीराग्निनक्तमालविपाचितम् ॥ ८७ ॥
तैलमभ्यञ्जने शस्तमिन्द्रलुप्तापहं परम् ।
इदं हि त्वरितं हन्ति दारुणं नियतं नृणाम् ॥ ८८ ॥
धात्र्याम्रमज्जलेपात्स्यात्स्थिरता स्निग्धकेशता ।
इन्द्रलुप्ते शिरां विद्ध्वा शिलाकासीसतुत्थकै. ॥ ८९ ॥
लेपयेत्परित कल्कैस्तैलं चाभ्यञ्जने हितम् ।
कुटन्नटशिखीजातीकरञ्जकरवीरजै ॥ ९० ॥
अवगाढपदं चैव प्रच्छयित्वा पुन पुन ।
गुञ्जाफलैश्चिर लिम्पेत्केशभूमिं समन्तत ॥ ९१ ॥
हस्तिदन्तमसीं कृत्वा मुख्यं चैव रसाञ्जनम् ।
लोमान्यनेन जायन्ते नृणां पाणितलेष्वपि ॥ ९२ ॥
भल्लातकबृहतीफलगुञ्जामूलफलेष्व एकेन ।
मधुसहितेन विलिप्तं सुरपतिलुप्तं शमं याति ॥ ९३ ॥
बृहतीफलरसपिष्टं गुञ्जाफलमूलं चेन्द्रलुप्तस्य ।
कनकनिघृष्टस्य सतो दातव्य प्रच्छितस्य सदा ॥ ९४ ॥
घृष्टस्य कर्कशै. पत्रैरिन्द्रलुप्तस्य गुण्टनम् ।
चूर्णितैर्मरिचै कार्यमिन्द्रलुप्तनिवारणम् ॥ ९५ ॥

मालती, कनेर, चीतकी जड तथा कञ्जासे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है । यह तैल दारुणको शीघ्र ही नष्ट करता है । इसी प्रकार आंवला और आमकी गुठलीका लेप करनेसे बाल मजबूत तथा चिकने होते हैं । इन्द्रलुप्तमें शिराव्यध कर मनशिल, कसीस और तूतियाका लेप करना चाहिये । तथा केवटीमोथा, लटजीरा, नमेली, कञ्जा व कनेरसे

सिद्ध तैल लगाना चाहिये। तथा गाढ़ पछने लगाकर वार वार गुञ्जाफलका लेप करना चाहिये । हाथीदातकी भस्म बना रसाञ्जन मिला लगानेसे हाथके तलुओंमें भी बाल जमते है। भिलावा, बडी कटेरीका फल, गुञ्जाकी जड अथवा फल इनमेंसे किसीएकको शहद मिलाकर लेप करनेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है। सुवर्णद्वारा खुरचे अथवा पछने लगाये इन्द्रलुप्त (बालोंके गिरने, में बडी कटेरीके रसमें पीसे गुञ्जामूल व फलको लगानेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है। अथवा कडे पत्तोंसे खुरचकर काली मिर्चका चूर्ण उर्रानेसे इन्द्रलुप्त नष्ट होता है ॥ ८७–९५ ॥

छागीक्षीरादिलेपद्वयम् ।

छागक्षीररसाञ्जनपुटदग्धगजेन्द्रदन्तमसिलिप्ता ।
जायन्ते सप्तरात्रात् खल्वस्यामपि कुञ्चिताश्चिकुरा ॥९६॥
मधुकेन्दीवरमूर्वातिलाज्यगोक्षीरभृङ्गलेपेन ।
अचिराद्भवन्ति केशा घन दृढमूलायता ऋजवः ॥ ९७॥

बकरीका दूध, रसौंत पुटमें जलाई हाथीदातकी स्याहीका लेप करनेसे ७ दिनमें खल्वाटके भी घन केश उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार मौरेठी, नीलोफर, मूर्वा, तिल, घी, गायका दूध, भांगरा इनका लेप करनेसे बाल घने, दृढमूल, लम्बे तथा सीधे होते हैं ॥९६॥९७॥

स्नुह्याद्यं तैलम् ।

स्नुहीपयः पयोऽर्कस्य मार्कवो लाङ्गलीविषम् ।
मूत्रमाजं सगोमूत्रं रक्तिका सेन्द्रवारुणी ॥ ९८ ॥
सिद्धार्थं तीक्ष्णतैलं च गर्भं दत्त्वा विपाचितम् ।
वह्निना मृदुना पक्वं तैलं खालित्यनाशनम् ॥ ९९ ॥
कूर्मपृष्ठसमानापि रुक्षा या रोमतस्करी ।
दिग्धा सानेन जायेत ऋक्षशारीरलोमशा ॥ १०० ॥

सेहुण्डका दूध, आकका दूध, भागरा, कलिहारी, सींगिया, बकरीका मूत्र, गोमूत्र, गुञ्जा, इन्द्रायण तथा सरसोंका कल्क छोडकर सिद्ध किया गया सरसोंका तैल खालित्यको नष्ट करता है । कछुवेकी पीठके समान लोमरहित रुक्षा इसकी मालिशसे ऋक्षके समान बालोंसे युक्त होती है ॥ ९८–१०० ॥

आदित्यपाकतैलम् ।

वटावरोहकेशिन्योश्चूर्णेनादित्यपाचितम् ।
गुडूचीस्वरसे तैलं चाभ्यङ्गात्केशरोपणम् ॥ १०१ ॥

बरगदकी बौं व जटामासीके चूर्णसे युक्त किये गुर्चके स्वरसमें सूर्यकी किरणोंसे पकाये तैलकी मालिश, करनेसे बालोंको उत्पन्न करता है ॥ १०१ ॥

चन्दनादितैलम् ।

चन्दनं मधुकं मूर्वा त्रिफला नीलमुत्पलम् ।
कान्ता वटावरोहश्च गुडूची बिसमेव च ॥ १०२ ॥
लोहचूर्णं तथा केशी शारिवे द्वे तथैव च ।
मार्कवस्वरसेनैव तैलं मृद्वग्निना पचेत् ॥ १०३ ॥
शिरस्युत्पतिता केशा जायन्ते घनकुञ्चिता ।
दृढमूलाश्च स्निग्धाश्च तथा भ्रमरसन्निभाः ।
नस्येनाकालपलितं निहन्यात्तैलमुत्तमम् ॥ १०४ ॥

चन्दन, मौरेठी, मूर्वा, त्रिफला, नीलोफर, प्रियङ्गु, बटकी बौं, गुर्च, कमलके तन्तु, लोहचूर्ण, जटामासी, शारिवा तथा काली शारिवाके कल्क और भागरेके स्वरससे मन्द आचसे पकाया गया तैल मालिशसे शिरके उखडे बालोंको घने घुघुराले, चिकने, भ्रमरके समान काले तथा दृढमूल बनाता है। इसके नस्यसे अकालपलित नष्ट होता है ॥ १०२–१०४ ॥

यष्टीमधुकतैलम् ।

तैलं सयष्टीमधुकैः क्षीरे धात्रीफलैः शृतम् ।
नस्ये दत्तं जनयति केशान्श्मश्रूणि चाप्यथ ॥ १०५ ॥

मौरेठी व आवलेके कल्क तथा दूधमें पकाये तैलका नस्य लेनेसे बालों तथा मूछोंको उत्पन्न करता है ॥ १०५ ॥

कृष्णीकरणम् ।

त्रिफला नीलिनीपत्रं लोहं भृङ्गरज समम् ।
आविमूत्रेण संयुक्तं कृष्णीकरणमुत्तमम् ॥ १०६ ॥

त्रिफला, नीलकी पत्ती, लौह तथा भांगराको भेडके मूत्रमें मिलाकर लेप करनेसे बाल काले होते हैं ॥ १०६ ॥

अपरं कृष्णीकरणम् ।

त्रिफलाचूर्णसंयुक्तं लोहचूर्णं विनिक्षिपेत् ।
ईषत्पक्वे नारिकेले भृङ्गराजरसान्विते ॥ १०७ ॥
मासमेकं तु निक्षिप्य सम्यग्गर्भात्समुद्धरेत् ।
ततः शिरो मुण्डयित्वा लेपं दद्याद्भिषग्वरः ॥ १०८ ॥
संवेष्ट्य कदलीपत्रैर्मोचयेत्सप्तमे दिने ।
क्षालयेत्त्रिफलाक्वाथैः क्षीरमांसरसाशिनः ॥ १०९ ॥
कपालरञ्जनं चैतत्कृष्णीकरणमुत्तमम् ।

कुछ पके नरियलमें भागरेका रस छोडकर त्रिफलाचूर्ण व लौहचूर्ण छोड बन्दकर गढेमें गाड देना चाहिये एक मासके अनन्तर निकालकर शिरका मुण्डन करा लेप करना चाहिये । ऊपरसे केलेके पत्तेको लपेटकर

बाध देना चाहिये । फिर ७ दिनके बाद खोलकर त्रिफलाके काढेसे धोना चाहिये । दूध तथा मासरसका भोजन करना चाहिये । यह शिर तथा बालोंको काला करता है अर्थात् एक प्रकारका खिजाब है १०७–१०९

अपरं योगाः ।

उत्पलं पयसा सार्धं मासं भूमौ निधापयेत् ॥ ११० ॥
केशानां कृष्णकरणं स्नेहनं च विधीयते ।
भृङ्गपुष्पं जपापुष्पं मेषीदुग्धप्रपेषितम् ॥ १११ ॥
तेनैवालोडितं लोहपात्रस्थं भूम्यधःकृतम् ।
सप्ताहादुद्धृतं पश्चाद्भृङ्गराजरसेन तु ॥ ११२ ॥
आलोड्याभ्यज्य च शिरो वेष्टयित्वा वसेन्निशाम् ।
प्रातस्तु क्षालनं कार्यमेवं स्यान्मूर्धरञ्जनम् ।
एवं सिन्दूरबालाम्रशङ्खभृङ्गरसैः क्रिया ॥ ११३ ॥

नीलोफर दूधके साथ महीनेभर पृथिवीमें गाडकर लेप करनेसे बाल काले तथा चिकने होते हैं । इसी प्रकार भाङ्गराके फूल व जपाके फूल, भेडके दूधमें पीस उसीमें मिला लोहेके वर्तनमें पृथिवीके अन्दर गाड सात दिनमें निकालकर भागरेके रसमें मिलाकर मालिश करना चाहिये और पत्तोंसे लपेट देना चाहिये । प्रातःकाल धोना चाहिये । इस प्रकार शिर काला होता है । इसी प्रकार सिन्दूर, कच्चे आमकी गुठली व शङ्खको यथाविधि साधित कर भागरेके रससे क्रिया करनी चाहिये ॥ ॥ ११०–११३ ॥

शङ्खचूर्णप्रयोगः ।

नवदग्धशङ्खचूर्णं काञ्जिकसिक्तं हि सीसकं घृष्ट्वा ।
लेपात्कचानकंदलैर्बद्धान्करोति हि नीलतरान् ॥ ११४ ॥

नवीन शङ्खभस्मको काञ्जीमें डुबोकर शीशा घिसकर बालोंमें लगा ऊपरसे आकके पत्ते बाधनेसे सफेद बाल अतिशय नील होते हैं ॥ ११४ ॥

स्नानम् ।

लोहमलामलककल्कैः सजवाकुसुमैर्नरः सदा स्नायी ।
पलितानीह न पश्यति गङ्गास्नायीव नरकाणि ॥ ११५ ॥

लोहकिट्ट, आवला तथा जपापुष्पके कल्ककी मालिश कर जलसे स्नान करनेसे गंगास्नानसे पातकोंके समान बालोंकी सफेदी नष्ट हो जाती है ॥ ११५ ॥

निम्बबीजयोगः ।

निम्बस्य बीजानि हि भावितानि
भृङ्गस्य तोयेन तथाशनस्य ।
तैलं तु तेषां विनिहन्ति नस्या-
द्दुग्धान्नभोक्तुः पलितं समूलम् ॥ ११६ ॥

नीमके बीजोंको भागरेके क्वाथ तथा विजैसारके क्वाथकी भावना देनेके अनन्तर निकाले गये तैलका नस्य लेनेसे तथा दूध भातका पथ्य लेनेसे सफेद बाल काले हो जाते हैं ॥ ११६ ॥

निम्बतैलयोगः ।

निम्बस्य तैलं प्रकृतिस्थमेव
नस्ये निषिक्तं विधिना यथावत् ।
मासेन गोक्षीरभुजो नरस्य
जराप्रभूतं पलितं निहन्ति ॥ ११७ ॥

नीमके तैलका एक मासतक नस्य लेने तथा गोदुग्धका पथ्य लेनेसे सफेद बाल काले होते हैं ॥ ११७ ॥

क्षीरादितैलम् ।

क्षीरात्समार्कवरसाद्द्विप्रस्थे मधुकात्पले ।
तैलस्य कुडवं पक्वं तन्नस्यं पलितापहम् ॥ ११८ ॥

दूध व भागरेका रस दोनों मिलकर २ प्रस्थ, मौरेठी २ पल, तैल १ कुडव पकाकर नस्य लेनेसे पलित नष्ट होता है ॥ ११८ ॥

महानीलं तैलम् ।

आदित्यवल्लिमूलानि कृष्णशैरीयकस्य च ।
सुरसस्य च पत्राणि फलं कृष्णशणस्य च ॥ ११९ ॥
मार्कवं काकमाची च मधुकं देवदारु च ।
पृथग्दशपलां भागानि पिप्पलीत्रिफलाञ्जनम् ॥ १२० ॥
प्रपौण्डरीकं मञ्जिष्ठालोध्रं कृष्णागुरूत्पलम् ।
आम्रास्थिकर्दमं कृष्णो मृणाली रक्तचन्दनम् ॥ १२१ ॥
नीलीभल्लातकास्थीनि कासीसं मदयन्तिका ।
सोमराज्यशनं शस्त्रं कृष्णौ पिण्डीतचित्रकौ ॥ १२२ ॥
पुष्पाण्यर्जुनकाश्मर्योश्चाम्रजम्बूफलानि च ।
पृथक्पञ्चपलैर्भागैः सुपिष्टैराढकं पचेत् ॥ १२३ ॥
वैभीतकस्य तैलस्य धात्रीरसचतुर्गुणम् ।
कुर्यादादित्यपाकं वा यावच्छुष्को भवेद्रसः ॥ १२४ ॥
लोहपात्रे ततः पूतं सशुद्धमुपयोजयेत् ।
पाने नस्यक्रियायां च शिरोऽभ्यंगे तथैव च ॥ १२५ ॥
एतच्चाक्षुष्यमायुष्यं शिरसः सर्वरोगनुत् ।
महानीलमिति ख्यातं पलितघ्नमनुत्तमम् ॥ १२६ ॥

सूर्यमुखीकी जड, काले कटसैलाकी जड, तुलसीकी पत्ती, काले सनके फल, भागरा, मकोय, मौरेठी, तथा देवदारु प्रत्येक दश पल, छोटी पीपल, त्रिफला

रसौंत, पुण्डरिया, मञ्जीठ, लोध, काला अगर, नीलोफर, आमकी गुठली, काला कीचड, कमल, लालचन्दन, नील, भिलावेकी गुठली, कासीस, वेला, वकुची, विलैसार, तीक्ष्ण लौहभस्म, काला मैनफल, काली चीत, अर्जुन व खम्भारके फूल तथा आम व जामुनके फल, फलकी गुठली प्रत्येक ५ पल पीसकर एक आढक बहेडेका तैल, ४ आढक आंवलेका रस मिलाकर पकाना चाहिये। अथवा सूर्यकी किरणोंसे रसको सुखा लेना चाहिये फिर लोहेके वर्तनमें छानकर पीने, नस्य तथा मालिशसे उपयोग करना चाहिये। यह नेत्रोंके लिये हितकर, आयुको बढानेवाला तथा शिरके सब रोगोंको नष्ट करता है। इसे महानील तैल कहते हैं। यह पलितरोगको नष्ट करता है ॥ ११९–१२६ ॥

पलितघ्नं घृतम्।

भृङ्गराजरसे पक्वं शिखिपित्तेन कल्कितम्।
घृतं नस्येन पलितं हन्यात्सप्ताहयोगतः ॥ १२७ ॥

भांगरेके रसमें मयूरके पित्तके कल्कको छोडकर सिद्ध घृतका नस्य लेनेसे ७ दिनमें पलित नष्ट होता है ॥ १२७ ॥

शेलुकतैलम्।

काञ्जिकपिष्टशेलुफलमज्जि सच्छिद्रलौहगे।
यदर्कतापात्पतति तैलं तन्नस्यम्रक्षणात् ॥ १२८ ॥
केशा नीलालिसङ्काशाः सद्यः स्निग्धा भवन्ति च।
नयनश्रवणग्रीवादन्तरोगांश्च हन्त्यदः ॥ १२९ ॥

काञ्जीमें पीसी लसोढेके फलकी मज्जाको छिद्रयुक्त लोहपात्रमें भरकर सूर्यकी किरणोंसे तपकर जो तैल नीचे गिरता है उसके नस्य तथा मालिशसे बाल नील भँवरोंके सदृश काले तथा चिकने होते हैं तथा नेत्र, कान, गर्दन और दन्तोंके रोग नष्ट होते हैं ॥१२८॥१२९॥

वृषणकच्छ्वादिचिकित्सा।

कासीसं रोचनातुल्यं हरितालं रसाञ्जनम्।
अम्लपिष्टं प्रलेपोऽयं वृषकच्छ्वहिपूतयोः ॥ १३० ॥

कासीस, गोरोचन, हरिताल तथा रसौंतको समान भाग ले काञ्जीमें पीसकर लेप करनेसे वृषणकच्छु तथा अहिपूतना नष्ट होती है ॥ १३० ॥

पटोलादिघृतम्।

पटोलपत्रत्रिफलारसाञ्जनविपाचितम्।
पीतं घृतं निहन्त्याशु कृच्छ्रामप्यहिपूतनाम् ॥ १३१ ॥

परवलकी पत्ती, त्रिफला तथा रसौंतसे सिद्ध घृतको पीनेसे अहिपूतना नष्ट होती है ॥ १३१ ॥

शूकरदंष्ट्रकचिकित्सा।

रजनीमार्कवमूलं पिष्टं शीतेन वारिणा तुल्यम्।
हन्ति विसर्पं लेपाद्वराहदशनाह्वयं घोरम् ॥ १३२ ॥

हल्दी व भांगरेकी जड दोनों समान भाग ले ठण्ढे जलमें पीसकर लेप करनेसे घोर शूकरदंष्ट्रक रोग नष्ट होता है ॥ १३२ ॥

पाददाहचिकित्सा।

नागकेशरचूर्णं वा शतधौतेन सर्पिषा।
पिष्ट्वा लेपो विधातव्यो दाहे हर्षे च पादयोः ॥ १३३ ॥

नागकेशरके चूर्णको १०० बार धोये हुए घीमें मिलाकर पाददाह तथा पादहर्षमें लगाना चाहिये ॥ १३३ ॥

इति क्षुद्ररोगाधिकारः समाप्तः।

अथ मुखरोगाधिकारः।

वातजौष्ठरोगचिकित्सा।

ओष्ठप्रकोपे वातोत्थे शाल्वणेनोपनाहनम्।
मस्तिष्के चैव नस्ये च तैलं वातहरैः शृतम्।
स्वेदोऽभ्यङ्गः स्नेहपानं रसायनमिहेष्यते ॥ १ ॥

वातज ओष्ठकोपमें शाल्वणस्वेदकी ओषधियोंसे पुल्टिस बान्धनी चाहिये। तथा वातनाशक औषधियोंसे सिद्ध तैलको शिरमें लगाना तथा नस्य लेना चाहिये। और पसीना निकालना, मालिश करना, स्नेहपान तथा रसायन सेवन इसमें हितकर है ॥ १ ॥

श्रीवेष्टकादिलेपः।

श्रीवेष्टकं सर्जरसं गुग्गुलुं सुरदारु च।
यष्टीमधुकचूर्णं च विदध्यात्प्रतिसारणम् ॥ २ ॥

गन्धाविरोजा, राल, गुग्गुलु, देवदारु और मौरेठीके चूर्णको ओठोंपर लगाना चाहिये ॥ २ ॥

---

१ "सदाहो रक्तपर्यन्तस्त्वक्पाकी तीव्रवेदनः। कण्डूमाञ्ज्वरकारी च स स्याच्छूकरदंष्ट्रकः" ॥

पित्तजचिकित्सा ।

वेधं शिराणां वमनं विरेकं तिक्तस्य पानं रसभोजनं च ।
शीताम्बुलेपान्परिषेचनं च पित्तोपसृष्टेष्वधरेषु कुर्यात् ३
पित्तरक्ताभिघातोत्थाञ्जलौकाभिरुपाचरेत् ।
पित्तविद्रधिवच्चापि क्रियां कुर्यादशेषतः ॥ ४ ॥

पित्तयुक्त ओष्ठोंमें शिराव्यध, वमन, विरेचन, तिक्त रस सेवन, मासरसका भोजन, शीतल लेप तथा सिञ्चन करना चाहिये । और पित्तरक्त तथा अभिघातजन्य ओष्ठरोगमें जोंक लगाकर तथा पित्तविद्रधिके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥

कफजचिकित्सा ।

शिरोविरेचनं धूमः स्वेदः कवलधारणम् ।
हृतरक्ते प्रयोक्तव्यमोष्ठकोपे कफात्मके ॥ ५ ॥
त्रिकटु सर्जिकाक्षारः क्षारश्च यावशूकजः ।
क्षौद्रयुक्तं विधातव्यमेतच्च प्रतिसारणम् ॥ ६ ॥

कफात्मक ओष्ठरोगमें रक्त निकालनेके अनन्तर शिरोविरेचन, धूम, स्वेद, कवल धारण करने चाहिये, तथा त्रिकटु, सज्जीखार व जवाखारके चूर्णको शहद मिलाकर लगाना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

मेदोजचिकित्सा ।

मेदोजे स्वेदिते भिन्ने शोधिते ज्वलनो हितः ।
प्रियङ्गुत्रिफलालोध्रं सक्षौद्रं प्रतिसारणम् ।
हितं च त्रिफलाचूर्णं मधुयुक्तं प्रलेपनम् ॥ ७ ॥
सर्जरसकनकगैरिकधन्याकघृततैलसिन्धुसंयुक्तम् ।
सिद्धं सिक्थकमधरे स्फुटितोच्चाटितं व्रणं हरति ॥ ८ ॥

मेदोज ओष्ठरोगमें स्वेदन, भेदन तथा शोधन अग्नि-ताप करना चाहिये और प्रियङ्गु, त्रिफला व लोधके चूर्णको शहदके साथ लगाना चाहिये । अथवा तथा त्रिफलाके चूर्णको शहदमें मिलाकर लगाना चाहिये, राल, सुनहरा गेरू, धनिया, घी, तैल, सेंधानमक तथा मोम इनका यथाविधि पाक कर लगानेसे ओष्ठका फटना व पपड़ी पड़ना नष्ट होता है ॥ ७–८ ॥

शीतादचिकित्सा ।

शीतादे हृतरक्ते तु तोयं नागरसर्षपान् ।
निःक्वाथ्य त्रिफलां चापि कुर्याद्गण्डूषधारणम् ॥ ९ ॥
प्रियङ्गवश्च मुस्ता च त्रिफला च प्रलेपनम् ॥ १० ॥

शीताद नामके दन्तरोगमें, रक्तको निकालकर जलके साथ सोंठ, सरसो और त्रिफलाका क्वाथ कर गण्डूष धारण करना चाहिये तथा प्रियङ्गु त्रिफला और मोथाका लेप करना चाहिये ॥ ९ ॥ १० ॥

रक्तस्रावचिकित्सा ।

कुष्ठं दार्वीमब्दलोध्रं समङ्गा
पाठा तिक्ता तेजनी पीतिका च ।
चूर्णं शस्तं घर्षणं तद्द्विजानां
रक्तस्रावं हन्ति कण्डूं रुजां च ॥ ११ ॥

कूठ, दारुहल्दी, नागरमोथा, लोध, लजालू, पाठ, कुटकी, चव्य तथा हल्दीके चूर्णको दातोंमें घिसनेसे रक्तस्राव, खुजली व पीड़ा नष्ट होती हैं ॥ ११ ॥

चलदन्तस्थिरीकरणम् ।

चलदन्तस्थिरकरं कार्यं बकुलचर्वणम् ।
आर्तगलदलक्वाथगण्डूषो दन्तचालनुत् ॥ १२ ॥
दन्तचाले हितं श्रेष्ठं तिलोग्राचर्वणं सदा ।
दन्तपुप्पुटके कार्यं तरुणे रक्तमोक्षणम् ॥ १३ ॥
सपञ्चलवणः क्षारः सक्षौद्रः प्रतिसारणम् ।
दन्तानां तोदहर्षे च वातघ्ना कवला हिताः ॥ १४ ॥
दन्तचाले तु गण्डूषो बकुलत्वक्कृतो हितः ।

मौलसिरीकी छालको चाबना हिलते दाँतोंको मज-बूत करता है । तथा नीली कटसैलेकी पत्तीके क्वाथका गण्डूष धारण करनेसे दाँतोंका हिलना बन्द होता है तथा दाँतोंके हिलनेमें तिल व बचको चबाना हितकर है । नवीन दन्त पुप्पुटकमें रक्तमोक्षण करना चाहिये । तथा पाचों नमक और क्षारके चूर्णको शहद मिलाकर लगाना चाहिये । दाँतोंके दर्द व गुठलानेमें वातनाशक कवल हितकर है । तथा दातोंके हिलनेमें मौलसिरीकी छालके क्वाथका गण्डूष धारण करना चाहिये १२-१४॥

दन्तशूलचिकित्सा ।

माक्षिकं पिप्पलीसर्पिर्मिश्रितं धारयेन्मुखे ॥ १५ ॥
दन्तशूलहरं प्रोक्तं प्रधानमिदमौषधम् ।
विस्राविते दन्तवेष्टे व्रणं तु प्रतिसारयेत् ॥ १६ ॥
लोध्रपत्तङ्गमधुकलाक्षाचूर्णैर्मधूत्तरैः ।
गण्डूषे क्षीरिणो योज्याः सक्षौद्रघृतशर्कराः ॥ १७ ॥

शहद, छोटी पीपल व घीको मिलाकर मुखमें रखना चाहिये । यह दन्तशूलको नष्ट करनेमें प्रधान औषधि है। तथा दन्तवेष्टके रक्तको निकालकर घावमें लोध, पीला चन्दन, मौरेठी व लाखके चूर्णको शहद मिलाकर

लगाना चाहिये और गण्डूष धारणके लिये क्षीरिवृक्षोंके कषायमें शहद, घी व शक्कर मिलाकर प्रयोग करना चाहिये ॥ १५–१७ ॥

शैशिरचिकित्सा।

शैशिरे हृतरक्ते च लोध्रमुस्तरसाञ्जनैः ।
सक्षौद्रैः शस्यते लेपो गण्डूषे क्षीरिणो हिताः ॥ १८ ॥

दांतके शैशिररोगमें रक्त निकालकर शहदके साथ लोध, नागरमोथा और रसौतका लेप करना चाहिये और दूधवाले वृक्षोंका गडूष धारण करना चाहिये ॥ १८ ॥

परिदरोपकुशचिकित्सा।

क्रिया परिदरे कुर्याच्छीतादोक्ता विचक्षणः ।
संशोध्योभयतः कार्ये शिरश्चोपकुशे ततः ॥ १९ ॥
काकोदुम्बरिकागोजीपत्रैर्विस्रावयेद्भिषक् ।
क्षौद्रयुक्तैश्च लवणैः सव्योषैः प्रतिसारयेत् ॥ २० ॥
पिप्पल्यः सर्षपाः श्वेता नागरं नैचुलं फलम् ।
सुखोदकेन संगृह्य कवलं तस्य योजयेत् ॥ २१ ॥

परिदरमें शीतादोक्त चिकित्सा करनी चाहिये तथा उपकुशमें वमन, विरेचन तथा नस्यसे शोधन कर कठूमर या गोजिह्वाके पत्तोंसे खुरच कर रक्त निकालना चाहिये। फिर शहदमें त्रिकटु और पांचों नमकोंको मिलाकर लगाना चाहिये तथा छोटी पीपल, सरसों, सोंठ व समुद्रफलको गुनगुने जलमें मिलाकर कवल धारण कराना चाहिये ॥ १९–२१ ॥

दन्तवैदर्भचिकित्सा।

शस्त्रेण दन्तवैदर्भे दन्तमूलानि शोधयेत् ।
ततः क्षारं प्रयुञ्जीत क्रियाः सर्वाश्च शीतलाः ॥ २२ ॥

दन्तवैदर्भमें शस्त्रसे दन्तमूलको शोधकर क्षार लगाना चाहिये तथा समस्त शीतल चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २२ ॥

अधिकदन्तचिकित्सा।

उद्धृत्याधिकदन्तं तु ततोऽग्निमवचारयेत् ।
क्रिमिदन्तकवच्चात्र विधिः कार्यो विजानता ॥२३॥

अधिक दातको उखाड कर अग्निसे जला देना चाहिये तथा इसमें क्रिमिदन्तके समान चिकित्सा करनी चाहिये ॥ २३ ॥

अधिमांसचिकित्सा।

छित्त्वाधिमांसं सक्षौद्रैरेतैश्चूर्णैरुपाचरेत् ।
पाठावचातेजोवतिसर्जिकायावशूकजैः ।
क्षौद्रद्वितीयाः पिप्पल्यः कवलश्चात्र कीर्तितः ॥२४॥
पटोलनिम्बत्रिफलाकषायश्चात्र धावने ।
शिरोविरेकश्च हितो धूमो वैरेचनश्च यः ॥ २५ ॥

अधिमासको काटकर शहदके साथ पाढ, वच, चव्य, सज्जीखार तथा जवाखारके चूर्णको लगाना चाहिये तथा पीपलको शहदके साथ मिलाकर कवल धारण करना चाहिये। इसमें धोनेके लिये परवल नीम व त्रिफलाके काढेको काममें लाना चाहिये। तथा शिरोविरेचन और विरेचन (कफनिःसारक) धूमका प्रयोग करना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥

दन्तनाडीचिकित्सा।

नाडीव्रणहरं कर्म दन्तनाडीषु कारयेत् ।
यं दन्तमधिजायेत नाडीतद्दन्तमुद्धरेत् ॥ २६ ॥

दन्तनाडी बीमारियोंमें नाडीव्रणनाशक चिकित्सा करनी चाहिये। तथा जिस दन्तमें नाडी होगयी हो उसे उखाड डालना चाहिये ॥ २६ ॥

अधिमांसादिचिकित्सा।

छित्त्वाधिमांसं शस्त्रेण यदि नोपरिजो भवेत् ।
शोधयित्वा दहेच्चापि क्षारेण ज्वलनेन वा ॥ २७ ॥
गतिर्हिनस्ति हन्वस्थि दशने समुपेक्षिते ।
तस्मात्समूलं दशनमुद्धरेद्भग्नमस्थि च ॥ २८ ॥
उद्धृते तूत्तरे दन्ते शोणितं सम्प्रसिच्यते ।
रक्तातियोगात्पूर्वोक्ता घोरा रोगा भवन्ति च ॥ २९ ॥
चलमप्युत्तरं दन्तमतो नापहरेद्भिषक् ।
कषायं जातिमदनकटुकस्वादुकण्टकैः ॥ ३० ॥
लोध्रखदिरमञ्जिष्ठायष्ट्याह्वैश्चापि यत्कृतम् ।
तैलं संशोधनं तद्धि हन्याद्दन्तगतां गतिम् ॥ ३१ ॥
कषायं परतः कृत्वा पिष्ट्वा लोध्रादिकल्कितम् ।
कण्टकीमदनो योज्यः स्वादुकण्टो विकङ्कतः ॥३२॥
सुखोष्णाः स्नेहकवलाः सर्पिषस्त्रिवृतस्य वा ।
निर्यूहाश्चानिलघ्नानां दन्तहर्षप्रमर्दनाः ॥ ३३ ॥
स्नैहिकश्च हितो धूमो नस्यं स्नैहिकमेव च ।
अहिंसन्दन्तमूलानि शर्करामुद्धरेद्भिषक् ॥ ३४ ॥
लाक्षाचूर्णैर्मधुयुतैस्ततस्ताः प्रतिसारयेत् ।
दन्तहर्षक्रिया चापि कुर्यान्निरवशेषतः ॥ ३५ ॥

अधिमास यदि ऊपर न हो तो शस्त्रसे काटकर शुद्ध करना चाहिये फिर क्षार या अग्निसे जला देना चाहिये। दांतकी उपेक्षा करनेसे नासूर दाढको नष्ट कर देता है अतः समूल दात और टूटी हड्डी इनको उखाड डालना चाहिये। ऊपरके दातको उखाडनेसे खून बहता है रक्तके बहनेसे और अनेक कठिन रोग हो जाते हैं

अत. हिलते हुए भी ऊपरके दांतको न उखाडना चाहिये। चमेली, मैनफल, कुटकी व विकंकतके क्वाथसे कवलधारणसे दन्तनाडी ठीक होती है तथा इन्हींके क्वाथ व लोध, कत्था मञ्जीठ तथा मौरेठीके कल्कसे सिद्ध तैल दन्तनाडीको शुद्ध करता है। ऊपरके तैलमें जाती आदिका क्वाथ तथा लोध आदिका कल्क छोडना चाहिये और मैनफल कटीला तथा स्वादुकण्टकसे विकंकत लेना चाहिये। कुछ गरम गरम स्नेहके कवलधारण करने चाहिये। दन्त हर्षमें त्रिवृत घृतके द्वारा कवल धारण करना चाहिये तथा वातनाशक औषधियोंके क्वाथ दन्तहर्षको नष्ट करते हैं। स्नैहिक धूम तथा स्नैहिक नस्यका प्रयोग करना चाहिये। दन्तमूल कटने न पावे इस प्रकार शर्कराको खुरच कर निकालना चाहिये। फिर शहदसे मिले हुए लाखके चूर्णको लगाना चाहिये और दन्तहर्षकी समग्र क्रिया करनी चाहिये॥२७-३५॥

कपालिकाक्रिमिदन्तचिकित्सा।

कपालिका कृच्छ्रसाध्यास्तत्राप्येषा क्रिया मता।
जयेद्विस्रावणैः स्विन्नमचलं क्रिमिदन्तकम्॥ ३६॥
तथावपीडैर्वातघ्नैः स्नेहगण्डूषधारणैः।
भद्रदार्वादिवर्षाभूलेपैः स्निग्धैश्च भोजनैः।
सोषणं हिंगु मतिमान्क्रिमिदन्तेषु दापयेत्॥३७॥

कपालिका कृच्छ्रसाध्य होती है उसमें भी यही क्रिया करनी चाहिये। जो क्रिमिदन्त हिलता न हो उसका स्वेदन कर खूनको निकालना चाहिये। तथा वातघ्न अवपीडक नस्य, स्नेहगण्डूष और भद्रदार्वादि और पुनर्नवाके लेप तथा स्निग्ध भोजन कराना चाहिये तथा क्रिमिदंतमें बुद्धिमान् वैद्य काली मिर्च व हींगको रखवावे॥३६॥३७॥

बृहत्यादिक्वाथः।

बृहतीभूमिकदम्बकपञ्चाङ्गुलिकण्टकारिकाक्वाथैः।
गण्डूषस्तैलयुतः क्रिमिदन्तकवेदनाशमनः॥ ३८॥

बडी कटेरी, मुण्डी, एरण्ड व कण्टकारिकाके क्वाथमें तैल मिलाकर गण्डूष धारण करनेसे क्रिमिदन्तकी पीडा शान्त होती है॥ ३८॥

नील्यादिचर्वणम्।

नीलीवायसजङ्घास्नुग्दुग्धीनां तु मूलमेकैकम्।
सचर्व्य दशनविधृतं दशनक्रिमिपातनं प्राहुः॥ ३९॥
चलमुद्धृत्य वा स्थानं दहेत्सुषिरस्य वा।
ततो विदारीयष्ट्याह्वशृङ्गाटककशेरुभिः।
तैलं दशगुणक्षीरसिद्धं नस्ये तु योजयेत्॥४०॥

नील, काकजंघा, सहुण्ड, दूधीमेंसे किसी एककी जड खोट चबाकर दांतमें रखनेसे दांतके कीडे गिर जाते हैं। चलदन्तको उखाडना तथा छिद्रमें आग लगा देनी चाहिये। फिर विदारीकन्द, मौरेठी, सिंघाडा व कशेरूके कल्क तथा तैलसे दशगुण दूध मिलाकर सिद्ध तैलका नस्य देना चाहिये॥ ३९॥४०॥

हनुमोक्षादिचिकित्सा।

हनुमोक्षे समुद्दिष्टा कार्या चार्दितवत्क्रिया।
फलान्यम्लानि शीताम्बु रूक्षान्नं दन्तधावनम्॥४१॥
तथातिकठिनान्भक्ष्यान्दन्तरोगी विवर्जयेत्।
सप्तच्छदार्कदुग्धाभ्यां पूरणं क्रिमिदन्तनुत्॥ ४२॥
जीवनीयेन दुग्धेन क्रिमिरन्ध्रप्रपूरणम्।
अर्कक्षीरेणचैकयोगः सद्भिः प्रशस्यते॥ ४३॥
द्रोणपुष्पीरसे फेनसमधुतैलसमायुतः।
क्रिमिदन्तविनाशाय कार्यं कर्णस्य पूरणम्॥ ४४॥

हनुमोक्षमें अर्दितके समान चिकित्सा करनी चाहिये। दन्तरोगी खट्टे फल, ठण्ढा जल, रूखा अन्न, दन्तधावन तथा अति कठिन पदार्थ इन सबको त्याग देवे। सप्तपर्ण और आकके दूधसे भरना क्रिमिदन्तको नष्ट करता है। जीवनीय गणसे सिद्ध दूधसे कीडेके छिद्र भर जाते हैं अथवा अकेले आकके दूधसे कीडोंके छिद्र भर-जाते हैं। क्रिमिदन्तके नाशार्थ गूमाके रसमें समुद्रफेन शहद व तैल मिलाकर कानमें छोडना चाहिये॥४१-४४

जिह्वारोगचिकित्सा।

पटोलकटुकाव्योषपाठासैन्धवशार्ङ्गिकैः।
चूर्णैर्मधुयुतो लेपः कवलो मधुतैलकैः।
जिह्वारोगेषु कर्तव्यं विधानमिदमौषधम्॥ ४५॥
मुस्तामधुकनिर्गुण्डीखदिरोशीरदारुभिः।
समञ्जिष्ठाविडङ्गैश्च सिद्धं तैलं हरेत्क्रिमीन्॥ ४६॥

परवल, कुटकी, त्रिकटु, पाढ व सेधानमकके चूर्णको शहदमें मिलाकर लेप करना चाहिये। तथा शहद व तैलका कवल धारण करना चाहिये। जिव्हा रोगोंके लिये यह प्रधान औषध है। तथा नागरमोथा, मौरेठी, सँभालू, कत्था, खश, देवदारु, मजीठ, व बायविडंगसे सिद्ध तैल कीडोंको नष्ट करता है॥ ४५॥ ४६॥

कण्टकचिकित्सा ।

ओष्ठप्रकोपेऽनिलजे यदुक्तं प्राक् चिकित्सितम् ।
कण्टकेष्वनिलोत्थेषु तत्कार्यं भिषजा खलु ॥ ४७ ॥
पित्तजेषु निघृष्टेषु निस्रुते दुष्टशोणिते ।
प्रतिसारणगण्डूषानस्य च मधुरं हितम् ॥ ४८ ॥
कण्टकेषु कफोत्थेषु लिखितेष्वसृजः क्षये ।
पिप्पल्यादिर्मधुयुतः कार्यं तु प्रतिसारणम् ॥ ४९ ॥
गृह्णीयात्कवलांश्चापि गौरसर्षपसैन्धवैः ।
पटोलनिम्बवार्ताकुक्षारयूषैश्च भोजयेत् ॥ ५० ॥

वातज ओष्ठरोगमें जो चिकित्सा कही गयी है वही वातजकण्टकोंमें करनी चाहिये । पित्तजकण्टकोंमें कण्टकोंको खुरचकर दुष्ट रक्त निकल जानेपर प्रतिसारणगण्डूष और नस्य, मधुर हितकर है । कफजकण्टकोंको खुरचकर रक्तके क्षीण हो जानेपर शहदमें मिलित पिप्पल्यादिगणकी ओषधियोंका प्रयोग करना चाहिये और सफेद सरसों व सेंधानमकका कवल धारण करना चाहिये तथा परवल, नीम, बैंगन, क्षार व यूषसे भोजन कराना चाहिये ॥ ४७–५० ॥

जिह्वाजाड्यचिकित्सा ।

जिह्वाजाड्यं चिरजं माणकभस्मलवणघर्षणं हन्ति ।
ईषत्स्नुक्क्षीराक्तं जम्बीराद्यम्लचर्वणं वापि ॥ ५१ ॥

माणकन्दकी भस्म व नमकके घिसनेसे पुरानी जिह्वाकी जड़ता नष्ट होती है । तथा थोड़े सेहुण्डके दूधमें युक्त जम्बीरादि खट्टी चीजोंका चबाना हितकर है ॥ ५१ ॥

दन्तशब्दचिकित्सा ।

कर्कटाङ्घ्रिक्षीरपक्वघृताभ्यङ्गेन नश्यति ।
दन्तशब्दः कर्कटाङ्घ्रिलेपाद्वा दन्तयोजितात् ॥ ५२ ॥

काकड़ासिंगीकी जड़से सिद्ध दूधसे बनाये घीकी मालिश करनेसे दांतोंकी कटकटाहट नष्ट होती है । अथवा काकड़ासिंगीकी जड़के लेपसे भी नष्ट होती है ॥ ५२ ॥

उपजिह्वाचिकित्सा ।

उपजिह्वां तु संलिख्य क्षारेण प्रतिसारयेत् ।
शिरोविरेकगण्डूषधूमैश्चैनामुपाचरेत् ॥ ५३ ॥
व्योषक्षाराभयावह्निचूर्णमेतत्प्रघर्षणम् ।
उपजिह्वाप्रशान्त्यर्थमेतैस्तैलं विपाचयेत् ॥ ५४ ॥

उपजिह्वाको खुरचकर क्षार लगाना चाहिये तथा शिरोविरेचन, गण्डूष और धूम पिलाना चाहिये । और त्रिकटु, क्षार, बड़ी हर्र व चीतकी जड़के चूर्णको घिसना चाहिये । तथा उपजिह्वाकी शान्तिके लिये इन्हींसे तैल पकाना चाहिये ॥ ५३ ॥ ५४ ॥

गलशुण्डीचिकित्सा ।

छित्वा वपद्गलशुण्डीं व्योषोग्राक्षौद्रसिन्धुजैः ।
कुष्ठोषणवचासिन्धुकणापाठाप्लवैरपि ॥ ५५ ॥
क्षौद्राढ्यैर्भिषजा कार्यं गलशुण्ड्या विघर्षणम् ।
उपनासाव्यधो हन्ति गलशुण्डीमशेषतः ॥ ५६ ॥
गलशुण्डीहरं तद्वच्छेफालीमूलचर्वणम् ।
वचामतिविषां पाठां रास्नां कटुकरोहिणीम् ।
निष्क्वाथ्य पिचुमर्दं च कवलं तत्र योजयेत् ॥ ५७ ॥

गलशुण्डीको काटकर त्रिकटु, वच, शहद व सेंधानमकसे अथवा कूठ, काली मिर्च, वच, सेंधानमक, छोटी पीपल, पाढ़ व केवटीमोथाको शहदके साथ मिलाकर रगड़ना चाहिये । तथा उपनासाका व्यध गलशुण्डीको नष्ट करता है, इसी प्रकार सम्भालूकी जड़का चर्वण गलशुण्डीको नष्ट करता है । तथा इसमें वच, अतीस पाढ़, रासन, कुटकी और नीमका बनाकर कवल धारण करना चाहिये ॥ ५५–५७ ॥

तुण्डिकेर्यादिचिकित्सा ।

क्षारसिद्धेषु मुद्गेषु यूषश्चाप्यशने हितः ।
तुण्डिकेर्यध्रुषे कूर्मे सङ्घाते तालुपुप्पुटे ॥ ५८ ॥
एष एव विधिः कार्यो विशेषः शस्त्रकर्मणि ।
तालुपाके तु कर्तव्यं विधानं पित्तनाशनम् ॥ ५९ ॥
स्नेहस्वेदौ तालुशोषे विधिश्चानिलनाशनः ।

तुण्डिकेरी, अध्रुष, कूर्मसंघात और तालुपुप्पुटमें क्षारसे सिद्ध मूंगके यूषका पथ्य देना चाहिये । तथा शस्त्रकर्म भी विशेष अवस्थामें करना चाहिये । तालुपाकमें पित्तनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । तालुशोषमें स्नेहन, स्वेदन तथा वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५८ ॥ ५९ ॥–

रोहिणीचिकित्सा ।

साध्यानां रोहिणीनां तु हितं शोणितमोक्षणम् ॥ ६० ॥
छर्दनं धूमपानं च गण्डूषो नस्यकर्म च ।
वातिकीं तु हृते रक्ते लवणैः प्रतिसारयेत् ॥ ६१ ॥
सुखोष्णांस्तैलकवलान्धारयेच्चाप्यभीक्ष्णशः ।
पतंगशर्कराक्षौद्रैः पैत्तिकीं प्रतिसारयेत् ॥ ६२ ॥–

द्राक्षापरूपकक्काथो हितश्च कवलग्रहे ।
आगारधूमकटुकैः कफजां प्रतिसारयेत् ॥ ६३ ॥
श्वेताविडगदन्तीषु सिद्धं तैलं ससैन्धवम् ।
नस्यकर्मणि दातव्यं कवलं च कफोच्छ्ये ॥ ६४ ॥
पित्तवत्साधयेद्वैद्यो रोहिणीं रक्तसम्भवाम् ।

साध्यरोहिणियोंमें रक्त निकालना चाहिये । तथा वमन, धूमपान, गण्डूप और नस्यकर्म करना चाहिये । वातिकरोहिणीमें रक्तको निकालकर नमकोंको उर्राना चाहिये । कुछ गरम गरम तैलके कवल धारण करना चाहिये । पैत्तिकरोहिणीमे पीतचन्दन व शक्करको शहद मिलाकर लगाना चाहिये तथा मुनक्का व फाल्सेके क्वाथका कवल धारण करना चाहिये । कफजमे गृहधूम तथा त्रिकटुको मिलाकर उर्राना चाहिये । तथा सफेद विष्णु-क्रान्ता, वायविडंग व दन्तीसे सिद्ध तैलमें सेंधानमक मिलाकर नस्य तथा कवल धारण करना चाहिये । तथा पित्तके समान रक्तज रोहिणीकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ६०–६४ ॥

कण्ठशालूकादिचिकित्सा ।

विस्राव्य कण्ठशालूकं साधयेत्तुण्डिकेरिवत् ॥ ६५ ॥
एककालं यवान्नं च भुञ्जीत स्निग्धमल्पशः ।
उपजिह्विकवच्चापि साधयेदधिजिह्विकाम् ॥ ६६ ॥
उन्नाम्य जिह्वामाकृष्य बडिशेनाधिजिह्विकाम् ।
छेदयेन्मण्डलाग्रेण तीक्ष्णोष्णैर्घर्षणादिभिः ॥ ६७ ॥
एकवृन्दं तु विस्राव्य विधिं शोधनमाचरेत् ।
गिलायुश्चापि यो व्याधिस्तं च शस्त्रेण साधयेत् ॥६८॥
अमर्मस्थं सुपक्कं च भेदयेद्गलविद्रधिम् ।

कण्ठशालूकको चीरकर तुडिकेरीके समान चिकित्सा करनी चाहिये। तथा एकबार यवका अन्न चिकना घृतादियुक्त थोडा २ खाना चाहिये । उपजिव्हाके समान अधिजिव्हाकी चिकित्सा करनी चाहिये। जिव्हाको उठाकर बाडिशसे खींचकर मंडलाग्रसे काट देना चाहिये । एकवृन्दको तीक्ष्ण उष्ण घर्षणादिसे बहाकर शोधनविधि करनी चाहिये । गिलायुनामक रोगको शस्त्रसे सिद्ध करना चाहिये। तथा जो गलविद्रधि पक गयी हो और मर्मस्थानमें न हो उसे चीर देना चाहिये ॥६५–६८॥–

कण्ठरोगचिकित्सा ।

कण्ठरोगेष्वसृङ्मोक्षस्तीक्ष्णैर्नस्यादिकर्म च ॥ ६९ ॥
क्काथपानं तु दार्वीत्वङ्निम्बताक्ष्यकलिङ्गजम् ।
हरीतकीकषायो वा पेयो माक्षिकसंयुतः ॥ ७० ॥

कण्ठरोगोंमें रक्तको निकालना चाहिये । तथा तीक्ष्ण औषधियोंसे नस्यादि कर्म करना चाहिये तथा दारुहल्दीकी छाल, नीम, रसौत व इन्द्रयवके क्वाथको पीना चाहिये अथवा हर्रके क्वाथमें शहद मिलाकर पीना चाहिये ॥ ६९ ॥ ७० ॥

कटुकादिक्वाथः ।

कटुकातिविषादारुपाठामुस्तकलिङ्गकाः ।
गोमूत्रक्वथिता पेया कण्ठरोगविनाशनाः ॥ ७१ ॥

कुटकी, अतीस, देवदारु, पाठ, नागरमोथा व इन्द्रयवका गोमूत्रमें क्वाथ बनाकर पीनेसे कण्ठरोग नष्ट होते है ॥ ७१ ॥

कालकचूर्णम् ।

गृहधूमो यवक्षारः पाठाव्योषरसाञ्जनम् ।
तेजोह्वात्रिफलालोहं चित्रकश्चेति चूर्णितम् ॥ ७२ ॥
सक्षौद्रं धारयेदेतद्गलरोगविनाशनम् ।
कालकं नाम तच्चूर्णं दन्तजिह्वास्यरोगनुत् ॥ ७३ ॥

गृहधूम, जवाखार, पाढ, त्रिकटु, रसौंत, चव्य, त्रिफला, लौह भस्म व चीतकी जडके चूर्णको शहद मिलाकर धारण करनेसे दंत, जिह्वा व मुखके रोगोंको नष्ट करता है । इसे कालक चूर्ण कहते है ॥ ७२ ॥ ७३ ॥

पञ्चकोलकक्षारचूर्णम् ।

पिप्पलीपिप्पलीमूलचव्यचित्रकनागरैः ।
सर्जिकाक्षारतुल्यांशैश्चूर्णोऽयं गलरोगनुत् ॥ ७४ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, चीतकी जड, सोंठ और सज्जीखार सब समान भाग ले चूर्ण बनाकर मुखमे रखनेसे गलरोग नष्ट होते हैं ॥ ७४ ॥

पीतकचूर्णम् ।

मनःशिला यवक्षारो हरितालं ससैन्धवम् ।
दार्वीत्वक्चेति तच्चूर्णं माक्षिकेण समायुतम् ॥ ७५ ॥
मूर्छितं घृतमण्डेन कण्ठरोगेषु धारयेत् ।
मुखरोगेषु च श्रेष्ठं पीतकं नाम कीर्तितम् ॥ ७६ ॥

मनशिल,जवाखार, हरिताल, सेंधानमक व दारुहल्दीकी छालके चूर्णको शहद तथा घी मिलाकर कण्ठरोग और मुखरोगोंमें धारण करना चाहिये । इसे पीतक चूर्ण कहते हैं ॥ ७५ ॥ ७६ ॥

यवाग्रजादिगुटिका ।

यवाग्रज तेजवतीं सपाठां
रसाञ्जनं दारुनिशां सकृष्णाम् ।
क्षौद्रेण कुर्याद्गुटिकां मुखेन
तां धारयेत्सर्वगलामयेषु ॥ ७७ ॥

जवाखार, चव्य, पाठ, रसौंत, दारुहल्दी तथा छोटी पीपलका चूर्णकर शहदमें गोली बना समस्त गलरोगोंमें मुखमें धारण करना चाहिये ॥ ७७ ॥

सामान्ययोगाः ।

दशमूलं पिबेदुष्णं यूषं मूलककुलत्थयोः ।
क्षीरेक्षुरसगोमूत्रदधिमस्त्वम्लकाञ्जिकैः ॥ ७८ ॥
विदध्यात्कवलान्वीक्ष्य दोषं तैलघृतैरपि ।

दशमूलका क्वाथ तथा मूली व कुलथीके यूष अथवा दूध व ईखके रस, गोमूत्र, दहीके तोड काञ्जी अथवा तैल व घीके कवल दोषोंके अनुसार निश्चित कर धारण करना चाहिये ॥ ७८ ॥-

पञ्चकोलादिक्षारगुटिका ।

पञ्चकोलकतालीसपत्रैलामरिचत्वचः ॥ ७९ ॥
पलाशमुष्ककक्षारयवक्षाराश्च चूर्णिताः ।
गुडे पुराणे क्वथिते द्विगुणे गुडिका कृताः ॥ ८० ॥
कर्कन्धुमात्राः सप्ताहं स्थिता मुष्ककभस्मनि ।
कण्ठरोगेषु सर्वेषु धार्याः स्युरमृतोपमाः ॥ ८१ ॥

पञ्चकोल, तालीशपत्र, इलायची, मिर्च, दालचीनी, ढाकके क्षार, मोखाके क्षार तथा जवाखारके चूर्णको दूने पुराने गुडकी चाशनीमें बेरके बराबर गोली बनाकर सात दिन मोखाकी भस्ममें रख कण्ठरोगोंमें धारण करना चाहिये । यह अमृतके तुल्य गुण देती है ॥ ७९-८१ ॥

मुखरोगचिकित्सा ।

मूत्रस्विन्नां शिवां तुल्यां मधुरीकुष्ठपत्रकैः ।
अभ्यस्य मुखरोगास्तु जयेद्विरसतामपि ॥ ८२ ॥

गोमूत्रमें स्विन्न छोटी हर्र सौंफ, कूठ, व तेजपात तीनोंके बराबर लेकर मुखमें रखनेसे मुखकी विरसता तथा अन्य मुखरोग नष्ट होते हैं ॥ ८२ ॥

सर्वसरचिकित्सा ।

वातात्सर्वसरं चूर्णैर्लवणैः प्रतिसारयेत् ।
तैलं वातहरैः सिद्धं हितं कवलनस्ययोः ॥ ८३ ॥
पित्तात्मके सर्वसरे शुद्धकायस्य देहिनः ।
सर्वपित्तहरः कार्यो विधिर्मधुरशीतलः ॥ ८४ ॥
प्रतिसारणगण्डूषधूमसंशोधनानि च ।
कफात्मके सर्वसरे कर्म कुर्यात्कफापहम् ॥ ८५ ॥

वातज सर्वसरमें लवणोंके चूर्णको धारण करना चाहिये । तथा कवल व नस्यमें वातनाशक तैलका प्रयोग करना चाहिये । पित्तात्मक-सर्वसरमें शुद्ध शरीरवाले पुरुषको समस्त पित्तनाशक मीठी व ठण्टी चिकित्सा करनी चाहिये । कफात्मक सर्वसरमें कफनाशक प्रतिसारण गण्डूष, धूम, संशोधन तथा समस्त कफ नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ८३-८५ ॥

मुखपाकचिकित्सा ।

मुखपाके शिरावेधः शिरःकायविरेचनम् ।
कार्यं च बहुधा नित्यं जातीपत्रस्य चर्वणम् ॥ ८६ ॥

मुखपाकमें शिराव्यध, शिरोविरेचन, कायविरेचन तथा प्रतिदिन अनेक बार चमेलीकी पत्तीका चर्वण करना चाहिये ॥ ८६ ॥

जातीपत्रादिक्वाथगण्डूषः ।

जातीपत्रामृताद्राक्षायासदार्वीफलत्रिकैः ।
क्वाथः क्षौद्रयुतः शीतो गण्डूषो मुखपाकनुत् ॥ ८७ ॥

चमेलीकी पत्ती, गुर्च, मुनक्का, यवासा, दारुहल्दी व त्रिफलाके क्वाथको ठण्ढाकर शहदके साथ कवल धारण करनेसे मुखपाक नष्ट होता है ॥ ८७ ॥

कृष्णजीरकादिचूर्णम् ।

कृष्णजीरककुष्ठेन्द्रयवानां चूर्णतस्त्र्यहात् ।
मुखपाकव्रणक्लेददौर्गन्ध्यमुपशाम्यति ॥ ८८ ॥

काले जीरा, कूठ व इन्द्रयवके चूर्णको ३ दिनतक धारण करनेसे मुखपाक, व्रणका गीलापन और दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ ८८ ॥

रसाञ्जनादिचूर्णम् ।

रसाञ्जनं लोध्रमयाभया च
मनःशिलानागरगैरिकं च ।
पाठा हरिद्रा गजपिप्पली च
स्याद्धारणं क्षौद्रयुतं मुखस्य ॥ ८९ ॥

रसौंत, लोध, बडी हर्र, मनशिल, सोंठ, गेरू, पाढ, हल्दी व गजपीपलके चूर्णको शहद मिलाकर मुखमें धारण करना चाहिये ॥ ८९ ॥

पटोलादिधावनकषायाः।

पटोलनिम्बजम्ब्वाम्रमालतीनवपल्लवा ।
पञ्चपल्लवजः श्रेष्ठः कषायो मुखधावने ॥ ९० ॥
पञ्चवल्ककषायो वा त्रिफलाक्वाथ एव वा ।
मुखपाकेषु सक्षौद्रः प्रयोज्यो मुखधावने ॥ ९१ ॥

परवल, नीम, जामुन, आम व चमेलीकी नवीन पत्तियोंके क्वाथका मुख धोनेके लिये प्रयोग करना चाहिये। तथा पञ्चवल्कलके क्वाथ अथवा त्रिफलेके क्वाथको शहद मिलाकर मुख धोनेके लिये मुखपाक में प्रयोग करना चाहिये ॥ ९० ॥ ९१ ॥

दार्व्यारसक्रिया।

स्वरसः क्वथितो दार्व्या घनीभूतो रसक्रिया।
सक्षौद्रा मुखरोगासृग्दोषनाडीव्रणापहा ॥ ९२ ॥

दारुहल्दीका स्वरस गाढाकर शहदमें मिला मुखमें लगानेसे मुखरोग, रक्तदोष तथा नाडीव्रण नष्ट होते हैं ॥ ९२ ॥

सप्तच्छदादिक्काथः।

सप्तच्छदोशीरपटोलमुस्त-
हरीतकीतिक्तकरोहिणीभिः ।
यष्ट्याह्वराजद्रुमचन्दनैश्च
क्वाथं पिबेत्पाकहरं मुखस्य ॥ ९३ ॥

सप्तपर्ण, खस, परवलकी पत्ती, नागरमोथा, हर्र, कुटकी, मौरेठी, अमलतास व चन्दनसे सिद्ध क्वाथ मुखपाकको नष्ट करता है। इसे पीना चाहिये ॥ ९३ ॥

पटोलादिक्काथः।

पटोलशुण्ठीत्रिफलाविशाला-
त्रायन्तितिक्ताद्विनिशामृतानाम्।
पीतः कषायो मधुना निहन्ति
मुखे स्थितश्चास्यगदानशेषान् ॥ ९४ ॥

परवलकी पत्ती, सोंठ, त्रिफला, इन्द्रायण, त्रायमाण, कुटकी, हल्दी, दारुहल्दी व गुर्च इनके क्वाथको शहद मिलाकर पीनेसे अथवा मुखमे धारण करनेसे समग्र ॥ ९४ ॥

त्रिफलादियोगाः।

क्वथितास्त्रिफलापाठामृद्वीकाजातिपल्लवाः ।
निषेव्या भक्षणीया वा त्रिफला मुखपाकहा ॥ ९५ ॥

त्रिफला, पाढ, मुनक्का व चमेलीकी पत्तीके काढेको बनाकर पीना चाहिये। अथवा त्रिफलके काढेको पीना चाहिये इन योगोंसे मुखपाक नष्ट होता है ॥ ९५ ॥

दग्धमुखचिकित्सा।

तिला नीलोत्पलं सर्पिः शर्करा क्षीरमेव च ।
सक्षौद्रो दग्धवक्त्रस्य गण्डूषो दाहनाशनः।
तैलेन काञ्जिकेनाथ गण्डूषश्चूर्णदाहहा ॥ ९६ ॥

तिल, नीलोफर, घी, शक्कर और दूधको शहदके साथ मिलाकर गण्डूष धारण करनेसे मुखकी जलन तथा पकना शान्त होता है और तैल अथवा काञ्जीका गण्डूष चूनेसे कटे मुखकी वेदनाको शान्त करता है ॥ ९६ ॥

दौर्गन्ध्यहरो योगः।

घनकुष्ठैलाधान्यकयष्टीमधुवालुकावचल्कं ।
वदनेऽतिपूतिगन्धं हरति सुरालशुनगन्धं च ॥ ९७ ॥

नागरमोथा, कूठ, धनिया, मौरेठी तथा एलवालुकका कवल मुखकी दुर्गन्ध तथा शराब लहसुनकी दुर्गन्धको नष्ट करता है ॥ ९७ ॥

सहचरतैलम्।

तुलां तथा नीलकुरण्टकस्य
द्रोणेऽम्भसः सम्प्रपचेद्यथावत्।
पूत्वा चतुर्भागरसे तु तैलं
पचेच्छनैरर्धपलप्रयुक्तैः ॥ ९८ ॥
कल्कैरनन्ताखदिरारिमेद-
जम्ब्वाम्रयष्टीमधुकोत्पलानाम्।
तत्तैलमाशु विधृतं मुखेन
स्थैर्यं द्विजानां विदधाति सद्यः ॥ ९९ ॥

नीले कटसैलाका पञ्चाङ्ग ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तो० में मिलाकर पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान क्वाथमें १२८तो० तिलतैल तथा यवासा, कत्था, दुर्गन्धित कत्था, जामुन, आम, मौरेठी नीलोफर, प्रत्येक २ तोलाका कल्क छोडकर सिद्ध तैल मुखमें धारण करनेसे दाँतोंको पुष्ट करता है ॥ ९८॥९९ ॥

इरिमेदादितैलम्।

इरिमेदत्वक्पलशतमाभनवमापोथ्य खण्डशः कृत्वा।
तोयाढकैश्चतुर्भिर्निष्काथ्य चतुर्थशेषेण ॥ १०० ॥
तेन क्वाथेन मतिमांस्तैलस्यार्धाढकं शनैर्विपचेत्।
कल्कैरक्षसमांशैर्मञ्जिष्ठालोध्रमधुकानाम् ॥ १०१ ॥
इरिमेदखदिरकट्फललाक्षान्यग्रोधमुस्तसूक्ष्मैला।
कर्पूरागुरुपद्मकलवङ्गकंकोलजातीनाम् ॥ १०२ ॥
पतङ्गकोपगैरिकवराङ्गनागकुसुमधातकीनां च ।
सिद्धं भिषग्विदध्यादिदं मुखोत्थेषु रोगेषु ॥ १०३ ॥

परिशीर्णदन्तविद्रधिशैशिरशीतादहन्तहर्षेषु ।
क्रिमिदन्तदारणचलितप्रदुष्टमांसावगीर्णेषु ।
मुखदौर्गन्ध्ये कार्यं प्रागुक्तेष्वामयेषु तैलमिदम् ॥ १०४ ॥

नई दुर्गन्धित खैरकी छाल ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तो० मिला पका चतुर्थांश शेष रहने पर उतार छान क्वाथमें ३ सेर १६ तो० तैल तथा मञ्जीठ, लोध, मौरेठी, इरिमेद (दुर्गन्धितखैर) खैर, कैफरा, लाख, वरगदकी छाल, नागरमोथा, छोटी इलायची, कपूर, अगर, पद्माख, लवंग, कंकोल, जायफल, रक्तचन्दन, जावित्री, गेरू, दालचीनी तथा धायके फूल प्रत्येक एक तोलाका कल्क छोडकर सिद्ध तैलका वैद्यको मुखरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । तथा गिरते हुए दातों, विद्रधि, शैशिर, शीताद, दन्तहर्ष, क्रिमिदन्त, दारुण, चल दन्त दूषितमांसके कटनेमें मुखकी दुर्गन्धिमें तथा और कहे हुए रोगोंमें इसका प्रयोग करना चाहिये ॥ १००–१०४ ॥

लाक्षादितैलम् ।

तैलं लाक्षारसं क्षीरं पृथक्प्रस्थं समं पचेत् ।
चतुर्गुणेऽरिमेदस्य क्वाथे द्रव्यैश्च पलसंमितैः ॥ १०५ ॥
लोध्रकट्फलमञ्जिष्ठापद्मकेशरपद्मकैः ।
चन्दनोत्पलयष्ट्याह्वैस्तैलं गण्डूषधारणम् ॥ १०६ ॥
दालनं दन्तचालं च हनुमोक्षं कपालिकाम् ।
शीतादं पूतिवक्त्रं च ह्यरुचिं विरसास्यताम् ।
हन्यादास्यगदानेतान्कुर्याद्दन्तानपि स्थिरान् ॥ १०७ ॥

तैल, लाखका रस, दूध प्रत्येक १ प्रस्थ (१से०९छ० ३ तो०) दुर्गन्धित कत्थेका क्वाथ ६ सेर ३२ तो० और लोध, कैफरा, मञ्जीठ, कमलका केशर, पद्माख, चन्दन, नीलोफर, मौरेठी प्रत्येक ४ तोलेका कल्क छोडकर सिद्ध तैल गण्डूष धारण करनेसे फटना, दन्त हिलना, हनुमोक्ष, कपालिका, शीताद, मुखदुर्गन्धि, अरुचि, विरसता इन मुखरोगोंको नष्ट करता तथा दांतोंको दृढ करता है ॥ १०५–१०७ ॥

बकुलादितैलम् ।

बकुलस्य फलं लोध्रं वज्रवल्लीकुरुण्टकम् ।
चतुरङ्गुलबब्बोलवाजिकर्णारिमाशनम् ॥ १०८ ॥
एषां कषायकल्काभ्यां तैलं पक्वं मुखे धृतम् ।
स्थैर्यं करोति चलतां दन्तानां धावनेन च ॥ १०९ ॥

मौलसिरीके फल, लोध, हडजोड, कटसैला, अमलतास, बबूल, साल, दुर्गंधि कत्था व विजैसारके क्वाथ, व कल्कसे सिद्ध तैलको मुखमें रखनेसे दांत स्थिर होते हैं । तथा इस क्वाथसे धोनेसे भी दांत मजबूत होते हैं ॥ १०८ ॥ १०९

वदनसौरभदा गुटी ।

एलालतालवलिकाफलशीतकोप-
कोलाह्विकानि खदिरस्य कृते कषाये ।
तुल्यांशकानि दशभागमिते निधाय
प्रोन्मिन्नकेतकपुटे पुटवह्निपाच्य ॥ ११० ॥
प्रागंशतुल्यशशिनाभिहितमेकमघ
पिष्ट्वा नवेन सहकाररसेन हस्तौ ।
लिप्त्वा यथाभिलषिता गुडिका विदध्यात्
स्त्रीपुंसयोर्वदनसौरभबन्धुभूताम् ॥ १११ ॥

इलायची, लताकस्तूरिकाके बीज, लवंग, जावत्री छोटे बडे बेर सब समान भाग दशभाग कत्थेके क्वाथमें खिले केवडाके फूलके अन्दर रख विधिपूर्वक पकाकर पूर्व अंशके बराबर ही (१ भाग) कपूर मिलाकर पीसना चाहिये फिर आमके रसको हाथोंमें लेपकर गोली बना लेनी चाहिये । यह स्त्री व पुरुषके मुखको सुगन्धित करती है ॥ ११० ॥ १११ ॥

लघुखदिरवटिका ।

खदिरस्य तुलां सम्यग्जलद्रोणे विपाचयेत् ।
शेषेऽष्टभागे तत्रैव प्रतिवापं प्रदापयेत् ॥ ११२ ॥
जातीकर्पूरपूगानि कक्कोलफलकानि च ।
इत्येषा गुडिका कार्या मुखसौभाग्यवर्धिनी ।
दन्तौष्ठमुखरोगेषु जिह्वाताल्वामयेषु च ॥ ११३ ॥

कत्था ५ सेर, जल २५ सेर ४८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये, अष्टमांश रहनेपर जावित्री, कपूर सुपारी, कंकोल प्रत्येक ४ तोला चूर्णको छोडकर गोली बना लेनी चाहिये । यह मुखको सुगन्धित करती तथा दन्त, ओष्ठ, मुख, जिह्वा व तालुरोगोंको नष्ट करती है ॥ ११२ ॥ ११३ ॥

बृहत्खदिरगुटिका ।

गायत्रिसारतुलयैरिमवल्कलानां
सार्धं तुलायुगलमम्बुघटैश्चतुर्भिः ।
निष्क्वाथ्य पादमवशिष्टसुवस्त्रपूतं
भूयः पचेदथ शनैर्मृदुपावकेन ॥ ११४ ॥
तस्मिन्घनत्वमुपगच्छति चूर्णमेषां
श्लक्ष्णं क्षिपेच्च कवलग्रहभागिकानाम् ।
एलामृणालसितचन्दनचन्दनाम्बु-
श्यामातमालविकपाघनलोहयष्टी ॥ ११५ ॥
लज्जाफलत्रयरसाञ्जनधातकीभ-
श्रीपुष्पगैरिककटङ्कटकट्फलानाम् ।
पद्माह्वलोध्रवटरोहयवासकानां
मांसीनिशासुरभिवल्कलसंयुतानाम् ॥ ११६ ॥

कक्कोलजातिफलकोपलवङ्गकानि
चूर्णीकृतानि विदधीत पलाशकानि।
शीतेऽवतार्य घनसारचतु पल च
क्षिप्त्वा कलायसदृशीर्वटिका' प्रकुर्यात् ॥११७॥
शुष्का मुखे विनिहिता विनिवारयन्ति
रोगान्गलौष्ठरसनाद्विजतालुजातान्।
कुर्युर्मुखे सुरभिता पटुता रुचिं च
स्थैर्य पर दशनग रसनालघुत्वम् ॥ ११८ ॥

कत्था ५ सेर, दुर्गन्धित खैर १२॥ सेर दोनोंको २ मन २२ सेर ३२ तो० जलमें पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेप रहनेपर कपडेसे छानकर फिर मन्द आंचसे पकाना चाहिये। जब गाढा हो जाय तो इलायची, सफेद चन्दन, कमलकी डण्डी, लालचन्दन, सुगन्धवाला, प्रियङ्गु, तेजपात, मञ्जीठ, नागरमोथा, अगर, मोरेठी लज्जावन्ती, त्रिफला, रसौत, धायके फूल, नागकेशर, लौंग, गेरू, दारुहल्दी, कैफरा, पद्माख, लोध, वरगदकी वौ, यवासा, जटामासी, हल्दी, दालचीनी प्रत्येक एक तोला, ककोल, जायफल, जावित्री, लवङ्ग प्रत्येक ४ तोला ले चूर्णकर छोडना चाहिये। ठण्ढा होनेपर कपूर १६ तो० मिला मटरकी वरावर गोली बनाकर सुखा लेना चाहिये। यह गोली मुखमे रखनेसे गले, ओष्ठ, जिह्वा व तालुके रोग नष्ट होते हैं। मुख सुगन्धित स्वच्छ होता, रुचि उत्पन्न होती, दन्त दृढ तथा जिह्वा हल्की होती है ॥ ११४–११८ ॥

इति मुखरोगाधिकारः समाप्तः।

अथ कर्णरोगाधिकारः।

कर्णशूलचिकित्सा।

कपित्थमातुलुङ्गाम्लशृङ्गवेररसैः शुभैः।
सुखोष्णैः पूरयेत्कर्णं कर्णशूलोपशान्तये ॥ १ ॥
शृङ्गवेरं च मधु च सैन्धवं तैलमेव च।
कदुष्णं कर्णयोर्देयमेतद्वा वेदनापहम् ॥ २ ॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणा सुरंग्या मूलकस्य च।
कदल्या स्वरस श्रेष्ठ कदुष्ण कर्णपूरणे।
समुद्रफेनचूर्णेन युक्त्या वाप्यवचूर्णयेत् ॥ ३ ॥
आर्द्रकसूर्यावर्तक-
शोभाञ्जनमूलमूलकस्वरसा'।
मधुतैलसैन्धवयुता.
पृथगुष्णाः कर्णशूलहराः ॥ ४ ॥
शोभाञ्जनकनिर्यासस्तिलतैलेन संयुत.।
कदुष्ण पूरणः कर्णे कर्णशूलोपशान्तये ॥ ५ ॥
अष्टानामपि मूत्राणा मूत्रेणान्यतमेन च।
कोष्णेन पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलोपशान्तये ॥ ६ ॥
अश्वत्थपत्रखल्व वा विधाय बहुपत्रकम्।
तैलाक्तमङ्गारपूर्णं निदध्याच्छ्रवणोपरि ॥ ७ ॥
यत्तैल च्यवते तस्मात्खल्वादङ्गारतापितात्।
तत्प्राप्त श्रवणस्रोत सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥ ८ ॥
अर्कपत्रपुटे दग्धस्नुहीपत्रभवो रस।
कदुष्ण पूरणादेव कर्णशूलनिवारणः ॥ ९ ॥

कैथा, बिजौरा निम्बू तथा अदरखके रसको गरम कर गुनगुना गुनगुना कानमे डालनेसे कर्णशूल शान्त होता है अथवा अदरखका रस, शहद, सेंधानमक व तैल कुछ गरमकर कानमे छोडनेसे पीडा नष्ट होती है। अथवा लहसुन, अदरख, सहिजन, लाल सहिजन, मूली और केलाके स्वरसको कुछ गरम गरम कानमें छोडनेसे अथवा समुद्रफेनके चूर्णको छोडनेसे कानकी पीडा शान्त होती है। अदरख, सूर्यावर्तक, सहिजनकी जड और मूली इनमेसे किसी एकके स्वरसको गरम कर शहद, तैल व सेंधानमक मिला छोडनेसे कानके शूल नष्ट होते है तथा सहिजनके स्वरसको तिल तैलके साथ मिला गरम कर कानमे छोडनेसे अथवा आठ मूत्रोंमेसे किसी एकको गरमकर कानमें छोडनेसे कर्णशूल शान्त होता है। अथवा पीपलके पत्तोंका दोना बनाकर तैल चुपर अगार रख कर कानके ऊपर (कुछ दूर) रखना चाहिये। इससे जो तैल कानमें टपकेगा उससे कर्णशूल तत्काल शान्त होगा। अथवा आकके पत्तोंके अन्दर थोहरके पत्तोको रख पुटपाकसे निचोडकर निकाला रस कानमें छोडनेसे तत्काल कर्णशूल नष्ट होता है ॥ १–९ ॥

दीपिकातैलम्।

महत पञ्चमूलस्य काण्डान्यष्टाङ्गुलानि च।
क्षौमेणावेष्ट्य संसिच्य तैलेनादीपयेत्ततः ॥ १० ॥
यत्तैलं च्यवते तेभ्य सुखोष्ण तत्प्रयोजयेत्।
ज्ञेय तद्दीपिकातैल सद्यो गृह्णाति वेदनाम् ॥११॥
एव कुर्याद्भद्रकाष्ठे कुष्ठे काष्ठे च सारले।
मतिमान्दीपिकातैल कर्णशूलनिवारणम् ॥ १२ ॥

बेल, सोनापाढा, खम्भार, पाढल व अरणीकी लकडी आठ २ अंगुलकी ले अलसीके वस्त्रसे लपट तैलसे तरकर जलाना चाहिये। इसमे जो तैल चुवे वह गुनगुना

गुनगुना कानमें डालनेसे तत्काल पीडा शान्त होती है। इसी प्रकार देवदारु, कूठ और सरलकी लकडियोंसे तेल निकाल कानमे छोडनेसे शूल मिटता है ॥ १०–१२ ॥

अर्कपत्रयोगः ।

अर्कस्य पत्रं परिणामपीत-
माज्येन लिप्तं शिखिनावतप्तम् ।
आपीड्य तोयं श्रवणे निषिक्तं
निहन्ति शूलं बहुवेदनं च ॥ १३ ॥

जो आकका पत्ता अपने आप पककर पीला हो गया हो उसमे घी लगा अग्निमे गरमकर रस निचोड कानमें छोडनेसे पीडा नष्ट होती है ॥ १३ ॥

अन्ये योगाः ।

तीव्रशूलातुरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि ।
वस्तमूत्रं क्षिपेत्कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥ १४ ॥
वशावलेखसंयुक्ते मूत्रे वाजविके भिषक् ।
तैलं पचेत्तेन कर्णं पूरयेत्कर्णशूलिन ॥ १५ ॥
हिंगुतुम्बुरुशुण्ठीभिः साध्यं तैलं तु सार्षपम् ।
कर्णशूले प्रधानं तु पूरणं हितमुच्यते ॥ १६ ॥

तीव्रशूल युक्त बहते और शब्द करते हुए कानमें कुछ कुछ गरम गरम बकरेके मूत्रमें सेंधानमक मिलाकर छोडना चाहिये। अथवा वशलोचनसे युक्त बकरी और भेडके मूत्रमे तैल पकाकर कानमें छोडनेसे कर्णशूल नष्ट होता है। अथवा हींग, तुम्बरु, सोंठके कल्कसे सरसोंके तैलको सिद्ध कर कानमें छोडनसे लाभ होता है ॥ १४–१६ ॥

क्षारतैलम् ।

बालमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिंगु सनागरम् ।
शतपुष्पवचाकुष्ठं दारुशिग्रुरसाञ्जनम् ॥ १७ ॥
सौवर्चलं यवक्षारः सर्जिकोद्भिदसैन्धवम् ।
भूर्जग्रन्थिविडं मुस्तं मधुशुक्तं चतुर्गुणम् ॥ १८ ॥
मातुलुंगरसश्चैव कदल्या रस एव च ।
तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलहरं परम् ॥ १९ ॥
बाधिर्यं कर्णनादश्च पूयास्रावश्च दारुणः ।
पूरणादस्य तैलस्य क्रिमयः कर्णसंश्रिताः ॥ २० ॥
क्षिप्रं विनाशं गच्छन्ति कृष्णात्रेयस्य शासनात् ।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तामयापहम् ॥ २१ ॥
मधुप्रधानं शुक्तं तु मधुशुक्तं तथापरम् ।
जम्बीरस्य फलरसं पिप्पलीमूलसंयुतम् ॥ २२ ॥
मधुभाण्डे विनिक्षिप्य धान्यराशौ निधापयेत् ।
मासेन तज्जातरसं मधुशुक्तमुदाहृतम् ॥ २३ ॥

कच्ची मूलीके टुकडोंको सुखाकर बनाया गया क्षार, हींग, सोंठ, सौंफ, बच, कूट, देवदारु, सहिजन, रसौंत, कालानमक, जवाखार, सज्जीखार, खारीनमक, सेंधानमक, भोजपत्रकी गांठ, विडनमक, नागरमोथाका कल्क, तथा तैलसे चतुर्गुण मधुशुक्त तथा बिजौरेनिम्बूका रस व केलेका रस प्रत्येक तैलसे चतुर्गुण मिलाकर सिद्ध तैलको कानमें छोडनेसे कानके कीडे नष्ट होते हे। यह भगवान् पुनर्वसुकी आज्ञा है। यह क्षारतैल मुख और दांतके रोगोंको नष्ट करनेमे श्रेष्ठ है। मधु प्रधान शुक्त मधुशुक्त कहा जाता है। अथवा जम्बीरी निम्बूके फलके रसको पिपरामूलके साथ मिलाकर शहद-के बर्तनमें रखकर धान्यराशिमें रखना चाहिये। यह महीने भरमें खट्टमिट्ठा हो जानेपर मधुशुक्त कहा जाता है ॥ १७–२३ ॥

कर्णनादचिकित्सा ।

कर्णनादे कर्णक्ष्वेडे कटुतैलेन पूरणम् ।
नादबाधिर्ययोः कुर्यात्कर्णशूलोक्तमौषधम् ॥ २४ ॥

कर्णनाद और कानोंकी सनसनाहटमे कडुए तैलको कानमें छोडना चाहिये तथा बहरेपनमे कर्णशूलोक्त औषध छोडना चाहिये ॥ २४ ॥

अपामार्गक्षारतैलम् ।

अपामार्गक्षारजले तत्कृतकल्केन साधितं तिलजम् ।
अपहरति कर्णनादं बाधिर्यं चापि पूरणतः ॥ २५ ॥

अपामार्गक्षारके जलमे अपामार्गके ही कल्कसे सिद्ध तिलतैलको कानमे डालनेसे कर्णनाद व बाहिरापन नष्ट होता है ॥ २५ ॥

सर्जिकादितैलम् ।

सर्जिकामूलकं शुष्कं हिंगुकृष्णामहौषधम् ।
शतपुष्पा च तैस्तैलं पक्वं शुक्तचतुर्गुणम् ।
प्रणादशूलबाधिर्यं स्रावं चाशु व्यपोहति ॥ २६ ॥

सज्जीखार, सूखीमूली, हींग, छोटी पीपल, सोंठ व सौंफके कल्क तथा चतुर्गुण सिरका मिलाकर सिद्ध तैल शीघ्र ही कर्णनाद, बाधिर्य और स्रावको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

दशमूलीतैलम् ।

दशमूलीकषायेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ।
एतत् कल्कं प्रदायैव बाधिर्ये परमौषधम् ॥ २७ ॥

दशमूलके काढे व कल्कसे सिद्ध तैल बाधिर्यकी परमौषध है ॥ २७ ॥

बिल्वतैलम् ।

फलं बिल्वस्य मूत्रेण पिष्ट्वा तैलं विपाचयेत् ।
साजक्षीरं हरेत्तद्धि बाधिर्यं कर्णपूरणे ॥ २८ ॥
एष एव विधिः कार्यः प्रणादे नास्यपूर्वकः ।
गुडनागरतोयेन नस्यं स्यादुभयोरपि ॥ २९ ॥

बेलके फलको गोमूत्रके साथ पीस बकरीके दूधमें मिला तैल सिद्ध कर कानमें छोडनेसे बाधिर्य नष्ट होता है । यही विधि नस्यपूर्वक कर्णनादमें करनी चाहिये । तथा दोनोमें गुड व सोंठके जलसे नस्य लेना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

कर्णस्रावचिकित्सा ।

चूर्णं पञ्चकषायाणां कपित्थरससंयुतम् ।
कर्णस्रावे प्रशंसन्ति पूरणं मधुना सह ॥ ३० ॥
मालतीदलरसमधुना पूरितमथवा गवां मूत्रैः ।
दूरेण परित्यज्यते च श्रवणयुगं पूतिरोगेण ॥ ३१ ॥
हरितालं सगोमूत्रं पूरणं पूतिकर्णजित् ।
सर्जत्वक्चूर्णसंयुक्तः कार्पासीफलजो रसः ।
मधुना संयुतः साधु कर्णस्रावे प्रशस्यते ॥ ३२ ॥

पञ्चकषाय (वच, अडूसा, प्रियंगु, पटोल, निम्ब) के चूर्णको कैथेके रस व शहदमें मिलाकर कानमें छोडना हितकर है तथा चमेलीकी पत्तीके रसको शहदके साथ अथवा गोमूत्रके साथ कानमें पूरण करनेसे दुर्गन्धित कर्णता नष्ट होती है । इसी प्रकार हरिताल व गोमूत्रके अथवा रालकी छालके चूर्णको कपासके रसमें व शहदमें मिला कानमें डाले तो कर्णस्राव शान्त होताहै॥ ३०-३२॥

जम्ब्वादिरसाः ।

जम्ब्वाम्रपत्रं तरुणं समांशं
कपित्थकार्पासफलं च सार्द्रम् ।
क्षुत्त्वा रसं ते मधुना विमिश्र
स्रावापहं सम्प्रवदन्ति तज्ज्ञाः ॥ ३३ ॥
एतैः श्रृतं निम्बकरञ्जतैलं
ससार्षपं स्रावहरं प्रदिष्टम् ॥ ३४ ॥
पुटपाकविधिस्विन्नहस्तिविड्जातगोण्डकः ।
रसः सतैलसिन्धूत्थः कर्णस्रावहरः परः ॥ ३५ ॥

मुलायम जामुन व आमकी पत्ती तथा कैथा व कपासका फल प्रत्येक समान भाग ले रस निकाल शहद मिलाकर कानमें छोडनेसे कर्णस्राव नष्ट होता है अथवा इन्हींसे सिद्ध नीम व कञ्जीका तैल सरसोंके तैलके साथ स्रावको नष्ट करता है।तथा पुटपाक विधिसे स्विन्न हाथीकी बीटके गोलेका रस तैल व सेंधानमकके साथ कर्णस्रावको नष्ट करता है ॥ ३३-३५ ॥

कर्णनाडीचिकित्सा ।

शम्बूकस्य तु मांसेन कटुतैलं विपाचयेत् ।
तस्य पूरणमात्रेण कर्णनाडी प्रशाम्यति ॥ ३६ ॥
निशागन्धपले पक्त्व कटुतैलं पलाष्टकम् ।
धूस्तूरपत्त्रजरसे कर्णनाडीजिदुत्तमम् ॥ ३७ ॥

घोंघेके मांससे कडुए तैलको पकाकर कानमें छोडनेसे कानका नासूर शान्त होता है । इसी भांति हल्दी व गन्धक प्रत्येक ४ तो०, कडुआ तैल ३२ तो० धतूरेके पत्तेके रसमें सिद्ध कर कानमें छोडनेसे कानके नासूरको नष्ट करता है ॥ ३६ ॥ ३७ ॥

कर्णप्रतीनाहचिकित्सा ।

अथ कर्णप्रतीनाहे स्नेहस्वेदौ प्रयोजयेत् ।
ततो विरिक्तशिरसः क्रिया प्राप्तां समाचरेत् ॥ ३८ ॥

कर्णप्रतीनाहमें, स्नेहन, स्वेदन तथा शिरोविरेचन कर उचित चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३८ ॥

विविधा उपायाः ।

कर्णपाकस्य भैषज्यं कुर्यात्क्षतविसर्पवत् ।
नाडीस्वेदोऽथ वमनं धूममूर्ध्वविरेचनम् ॥ ३९ ॥
विधिश्च कफहा सर्वः कर्णकण्डूं व्यपोहति ।
क्लेदयित्वा तु तैलेन स्वेदेन प्रतिलाप्य च ॥ ४० ॥
शोधयेत्कर्णगूथं तु भिषक् सम्यक् शलाकया ।
निर्गुण्डीस्वरसस्तैलं सिन्धुधूमरजो गुडः ॥ ४१ ॥
पूरणात्पूतिकर्णस्य शमनो मधुसंयुतः ।
जातीपत्त्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् ॥ ४२ ॥

कर्णपाककी चिकित्सा क्षतविसर्पके समान करनी चाहिये । कफजन्य खुजलीको नाडीस्वेद, वमन, धूम, शिरोविरेचन और कफनाशकविधि नष्ट करती है । कर्णगूथमें तैल छोड स्वेदन ढीला कर सलाईसे उसे निकाल देना चाहिये । सम्भालूका स्वरस, तैल, सेंधानमक, गृहधूम, गुड व शहदको मिलाकर कानमें छोडनेसे कानकी दुर्गंधि नष्ट होती है । तथा चमेलीकी पत्तीके रसमें पकाया तैल कानकी दुर्गन्धिको नष्ट करता है ॥ ३९-४२ ॥

वरुणादितैलम् ।

वरुणार्ककपित्थाम्रजम्बूपल्लवसाधितम् ।
पूतिकर्णापहं तैलं जातीपत्त्ररसेन वा ॥ ४३ ॥

वरुण, आक, कैथा आम व जामुनकी पत्तीके रस अथवा केवल चमेलीकी पत्तीके रससे सिद्ध तैल कानकी दुर्गन्धको नष्ट करता है ।

कर्णक्रिमिचिकित्सा ।

सूर्यावर्तकस्वरस सिन्धुवाररसस्तथा ।
लाङ्गलीमूलजरस त्र्यूषणेनावचूर्णितम् ॥ ४४ ॥
पूरयेत्क्रिमिकर्णे तु जन्तूनां नाशनं परम् ।
क्रिमिकर्णकनाशार्थं क्रिमिघ्न योजयेद्विधिम् ॥ ४५ ॥
वार्ताकुधूमश्च हित. सर्षपस्नेह एव च ।
हलिसूर्यावर्तव्योपस्वरसेनातिपूरिते ॥ ४६ ॥
कर्णे पतन्ति सहसा सर्वास्तु क्रिमिजातय ।
नीलिवुह्वारसस्तैलसिन्धुकाञ्जिकसयुत. ॥ ४७ ॥
कदुष्ण. पूरणात्कर्णे नि.शेषक्रिमिपातन ।
धूपन कर्णदौर्गन्ध्ये गुग्गुलु श्रेष्ठ उच्यते ॥ ४८ ॥

सूर्यावर्तका स्वरस, खम्भालूका रस तथा कलिहारीका रस त्रिकटुके चूर्णके साथ कानमें छोडनेसे कानके कीडे नष्ट होते हैं । तथा कानके क्रिमिनाशार्थ क्रिमिघ्नविधिका प्रयोग करना चाहिये । इसके लिये बैगनका धुआँ तथा सरसोंका तैल भी उत्तम है । कलिहारी, सूर्यावर्त और त्रिकटुके स्वरससे कानको भरनेसे कीडे गिर जाते हैं । इसी प्रकार नीलका रस, तैल, सेंधानमक व काञ्जी-को मिलाकर कुछ गरम गरम कानमें छोडनेसे समग्र कीटे गिर जाते हैं । तथा कानकी दुर्गंधिमें गुग्गुलकी धूप देना श्रेष्ठ है ॥ ४४–४८ ॥

धावनादि ।

राजवृक्षादितोयेन सुरसादिजलेन वा ।
कर्णप्रक्षालन कार्यं चूर्णैरेतैं प्रपूरणम् ॥ ४९ ॥
धृत रसाञ्जन नार्या क्षीरेण क्षौद्रसयुतम् ।
प्रशस्यते चिरोत्थेऽपि सास्रावे पूतिकर्णके ॥ ५० ॥

राजवृक्षादि अथवा सुरसादिके क्वाथसे कानको धोना तथा इन्हींका चूर्ण छोडना तथा घी, रसौत, स्त्रीका दूध और शहद मिलाकर छोडनेसे पुराने बहते हुए दुर्गंधि-युक्त कानको शुद्ध करता है ॥ ४९–५० ॥

कुष्ठादितैलम् ।

कुष्ठहिंगुवचादारुशताह्वाविश्वसैन्धवैः ।
पूतिकर्णापह तैल वस्तमूत्रेण साधितम् ॥ ५१ ॥

कूठ, हींग, वच, देवदारु, सौंफ, सोंठ, व सैंधानमक इनके कल्कको बकरेके मूत्रमें मिलाकर सिद्ध किया गया तैल कानकी दुर्गंधिको नष्ट करता है ॥ ५१ ॥

कर्णविद्रधिचिकित्सा ।

विद्रधौ चापि कुर्वीत विद्रध्युक्तं हि भेपजम् ।

कर्ण विद्रधिमें विद्रधिकी चिकित्सा करनी चाहिये ।

कर्णपालीपोषणम् ।

शतावरीवाजिगन्धापयस्यैरण्डबीजकैः ॥ ५२ ॥
तैलं विपक्क सक्षीरं पालीनां पुष्टिकृत्परम् ।
गुञ्जाचूर्णयुते जाते माहिषे क्षीर उद्धृतम् ॥ ५३ ॥
नवनीत तदभ्यङ्गात्कर्णपालिविवर्धनम् ।
विपगर्भे तिक्ततुम्बीतैलमष्टगुणे खरात् ॥ ५४ ॥
मूत्रे पक्व तदभ्यङ्गात्कर्णपालिविवर्धनम् ।
कल्केन जीवनीयेन तैलं पयसि साधितम् ॥ ५५ ॥
आनूपमांसक्वाथेन पालीपोपणवर्धनम् ।
माहिपनवनीतयुतं सप्ताहं धान्यराशिपरिवसितम्॥५६॥
नवमुसलिकन्दचूर्णमृद्धिकर कर्णपालीनाम् ।

शतावरी, असगन्ध, क्षीरविदारी व एरण्डबीजके कल्क दूधके सहित पकाया तैल कर्णपालियोंको पुष्ट करता है । इसी प्रकार गुञ्जाके चूर्णके साथ पकाय भैंसीके दूधसे निकाले मक्खनकी मालिश करनेसे कर्णपाली पुष्ट होता है । इसी प्रकार सींगियाके कल्क, कडुई तोम्बीके बीजोंके तैल तथा गधेका अठगुना मूत्र छोडकर सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे कर्णपाली बढती है । तथा जीव-नीय कल्कसे दूधके साथ आनूप मासका क्वाथ छोडकर सिद्ध तैलकी मालिशसे कर्णपालीको पुष्ट करता तथा बढाता है । इसी प्रकार भैंसीके मक्खनको सात दिन धान्यराशिमें रख नवीन मुसलीकन्दके चूर्णको छोड मल-नेसे कर्णपालीको बढाता है ॥ ५२–५६ ॥–

दुर्व्यधादिचिकित्सा ।

कर्णस्य दुर्व्यधे भूते सरम्भो वेदना भवेत् ॥ ५७ ॥
तत्र दुर्व्यधरोहार्थं लेपो मध्वाज्यसंयुतैः ।
मधूकयवमञ्जिष्ठाखुमूलैः समन्तत ॥ ५८ ॥
अनेकधा तु च्छिन्नस्य सन्धे कर्णस्य वै भिषक् ।
यो यथाभिनिविष्ट स्यात्त तथा विनियोजयेत् ॥ ५९ ॥
धान्याम्लोष्णोदकाभ्या तु सेको वातेन दूषिते ।
रक्तपित्तेन पयसा श्लेष्मणा तूष्णवारिणा ॥ ६० ॥
तत सीव्य स्थिरं कुर्यात्सधिं बन्धेन वा पुन ।
मध्वाज्येन ततोऽभ्यज्य पिचुना सन्धिवेष्टकम् ।
कपालचूर्णेन ततश्चूर्णयेत्पथ्ययाथवा ॥ ६१ ॥

कानके ठीक व्यध न होनेपर सूजन तथा पीडा होती है । अतः उसके भरनेके लिये शहद व घीसे मिलित महुआ यव, मञ्जीठ व एरण्ड तैलका लेप करना चाहिये तथा अनेक प्रकारसे कटे कानकी सन्धि जो जहा बैठ सके उसे वहा लगाना चाहिये । वातदूपितमें काञ्जी व गरम जलका सेक रक्तपित्तसे दूषितमें दूधसे तथा कफसे दूषितमें गरम जलसे सेक करना चाहिये फिर सींकर

अथवा वधसे सधिको ठीक करना चाहिये फिर घी, शहद चुपडकर खपडेके चूर्ण अथवा छोटी हरोके चूर्णको उड़ाना चाहिये ॥ ५७-६१ ॥

इति कर्णरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ नासारोगाधिकारः ।

पीनसचिकित्सा ।

पञ्चमूलीशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी ।
सर्पिर्गुडः षडङ्गश्च यूषः पीनसशान्तये ॥ १ ॥

पीनसकी शांतिके लिये पञ्चमूलसे सिद्ध दूध चित्रक व हरीतकी अथवा सर्पिर्गुड और षडगयूप इनका प्रयोग करना चाहिये ॥ १ ॥

व्योषादिचूर्णम् ।

व्योषचित्रकतालीसतिन्तिडीकाम्लवेतसम् ।
सचव्याजाजितुल्याशमेलात्वक्पत्रपादिकम् ॥ २ ॥
व्योषादिकं चूर्णमिदं पुराणगुडसंयुतम् ।
पीनसश्वासकासघ्नं रुचिस्वरकरं परम् ॥ ३ ॥

त्रिकटु, चीता, तालीशपत्र, तिंतिडीक, अम्लवेत, चव्य, व जीरा प्रत्येक समान भाग, इलायची, दालचीनी, तेजपात प्रत्येक चतुर्थांश ले चूर्णकर पुराना गुड मिलाकर सेवन करनेसे जुखाम, श्वास, कास, नष्ट होते तथा रुचि और स्वर उत्तम होते ह ॥ २ ॥ ३ ॥

पाठादितैलम् ।

पाठाद्विरजनीमूर्वापिप्पलीजातिपल्लवैः ।
दन्त्या च तैलं संसिद्धं नस्यं सम्यक्तु पीनसे ॥ ४ ॥

पाढ, हल्दी, दारुहल्दी, मूर्वा, छोटी पीपल, चमेलीकी पत्ती और दतीसे सिद्ध तैलका नस्य देनेसे पीनसमे लाभ होता है ॥ ४ ॥

व्याघ्र्यादितैलम् ।

व्याघ्रीदन्तीवचाशिग्रुसुरसव्योषसैन्धवैः ।
पाचितं नावनं तैलं पूतिनासागदं जयेत् ॥ ५ ॥

छोटी कटेरी, दंती, वच, सहिजन, तुलसी, त्रिकटु, व सेंधानमकसे सिद्ध तैलके नस्यसे नासाकी दुर्गंध नष्ट होती है ॥ ५ ॥

त्रिकट्वादितैलम् ।

त्रिकटुविडङ्गसैन्धवबृहतीफलशिग्रुसुरसदन्तीभिः ।
तैलं गोजलसिद्धं नस्यं स्यात्पूतिनस्यस्य ॥ ६ ॥

त्रिकटु, बायविडंग, सेंधानमक, बडीकटेरीका फल, सहिंजन, तुलसी व दन्तीके कल्कसे मिलित गोमूत्रमें सिद्ध तेलके नस्य देनेसे नासाकी दुर्गंध नष्ट होती है ॥ ६ ॥

कलिङ्गादिनस्यम् ।

कलिङ्गहिङ्गुमरिचलाक्षासुरसकट्फलैः ।
कुष्ठोग्राशिग्रुजन्तुघ्नैरवपीडः प्रशस्यते ॥ ७ ॥
तैरेव मूत्रसंयुक्तैः कटु तैलं विपाचयेत् ।
अपीनसे पूतिनस्ये शमनं कीर्तितं परम् ॥ ८ ॥

इन्द्रयव, हींग, मिर्च, लाख, तुलसी, कैफरा, कूट, वच, सहिंजन व वायविडंगके चूर्णका नस्य देना चाहिये । इन्हीमे गोमूत्र मिलाकर पकाया गया कडुआ तैल पीनस और नासाकी दुर्गन्धको शान्त करता है ॥७॥८॥

नासापाकचिकित्सा ।

नासापाके पित्तहृत्सविधानं
कार्यं सर्वं बाह्यमभ्यन्तरं च ।
हरेद्रक्तं क्षीरिवृक्षत्वचश्च
योज्याः सेके सघृताश्च प्रदेहाः ॥ ९ ॥
पूयास्ररक्तपित्तघ्ना कषाया नावनानि च ।

नासापाकमे बाह्य तथा आभ्यन्तर पित्तहर चिकित्सा करनी चाहिये । रक्तनिकालना चाहिये । तथा क्षीरिवृक्षों (औदुम्बरादि) की छालके क्काथका सिंचन तथा घीके सहित लेप लगाना चाहिये । तथा मवाद, रक्त व रक्तपित्तनाशक काढे और नस्य देना हितकर है ॥ ९ ॥-

शुण्ठ्यादितैलं घृतं वा ।

शुण्ठीकुष्ठकणाबिल्वद्राक्षाकल्ककषायवत् ।
साधितं तैलमाज्यं वा नस्यं क्षवथुरुक्प्रणुत् ॥ १० ॥

सोंठ, कूठ, छोटी पीपल, बेलका गुदा व मुनक्काके कल्क और काढेसे सिद्ध तैल अथवा घीका नस्य देनेसे छींक तथा पीडा शान्त होती है ॥ १० ॥

दीप्तानाहचिकित्सा ।

दीप्ते रोगे पैत्तिकं सविधानं
सर्वं कुर्यान्माधुरं शीतलं च ।
नासानाहे स्नेहपानं प्रधानं
स्निग्धा धूमा मूर्ध्नि वस्तिश्च नित्यम् ॥ ११-

दीप्तरोगमें पैत्तिकचिकित्सा समस्त मधुर व ठण्डी करनी चाहिये। तथा नासानाहमें स्नेहपान, स्निग्धधूम, तथा शिरोवस्तिका प्रयोग नित्य करना चाहिये॥ ११॥

प्रतिश्यायचिकित्सा।

वातिके तु प्रतिश्याये पिबेत्सर्पिर्यथाक्रमम्।
पञ्चभिर्लवणैः सिद्धं प्रथमेन गणेन च॥ १२॥
नस्यादिषु विधिं कृत्स्नमवेक्षेतार्दितेरितम्।
पित्तरक्तोत्थयोः पेयं सर्पिर्मधुरकैः शृतम्॥ १३॥
परिषेकान्प्रदेहांश्च कुर्यादपि च शीतलान्।
कफजे सर्पिषा स्निग्धं तिलमाषविपक्वया॥ १४॥
यवाग्वा वामयित्वा वा कफघ्नं क्रममाचरेत्।

वातिक प्रतिश्यायमें पाचों लवणोंसे सिद्ध अथवा वातनाशक गणसे सिद्ध घी पिलाना चाहिये तथा अर्दित रोगमें कहे नस्य आदि देने चाहिये। पित्तरक्तज प्रतिश्यायमें मीठी चीजोंसे सिद्ध घी पिलाना चाहिये तथा शीतल सेक तथा लेप करना चाहिये और कफज प्रतिश्यायमें घीसे स्नेहन कर तिल तथा उडदसे पकायी यवागूसे वमन कराकर कफनाशक चिकित्सा करनी चाहिये॥ १२-१४॥

धूमयोगः।

दार्वीङ्गुदीनिकुम्भैश्च किणिह्या सुरसेन च॥ १५॥
वर्तयोऽत्र कृता योज्या धूमपाने यथाविधि।
अथवा सघृतान्सक्तून्कृत्वा मल्लकसम्पुटे।
नवप्रतिश्यायवतां धूमं वैद्यः प्रयोजयेत्॥ १६॥

दारुहल्दी, इगुदी, दन्ती, लटजीरा व तुलसीसे बनायी वत्तीका धूम पीना चाहिये। अथवा घीके सहित सत्तू छिद्रयुक्त सम्पुटमें रखकर धूम पीना चाहिये। यह प्रयोग नये प्रतिश्यायमें करना चाहिये॥ १५॥ १६॥

शीतलजलयोगः।

यः पिबति शयनकाले शयनारूढः सुशीतलं भूरि।
सलिलं पीनसयुक्तः स मुच्यते तेन रोगेण॥ १७॥

जो सोनेके समय यथेष्ट ठण्डा जल पीता है उसका पनिसरोग नष्ट होता है॥ १७॥

जयापत्रयोगः।

पुटपक्वं जयापत्रं सिन्धुतैलसमन्वितम्।
प्रतिश्यायेषु सर्वेषु शीलितं परमौषधम्॥ १८॥

पुटपाक-स्वावित अरणीके पत्तोंमें सेंधानमक तथा तैल मिलाकर सेवन करनेसे समस्त प्रतिश्याय दूर होते हैं॥ १८॥

अन्ये उपायाः।

शोषणं गुडसंयुक्तं स्निग्धदध्यम्लभोजनम्।
नवप्रतिश्यायहरं विशेषात्कफपाचनम्॥ १९॥
प्रतिश्याये नवे शस्तो यूषश्चिञ्चादलोद्भवः।
ततः पक्वं कफं ज्ञात्वा हरेच्छीर्षविरेचनैः॥ २०॥
शिरसोऽभ्यञ्जनस्वेदनस्यकट्वम्लभोजनैः।
वमनैर्घृतपानैश्च तान्यथास्वमुपाचरेत्॥ २१॥

कालीमिर्च व गुडके साथ स्नेहयुक्त (विना मक्खन-निकाले) दहीके साथ भोजन नवीन जुकामको नष्ट करता तथा कफका पाचन होता है। नवीन जुकाममें इमलीकी पत्तीका यूष हितकर है फिर कफ पक जाने पर शीर्षविरेचनसे निकालना चाहिये। शिरकी मालिश, स्वेदन, नस्य,कडुवे तथा खट्टे भोजन, वमन व घृतपान जो उचित हो करना चाहिये॥१९-२१॥

माषयोगः।

भक्षयति भुक्तमात्रे सलवणमुत्स्विन्नमाषमत्युष्णम्।
स जयति सर्वसमुत्थं चिरजातं च प्रतिश्यायम्॥२२॥

भोजनकरनेपर ही उबाले गरम गरम उडदको जो खाता है वह सब दोषोंसे उत्पन्न पुराने प्रतिश्यायको भी जीतता है॥ २२॥

अवपीडः।

पिप्पल्यः शिग्रुबीजानि विडङ्गं मरिचानि च।
अवपीडः प्रशस्तोऽयं प्रतिश्यायनिवारणः॥ २३॥

छोटी पीपल, सहिजनके बीज, बायविडङ्ग, व काली मिर्चका नस्य प्रतिश्यायको नष्ट करता है॥ २३॥

क्रिमिचिकित्सा।

समूत्रपिष्टाश्चोद्दिष्टा क्रिया क्रिमिषु योजयेत्।
नावनार्थे क्रिमिघ्नानि भेषजानि च बुद्धिमान्।
शेषाणां तु विकाराणां यथास्वं स्याच्चिकित्सितम्॥ २४॥

मूत्रमें पीसकर कही गयी क्रियाएं क्रिमि रोगमें करनी चाहिये। तथा नस्यके लिये क्रिमिघ्न औषधियोंका प्रयोग करना चाहिये। शेष रोगोंकी यथादोष चिकित्सा करनी चाहिये॥ २४॥

करवीरतैलम्।

रक्तकरवीरपुष्पं जात्यशनकमल्लिकायाश्च।
एतैः समं तु तैलं नासार्शोनाशनं श्रेष्ठम्॥ २५॥

लालकनेरके फूल, चमेली, विजैसार, और मल्लिकाके फूलोंके साथ सिद्ध तैल नासार्शको नष्ट करता है॥२५॥

गृहधूमादितैलम् ।

गृहधूमकणादारुक्षारनक्ताह्वसैन्धवैः ।
सिद्धं शिग्रुरिबीजैश्च तैलं नासार्शसां हितम् ॥ २६ ॥

गृहधूम, छोटी पीपल, देवदारु, जवाखार, कञ्जा, सेंधानमक और अपामार्गके बीजोंसे सिद्ध तैल नासार्शके लिये हितकर है ॥ २६ ॥

चित्रकादितैलम् ।

चित्रकचविकादीप्यकनिदिग्धिकाकरञ्जबीजलवणार्कैः ।
गोमूत्रयुतं सिद्धं तैलं नासार्शसां विहितम् ॥ २७ ॥

चीतकी, जड, चव्य, अजवायन, छोटी कटेरी, कञ्जा, लवण व आकके कल्क व गोमूत्रमें सिद्ध तैल नासार्शके लिये हितकर है ॥ २७ ॥

चित्रकहरीतकी ।

चित्रकस्यामलक्याश्च गुडूच्या दशमूलजम् ।
शतं शतं रसं दत्त्वा पथ्याचूर्णाढकं गुडात् ॥ २८ ॥
शतं पचेद्घनीभूते पलं द्वादशकं क्षिपेत् ।
व्योषत्रिजातयोः क्षारात्पलार्धमपरेऽहनि ॥ २९ ॥
प्रस्थार्धं मधुनो दत्त्वा यथाग्न्यद्यादतन्द्रितः ।
वृद्धयेऽग्नेः क्षयं कासं पीनसं दुस्तरं क्रिमीन् ।
गुल्मोदावर्तदुर्नामश्वासान्हन्ति रसायनम् ॥ ३० ॥

चीतकी जड, आंवला, गुर्च, दशमूल, प्रत्येकके ५ सेर रस (क्वाथ) में छोटी हर्रोंका चूर्ण ३ सेर १६ तो०, गुड ५ सेर छोडकर पकाना चाहिये, गाढा हो जानेपर मिलित त्रिकटु, त्रिफला ४८ तोले (अर्थात् प्रत्येक ८ तोला) जवाखार २ तोला छोडना चाहिये। दूसरे दिन ३२ तोला शहद मिलाना चाहिये फिर अग्निके अनुसार सावधानीसे सेवन करना चाहिये। इससे अग्नि बढती तथा क्षय, कास, कठिन पीनस, क्रिमि, गुल्म, उदावर्त, अर्श, व श्वासरोग, नष्ट होते हैं यह रसायन है ॥ २८-३० ॥

इति नासारोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ नेत्ररोगाधिकारः ।

सामान्यतश्चिकित्साक्रमः ।

लंघनालेपनस्वेदशिराव्यधविरेचनैः ।
उपाचरेदभिष्यन्दानञ्जनाश्च्योतनादिभिः ॥ १ ॥

लंघन, आलेपन, स्वेद, शिराव्याध, विरेचन, अञ्जन, तथा आश्च्योतनादिसे अभिष्यन्दोंकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ १ ॥

श्रीवासादिगुण्ठनम् ।

श्रीवासातिविषाब्दाभ्रपूर्णितैस्तरसैन्धवैः ।
अभ्यङ्केऽक्षिगदे कार्यं कोऽन्तर्भेगुण्ठनं बहिः ॥ २ ॥

देवदारु, अतीस, व लोधके चूर्णमें थोडा सेंधानमक मिला कपडेमें बांधकर रखना चाहिये जबतक नेत्ररोगका पूर्वरूप हो ॥ २ ॥

लंघनप्राधान्यम् ।

अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः ।
पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रशमं यान्ति लङ्घनात् ॥ ३ ॥

नेत्र और पेटके रोग, जुखाम, व्रण और ज्वर ये पांचों रोग लंघन करनेसे पांच रात्रिमें ही शान्त हो जाते हैं ॥ ३ ॥

पाचनानि ।

स्वेदः प्रलेपस्तिक्तान्नं सेको दिनचतुष्टयम् ।
लंघनं चाक्षिरोगाणामामानां पाचनानि षट् ।
अञ्जनं पूरणं क्वाथपानमामे न शस्यते ॥ ४ ॥

स्वेद, प्रलेप, तिक्तान्न, सेक, नेत्र दूखनेपर चार दिन व्यतीत होजाना, लंघन यह छः आम नेत्ररोगोंके पाचन हैं। तथा अञ्जन, पूरण और क्वाथपान आममें हितकर नहीं है ॥ ४ ॥

पूरणम् ।

धात्रीफलनिर्यासो नवदृक्कोपं निहन्ति पूरणतः ।
सक्षौद्रसैन्धवो वा शिग्रुदलचपत्ररससेकः ॥ ५ ॥
दार्वीरसाञ्जनं वापि स्तन्ययुक्तं प्रपूरणम् ।
निहन्ति शीघ्रं दाहाश्रुवेदनाः स्यन्दसम्भवाः ॥ ६ ॥

आंवलेके फलका रस पूरण करनेसे नवीन नेत्ररोगको नष्ट करता है। अथवा शहद व सेंधानमकके साथ सहिजनके पत्तोंके रसका सेक। अथवा दारुहल्दीके क्वाथसे यथाविधि सावित रसोतको स्त्रीके दूधमें पीसकर छोडनेसे अभिष्यन्दजन्य जलन, अश्रु और पीडा शान्त होते हैं ॥ ५ ॥ ६ ॥

करवीरजलसेकः ।

करवीरतरुणकिसलयच्छेदोद्भवबहुलसलिलसंपूर्णम् ।
नयनयुगं भवति दृढं सहसैव तत्क्षणात्कुपितम् ॥ ७ ॥

कनेरकी मुलायम पत्तियोंके तोडनेसे निकला जल आंखमें भरनेसे सहसा कुपित नेत्र दृढ होते हैं ॥ ७ ॥

शिखरियोगः।

शिखरिमूलं ताम्रकभाजने स्तोकसैन्धवोन्मिश्रम्।
मस्तु निघृष्टं भरणाद्धरति नव लोचनोत्कोपम्॥ ८॥

अपामार्गकी जड, थोडे सेंधानमक और दहीके तोड-को ताम्रपात्रमें घिसकर आँखमें छोडनेसे नवीन नेत्ररोग नष्ट होता है॥ ८॥

लेपाः।

सैन्धवदारुहरिद्रागैरिकपथ्यारसाञ्जनैः पिष्टैः।
दत्तो बहिः प्रलेपो भवत्यशेषाक्षिरोगहरः॥ ९॥
तथा शाबरकं लोध्रं घृतभृष्टं बिडालकः।
घृतभ्रष्टहरीतक्या तद्वत्कार्यो बिडालकः॥ १०॥
शालाक्येऽक्ष्णोर्बहिर्लेपो बिडालक उदाहृतः।
गिरिसृच्चन्दननागरखटिकाशयोजितो बहिर्लेपः॥११॥
कुरुते वचया मिश्रो लोचनमगदं न सन्देहः॥ १२॥
भूम्यामलकी घृष्टा सैन्धवगृहवारियोजिता ताम्रे।
याता घनत्वमक्ष्णोर्जयति बहिर्लेपतः पीडाम्॥ १३॥

सेंधानमक, दारुहल्दी, गेरू, छोटी हर्र व रसोंतको पीसकर नेत्रके बाहर लेप लगानेसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं इसी प्रकार सावर लोधको घीमें भूनकर शला-कासे नेत्रके बाहर लेप लगाना चाहिये। इसी प्रकार हर्रको घीमें भूनकर विडालक लेप लगाना चाहिये। शालाक्य तन्त्रमें नेत्रोंके बाहर लेप लगाना विडालक कहा जाताहै अथवा गेरू,चन्दन,सोंठ,खडिया और वच समान भाग ले नेत्रके बाहर लेप करना चाहिये। इसी प्रकार भुइँ आँवलेको ताम्रके बर्तनमें सेंधानमक और काञ्जीके साथ घिसकर गाढा हो जानेपर बाहर लेप करनेसे नेत्र-पीडा शान्त होती है॥ ९-१३॥

आश्च्योतनम्।

आश्च्योतनं मारुतजे क्वाथो बिल्वादिभिर्हितः।
कोष्णः सैरण्डबृहतीतर्कारीमधुशिग्रुभिः॥ १४॥
एरण्डपल्लवे मूले त्वचि चाजं पयः शृतम्।
कण्टकार्याश्च मूलेषु सुखोष्णं सेचने हितम्॥ १५॥

वातजन्य नेत्ररोगमें बिल्वादि पञ्चमूल, एरण्ड, बडी कटेरी, अरणी, व मीठे सहिजनेके क्वाथका गुनगुना गुनगुना आश्च्योतन करना चाहिये। एरण्डके पत्ते, छाल और जडसे सिद्ध बकरीके दूध अथवा कटेरीकी जडसे सिद्ध गुनगुने गुनगुने दूधका सिंचन करना चाहिये॥ १४॥ १५॥

अञ्जनादिसमयनिश्चयः।

सम्पक्वेऽक्षिगदे कार्यं चाञ्जनादिकमिष्यते।
प्रशस्तवर्त्मता चाक्ष्णोः संरम्भाश्रुप्रशान्तता॥ १६॥
मन्दवेदनता कण्डूः पक्वाक्षिगदलक्षणम्।
अञ्जनादिविधिश्चाग्रे निखिलेनाभिधास्यते॥ १७॥

सम्यक् नेत्रदोषोंमें अञ्जनादि लगाना चाहिये। विन्नि-योंका स्वच्छ होना नेत्रोंकी लालिमा व आँसुओंका कम होना, पीडा कम होना, खुजलीका होना पक्व नेत्ररोगके लक्षण हैं। ऐसी अवस्थाके लिये आगे अञ्जनादि लिखते हैं॥ १६॥ १७॥

बृहत्यादिवर्तिः।

बृहत्येरण्डमूलत्वक्शिग्रोर्मूलं ससैन्धवम्।
अजाक्षीरेण पिष्टं स्याद्वर्तिर्वाताक्षिरोगनुत्॥ १८॥

बडी कटेरी, एरण्डकी जडकी छाल,सहिजनकी जड-की छाल व सेंधानमक इन सबको पीसकर बकरीके दूधमें बत्ती बनाकर वातज-नेत्ररोगमें लगाना चाहिये॥१८॥

हरिद्राद्यञ्जनम्।

हरिद्रे मधुकं पथ्या देवदारु च पेषयेत्।
आजेन पयसा श्रेष्ठमभिष्यन्दे तदञ्जनम्॥ १९॥

हल्दी, दारुहल्दी, मौरेठी, हर्र व देवदारुको पीस-कर बकरीके दूधमें लगाना अभिष्यन्दके लिये हित-कर है॥ १९॥

गैरिकाद्यञ्जनम्।

गैरिकं सैन्धवं कृष्णा नागरं च यथोत्तरम्।
पिष्टं द्विरंशतोऽद्भिर्वा गुडिकाञ्जनमिष्यते॥ २०॥

गेरू १ भाग, सेंधानमक २ भाग, छोटी पीपल ४ भाग, सोंठ ८ भाग इनको जलमें पीस गोली बनाकर अञ्जन लगाना चाहिये॥ २०॥

पित्तजनेत्ररोगे आश्च्योतनम्।

प्रपौण्डरीकयष्ट्याह्वनिशामलकपद्मकैः।
शीतैर्मधुसितायुक्तैः सेकः पित्ताक्षिरोगनुत्॥ २१॥
द्राक्षामधुकमञ्जिष्ठाजीवनीयैः शृतं पयः।
प्रातराश्च्योतनं पथ्यं शोथशूलाक्षिरोगिणाम्॥ २२॥

पुण्डरिया, मौरेठी, हल्दी, आवला व पद्माखके शीतकषायमें शहद व शक्कर मिलाकर नेत्रमें छोडनेसे पित्तज-नेत्ररोग शान्त होता है। अथवा मुनका, मौरेठी, मजीठ और जीवनीयगणकी औषधियोंसे सिद्ध दूध प्रातःकाल नेत्रमें छोडनेसे नेत्रोंका शोथ व शूल नष्ट होता है॥ २१॥ २२॥

लोध्रपुटपाकः ।

निम्बस्य पत्रैः परिलिप्य लोध्रं
स्वेदोऽग्निना चूर्णमथापि कल्कम् ।
आश्च्योतनं मानुषदुग्धयुक्तं
पित्तास्रवातापहमग्र्यमुक्तम् ॥ २३ ॥

लोधके कल्क अथवा चूर्णके ऊपर नीमकी पत्तीका लेप कर अग्निमे पका स्त्रीदुग्धमे मिलाकर नेत्रमें आश्च्योतन करना पित्तज और वातज नेत्ररोगोंको शान्त करता है ॥ २३ ॥

कफजचिकित्सा ।

कफजे लङ्घनं स्वेदो नस्यं तिक्तान्नभोजनम् ।
तीक्ष्णैः प्रधमनं कुर्यात्तीक्ष्णैश्चैवोपनाहनम् ॥ २४ ॥
फणिज्जकास्फोतकपीतविल्वपत्तूरपीलूसुरसार्जभङ्गैः ।
स्वेदं विदध्यादथवा प्रलेपं वर्हिष्ठशुण्ठीसुरदारुकुष्ठैः २५
शुण्ठीनिम्बदलैः पिण्डः सुखोष्णैः स्वल्पसैन्धवैः ।
धार्यश्चक्षुषि सलेपाच्छोथकण्डूरुजापहः ॥ २६ ॥
वल्कलं पारिजातस्य तैलकाञ्जिकसैन्धवम् ।
कफोद्भूताक्षिशूलघ्नं तरुघ्नं कुलिशं तथा ॥ २७ ॥

कफजमे लघन, स्वेद, नस्य, तिक्तान्न भोजन, तीक्ष्ण औषधियोंका नस्य तथा तीक्ष्ण ही पुल्टिस बाधनी चाहिये। अथवा मरुवा, आस्फोता, पारस, पीपल, बिल्व, पत्तूर (पकरिया अथवा लाल चन्दन) पीलु, तुलसी, वनतुलसीके पत्तोको गरम कर स्वेद करना चाहिये । अथवा सुगन्धवाला, सोठ, देवदारु व कूठका लेप करना चाहिये । इसी प्रकार सोठ व नीमकी पत्तीके पिंडमें थोडा नमक मिला गरमकर गुनगुना नेत्रोंमे धारण करनेसे शोथ खुजली और पीडा मिटती है । इसी प्रकार पारिजातकी छाल, तैल, काञ्जी और सेंधानमक मिलाकर लेप करनेसे कफज नेत्रशूल इस प्रकार नष्ट होता है जैसे वृक्षको वज्र नष्ट करता है ॥ २४–२७ ॥

सैन्धवाद्याश्च्योतनम् ।

ससैन्धवं लोध्रमथाज्यभृष्टं
सौवीरपिष्टं सितवस्त्रबद्धम् ।
आश्च्योतनं तन्नयनस्य कुर्यात्
कण्डूं च दाहं च रुजां च हन्यात् ॥ २८ ॥

लोधको घीमें भून सेंधानमक मिला काञ्जीमे पीस सफेद कपडेमें बांधकर नेत्रमें निचोडना चाहिये । यह खुजली, जलन और पीडाको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

१ कपित्थ इति पाठान्तरम् तन्मते कैथाकी छाल

सामान्यनियमाः ।

स्निग्धैरुष्णैश्च वातोत्था पित्तजा मृदुशीतलैः ।
तीक्ष्णरूक्षोष्णविशदैः प्रशाम्यन्ति कफात्मकाः ।
तीक्ष्णोष्णमृदुशीतानां व्यत्यासात्सान्निपातिकाः ॥२९॥

चिकने व गरम पदार्थोंसे वातज, मीठे व शीतल पदार्थोंसे पित्तज, तेज रूखे गरम व फैलनेवाले पदार्थोंमे कफज तथा तीक्ष्ण, उष्ण, मृदु, व शीतलके सम्मिश्रणसे सन्निपातज रोग शान्त होते हैं ॥ २९ ॥

रक्ताभिष्यन्दचिकित्सा ।

तिरीटत्रिफलायष्टीशर्कराभद्रमुस्तकैः ।
पिष्टैः शीताम्बुना सेको रक्ताभिष्यन्दनाशनः ॥३०॥
कशेरुमधुकानां च चूर्णमम्बरसंयुतम् ।
न्यस्तमप्स्वान्तरीक्ष्यासु हितमाश्च्योतनं भवेत् ॥३१॥

लोध, त्रिफला, मौरेठी, शक्कर व नागरमोथाको पीस ठण्डे जलमे मिलाकर नेत्रमें सिञ्चन करना रक्ताभिष्यन्दको नष्ट करता है । अथवा कशेरू और मौरेठीका चूर्ण कपडेमे बाध आकाशके जलमे डुबोकर नेत्रमे निचोडना हितकर है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

दार्व्यादिरसक्रिया ।

दार्वीपटोलमधुकं सनिम्बं पद्मकोत्पलम् ।
प्रपौण्डरीकं चैतानि पचेत्तोये चतुर्गुणे ॥ ३२ ॥
विपाच्य पादशेषं तु तत्पुनः कुडवं पचेत् ।
शीतीभूते तत्र मधु दद्यात्पादांशिकं ततः ॥ ३३ ॥
रसक्रियैषा दाहाश्रुरागरक्तरुजापहा ।

दारुहल्दी, परवलकी पत्ती, नीम, मौरेठी, पद्माख, नीलोफर, पुडरिया, इनको चतुर्गुण जलमे मिलाकर पकाना चाहिये चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर फिर पकाना चाहिये गाढा हो जानेपर उतारकर चतुर्थांश शहद मिलाना चाहिये । यह रसक्रिया जलन, आसू, लालिमा और रक्तकी पीडाको शान्त करती है ॥३२॥३३॥–

विशेषचिकित्सा ।

तिक्तस्य सर्पिषः पानं बहुशश्च विरेचनम् ॥ ३४ ॥
अक्ष्णोरपि समन्ताच्च पातनं तु जलौकसः ।
पित्ताभिष्यन्दशमनो विधिश्चाप्युपपादितः ॥ ३५ ॥

तिक्तघृतपान, अनेक बार विरेचन, नेत्रोंके चारों ओर जोंक लगाना तथा पित्ताभिष्यन्द नाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

धूपः ।

शिग्रुपल्लवनिर्यास' सुघृष्टस्ताम्रसपुटे ।
घृतेन धूपितो हन्ति शोथघर्षाश्रुवेदना' ॥ ३६ ॥

साहिजनके पत्तोंके रसको घीके साथ ताम्रके पात्रमे घिस मिलाकर धूप देनेसे सूजन, किराकिराहट, आसुओका गिरना और पीडा शात होती है ॥ ३६ ॥

निम्बपत्रगुटिका ।

पिष्टैर्निम्बस्य पत्रैरतिविमलतरैर्जातिसिन्धूत्थमिश्रा
अन्तर्गर्भं दधाना पटुतरगुडिकापिष्टलोध्रेण मृष्टा ।
तूलै. सौवीरसार्द्रैरतिशयमृदुभिर्वेष्टिता सा समन्ता-
च्चक्षुःकोपप्रशान्तिं चिरमुपरिदृशोर्भ्राम्यमाणा करोति३७

साफ मुलायम नीमकी पत्ती पीस चमेलीकी पत्ती और सेंधानमक मिला गोली बनाकर ऊपरसे पीसे लोध-को लपेटकर काञ्जीसे तर मुलायम रुईसे लपेटना चाहिये, इस गोलीको आंखोंके ऊपर अधिक समय तक घुमानेसे नेत्रकोप शात होता है ॥ ३७ ॥

बिल्वपत्ररसपूरणम् ।

बिल्वपत्ररस. पूत: सैन्धवाज्येन चान्वितः ।
शुल्बे वराटिकाघृष्टो धूपितो गोमयाग्निना ॥ ३८ ॥
पयसालोडितश्चाक्ष्णो पूरणाच्छोथशूलनुत् ।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च स्रावे रक्ते च शस्यते ॥ ३९ ॥

बेलकी पत्तीके रसमे सेंधानमक और घी मिलाकर ताम्रके वर्तनमे कौडियोंके साथ घिस गायके गोवरकी आंचसे गरमकर दूध मिला आखोंमे छोडनेसे सूजन, शूल, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, स्राव और रक्तदोष शात होते हैं ॥ ३८ ॥ ३९ ॥

लवणादिसिञ्चनम् ।

सलवणकटुतैलं काञ्जिकं कांस्यपात्रे
घनितमुपलघृष्टं धूपितं गोमयाग्नौ ।
सपवनकफकोपं छागदुग्धावसिक्तं
जयति नयनशूलं स्रावशोथं सरागम् ॥ ४० ॥

नमक और कडुए तैलके साथ काञ्जीको कासेके पात्रमें गाढाकर पत्थरसे घिस गोबरके कडोंसे गरमकर बकरीके दूधमे मिलाकर आखमे छोडनेसे वात व कफके कोप, नेत्रशूल, स्राव, शोथ तथा लालिमा दूर होते हैं॥४०॥

अन्ये उपायाः ।

तरुस्थविद्धामलकरसः सर्वाक्षिरोगनुत् ।
पुराणं सर्वथा सर्पि. सर्वनेत्रामयापहम् ॥ ४१ ॥
अयमेव विधिः सर्वो मन्थादिष्वपि शस्यते ।
अशान्तौ सर्वथा मन्थे भ्रुवोरुपरि दाहयेत् ॥ ४२ ॥

पेडसे तोडे ताजे आवलेका रस समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । तथा पुराना घी समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । यही सब विधि मन्थादिमे करनी चाहिये, यदि मन्थ शात न हो तो भौंके ऊपर दागना चाहिये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥

नेत्रपाकचिकित्सा ।

जलौक'पातनं शस्तं नेत्रपाके विरेचनम् ।
शिराव्यधं वा कुर्वीत सेका लेपाश्च शुक्रवत् ॥ ४३॥

नेत्रपाकमे जोंक लगाना, विरेचन, शिराव्यध करना चाहिये तथा शुक्रके समान लेप व सेक करना चाहिये४३

विभीतकादिक्वाथः ।

विभीतकशिवाधात्रीपटोलारिष्टवासकैः ।
क्वाथो गुग्गुलुना पेय शोथशूलाक्षिपाकहा ॥ ४४ ॥
पुष्पं च सव्रणं शुक्रं रागादींश्चापि नाशयेत् ।
एतैश्चापि घृत पक्वं रोगांस्ताश्च व्यपोहति ॥ ४५ ॥

बहेडा, हर्र, आवला, परवल, नीमकी छाल व अडूसाके क्वाथमे गुग्गुलु मिलाकर पीनेसे सूजन तथा दर्द तथा नेत्रपाक, फूली, व्रणयुक्त सूजन लालिमा आदि नष्ट होती है तथा इन्हींसे पकाया घी भी उन रोगोंको नष्ट करता है ॥ ४४ ॥ ४५ ॥

वासकादिक्वाथः ।

आटरूपाभयानिम्बधात्रीमुस्ताक्षकूलकैः ।
रक्तस्रावं कफं हन्ति चक्षुष्यं वासकादिकम्॥४६ ॥

अडूसा, हर्र, नीमकी छाल, आंवला, नागरमोथा, बहेडा, परवलका क्वाथ रक्तस्राव व कफको नष्ट करता तथा नेत्रोंके लिये हितकर है ॥ ४६ ॥

बृहद्वासादिः ।

वासा घनं निम्बपटोलपत्रं
तिक्तामृताचन्दनवत्सकत्वक् ।
कलिङ्गदार्वीदहनं च शुण्ठी-
भूनिम्बधात्र्याभयाविभीतम् ॥ ४७ ॥
श्यामायवक्राथमथाष्टभागं
पिबेदिमं पूर्वदिने कषायम् ।

तैमिर्यकण्डूपटलार्बुदं च
शुक्रं निहन्त्याद्व्रणमव्रणं च ॥ ४८ ॥
पीलुं च काचं च महारजश्च
नक्तान्ध्यरागं श्वयथुं सशूलम् ।
निहन्ति सर्वान्नयनामयांश्च
वासादिरेष प्रथितप्रभावः ॥ ४९ ॥

अडूसा, नागरमोथा, नीमकी पत्ती, परवलकी पत्ती, कुटकी, गुर्च, चन्दन, कुडेकी छाल, इन्द्रयव, दारुहल्दी चीता, सोंठ, चिरायता, आंवला, बडी हर्र, बहेडा, निशोथ व यवका अष्टमांश शेष क्वाथ प्रातःकाल पीना चाहिये । यह तिमिररोग खुजली, पटल, अर्बुद, सव्रण, अव्रण, शुक्र, पीलु, काच, धूलिपूर्णता, रतौन्धी, लालिमा, सूजन, शूल, यहांतक कि समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । यह वासादि प्रसिद्ध प्रभाववाला है ॥ ४७-४९ ॥

त्रिफलाक्वाथः ।

पथ्यास्तिस्रो विभीतक्यः षड् धात्र्यो द्वादशैव तु ।
प्रस्थार्धे सलिले क्वाथमष्टभागावशेषितम् ॥ ५० ॥
पीत्वाभिष्यन्दमास्रावं रागञ्च तिमिरं जयेत् ॥ ५१॥
संरम्भरागशूलाश्रुनाशनं दृक्प्रसादनम् ।

हर्र ३, बहेडे ६, आंवले १२, जल ६४ तो० मे पकाना चाहिये । ८ तोला बाकी रहनेपर उतार मल छानकर पीनेसे अभिष्यन्द, आस्राव, लालिमा व तिमिरको नष्ट करता है तथा शोथ शूल आदिको नष्ट कर दृष्टिको स्वच्छ करता है ॥ ५० ॥ ५१ ॥-

आगन्तुज चिकित्सा ।

नेत्रे त्वभिहते कुर्याच्छीतमाश्च्योतनादिकम् ॥ ५२॥
दृष्टिप्रसादजननं विधिमाशु कुर्यात्
स्निग्धैर्हिमैश्च मधुरैश्च तथा प्रयोगैः ।
स्वेदाग्निधूपभयशोकरुजाभितापै-
रभ्याहतामपि तथैव भिषक्चिकित्सेत् ॥ ५३ ॥
आगन्तुदोषं प्रसमीक्ष्य कार्यं
वक्त्रोष्मणा स्वेदितमादितस्तु ।
आश्च्योतनं स्त्रीपयसा च सद्यो
यच्चापि पित्तक्षतजापहं स्यात् ॥ ५४ ॥

नेत्रमें चोट लग जानेपर ठंढी आश्च्योतनादि चिकित्सा करनी चाहिये । तथा दृष्टि स्वच्छ करनेवाली विधि शीघ्र ही चिकने शीतल तथा मधुर पदार्थोंसे करनी चाहिये । इसी प्रकार स्वेद, अग्नि, धूप, भय, शोक, पीडा व जलनसे पीडित नेत्रोंकी भी चिकित्सा करनी चाहिये । आगंतुकमें पहिले मुखकी गरमीसे स्वेदन कर दोषानुसार चिकित्सा करनी चाहिये । स्त्रीके दूधसे आश्च्योतन करना चाहिये तथा सद्यः पित्तज व्रणकी चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ५२-५४ ॥

सूर्याद्युपहतदृष्टिचिकित्सा ।

सूर्योपरागानलविद्युदादि-
विलोकनेनोपहतेक्षणस्य ।
सन्तर्पणं स्निग्धहिमादिकार्यं
सायं निषेव्यास्त्रिफलाप्रयोगाः ॥ ५५ ॥

सूर्यग्रहण, अग्नि, बिजली आदिके देखनेसे उपहत दृष्टिवालेको चिकने, शीतल, सन्तर्पण प्रयोग करने चाहिये तथा सायङ्काल त्रिफला क्वाथके द्वारा आंखोंको धो डाले अथवा सेक करे ॥ ५५ ॥

निशादिपूरणम् ।

निशाब्दत्रिफलादार्वीसितामधुकसंयुतम् ।
अभिघाताक्षिशूलघ्नं नारीक्षीरेण पूरणम् ॥ ५६ ॥
इत्कटाङ्कुरजस्तद्वत्स्वरसो नेत्रपूरणम् ।

हल्दी, नागरमोथा, त्रिफला, दारुहल्दी, मिश्री व मौरेठीको स्त्रीके दूधमे पीसकर नेत्रमे भरनेसे अभिघात व अक्षिशूल शान्त होता है । इसी प्रकार रोहिषघासका स्वरस लाभ करता है ॥ ५६ ॥-

नेत्राभिघातघ्नं घृतम् ।

आजं घृतं क्षीरपात्रं मधुकं चोत्पलानि च ॥ ५७ ॥
जीवकर्षभकौ चापि पिष्ट्वा सर्पिर्विपाचयेत् ।
सर्वनेत्राभिघातेषु सर्पिरेतत्प्रशस्यते ॥ ५८ ॥

बकरीका घृत ६४ तोला, दूध ३ सेर १६ तो०, मौरेठी, नीलोफर, जविक, व ऋषभक इन चारोंका कल्क १६ तो० मिलाकर सिद्ध घृत समस्त नेत्राभिघातोंको शान्त करता है ॥ ५७ ॥ ५८ ॥

शुष्कपाकघ्नमञ्जनम् ।

सैन्धवं दारु शुण्ठी च मातुलुङ्गरसो घृतम् ।
स्तन्योदकाभ्यां कर्तव्यं शुष्कपाके तदञ्जनम् ॥ ५९ ॥

सेधानमक, देवदारु, सोंठ, बिजौरे निम्बूका रस, घी, स्त्रीदुग्ध और जल मिला अञ्जन बनाकर शुष्कपाकमे लगाना चाहिये ॥ ५९ ॥

अन्यतोवातमारुतपर्ययचिकित्सा ।

वाताभिष्यन्दवच्चान्यतोवाते मारुतपर्यये ।
पूर्वभुक्तं हितं सर्पिः क्षीरं चाप्यथ भोजने ॥ ६० ॥

वृक्षादन्यां कपित्थे च पञ्चमूले महत्यपि ।
सक्षीरं कर्कटरसे सिद्धं चापि पिबेद् घृतम् ॥ ६१ ॥

अन्यतोवात और वातपर्ययमें वाताभिष्यन्दके समान चिकित्सा करनी चाहिये तथा भोजनके पहिले घी पीना और भोजनके साथ दूध पीना चाहिये। तथा वान्दा, कैथा, महत्पञ्चमूल और काकडाशिंगी के क्वाथ तथा दूधके साथ सिद्ध घृत पीना चाहिये॥६०॥६१

शिराव्यधव्यवस्था ।

अभिष्यन्दमधीमन्थं रक्तोत्थमथ वार्जुनम् ।
शिरोत्पातं शिराहर्षमन्याश्चाक्षिभवान्गदान् ॥ ६२ ॥
स्निग्धस्याज्येन कौम्भेन शिराव्यधैः शमं नयेत् ।

अभिष्यन्द, अधिमन्थ अथवा रक्तोत्थ अर्जुन तथा शिरोत्पात, शिराहर्ष तथा और भी नेत्रके रोगोंमें दश वर्षके पुराने घीसे स्नेहन कराकर शिराव्यधसे शान्त करना चाहिये ॥ ६२ ॥–

अम्लाध्युषितचिकित्सा ।

अम्लाध्युषितशान्त्यर्थं कुर्याल्लेपान्सुशीतलान् ॥ ६३ ॥
तैन्दुकं त्रैफलं सर्पिर्जीर्णं वा केवलं हितम् ।
शिराव्यधं विना कार्यः पित्तस्यन्दहरो विधिः ॥ ६४ ॥

अम्लाध्युषितकी शान्तिके लिये शीतल लेप करना चाहिये तथा तेन्दूसे सिद्ध घृत अथवा त्रिफलासे सिद्ध घृत अथवा केवल पुराना घृत लगाना चाहिये तथा शिराव्यधके सिवाय समस्त पित्तस्यन्दनाशक विधिका सेवन कराना चाहिये ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

शिरोत्पातचिकित्सा ।

सर्पिः क्षौद्राञ्जनं च स्याच्छिरोत्पातस्य भेषजम् ।
तद्वत्सैन्धवकासीसं स्तन्यपिष्टं च पूजितम् ॥ ६५ ॥

घी और शहदका अञ्जन अथवा स्त्रीदुग्धमें पीसा हुआ सेंधानमक व कासीस शिरोत्पातकी चिकित्सा है ॥ ६५ ॥

शिराहर्षचिकित्सा ।

शिराहर्षेऽञ्जनं कुर्यात्फाणितं मधुसंयुतम् ।
मधुना तार्क्ष्यशैलं वा कासीसं वा समाक्षिकम् ॥ ६६ ॥

शिराहर्षमें शहदके साथ राब अथवा शहदके साथ रसौंत अथवा शहदके साथ कासीस लगाना चाहिये॥६६॥

व्रणशुक्रचिकित्सा ।

व्रणशुक्रप्रशान्त्यर्थं षडङ्गं गुग्गुलुं पिबेत् ॥
कतकस्य फलं शङ्खं तिन्दुकं रूप्यमेव च ॥ ६७ ॥
कांस्ये निघृष्टं स्तन्येन क्षतशुक्रार्तिरागजित् ।
चन्दनं गैरिकं लाक्षामालतीकलिकासमा ॥ ६८ ॥
व्रणशुक्रहरी वर्तिः शोणितस्य प्रसादनी ।
शिरया वा हरेद्रक्तं जलौकोभिश्च लोचनात् ॥ ६९ ॥
अक्षमज्जाञ्जनं सायं स्तन्येन शुक्रनाशनम् ।
एकं वा पुण्डरीकं च छागीक्षीरावसेचितम् ॥ ७० ॥
रागाश्रुवेदना हन्यात्क्षतपाकात्ययाजकाः ।
तुत्थकं वारिणा युक्तं शुक्रं हन्त्यक्षिपूरणात् ॥ ७१ ॥

व्रणशुक्रकी शान्तिके लिये षडङ्गगुग्गुलु पीना चाहिये तथा निर्मली, शंख, तेन्दू और चान्दीका भस्म इनको कासेके वर्तनमें दूधके साथ घिसकर लगाना चाहिये। इससे व्रणशुक्र, पीडा व लालिमा मिटती है। व चन्दन, गेरू, लाख तथा चमेलीकी कली समान भाग ले वर्त्ती बना नेत्रमें लगानेसे व्रणशुक्र नष्ट करती तथा नेत्र स्वच्छ करती है। अथवा फस्त खोलकर या जोंक लगाकर नेत्रसे रक्त निकालना चाहिये। तथा सायङ्काल बहेडेकी मींगीको स्त्रीदुग्धमें घिसकर आञ्जनेसे शुक्र नष्ट होता है। तथा केवल कमलके पुष्पको बकरीके दूधसे सिक्तकर सिञ्चन करनेसे लालिमा, आंसू, पीडा, व्रण, पाकात्यय तथा अजका आदिको नष्ट करता है। अथवा जलके साथ तूतियाको घिसकर नेत्रमें छोड़नेसे शुक्र नष्ट होता है ॥ ॥ ६७–७१ ॥

फेनादिवर्तिः ।

समुद्रफेनदक्षाण्डत्वक्सिन्धूत्थैः समाक्षिकैः ।
शिग्रुबीजयुतैर्वर्तिः शुक्रघ्नी शिग्रुवारिणा ॥ ७२ ॥

समुद्रफेन, मुर्गीके अण्डेका छिल्का, सेंधानमक, शहद और सहिजनके बीजका चूर्ण कर सहिजनके रससे बनायी वर्ति शुक्रको नष्ट करती है ॥ ७२ ॥

आश्च्योतनम् ।

धात्रीफलं निम्बपटोलपत्रं
यष्ट्याह्वलोध्रं खदिरं तिलाश्च ।
क्वाथः सुशीतो नयने निषिक्तः
सर्वप्रकारं विनिहन्ति शुक्रम् ॥ ७३ ॥

आंवला, नीमकी पत्ती, परवलकी पत्ती, मौरेठी, लोध, कत्था व तिलके शीतकषायको नेत्रमें छोड़नेसे सब प्रकारके शुक्र नष्ट होते हैं ॥ ७३ ॥

पुष्पचिकित्सा ।

क्षुण्णपुन्नागपत्रेण परिभावितवारिणा ।
श्यामाक्वाथाम्बुना वाथ सेचनं कुसुमापहम् ॥ ७४ ॥

दक्षाण्डत्वक्छिलाशंखकाचचन्दनगैरिकैः ।
तुल्यैरञ्जनयोगोऽयं पुष्पार्मादिविलेखनः ॥ ७५ ॥
शिरीषबीजमरिचपिप्पलीसैन्धवैरपि ।
शुक्रे प्रघर्षणं कार्यमथवा सैन्धवेन च ॥ ७६ ॥

कुटे पुन्नागके पत्तोंसे भावित जलसे अथवा निसोथके काथसे सिञ्चन करनेसे फूली कटती है तथा मुरगीके अण्डेका छिलका, मैनशिल, शंख, काच, चदन व गेरू समान भाग ले अञ्जन बनाकर लगानेसे फूली, अर्म आदि कटते हैं तथा सिरसाके बीज, मिरच, छोटी पीपल व सेधानमककी वर्तीसे अथवा केवल सेधानमकसे फूलीमें घिसना चाहिये ॥ ७४–७६ ॥

करञ्जवर्तिः।

बहुशः पलाशकुसुमस्वरसे परिभाविता जयत्यचिरात् ।
नक्ताह्वबीजवर्तिः कुसुमचयं दृक्षु चिरजमपि ॥ ७७ ॥

कञ्जाके बीजोंके चूर्णमें ढाकके फूलोंके स्वरससे यथाविधि अनेक भावना देकर बनायी गयी वर्ति पुरानी और बड़ी फूलीको भी नष्ट करती हैं ॥ ७७ ॥

सैन्धवादिवर्तिः।

सैन्धवत्रिफलाकृष्णाकटुकाशङ्खनाभयः ।
सताम्ररजसो वर्तिः पिष्टा शुक्रविनाशिनी ॥ ७८ ॥

सेधानमक, त्रिफला, छोटी पीपल, कुटकी, शंखनाभी और ताम्रभस्म इन ओषधियोंके चूर्णको पानीके साथ घोटकर बनायी वत्तीको लगानेसे फूली नष्ट होती है ॥ ७८ ॥

चन्दनादिचूर्णाञ्जनम्।

चन्दनं सैन्धवं पथ्यापलाशतरुशोणितम् ।
क्रमवृद्धमिदं चूर्णं शुक्रार्मादिविलेखनम् ॥ ७९ ॥

चन्दन, सेधानमक, छोटी हर्रें, ढाकका गोंद इनके उत्तरोत्तर भागवृद्ध चूर्णका अञ्जन फूली तथा अर्म आदिको काटता है ॥ ७९ ॥

दन्तवर्तिः।

दन्तैर्हस्तिवराहोष्ट्रगवाश्वाजखरोद्भवैः ।
सशंखमौक्तिकाम्भोधिफेनैर्मरिचपादिकैः ।
क्षतशुक्रमपि व्याधिं दन्तवर्तिर्निवर्तयेत् ॥ ८० ॥

हाथी, सुअर, ऊँट, घोड़ा, बकरी और गधाके दाँत, शंख, मोती व समुद्रफेन प्रत्येक समान भाग तथा सबसे चतुर्थांश मिर्च मिला घोट वत्ती बनाकर आँखमें लगानेसे व्रणशुक्र भी नष्ट होता है ॥ ८० ॥

शंखाद्यञ्जनम्।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्ततोऽर्धेन मनःशिला ।
मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन सैन्धवम् ॥ ८१ ॥
एतच्चूर्णाञ्जनं श्रेष्ठं शुक्रयोस्तिमिरेषु च ।
पिच्चटे मधुना योज्यमर्बुदे मस्तुना तथा ॥ ८२ ॥

शंख ४ भाग, मैनसिल २ भाग, कालीमिर्च १ भाग तथा सेंधानमक आधा भाग इनका चूर्णाञ्जन बनाकर लगानेसे शुक्र तथा तिमिर नष्ट होता है। इसका पिच्चिटमें शहदके साथ तथा अर्बुदमें दहीके तोडके साथ प्रयोग करना चाहिये ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

अन्यान्यञ्जनानि।

ताप्यं मधुकसारो वा बीजं चाक्षस्य सैन्धवम् ।
मधुनाञ्जनयोगाः स्युश्चत्वारः शुक्रशान्तये ॥ ८३ ॥
वटक्षीरेण संयुक्तं श्लक्ष्णं कर्पूरजं रजः ।
क्षिप्रमञ्जनतो हन्ति शुक्रं चापि घनोन्नतम् ॥ ८४ ॥
त्रिफलामज्जमञ्जल्यामधुकं रक्तचन्दनम् ।
पूर्णं मधुसंयुक्तं क्षतशुक्राजकाश्रुजित् ॥ ८५ ॥

स्वर्णमाक्षिक, मौरेठी, बहेडेकी मींगी अथवा सेंधानमक इनमेंसे किसी एकके चूर्णको शहदमें मिलाकर लगानेसे फूली शान्त होती है। इसी प्रकार बरगदके दूधके साथ कपूरका चूर्ण लगानेसे कड़ी व ऊँची फूली मिटती है तथा त्रिफलाकी गुठलियाँ, गोरोचन, मौरेठी व लाल चन्दन के चूर्णको शहदके साथ आँखमें लगानेसे व्रणशुक्र, अजका और अश्रु शान्त होते हैं ॥ ८३–८५ ॥

क्षाराञ्जनम्।

तालस्य नारिकेलस्य तथैवारुष्करस्य च ।
करीरस्य च वंशानां कृत्वा क्षारं परिस्रुतम् ॥ ८६ ॥
करभास्थिकृतं चूर्णं क्षारेण परिभावितम् ।
सप्तकृत्वोऽष्टकृत्वो वा श्लक्ष्णं चूर्णं तु कारयेत् ॥ ८७ ॥
एतच्छुक्रेष्वसाध्येषु कृष्णीकरणमुत्तमम् ।
यानि शुक्राणि साध्यानि तेषां परममञ्जनम् ॥ ८८ ॥

ताल, नारियल, भिलावाँ, करीर तथा बाँस प्रत्येकका क्षार पतला बनाकर उसीसे हाथीकी हड्डीके चूर्णको ७ या आठ भावना देकर महीन चूर्ण कर लेना चाहिये। यह असाध्य शुक्रोंको काला कर देता तथा साध्यको अच्छा कर देता है ॥ ८६–८८ ॥

पटोलाद्यं घृतम्।

पटोलं कटुकां दार्वीं निम्बं वासां फलत्रिकम् ।
दुरालभां पर्पटकं त्रायन्तीं च पलोन्मिताम् ॥ ८९ ॥

प्रस्थमामलकाना च क्वाथयेज्जलद्रोणेऽम्भसि ।
पादशेषे रसे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९० ॥
कल्कैर्भूनिम्बकुटजमुस्तयष्ट्याह्वचन्दनैः ।
सपिप्पलीकैस्तत्सिद्धं चक्षुष्यं शुक्रयोर्हितम् ॥ ९१ ॥
घ्राणकर्णाक्षिवर्त्मत्वङ्मुखरोगव्रणापहम् ।
कामलाज्वरवीसर्पगण्डमालाहरं परम् ॥ ९२ ॥

परवल, कुटकी, दारुहल्दी, नीम, अडूसा, त्रिफला, यवासा, पित्तपापडा, तथा त्रायमाण प्रत्येक एक पल, आँवला १ प्रस्थ, जल १ द्रोणमें पकाना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान एक प्रस्थ घी तथा चिरायता, कुडा, नागरमोथा, मौरेठी, चन्दन व छोटी पीपलका कल्क छोडकर पकाना चाहिये । यह घृत नेत्रोंको बलदायक, शुक्रनाशक, नासा, कान, नेत्र, बिन्नियाँ व त्वचारोग, मुखरोग और व्रणोंको नष्ट करता तथा कामला, ज्वर, विसर्प व गण्डमालाको हरता है ॥ ८९–९२ ॥

कृष्णादितैलम् ।

कृष्णाविडङ्गमधुयष्टिकसिन्धुजन्म-
विश्वौषधैः पयसि सिद्धमिदं छगल्याः ।
तैलं नृणां तिमिरशुक्रशिरोऽक्षिशूल-
पाकात्ययाञ्जयति नस्यविधौ प्रयुक्तम् ॥ ९३ ॥

छोटी पीपल, वायविडंग, मौरेठी, सेंधानमक व सोंठ के कल्क और बकरीके दूधमें सिद्ध तैलका नस्य देनेसे तिमिर, शुक्र, शिर व नेत्रका शूल तथा पाकात्ययादि नष्ट होते हैं ॥ ९३ ॥

अजकाचिकित्सा ।

अजका पार्श्वतो विद्ध्वा सूच्या विस्राव्य चोदकम् ।
व्रणं गोमयचूर्णेन पूरयेत्सर्पिषा सह ॥ ९४ ॥
सैन्धवं वाजिपादं च गोरोचनसमन्वितम् ।
शेलुत्वग्रससंयुक्तं पूरणं चाजकापहम् ॥ ९५ ॥

अजकाको बगलसे वेध जल निकालकर उस घावमें घीसे मिले गोबरके चूर्णको भरना चाहिये तथा सेंधानमक, सफेद गोकर्णी तथा गोरोचनको लसोढेकी छालके स्वरसके साथ घोटकर आँखोंमें डालनेसे अजका नष्ट होती है ॥ ९४ ॥ ९५ ॥

शशकघृतद्वयम् ।

शशकस्य शिरः कल्के शेपाङ्कक्वथिते जले ।
घृतस्य कुडवं पक्वं पूरणं चाजकापहम् ॥ ९६ ॥
शशकस्य कषाये च सर्पिषः कुडवं पचेत् ।
यष्टीप्रपौण्डरीकस्य कल्केन पयसा समम् ॥ ९७ ॥
छगल्याः पूरणाच्छुक्रक्षतपाकात्ययाजकाः ।
हन्ति शङ्खशूलं च दाहरोगानशेषतः ॥ ९८ ॥

खरगोशके शिरके कल्क तथा शेपाङ्कके क्वाथमें सिद्ध १६ तोला घृत आँखोंमें छोड़नेसे अजका नष्ट होती है । इसी प्रकार खरगोशके काढे और मौरेठी व पुण्डरियाके कल्क तथा बकरीके दूध समान भागके साथ सिद्ध १६ तोले घीको आँखोंमें छोड़नेसे शुक्रव्रण, पाकात्यय, अजका, भौंहों तथा शंखका शूल तथा समग्र जलन व लालिमा नष्ट होती है ॥ ९६–९८ ॥

पथ्यम् ।

त्रिफला घृतं मधु यवाः पादाभ्यङ्गः शतावरी मुद्गाः ।
चक्षुष्यः संक्षेपात् वर्गः कथितो भिषग्भिरयम् ॥ ९९ ॥

त्रिफला, घी, शहद, यव, पैरोंमें मालिश, शतावरी, व मूँगको संक्षेपतः वैद्योंने नेत्रोंके लिये हितकर बताया है ॥ ९९ ॥

तिमिरे त्रिफलाविधिः ।

लिह्यात्सदा वा त्रिफलां सुचूर्णितां
मधुप्रगाढां तिमिरेऽथ पित्तजे ।
समीरजे तैलयुतां कफात्मके
मधुप्रगाढां विदधीत युक्तितः ॥ १०० ॥
कल्कः क्वाथोऽथवा चूर्णं त्रिफलाया निषेवितम् ।
मधुना हविषा वापि समस्ततिमिरान्तकृत् ॥ १०१ ॥
यस्त्रैफलं चूर्णमपथ्यवर्जी
सायं समश्नाति हविर्मधुभ्याम् ।
स मुच्यते नेत्रगतैर्विकारै-
र्भृत्यैर्यथा क्षीणधनो मनुष्यः ॥ १०२ ॥
सघृतं वा वराक्वाथं शीलयेत्तिमिरामयी ।
जाता रोगा विनश्यन्ति न भवन्ति कदाचन ।
त्रिफलायाः कषायेण प्रातर्नयनधावनात् ॥ १०३ ॥

पित्तज तिमिरमें त्रिफलाके चूर्णको शहदके साथ, वातजमें तैलके साथ तथा कफजमें शहदके साथ चाटना चाहिये । इसी प्रकार त्रिफलाके कल्क, क्वाथ अथवा चूर्णको शहद अथवा घीकेसाथ चाटनेसे समस्त तिमिर-रोग नष्ट होते हैं । जो मनुष्य अपथ्यको त्यागकर सायंकाल त्रिफलाके चूर्णको घी व शहदके साथ सेवन करता है उसके नेत्ररोग इस प्रकार नष्ट होते हैं जैसे धन न रहनेपर नौकर छोड़कर चले जाते हैं ।

अथवा घृतके साथ त्रिफलाके क्वाथको पीना चाहिये इससे उत्पन्न रोग नष्ट हो जाते हैं और फिर कभी नहीं होते। इसी प्रकार त्रिफलाके काढेसे नेत्रको प्रातःकाल धोनेसे लाभ होता है ॥ १००-१०३ ॥

जलप्रयोगः ।

जलगण्डूषैः प्रातर्बहुशोऽम्भोभिः प्रपूर्य मुखरंध्रम् ।
निर्दयमुक्षन्नक्षि क्षपयति तिमिराणि ना सद्यः ॥१०४॥
भुक्त्वा पाणितलं घृष्ट्वा चक्षुषोर्यत्प्रदीयते ।
अचिरेणैव तद्वारि तिमिराणि व्यपोहति ॥ १०५ ॥

प्रातःकाल मुखमें जल भरकर वार बार आँखें धोनेसे तिमिर नष्ट होता है । इसी प्रकार भोजन करनेके अनन्तर जल हाथोंमें लेकर आँखोंको धोनेसे तिमिर नष्ट होते हैं ॥ १०४ ॥ १०५ ॥

सुखावतीवर्तिः ।

कतकस्य फलं शङ्खं त्र्यूषणं सैन्धवं सिता ।
फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला ।
कुक्कुटाण्डकपालानि वर्तिरेषा व्यपोहति ॥ १०६ ॥
तिमिरं पटलं काचमर्म शुक्रं तथैव च ।
कण्डूक्लेदार्बुदं हन्ति मलं चाशु सुखावती ॥ १०७ ॥

निर्मली, शख, त्रिकटु, सेंधानमक, मिश्री, समुद्रफेन रसौंत, शहद, वायविडंग, मनशिल व मुर्गीके अण्डेके छिल्कोंके चूर्णको जलमें घोटकर बनायी गयी वर्ति तिमिर, पटल, काच, अर्म, फूली, खुजली, मवाद तथा अर्बुद और कीचड़को दूर करती है ॥ १०६ ॥ १०७ ॥

चन्द्रोदयावर्तिः ।

हरीतकी वचा कुष्ठं पिप्पली मरिचानि च ।
बिभीतकस्य मज्जा च शङ्खनाभिर्मनःशिला ॥१०८॥
सर्वमेतत्समं कृत्वा छागीक्षीरेण पेषयेत् ।
नाशयेत्तिमिरं कण्डूं पटलान्यर्बुदानि च ॥ १०९ ॥
अधिकानि च मांसानि यश्च रात्रौ न पश्यति ।
अपि द्विवार्षिकं पुष्पं मासेनैकेन साधयेत् ॥ ११० ॥
वर्तिश्चन्द्रोदया नाम नृणां दृष्टिप्रसादनी ॥ १११ ॥

हर्र, वच, कूठ, छोटी पीपल, कालीमिर्च, बहेड़ेकी मींगी, शखनाभि व मैनशिल यह सब समान भाग ले बकरीके दूधसे पीसकर बनायी गयी बत्ती तिमिर, खुजली, पटलदोष, अर्बुद, अधिकमांस, रतौंधी, तथा दोवर्षकी फूलीको एक मासमें दूर करती है। यह चन्द्रोदयावर्ति मनुष्योंकी दृष्टिको स्वच्छ रखती है ॥ १०८-१११ ॥

हरीतक्यादिवर्तिः ।

हरीतकी हरिद्रा च पिप्पल्यो लवणानि च ।
कण्डूतिमिरजिद्वर्तिर्न क्वचित्प्रतिहन्यते ॥ ११२ ॥

हर्र, हल्दी, छोटी पिप्पली तथा पांचों नमक मिलाकर बनायी गयी वर्ति खुजली व तिमिरको नष्ट करती है कहींपर भी व्यर्थ नहीं जाती ॥ ११२ ॥

कुमारिकावर्तिः ।

अशीतिस्तिलपुष्पाणि षष्टिः पिप्पलितण्डुलाः ।
जातीकुसुमपञ्चाशन्मरिचानि च षोडश ।
एषा कुमारिका वर्तिर्गतं चक्षुर्निवारयेत् ॥ ११३ ॥

तिलके फूल ८०, छोटी पीपलके दाने ६०, चमेलीके फूल ५०, काली मिर्च १६ इनकी बनायी वर्ति कुमारिका कही जाती है यह गत चक्षुको भी पुनः शक्ति सम्पन्न करती है ॥ ११३ ॥

त्रिफलादिवर्तिः ।

त्रिफलाकुक्कुटाण्डत्वक्कासीसमयसो रजः ।
नीलोत्पलं विडङ्गानि फेनं च सरितां पतेः ॥ ११४ ॥
आजेन पयसा पिष्ट्वा भावयेत्ताम्रभाजने ।
सप्तरात्रं स्थितभूयः पिष्ट्वा क्षीरेण वर्तयेत् ॥ ११५ ॥
एषा दृष्टिप्रदा वर्तिरन्धस्याभिन्नचक्षुषः ।

त्रिफला, मुर्गीके अण्डेका छिल्का, काशीस, लौहभस्म नीलोफर, वायविडंग तथा समुद्रफेनको बकरीके दूधसे ७ दिनतक ताम्रके पात्रमें भावना देकर फिर दूधसे ही पीसकर बनायी गयी वर्ति जिसे दिखायी नहीं पड़ता पर आँख बैठी नहीं है उसे दृष्टिदान करती है ॥ ११४ ॥ ११५ ॥-

अन्या वर्तयः ।

चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुशोणितैः ॥ ११६ ॥
जलपिष्टैरियं वर्तिरशेषतिमिरापहा ।
निशाद्वयाभयामांसीकुष्ठकृष्णाविचूर्णिता ॥ ११७ ॥
सर्वनेत्रामयान्हन्यादेतत्सौगतमञ्जनम् ।
व्योषोत्पलाभयाकुष्ठतार्क्ष्यैर्वर्तिः कृता हरेत् ॥ ११८ ॥
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरार्माश्रुनिस्रुतिम् ।
त्र्यूषणं त्रिफलावक्रसैन्धवालमनःशिलाः ।
क्लेदोपदेहकण्डूघ्नी वर्तिः शस्ता कफापहा ॥ ११९ ॥
एकगुणा मागधिका
द्विगुणा च हरीतकी सलिलपिष्टा ।
वर्तिरियं नयनसुखा-
र्मतिमिरपटलकाचाश्रुहरी ॥ १२० ॥

चन्दन, त्रिफला, सुपारी तथा ढाकके गोदको जलमें पीसकर बनायी वर्ति समस्त तिमिरोंको नष्ट करती है। इसी प्रकार हल्दी, दारुहल्दी, बडी हर्रका छिल्का, जटामांसी, कूट व छोटी पीपलके चूर्णको आखमें लगानेसे समस्त नेत्ररोग नष्ट होते हैं। तथा त्रिकटु, नीलोफर, हर्र, कूठ, रसौंतकी वत्ती अर्बुद, पटल, काच, तिमिर, अर्म और अश्रुप्रवाहको नष्ट करती है। तथा त्रिकटु, त्रिफला, तगर, सेंधानमक, हरताल व मनशिलसे की गई बत्ती मवाद, लेप और खुजलीको नष्ट करती तथा कफनाशक है। तथा छोटी पीपल १ भाग, हर्र, २ भाग दोनोंको जलमें पीसकर बनायी गयी वत्ती नेत्रोंको सुख देती है। अर्म, तिमिर, पटल, काच आंसुओंको शान्त करती है॥ ११६-१२०॥

चन्द्रप्रभावर्तिः।

अञ्जनं श्वेतमरिचं पिप्पली मधुयष्टिका।
विभीतकस्य मध्यं तु शङ्खनाभिर्मनःशिला॥१२१॥
एतानि समभागानि अजाक्षीरेण पेषयेत्।
छायाशुष्कां कृतां वर्तिं नेत्रेषु च प्रयोजयेत्॥१२२॥
अर्बुदं पटलं काचं तिमिरं रक्तराजिकाम्।
अधिमांसं मलं चैव यश्च रात्रौ न पश्यति॥१२३॥
वर्तिश्चन्द्रप्रभा नाम जातान्ध्यमपि शोधयेत्॥१२४॥

काला सुरमा, सहिजनके बीज, छोटी पीपल, मौरेठी, बहेडेकी गुठली, शंखनाभी, मैनशिल इनका समान भाग ले बकरीके दूधमें पीस गोलीको बनाकर छायामें सुखाकर आंखोंमें लगाना चाहिये। यह अर्बुद, पटल काच, तिमिर, लाल रेखाएँ, अधिमास, मल, रतौंधी और जन्मान्ध्यको भी नष्ट करती है॥ १२१-१२४॥

श्रीनागार्जुनीयवर्तिः।

त्रिफलाव्योषसिन्धूत्थयष्टीतुत्थरसाञ्जनम्।
प्रपौण्डरीकं जन्तुघ्नं लोध्रं ताम्रं चतुर्दश॥१२५॥
द्रव्याण्येतानि संचूर्ण्य वर्तिः कार्या नभोऽम्बुना।
नागार्जुनेन लिखिता स्तम्भे पाटलिपुत्रके॥१२६॥
नाशनी तिमिराणां च पटलानां तथैव च।
सद्यः प्रकोपं स्तन्येन स्त्रिया विजयते ध्रुवम्॥१२७॥
किंशुकस्वरसेनाथ पिल्लपुष्पकरक्तताः।
अञ्जनाल्लोध्रतोयेन चासन्नतिमिरं जयेत्॥१२८॥
चिरसच्छादिते नेत्रे बस्तमूत्रेण संयुता।
उन्मीलयत्यकृच्छ्रेण प्रसादं चाधिगच्छति॥१२९॥

सोंठ, मिर्च, पीपल, आवला, हर्र, बहेडा, सेंधानमक, मौरेठी, तूतिया, रसौंत, पुण्डरिया, बायविडंग, लोध, और ताम्र ये चौदह ओषधिया समान भाग ले चूर्णकर आकाशसे वर्षे जलसे वत्ती बना लेनी चाहिये। यह वत्ती नागार्जुनने पाटलिपुत्रमे खम्भेमे लिखी है। यह तिमिर और पटलको नष्ट करती है, जल्दीके प्रकोपअभिष्यन्दको स्त्रीके दूधसे जीतती है। ढाकके स्वरससे पिल्ल, फूली और लालिमाको जीतती है। लोधके जलसे तिमिरको नष्ट करती है, अधिक समयसे बन्द नेत्रमें बकरेके मूत्रके साथ लगानेसे सरलतासे खोलती और आंखोंको स्वच्छ बनाती है॥ १२५-१२९॥

पिप्पल्यादिवर्तिः।

पिप्पलीं सतगरोत्पलपत्रां
वर्तयेत्समधुकां सहरिद्राम्।
एतया सततमञ्जयितव्यं
यः सुपर्णसममिच्छति चक्षुः॥१३०॥

छोटी पीपल, तगर, नीलोफर, मौरेठी और हल्दीके चूर्णको जलमें पीसकर बनायी हुई वत्तीसे आजनेसे सुपर्णके सदृश दृष्टि होती है॥ १३०॥

व्योषादिवर्तिः।

व्योषायश्चूर्णसिन्धूत्थत्रिफलाञ्जनसंयुता।
गुडिकाजलपिष्टेयं कोकिला तिमिरापहा॥१३१॥

त्रिकटु, लोह चूर्ण, सेंधानमक, त्रिफला और अञ्जनके साथ बनायी गयी वत्ती तिमिरको नष्ट करती है इसे कोकिलावर्ती कहते हैं॥ १३१॥

अपरा व्योषादिः।

त्रीणि कटूनि करञ्जफलानि
द्वे च निशे सहसैन्धवकं च
बिल्वतरोर्वरुणस्य च मूलं
वारिचरं दशमं प्रवदन्ति॥१३२॥
हन्ति तमस्तिमिरं पटलं च।
पिच्चिटशुक्रमथार्जुनकं च
अञ्जनकं जनरञ्जनकं च
दृक्च न नश्यति वर्षशतं च॥१३३॥

त्रिकटु, कञ्जा, हल्दी, दारुहल्दी, सेन्धानमक, बेलकी छाल, वरुणकी छाल व शङ्खको पीस वर्ती बना आखमे लगानेसे अन्धेरापन, तिमिर, पटल, पिच्चिट, शुक्र व अर्जुन नष्ट होता है। यह अञ्जन मनुष्योंको प्रसन्न करता है। इससे दृष्टि १०० वर्षतक नहीं बिगड़ती १३२॥१३३

नीलोत्पलाद्यञ्जनम्।

नीलोत्पलं विडङ्गानि पिप्पली रक्तचन्दनम्।
अञ्जनं सैन्धवं चैव सद्यस्तिमिरनाशनम्॥ १३४॥

नीलोफर, वायविडंग, पीपल, लालचन्दन, अंजन और सेंधानमकका अञ्जन शीघ्र ही तिमिरको नष्ट करता है॥ १३४॥

पत्राद्यञ्जनम्।

पत्रगैरिककर्पूरयष्टीनीलोत्पलाञ्जनम्।
नागकेशरसंयुक्तमशेषतिमिरापहम्॥ १३५॥

तेजपात, गेरू, कपूर, मौरेठी, नीलोफर, सुर्मा व नागकेशरका अञ्जन समस्त तिमिरोंको नष्ट करता है॥ १३५॥

शंखाद्यञ्जनम्।

शङ्खस्य भागाश्चत्वारस्तदर्धेन मनःशिला।
मनःशिलार्धं मरिचं मरिचार्धेन पिप्पली॥ १३६॥
वारिणा तिमिरं हन्ति अर्बुदं हन्ति मस्तुना।
पिच्चिटं मधुना हन्ति स्त्रीक्षीरेण तदुत्तमम्॥ १३७॥

शंख ४ भाग, मनशिल २ भाग, मिर्च १ भाग व छोटी पीपल आधा भाग घोटकर जलके साथ लगानेसे तिमिर, दहीके तोडसे अर्बुद, शहदसे पिच्चिट और स्त्रीदुग्धसे फूलीको नष्ट करता है॥ १३६॥ १३७॥

हरिद्रादिगुटिका।

हरिद्रानिम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरिचानि च।
भद्रमुस्तं विडङ्गानि सप्तमं विश्वभेषजम्॥ १३८॥
गोमूत्रेण गुटी कार्या छागमूत्रेण चाञ्जनम्।
ज्वरांश्च निखिलान्हन्ति भूतावेशं तथैव च॥ १३९॥
वारिणा तिमिरं हन्ति मधुना पटलं तथा।
नक्तान्ध्यं भृङ्गराजेन नारीक्षीरेण पुष्पकम्।
शिशिरेण परिस्रावमर्बुदं पिच्चिटं तथा॥ १४०॥

हल्दी, नीमकी पत्ती, छोटी पीपल, काली मिर्च, नागरमोथा, वायविडङ्ग व सोठका चूर्ण गोमूत्रसे गोली बनानी चाहिये तथा बकरेके मूत्रसे आजना चाहिये। यह समस्त ज्वरों तथा भूतावेशको नष्ट करती है, जलसे तिमिरको शहदसे पटलको, भागरेसे रतौंधी स्त्रीदूधसे फूली और ठण्डे जलसे परिस्राव, अर्बुद तथा पिच्चिटको नष्ट करती है॥ १३८॥ १४०॥

गण्डूपदकज्जलम्।

सगृह्योपरतानलक्तकरसेनामृज्य गण्डूपदान्
लाक्षाराञ्जिततूलवर्तिनिहितान् यष्टीमधून्मिश्रितान्।
प्रज्वाल्योत्तमसर्पिषानलशिरासन्तापजं कज्जलं
दूरासन्ननिशान्ध्यसर्वतिमिरप्रध्वंसकृच्चोदितम्॥ १४१॥

मरे केंचुवोंको ले धो लाखके रसमें धो लाखसे रंगी रूईकी बत्तीमें मौरेठीके साथ लपेट घीसे तर कर अग्निसे जला कज्जल बनाना चाहिये यह पुराने व नये दोष तथा दूर या समीपका न दिखाई देना रतौंधी और समस्त तिमिरोंको नष्ट करता है॥ १४१॥

अङ्गुलियोगः।

भूमौ निघृष्टयाङ्गुल्या अञ्जनं नमनं तयोः।
तिमिरकाचार्महरं धूमिकायाश्च नाशनम्॥ १४२॥

पृथ्वीमें अङ्गुली घिसकर आञ्जनेसे दूर या समीप न दिखलाई पडना तथा तिमिर, काच और अर्म तथा धूमिका नष्ट होते हैं॥ १४२॥

नागयोगः।

त्रिफलाभृङ्गमहौषधमध्वाज्यच्छागपयसि गोमूत्रे।
नागं सप्त निषिक्तं करोति गरुडोपमं चक्षुः॥ १४३॥

त्रिफला, भांगरा, सोंठ, शहद, घी, बकरीके दूध, व गोमूत्रमें सात दिनतक भावित शीशा नेत्रको गरुडके समान उत्तम बनाता है॥ १४३॥

शलाका।

त्रिफलसलिलयोगे भृङ्गराजद्रवे च
हविषि च विषकल्के क्षार आजे मधूग्रे।
प्रतिदिनमथ तप्तं सप्तधा सीसमेकं
प्रणिहितमथ पश्चात्कारयेत्तच्छलाकाम्॥ १४४॥
सवितुरुदयकाले साञ्जना व्यञ्जना वा
करकरिकसमेतानर्मपैच्चिट्यरोगान्।
असितसितसमुत्थान्सन्धिवर्त्माभिजातान्
हरति नयनरोगान्सेव्यमाना शलाका॥ १४५॥

एक शीसाके टुकडेको एक एक चीजमें सात सात वार तपाकर बुझाना चाहिये। बुझानेकी चीजे त्रिफलाका काढा, भागरेका रस, घी, सींगियाका कल्क, क्षार और बकरीका दूध तथा शहद हैं इसके अनन्तर उस शीशेकी सलाई बनवानी चाहिये। सूर्य उदयके समय यह सलाई अञ्जनके सहित अथवा विना अञ्जनके आखमे लगानेसे करकरी, अर्म, पिच्चिट, काले भाग या सफेद भाग संधि और विर्त्नियोंके रोगोको नष्ट करती है॥ १४४॥ १४५॥

गौञ्जाञ्जनम् ।

चिञ्चापत्ररसं निधाय विमले चौदुम्बरे भाजने
मूलं तत्र निघृष्टसैन्धवयुतं गौञ्जं विशोष्यातपे ।
तच्चूर्णं विमलाञ्जनेन सहितं नेत्राञ्जनं शस्यते
काचार्माजुनपिच्चिटे सतिमिरे स्रावं च निर्वारयत् १४६

इमलीकी पत्तीके रसको स्वच्छ ताम्रके पात्रमें रख-कर उसीमें घिसे सेंधानमकके साथ गुञ्जाकी जड रख धूपमें सुखाना चाहिये । इस चूर्णको सफेद सुर्माके साथ मिलाकर आंखमें लगाना काच, अर्म, अर्जुन, पिचिट और तिमिर मे हितकर है तथा स्रावको बन्द करता है ॥ १४६ ॥

सैन्धवयोगः ।

चित्रापष्ठीयोगे सैन्धवममलं विचूर्ण्य तेनाक्षि ।
समसञ्जनेन तिमिरं गच्छति वर्षादसाध्यमपि॥ १४७ ॥

चित्रा नक्षत्र और षष्ठी तिथि जिस दिन हो उस दिन सफेद सेंधानमक महीन पीसकर अञ्जन लगाते रहनेसे एक सालमें असाध्य तिमिर भी शान्त होता है ॥ १४७ ॥

उशीराञ्जनम् ।

दद्यादुशीरनिर्यूहे चूर्णितं कणसैन्धवम् ।
तच्छृतं सघृतं भूयः पचेत्क्षौद्रं क्षिपेद्घने ॥ १४८ ॥
शीते तस्मिन्हितमिदं सर्वजे तिमिरेऽञ्जनम् ॥ १४९ ॥

खशके क्वाथमें चूर्ण किया सेंधानमक छोडे, फिर उसको घी मिलाकर पकावे, फिर गाढा होजानेपर उतार ठंडा कर शहदके साथ मिलाकर अञ्जन लगावे । यह अञ्जन सर्वज तिमिरके लिये हितकर है ॥१४८॥१४९॥

धात्र्यादिरसक्रिया।

धात्रीरसाञ्जनक्षौद्रसर्पिर्भिस्तु रसक्रिया ।
पित्तानिलाक्षिरोगघ्नी तैमिर्यपटलापहा ॥ १५० ॥

आंवला, रसौंत, शहद व घीकी रसक्रिया पित्त और वातजन्य नेत्ररोग तथा तिमिर और पटलको नष्ट करती है ॥ १५० ॥

शृंगवेरादिनस्यम् ।

शृंगवेरं भृंगराजं यष्टीतैलेन मिश्रितम् ।
नस्यमेतेन दातव्यं महापटलनाशनम् ॥ १५१ ॥

सोंठ, भांगरा व मौरेठी को तैलमें मिलाकर नस्य देनेसे महापटल नष्ट होता है ॥ १५१ ॥

लिङ्गनाशचिकित्सा ।

लिङ्गनाशे कफोद्भूते यथावद्विधिपूर्वकम् ।
विद्ध्वा दैवकृते छिद्रे नेत्रं स्तन्येन पूरयेत् ॥ १५२ ॥
ततो दृष्टेषु रूपेषु शलाकामाहरेच्छनैः ।
नयनं सर्पिषाभ्यज्य वस्त्रपट्टेन वेष्टयेत् ॥ १५३ ॥
ततो गृहे निराबाधे शयीतोत्तान एव च ।
उद्गारकासक्षवथुष्ठीवनोत्कम्पनानि च ॥ १५४ ॥
तत्कालं नाचरेदूर्ध्वं यन्त्रणास्नेहपीतवत् ।
त्र्यहात्त्र्यहाद्धावयेत्तु कषायैरनिलापहैः ॥ १५५ ॥
वायोर्भयात्त्र्यहादूर्ध्वं स्नेहयेदक्षि पूर्ववत् ।
दशरात्रं तु संयम्य हितं दृष्टिप्रसादनम् ॥ १५६ ॥
पश्चात्कर्म च सेवेत लघ्वन्नं चापि मात्रया ।
रागश्चोषोऽर्बुदं शोथो बुद्बुदं केकराक्षिता ॥ १५७ ॥
अधिमन्थादयश्चान्ये रोगाः स्युर्दुष्टवेधजाः ।
अहिताचारतो वापि यथास्वं तानुपाचरेत् ॥ १५८ ॥
रुजायामक्षिरागे वा भूयो योगान्निबोध मे ।

कफजन्य लिंगनाश (मोतियाबिन्दमें) विधिपूर्वक देवकृत छिद्र (अपाङ्गकी ओर शुक्लभाग) में वेधकर नेत्रको स्त्रीदुग्धसे भर देना चाहिये । फिर जब रूप दिखलाई पडने लगे तो सलाई धीरेसे निकाल लेनी चाहिये । फिर नेत्रमें घीको चुपडकर कपडा लपेट देना चाहिये । फिर बाधारहित घरमें उतना ही सोना चाहिये । वेधके समय डकार, खांसी, थूकना, छींकना, हिलना आदि बन्द रक्खे बादमें स्नेहपान करनेवालेके समान परहेज करे तथा तीन तीन दिनमें वातनाशक काढ़ोंसे धोवे तथा वायुके भयसे ३ दिनके बाद स्नेहका सिञ्चन पूर्ववत् करे । इस प्रकार दश रात्रि संयम कर नेत्र स्वच्छ करनेवाला उपाय करे और हल्का अन्न मात्रासे खावे । लालिमा, गरमी, अर्बुद, शोथ, बुल-बुला, केकराक्षिता तथा अधिमन्थ आदि अनेक रोग दुष्ट वेध या मिथ्याहार विहारसे हो जाते है उनकी यथो-चित चिकित्सा करे । पीडा और लालिमामें आगे कहे हुए योग काममें लाने चाहिये ॥ १५२–१५८ ॥–

रुजाहरलेपाः ।

कल्किताः सघृता दूर्वायवगैरिकशारिवाः ॥ १५९ ॥
मुखलेपाः प्रयोक्तव्या रुजारागोपशान्तये ।
पयस्याशारिवापत्रमञ्जिष्ठामधुकैरपि ॥ १६० ॥
अजाक्षीरान्वितैर्लेपः सुखोष्णः पथ्य उच्यते ।

दूब, यव, गेरू, व शारिवा इनका कल्क कर घीमें मिला कुछ गुनगुना लेप पीडा व लालिमाकी शान्तिके लिये

करना चाहिये । अथवा क्षीरविदारी, शारिवा, तेजपात, मञ्जीठ व मौरेठी को बकरीके दूधमे पीस गुनगुना लेप हितकर होता है ॥ १५९ ॥ १६० ॥—

घृतम् ।

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे । १६१ ॥
काकोल्यादिप्रतीवाप प्रयुञ्ज्यात्सर्वकर्मसु ।

वातनाशक औषधियोसे सिद्ध चतुर्गुण दूधमे सिद्ध घृतको काकोल्यादि चूर्णके साथ मिलाकर सब काममें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १६१ ॥—

शिराव्यधः ।

शाम्यत्येवं न चेच्छूल स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् १६२॥
तत शिरां दहेच्चापि मतिमान्कीर्तिता यथा ।
दृष्टेरत' प्रसादार्थमञ्जने शृणु मे शुभे ॥ १६३ ॥

यदि इस प्रकार शूल शान्त न हो तो स्नेहन स्वेदन कर शिराव्यध करना चाहिये तथा शिरादाह करना चाहिये । इसके बाद नेत्रको शुद्ध करनेवाले अञ्जन कहते हैं ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

मेषशृङ्ग्याद्यञ्जनम् ।

मेषशृङ्गस्य पत्राणि शिरीषधवयोरपि ।
मालत्याश्चापि तुल्यानि मुक्तावैदुर्यमेव च ॥१६४॥
अजाक्षीरेण संपिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत् ।
प्रणिधाय तु तद्वर्तिं योजयेदञ्जने भिषक् ॥ १६५ ॥

मेषशृङ्गीके पत्ते, सिरसा, धव और चमेलीके पत्ते, तथा मोती व लहसुनिया समान भाग ले बकरीके दूधमे घोटकर ७ दिन ताम्रपात्रमें रखना चाहिये, फिर इसकी वत्ती बनाकर अञ्जन लगाना चाहिये ॥ १६४ ॥१६५॥

स्रोतोजांजनम् ।

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मन शिलाम् ।
मरिचानि च तद्वर्तिं कारयेत्पूर्ववद्भिषक् ॥ १६६ ॥

नीला सुरमा, मूगा, समुद्रफेन, मनशिल व कालीमिर्चकी वत्ती बनाकर आञ्जना चाहिये ॥ १६६ ॥

रसाञ्जनाञ्जनम् ।

रसाञ्जनं घृतं क्षौद्रं तालसि स्वर्णगैरिकम् ।
गोशकृद्रससयुक्त पित्तोपहतदृष्टये ॥ १६७ ॥

रसौंत, घी, शहद, तालीसपत्र व सुनहला गेरू इनको गायके गोबरके रससे पित्तसे दूषित नेत्रवालेको लगाना चाहिये ॥ १६७ ॥

नलिन्यञ्जनम् ।

नलिन्युत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम् ।
गुडिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ १६८ ॥

कमलिनी, व कमलके केशरको गायके गोबरके रससे गोली बनाकर आंखमे लगाना दिन और रात्रि दोनोकी अन्धतामे लाभ करता है ॥ १६८ ॥

नदीजाञ्जनम् ।

नदीजशङ्खत्रिकटून्यथाञ्जनं
मन.शिला द्वे च निशे गवां शकृत् ।
सचन्दनेय गुडिकाथ चाञ्जने
प्रशस्यते रात्रिदिनेष्वपश्यताम् ॥ १६९ ॥

नीला सुरमा, शख, त्रिकटु, रसौत, मैनशिल, हल्दी, दारुहल्दी, गोबर व चन्दनकी गोली बनाकर आखमें लगानेसे पूर्वोक्त गुण करती है ॥ १६९ ॥

कणायोगः ।

कणाच्छागशकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता ।
अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्य तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ १७० ॥

छोटी पीपल बकरीकी लेंडिओके साथ पका और उसीके रसमें पीसकर आखमें लगानेसे अथवा काली मिर्च शहदमें मिलाकर लगानेसे रतौंधी शीघ्रही मिटती है ॥ १७० ॥

गौधयकृद्योगः ।

पचेत्तु गौधं हि यकृत्प्रकल्पित
प्रपूरित मागधिकाभिरग्निना ।
निषेवितं तत्सकृदञ्जनेन च
निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशय खलु ॥ १७१ ॥

गोहका यकृत् और छोटी पीपल पका गोली बनाकर एक बार ही लगानेमे नि.सन्देह रतौंधी नष्ट होती है ॥ १७१ ॥

नक्तान्ध्यहरा विविधा योगाः ।

दध्ना निघृष्ट मरिचं रात्र्यान्ध्याञ्जनमुत्तमम् ।
ताम्बूलयुक्तं खद्योतभक्षण च तदर्थकृत् ॥ १७२ ॥
शफरीमत्स्यक्षारो नक्तान्ध्यं चाञ्जनाद्विनिहन्ति ।
तद्वद्रामठटङ्कणकर्णमल चैकशोऽञ्जनान्मधुना ॥ १७३॥
केशराजान्वित सिद्ध मत्स्याण्डं हन्ति भक्षितम् ।
नक्तान्ध्य नियत नृणां सप्ताहात्पथ्यसेविनाम्॥ १७४ ॥

दहीमें घिसी काली मिर्चका रतौंधीमें अञ्जन लगाना चाहिये । तथा पानके साथ जुगुनूका खाना भी यही गुण

करता है इसी प्रकार छोटी मछलीका क्षार अञ्जन लगानेसे रतौन्धीको नष्ट करता है । अथवा हींग, सुहागा, कानका मैल इनमेसे कोई एक शहदमें मिलाकर लगाना चाहिये तथा काले भांगरेके साथ सिद्ध मछलीका अण्डा खाने और सात दिनतक पथ्यसे रहनेसे निःसन्देह रतौंधी नष्ट हो जाती है ॥ १७२–१७४ ॥

त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलाक्राथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।
तिमिराण्यचिराद्धन्ति पीतमेतन्निशामुखे ॥ १७५ ॥

त्रिफलाके क्वाथ व कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध घृत सायंकाल पीनेसे शीघ्रही तिमिर नष्ट होता है १७५॥

महात्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ १७६ ॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा ।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ १७७ ॥
कल्कः कणासिताद्राक्षात्रिफलानीलमुत्पलम् ।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ १७८ ॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्यपानं च शस्यते ॥ १७९ ॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान्पानादेवापकर्षति ।
सरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च ॥ १८० ॥
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ १८१ ॥
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ।
अदृष्टिं मन्ददृष्टिं च कफवातप्रदूषिताम् ॥ १८२ ॥
स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्डूवासन्नदूरदृक् ।
गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्धनम् ।
सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद्धृतम् ॥ १८३ ॥

त्रिफलाका रस एक प्रस्थ, भांगरेका रस १ प्रस्थ, अडूसेका रस १ प्रस्थ, शतावरीका रस १ प्रस्थ तथा बकरीका दूध, गुर्चका रस, आंवलेका रस प्रत्येक एक प्रस्थ तथा घी १ प्रस्थ, और छोटी पीपल, मिश्री, मुनक्का, त्रिफला, नीलोफर, मौरेठी, क्षीरकाकोली, दूध व छोटी कटेरीका कल्क छोडकर पकाना चाहिये । ठीक सिद्ध हो जानेपर अच्छे वर्तनमें रखना चाहिये । इसे सबेरे दो पहर व शामको पीना चाहिये । जितने नेत्ररोग होते हैं उन्हें पीनेसे ही नष्ट करता है । लाल नेत्रोंमें, रक्तदूषित अथवा अधिक बहते हुए नेत्रोंमें, रतौन्धी, तिमिर, काच, नीलिकापटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, दारुण पक्ष्मकोप वातपित्तकफजन्य समस्त रोगोंमें हितकर है । न दिखलाई पडना, मन्द दृष्टि कफवातसे दूषित दृष्टि तथा वातपित्तसे बहती हुई दृष्टि, खुजली और समीप व दूरकी दृष्टिको शुद्ध करता बल, वर्णको बढाता तथा समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । इसे महात्रिफलादिघृत कहते हैं ॥ १७६–१८३ ॥

काश्यपत्रैफलं घृतम् ।

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी ।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥ १८४ ॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् ।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥ १८५ ॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् ।
तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् ॥ १८६ ॥
वीसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च ।
खालित्यं पलितं चैव केशानां पतनं तथा ॥ १८७ ॥
विषमज्वरमर्माणि शुक्रं चाशु व्यपोहति ।
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ।
तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १८८ ॥
न चैवास्मात्परं किञ्चिद्दृष्टिमिः काश्यपादिभिः ।
दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥ १८९ ॥

त्रिफला, त्रिकटु, मुनक्का, मौरेठी, कुटकी, पुण्डरिया, छोटी इलायची, वायविडंग, नागकेशर, नीलोफर, शारिवा काली शारिवा, चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी प्रत्येक एक एक तोलेका कल्क घी १२८ तो०, दूध १२८ तोला तथा त्रिफलाका रस ४ सेर ६४ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । यह समस्त नेत्ररोग तथा तिमिर, , कामला, काच, तथा अर्बुद, विसर्प, प्रदर, खुजली, लालिमा, सूजन, बालोंका गिरना, सफेदी, इन्द्रलुप्त, विषमज्वर, अर्म, फूली तथा और जो अनेक नेत्र या विन्नियोंमें रोग होते हैं उन सबको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकारको । काश्यपादिऋषियोंने इससे बढकर कोई प्रयोग नेत्रोंके लिये लाभदायक नहीं समझा ॥ १८४–१८९ ॥

तिमिरघ्नत्रैफलं घृतम् ।

फलत्रिकाभीरुकषायसिद्धं
कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम् ।
सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं
हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम् ॥ १९० ॥

करना चाहिये। अथवा क्षीरविदारी, शारिवा, तेजपात, मञ्जीठ व मौरेठी को वकरीके दूधमें पीस गुनगुना लेप हितकर होता है ॥ १५९ ॥ १६० ॥–

घृतम्।

वातघ्नसिद्धे पयसि सिद्धं सर्पिश्चतुर्गुणे। १६१ ॥
काकोल्यादिप्रतीवाप प्रयुञ्ज्यात्सर्वकर्मसु ।

वातनाशक औषधियोंसे सिद्ध चतुर्गुण दूधमें सिद्ध घृतको काकोल्यादि चूर्णके साथ मिलाकर सब काममें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ १६१ ॥–

शिराव्यधः ।

शाम्यत्येवं न चेच्छूलं स्निग्धस्विन्नस्य मोक्षयेत् १६२॥
ततः शिरां दहेच्चापि मतिमान्कीर्तितां यथा।
दृष्टेरतः प्रसादार्थमन्जने श्रृणु मे शुभे ॥ १६३ ॥

यदि इस प्रकार शूल शान्त न हो तो स्नेहन स्वेदन कर शिराव्यध करना चाहिये तथा शिरादाह करना चाहिये। इसके बाद नेत्रको शुद्ध करनेवाले अञ्जन कहते हैं ॥ १६२ ॥ १६३ ॥

मेषश्रृङ्गयाद्यञ्जनम् ।

मेषश्रृङ्गस्य पत्राणि शिरीषधवयोरपि।
मालत्याश्चापि तुल्यानि मुक्तावैदुर्यमेव च ॥१६४॥
अजाक्षीरेण संपिष्य ताम्रे सप्ताहमावपेत्।
प्रणिधाय तु तद्वर्तिं योजयेदञ्जने भिषक् ॥ १६५ ॥

मेषश्रृङ्गीके पत्ते, सिरसा, धव और चमेलीके पत्ते, तथा मोती व लहसुनिया समान भाग ले वकरीके दूधमे घोटकर ७ दिन ताम्रपात्रमें रखना चाहिये, फिर इसकी वत्ती बनाकर अञ्जन लगाना चाहिये ॥ १६४ ॥१६५॥

स्रोतोजांजनम् ।

स्रोतोजं विद्रुमं फेनं सागरस्य मनःशिलाम्।
मरिचानि च तद्वर्तिं कारयेत्पूर्ववद्भिषक्॥ १६६ ॥

नीला सुरमा, मूगा, समुद्रफेन, मनशिल व काली-मिर्चकी वत्ती बनाकर आञ्जना चाहिये ॥ १६६ ॥

रसाञ्जनाञ्जनम् ।

रसाञ्जनं घृतं क्षौद्रं तालीसं स्वर्णगैरिकम्।
गोशकृद्रससंयुक्तं पित्तोपहतदृष्टये ॥ १६७ ॥

रसौंत, घी, शहद, तालीसपत्र व सुनहला गेरू इनको गायके गोवरके रससे पित्तसे दूषित नेत्रवालेको लगाना चाहिये ॥ १६७ ॥

नलिन्यञ्जनम् ।

नलिन्युत्पलकिञ्जल्कं गोशकृद्रससंयुतम्।
गुडिकाञ्जनमेतत्स्याद्दिनरात्र्यन्धयोर्हितम् ॥ १६८ ॥

कमलिनी, व कमलके केशरको गायके गोवरके रससे गोली बनाकर आखमे लगाना दिन और रात्रि दोनोंकी अन्धतामे लाभ करता है ॥ १६८ ॥

नदीजाञ्जनम् ।

नदीजशङ्खत्रिकटून्यथाञ्जनं
मनःशिला द्वे च निशे गवा शकृत्।
सचन्दनेयं गुडिकाथ चाञ्जने
प्रशस्यते रात्रिदिनेष्वपश्यताम् ॥ १६९ ॥

नीला सुरमा, शख, त्रिकटु, रसौत, मैनशिल, हल्दी, दारुहल्दी, गोबर व चन्दनकी गोली बनाकर आखमें लगानेसे पूर्वोक्त गुण करती है ॥ १६९ ॥

कणायोगः ।

कणाच्छागशकृन्मध्ये पक्त्वा तद्रसपेषिता।
अचिराद्धन्ति नक्तान्ध्य तद्वत्सक्षौद्रमूषणम् ॥ १७० ॥

छोटी पीपल वकरीकी लेंडिओंके साथ पका और उसीके रसमें पीसकर आखमें लगानेसे अथवा काली मिर्च शहदमे मिलाकर लगानेसे रतौंधी शीघ्रही मिटती है ॥ १७० ॥

गौधयकृद्योगः ।

पचेत्तु गौधं हि यकृत्प्रकल्पित
प्रपूरितं मागधिकाभिरग्निना ।
निषेवितं तत्यकृदञ्जनेन च
निहन्ति नक्तान्ध्यमसंशयं खलु ॥ १७१ ॥

गोहका यकृत् और छोटी पीपल पका गोली बनाकर एक बार ही लगानेसे निःसन्देह रतौंधी नष्ट होती हैं ॥ १७१ ॥

नक्तान्ध्यहरा विविधा योगाः ।

दध्ना निघृष्टं मरिचं रात्र्यान्ध्याञ्जनमुत्तमम् ।
ताम्बूलयुक्तं खद्योतभक्षणं च तदर्थकृत् ॥ १७२ ॥
शफरीमत्स्यक्षारो नक्तान्ध्यं चाञ्जनाद्विनिहन्ति ।
तद्वद्ग्रामठटङ्कणकर्णमलं चैकशोऽञ्जनान्मधुना ॥ १७३॥
केशराजान्वितं सिद्धं मत्स्याण्डं हन्ति भक्षितम् ।
नक्तान्ध्यं नियतं नृणां सप्ताहात्पथ्यसेविनाम्॥ १७४ ॥

दहीमें घिसी काली मिर्चका रतौंधीमे अञ्जन लगाना चाहिये। तथा पानके साथ जुगुनूका खाना भी यही गुण

करता है इसी प्रकार छोटी मछलीका क्षार अञ्जन लगानेसे रतौन्धीको नष्ट करता है । अथवा हींग, सुहागा, कानका मैल इनमेंसे कोई एक शहदमें मिलाकर लगाना चाहिये तथा काले भागरेके साथ सिद्ध मछलीका अण्डा खाने और सात दिनतक पथ्यसे रहनेसे निःसन्देह रतौंधी नष्ट हो जाती है ॥ १७२–१७४ ॥

त्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।
तिमिराण्यचिराद्धन्ति पीतमेतन्निशामुखे ॥ १७५ ॥

त्रिफलाके क्वाथ व कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध घृत सायकाल पीनेसे शीघ्रही तिमिर नष्ट होता है १७५॥

महात्रिफलाघृतम् ।

त्रिफलाया रसप्रस्थं प्रस्थं भृङ्गरसस्य च ।
वृषस्य च रसप्रस्थं शतावर्याश्च तत्समम् ॥ १७६ ॥
अजाक्षीरं गुडूच्याश्च आमलक्या रसं तथा ।
प्रस्थं प्रस्थं समाहृत्य सर्वैरेभिर्घृतं पचेत् ॥ १७७ ॥
कल्कः कणासिताद्राक्षात्रिफलानीलमुत्पलम् ।
मधुकं क्षीरकाकोली मधुपर्णी निदिग्धिका ॥ १७८ ॥
तत्साधुसिद्धं विज्ञाय शुभे भाण्डे निधापयेत् ।
ऊर्ध्वपानमधःपानं मध्यपानं च शस्यते ॥ १७९ ॥
यावन्तो नेत्ररोगास्तान्पानादेवापकर्षति ।
सरक्ते रक्तदुष्टे च रक्ते चातिस्रुतेऽपि च ॥ १८० ॥
नक्तान्ध्ये तिमिरे काचे नीलिकापटलार्बुदे ।
अभिष्यन्देऽधिमन्थे च पक्ष्मकोपे सुदारुणे ॥ १८१ ॥
नेत्ररोगेषु सर्वेषु वातपित्तकफेषु च ।
अदृष्टिं मन्ददृष्टिं च कफवातप्रदूषिताम् ॥ १८२ ॥
स्रवतो वातपित्ताभ्यां सकण्ड्वासन्नदूरदृक् ।
गृध्रदृष्टिकरं सद्यो बलवर्णाग्निवर्धनम् ।
सर्वनेत्रामयं हन्यात्त्रिफलाद्यं महद्घृतम् ॥ १८३ ॥

त्रिफलाका रस एक प्रस्थ, भांगरेका रस १ प्रस्थ, अडूसेका रस १ प्रस्थ, शतावरीका रस १ प्रस्थ तथा बकरीका दूध, गुर्चका रस, आवलेका रस प्रत्येक एक प्रस्थ तथा घी १ प्रस्थ, और छोटी पीपल, मिश्री, मुनक्का, त्रिफला, नीलोफर, मौरेठी, क्षीरकाकोली, दूध व छोटी कटेरीका कल्क छोड़कर पकाना चाहिये । ठीक सिद्ध हो जानेपर अच्छे वर्तनमें रखना चाहिये । इसे सवेरे दो पहर व शामको पीना चाहिये । जितने नेत्ररोग होते हैं उन्हें पीनेसे ही नष्ट करता है । लाल नेत्रोंमें, रक्तदूषित अथवा अधिक बहते हुए नेत्रोंमें, रतौन्धी, तिमिर, काच, नीलिकापटल, अर्बुद, अभिष्यन्द, अधिमन्थ, दारुण पक्ष्मकोप वातपित्तकफजन्य समस्त रोगोंमे हितकर है । न दिखलाई पडना, मन्द दृष्टि कफवातसे दूषित दृष्टि तथा वातपित्तसे बहती हुई दृष्टि, खुजली और समीप व दूरकी दृष्टिको शुद्ध करता बल, वर्णको बढाता तथा समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है । इसे महात्रिफलादिघृत कहते है ॥ १७६–१८३ ॥

काश्यपत्रैफलं घृतम् ।

त्रिफला त्र्यूषणं द्राक्षा मधुकं कटुरोहिणी ।
प्रपौण्डरीकं सूक्ष्मैला विडङ्गं नागकेशरम् ॥ १८४ ॥
नीलोत्पलं शारिवे द्वे चन्दनं रजनीद्वयम् ।
कार्षिकैः पयसा तुल्यं त्रिगुणं त्रिफलारसम् ॥ १८५ ॥
घृतप्रस्थं पचेदेतत्सर्वनेत्ररुजापहम् ।
तिमिरं दोषमास्रावं कामलां काचमर्बुदम् ॥ १८६ ॥
वीसर्पं प्रदरं कण्डूं रक्तं श्वयथुमेव च ।
खालित्यं पलितं चैव केशानां पतनं तथा ॥ १८७ ॥
विषमज्वरमर्माणि शुक्रं चाशु व्यपोहति ।
अन्ये च बहवो रोगा नेत्रजा ये च वर्त्मजाः ।
तान्सर्वान्नाशयत्याशु भास्करस्तिमिरं यथा ॥ १८८ ॥
न चैवास्मात्परं किञ्चिद्दृष्टिभिः काश्यपादिभिः ।
दृष्टिप्रसादनं दृष्टं यथा स्यात्त्रैफलं घृतम् ॥ १८९ ॥

त्रिफला, त्रिकटु, मुनक्का, मौरेठी, कुटकी, पुण्डरिया, छोटी इलायची, वायविडंग, नागकेशर, नीलोफर, शारिवा काली शारिवा, चन्दन, हल्दी, दारुहल्दी प्रत्येक एक एक तोलेका कल्क घी १२८ तो०, दूध १२८ तोला तथा त्रिफलाका रस ४ सेर ६४ तोला मिलाकर पकाना चाहिये । यह समस्त नेत्ररोग तथा तिमिर, , कामला, काच, तथा अर्बुद, विसर्प, प्रदर, खुजली, लालिमा, सूजन, बालोंका गिरना, सफेदी, इन्द्रलुप्त, विषमज्वर, अर्म, फूली तथा और जो अनेक नेत्र या विन्नियोंमें रोग होते है उन सबको इस प्रकार नष्ट करता है जैसे सूर्य अन्धकारको । काश्यपादिऋषियोंने इससे बढकर कोई प्रयोग नेत्रोंके लिये लाभदायक नहीं समझा ॥ १८४–१८९ ॥

तिमिरघ्नत्रैफलं घृतम् ।

फलत्रिकाभीरुकषायसिद्धं
कल्केन यष्टीमधुकस्य युक्तम् ।
सर्पिः समं क्षौद्रचतुर्थभागं
हन्यात्त्रिदोषं तिमिरं प्रवृद्धम् ॥ १९० ॥

त्रिफला, और शतावरीके क्काथ तथा मौरेठीके कल्क-से सिद्ध घृतमें चतुर्थांश शहद मिलाकर सेवन करनेसे त्रिदोषज तिमिर शान्त होता है ॥ १९० ॥

भृङ्गराजतैलम् ।

भृङ्गराजरसप्रस्थे यष्टीमधुपलेन च ।
तैलस्य कुडवं पक्वं सद्यो दृष्टिं प्रसादयेत् ।
नस्याद्वलीपलितघ्नं मासेनैतन्न संशयः ॥ १९१ ॥

भाँगरेका रस ६४ तो०, मौरेठीका कल्क ४ तोला, तैल १६ तो० पकाकर नस्य लेनेसे झुर्रियाँ और बालोंकी सफेदी नष्ट करता तथा नेत्र उत्तम बनाता है ॥१९१॥

गोशकृत्तैलम् ।

गवां शकृत्क्काथविपक्कमुत्तमं
हितं च तैलं तिमिरेषु नस्ततः ।
घृतं हितं केवलमेव पैत्तिके
तथाणुतैलं पवनासृगुत्थयोः ॥ १९२ ॥

गायके गोबरके क्काथसे पकाया तैल नस्य लेनेसे तिमिरको शान्त करता है । पैत्तिकमें केवल घृत तथा वातरक्तजमें अणुतैल हितकर है ॥ १९२ ॥

नृपवल्लभतैलम् ।

जीवकर्षभकौ मेदे द्राक्षांशुमती निदिग्धिका बृहती ।
मधुकं बला विडङ्गं माञ्जिष्ठा शर्करा रास्ना ॥ १९३ ॥
नीलोत्पलं श्वदंष्ट्रा प्रपौण्डरीकं पुनर्नवा लवणम् ।
पिप्पल्यः सर्वेषां भागैरक्षांशिकैः पिष्टैः ॥ १९४ ॥
तैलं यदि वा सर्पिर्दत्त्वा क्षीरं चतुर्गुणं पक्वम् ।
तिमिरं पटलं काचं नक्तान्ध्यं चार्बुदं तथान्ध्यं च ।
श्वेतं च लिङ्गनाशं नाशयति परं च नीलिकाव्यङ्गम् ।
मुखनासादौर्गन्ध्यं पलितं चाकालजं हनुस्तम्भम् ।
कासं श्वासं शोषं हिक्कां स्तम्भं तथात्ययं नेत्रे ॥१९६॥
मुखरोगमर्धभेदं रोगं बाहुग्रहं शिरःस्तम्भम् ।
रोगानथोर्ध्वजत्रोः सर्वानचिरेण नाशयति ॥ १९७ ॥
नस्यार्थं कुडवं तैलं पक्तव्यं नृपवल्लभम् ।
अक्षांशैः शाणिकैः कल्कैरन्ये भृङ्गादितैलवत् ॥१९८॥

जीवक, ऋषभक, मेदा, महामेदा, मुनक्का, सरिवन, कटेरी, बड़ी कटेरी, मौरेठी, खरेटी, वायविडंग मञ्जीठ, शक्कर, रास्ना, नीलोफर, गोखुरू, पुण्डरिया, पुनर्नवा, नमक तथा छोटी पीपल प्रत्येक ३ मासेका कल्क तैल अथवा घी १६ तोला, दूध ६४ तो० छोडकर पकाना चाहिये । यह तिमिर, पटल, काच, नक्तान्ध्य, अर्बुद, अन्धता, लिङ्गनाश, सफेदी, झाईं, व्यंग, मुखनासादुर्गंध तथा अकालपलित, हनुस्तम्भ, कास, श्वास, शोष, हिक्का-स्तम्भ तथा नेत्रात्यय, मुखरोग, अर्धभेद, बाहुकी जकड़ाहट, शिरःस्तम्भ तथा ऊर्ध्वजत्रुके समस्त रोग शीघ्रही नष्ट करता है । इसका नस्य लेना चाहिये । इसमें प्रत्येकका कल्क ३ माशे और तैल १६ तोला छोडना चाहिये । कुछलोग कहते हैं कि भृगराज तैलके समान बनाना चाहिये ॥ १९३–१९८ ॥

अभिजित्तैलम् ।

तैलस्य पचेत्कुडवं मधुकस्य पलेन कल्कपिष्टेन ।
आमलकरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थेन संयुतं कृत्वा ॥ १९९ ॥
अभिजिन्नाम्ना तैलं तिमिरं हन्यान्मुनिप्रोक्तम् ।
विमलां कुरुते दृष्टिं नष्टामप्यानयेदिदं शीघ्रम् ॥२००॥

तैल १६ तोला, मौरेठी ४ तो०, आंवलेका रस ६४ तो० व दूध ६४ तो० मिलाकर पकाना चाहिये । इसका नस्य तिमिरको नष्ट करता तथा दृष्टिको स्वच्छ करता है । इसे अभिजित्तैल कहते हैं ॥१९९ ॥२००॥

अर्मचिकित्सा ।

अर्म तु छेदनीयं स्यात्कृष्णप्राप्तं भवेद्यदा ।
बडिशाविद्धमुन्नम्य त्रिभागं चात्र वर्जयेत् ॥ २०१ ॥
पिप्पलीत्रिफलालाक्षालोहचूर्णं ससैन्धवम् ।
भृंगराजरसे पिष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥ २०२ ॥
अर्म सतिमिरं काचं कण्डूं शुक्रं तदर्जुनम् ।
अजकां नेत्ररोगांश्च हन्यान्निरवशेषतः ॥ २०३ ॥

अर्म जब काले भागमें पहुंच जाय तब बडिशसे पकड उन्नमित कर ३ भाग छोडकर काटना चाहिये । तथा छोटी पीपल, त्रिफला, लाख, लोहचूर्ण व सेंधानमकको भागरेके रसमें पीसकर गुटिकाञ्जन बनाना चाहिये । यह अर्म, तिमिर, काच, खुजली, फूली, अर्जुन, अजका और समस्त नेत्ररोगोंको नष्ट करता है ॥२०१-२०३ ॥

पुष्पादिरसक्रिया ।

पुष्पाह्वयताक्ष्र्यजसितोदधिफेनशङ्ख-
सिन्धूत्थगैरिकशिलामरिचैः समांशैः ।
पिष्टैश्च माक्षिकरसेन रसक्रियेयं
हन्त्यर्मकाचतिमिरार्जुनवर्त्मरोगान् ॥ २०४ ॥

पुष्पकासीस, रसौत, मिश्री, समुद्रफेन, शंख, सेंधानमक, गेरू, मनशिल व काली मिर्च समान भाग ले शहदमें घोटकर बनायी गयी रसक्रिया अर्म, काच, तिमिर, अर्जुन और वर्त्मरोगोंको नष्ट करती है ॥२०४॥

शुक्तिकाचिकित्सा ।

कौम्भस्य सर्पिषः पानैर्विरेकालेपसेचनैः ।
स्वादुशीतैः प्रशमयेच्छुक्तिकामञ्जनैस्तथा ॥ २०५ ॥
प्रवालमुक्तावैदूर्यशङ्खस्फटिकचन्दनम् ।
सुवर्णरजतं क्षौद्रमञ्जनं शुक्तिकापहम् ॥ २०६ ॥

दश वर्ष पुराना घृत पिलाकर तथा विरेचन, लेप व सेक और मीठे, ठण्ढे पदार्थ तथा अञ्जनसे शुक्तिका शान्त करनी चाहिये। तथा मूगा, मोती, लहसुनिया, शंख, स्फटिक, चन्दन, सोना, चाँदी और शहदका अञ्जन शुक्तिकाको नष्ट करता है ॥ २०५ ॥ २०६ ॥

अर्जुनचिकित्सा ।

शङ्खः क्षौद्रेण संयुक्तः कतकः सैन्धवेन वा ।
सितयार्णवफेनो वा पृथगञ्जनमर्जुने ॥ २०७ ॥
पैत्तं विधिमशेषेण कुर्यादर्जुनशान्तये ॥ २०८ ॥

अर्जुनमें शंखको पीसकर शहदके साथ अथवा निर्मलीको पीस सेंधानमकके साथ अथवा समुद्रफेनको मिश्रीके साथ नेत्रमें लगाना चाहिये तथा समग्र पैत्तिक विधि अर्जुनमें करनी चाहिये ॥ २०७ ॥ २०८ ॥

पिष्टिकाचिकित्सा ।

वैदेही श्वेतमरिचं सैन्धवं नागरं समम् ।
मातुलुङ्गरसे पिष्टमञ्जनं पिष्टिकापहम् ॥ २०९ ॥

छोटी पीपल, सहिजनके बीज, सेंधानमक व सोंठ समान भाग ले बिजौरे निम्बूके रसमें पीसकर बनाया पछने गया अञ्जन पिष्टिकाको नष्ट करता है ॥ २०९ ॥

उपनाहचिकित्सा ।

भित्त्वोपनाहं कफजं पिप्पलीमधुसैन्धवैः ।
विलिम्पेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्ततः ॥ २१० ॥

कफज-उपनाहका भेदन कर छोटी पीपल, शहद व सेंधानमकका लेप करना चाहिये अथवा मण्डलाग्रशस्त्रसे लगाना चाहिये ॥ २१० ॥

फलबीजवर्तिः ।

पथ्याक्षधात्रीफलमध्यबीजै-
स्त्रिद्व्येकभागैर्विदधीत वर्तिम् ।
तयाञ्जयेदश्रुमतिप्रगाढ-
मक्ष्णोर्हरेत्कष्टमपि प्रकोपम् ॥ २११ ॥

आँवलेकी मींगी १ भाग, बहेडाकी मींगी २ भाग, हर्रोंकी मींगी ३ भाग पीसकर वत्ती बनानी चाहिये। इससे अञ्जन लगानेसे गाढे आँसुओंका आना आदि नेत्र कष्ट नष्ट होता है ॥ २११ ॥

त्रिफलायोगाः ।

स्रावेषु त्रिफलाक्वाथं यथादोषं प्रयोजयेत् ।
क्षौद्रेणाज्येन पिप्पल्या मिश्रं विध्येच्छिरां तथा ॥ २१२ ॥
त्रिफलामूत्रकासीससैन्धवैः सरसाञ्जनैः ।
रसक्रिया क्रिमिग्रन्थौ भिन्ने स्यात्प्रतिसारणम् ॥ २१३ ॥

स्रावोंमें दोषोंके अनुसार त्रिफला क्वाथका प्रयोग शहद, घी तथा छोटी पीपल मिलाकर करना चाहिये तथा शिराव्यध करना चाहिये। क्रिमिग्रन्थिका भेदन कर त्रिफला, गोमूत्र, कासीस, सेंधानमक व रसौंतकी रसक्रिया कर लगाना चाहिये ॥ २१२ ॥ २१३ ॥

अञ्जननामिकाचिकित्सा ।

स्विन्नां भित्त्वा विनिष्पीड्य भिन्नामञ्जननामिकाम् ।
शिलैलानतसिन्धूत्थैः सक्षौद्रैः प्रतिसारयेत् ॥ २१४ ॥
रसाञ्जनमधुभ्यां च भिन्नां वा शस्त्रकर्मवित् ।
प्रतिसार्याञ्जनैर्युञ्ज्यादुष्णैर्दीपशिखोद्भवैः ॥ २१५ ॥
स्वेदयेद्धृष्टयाङ्गुल्या हरेद्रक्तं जलौकसा ।
रोचनाक्षारतुत्थानि पिप्पल्यः क्षौद्रमेव च ॥ २१६ ॥
प्रतिसारणमेकैकं भिन्नेन गणं इष्यते ।

अञ्जननामिकाका स्वेदन, भेदन कर शुद्ध होनेपर मनःशिला, इलायची, तगर, व सेंधानमकके चूर्णको शहद मिलाकर लगाना चाहिये। तथा अञ्जननामिका फूट जानेपर रसौंत और शहद लगाकर गरम दीपशिखाका अञ्जन लगाना चाहिये। और अगुलीको गदोरीपर घिसकर (लगाना चाहिये। तथा जोंक लगाकर खून निकालना चाहिये। गोरोचन, क्षार, तूतिया, छोटी पीपल, शहद इनमेंसे कोई एक प्रतिसारणमें उत्तम हैं ॥ २१४–२१६ ॥–

निमिषबिसग्रन्थिचिकित्सा ।

निमिषे नासया पेयं सर्पिस्तेन च पूरणम् ॥ २१७ ॥
स्वेदयित्वा बिसग्रन्थिं छिद्राण्यस्य निराश्रयम् ।
पक्वं भित्त्वा तु शस्त्रेण सैन्धवेनावचूर्णयेत् ॥ २१८ ॥

निमिषमें नाशिकासे घी पीना तथा घीसे ही नेत्र भरना चाहिये। बिसग्रन्थिका स्वेदन कर पकनेपर भेदनद्वारा साफ कर सेंधानमक लगाना चाहिये२१७॥२१८

पिल्लचिकित्सा ।

वर्त्मावलेखं बहुशस्तद्वच्छोणितमोक्षणम् ।
पुनः पुनर्विरेकं च पिल्लरोगातुरो भजेत् ॥ २१९ ॥
पिल्ली स्निग्धो वमेत्पूर्वं शिरां विद्धयेत् स्रुतेऽसृजि ।
शिलारसाञ्जनव्योषगोपित्तैश्चक्षुरञ्जयेत् ॥ २२० ॥

हरितालवचादारुसुरसारससेपिषितम् ।
अभयारसपिष्टं वा तगरं पिल्लनाशनम् ॥ २२१ ॥

पिल्लरोगमें बार बार [illegible] [illegible], [illegible] खोलना तथा बार बार [illegible] देना चाहिये । [illegible] पहिले [illegible] कर वमन करना चाहिये, [illegible] कर रक्त निकल जानेपर मनसिल, [illegible], [illegible] गोरोचनसे अञ्जन लगाना चाहिये । इसी प्रकार [illegible] रससे पीसे हरिताल, बच, देवदारु अथवा हर्रके [illegible] पीसा तगर, लगानेसे पिल्ल नष्ट होता है ॥ २१९-२२१ ॥

धूपः ।

भावितं वस्तमूत्रेण सस्नेहं देवदारु च ।
काकमाचीफलैकेन घृतयुक्तेन बुद्धिमान् ॥ २२२ ॥
धूपयेत्पिल्लरोगार्ते पतन्ति क्रिमयोऽचिरात् ।

बकरेके मूत्रसे भावित स्नेहके सहित देवदारु अथवा घीके सहित मकोयके फलकी धूप देनेसे पिल्ल रोगसे कीडे गिर जाते हैं ॥ २२२ ॥–

प्रक्लिन्नवर्त्मचिकित्सा ।

रसाञ्जनं सर्जरसो जातीपुष्पं मनःशिला ॥ २२३ ॥
समुद्रफेनो लवणं गैरिकं मरिचानि च ।
एतत्समांशं मधुना पिष्टं प्रक्लिन्नवर्त्मनि ॥ २२४ ॥
अञ्जनं क्लेदकण्डूघ्नं पक्ष्मणां च प्ररोहणम् ।
मस्तकास्थिचुलुक्यास्तु तुषोदलवणान्वितम् ॥ २२५ ॥
ताम्रपात्रेऽञ्जनं घृष्टं पिल्ले प्रक्लिन्नवर्त्मनि ।
ताम्रपात्रे गुहामूलं सिन्धूत्थं मरिचान्वितम् ॥२२६ ॥
आरनालेन सघृष्टमञ्जनं पिल्लनाशनम् ।

रसौत, राल, चमेलीके फूल, मैनशिल, समुद्रफेन, नमक, गेरू, व काली मिर्च समान भाग ले शहदमें मिलाकर प्रक्लिन्न वर्त्ममें अञ्जन लगानेसे गीलापन, खुजली नष्ट करता व बिन्नियोंको जमाता है । तथा चुलकी (मछली) की हड्डी, काञ्जी व नमकके साथ ताम्रके बर्तनमें अञ्जन घिसकर पिल्ल तथा प्रक्लिन्नवर्त्ममें लगाना चाहिये । इसी प्रकार पिठिवनकी जड, सेधानमक व काली मिर्च काञ्जीमें ताम्रपात्रमें ७ दिन घिसकर आँखमें लगाना पिल्लको नष्ट करता है ॥ २२३ ॥ २२६ ॥–

हरिद्रादिवर्तिः ।

हरिद्रे त्रिफलां लोध्रं मधुकं रक्तचन्दनम् ॥ २२७ ॥
भृङ्गराजरसे पिष्ट्वा घर्षयेल्लोहभाजने ।
तथा ताम्रे च सप्ताहं कृत्वा वर्तिं रजोऽथवा ॥ २२८ ॥
[illegible] [illegible] च [illegible] ।
[illegible] [illegible] [illegible] ॥ २२९ ॥

[illegible] ॥ २२७–२२९ ॥

मञ्जिष्ठाद्यञ्जनम् ।

मञ्जिष्ठामधुकोत्पलोदकत्वक्सेव्यगोरोचना-
मांसीचन्दनधात्रिसारिवनतोशीराञ्जनैः कुङ्कुमैः ।
[illegible] [illegible] [illegible] मधुरो
कण्डूक्लेदमलाश्रुशोणितरुजापित्तार्मनुत्सावहम् ॥२३०॥

मजीठ, मौरेठी, नीलोफर, [illegible], [illegible] [illegible], गोरोचन, जटामांसी चन्दन, [illegible], [illegible], [illegible], [illegible], [illegible] तथा रसौत [illegible] समान [illegible] अञ्जन लगाना आँखोंको हितकर तथा खुजली, गीलापन, [illegible], आंसू तथा रक्तदोष, पिल्ल, [illegible] और [illegible] नष्ट करता है ॥ २३० ॥

कुलत्थकादिसेकः ।

कुलत्थकस्य पलं श्वेतमरिचानि च विंशतिः ।
त्रिंशता काञ्जिकपलैः पिष्ट्वा ताम्रे निधापयेत् ॥ २३१॥
पिल्लानपिल्लान्कुरुते बहुवर्षोत्थितानपि ।
तत्सेकेनोपदेहाश्रुकण्डूशोथांश्च नाशयेत् ॥ २३२ ॥

कुलथी ४ तो०, सहिजनके बीज २०, काञ्जी १॥ सेरमें मिलाकर ताम्रके बर्तनमें रखना चाहिये । इसके सिञ्चनसे पुराने पिल्ल दूर होते हैं तथा उपदेह, आंसू, खुजली और सूजन नष्ट होती है ॥ २३१ ॥ २३२ ॥

पक्ष्मोपरोधचिकित्सा ।

याप्यः पक्ष्मोपरोधस्तु रोमोद्धरणलेखनैः ।
वर्त्मन्युपचितं लेख्यं स्राव्यमुल्लिख्य शोणितम् ॥ २३३ ॥
प्रवृद्धान्तर्मुखं रोम सहिष्णोरुद्धरेच्छनैः ।
संदंशेनोद्धरेद्‌दृष्ट्या पक्ष्मरोमाणि बुद्धिमान् ॥ २३४ ॥
रक्षन्नक्षि दहेत्पक्ष्म तप्तहेमशलाकया ।
पक्ष्मरोगे पुनर्नैवं कदाचिद्रोमसम्भवः ॥ २३५ ॥

पक्ष्मोपरोध याप्य होता है इसमें रोमोंका उद्धरण तथा लेखन करते रहना चाहिये । बिन्नीमें इकट्ठा रक्त खुरचना चाहिये तथा बहुत बढा रक्त निकाल देना चाहिये । अन्तर्मुख बढे रोवे

धीरे धीरे चिमटीसे सहिष्णु पुरुषके उखाड देने चाहिये आखको बचाते हुए गरम सोनेकी सलाईसे जला देना चाहिये । इससे फिर रोम नही जमते ॥ २३३-२३५॥

लेख्यभेद्यरोगाः ।

उत्सङ्गिनी बहुलकर्दमवर्त्मनी च
श्यावं च यच्च पठितं त्विह बद्धवर्त्म ।
क्लिन्नं च पोथकियुतं त्विह वर्त्म यच्च
कुम्भीकिमी च सह शर्करयावलेख्या २३६ ॥
श्लेष्मोपनाहलगणौ च बिसं च भेद्यो
ग्रन्थिश्च य क्रिमिकृतोऽञ्जननामिका च ॥ २३७ ॥

उत्सगिनी, बहुलवर्त्म, कर्दम, श्याव,बद्धवर्त्म, क्लिन्न, पोथकी, कुम्भीकिनी, व शर्करा, इनका अवलेखन करना चाहिये तथा श्लेष्मरोग, उपनाह, बिसग्रथि, क्रिमिग्रंथि और अञ्जननामिकाका भेदन करना चाहिये २३६॥२३७

कफानाहादिचिकित्सा ।

घृतसैन्धवचूर्णेन कफानाह पुन. पुन ।
विलिम्पेन्मण्डलाग्रेण प्रच्छयेद्वा समन्तत ॥ २३८ ॥
पटोलामलकक्वाथैराश्च्योतनविधिर्हित. ।
फणिज्जकरसोनस्य रसै. पोथकिनाशन ॥ २३९ ॥
आनाहपिडकां स्विन्ना तिर्यग्भित्त्वाग्निना दहेत् ।
अर्शस्तथा वर्म नाम्ना शुष्कार्शोऽर्बुदमेव च ॥ २४० ॥
मण्डलाग्रेण तीक्ष्णेन मूले छिन्द्याद्भिषक् शनैः ।
सिन्धूत्थपिप्पलीकुष्ठपर्णिनीत्रिफलारसैः ॥ २४१ ॥
सुरामण्डेन वर्तिः स्याच्छ्लेष्माभिष्यन्दनाशिनी ।
वर्त्मोपरोधे पोथक्यां क्रिमिग्रन्थौ कुकूणके ॥ २४२ ॥

कफानाहको वार वार घी व सेंधानमकके चूर्णसे लेप करना अथवा मण्डलाग्रसे पछने लगाने चाहिये तथा परवल व आवलेके क्वार्थसे आश्च्योतन विधि हितकर है तथा देवना और लहसुनके रससे पोथकी नष्ट होती है । आनाहपिडिकाका स्वेदन कर तिरछा भेदन करना फिर अग्निसे जलाना चाहिये । अर्शोवर्त्म तथा शुष्कार्श और अर्बुदको तीक्ष्ण मण्डलाग्रसे धीरेसे मूलसे काट देना चाहिये । सेंधानमक, छोटी पीपल, कूठ, शाल-पर्णी, पृष्ठपर्णी, मुद्गपर्णी, माषपर्णी और त्रिफलाके रस तथा सुरामण्डसे बनायी वत्ती श्लेष्माभिष्यन्द, पोथकी, वर्त्मोपरोध क्रिमिग्रथि और कुकूणकको नष्ट करती है ॥ २३८-२४२ ॥

इति नेत्ररोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ शिरोरोगाधिकारः ।

वातिकचिकित्सा ।

वातिके शिरसो रोगे स्नेहस्वेदान्सनावनान् ।
पानान्नमुपहारांश्च कुर्याद्वातामयापहान् ॥ १ ॥
कुष्ठमेरण्डतैलं च लेपात्काञ्जिकपेषितम् ।
शिरोऽर्ति नाशयत्याशु पुष्प वा मुचुकुन्दजम्॥ २ ॥
पञ्चमूलीशृत क्षीरं नस्यं दद्याच्छिरोगदे ।

वातज शिरोरोगमे नस्य, स्नेहन, स्वेदन, पान, अन्न-भोजन आदि वातनाशक करने चाहिये । कूठ व एर-ण्ड तैल काञ्जीमे पीसकर लेप करनेसे अथवा मुचकुदके फूलका लेप करनेसे शिरोऽर्ति नष्ट होती है तथा पञ्च-मूलसे सिद्ध दूधका नस्य देनेसे शिरोऽर्ति शान्त होती है ॥ १ ॥ २ ॥

शिरोबस्तिः ।

आशिरोव्यायत चर्म कृत्वाष्टाङ्गुलमुच्छ्रितम् ॥ ३ ॥
तेनावेष्ट्य शिरोऽधस्तान्माषकल्केन लेपयेत् ।
निश्चलस्योपविष्टस्य तैलैरुष्णै प्रपूरयेत् ॥ ४ ॥
धारयेदारुज शान्तेर्याम यामार्धमेव वा ।
शिरोबस्तिर्जयत्येष शिरोरोग मरुद्भवम् ॥ ५ ॥
हनुमन्याक्षिकर्णार्तिमार्दित मूर्धकम्पनम् ।
तैलेनापूर्य मूर्धानं पञ्चमात्राशतानि च ॥ ६ ॥
तिष्ठेच्छ्लेष्माणि पित्तेऽष्टौ दश वाते शिरोगदी ।
एष एव विधि कार्यस्तथा कर्णाक्षिपूरणे ॥ ७ ॥

शिरके बराबर लम्बा तथा आठ अगुल ऊँचा चर्म लेकर शिरमें लपेटना चाहिये । नीचे उडदके कल्कका लेप करना चाहिये फिर सीधा बैठालकर गुनगुने तैलसे भर-देना चाहिये और जबतक पीडा शात न हो तबतक १॥ घण्टेसे ३ घण्टेतक रखना चाहिये । यह शिरोबस्ति वातज शिरोरोग, हनु, मन्या, कान व नेत्रकी पीडा, अर्दित, शिरका कम्पना आदि नष्ट करती है । सामान्य दशामे तैलसे शिर भरकर कफमें ५०० मात्रा उच्चारण काल पित्तमें ८०० और वातमें १००० मात्रा उच्चा-रणकाल तक रखना चाहिये । यही विधि कान और आखमे भरनेकी है ॥ ३-७ ॥

पैत्तिकचिकित्सा ।

पैत्ते घृत पय सेकाः शीतलेपाः सनावनाः ।
जीवनीयानि सर्पींषि पानान्न चापि पित्तनुत् ॥ ८॥

पित्तात्मके शिरोरोगे स्निग्धं सम्यग्विरेचयेत् ।
मृद्वीकात्रिफलेक्षूणां रसैः क्षीरैर्घृतैरपि ॥ ९ ॥
शतधौतघृताभ्यङ्गः शीतवातादिसेवनम् ।
शीतस्पर्शाश्च संसेव्याः सदा दाहार्तिशान्तये ॥ १० ॥
चन्दनोशीरयष्ट्याह्वबलाव्याघ्रीनखोत्पलैः ।
क्षीरपिष्टैः प्रदेहः स्यात्शृतैर्वा परिषेचनम् ॥ ११ ॥
मृणालबिसशालूकचन्दनोत्पलकेशरैः ।
स्निग्धशीतैः शिरो दिह्यात्तद्वदामलकोत्पलैः ॥ १२ ॥

पैत्तिकमें घी व दूधका सिञ्चन, नस्य तथा शीतल लेप जीवनीय घृत तथा पित्तनाशक भोजन व पानका प्रयोग करना चाहिये । तथा ठीक स्नेहन कर विरेचन देना चाहिये । विरेचनके लिये मुनक्का, त्रिफला, ईखका रस, दूध और घृतका प्रयोग करना चाहिये । तथा१०० वार धोये घीकी मालिश, शीतवायुसेवन, शीत पर्श सदा दाह और पीडाकी शान्तिके लिये करना चाहिये । तथा चन्दन, खश, मौरेठी, खरेटी, कटेरी, नख, नीलोफर दूधमें पीसकर लेप करना चाहिये । अथवा क्काथ बना ठण्डा कर सिञ्चन करना चाहिये । इसी प्रकार शीतल व स्नेहयुक्त कमलकी डण्डी, कमलके तन्तु, भसीडा, चन्दन, नीलोफर व कमलके केशरका अथवा आवला और नीलोफरका लेप करना चाहिये ॥ ८–१२ ॥

नस्यम् ।

यष्ट्याह्वचन्दनानन्ताक्षीरसिद्धं घृतं हितम् ।
नावनं शर्कराद्राक्षामधुकैर्वापि पित्तजे ॥ १३ ॥
त्वक्पत्रशर्करापिष्टा नावनं तण्डुलाम्बुना ।
क्षीरसर्पिर्हितं नस्यं रसा वा जाङ्गला शुभाः ॥ १४॥

मौरेठी, चन्दन, यवासा और दूधसे सिद्ध घृत अथवा शक्कर मुनक्का व मौरेठीसे सिद्ध घृतका नस्य पैत्तिकमें देना चाहिये । अथवा दालचीनी, तेजपातका शक्करको पीसकर चावलके धोवनके साथ नस्य लेना अथवा दूध व घीका नस्य अथवा जाङ्गल प्राणियोंके मांसरसका नस्य लेना चाहिये ॥ १३ ॥ १४ ॥

रक्तजचिकित्सा ।

रक्तजे पित्तवत्सर्वं भोजनालेपसेचनम् ।
शीतोष्णयोश्च व्यत्यासो विशेषो रक्तमोक्षणम् ॥ १५ ॥

रक्तजमें पित्तके समान ही सब भोजन आलेप और सेचन करना चाहिये व उष्ण प्रयोग बदल बदल करना चाहिये तथा रक्तमोक्षण करना चाहिये ॥ १५ ॥

कफजचिकित्सा ।

कफजे लङ्घनं स्वेदो रूक्षोष्णं पाचनात्मकम् ।
तीक्ष्णावपीडा धूमाश्च तीक्ष्णाश्च कवला हिताः ॥ १६ ॥
अच्छं च पाययेत्सर्पिः पुराणं स्वेदयेत्ततः ।
मधूकसारेण शिरः स्विन्नं चास्य विरेचयेत् ॥ १७ ॥

कफजमें लंघन, रूक्ष उष्ण तथा पाचनात्मक पदार्थोंसे स्वेदन, तीक्ष्ण नस्य, तीक्ष्ण धूम तथा कवल हितकर हैं । अकेले पुराना घी पिलाकर स्वेदन करना चाहिये फिर महुआके सारसे शिरोविरेचन करना चाहिये॥ १६॥ १७॥

कृष्णादिलेपः ।

कृष्णाब्दशुण्ठीमधुकशताह्वोत्पलपाकलैः ।
जलपिष्टैः शिरोलेपः सद्यः शूलनिवारणः ॥ १८ ॥

छोटी पीपल, नागरमोथा, सोंठ, मौरेठी, सौंफ, नीलोफर और कूठको जलमें पीसकर लेप करनेसे शीघ्रही शिरदर्द शान्त होता है ॥ १८ ॥

देवदार्वादिलेपः ।

देवदारु नतं कुष्ठं नलदं विश्वभेषजम् ।
लेपः काञ्जिकसंपिष्टस्तैलयुक्तः शिरोऽर्तिनुत् ॥ १९ ॥

देवदारु, तगर, कूठ, जटामासी व सोंठको काञ्जीमें पीस तैल मिलाकर लेप करना शिरदर्दको शान्त करता है ॥ १९ ॥

सन्निपातजचिकित्सा ।

सन्निपातभवे कार्या दोषत्रयहरी क्रिया ।
सर्पिष्पानं विशेषेण पुराणं त्वादिशन्ति हि ॥ २० ॥

सन्निपातजमें त्रिदोषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये तथा विशेषकर पुराना घी पिलाना उत्तम है ॥ २० ॥

त्रिकट्वादिक्काथनस्यम् ।

त्रिकटुकपुष्कररजनीरास्नासुरदारुतुरगगन्धानाम् ।
क्काथः शिरोऽर्तिजालं नासापीतो निवारयति ॥ २१ ॥

त्रिकटु, पोहकरमूल, हल्दी, रासन, देवदारु व असगन्धका क्काथ नासिकासे पीनेसे शिरकी पीडाको नष्ट करता है ॥ २१ ॥

अपरं नस्यम् ।

नागरकल्कविमिश्रं क्षीरं नस्येन योजितं पुंसाम् ।
नानादोषोद्भूतां शिरोरुजं हन्ति तीव्रतराम् ॥ २२ ॥

सोंठके कल्कसे मिले दूधका नस्य लेनेसे त्रिदोषज शिरःशूल नष्ट होता है ॥ २२ ॥

लेपाः ।

नतोत्पलं चन्दनकुष्ठयुक्तं शिरोरुजायां सघृतं प्रदेहः ।
प्रपौण्डरीकं सुरदारु कुष्ठं यष्ट्याह्वमेलाकमलोत्पले च ।
शिरोरुजायां सघृतः प्रदेहो लोहैरकापद्मकचोरकैश्च२३॥

तगर, नीलोफर, चन्दन व कूठ, घीके साथ अथवा पुण्डरिया, देवदारु, कूठ, मौरेठी, इलायची, कमल व नीलोफर घीके साथ अथवा तगर, रोहिष, पद्माख और मटेउरका लेप घीके साथ त्रिदोषज शिरदर्दको शान्त करता है ॥ २३ ॥

शताह्वाद्यं तैलम् ।

शताह्वैरण्डमूलोग्रावक्रव्याघ्रीफलैः शृतम् ।
तैलं नस्यं मरुच्छ्लेष्मतिमिरोर्ध्वगदापहम् ॥ २४ ॥

सौंफ, एरण्डकी जड, वच, तगर और कटेरीके फलोंसे सिद्ध तैलके नस्य लेनेसे वायुकफजन्य तिमिर तथा शिरोरोग नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥

जीवकादितैलम् ।

जीवकर्षभकौ द्राक्षासितायष्टीबलोत्पलैः ।
तैलं नस्यं पयः पक्वं वातपित्तशिरोगदे ॥ २५ ॥

जीवक, ऋषभक, मुनक्का, मिश्री, मौरेठी, खरेटी व नीलोफरके कल्क तथा दूध मिलाकर सिद्ध तैल नस्य लेनेसे वातपित्तज शिरोरोग शान्त करता है ॥२५ ॥

बृहज्जीवकाद्यं तैलम् ।

जीवकर्षभकौ द्राक्षा मधूकं मधुकं बला ।
नीलोत्पलं चन्दनं च विदारी शर्करा तथा ॥ २६ ॥
तैलप्रस्थं पचेदेभिः शनैः पयसि षड्गुणे ।
जाङ्गलस्य तु मांसस्य तुलार्धस्य रसेन तु ॥ २७ ॥
सिद्धमेतद्भवेन्नस्यं तैलमर्धावभेदकम् ।
बाधिर्यं कर्णशूलं च तिमिरं गलशुण्डिकाम् ॥ २८ ॥
वातिकं पैत्तिकं चैव शीर्षरोगं नियच्छति ।
दन्तचालं शिरःशूलमर्दितं चापकर्षति ॥ २९ ॥

जीवक, ऋषभक, मुनक्का, मौरेठी, महुआ, खरेटी, नीलोफर, चन्दन, विदारीकन्द व शक्करके कल्क तथा ६ गुने दूधमें तथा जाङ्गल मांस २॥ सेरके रसके साथ १ प्रस्थ तैल सिद्ध करना चाहिये यह तैल नस्यसे अर्धावभेदक, बाधिर्य, कानके दर्द, तिमिर, गलशुण्डी, वातिक, पैत्तिक शिरोरोग, दाँतोंके हिलने और अर्दित-रोगको नष्ट करता है ॥ २६–२९ ॥

षड्बिन्दुतैलम् ।

एरण्डमूलं तगरं शताह्वा
जीवन्ति रास्ना सहसैन्धवं च ।
भृङ्गं विडङ्गं मधुयष्टिका च
विश्वौषधं कृष्णतिलस्य तैलम् ॥ ३० ॥
आजं पयस्तैलविमिश्रितं च
चतुर्गुणे भृङ्गरसे विपक्वम् ।
षड्बिन्दवो नासिकया विधेयाः
शीघ्रं निहन्युः शिरसो विकारान् ॥ ३१ ॥
शुभ्रांश्च केशांश्चलितांश्च दन्तान्
दुर्बद्धमूलांश्च दृढीकरोति ।
सुपर्णदृष्टिप्रतिमं च चक्षु-
र्बाह्वोर्बलं चाभ्यधिकं ददाति ॥ ३२ ॥

एरण्डकी जड, तगर, सौंफ, जीवन्ती, रास्ना, सेंधा-नमक, भँगरा, वायविडंग, मौरेठी, सोंठ, काले तिलोंका तैल, बकरीका दूध तैलके तथा तैलसे चतुर्गुण भँगरेका रस मिलाकर पकाना चाहिये । इसके ६ बिन्दु नाकमें डालनेसे शीघ्रही शिरोरोग नष्ट होते, सफेद बाल काले होते तथा हिलते दाँत मजबूत होते हैं । और गरुडके समान दृष्टि तथा बाहुओंमें बलकी वृद्धि होती है ॥ ३०–३२ ॥

क्षयजचिकित्सा ।

क्षयजे क्षयमासाद्य कर्तव्यो बृंहणो विधिः ।
पाने नस्ये च सर्पिः स्याद्वातघ्नैर्मधुरैः शृतम् ॥३३॥

क्षयजमें क्षयका निश्चयकर बृंहणविधि करनी चाहिये तथा पीने व नस्यके लिये वातनाशक मीठे पदार्थोंसे सिद्धकर घीका प्रयोग करना चाहिये ॥ ३३ ॥

क्रिमिजचिकित्सा ।

क्रिमिजे व्योषनक्ताह्वशिग्रुबीजैश्च नावनम् ।
अजामूत्रयुतं नस्यं क्रिमिजे क्रिमिजित्परम् ॥ ३४ ॥

क्रिमिजमें त्रिकुटु, कञ्जा व सहिजनके बीजोंको बक-रीके मूत्रमें मिलाकर नस्य देनेसे क्रिमि नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥

अपामार्गतैलम् ।

अपामार्गफलव्योषनिशाक्षारकरामठैः ।
सविडङ्गैः शृतं मूत्रे तैलं नस्यं क्रिमीन् जयेत् ॥ ३५ ॥

अपामार्गके बीज, त्रिकटु, हल्दी, क्षार, हिङ्गु व वाय-विडङ्गके कल्क तथा गोमूत्रसे सिद्ध तैलके नस्य देनेसे क्रिमियोंको नष्ट करता है ॥ ३५ ॥

नागरादियोगौ ।

नागरं सगुडं विश्वं पिप्पली वा ससैन्धवा ।
भुजस्तम्भादिरोगेषु सर्वेषूर्ध्वगदेषु च ॥ ३६ ॥

गुडके सहित सोंठ अथवा सोंठ व छोटी पीपल व सेंधानमकके साथ बनाये गये नस्यका भुजस्तम्भादि रोगों तथा शिरोरोगोंमें प्रयोग करना चाहिये ॥ ३६ ॥

सूर्यावर्तचिकित्सा ।

सूर्यावर्ते विधातव्यं नस्यकर्मादि भेषजम् ।
पाययेत्सगुडं सर्पिर्घृतपूरांश्च भक्षयेत् ॥ ३७ ॥
सूर्यावर्ते शिरावेधो नावनं क्षीरसर्पिषा ।
हितं क्षीरघृताभ्यास्ताभ्यां चैव विरेचनम् ।
क्षीरपिष्टैस्तिलैः स्वेदो जीवनीयैश्च शस्यते ॥ ३८ ॥

सूर्यावर्तमें नस्य आदि देना चाहिये, गुडके साथ घी पिलाना चाहिये, घृतसे पूर्ण पदार्थ खाना चाहिये तथा शिरावेध करना चाहिये और दूध व घीसे नस्य लेना चाहिये । दूध और घीका सेवन तथा इन्हींके साथ विरेचन, और दूधमें पीसे तिलोंसे स्वेदन तथा जीवनीयगणके प्रयोग हितकर होते हैं ॥ ३७ ॥ ३८ ॥

कुङ्कुमनस्यम् ।

सशर्करं कुङ्कुममाज्यमृष्टं
नस्यं विधेयं पवनासृगुत्थे ।
भ्रूशङ्खकर्णाक्षिशिरोऽर्धशूले
दिनाभिवृद्धिप्रभवे च रोगे ॥ ३९ ॥

शक्करके साथ केशर घीमें मिलाकर वातरक्त जन्य भ्रू शंखकर्ण, आंखें व शिरके अर्धभागके शूल तथा दिनमें बढनेवाले शूलमें नस्य लेना हितकर है ॥ ३९ ॥

कृतमालघृतम् ।

कृतमालपल्लवरसे खरमञ्जरिकल्कसिद्धनवनीतम् ।
नस्येन जयति नियतं सूर्यावर्तं सुदुर्वारम् ॥ ४० ॥

अमलतासके पत्तोंके रस तथा अपामार्गके कल्कके साथ पकाया मक्खन नस्य लेनेसे कठिन सूर्यावर्तको नष्ट करता है ॥ ४० ॥

दशमूलप्रयोगः ।

दशमूलीकषाय तु सर्पिः सैन्धवसंयुतम् ।
नस्यमर्धावभेदघ्नं सूर्यावर्तशिरोऽर्तिनुत् ॥ ४१ ॥

दशमूलके क्वाथका घी व सेंधानमक मिलाकर नस्य लेनेसे अर्धावभेद, सूर्यावर्त और शिरदर्द रोग नष्ट होते हैं ॥ ४१ ॥

अन्ये प्रयोगाः ।

शिरीषमूलकफलैरवपीडं च योजयेत् ।
अवपीडो हितो वा स्याद्वचापिप्पलिभिः शृतः ॥ ४२ ॥
जाङ्गलानि च मांसानि कारयेदुपनाहनम् ।
तेनास्य शाम्यति व्याधिः सूर्यावर्तः सुदारुणः ।
एष एव विधिः कृत्स्नः कार्यश्चार्धावभेदके ॥ ४३ ॥
शारिवोत्पलकुष्ठानि मधुकं चाम्लपेषितम् ।
सर्पिस्तैलयुतो लेपः सूर्यावर्तार्धभेदयोः ॥ ४४ ॥

सिरस और मूलीके बीजोंका नस्य अथवा बच और पीपलके क्वाथका नस्य देना चाहिये । तथा जाङ्गल मांसको गरमकर बांधना चाहिये । इससे सूर्यावर्तरोग शान्त होता है, यही विधि अर्धावभेदकमें करना चाहिये । अथवा शारिवा, नीलोफर, कूठ व मौरेठीको काञ्जीमें पीस घी व तैलमें मिलाकर सूर्यावर्त व अर्धावभेदकमें लेप करना चाहिये ॥ ४२–४४ ॥

शर्करोदकयोगः ।

पिबेत्सशर्करं क्षीरं नीरं वा नारिकेलजम् ।
सुशीतं वापि पानीयं सर्पिर्वा नस्ततस्तयोः ॥ ४५ ॥

सूर्यावर्त व अर्द्धावभेदकमें शक्करके साथ दूध अथवा नारियलका जल अथवा केवल ठण्डा जल घीका नस्य लेना चाहिये ॥ ४५ ॥

अनन्तवातचिकित्सा ।

अनन्तवाते कर्तव्यः सूर्यावर्तहितो विधिः ।
शिरावेधश्च कर्तव्योऽनन्तवातप्रशान्तये ॥ ४६ ॥
आहारश्च विधातव्यो वातपित्तविनाशनः ।
मधुमस्तुकसंयावघृतपूरैर्हितः क्रमः ॥ ४७ ॥

अनन्तवातमें सूर्यावर्तकी विधि करनी चाहिये तथा शिराव्यध भी करना चाहिये । और वातपित्तनाशक आहार करना चाहिये तथा शहद, दहीका तोड, दलिया व घीके प्रयोग हितकर है ॥ ४६ ॥ ४७ ॥

शंखकचिकित्सा ।

सूर्यावर्ते हितं यत्तच्छङ्खके स्वेदवर्जितम् ।
क्षीरसर्पिः प्रशंसन्ति नस्तः पानं च शङ्खके ॥ ४८ ॥

सूर्यावर्तकी ही विधि स्वेदको छोडकर शंखकमें करनी चाहिये ; और क्षीर जन्यघृतका पान तथा नस्य देना हितकर है ॥ ४८ ॥

लेपाः ।

शतावरीं कृष्णतिलान्मधुकं नीलमुत्पलम् ।
मूर्वां पुनर्नवां चापि लेपं साध्ववतारयेत् ॥ ४९ ॥

शीततोयावसेकांश्च क्षीरसेकांश्च शीतलान् ।
कल्कैश्च क्षीरिवृक्षाणां शङ्खकस्य प्रलेपनम् ॥ ५० ॥

शतावरी, कालेतिल, मौरेठी नीलोफर, मूर्वा और पुनर्नवाका लेप करना चाहिये । तथा शीतल जलका सिञ्चन अथवा शीतल दूधका सिञ्चन तथा दूधवाले वृक्षोंके कल्कसे शङ्खकमें लेप करना चाहिये ॥ ४९ ॥ ५० ॥

शिराव्यधः ।

क्रौञ्चकादम्बहंसानां शरार्या: कच्छपस्य च ।
रसैः साविहितस्याथ तस्य शङ्खकसन्धिजाः ॥ ५१ ॥
ऊर्ध्वं तिस्रः शिरा प्राज्ञो भिन्द्यादेव न ताडयेत् ।

क्रौञ्च, कादम्ब, हँस, शरारी और कच्छपके मांसरसोंका सेवन कराकर शंखक सन्धिके ऊपरकी ३ शिराओंका वेधकर देना चाहिये । पर (वेध करते समय नियमानुकूल शिरा ताडित की जाती है पर यह) शिराताडन न करना चाहिये ॥ ५१ ॥–

शिरःकम्पचिकित्सा ।

शिरःकम्पेऽमृतारास्नाबलास्नेहसुगन्धिभिः ॥ ५२ ॥
स्नेहस्वेदादि वातघ्नं शिरोबस्तिश्च शस्यते ।

शिरःकम्पमें गुर्च, रासन, खरेटी, स्नेह और सुगंधित पदार्थोंका सेवन तथा वातघ्न स्नेहन, स्वेदन और शिरोवस्ति हितकर है ॥ ५२ ॥–

यष्ट्याद्यं घृतम् ।

यष्टीमधुबलारास्नादशमूलाम्बुसाधितम् ।
मधुरैश्च घृतं सिद्धमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ५३ ॥

मौरेठी, खरेटी, रासन, व दशमूलके काढे और मधुर औषधियोंके कल्कसे सिद्ध घृत शिरके रोगोंको नष्ट करता है ॥ ५३ ॥

मयूराद्यं घृतम् ।

दशमूलबलारास्नामधुकैस्त्रिपलैः सह ।
मयूरं पक्षपित्तान्त्रशकृत्पादास्यवर्जितम् ॥ ५४ ॥
जले पक्त्वा घृतप्रस्थं तस्मिन्क्षीरसमं पचेत् ।
मधुरैः कार्षिकैः कल्कैः शिरोरोगार्दितापहम् ॥ ५५ ॥
कर्णनासाक्षिजिह्वास्यगलरोगविनाशनम् ।
मयूराद्यमिदं ख्यातमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ॥ ५६ ॥
आखुभिः कुक्कुटैर्हंसैः शशैश्चापि हि बुद्धिमान् ।
कल्पेनानेन विपचेत्सर्पिरूर्ध्वगदापहम् ॥ ५७ ॥
दशमूलादिना तुल्यो मयूर इह गृह्यते ।
अन्ये त्वाकृतिमानेन मयूरग्रहणं विदुः ॥ ५८ ॥

दशमूल १२ तो० खरेटी, रासन, मौरेठी प्रत्येक १२ तो० और पखने, पित्त, आन्ते, विष्ठा, पैर और मुखरहित एक मयूर जलमें पकाना चाहिये फिर इसी क्वाथमें एक प्रस्थ घृत, समान भाग दूध तथा मधुर औषधियों (जीवनीय गण) का प्रत्येकका १ एक तोला कल्क मिलाकर पकाना चाहिये ! यह घृत शिरोरोग, अर्दित, कान, नाक, नेत्र, जिह्वा, मुख, व गलेके रोग यहां तक कि जत्रुके ऊपरके समस्त रोगोंको नष्ट करता है । इसी प्रकार मूसे, कुक्कुट, हंस और खरगोशके मांसरस तथा मधुरवर्गकी औषधियोंके कल्कके साथ शिरोरोगनाशक घी पकाना चाहिये । इसमें दशमूलादिके समान मयूर लेना चाहिये । कुछ आचार्य आकृतिमान अर्थात् एकवचन निर्देशात् १ लेते हैं । इन घृतोंका नस्य लेनी चाहिये ॥ ५४–५८ ॥

प्रपौण्डरीकाद्यं तैलम् ।

प्रपौण्डरीकमधुकपिप्पलीचन्दनोत्पलैः ।
सिद्धं धात्रीरसे तैलं नस्येनाभ्यञ्जनेन वा ।
सर्वानूर्ध्वगदान्हन्ति पलितानि च शीलितम् ॥ ५९ ॥

पुण्डरिया, मौरेठी, छोटी पीपल, चन्दन व नीलोफरके साथ आमलेके रसमें सिद्ध तेलका नस्य लेनेसे समस्त शिरके रोग तथा पलित नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

महामायूरं घृतम् ।

शतं मयूरमांसस्य दशमूलबलातुलाम् ।
द्रोणेऽम्भसः पचेत्क्षुत्त्वा तस्मिन्पादस्थिते ततः ॥ ६० ॥
निषिच्य पयसो द्रोणं पचेत्तत्र घृताढकम् ।
प्रपौण्डरीकवर्गोक्तैर्जीवनीयैश्च भेषजैः ॥ ६१ ॥
मेधाबुद्धिस्मृतिकरमूर्ध्वजत्रुगदापहम् ।
मायूरमेतन्निर्दिष्टं सर्वानिलहरं परम् ॥ ६२ ॥
मन्याकर्णशिरोनेत्ररुजापस्मारनाशनम् ।
विषवातामयश्वासविषमज्वरकासनुत् ॥ ६३ ॥

मयूरका मांस ५ सेर, दशमूल मिलित २॥ सेर, खरेटी २॥ सेर, जल २५ सेर ९ छ० ३ तोलामें पकाना चाहिये, चतुर्थांश रहनेपर उतार छानकर दूध २५ सेर ४८ तो०, घी ६ सेर ३२ तो०, प्रपौंडरीकादिक औषधियों तथा जीवनीयगणकी औषधियोंका कल्क छोडकर घी पकाना चाहिये । यह घी नस्य तथा पानसे मेधा, बुद्धि, स्मरणशक्ति बढाता, शिरोरोगों तथा समस्त वातरोगोंको नष्ट करता और मन्या, कर्ण, शिर व नेत्रकी पीडा तथा अपस्मार, विष, वातरोग, श्वास, विषमज्वर और कासको विनष्ट करता है ॥ ६०–६३ ॥

इति शिरोरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथासृग्दराधिकारः।

सामान्यचिकित्सा।

दध्ना सौवर्चलाजाजी मधुकं नीलमुत्पलम्।
पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता॥ १॥
पिबेदैणेयकं रक्तं शर्करामधुसंयुतम्।
वासकस्वरसं पैत्ते गुडूच्या रसमेव वा॥ २॥
रोहीतकान्मूलकल्कं पाण्डुरेऽसृग्दरे पिबेत्।
जलेनामलकाद्वीजकल्कं वा ससितामधु॥ ३॥
धातक्याश्चाक्षमात्रं वा आमलक्या मधुद्रवम्।
काकजानुकमूलं वा मूलं कार्पासमेव वा॥ ४॥
पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत्तण्डुलवारिणा।
अशोकवल्कलक्वाथशृतं दुग्धं सुशीतलम्।
यथाबलं पिबेत्प्रातस्तीव्रासृग्दरनाशनम्॥ ५॥

वातज प्रदरसे पीडित स्त्री शहदके साथ काले नमक जीरा, मौरेठी व नीलोफरके चूर्णको दहीमें मिलाकर खावे पित्तजमें। शक्कर और शहद मिलाकर हरिणका रक्त पीवे। अथवा अडूसेका स्वरस अथवा गुर्चका रस पीवे। कफज प्रदरमें रोहीतककी जडका कल्क जल मिलाकर पीवे। अथवा आवलेके बीजोंका कल्क शक्कर व शहद मिलाकर पीवे। अथवा धायके फूलोंका रस अथवा आवलेका रस १ तोलेकी मात्रासे शहद मिलाकर पीवे। अथवा काकजंघाकी जड अथवा कपासकी जड चावलके जलके साथ पीले प्रदरकी शान्तिके लिये पीवे। तीव्र रक्तप्रदरकी शान्तिके लिये अशोककी छालसे सिद्ध दूध ठण्ढाकर बलके अनुसार प्रातःकाल पीवे॥ १-५॥

दार्व्यादिक्वाथः।

दार्वीरसाञ्जनवृषाब्दकिराताबिल्व-
भल्लातकैरवकृतो मधुना कषायः।
पीतो जयत्यतिबलं प्रदरं सशूलं
पीतासितारुणविलोहितनीलशुक्लम्॥ ६॥

दारुहल्दी, रसौत, अडूसा, नागरमोथा, चिरायता, बेल और भिलावेका क्वाथ ठण्ढा कर शहद मिला पीनेसे शूलयुक्त, अति बलवान्, पीला, काला, लाल, नीला, सफेद तथा अरुण प्रदर बन्द होता है॥ ६॥

रसाञ्जनादियोगः।

रसाञ्जनं तण्डुलीयस्य मूलं
क्षौद्रान्वितं तण्डुलतोयपीतम्।
असृग्दरं सर्वभवं निहन्ति
श्वासं च भार्ङ्गी सह नागरेण॥ ७॥

रसौत, चौराईकी जडको पीस शहद मिला चावलके जलके साथ पीनेसे सन्निपातप्रदर नष्ट होता तथा इसीमें भारङ्गी और सोंठ मिलाकर सेवन करनेसे श्वास भी नष्ट होता है॥ ७॥

विविधा योगाः।

दशमूलं समुद्धृत्य पेषयेत्तण्डुलाम्बुना।
एतत्पीत्वा त्र्यहान्नारी प्रदरात्परिमुच्यते॥ ८॥
क्षौद्रयुक्तं फलरसं काष्ठोदुम्बरजं पिबेत्।
असृग्दरविनाशाय सशर्करपयोऽन्नभुक्॥ ९॥
प्रदरं हन्ति बलाया मूलं दुग्धेन मधुयुतं पीतम्।
कुशवाट्यालकमूलं तण्डुलसलिलेन रक्ताख्यम्।
शमयति मदिरापानं तदुभयमपि रक्तसञ्ज्ञशुक्लाख्यौ॥ १०
गुडेन बदरीचूर्णं मोचमामं तथा पयः।
पीता लाक्षा च सघृता पृथक्प्रदरनाशना॥ ११॥

दशमूल लेकर चावलके जलके साथ पीसकर पीनेसे ३ दिनमें स्त्री प्रदरसे मुक्त हो जाती है। अथवा कठूमरके शहद मिलाकर पीना चाहिये तथा शक्कर, दूध और भातका पथ्य रखना चाहिये। इसी प्रकार खरेटीकी जडके चूर्णको शहदमें मिलाकर दूधके साथ पीनेसे प्रदर नष्ट होता है। तथा कुश और खरेटीकी जडके चूर्णको चावलके जलके साथ पीनेसे रक्तप्रदर शान्त होता है। शराब पीना लाल तथा सफेद दोनों प्रदरोंको नष्ट करता है। गुडके साथ बेरकी जडके चूर्णका सेवन करनेसे अथवा केला और कच्चे दूधके सेवनसे अथवा घीके साथ लाख पीनेसे प्रदर नष्ट होता है॥ ८-११॥

सामान्यनियमः।

रक्तपित्तविधानेन प्रदरांश्चाप्युपाचरेत्।
असृग्दरे विशेषेण कुटजाष्टकमाचरेत्॥ १२॥

रक्तपित्तविधानसे प्रदरकी चिकित्सा करनी चाहिये। तथा रक्तप्रदरमें विशेषकर कुटजाष्टकका प्रयोग करना चाहिये॥ १२॥

पुष्यानुगचूर्णम्।

पाठाजम्ब्वाम्रयोर्मध्यं शिलाभेदरसाञ्जनम्।
अम्बष्ठकी मोचरसः समङ्गापद्मकेशरान्॥ १३॥
वत्सकातिविषामुस्तं बिल्वं लोध्रं सगैरिकम्।
कट्फलं मरिचं शुण्ठी मृद्वीका रक्तचन्दनम्॥ १४॥
कट्वङ्गवत्सकानन्ताधातकीमधुकार्जुनम्।
पुष्येणोद्धृत्य तुल्यानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत्॥ १५॥

तानि क्षौद्रेण संयुज्य पाययेत्तण्डुलाम्बुना।
असृग्दरातिसारेषु रक्तं यच्चोपवेश्यते ॥ १६ ॥
दोषागन्तुकृता ये च बलाना ताश्च नाशयेत्।
योनिदोषं रजोदोषं श्वेत नीलं सपीतकम् ॥ १७ ॥
स्त्रीणां श्यावारुणं यच्च तत्प्रसह्य निवर्तयेत्।
चूर्णं पुष्यानुग नाम हितमात्रेयपूजितम् ॥ १८ ॥

पाढ, आम और जामुनकी मींगी, पाषाणभेद, रसौंत अम्बष्ठकी (किसीके मतसे पाढा ही डबल करना चाहिये क्योंकि अम्बष्ठा पाठाका नाम है कोई सनके बीज छोडते हैं। पर मेरे विचारसे तो पाठ ही दूनी छोडना) मोचरस, लज्जालुके बीज, कमलका केशर, कुडेकी छाल, अतीस, नागरमोथा, बेल, लोध, गेरु, कैफरा, काली मिर्च, सोंठ, मुनक्का, लाल चन्दन, सोनापाढा, इन्द्रयव, यवासा, धायके फूल, मोरेठी व अर्जुनकी छाल, सब चीजें पुष्यनक्षत्रमें लाकर महीन चूर्ण करना चाहिये। उस चूर्णको शहदमें मिलाकर चावलके जलसे पीना चाहिये। यह रक्तप्रदर, रक्तातीसार, अतीसार और बालकोंके दोषज तथा आगन्तुक अतिसारोंको नष्ट करता है स्त्रियोंके योनिदोष, रजोदोष, सफेद, नीले,पीले, आसमानी और लालिमा लिये हुए प्रदरोंको बलात् नष्ट करता है। यह पुष्यानुगचूर्ण अत्यन्त हितकर आत्रेय महर्षिसे प्रशंसित है ॥ १३–१८ ॥

मुद्गाद्यं घृतम्।

मुद्गमाषस्य निर्यूहे रास्नाचित्रकनागरैः।
सिद्धं सपिप्पलीविल्वैः सर्पिः श्रेष्ठमसृग्दरे ॥ १९ ॥

मूंग और उडदके क्वाथमें रासन, चीतकी जड, सोंठ, छोटी पीपल और बेलके कल्कको छोडकर सिद्ध घृत रक्तप्रदरमें हितकर है ॥ १९ ॥

शीतकल्याणकं घृतम्।

कुमुद पद्मकोशीर गोधूमो रक्तशालयः।
मुद्गपर्णी पयस्या च काश्मरी मधुयष्टिका ॥ २० ॥
बलातिबलयोर्मूलमुत्पलं तालमस्तकम्।
विदारी शतमूली च शालपर्णी सजीवका ॥ २१ ॥
त्रिफलात्रापुष बीज प्रत्यग्रं कदलीफलम्।
एषामर्धपलान्भागान्गव्य क्षीर चतुर्गुणम् ॥ २२ ॥
पानीय द्विगुण दत्त्वा घृतप्रस्थ विपाचयेत्।
प्रदरे रक्तपित्ते च रक्तगुल्मे हलीमके ॥ २३ ॥
बहुरूप च यत्पित्तं कामलावातशोणिते।
अरोचके ज्वरे जीर्णे पाण्डुरोगे मदे भ्रमे ॥ २४ ॥
तरुणी चाल्पपुष्पा या या च गर्भं न विन्दति।
अहन्यहनि च स्त्रीणां भवति प्रीतिवर्धनम्।
शीतकल्याणक नाम परमुक्त रसायनम् ॥ २५ ॥

कुमुद (कमलभेद) पद्माख, खश, गेहूं, लाल चावल, मुद्गपर्णी, क्षीरविदारी, खम्भार, मौरेठी, खरेटेकी जड, कघीकी जड,नीलोफर, ताडकी बाली,विदारीकन्द, शतावर, शालपर्णी, जीवक, त्रिफला, खीरा बीज तथा कच्चा केला इनका कल्क प्रत्येक २ तोला, गायका दूध ६ सेर ३२ तो०, जल ३ सेर ३ छ० ९ तो०, घी १२८ तो० मिलाकर पकाना चाहिये। सिद्ध होने पर उतार छान सेवन करना चाहिये। यह प्रदर, रक्तपित्त, रक्तगुल्म, हलीमक, अनेक प्रकारके अम्लपित्त, कामला, वातरक्त, अरोचक, ज्वर, जीर्णज्वर, पाण्डुरोग, नशा तथा चक्करको नष्ट करता है जिस स्त्रीको मासिक धर्म कम होता है तथा जिन्हें गर्भ नहीं रहता उन्हे पिलाना चाहिये। इससे स्त्रियोंकी प्रसन्नता बढती है। यह शीतकल्याणक नाम परम रसायन है ॥ २०-२५ ॥

शतावरीघृतम्।

शतावरी रसप्रस्थ क्षोदयित्वावपीडयेत्।
घृतप्रस्थसमायुक्तं क्षीरद्विगुणितं भिषक् ॥ २६ ॥
अत्र कल्कानिमान्दद्यात्स्वयूलोदुम्बरसमितान्।
जीवनीयानि यान्यष्टौ यष्टिपद्मकचन्दनम् ॥ २७ ॥
श्वदंष्ट्रा चात्मगुप्ता च बला नागबला तथा।
शालपर्णी पृश्निपर्णी विदारी शारिवाद्वयम् ॥ २८ ॥
शर्करा च समा देया काश्मर्याश्च फलानि च।
सम्यक् सिद्धं तु विज्ञाय तद्घृतं चावतारयेत् ॥ २९ ॥
रक्तपित्तविकारेषु वातपित्तकृतेषु च।
वातरक्त क्षयं श्वास हिक्का कास च दुस्तरम् ॥ ३० ॥
अङ्गदाह शिरोदाह रक्तपित्तसमुद्भवम्।
असृग्दर सर्वभव मूत्रकृच्छ्रं सुदारुणम्।
एतान्रोगान्शमयति भास्करस्तिमिरं यथा ॥ ३१ ॥

ताजी शतावरको कूटकर १२८ तो० रस निकालना चाहिये। इसमें घी १२८ तोला, दूध २५६ तो० तथा जल १२८ तो० और जीवक, ऋषभक, काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, ऋद्धि, वृद्धि, मौरेठी, चन्दन, गोखुरू, कौंचके बीज, खरेटी, गगेरन, सरिवन, पिठिवन, विदारीकन्द, सारिवा, काली सारिवा, शक्कर,

और खम्भारके फल प्रत्येक १ तोलाका कल्क छोडकर पकाना चाहिये । तैयार हो जानेपर उतारकर छान लेना चाहिये । इसका रक्तपित्तके रोग, वातपित्तके रोग, वातरक्त, क्षय, श्वास, हिक्का, कास, अङ्गकी जलन, रक्तपित्तसे उत्पन्न शिरकी जलन, सन्निपातज प्रदर, कठिन मूत्रकृच्छ्र आदि रोगोंमें प्रयोग करना चाहिये । यह घृत इन रोगोंको सूर्य अन्धकारके समान नष्ट करता है २६-३१॥

इत्यसृग्दराधिकारः समाप्तः ।

अथ योनिव्यापदधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् ।
वस्त्यभ्यङ्गपरीषेकप्रलेपा पिचुधारणम् ॥ १ ॥

योनिव्यापत्‌मे अधिकतर वातनाशक चिकित्सा करनी चाहिये । तथा बस्ति, मालिश, सिञ्चन, लेप और फोहोंका धारण कराना चाहिये ॥ १ ॥

वचादियोगः ।

वचोपकुञ्चिकाजातीकृष्णावृषकसैन्धवम् ।
अजमोदां यवक्षारं चित्रक शर्करान्वितम् ॥ २ ॥
पिष्ट्वा प्रसन्नयालोड्य खादेत्तद्घृतभर्जितम् ।
योनिपार्श्वार्तिहृद्रोगगुल्मार्शोविनिवृत्तये ॥ ३ ॥

दूधिया वच, कलौंजी, चमेली, छोटी पीपल, अडूसा, सेंधानमक, अजमोद, जवाखार तथा चीनकी जड-के चूर्णको घीमें भून शक्कर मिला शरावके स्वच्छ भागमें मिलाकर खाना चाहिये । यह योनिरोग पार्श्वशूल, हृद्रोग गुल्म और अर्शको दूर करता है ॥ २ ॥ ३ ॥

परिषेचनाद्युपायाः ।

गुडूचीत्रिफलादन्तीक्वाथैश्च परिषेचनम् ।
नतवार्ताकिनीकुष्ठसैन्धवामरदारुभिः ॥ ४ ॥
तैलात्प्रसाधिताद्धार्यः पिचुर्योनौ रुजापहः ।
पित्तलानां तु योनीनां सेकाभ्यङ्गपिचुक्रिया ॥ ५ ॥
शीता. पित्तहरा कार्याः स्नेहनार्थं घृतानि च ।
योन्या वलासदुष्टायां सर्वरूक्षोष्णमौषधम् ॥ ६ ॥

गुर्च, त्रिफला और दन्तीके क्वाथसे योनिमे सिञ्चन कराना चाहिये तथा तगर, बैंगन, कूठ, सेंधानमक व देवदारुसे सिद्ध तैलका फोहा योनिमें धारण कराना चाहिये । इससे पीडा शान्त होती है । पित्तल योनियोंके लिये सेक, मालिश और फोहा शीतल पित्तनाशक रखना चाहिये । स्नेहनके लिये घी लगाना तथा खाना चाहिये । कफदूषित योनिमें समस्त रूखे और गरम प्रयोग करने चाहिये ॥ ४-६ ॥

योनिविशोधिनीवर्तिः ।

पिप्पल्या मरिचैर्माषै शताह्वाकुष्ठसैन्धवैः ।
वर्तिस्तुल्या प्रदेशिन्या धार्या योनिविशोधनी ॥ ७ ॥

छोटी पीपल, मिर्च, उडद, सौंफ, कूठ व सेंधानमकके चूर्णको साथ घोटकर बनायी गयी प्रदेशिनी अंगुलीके समान बत्ती योनिमें धारण करनेसे योनि शुद्ध करती है ॥ ७ ॥

दोषानुसारवर्तयः ।

हिंस्राकल्कं तु वातार्ता कोष्णमभ्यज्य धारयेत् ।
पञ्चवल्कस्य पित्तार्ता श्यामादीना कफोत्तरा ॥ ८ ॥

वातार्ता योनिमे मालिश कर जटामासीके कल्ककी बत्ती बनाकर रक्खें । पित्तार्ता योनिमे पञ्चवल्कलके कल्ककी बत्ती और कफार्ता योनिमें निसोथ आदिके कल्ककी बत्ती बनाकर रक्खे ॥ ८ ॥

योन्यर्शश्चिकित्सा ।

मूषिकामांससंयुक्तं तैलमातपभावितम् ।
अभ्यङ्गाद्धन्ति योन्यर्शः स्वेदस्तन्मांससैन्धवैः ॥ ९ ॥

मूषिकाके माससे युक्त तैल धूपमें तपाकर लगानेसे योन्यर्श नष्ट होता है । अथवा मूषिकाके मांस और सेंधानमकसे स्वेद लेना भी योन्यर्श नष्ट करता है ॥९॥

अचरणादिचिकित्सा ।

गोपित्ते मत्स्यपित्ते वा क्षौमं त्रिःसप्तभावितम् ।
मधुना किण्वचूर्णं वा दद्यादचरणापहम् ॥ १० ॥
स्रोतसां शोधनं शोथकण्डूक्लेदहरं च तत् ।
कामिन्या पूतियोन्याश्च कर्तव्य. स्वेदनो विधिः॥ ११॥
क्रमं कार्यस्ततः स्नेहपिचुभिस्तर्पणं भवेत् ।
शल्लकीजिङ्गिनीजम्बुधवत्वक्पञ्चवल्कलैः ॥ १२ ॥
कषायैः साधितः स्नेह पिचुः स्याद्विप्लुतापहः ।
कर्णिन्यां वर्तिका कुष्ठपिप्पल्यर्काग्रसैन्धवैः ॥ १३ ॥
वस्तमूत्रकृता धार्या सर्वं च श्लेष्मनुद्धितम् ।
त्रैवृतं स्नेहनं स्वेद उदावर्तानिलार्तिषु ।
तदेव च महायोन्यां स्रस्तायां तु विधीयते ॥ १४ ॥

गोपित्त अथवा मछलीके पित्तमें अलसीके वस्त्रकी २१ भावना देकर अथवा शरावके किट्टको शहदके

साथ योनिमें रखनेसे अचरणा नष्ट होती है तथा छिद्रोंका शोधन और सूजन, खुजली व गीलापन आदिका नाश भी उपरोक्त प्रयोग करते हैं । पूतियोनिवाली स्त्रीके लिये स्वेदन करना चाहिये । फिर स्नेहयुक्त फोहेका धारण करना चाहिये । शल्लकी (शालभेद), मजिष्ठा, जामुनकी छाल, धायकी छाल व पञ्चवल्कलके क्वाथसे सिद्ध स्नेहमें भिगे हुए फोहेके धारण करनेसे विप्लुता नष्ट होती है। कर्णिनीमें कूठ, छोटी पीपल, आकके अंकुर व सेंधानमककी बकरेके मूत्रमें बत्ती बनाकर धारण करना चाहिये तथा समस्त कफनाशक उपाय करना चाहिये । उदावर्त और वायुरोगोंमें घृत, तैल व वसाका प्रयोग तथा स्वेदन करना चाहिये । और यही विधि महायोनि और स्रस्त योनिमें भी करनी चाहिये ॥ १०–१४ ॥

आखुतैलम् ।

आखोर्मांस सपदि बहुधा खण्डखण्डीकृत यत्
तैले पाच्य द्रवति नियत यावदेतन्न सम्यक् ।
तत्तैलाक्त वसनमनिश योनिभागे दधाना
हन्ति व्रीडाकरभगफल नात्र सन्देहबुद्धिः ॥ १५ ॥

मूसेके मासके छोटे छोटे टुकडे चतुर्गुण तैल (तथा तैलसे चतुर्गुण जल) मिलाकर पकाना चाहिये जब यह सिद्ध हो जाय तब उतारकर छान उस तैलसे भिगोया हुआ कपडा योनिमें रखनेसे योनिकन्द नष्ट होता है, इसमें सन्देह न करना चाहिये ॥ १५ ॥

भिन्नादिचिकित्सा ।

शतपुष्पातैललेपाद्बदरीदलजात्तथा ।
पेटिकामूललेपाच्च योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति ॥ १६ ॥
सुषवीमूललेपेन प्रविष्टान्तर्बहिर्भवेत् ।
योनिर्मूषरसाभ्यङ्गान्नि सृता प्रविशेदपि ॥ १७ ॥
लोध्रतुम्बीफलालेपो योनिदार्ढ्यं करोति च ।
वेतसमूलनिष्क्वाथक्षालनेन तथैव च ॥ १८ ॥
मूषिकावागुलिवसाभ्यङ्क्षण योनिदार्ढ्यदम् ।

सौंफके तैलके लेप तथा बेरीकी पत्तीके लेप अथवा पेटिका (पाढल) की जडके लेपसे भिन्न योनि शान्त होती है। और काले जीरेकी जडके लेपसे अन्तःप्रविष्ट योनि बाहर निकलती है । तथा मूसेके मास रसकी मालिशसे बाहर निकली प्रविष्ट हो जाती है । लोध और तोम्बीके फलका लेप योनिको दृढ करता है। बेतकी जडके काढेसे धोनेसे भी यही गुण होता है । और मूसा तथा बगुलेकी वसाकी मालिश योनिको दृढ करती है ॥ १६–१८ ॥

योनिसंकोचनम् ।

वचानीलोत्पलं कुष्ठ मरिचानि तथैव च ॥ १९ ॥
अश्वगन्धा हरिद्रा च गाढीकरणमुत्तमम् ॥ २० ॥
मदनफलमधुककर्पूरपूरित भवति कामिनीजनस्य ।
विगलितयौवनस्य च वराङ्गमतिगाढ सुकुमारम् २१

बचा, नीलोफर, कूठ, काली मिर्च, असगन्ध और हल्दीका लेप योनिको सकुचित करता है । तथा मैनफल, शहद, व कपूरसे पूर्ण वृद्धा स्त्रीकी भी योनि बहुत कडी और चिकनी होती है ॥ १९–२१ ॥

योनिगन्धनाशकं घृतम् ।

पञ्चपल्लवयष्ट्याह्वमालतीकुसुमैर्घृतम् ।
रविपक्वमन्यथा वा योनिगन्धार्तिनाशनम् ॥ २२ ॥

पञ्चपल्लव, मौरेठी व चमेलीके फूलके कल्कसे सूर्यकी किरणोंमें तपाया अथवा चतुर्गुण जल मिलाकर पकाया घृत योनिगन्धको नष्ट करता है ॥ २२ ॥

कुसुमसञ्जननी वर्तिः ।

इक्ष्वाकुबीजदन्तीचपलागुडमदनकिण्वयष्ट्याह्वैः ।
सस्नुक्क्षीरैर्वर्तिर्योनिगता कुसुमसञ्जननी ॥ २३ ॥

कडुई तोम्बीके बीज, दन्ती, छोटी पीपल, गुड, मैनफल, किण्व (शराबकी किट्ट) और मौरेठीके चूर्णको थूहरके दूधमें मिलाकर बनायी गयी बत्ती योनिमें रखनेसे मासिकधर्मको उत्पन्न करती है ॥ २३ ॥

प्राशः ।

सकाञ्जिक जवापुष्प भृष्ट ज्योतिष्मतीदलम् ।
सम्प्राश्य न चिरादेव वनिता त्वार्तव लभेत् ॥ २४ ॥

काञ्जीके साथ जवापुष्प और भूने मालकागनीके पत्ते पीसकर चाटनेसे मासिकधर्म होता है ॥ २४ ॥

दूर्वाप्राशः ।

सरक्तप्रदरा वापि सासृक्स्रावा च गर्भिणी ।
दूर्वाया पिष्टकम्प्राश्य नासृक्स्रावेण पीड्यते ॥ २४ ॥

दूबकी चटनी बनाकर चाटनेसे रक्तस्राव बन्द होता है ॥ २५ ॥

रजोनाशकयोगौ ।

धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत् ।
शेलुच्छदामिश्रापिष्टं भक्षणं च तदर्थकृत् ॥ २५ ॥

आँवला, सुरमा और हर्रोंका चूर्णकर जलके साथ पीनेसे मासिकधर्म नहीं होता तथा लसोढेके पत्तोंको पीसकर खाना भी यही गुण करता है ॥ २५ ॥

गर्भप्रदा योगाः ।

पुष्योद्धृतं लक्ष्मणायाश्चक्राङ्गायास्तु कन्यया ।
पिष्टं मूलं दुग्धघृतमृतौ पीत तु पुत्रदम् ॥ २६ ॥

क्राथेन हयगन्धाया साधितं सघृत पय ।
ऋतुस्नाताङ्गना पीत्वा गर्भं धत्ते न संशयः ॥ २७ ॥
पिप्पल्य शृङ्गवेर च मरिच केशर तथा ।
घृतेन सह पातव्य वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥ २८ ॥

पुष्यनक्षत्रमें उखाडी चक्राग (जिसके ऊपर लाल बिंदु होते हैं उस) लक्ष्मणाकी जडको कन्यासे पिसाकर दूध व घीमें मिलाकर ऋतुकालमे पीनेसे गर्भ धारण होता है । इसी प्रकार असगन्धके क्राथसे सिद्ध दूधमें घी मिलाकर पीनेसे ऋतुस्नाता स्त्री गर्भ धारण करती है तथा छोटी पीपल, सोंठ, काली मिर्च, व नागकेशरके चूर्णको घीमे मिलाकर पीनेसे वन्ध्या भी गर्भ धारण करती है ॥ २६–२८ ॥

स्वर्णादिभस्मयोगः ।

स्वर्णस्य रूप्यकस्य च चूर्णं ताम्रस्य चाज्यसमिश्रे ।
पीते शुद्धे क्षेत्रे भेषजयोगाद्भवेद्गर्भ २९ ॥

सोना और चाँदी तथा ताम्रकी भस्ममे घी मिलाकर रजोधर्मके बाद सेवन करनेसे गर्भ रहता है ॥ २९ ॥

नियतगर्भप्रयोगः ।

कृत्वा शुद्धौ स्नान
विलङ्घ्य दिवसान्तेर तत. प्रातः ।
स्नात्वा द्विजाय दत्त्वा
सम्पूज्य तथैव लोकनाथेशम् ॥ ३० ॥
श्वेतबलाङ्घ्रिकयष्टीं कर्षं कर्षं पल सितायाश्च ।
पिष्ट्वैकवर्णजीवितवत्साया गोस्तु दुग्धेन ॥ ३१ ॥
समधिकघृतेन पीत नात्र दिने देयमन्नमन्यच्च ।
क्षुधिते सदुग्धमन्नं दद्यादा पुरुषसन्निधेस्तस्या ॥३२॥
समदिवसे शुभयोगे दक्षिणपार्श्वावलम्बिनी धीरा ।
त्यक्तद्व्यन्तरसङ्गप्रहृष्टमनसोऽतिवृद्धधातोश्च ।
पुरुषस्य सङ्गमात्राल्लभते पुत्रं ततो नियतम् ॥ ३३ ॥

रजःशुद्धिके दिन स्नान कर लघन करना चाहिये । दूसरे दिन प्रातःकाल स्नानकर भक्तिपूर्वक ब्राह्मण तथा शकरजीका पूजनकर सफेद खरेटीकी जड १तो०, मौरेटी १ तो० व शक्कर ४ तो० एकमे पीस मिलाकर एक रङ्गवाली बछडा सहित गायके दूधमे घी मिलाकर ओषधिके साथ पीना चाहिये । इस दिन दूसरा अन्न नहीं खाना चाहिये । भूख लगनेपर दूध भात देना चाहिये । जबतक पुरुषसयोग न हो जाय तबतक यही पथ्य रखना चाहिये । सम दिन अर्थात् छठे, आठवें या दसवें या बारहवे दिन शुभयोगमें दहिनी ओरका जिस पुरुषने दूसरी स्त्रीका सग नहीं किया तथा जिसका मन प्रसन्न हो रहा है, धातु बढ़े हुए हैं उसके सग-मात्रसे निःसन्देह पुत्रको प्राप्त करती है ॥ ३०–३३ ॥

पुत्रोत्पादका योगाः ।

गोष्ठजातवटस्य प्रागुत्तरशाखजे शृङ्गे ।
माषौ द्वौ च तथा गौरसर्षपौ दधियोजितौ ।
पुष्यापीतौ द्रुतापन्नगर्भाया. पुत्रकारकौ ॥ ३४ ॥
कानकान्राजतान्वापि लौहान्पुरुषकानमून् ।
ध्मातानग्निवर्णान्पयसो दध्नो वाप्युदकस्य वा ।
क्षिप्त्वाञ्जलौ पिबेत्पुष्ये गर्भे पुत्रत्वकारकान् ॥ ३५ ॥

गौओंके ठहरनेके स्थानमें उत्पन्न बरगदकी पूर्व तथा उत्तरकी डालके २ टिम्हुने, २ उडद, २ सफेद सरसों दहीमें मिलाकर पुष्यनक्षत्रमें पीनेसे शीघ्र गर्भ धारण करनेवाली स्त्रीके गर्भसे पुत्र ही होता है । इसी-प्रकार सोने, चान्दी अथवा लोहेके पुरुषकी मूर्ति बना अग्निमें लाल कर दूध, दही अथवा जलकी अञ्जली (१६ तो०) में बुझाकर पुष्य नक्षत्रमे पीनेसे गर्भसे पुत्र ही होता है * ॥ ३४ ॥ ३५ ॥

फलघृतम् ।

मञ्जिष्ठा मधुक कुष्ट त्रिफला शर्करा बला ।
मेदा पयस्या काकोली मूलं चैवाश्वगन्धजम् ॥ ३६ ॥
अजमोदा हरिद्रे द्वे हिङ्गुकं कटुरोहिणी ।
उत्पल कुमुद द्राक्षा काकोल्यौ चन्दनद्वयम् ॥ ३७ ॥
एतेषा कार्षिकैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
शतावरीरसक्षीर घृताद्देय चतुर्गुणम् ॥ ३८ ॥
सर्पिरेतन्नर पीत्वा नित्य स्त्रीषु वृषायते ।
पुत्राञ्जनयते नारी मेधाढ्यान्प्रियदर्शनान् ॥ ३९ ॥
या चैव स्थिरगर्भा स्याद्या वा जनयते मृतम् ।
अल्पायुषं वा जनयेद्या च कन्या प्रसूयते ॥ ४० ॥
योनिदोषे रजोदोषे परिस्रावे च शस्यते ।

---

* श्वेतकण्टकारिकायोगः—"सिंह्यास्तु श्वेतपुष्पाया मूल पुष्यसमुद्धृतम । जलपिष्टमृतुस्नाता नस्याद्गर्भं तु विन्दति ॥" ऋतुस्नाता स्त्रीको पुष्यनक्षत्रमें उखडी सफेद फूलकी कटेरीकी जडको जलमें पीसकर नस्य लेनी चाहिये । इससे गर्भ रहता है । (यह योग बहुत प्रसिद्ध तथा लाभदायक है ॥)

प्रजावर्धनमायुष्यं सर्वग्रहनिवारणम् ॥ ४१ ॥
नाम्ना फलघृतं ह्येतदश्विभ्यां परिकीर्तितम् ।
अनुक्तं लक्ष्मणामूलं क्षिपन्त्यत्र चिकित्सका. ॥ ४२ ॥
जीवद्वत्सैकवर्णाया घृतमत्र प्रशस्यते ।
आरण्यगोमयेनापि वह्निज्वाला प्रदीयते ॥ ४३ ॥

मञ्जीठ, मौरेठी, कूठ, त्रिफला, शक्कर, खरेटी, मेदा, क्षीरकाकोली, काकोली, असगन्ध, अजमोद, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, कुटकी, नीलोफर, कमल, मुनक्का, दोनों काकोली, तथा दोनों चन्दन प्रत्येकका १ तोला कल्क छोडकर १२८ तोला घी, शतावरीका रस २५८ तोला, दूध २५८ तोला मिलाकर पकाना चाहिये। इस घृतके पीनेसे पुरुष स्त्रीगमनमें अधिक समर्थ होता है। और स्त्री इसे पीकर सुन्दर मेधावी बालक उत्पन्न करती है। जिसके गर्भ नहीं रहता अथवा जो मरा या अल्पायु बालक उत्पन्न करती है अथवा जिसके कन्या ही उत्पन्न होती है वे सभी सुन्दर बालक उत्पन्न करती है। योनिदोष, रजोदोष व परिस्रावमें यह हितकर है। यह यह सन्तान बढाता, आयु बढाता तथा समस्त ग्रहदोष नष्ट करता है। इसको भगवान् अश्विनीकुमारने फलघृत नामसे कहा है। इसमें लक्ष्मणाकी जड नहीं कही गयी पर वैद्य उसे भी छोडते हैं। इसमें जिसका बछडा जीता हो ऐसी एक रङ्गवाली गायका घी उत्तम बताते हैं तथा जंगली कण्डोंकी आँच देनी चाहिये ॥३६–४३॥

अपरं फलघृतम् ।

सहाचरे द्वे त्रिफला गुडूचीं सपुनर्नवाम् ।
शुकनासां हरिद्रे द्वे रास्ना मेदा शतावरीम् ॥ ४४ ॥
कल्कीकृत्य घृतप्रस्थं पचेत्क्षीरचतुर्गुणम् ।
तत्सिद्धं प्रपिबेन्नारी योनिशूलप्रपीडिता ॥ ४५ ॥
पिण्डिता चलिता या च निःसृता विवृता च या ।
पिण्डयोनिस्तु विस्रस्ता षण्डयोनिश्च या स्मृता ॥४६॥
प्रपद्यन्ते तु ताः स्थानं गर्भं गृह्णन्ति चासकृत् ।
एतत्फलघृतं नाम योनिदोषहरं परम् ॥ ४७ ॥

दोनों कटसला, त्रिफला, गुर्च, पुनर्नवा, सोना पाठा, हल्दी, दारुहल्दी, रासन, मेदा, व शतावरीका कल्क कर १ प्रस्थ घी, चौगुना दूध मिलाकर पकाना चाहिये। यह घृत योनिशूलसे पीडित, पिंडित, चलित, निःसृत, विवृत, पिण्डयोनि, शिथिलयोनि तथा षण्ढयोनिवाली स्त्रियोंको पिलाना चाहिये। इससे योनि ठीक गर्भ धारण योग्य हो जाती है। यह फलघृत योनिदोष नष्ट करनेमें श्रेष्ठ है ॥ ४४–४७ ॥

सोमघृतम् ।

सिद्धार्थकं वचा ब्राह्मी शङ्खपुष्पी पुनर्नवा ।
पयस्यामययष्ट्याह्वकटुकैलाफलत्रयम् ॥ ४८ ॥
शारिवे रजनी पाठा भृङ्गदारु सुवर्चला ।
मञ्जिष्ठा त्रिफला श्यामा वृषपुष्पं सगैरिकम् ॥ ४९ ॥
धीमान्पक्त्वा घृतप्रस्थं सम्यङ्मन्त्राभिमन्त्रितम् ।
द्विमासगर्भिणी नारी षण्मासान्न प्रयोजयेत् ॥ ५० ॥
सर्वाङ्गं जनयेत्पुत्रं शूरं पण्डितमानिनम् ।
जडगद्गदमूकत्वं पानादेवापकर्षति ॥ ५१ ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण नरः श्रुतिधरो भवेत् ।
नाग्निर्दहति तद्वेश्म न वज्रं हन्ति न ग्रहाः ॥ ५२ ॥
न तत्र म्रियते बालो यत्रास्ते सोमसंज्ञितं ।
वन्ध्यापि लभते पुत्रं सर्वामयविवर्जितम् ।
योनिदुष्टाश्च या नार्यो रेतोदुष्टाश्च ये नराः ॥ ५३ ॥
अस्य प्रभावात्कुक्षिस्थः स्फुटवाग्व्याहरत्यपि ।
द्राक्षा परूषकाश्मर्यो फलत्रयमुदाहृतम् ॥ ५४ ॥
" ॐ नमो महाविनायकाया-
मृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं
देहि रुद्रवचनेन स्वाहा "
सप्तदूर्वाभिमन्त्रितम् ॥ ५५ ॥

सरसों, वच, ब्राह्मी, शंखपुष्पी, पुनर्नवा, क्षीरविदारी, कूठ, मौरेठी, कुटकी, इलायची, मुनक्का, फाल्सा, खम्भारका फल शारिवा, काली शारिवा, हल्दी, पाढ, भाँगरा, देवदारु, हुलहुल, मञ्जीठ, त्रिफला, निसोथ, अडूसेके फूल, गेरू इनके साथ १ प्रस्थ घी सिद्ध कर ठीक मन्त्रसे अभिमन्त्रित कर दो मासकी गर्भिणी स्त्री ६ मासतक सेवन करे, फिर न सेवन करे वह पूर्णाङ्ग, बलवान्, पण्डित पुत्रको उत्पन्न करती है जडता, गद्गदता और मूकता पीनेसे ही नष्ट होती है। सात रात्रितक इसके प्रयोग करनेसे मनुष्य श्रुतग्राही हो जाता है। जहाँ यह घृत रहता है उस घरको अग्नि नहीं जलाती, न वज्र नष्ट करता है, न ग्रहोंका आक्रमण होता है, न बालक ही मरता है। जहाँ यह सोमघृत रहता है, वन्ध्या भी रोगरहित बालक उत्पन्न करती है। जो स्त्रियाँ योनिरोगसे पीडित तथा जो पुरुष शुक्रदोषसे दूषित होते है वे इसके सेवनसे शुद्ध होते है। इसके प्रभावसे पेटके अन्दर ही गर्भ बोलने लग जाता है। इसमें त्रिफलासे मुनक्का, फाल्सा और खम्भार लेना चाहिये। ७ दूब

लेकर नीचे लिखे मन्त्रसे बनाते समय तथा खाते समय अभिमन्त्रण करना चाहिये । मन्त्रः–" ॐ नमो महाविनायकयामृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा" ॥ ४८–५५ ॥

नीलोत्पलादिघृतम् ।

नीलोत्पलोशीरमधूकयष्टी-
द्राक्षाविदारीतृणपञ्चमूलैः ।
स्याज्जीवनीयैश्च घृतं विपक्वं
शतावरीकारसदुग्धमिश्रम् ॥ ५६ ॥
तच्छर्करापादयुतं प्रशस्त-
मसृग्दरे मारुतरक्तपित्ते ।
क्षीणे बले रेतसि संप्रनष्टे
कृच्छ्रे च रक्तप्रभवे च गुल्मे ॥ ५७ ॥

नीलोफर, खश, मौरेठी, मुनक्का, विदारीकन्द, तृणपञ्चमूल और जीवनीयगणके कल्कमें शतावरीका रस और दूध मिलाकर सिद्ध घृत चतुर्थांश शक्करके साथ मिलाकर सेवन करनेसे वातरक्तपित्तजन्य प्रदर बलकी क्षीणता, शुक्रनाश, मूत्रकृच्छ्र और रक्तज गुल्ममें लाभ पहुंचाता है ॥ ५६ ॥ ५७ ॥

बृहच्छतावरीघृतम् ।

शतावरीमूलतुलाश्चतस्रः संप्रपीडयेत् ।
रसेन क्षीरतुल्येन पचेत्तेन घृताढकम् ॥ ५८ ॥
जीवनीयैः शतावर्या मृद्वीकाभिः परूषकैः ।
पिष्टैः प्रियालैश्चाक्षांशैर्द्वियष्टीमधुकैर्भिषक् ॥ ५९ ॥
सिद्धशीते च मधुनः पिप्पल्याश्चाष्टकं पलम् ।
दत्त्वा दशपलं चात्र सितायास्तद्विमिश्रितम् ॥ ६० ॥
ब्राह्मणान्प्राशयेत्पूर्वं लिह्यात्पाणितलं ततः ।
योन्यसृक्शुक्रदोषघ्नं वृष्यं पुंसवनं च तत् ॥ ६१ ॥
क्षतक्षयं रक्तपित्तं कासं श्वासं हलीमकम् ।
कामलां वातरक्तं च विसर्पं हृच्छिरोग्रहम् ।
उन्मादादीनपस्मारान्वातपित्तात्मकाञ्जयेत् ॥ ६२ ॥

शतावरीकी जड २० सेर पीसकर रस निकालना चाहिये, उस रसके बराबर दूध मिलाकर घी ६ सेर ३२ तो० तथा जीवनीयगणकी ओषधियाँ शतावरी, मुनक्का, फाल्सा, व चिरौंजी प्रत्येक एक तोला तथा मौरेठी २ तोलेका कल्क छोडकर पकाना चाहिये । सिद्ध हो जानेपर उतार छान ठढाकर शहद ३२ तोला, छोटी पीपलका चूर्ण ३२ तोला व मिश्री ४० तो० मिलाकर पहिले ब्राह्मणोंको चटाना चाहिये, फिर १ तोला स्वयम् चाटना चाहिये । यह योनिरक्त और शुक्रके दोषोंको नष्ट करता, वाजीकर तथा बालक उत्पन्न करता है । क्षतक्षय, रक्तपित्त, कास, श्वास, हलीमक, कामला, वातरक्त, विसर्प, हृदय, और शिरकी जकडाहट, उन्माद और अपस्मारादि वातपित्तात्मक रोगोंको नष्ट करता है ॥ ५८–६२ ॥

लोमनाशका योगाः ।

दग्ध्वा शङ्खं क्षिपेद्रम्भास्वरसे तत्तु पेषितम् ।
तुल्यालं लेपतो हन्ति रोम गुह्यादिसम्भवम् ॥ ६३ ॥
रक्ताञ्जनापुच्छचूर्णयुक्तं तैलं तु सार्षपम् ।
सप्ताहं व्युषितं हन्ति मूलाद्रोमाण्यसंशयम् ।
कुसुम्भतैलाभ्यङ्गो वा रोम्णामुत्पाटितेऽन्तकृत् ॥ ६४ ॥

शखकी भस्मकर केलेके स्वरसमें छोडना चाहिये फिर उसमे समान भाग हरिताल मिलाकर लेप करनेसे गुह्यादिके लोम नष्ट होते हैं । रक्ताञ्जना(अञ्जननामिका)की पूँछके चूर्णके साथ सरसोका तैल ७ दिन रखकर लगानेसे जडसे बाल उड जाते हैं कुसुमके तैलकी मालिश भी रोम नष्ट करनेमें यम ही है ॥ ६३ ॥ ६४ ॥

आरग्वधादितैलम् ।

आरग्वधमूलपलं कर्षद्वितयं च शङ्खचूर्णस्य ।
हरितालस्य च खरजे मूत्रप्रस्थे पक्वञ्च कटुतैलम् ६५॥
तैलं तदिदं शङ्खहरितालचूर्णितं लेपात् ।
निर्मूलयति च रोमाण्यन्येषां सम्भवो नैव ॥ ६६ ॥

अमलतासकी जड ४ तोला, शङ्खचूर्ण २ तो०, हरिताल २ तो०, कटुतैल ४० तो० गधेका मूत्र १ प्रस्थ और जल मिलाकर सिद्ध तैलमें फिर शंख और हरितालका प्रक्षेप छोडकर लेप करनेसे बालोको उखाड देता है और नये जमते नहीं ॥ ६५ ॥ ६६ ॥

कर्पूरादितैलम् ।

कर्पूरभल्लातकशङ्खचूर्णं
क्षारो यवानां च मनःशिला च ।
तैलं विपक्वं हरितालमिश्रं
रोमाणि निर्मूलयति क्षणेन ॥ ६७ ॥

कर्पूर, भिलावा व शखका चूर्ण, जवाखार, मैनशिल, और हरिताल मिलाकर पकाया गया तैल क्षणभरमें रोमोको उखाड देता है ॥ ६७ ॥

क्षारतैलम्।

शुक्तिशम्बूकशंखानां दीर्घवृन्तात्समुष्ककात्।
दग्ध्वा क्षारं समादाय खरमूत्रेण गालयेत् ॥ ६८ ॥
क्षारार्धभागं विपचेत्तैलं च सार्षपं बुधः।
इदमन्तःपुरे देयं तैलमात्रेयपूजितम् ॥ ६९ ॥
बिन्दुरेकः पतेद्यत्र तत्र रोमापुनर्भवः।
मदनादिव्रणे देयमश्विभ्यां च विनिर्मितम् ॥ ७० ॥
अर्शसां कुष्ठरोगाणां पामादद्रुविचर्चिकाम्।
क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं सर्वक्लेदहरं परम् ॥ ७१ ॥

शुक्ति, घोंघा, शख, सोनापाठा व मोखा इन सबको जलाके क्षार बनाकर गधेके पेशावसे छानना चाहिये। क्षार जलसे आधा भाग सरसोंका तैल मिला पकावे। यह रनिवासमें देना चाहिये। इसका एक बिन्दु जहां गिर जाता है वहा फिर रोवाँ नहीं जमते। मदनादि (उपदंश) के घावमें इसे लगाना चाहिये। इसे अश्विनीकुमारने बनाया है। अर्श, कुष्ठ, पामा, दद्रु और विचर्चिकाको यह तैल नष्ट करता है। यह क्षारतैल समस्त व्रणोंके मवादको साफ करता है ॥ ६८–७१ ॥

इति योनिव्यापदधिकारः समाप्तः।

अथ स्त्रीरोगाधिकारः।

गर्भस्रावचिकित्सा।

मधुकं शाकबीजं च पयसा सुरदारु च।
अश्मन्तकः कृष्णतिलास्ताम्रवल्ली शतावरी ॥ १ ॥
वृक्षादनी पयस्या च तथैवोत्पलशारिवा।
अनन्ता शारिवा रास्ना पद्मा मधुकमेव च ॥ २ ॥
बृहतीद्वयकाश्मर्यक्षीरिशुङ्गास्त्वचो घृतम्।
पृथक्पर्णी बला शिग्रु श्वदंष्ट्रा मधुयष्टिका ॥ ३ ॥
शृङ्गाटकं बिसं द्राक्षा कशेरु मधुकं सिता।
मासेषु सप्त योगाः स्युरर्धश्लोकास्तु सप्तसु ॥ ४ ॥
यथाक्रमं प्रयोक्तव्या गर्भस्रावे पयोऽन्विताः।
कपित्थबिल्वबृहतीपटोलेक्षुनिदिग्धिका. ॥ ५ ॥
मूलानि क्षीरसिद्धानि दापयेद्भिषगष्टमे।
नवमे मधुकानन्तापयस्याशारिवाः पिबेत् ॥ ६ ॥
पयस्तु दशमे शुण्ठ्या शृतशीतं प्रशस्यते।

गर्भवतीको गर्भस्रावकी शङ्का होनेपर पहिले महीनेमें मौरेठी, शाकबीज, क्षीरकाकोली, देवदारु। दूसरे महीनेमें अश्मन्तक, काले तिल, मजीठ, शतावरी। तीसरे महीनेमें बांदा, क्षीरकाकोली, काली सारिवा। चौथे महीनेमें अनन्ता, शारिवा, रासन, भारङ्गी, मौरेठी। पांचवे महीनेमें छोटी बडी कटेरी, खम्भार, दूधवाले वृक्षोंके अङ्कुर और छाल तथा घृत। छठे महीनेमें पृष्ठपर्णी, खरेटी, सहिजन, गोखुरू, मौरेठी। सातवें महीनेमें सिघाडा, कमलके तन्तु, मुनक्का, कशेरू, मौरेठी, मिश्री। इन आधे आधे श्लोकमें वर्णित सात योगोंका गर्भस्रावको रोकनेके लिये दूधके साथ प्रयोग करना चाहिये। तथा कैथा, बेल, बड़ी कटेरी, परवल, ईख व छोटी कटेरीकी जड दूधमें सिद्धकर आठवें महीनेमें। नवम मासमें मौरेठी, यवासा, क्षीरविदारी, शारिवा तथा दशममासमें सोंठसे सिद्ध कर ठण्डा किया दूध देना चाहिये ॥ १–६ ॥–

अपरे प्रयोगाः।

सक्षीरा वा हिता शुण्ठी मधुकं देवदारु च ॥ ७ ॥
एवमाप्यायते गर्भस्तीव्रा रुक् चोपशाम्यति।
कुशकाशोरुबूकानां मूलैर्गोक्षुरकस्य च।
शृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत्परम् ॥ ८ ॥

दूधके साथ मौरेठी, सोंठ और देवदारु देना चाहिये। इस तरह गर्भ बढता है और तीव्र पीड़ा शान्त होती है। इसी प्रकार कुश, काश एरण्ड व गोखुरूकी जडसे सिद्ध कर ठण्डा किया दूध मिश्री मिलाकर देनेसे गर्भिणीका शूल नष्ट होता है ॥ ७ ॥ ८ ॥

कशेरुकादिक्षीरम्।

कशेरुशृङ्गाटकजीवनीय-
पद्मोत्पलैरण्डशतावरीभिः।
सिद्धं पयः शर्करया विमिश्रं
संस्थापयेद्गर्भमुदीर्णशूलम् ॥ ९ ॥

कशेरू, सिघाडा, जीवनीयगणकी ओषधियां, कमल, नीलोफर, एरण्ड शतावरीसे सिद्ध दूध शक्कर मिलाकर पीनेसे शूलसहित गर्भको स्थापित करता है ॥ ९ ॥

कशेरुकादिचूर्णम्।

कशेरुशृङ्गाटकपद्मकोत्पलं
समुद्गपर्णीमधुकं सशर्करम्।
सशूलगर्भस्रुतिपीडिताङ्गना
पयोविमिश्रं पयसान्नभुक् पिबेत् ॥ १० ॥

कशेरू, सिंघाडा, पद्माख, नीलोफर, मुद्गपर्णी, मौरेठीको दूधमे पका शक्करके साथ मिला शूल तथा गर्भस्रावसे पीडित स्त्री सेवन करे तथा दूधके साथ भात खावे ॥ १० ॥

शुष्कगर्भचिकित्सा ।

गर्भे शुष्के तु वातेन बालानां चापि शुष्यताम् ।
सितामधुककाश्मर्यैर्हितमुत्थापने पयः ॥ ११ ॥
गर्भशोषे त्वामगर्भाः प्रसहाश्च सदा हिताः ।

वातसे गर्भके सुखनेपर तथा बालकोंके सूखनेपर मिश्री, मौरेठी व खम्भारसे सिद्ध दूध पोषण करता है तथा गर्भके सूखनेपर कच्चे गर्भ तथा प्रसह प्राणियोंके मासरस उत्तम होते हैं ॥ ११ ॥–

सुखप्रसवोपायाः ।

पाठा लाङ्गलिसिंहास्यमयूरकजटैः पृथक् ॥ १२ ॥
नाभिवस्तिभगालेपात्सुखं नारी प्रसूयते ।
परूषकस्थिरामूललेपस्तद्वत्पृथक् पृथक् ॥ १३ ॥
वासामूले तु तद्वत्कटिबद्धे प्रसूयते ।
पाठायास्तु शिफा योनौ या नारी संप्रधारयेत्॥१४ ॥
उरःप्रसवकाले च सा सुखेन प्रसूयते ।
तुषाम्बुपरिपिष्टेन मूलेन परिलेपयेत् ॥ १५ ॥
लाङ्गल्याश्चरणौ सूते क्षिप्रमेतेन गर्भिणी ।
आटरूषकमूलेन नाभिबस्तिभगालेपः कर्तव्यः ॥ १६ ॥
गृहाम्बुना गेहधूमपानं गर्भापकर्षणम् ।
मातुलुङ्गस्य मूलानि मधुकं मधुसयुतम् ॥ १७ ॥
घृतेन सह पातव्यं सुखं नारी प्रसूयते ॥ १८ ॥
पुटदग्धसर्पकञ्चुक-
मसृणमसी कुसुमसारसहिताञ्जिताक्षी ।
झटिति विशल्या जायेत
गर्भवती मूढगर्भापि ॥ १९ ॥
गृहाम्बुना हिंगुसिन्धुपानं गर्भापकर्षणम् ।

पाढ कलिहारी, वासा व अपामार्ग इनमेंसे किसी एककी जड पीसकर नाभि, बस्ति और भगमें लेप करनेसे सुखपूर्वक स्त्रीके बालक उत्पन्न होता है। इसी प्रकार फालसा और शालिपर्णीमेंसे किसीकी जडका लेप अथवा वासाकी जडको कमरमें बाधनेसे शीघ्र ही बालक उत्पन्न हो जाता है। जो स्त्री पाढाकी जड योनिमें रखती है वह प्रसवकालमें सुखपूर्वक बालक उत्पन्न करती है। कलिहारीकी जड काञ्जीमें पीसकर पैरोंमें लगानेसे शीघ्र ही बालक हो जाता है। अडूसेकी जडसे भी नाभि, मूत्राशय और भगमें लेप करना चाहिये। तथा काञ्जीके साथ गृहधूम पिलाना चाहिये। इससे सुखपूर्वक गर्भोत्पत्ति होती है। बिजौरे निम्बूकी जड व मौरेठीके चूर्णको शहदमें मिलाकर घीके साथ पिलानेसे सुखपर्वक बालक होता है, पुटमें जला ये गयी सापकी केंचुलकी चिकनी भस्मको शहदके साथ आखमें लगानेसे स्त्री शीघ्र ही गर्भको बाहर करती है। चाहे मूढगर्भा ही क्यों न हो गृहाम्बुके साथ हींग व सेंधानमकका पान गर्भको बाहर निकालता है॥ १२--१९॥–

सुप्रसूतिकरो मन्त्रः ।

इहामृतं च सोमश्च चित्रभानुश्च भामिनि ।
उच्चैःश्रवाश्च तुरगो मन्दिरे निवसन्तु ते ॥ २० ॥
इदममृतमपां समुद्धृतं वै-
भवलघुगर्भमिमं विमुञ्चतु स्त्री ।
तदनलपवनार्कवासवास्ते
सह लवणाम्बुधरैर्दिशन्तु शान्तिम् ॥ २१ ॥
मुक्ताः पाशा विपाशाश्च मुक्ताः सूर्येण रश्मयः ।
मुक्तः सर्वभयाद्गर्भ एह्येहि मा चिरं स्वाहा ॥ २२ ॥

ऊपर लिखे मन्त्रसे सात बार अभिमन्त्रित जल पिलानेसे सुखपूर्वक बालक होता है ॥ २०–२२ ॥

यन्त्रप्रयोगः ।

जलं च्यवनमन्त्रेण सप्तवाराभिमन्त्रितम् ।
पीत्वा प्रसूयते नारी दृष्ट्वा चोभयत्रिंशकम् ॥ २३ ॥
तथोभयपञ्चदशदर्शनं सुखसूतिकृत् ।
षोडशर्तुवसुभिः सह पक्षदिगष्टादशाभिरेव च ॥ २४ ॥
अर्कभुवनाब्धिसहितैरुभयत्रिंशकमिदमाश्चर्यम् ।
वसुगुणाब्ध्येकबाणनवषट्सप्तयुगैः क्रमात् ॥ २५ ॥
सर्वे पञ्चदशद्विस्तु त्रिंशकं नवकोष्ठके ।

उभयपञ्चदशकम् ।

८	३	४
१	५	९
६	७	२

उभयत्रिंशकम् ।

१६	६	८
२	१०	१८
१२	१४	४

इन यन्त्रोंको लिखकर दिखानेसे सुखपूर्वक बालक हो जाता है ॥ २३–२५ ॥

अपरापातनयोगाः ।

कटुतुम्ब्यहिनिर्मोककृतवेधनसर्षपैः ॥ २६ ॥
कटुतैलान्वितो धूमो योनेः पातयतेऽपराम् ।
कचवेष्टितयाङ्गुल्या घृष्टे कण्ठे सुखं पतत्यपरा ॥ २७ ॥

---

१ गृहाम्बु काञ्जीको कहते हैं ।

कडुई तोम्बी, सांपकी केंचुल, कडुई तरोई व सरसोंके बीजके चूर्णको कडुए तैलके साथ धूम योनिकी अपराको गिराता है । बालोंको अगुलीमें लपेटकर कण्ठमें घिसनेसे अपरा गिरती है ॥ २६ ॥ २७ ॥

अपरो मन्त्रः ।

एरण्डस्य वनात् काको गङ्गातीरमुपागत ।
इत पिबति पानीय विशल्या गर्भिणी भवेत् ॥
अनेन सप्तधामन्त्र्य जलं देय विशल्यकम् ॥ २८ ॥

एरण्डके बनसे कौआ गंगातीर आया, इधर पानी पीता है, इधर गर्भिणी गर्भरहित होती है । इस मन्त्रसे सात वार आमन्त्रित कर जल पीनेसे गर्भिणी गर्भरहित होती तथा अपराका पातन होता है ॥ २८ ॥

अपरे योगाः ।

मूलेन लाङ्गलिक्या वा सलिप्ते पाणिपादे च ।
अपरापातन मद्यै पिप्पल्यादिरज. पिबेत् ॥ २९ ॥
गरीमदनदहनमूलं चिरजमपि ।
गर्भं मृतममृतं वा निपातयति ॥ ३० ॥

कलिहारीकी जडसे हाथ पैरोंमें लेप कर शराबके साथ पिप्पल्यादिचूर्ण पीनेसे अपरा पातन होता है इसी प्रकार गरी (नरियल) मैनफल व चीतकी जडका चूर्ण भी मृत या जीवित गर्भको गिराता है ॥ २९-३० ॥

मक्कलचिकित्सा ।

शालिमूलाक्षमात्रं वा मूत्रेणाम्लेन वान्वितम् ।
उपकुञ्चिका पिप्पलीं च मदिरा लाभत पिबेत् ॥३१॥
सौवर्चलेन संयुक्ता योनिशूलनिवारणीम् ।
सूताया हृच्छिरोवास्तिशूलं मक्कलसञ्ज्ञितम् ॥ ३२ ॥
यवक्षारं पिबेत्तत्र सर्पिषोष्णोदकेन वा ।
पिप्पल्यादिगणक्काथं पिबेद्वा लवणान्वितम् ॥ ३३ ॥

शालि (धान) की जड १ तो० मूत्र अथवा काञ्जीके साथ अथवा कलौंजी, छोटी पीपल, शराब व काला नमक मिलाकर पीनेसे योनिशूल तथा प्रसूता स्त्रीके हृदय, शिर और वस्तिके शूल तथा मक्कल शूल नष्ट होता है । अथवा उसमें जवाखार घी अथवा गरम जलके साथ पीवे अथवा पिप्पल्यादि गणका क्राथ नमकके साथ पीना चाहिये ॥ ३१-३३ ॥

रक्तस्रावचिकित्सा ।

पारावतशकृत्पीतं शालितण्डुलवारिणा ।
गर्भपातान्तरोत्थे तु रक्तस्रावनिवारणम् ॥ ३४ ॥

कबूतरकी बीट चावलके जलमें पीनेसे गर्भपातके अनन्तर बहते हुए रक्तको शांत करता है ॥ ३४ ॥

किक्किशरोगचिकित्सा ।

जलपिष्टवरुणपत्रै' सघृतैरुद्वर्तनालेपौ ।
किक्किशरोगं हरतो गोमयघर्षादथो विहितौ ॥ ३५ ॥

जलमें पिसे वरुणाके पत्तोंके चूर्णको घीमें मिलाकर किया गया लेप और उबटन अथवा गोबरसे घिसना किक्किश रोगको शांत करता है ॥ ३५ ॥

ह्रीबेरादिक्काथः ।

ह्रीबेरारणिरक्तचन्दनबलाधन्याकवत्सादनी-
मुस्तोशीरहवासपर्पटविपाक्काथं पिबेद्गर्भिणी ।
नानादोषयुतातिसारकगदे रक्तस्रुतौ वा ज्वरे
योगोऽय मुनिभि पुरा निगदित' सूत्यामये शस्यते ३६

सुगन्धवाला, अरणी, लालचन्दन, खरेंटी, धनिया, गुर्च, मोथा, खश, यवासा, पित्तपापडा, व अतीसका क्काथ गर्भिणी अनेक दोषयुक्त अतीसार, रक्तस्राव तथा ज्वरमें पीवे, तथा यह योग मुनियोंने सूतिका रोगमें भी कहा है ॥ ३६ ॥

अमृतादिक्काथः ।

अमृतानागरसहचरभद्रोत्कटपञ्चमूलजलदजलम् ।
शृतशीतं मधुयुक्तं निवारयति सूतिकातङ्कम् ॥ ३७ ॥

गुर्च, सोंठ, कटसैला, गन्धप्रसारणी, पञ्चमूल नागरमोथा व सुगन्धवालाके क्काथको ठण्ढाकर शहद मिला सेवन करनेसे ज्वर व सूतिकारोग नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

सहचरादिक्काथः ।

सहचरपुष्करवेतसमूल
वैकङ्कत दारु कुलत्थसमम् ।
जलमत्र सैन्धवहिङ्गुयुत
सद्यो घोरसूतिकाशूलहरम् ॥ ३८ ॥
दशमूलीकृत क्काथ सद्य सूतिरुजापह. ।

कटसैला, पोहकरमूल, वेतकी जड,विकङ्कत, देवदारु, कुलथी समान भाग ले क्काथ बना सेंधानमक व भुनी हींग मिलाकर पीनेसे शीघ्रही घोर सूतिका रोग नष्ट होता है । दशमूलका क्काथ तत्काल सूतिकादोषको नष्ट करता है ३८

वज्रककाञ्जिकम् ।

पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्य शुण्ठी यमानिका ॥ ३९ ॥
जीरके द्वे हरिद्रे द्वे विडसौवर्चल तथा ।
एतैरेवौषधैः पिष्टैरारनालं प्रसाधितम् ॥ ४० ॥

आमवातहरं वृष्यं कफघ्नं वह्निदीपनम् ।
काञ्जिकं वज्रकं नाम स्त्रीणामग्निविवर्धनम् ॥ ४१ ॥
मक्कलशूलशमनं परं क्षीराभिवर्धनम् ।
क्षीरपाकविधानेन काञ्जिकस्यापि साधनम् ॥ ४२ ॥

छोटी पीपल, पिपरामूल, चव्य, सोंठ, अजवाइन, जीरा, सफेद जीरा, स्याह, हल्दी, दारुहल्दी, विडनमक व कालानमक इन औषधियोंसे सिद्ध काञ्जी आमवातको नष्ट करती, वृष्य, कफघ्न, अग्निदीपक तथा स्त्रियोंके दूधको बढाती है तथा मक्कलशूल नष्ट करती है। इस प्रयोगमें उपरोक्त औषधियाँ मिलाकर १ भाग, काञ्जी ८ भाग और जल ४ भाग मिलाकर पकाना चाहिये जल-मात्र जल जानेपर उतार छानकर प्रयोग करना चाहिये ॥ ३९-४२ ॥

पञ्चजीरकगुडः ।

जीरकं हपुषा धान्यं शताह्वा सुरदारु च ।
यमानी कुष्टिका हिङ्गुपत्रिका कासमर्दकम् ॥ ४३ ॥
पिप्पली पिप्पलीमूलमजमोदाथ वाप्पिका ।
चित्रकं च पलांशानि तथान्यच्च चतुष्पलम् ॥ ४४ ॥
कशेरुकं नागरं च कुष्ठं दीप्यकमेव च ।
गुडस्य च शतं दद्याद्घृतप्रस्थं तथैव च ॥ ४५ ॥
क्षीरद्विप्रस्थसंयुक्तं शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ।
पञ्चजीरक इत्येष सूतिकानां प्रशस्यते ॥ ४६ ॥
गर्भार्थिनीनां नारीणां बृंहणीये समारुते ।
विंशतिर्व्यापदो योने कासं श्वासं ज्वरं क्षयम् ॥ ४७ ॥
हलीमकं पाण्डुरोगं दौर्गन्ध्यं बहुमूत्रताम् ।
हन्ति पीनोन्नतकुचा पद्मपत्रायतेक्षणाः ।
उपयोगात्स्त्रियो नित्यमलक्ष्मीमलवर्जिता ॥ ४८ ॥

जीरा, हाऊबेर, धनिया, सौंफ, देवदारु, अजवाइन, राई, नारीकी पत्ती, कसौंदी, छोटी पीपल, पिपरामूल, अजमोद, छोटी राई, तथा चीतकी जड प्रत्येक ४ तो०, कशेरू १६ तो०, सोंठ १६ तोला, कूठ १६ तो०, अजवाइन १६ तो० गुड, ५ सेर, घी १२८ तो०, दूध ३ सेर ३ छ० १ तो० धीरे धीरे मन्द आंचसे पकाना चाहिये। यह पञ्चजीरक गुड सूतिका स्त्रियोंके लिये हितकर है तथा गर्भकी इच्छावाली स्त्रियोंके लिये, बृंहणीय वायुरोगमें, योनिकी २० व्यापत्तियों, कास, श्वास, ज्वर क्षय, हलीमक, पाण्डुरोग, दुर्गंधि तथा बहुमूत्रतामें इसे देना चाहिये। इसके प्रयोगसे स्त्रियां मोटे ऊँचे कुचवाली कमल सदृश नेत्रवाली और सुन्दर होती हैं॥ ४३-४८॥

क्षीराभिवर्धनम् ।

वनकार्पासिकेक्षूणां मूलं सौवीरकेण वा ।
विदारीकन्दं सुरया पिबेद्वा स्तन्यवर्धनम् ॥ ४९ ॥
दुग्धेन शालितण्डुलचूर्णपानं विवर्धयेत् ।
स्तन्यं सप्ताहत. क्षीरसेविन्यास्तु न संशय ॥ ५० ॥

जंगली कपासकी जड और ईखकी जडके चूर्णको काञ्जीके साथ अथवा विदारीकन्दको शराबके साथ दूध बढानेके लिये पीना चाहिये। दूधका सेवन करनेवाली और दूधके ही साथ शालिचावलके चूर्णको फाकनेवाली स्त्रीका दूध ७ दिनमें निःसन्देह बढ जाता है॥४९॥५०॥

स्तन्यविशोधनम् ।

हरिद्रादिं वचादिं वा पिबेत्स्तन्यविशुद्धये ।
तत्र वातात्मके स्तन्ये दशमूलीजलं पिबेत् ॥ ५१ ॥
पित्तदुष्टेऽमृताभीरुपटोलं निम्बचन्दनम् ।
धात्री कुमारश्च पिबेत्काथयित्वा सशारिवम् ॥ ५२ ॥
कफे वा त्रिफलामुस्ताभूनिम्बं कटुरोहिणीम् ।
धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषरसाशिनी ॥ ५३ ॥
भार्ङ्गीवचादारुपाठा पिबेत्सातिविषा. शृता. ॥ ५४ ॥

स्तन्यकी शुद्धिके लिये हरिद्रादि या वचादिका प्रयोग करे। वातात्मक दूधमें दशमूलका जल पीवे। पित्तसे दूषित दूधमें धाय तथा कुमार, गुर्च, शतावरी, परवल नीम, चन्दन और शारिवाका क्वाथ पीवे। कफमें त्रिफला, नागरमोथा, चिरायता व कुटकीका क्वाथ पीवे। मूँगके यूषके साथ भोजन करे। अथवा भारगी, वच, देवदारु, पाढ व अतीसका क्वाथ पीवे ॥ ५१-५४ ॥

स्तनकीलचिकित्सा ।

कुक्कुरमेन्जुकमूलं चर्वितमास्ये विधारितं जयति ।
सप्ताहात्स्तनकीलं स्तन्यं चैकान्ततः कुरुते ॥ ५५ ॥

नागवलाकी जडको मुखमें चबाकर स्तनमें लगानेसे ७ दिनमें स्तनकील नष्ट होता और दूध बढता है ॥ ५५ ॥

स्तनशोथचिकित्सा ।

शोथं स्तनोत्थितमवेक्ष्य भिषग्विदध्या-
द्यद्विद्रधावभिहितं त्विह भेषजं तत् ।
आमे विदह्यति तथैव गते च पाकं
तस्या स्तनौ सततमेव च निर्दुहीत ॥ ५६ ॥

स्तनोंकी सूजनमें विद्रधिमें आम, पच्यमान व पक्व अवस्थामें कही गयी चिकित्सा करे तथा स्तनोंको सदा दुहते रहना चाहिये ॥ ५६ ॥

स्तनपीडाचिकित्सा।

विशालामूललेपस्तु हन्ति पीडा स्तनोत्थिताम्।
निशाकनकफलाभ्यां लेपश्चापि स्तनार्तिहा ॥ ५७ ॥

इन्द्रायणकी जडको पीसकर लेप करनेसे स्तनपीडा दूर होती है। इसी प्रकार हल्दी व धतूरेके फलोंका लेप स्तनपीडाको नष्ट करता है ॥ ५७ ॥

स्तनकाठिनीकरणम्।

मूषिकवसया शूकरगजमहिषमांसचूर्णसंयुतया।
अभ्यङ्गमर्दनाभ्यां कठिनौ पीनौ स्तनौ भवतः ॥ ५८ ॥
महिषीभवनवनीतं व्याधिबलोग्रास्तथैव नागबला।
पिष्ट्वा मर्दनयोगात्पीन कठिनं स्तनं कुरुते ॥ ५९ ॥

मूसेकी चर्बी, शूकर, हाथी व भैंसाके मांसके चूर्णके साथ स्तनोंपर मालिश तथा मर्दन करनेसे स्तन कडे और मोटे होते हैं। इसी प्रकार भैंसीका मक्खन, कूठ, खरेटी, वच व गंगेरनको पीसकर स्तनोंपर मर्दन करनेसे स्तन मोटे तथा कडे होते हैं ॥ ५८ ॥ ५९ ॥

श्रीपर्णीतैलम्।

श्रीपर्णीरसकल्काभ्यां तैलं सिद्ध तिलोद्भवम्।
तत्तैलं तूलकेनैव स्तनस्योपरि धारयेत् ॥ ६० ॥
पतितावुत्थितौ स्त्रीणा भवेता तु पयोधरौ ॥ ६१ ॥

खम्भारके रस और कल्कसे सिद्ध तिलतैलमें भिगोये हुए फोहेको स्तनपर रखनेसे गिरे हुए स्तन उठ जाते हैं ॥ ६० ॥ ६१ ॥

काशीसादितैलम्।

काशीसतुरगगन्धाशारिवागजापिप्पलीविपक्वेन।
तैलेन यान्ति वृद्धिं स्तनकर्णवराङ्गलिङ्गानि ॥ ६२ ॥

काशीस, असगन्ध, शारिवा व गजपीपलसे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे स्तन, कान, मुख और लिङ्ग बढते हैं ॥ ६२ ॥

स्तनस्थिरीकरणम्।

प्रथमर्तौ तण्डुलाम्भो नस्यं कुर्यात्स्तनौ स्थिरौ।
गोमहिषीघृतसहित तैलं श्यामाकृताञ्जलिवचाभि ६३॥
सत्रिकटुनिशाभिः सिद्धं नस्यं स्तनोत्थापनं परम्।
तनूकरोति मध्यं पीतं मथितेन माधवीमूलम् ॥ ६४ ॥

प्रथम ऋतुकालमें गाय और भैंसीके घीके साथ चावलके जलका नस्य देनेसे स्तन स्थिर होते हैं। इसी तरह प्रियङ्गु, लज्जालु, वच, सौंठ, मिर्च, पीपल और हल्दीसे सिद्ध तैलका नस्य स्तनोंको उठाता है, इसी प्रकार मट्ठेके साथ माधवी (कुन्द) की जडको पीसकर पीनेसे कमर पतली होती है ॥ ६३–६४ ॥

योनिसंकोचनं वशीकरणं च।

स्याच्छिथिलापि च गाढा
सुरगोपाज्याभ्यक्तो योनिः।
शववहनस्थितबन्धन-
रज्ज्वा सन्ताडनाद्धि दयितेन ॥ ६५ ॥
नश्यत्यथबलाद्द्वेषः पत्यौ सहज कृतोऽथवा योगैः ॥
दत्त्वैव दुग्धभक्तं विप्रायोत्पाट्य सितबलामूलम् ॥
पुष्ये कन्यापिष्टं दत्तमनिच्छाहर भक्ष्ये ॥ ६६ ॥

इन्द्रगोप और घीकी मालिशसे ढीली योनि कडी हो जाती है तथा पतिसे मुर्देकी रथीके बन्धनकी रस्सीसे ताडित होनेसे स्वाभाविक अथवा कृत्रिम पतिद्वेष नष्ट होता है। इसी प्रकार ब्राह्मणको दूध भात खिलाकर पुष्यनक्षत्रमें सफेद खरेटीकी जड उखाड कन्यासे पीसवाकर भोजनमें मिला खिलानेसे पतिका पत्नीकी ओर प्रेम होता है ॥ ६५॥६६ ॥

इति स्त्रीरोगाधिकारः समाप्तः।

अथ बालरोगाधिकारः।

सामान्यक्रमः।

कुष्ठवचाभयाब्राह्मीकमलं क्षौद्रसर्पिषा।
वर्णायुःकान्तिजननं लेहं बालस्य दापयेत् ॥ १ ॥
स्तन्याभावे पयश्छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत्।
कर्कन्धोर्गुडिका तप्ता निर्वाप्य कटुतैलके।
तत्तैल पानतो हन्ति बालानामुल्वमुद्धतम् ॥ २ ॥
व्योषशिवोग्रा रजनी कल्क वा पीतमथ पयसा।
उल्बमशेषं हरते पटुता बालस्य चात्यन्तम् ॥ ३ ॥

कूठ, वच, बडी हरोंका छिल्का, ब्राह्मी व कमलके चूर्णको शहद और घीके साथ मिलाकर बालकको देना चाहिये। इससे बालकका वर्ण, आयु और कांति बढती है। और माके दूध न होनेपर बकरी अथवा गायका

दूध तद्गुण ही होता है उसे पीना चाहिये । बेरकी गोली बना तपाकर तैलमे बुझाना चाहिये । यह तैल बालकोंके पिलानेसे जरायुके अंशको साफ करता है इसी प्रकार त्रिकटु, हर्र, बच, व हल्दीके कल्कको दूधके साथ पिलानेसे जरायु दोषको नाशता है तथा बालकको फुर्तीला बनाता है ॥ १–३ ॥

तुण्डिचिकित्सा ।

मृत्पिण्डेनाग्नितप्तेन क्षीरसिक्तेन सोष्मणा ।
स्वेदयेदुत्थिता नाभि शोथस्तेन प्रशाम्यति ॥ ४ ॥

मिट्टीके ढेलेको अग्निमे तपा दूधमे बुझाकर गरम गरम उसी दूधके सिञ्चनसे नाभिशोथ शात होता है ॥ ४ ॥

नाभिपाकचिकित्सा ।

नाभिपाके निशालोध्रप्रियङ्गुमधुकैः शृतम् ।
तैलमभ्यञ्जने शस्तमेभिर्वाप्यवचूर्णनम् ॥ ५ ॥

नाभिपाकमे हल्दी, लोध, प्रियङ्गु व मौरेठीसे सिद्ध तैल लगाना अथवा चूर्णका उर्राना हितकर है ॥ ५ ॥

अहिण्डिकाचिकित्सा ।

सोमग्रहणे विधिवत्केकिशिखामूलमुद्धृतं लब्धम् ।
जघनेऽथ कन्धरायां क्षपयत्याहिण्डिका नियतम्॥ ६ ॥
सप्तदलपुष्पमरिचं पिष्टं गोरोचनासहितम् ।
पीत तद्वत्तण्डुलभक्तकृतो दग्धपिष्टकप्राश ॥ ७ ॥
जम्बुकनासा वायसजिह्वा नाभिर्वराहसंभूता ।
कांस्यं रसोऽथ गरलं प्रावड्भेकस्य वामजङ्घास्थि॥८॥
इत्येकशोऽथ मिलितं विधृत ग्रीवादिकटिदेशे ।
अहिण्डिकाप्रशमनमभ्यङ्गो नातिपथ्यविधिः ॥ ९ ॥

चन्द्रग्रहणमें विधिपूर्वक मयूरशिखाकी जड उखाड कमर या गर्दनमें बान्धनेसे अहिंडिका रोग अवश्य नष्ट होता है । इसी प्रकार सप्तपर्णके फूल, काली मिर्च व गोरोचनको पीसकर दूधके साथ पिलाना चाहिये । अथवा चावलके भातकी जली पिठी पीसकर दूध व शहद मिलाकर पिलाना चाहिये । इसी प्रकार शृगालकी नाक, कौएकी जिह्वा, शूकरकी नाभि, कासा, पारद और सर्पविष तथा वर्षाती मेढककी वामजंघाकी हड्डी सब एकमे मिलाकर गर्दन या कमर आदिमें बाधना अहिंडिका शान्त करता है । इसमें अभ्यंग या पथ्यविधि-विशेष नहीं है ॥ ६–९ ॥

अनामकचिकित्सा ।

अनामके घुर्घुरिकामुखमांसमरिचरोचना ।
नवनीत च संमिश्र्य खादेत्तद्रोगनाशनम् ॥ १० ॥
तैलाक्तशिरस्तालुनि सप्तदलार्कस्नुहीभवं क्षीरम् ।
दत्त्वा रजनीचूर्णं दत्ते नश्येदनामको रोगः ॥ ११ ॥
लेहयेच्च शुना बालं नवनीतेन लेपितम् ।
स्फुटकपत्रजरसोद्वर्तनं च हि तद्धितम् ॥ १२ ॥

अनामकमे घुर्घुरिका (कीट) के आगेका मांस, काली मिर्च, गोरोचन और मक्खन मिलाकर खानेसे यह रोग नष्ट होता है । शिरमें तालुपर तैल चुपर सप्तदल, आक और सेहुण्डके दूधको लगाकर ऊपरसे हल्दीका चूर्ण उर्रानेसे अनामक रोग नष्ट होता है । बालकके शरीरमें मक्खनका लेप कर कुत्तेसे चटाना चाहिये ॥ १०–१२ ॥

अनामकहरं तैलम् ।

तैलस्य भागमेकं मूत्रस्य द्वौ च शिम्बिदलरसस्य ।
गव्यं पयश्चतुर्गुणमेव दत्त्वा पचेत्तैलम् ।
तेनाभ्यङ्ग सततं रोगमनामकाख्यमपहरति ॥ १३ ॥

एक भाग तैल, २ भाग गोमूत्र, २ भाग सेमकी पत्तीका रस, ४ भाग गोदुग्ध छोडकर तैल पकाना चाहिये । इससे सदा मालिश आनामक रोग नष्ट करती हैं ॥ १३ ॥

कज्जलम् ।

आर्कतूलकमाविकरोमाण्यादाय केशराजस्य ।
स्वरसेनाक्ते वस्त्रे कृत्वा वर्तिं च तैलाक्ताम् ॥ १४ ॥
तज्जातकज्जलाञ्जितलोचनयुगलोऽप्यलंकृतो बाल. ।
कष्टमनामकरोगं क्षपयति भूतादिक चापि ॥ १५ ॥

आककी रुई व भेडके बाल ले भागरेके रसमे तरकर सुखा वत्ती बना तेलमे डुबोकर जलाना चाहिये । इससे बनाये गये काजलको बालककी आँखोमे लगानेसे अनामकरोग तथा भूतादि बाधा शान्त होती है ॥१४॥१५॥

अपरे प्रयोगाः ।

चालनिकातलसंस्थितपोत सप्लाव्य गव्यमूत्रेण ।
ओकोदशालिकायां रजकक्षारोदकस्नानम् ॥ १६ ॥
दासक्रयणश्रावणवराटिकारसेन्द्रपूरिता धृता कण्ठे ।
नलिनीदले च शयनं सुकष्टमनामकाख्यरोगघ्नम् ॥१७॥

लडकेको धोबीके पाटेपर खडा कर चलनीसे गोमूत्र छोडकर स्नान कराना चाहिये फिर धोबीके क्षार मिश्रित

जलमें स्नान कराना चाहिये । इसी प्रकार नौकर द्वारा खरीदी गयी किसी योगी या पाखण्डीके पासकी कौडी पारद भरकर गलेमें बांधनेसे अथवा कमलके पत्तोंकी शय्यापर सुलानेसे अनामकरोग दूर होता है॥१६॥१७॥

सामान्यमात्राः ।

भैषज्यं पूर्वमुद्दिष्टं नराणां यज्ज्वरादिषु ।
देयं तदेव बालानां मात्रा तस्य कनीयसी ॥ १८ ॥
प्रथमे मासि जातस्य शिशोर्भेषजरक्तिका ।
अवलेह्या तु कर्तव्या मधुक्षीरसिताघृतैः ॥ १९ ॥
एकैका वर्धयेत्तावद्यावत्संवत्सरो भवेत् ।
तदूर्ध्वं माषवृद्धिः स्याद्यावद्वापोडशाब्दिका ॥ २० ॥

मनुष्योंके लिये ज्वरादिकोंमें जो ओषधियां बतायी गयी हैं वही बालकोंको देना चाहिये । पर मात्रा छोटी रहे । पहिले महीनेमें १ रत्ती औषधि शहद, दूध, घी व मिश्रीसे पतली कर पिलाना चाहिये । महीनेकी वृद्धिके साथ साथ औषध मात्रा भी एक एक रत्ती प्रतिमास बढाना चाहिये । सालभरतक यही क्रम रखनेके अनन्तर फिर प्रति वर्ष १ माशा सोलह वर्षतक बढाना चाहिये * ॥ १८–२० ॥

हरिद्रादिक्वाथः ।

हरिद्राद्वयंयष्ट्याह्वसिंहीशक्रयवैः कृतः ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नः कपायस्तन्यदोषजित् ॥ २१ ॥

हल्दी, दारुहल्दी, मौरेठी, कटेरी व इन्द्रयवका क्वाथ बालकोंके ज्वरातिसारको नष्ट करता तथा स्तन्य दोषको जीतता है ॥ २१ ॥

चातुर्भद्रचूर्णम् ।

घनकृष्णारुणाशृङ्गीचूर्णं क्षौद्रेण संयुतम् ।
शिशोर्ज्वरातिसारघ्नं कासश्वासवमीहरम् ॥ २२ ॥

नागरमोथा, छोटी, पीपल, मञ्जीठ व काकडासिंगीका चूर्ण शहदके साथ बालकको देनेसे ज्वरातिसारको नष्ट करता तथा कास, श्वास व वमनको शान्त करता है ॥ २२ ॥

धातक्यादिलेहः ।

धातकीबिल्वधन्याकलोध्रेन्द्रयववालकैः ।
लेहः क्षौद्रेण बालानां ज्वरातीसारवान्तिजित् ॥ २३ ॥

धायके फूल, बेल, धनियां, लोध व इन्द्रयवसे बनाया गया लेह शहदके साथ बालकोंके ज्वरातिसार और वमनको शांत करता है ॥ २३ ॥

रजन्यादिचूर्णम् ।

रजनीदारुसरलश्रेयसीबृहतीद्वयम् ।
पृश्निपर्णी शताह्वा च लीढं मासिकसर्पिषा ॥ २४ ॥
ग्रहणीदीपनं हन्ति मारुतार्तिं सकामलाम् ।
ज्वरातीसारपाण्डुघ्नं बालानां सर्वशोथनुत् ॥ २५ ॥

हल्दी, देवदारु, सरल धूप, गजपीपल, छोटी कटेरी, बडी कटेरी, पिठिवन और सौंफके चूर्णको शहद व घीके साथ चाटनेसे बालकोंकी ग्रहणी दीप्त होती, वायुकी पीडा, कामला, ज्वरातिसार, पाण्डु और समस्त शोथ नष्ट होते हैं ॥ २४ ॥ २५ ॥

मिश्यादिलेहः ।

मिशी कृष्णाञ्जनं लाजा शृङ्गीमरिचमाक्षिकैः ।
लेहः शिशोर्विधातव्यश्छर्दिकासज्वरापहः ॥ २६ ॥

सौंफ, काला सुरमा, खील, काकडाशिंगी, काली मिर्च व शहदका लेह बालकोंकी वमन, खांसी और ज्वरको नष्ट करता है ॥ २६ ॥

शृङ्ग्यादिलेहः ।

शृङ्गीं समुस्तातिविषां विचूर्ण्य
लेहं विदध्यान्मधुना शिशूनाम् ।
कासज्वरच्छर्दिभिरर्दितानां
समाक्षिकां चातिविषां तथैकाम् ॥ २७ ॥

काकडासिंही, अतीस व नागरमोथाका चूर्णकर शहदके साथ अथवा अकेले अतीस शहदके साथ चटानेसे बालकोंकी खांसी, ज्वर और वमन शांत होती है॥ २७ ॥

छर्दिचिकित्सा ।

पीतं पीतं वमेद्यस्तु स्तन्यं तन्मधुसर्पिषा ।
द्विवार्ताकीफलरसं पञ्चकोलं च लेहयेत् ॥ २८ ॥
आम्रास्थिलाजासिन्धूत्थैर्लेहः क्षौद्रेण छर्दिनुत् ॥ २९ ॥
पिप्पलीमरिचानां तु चूर्णं समधुशर्करम् ।
रसेन मातुलुङ्गस्य हिक्काच्छर्दिनिवारणम् ॥ ३० ॥

जो बालक दूध पीकर वमन कर देता है उसे छोटी बडी कटेरीके फलोंका रस व पञ्चकोलका चूर्ण

---

* जवान पुरुषके लिये किसी औषधकी जितनी मात्रा हो सकती है उससे 1/720 भाग १ मासके बालकको, 1/96 भाग २ मासके बालकको, 1/64 भाग ३ मासके बालकको, 1/48 भाग चार मासके लिये इसी प्रकार बढाते हुए 1/16 भाग, एक वर्षवालेके लिये, 1/8 भाग २ वर्षवालेके लिये इसी प्रकार बढाते हुए १६ वर्षमें पूर्ण मात्रा देनी चाहिये ॥

शहद व घी मिलाकर पिलाना चाहिये। इसी प्रकार आमकी गुठली, खील व सेंधानमकका चूर्ण शहदके साथ चटानेसे वमन शान्त करता है। तथा छोटी पीपल व काली मिर्चका चूर्ण शहद, शक्कर और बिजौरे निम्बूके रसके साथ हिक्का और वमनको शान्त करता है२८-३०

पेट्यादिपिण्डः।

पेटीपाठामूलाजम्ब्व' सहकारवल्कलतः कल्कः।
इत्येकशश्च पिण्डो विधृतो हृन्नाभिमध्यताल्वादौ।
छर्द्यतीसारवेगं प्रवलं धत्ते तदेव नियमेन ॥ ३१ ॥

पेटी (पाढल) की जड, पाढकी जड, जामुनकी छाल व आमकी छालका एक गोला बनाकर हृदय व नाभिके बीचमें तथा तालुपर घुमानेसे निःसन्देह प्रबल वमन और अतीसारका वेग शान्त होता है ॥ ३१ ॥

बिल्वादिक्काथः।

बिल्वं च पुष्पाणि च धातकीना
जलं सलोध्रं गजपिप्पली च।
क्काथावलेहौ मधुना विमिश्रौ
बालेषु योज्यावतिसारितेषु ॥ ३२ ॥

बेलका गूदा, धायके फूल, सुगन्धवाला, लोध व गजपीपलका क्काथ या अवलेह शहद मिलाकर पिलानेसे बालकोंके दस्त बन्द होते हैं ॥ ३२ ॥

समङ्गादिक्काथः।

समङ्गाधातकीलोध्रशारिवाभिः श्रृतं जलम्।
दुर्धरेऽपि शिशोर्देयमतीसारे समाक्षिकम् ॥ ३३ ॥

लज्जालुके बीज, धायके फूल, लोध, व शारिवासे सिद्ध क्काथको शहदके साथ बालकोंके कठिन अतिसारमें देना चाहिये ॥ ३३ ॥

नागरादिक्काथः।

नागरातिविषामुस्तावालकेन्द्रयवैः श्रृतम्।
कुमारं पाययेत्प्रातः सर्वातीसारनाशनम् ॥ ३४ ॥

सोंठ, अतीस, नागरमोथा, सुगन्धवाला व इन्द्रयवके क्वाथको प्रातःकाल पिलानेसे समस्त अतीसार नष्ट होते हैं ॥ ३४ ॥

समङ्गादियवागूः।

समङ्गा धातकी पद्मं वयस्था कच्छुरा तथा।
पिष्टैरेतैर्यवागूः स्यात्सर्वातीसारनाशिनी ॥ ३५ ॥

लज्जालुके बीज, धायके फूल, कमल, वच व कोंचके बीजको पीसकर बनायी गयी यवागू सब अतीसारोंको नष्ट करती है ॥ ३५ ॥

लाजायोगः।

बिल्वमूलकषायेण लाजाश्चैव सशर्करा'।
आलोड्य पाययेद्बालं छर्द्यतीसारनाशनम् ॥ ३६ ॥

बेलकी जडके काढेके साथ खील व शक्कर मिलाकर बालकको पिलानेसे सब अतीसार नष्ट होते हैं ॥ ३६ ॥

प्रियङ्ग्वादिकल्कः।

कल्कः प्रियंगुकोलास्थिमध्यमुस्तरसाञ्जनैः।
क्षौद्रलीढः कुमारस्य छर्दितृष्णातिसारनुत् ॥ ३७ ॥

प्रियगु, बेरकी गुठलीकी मींगी, नागरमोथा व रसौंतके कल्कको शहदमें मिलाकर चाटनेसे बालककी प्यास, वमन तथा दस्त नष्ट होते हैं ॥ ३७ ॥

रक्तातिसारप्रवाहिकाचिकित्सा।

मोचरसः समङ्गा च धातकी पद्मकेशरम्।
पिष्टैरेतैर्यवागू' स्याद्रक्तातीसारनाशिनी ॥ ३८ ॥
लेहस्तैलसिताक्षौद्रतिलयष्ट्याह्वकल्कितः।
बालस्य रुन्ध्यान्नियतं रक्तस्रावं प्रवाहिकाम् ॥ ३९ ॥
लाजासयष्टीमधुकं शर्कराक्षौद्रमेव च।
तण्डुलोदकसंसिक्तं क्षिप्रं हन्ति प्रवाहिकाम् ॥ ४० ॥

मोचरस, लज्जालु, धायके फूल व कमलके केशरको पीसकर बनायी गयी यवागू रक्तातीसारको नष्ट करती है। तथा तेल, मिश्री, शहद, तिल व मौरेठीका कल्क मिलाकर बनाया गया लेह नियमसे रक्तस्राव और प्रवाहिकाको नष्ट करता है। इसी प्रकार खील मौरेठी, शक्कर व शहदके कल्कको चावलके जलके साथ पीनेसे शीघ्रही प्रवाहिका नष्ट होती है ॥ ३८–४० ॥

ग्रहण्यतीसारनाशका योगाः।

अङ्कोटमूलमथवा तण्डुलसलिलेन वटजमूलं वा।
पीतं हन्त्यतिसारं ग्रहणीरोगं सुदुर्वारम् ॥ ४१ ॥
सितजीरसर्जचूर्णं बिल्वदलोत्थाम्बुमिश्रितं पीतम्।
हन्त्यामरक्तशूलं गुडसहितं श्वेतसर्जो वा ॥ ४२ ॥
मरिचमहौषधकुटजं द्विगुणीकृतमुत्तरोत्तरं क्रमशः।
गुडतक्रयुक्तमेतद् ग्रहणीरोगं निहन्त्याशु ॥ ४३ ॥

अकोहरकी जड अथवा बरगदकी जडको पीस चावलके जलके साथ पीनेसे अतीसार और ग्रहणी नष्ट होती है, तथा सफेद जीरा और रालके चूर्णको बेलकी पत्तीके रसमें मिलाकर अथवा गुडके साथ सफेद रालके चूर्णको खानेसे आमरक्त

और शूल शान्त होता है। अथवा काली मिर्च १ भाग, सोंठ २ भाग, व कुरैया ४ भाग इनके चूर्णको गुड और मट्ठेमे मिलाकर पीनेसे ग्रहणीरोग शान्त होताहै ४१–४३॥

बिल्वादिक्षीरम्।

बिल्वशक्राम्बुमोचाब्दसिद्धमाज पय' शिशोः।
सामां सरक्तां ग्रहणीं पीतं हन्यात्त्रिरात्रत. ॥ ४४ ॥

बेलका गूदा, इन्द्रयव, सुगन्धवाला, मोचरस व नागरमोथासे सिद्ध बकरीके दूधको पीनेसे ३ रात्रिमें साम, सरक्त ग्रहणी दोष नष्ट होते हैं॥ ४४ ॥

तद्वदजाक्षीरसमो जम्बूत्वगुद्भवो रस ।

इसी प्रकार बकरीके दूधके साथ जामुनकी छालका रस लाभ करता है॥

गुदपाकचिकित्सा।

गुदपाके तु बालाना पित्तघ्नीं कारयेत्क्रियाम् ॥ ४५ ॥
रसाञ्जन विशेषेण पानालेपनयोर्हितम् ॥ ४६ ॥

बालकोंके गुदपाकमें पित्तनाशक क्रिया करनी चाहिये विशेषकर पिलाने व लगानेके लिये रसौंत हितकर है॥ ४५ ॥ ४६ ॥

मूत्रग्रहतालुपातचिकित्सा।

कणोपणसिताक्षौद्रसूक्ष्मैलासैन्धवैः कृत.।
मूत्रग्रहे प्रयोक्तव्य. शिशूनां लेह उत्तम. ॥ ४७ ॥
घृतेन सिन्धुविश्वैलाहिङ्गुभार्ङ्गीरजो लिहम्।
आनाहं वातिकं शूलं जयेत्तोयेन वा शिशु. ॥ ४८ ॥
हरीतकी वचा कुष्ठकल्कं माक्षिकसंयुतम्।
पीत्वा कुमारः स्तन्येन मुच्यते तालुपातनात् ॥ ४९ ॥

बालकोंके मूत्रकी रुकावटमें छोटी पीपल, काली मिर्च, मिश्री, शहद, छोटी इलायची सेंधानमकके लेहको चटाना चाहिये। वातज आनाह तथा शूलमें सेंधानमक, सोंठ, इलायची, भुनी हींग, भारंगीके चूर्णको घी अथवा जलके साथ चटाना चाहिये। तथा हर्र, बच और कूठके कल्कको शहद व दूधके साथ पिलानेसे तालुपातरोग नष्ट होता है॥ ४७–४९ ॥

मुखपाकचिकित्सा।

मुखपाके तु बालाना साम्रसारमयोरज.।
गैरिकं क्षौद्रसयुक्तं भेपज सरसाञ्जनम् ॥ ५० ॥
अश्वत्थत्वग्दलक्षौद्रैर्मुखपाके प्रलेपनम्।
दार्वीयष्ट्यभयाजातीपत्रक्षौद्रैस्तथापरम् ॥ ५१ ॥
सह जम्बीररसेन स्नुग्दलरसवर्षण सद्य.।
कृतमुपहन्ति हि पाकं मुखजं बालस्य चाश्वेव ॥ ५२ ॥
लावतित्तिरिवल्लूररजः पुष्परसान्वितम्।
द्रुतं करोति बालाना पद्मकेशरवन्मुखम् ॥ ५३ ॥

बालकोंके मुखपाकमे आमके अन्दरकी छाल, लोहभस्म, गेरू और रसौंत शहद मिलाकर लगाना तथा चटाना भी चाहिये तथा पीपलकी छाल और पत्तीके चूर्णका शहदके साथ लेप करना चाहिये। अथवा दारुहल्दी, मोरेठी, हर्र व जावित्रीके चूर्णका शहदके साथ लेप करना चाहिये। इसी प्रकार जम्बीरी निम्बूके रसके साथ सेहुडके पत्तोंके रसका घिसना बालकके मुखपाकको नष्ट करता है। और लवा व तीतर इनके शुष्कमांसके चूर्णको शहदके साथ चटानेसे बालकोंके मुख कमलके समान होते हैं॥ ५०–५३ ॥

दन्तोद्भवगदचिकित्सा।

दन्तोद्भवोत्थरोगेषु न बालमतियन्त्रयेत्।
स्वयमप्युपशाम्यन्ति जातदन्तस्य ते गदा' ॥ ५४ ॥

दन्त निकलते समय उत्पन्न रोगोंमें अधिक उपाय न करना चाहिये। दांत निकल जानेपर वे स्वयम् ही शान्त हो जाते हैं॥ ५४ ॥

अरिष्टशान्तिः।

सदन्तो यस्तु जायेत दन्ता. स्युर्यस्य. चोत्तराः।
कुर्यात्तस्य पिता शान्तिं बालस्यापि द्विजातये।
दद्यात्सदक्षिणं बाल नैगमेषं प्रपूजयेत् ॥ ५५ ॥

जो बालक दांतसहित ही पैदा हो अथवा जिसके पहिले ऊपरके दांत निकले उसका पिता शान्ति करे तथा बालकको दक्षिणाके सहित ब्राह्मणके लिये दान करे और नैगमेष ग्रहका पूजन करे॥ ५५ ॥

हिक्काचिकित्सा।

पञ्चमूलीकषायेण सघृतेन पय. शृतम्।
सशृङ्गवेरं सगुडं शीतं हिक्कार्दित. पिबेत् ॥ ५६ ॥
सुवर्णगैरिकस्यापि चूर्णानि मधुना सह।
लीढ्वा सुखमवाप्नोति क्षिप्रं हिक्कार्दित शिशु. ॥ ५७ ॥

हिक्कासे पीडित बालक घी सहित पञ्चमूलके काढ़ेसे सिद्ध कर ठण्ढा किया दूध गुड व सोंठके साथ पीवे तथा सुनहले गेरूके चूर्णको भी शहदके साथ चाटनेसे शीघ्र ही बालककी हिक्का शान्त होती है॥ ५६॥५७ ॥

---

१ वल्लूर शुष्कमांसम् पुष्परसो मधु। इति वाग्भटः।

चित्रकादिचूर्णम् ।

चित्रकं शृङ्गवेरं च तथा दन्ती गवाक्ष्यपि ।
चूर्णं कृत्वा तु सर्वेषां सुखोष्णेनाम्बुना पिबेत् ।
श्वासं कासमथो हिक्कां कुमाराणां प्रणाशयेत् ॥ ५८ ॥

चीतकी जड, सोंठ, दन्ती व इन्द्रायणका चूर्ण कर कुछ गरम जलके साथ पीनेसे बालकोंकी श्वास, कास, तथा हिक्का शान्त होती है ॥ ५८ ॥

द्राक्षादिलेहः ।

द्राक्षायासाभयाकृष्णाचूर्णं सक्षौद्रसर्पिषा ।
लीढं श्वासं निहन्त्याशु कासं च तमकं तथा ॥ ५९ ॥

मुनक्का, जवासा, बडी हर्र व छोटी पीपलके चूर्णको शहद व घीके साथ चाटनेसे कास तथा तमक श्वास (दमानामवाला रोग) नष्ट होते हैं ॥ ५९ ॥

पुष्करादिचूर्णम् ।

पुष्करातिविषाशृङ्गीमागधीधन्वयासकैः ।
तच्चूर्णं मधुना लीढं शिशूनां पञ्चकासनुत् ॥ ६० ॥

पोहकरमूल, अतीस, काकडाशिंगी, छोटी पीपल व यवासाके चूर्णको शहदके साथ चाटनेसे समस्त कास नष्ट होते हैं ॥ ६० ॥

तृष्णाचिकित्सा ।

दाडिमस्य च बीजानि जीरकं नागकेशरम् ।
चूर्णितं शर्कराक्षौद्रलीढं तृष्णाविनाशनम् ॥ ६१ ॥
मायूरपक्षभस्म व्युषितजलं तेन भावितं पेयम् ।
तृष्णाघ्नं वटकाङ्कुरशीतजलं वक्त्रशोषजिद्धृतं वक्त्रे ६२

अनारदाना, जीरा, व नागकेशरके चूर्णको शक्कर व शहद मिलाकर चाटनेसे प्यास नष्ट होती है तथा मयूरके पखकी भस्मको वासी जलमें मिलाकर पीना चाहिये । अथवा वरगदकी वौंका हिम बनाकर मुखमे कवल धारण करना प्यासको शान्त करता है * ॥ ॥ ६१ ॥ ६२ ॥

नेत्रामयचिकित्सा ।

पिष्टैश्छागेन पयसा दार्वीमुस्तकगैरिकैः ।
बहिरालेपनं शस्तं शिशोर्नेत्रामयापहम् ॥ ६३ ॥
मनःशिला शङ्खनाभिः पिप्पल्योऽथ रसाञ्जनम् ।
वर्तिः क्षौद्रेण संयुक्ता बालस्याक्षिरुजापहा ॥ ६४ ॥
मातृस्तन्यकटुस्नेहकाञ्जिकैर्भावितो जयेत् ॥
स्वेदाद्दीपशिखोत्तप्तो नेत्रामयमलक्तकः ॥ ६५ ॥

* कुछ पुस्तकोंमें यहांसे ७२ श्लोकतकका पाठ नहीं है ॥

शुण्ठीभृङ्गनिशाकल्कैः पुटपाकः ससैन्धवः ।
कुकूणकेऽक्षिरोगेषु भद्रमाश्च्योतनं हितम् ॥ ६६ ॥
क्रिमिघ्नालशिलादार्वीलाक्षाकाञ्चनगैरिकैः ।
चूर्णाञ्जनं कुकूणे स्याच्छिशूनां पोथकीषु च ॥ ६७ ॥
सुदर्शनामूलचूर्णादञ्जनं स्यात्कुकूणके ॥ ६८ ॥

दारुहल्दी, नागरमोथा और गेरूको बकरीके दूधमे पीसकर आंखोंके बाहर लेप करनेसे बालकके नेत्ररोग शान्त होते हैं । तथा मनशिल, शङ्खनाभि, छोटी पीपल, व रसौंतको पीसकर बनायी गयी बत्तीको शहदमें मिलाकर लगानेसे समग्र नेत्ररोग नष्ट होते हैं । तथा माताके दूध, कडुआ तैल और काञ्जीसे भावित वस्त्रको दीपशिखामें गरम कर सेकनेसे नेत्ररोग नष्ट होते हैं । इसीप्रकार सोंठ, भांगरा, हल्दी और सेंधानमकका पुटपाक कर आश्च्योतन करना कुकूणक (कुथुई) तथा अन्य नेत्ररोगोमे लाभ करता है तथा वायविडंग, हरिताल, मनशिल, दारुहल्दी, लाख, सुनहल गेरूके चूर्णका अञ्जन बालकोंके कुकूणक तथा पोथकी रोगमें लगाना चाहिये । कुकूणकमें सुदर्शनकी जडके चूर्णका भी अञ्जन किया जाता है ॥ ६३–६८ ॥

सिध्मपामादिचिकित्सा ।

गृहधूमनिशाकुष्ठवाजिकेन्द्रयवैः शिशोः ।
लेपस्तक्रेण हन्त्याशु सिध्मपामाविचर्चिकाः ॥ ६९ ॥

घरका धुआँ, हल्दी, कूठ, असगन्ध और इन्द्रयवको मट्ठेके साथ पीसकर किये गये लेपसे सिध्म, पामा और विचर्चिकारोग नष्ट होते हैं ॥ ६९ ॥

अश्वगन्धाघृतम् ।

पादकल्केऽश्वगन्धाया क्षीरे दशगुणे पचेत् ।
घृतं पेयं कुमाराणां पुष्टिकृद्बलवर्धनम् ॥ ७० ॥

असगन्धके चतुर्थांश कल्क और दशगुण दूधमें सिद्ध घृत बालकोंको पुष्ट तथा बलवान् करता है ॥ ७० ॥

चाङ्गेरीघृतम् ।

चांगेरीस्वरसे सर्पिश्छागक्षीरसमे पचेत् ।
कपित्थव्योषसिन्धूत्थसमङ्गोत्पलबालकैः ॥ ७१ ॥
सबिल्वधातकीमोचैः सिद्धं सर्वातिसारनुत् ।
ग्रहणीं दुस्तरां हन्ति बालानां तु विशेषतः ॥ ७२ ॥

चांगेरीके स्वरस ३ भाग, घी १ भाग, दूध १ भाग तथा कैथा, त्रिकटु, सेंधानमक, लज्जालु, नीलोफर, सुगन्धवाला, बेल, धायके फूल, व मोचरसके कल्कसे सिद्ध घृत बालकोंके समस्त अतीसारों तथा दुष्ट ग्रहणीको नष्ट करता है ॥ ७१ ॥ ७२ ॥

कुमारकल्याणकं घृतम् ।

शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी कुष्ठं त्रिफलया सह ।
द्राक्षा सशर्करा शुण्ठी जीवन्ती जीरकं बला ॥ ७३ ॥
शठी दुरालभा बिल्वं दाडिमं सुरसास्थिरा ।
मुस्तं पुष्करमूलं च सूक्ष्मैला गजपिप्पली ॥ ७४ ॥
एषां कर्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
कषाये कण्टकार्याश्च क्षीरे तस्मिंश्चतुर्गुणे ॥ ७५ ॥
एतत्कुमारकल्याणघृतरत्नं सुखप्रदम् ।
बलवर्णकरं धन्यं पुष्ट्यग्निबलवर्धनम् ॥ ७६ ॥
छायासर्वग्रहालक्ष्मीक्रिमिदन्तगदापहम् ।
सर्वबालामयहरं दन्तोद्भेदे विशेषतः ॥ ७७ ॥

शङ्खपुष्पी, वच, ब्राह्मी, कूठ, त्रिफला, मुनक्का, शक्कर, सोंठ, जीवन्ती, जीरा, खरेटी, कचूर, यवासा, बेल, अनार, तुलसी, शालपर्णी नागर मोथा, पोहकरमूल, छोटी इलायची व गजपीपल, प्रत्येक १ तोलेका कल्क, छोटी कटेरीका क्वाथ ६ सेर ३२ तोला, दूध ६ सेर ३२ तो० मिलाकर १२८ तोला घी पकाना चाहिये । यह कुमारकल्याणनामक घृत बल व वर्णको बढाता पुष्टि तथा अग्निको बढाता, ग्रहदोष, छाया, क्रिमिदन्त तथा दाँत उत्पन्न होनेके समय उत्पन्न होनेवाले रोगोंको विशेषतः नष्ट करता है ॥ ७३–७७ ॥

अष्टमङ्गलं घृतम् ।

वचा कुष्ठं तथा ब्राह्मी सिद्धार्थकमथापि च ।
शारिवा सैन्धवं चैव पिप्पलीघृतमष्टमम् ॥ ७८ ॥
मेध्यं घृतमिदं सिद्धं पातव्यं च दिने दिने ।
दृढस्मृतिः क्षिप्रमेधा कुमारो बुद्धिमान्भवेत् ॥ ७९ ॥
न पिशाचा न रक्षांसि न भूता न च मातरः ।
प्रभवन्ति कुमाराणां पिबतामष्टमङ्गलम् ॥ ८० ॥

वच, कूठ, ब्राह्मी, सरसों, शारिवा, सेंधानमक व छोटी पीपलके कल्कमें घृत और जल मिलाकर पकाना चाहिये । घृत सिद्ध होजानेपर बालकको प्रतिदिन पिलाना चाहिये । यह मेधाको बढाता है । इसके सेवनसे बालक स्मृतिमान्, बुद्धिमान् व मेधावी होता है । इसे पीनेवाले बालकोंपर पिशाच, राक्षस, भूत और माता आदि किसीका प्रभाव नहीं पडता । इसे अष्टमगल कहते हैं ॥ ७८–८० ॥

लाक्षादितैलम् ।

लाक्षारससमं सिद्धं तैलं मस्तु चतुर्गुणम् ।
रास्नाचन्दनकुष्ठाब्दवाजिगन्धानिशायुगैः ॥ ८१ ॥
शताह्वादारुयष्ट्याह्वमूर्वातिक्ताहरेणुभिः ।
बालानां ज्वररक्षोघ्नमभ्यङ्गाद्बलवर्णकृत् ॥ ८२ ॥

लाखके रसके समान, चतुर्गुण दहीके तोड और रासन, चन्दन, कूठ, नागरमोथा, असगन्ध, हल्दी, दारुहल्दी, सोंफ, देवदारु, मौरेठी, मूर्वा, कुटकी व सम्भालूके बीजके कल्कसे सिद्ध तैलकी मालिश करनेसे बालकोंके ज्वर तथा राक्षसदोष नष्ट होते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

ग्रहचिकित्सा ।

सहामुण्डितिकोदीच्यक्वाथस्नानं ग्रहापहम् ।
सप्तच्छदनिशाकुष्ठचन्दनैश्चानुलेपनम् ॥ ८३ ॥
सर्पत्वग्लशुनं मूर्वासर्षपारिष्टपल्लवाः ।
बैडालविड्जालोममेषशृङ्गीवचामधु ॥ ८४ ॥
धूपः शिशोर्ज्वरघ्नोऽयमशेषग्रहनाशनः ।
बलिशान्तीष्टकर्माणि कार्याणि ग्रहशान्तये ॥ ८५ ॥
मन्त्रश्चायं प्रयोक्तव्यस्तत्रादौ सार्वकामिकः ॥ ८६ ॥

मुद्गपर्णी, मुण्डी, व सुगन्धवालाके क्वाथसे स्नान ग्रहदोषको नष्ट करता है । तथा सप्तपर्ण, हल्दी, कूठ, व चन्दनका अनुलेप भी ग्रहदोषको नष्ट करता है । और सापकी केंचुल, लहसुन, मूर्वा, सरसों, नीमकी पत्ती, बिडालकी विष्ठा, बकरीके रोवां मेढाशिंगी, वच व शहदकी धूप बालकके ज्वर तथा समग्र ग्रहदोषोंको नष्ट करती है । तथा बलि, शान्ति व इष्टकर्म आदि ग्रहशान्तिके लिये करना चाहिये और धूप देनेके लिये यह आगे लिखा सार्वकामिक मन्त्र पढना चाहिये ॥ ८३–८६ ॥

सार्वकामिको मन्त्रः ।

ॐ नमो भगवते गरुडाय त्र्यम्बकाय सद्यस्तवस्तुतः स्वाहा । ॐ क प ट श वैनतेयाय नमः. ॐ ह्रीं हू क्ष इति मन्त्रः

बालदेहप्रमाणेन पुष्पमाला तु सर्वतः ।
प्रगृह्य मुच्छिकाभक्तबलिर्देयस्तु शान्तिकः ।

बालककी देहके बराबर फूलोंकी माला लेकर भातसे भरे शिकोरेके चारों ओर लपेटकर बलि देना चाहिये । और बलि देते समय नीचे लिखा मन्त्र पढना चाहिये ।

बलिमन्त्रः।

ओङ्कारी स्वर्णपक्षी बालकं रक्ष रक्ष स्वाहा । गरुडबलि.। ॐ नमो नारायणाय नम. इति मन्त्र.॥ ८७ ॥

नन्दनामातृकाचिकित्सा।

प्रथमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति नन्दना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथम भवति ज्वर । अशुभ शब्द मुञ्चति चीत्कार च करोति स्तन्यं न गृह्णाति बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। नद्युभयतटमृत्तिका गृहीत्वा पुत्तलिका कृत्वा शुक्लौदन शुक्लपुष्प शुक्लसप्तध्वजा सप्तप्रदीपा सप्तस्वस्तिका. सप्तवटका: सप्तशष्कुलिका: जम्बुलिका' सप्तमुष्टिका' गन्ध पुष्प ताम्बूल मत्स्यं मास सुरामग्रभक्त च पूर्वस्या दिशि चतुष्पथे मध्याह्ने बलिर्देयः । ततोऽश्वत्थपत्र कुम्भे प्रक्षिप्य शान्त्युदकेन स्नापयेत् । रसोनसिद्धार्थकमेषशृङ्गनिम्बपत्रशिवनिर्माल्यै र्बालकं धूपयेत्।" ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा " एव दिनत्रयं बलिं दत्त्वा चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत् तत' सम्पद्यते शुभम्॥ ८८ ॥

पहिले दिन, पहिले महीने अथवा पहिले वर्षमे नन्दनानाम मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, अशुभ शब्द करता तथा चिचिहाता है, दूध नहीं पीता। उसके लिये बलि बतलाते हैं, जिसस बालक सुखी होता है । नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी लेकर सफेद भात, फूल, सफेद सात झण्डियॉ, सात दीपक, सात स्वस्तिक (सथिया), ७ बडे, ७ पूडियॉ, ७ जलेबियॉ, ७ मुट्ठी सुगन्धित पुष्प, मछलियॉ, पान मास, शराबकी बलि, अग्रभक्त (उत्तम हॉडीमें भरे भात) के साथ मध्याह्नमे पूर्व दिशाके चौराहेपर देना चाहिये । फिर पीपलका पत्र जलमें छोडकर शान्तिकारक जलसे स्नान कराना चाहिये तथा लहसुन, सरसों, मेढाका सींग, नीमकी पत्ती और शिवानिर्माल्यकी धूप देनी चाहिये और यह मन्त्र पढना चाहिये "ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा " इस प्रकार तीन दिन बलि देकर चौथे दिन ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये । इस प्रकार बालक आरोग्य होता है ॥ ८८ ॥

सुनन्दालक्षणं चिकित्सा च।

द्वितीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति सुनन्दा नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । चक्षुरुन्मीलयति गात्रमुद्वेजयति न शेते क्रन्दति स्तन्य न गृह्णाति चीत्कारश्च भवति। बलि तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। तण्डुल हस्तपृष्ठैक दधिगुडघृतं च मिश्रित शरावकं गन्धताम्बूल पीतपुष्प पीतसप्तध्वजा सप्तप्रदीपा. दशस्वस्तिका: मत्स्यमांससुरातिलचूर्णानि। पश्चिमस्या दिशि चतुष्पथे बलिर्देय. दिनानि त्रीणि सन्ध्याया ततः शान्त्युदकेन स्नापयेत्। शिवनिर्माल्यसिद्धार्थमार्जारलोमोशीरवालघृतैर्धूपं दद्यात् । "ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा "। चतुर्थे दिवसे ब्राह्मण भोजयेत् तत. सम्पद्यते शुभम्॥ ८९ ॥

दूसरे दिन, मास और वर्षमे सुनन्दानाम मातृका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर होता है, बालक आखें फैलाता है, शरीर कम्पाता है, सोता नहीं, रोता है, दूध नहीं पीता, चीत्कार करता है। उसके लिये नीचे लिखी विधिमे बलि देना चाहिये।एक पसर भात, दही, गुड, घी मिलाकर एक शराब, गन्ध, पान, पीले फूल, पीली ७ झण्डियॉ, सात दीपक, दश स्वस्तिक, मछलिया मास,शराब, तिलचूर्ण पश्चिमदिशाकी चौराहेमे सायकाल बलिदेना चाहिये । इस प्रकार ३दिन करना चाहिये। फिर शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये तथा शिवनिर्माल्य, सरसों, बिल्लीके रोवा खश, सुगन्धवाला और घीकी धूप देनी चाहिये और यह मन्त्र पढना चाहिये।'ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रीं फट् स्वाहा'। चौथे दिन ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये।इस प्रकार बालक सुखी होता है॥ ८९ ॥

पूतनाचिकित्सा।

तृतीये दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति पूतना नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथम भवति ज्वर । गात्रमुद्वेजयति स्तन्य न गृह्णाति मुष्टिं बध्नाति क्रन्दति ऊर्ध्वं निरीक्षते । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। नद्युभयतटमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां कृत्वा गन्धपुष्पताम्बूलरक्तचन्दन रक्तपुष्प रक्तसप्तध्वजा सप्तप्रदीपा. सप्तस्वस्तिका पक्षिमांस सुरा अग्रभक्त च दक्षिणस्या दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलिर्दातव्य । शिवनिर्माल्यगुग्गुलुसर्षपनिम्बपत्रमेषशृङ्गैर्दिनत्रय धूपयेत्। "ॐ नमोनारायणाय बालस्य व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च हासय हासय स्वाहा " चतुर्थेदिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्तत. सम्पद्यते शुभम्॥ ९०॥

तीसरे दिन महीने और वर्षमें पूतनानाम मातृका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर

आता है, बालकका शरीर कम्पाता है, दूध नहीं पीता, मुट्ठी बांधता, रोता तथा ऊपरको देखता है। उसके लिये बलि देनेकी यह विधि है कि नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टीको लेकर पुतला बना गन्ध, फूल, पान, लालचन्दन, लाल फूल, लाल ७ पताका, ७ दीपक, ७ स्वस्तिक, पक्षियोंका मास, शराब व उत्तम भातकी दक्षिणदिशाके चौराहेमें अपराह्नमें बलि देनी चाहिये। और शिवनिर्माल्य, गुग्गुल, सरसों, नीमकी पत्ती व मेढाके सींगसे धूप करनी चाहिये। तथा यह मन्त्र पढना चाहिये। "ॐ नमो नारायणाय बालकस्य व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ह्रासय ह्रासय स्वाहा" । चौथे दिन ब्राह्मण भोजन करावे इस प्रकार सुख होता है ॥ ९० ॥

मुखमण्डिकाचिकित्सा ।

चतुर्थे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति मुखमण्डिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथम भवति ज्वर.। ग्रीवा नामयति अक्षिणी उन्मीलयति स्तन्य न गृह्णाति रोदिति स्वपिति मुष्टिं वध्नाति । वलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन-सम्पद्यते शुभम्। नद्युभयतटमृत्तिका गृहीत्वा पुत्तलिका कृत्वा उत्पलपुष्पं गन्धताम्बूल दश ध्वजाः चत्वार. प्रदीपाः त्रयोदश स्वस्तिका. मत्स्यमाससुरा अग्रभक्त च उत्तरस्या दिशि अपराह्णे चतुष्पथे बलि दद्यात् । आद्य-मासिको धूपः "ॐ नमो नारायणाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्तत सम्पद्यते शुभम् ॥ ९१ ॥

चौथे दिन चौथे महीने अथवा चौथे वर्षमें मुखमण्डिका नाम मातृका ग्रहण करती है उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर होता है, गर्दन लचाता है, आखें निकालता है, दूध नहीं पीता, रोता, सोता तथा मुट्ठी बांधता है। उसके लिये बलि इस प्रकार देना चाहिये। नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टीसे पुतला बना नीलकमलके फूल, गन्ध, ताम्बूल, दश पताकाएँ, ४ दीपक, १३ स्वस्तिक, मछली, मास, शराब, भात उत्तर दिशामें सायङ्काल चौराहेपर बलि देनी चाहिये। तथा प्रथम मासमें कही हुई धूप देनी चाहिये। "ॐ नमो नारायणाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा" । चौथे दिन ब्राह्मणोंको भोजन कराना चाहिये। तब सुखी होता है ॥ ९१ ॥

कठपूतनामातृकाचिकित्सा ।

पञ्चमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति कठपूतना नाम मातृका तया गृहीतमात्रेण प्रथम भवति ज्वर'। गात्रमुद्वेजयति स्तन्यं न गृह्णाति मुष्टिं च वध्नाति बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । कुम्भकारचक्रस्य मृत्तिका गृहीत्वा पुत्तलिकां निर्माय गन्धताम्बूल शुक्लौदनं शुक्लपुष्प पञ्चध्वजाः पञ्च प्रदीपा. पञ्च वटकाः ऐशान्यां दिशि बलिर्दातव्य' । शान्त्युदकेन स्नापयेच्छिवनिर्माल्यसर्पनिर्मोकगुग्गुलुनिम्बपत्रवालकघृतैर्धूप दद्यात्। "ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधि चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्तत' सम्पद्यते शुभम् ॥ ९२ ॥

पाचवें, दिन, महीने और वर्षमे कठपूतनानाम मातृका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही ज्वर आता है शरीर कम्पता है, दूध नहीं पीता, मुट्ठी बाधता है, उसके लिये इस प्रकार बलि देना चाहिये। कुम्हारके चाककी मिट्टी ले पुतला बना गन्ध, ताम्बूल, सफेद भात, सफेद फूल, ५ पताकाएँ ५ दीपक, ५ वडे इनकी ऐशान्य दिशामें बलि देनी चाहिये। शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये और शिवनिर्माल्य, सापकी केंचुल, गुग्गुल, नीमकी पत्ती, सुगन्धवाला और घीसे धूप देनी चाहिये। और "ॐ नमो नारायणाय अमुकस्य व्याधि चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा यह मन्त्र पढ़ना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये। इस प्रकार शुभ होता है ॥ ९२ ॥

शकुनिकाचिकित्सा ।

षष्ठे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति शकुनिका नाम मातृका। तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । गात्रभेद च दर्शयति दिवारात्रावुत्थानं भवति ऊर्ध्वं निरीक्षते । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। पिष्टकेन पुत्तलिका कृत्वा शुक्लपुष्पं रक्तपुष्प पीतपुष्प गन्धताम्बूलं दश प्रदीपा ध्वजा दश स्वस्तिका दश मुष्टिका दश वटका. क्षीरजम्बूडिका मत्स्यमाससुरा आग्नेय्या दिशि निष्क्रान्ते मध्याह्ने बलि दापयेत्। शान्त्युदकेन स्नापयेत् । शिवनिर्माल्यरसोनगुग्गुलुसर्पनिर्मोकनिम्बपत्रघृतैर्धूप दद्यात्। "ॐ नमो नारायणाय चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मण भोजयेत्ततः सम्पद्यते शुभम् ॥ ९३ ॥

छठे दिन, महीने और वर्षमें शकुनिका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, शरीर टूटता है, दिनरात चौंकता है, ऊपर देखता है। उसके लिये इस प्रकार बलि देना चाहिये। पिट्ठीका पुतला बना सफेद फूल, लाल फूल, पीले फूल, गन्ध, ताम्बूल, दशदीप, दशपताकाएँ, दशस्वस्तिक दशलड्डू,

दशवडे, दूधकी जलेबी, मछली, मास व शराबकी आग्नेय दिशामें मध्याह्न बीत जानेपर बलि देनी चाहिये तथा शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये और शिवनिर्माल्य, लहसुन, गुग्गुलु, सापकी केंचुल, नीमकी पत्तीकी धूप देनी चाहिये । और "ॐ नमो नारायणाय चूर्णय चूर्णय हन हन स्वाहा" । इस मन्त्रका जप करना चाहिये और चौथे दिन ब्राह्मण भोजन कराना चाहिये तब शाति होती है ॥ ९३ ॥

शुष्करेवतीचिकित्सा ।

सप्तमे दिवसे मासे वर्षे वा यदा गृह्णाति शुष्करेवती नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथम भवति ज्वर. । गात्रमुद्वेजयति मुष्टिं बध्नाति रोदिति । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । रक्तपुष्पं शुक्लपुष्पं गन्धताम्बूलं रक्तौदनं कृसराश्चत्रयोदश स्वस्तिका मत्स्यमाससुराश्चत्रयोदश ध्वजा. पञ्च प्रदीपा पश्चिमदिग्भागे ग्रामनिष्कासे अपराह्णे वृक्षमाश्रित्य बलिं दद्यात् । शान्त्युदकेन स्नानं गुग्गुलुमेषश्रृङ्गीसर्षपोशीरवालकघृतैर्धूपयेत् । "ॐ नमो नारायणाय दीप्ततेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्तत. सम्पद्यते शुभम् ॥९४॥

सातवें दिन, महीने या वर्षमें शुष्करेवती नामक मातृका ग्रहण करती है उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर होता है, शरीर कम्पाता है, मुट्ठी बाधता है । रोता है उसके लिये बलि कहते है । लाल फूल, सफेद फूल, गन्ध, ताम्बूल, लाल भात, खिचडी, १३ स्वस्तिक, मछली, मास, शराब, तेरह पताका, और ५ दीपक सायकाल ग्रामके निकासपर पश्चिम दिशामें वृक्षके नीचे बलि देवे तथा शातिजलसे बालकको स्नान करावे और गुग्गुलु मेढाशिंगी, सरसों, खश, सुगन्धवाला व घीकी धूप देनी चाहिये । "ॐ नमो नारायणाय दीप्ततेजसे हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा "। यह मन्त्र पढना चाहिये।चौथे दिन ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये तब सुखी होता है ॥९४॥

अर्यकाचिकित्सा ।

अष्टमे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति अर्यका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथम भवति ज्वर । गृध्रगन्ध पूतिगन्धश्च जायते आहार च न गृह्णाति उद्वेजयति गात्राणि।बलि तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम्। रक्तपीतध्वजा चन्दन पुष्प शष्कुल्य पर्पटिका मत्स्यमाससुराजम्बुडिका प्रत्यूषे बलिर्देय प्रान्तरे । मन्त्र "ॐ नमोनारायणाय चतुर्दिङ्मोक्षणाय व्याधिं हन हन मुञ्च मुञ्च ॐ ह्रीं फट् स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मण भोजयेत्तत: सम्पद्यते शुभम् ॥ ९५ ॥

आठवें दिन, महीने और वर्षमे जो ग्रहण करती है उसे अर्यका नाम मातृका कहते हैं । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, गृध्रके समान दुर्गन्ध आती है, आहार नही करता, शरीर कम्पाता है, उसके लिये बलि कहते हैं जिससे सुख होता है । लाल पीली पताकाएँ, चन्दन, फूल,पूडी, पापड, मछलिया मास, शराब, जलेबियाँ इनकी सबेरे एक किनारे बलि देनी चाहिये और यह मन्त्र पढना चाहिये । "ॐ नमो नारायणाय चतुर्दिङ्मोक्षणाय व्याधि हन हन मुञ्च मुञ्च ॐ ह्रीं फट् स्वाहा" । चौथे दिन ब्राह्मण भोजन करावे तब शुभ होता है ॥ ९५ ॥

भूसूतिकाचिकित्सा ।

नवमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति भूसूतिका नाम मातृका।तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वर । नित्य छर्दिर्भवति गात्रभेदं दर्शयति मुष्टि बध्नाति । बलि तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । नद्युभयतटमृत्तिका गृहीत्वा पुत्तलिका निर्माय शुक्लवस्त्रेण वेष्टयेच्छुक्लपुष्पं गन्धताम्बूलं शुक्लत्रयोदशध्वजाः त्रयोदश दीपा त्रयोदश स्वस्तिका. त्रयोदश पुत्तलिका: त्रयोदशमत्स्यपुत्तलिका: मत्स्यमाससुरा उत्तरदिग्भागे ग्रामनिष्कासे बलिं दद्यात् । शान्त्युदकेन स्नानं गुग्गुलुनिम्बपत्रगोश्रृङ्गश्वेतसर्षपघृतैर्धूपं दद्यात्। मन्त्र "ॐ नमो नारायणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्तत सम्पद्यते शुभम् ॥ ९६ ॥

नवे दिन, महीने और वर्षमें भूसूतिकानाम मातृका ग्रहण करती है । उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, नित्य वमन होती है, शरीरमें पीडा होती है, मुट्ठी बाधता है । उसके लिये बलि कहते हैं जिससे सुख होता है । नदीके दोनों किनारोंकी मिट्टी ले पुतला बना सफेद कपडेसे लपेटना चाहिये । तथा सफेद फूल, गन्ध, ताम्बूल, सफेद १३ झण्डियां, १३ दीपक, १३ स्वास्ति, १३ पुत्तलिका, १३ मछलीकी पुत्तलिया, मछलिया, मास व शराबकी उत्तर दिशामे ग्रामके निकासपर बलि देनी चाहिये। शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये और गुग्गुलु, नीमकी पत्ती, गायका सींग, सफेद सरसों और घीकी धूप देनी चाहिये । "ॐ नमो नारायणाय चतुर्भुजाय हन हन मुञ्च मुञ्च स्वाहा" यह मन्त्र पढना चाहिये । चौथे दिन ब्राह्मण भोजन करावे । तब सुख होता है ॥ ९६ ॥

निर्ऋताचिकित्सा ।

दशमे दिवसे मासे वर्षे वा गृह्णाति निर्ऋता नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथम भवति ज्वर गात्रमुद्वेजयाति चीत्कारं करोति रोदीति मूत्रं पुरीषं च भवति । बलिं तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । पारावारमृत्तिकां गृहीत्वा पुत्तलिकां निर्माय गन्धताम्बूलं रक्तपुष्प रक्तचन्दन पञ्चवर्णध्वजा. पञ्च प्रदीपाः पंच स्वस्तिकाः पञ्च पुत्तलिका. मत्स्यमाससुरा. वायव्यां दिशि बलिं दद्यात् । काकविष्ठागोमासगोश्रृङ्गरसोनमार्जारलोमनिम्बपत्रघृतैर्धूपयेत् । " ॐ नमो नारायणाय चूर्णितहस्ताय मुञ्च मुञ्च स्वाहा " चतुर्थे दिवसे ब्राह्मण भोजयेत्तत स्वस्थो भवति बालकः ॥ ९७ ॥

दशवें दिन, महीने या वर्षमे निर्ऋतिका मातृका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, शरीर कम्पाता है, चीत्कार करता है रोते रोते दस्त व पेशाब हो जाता है। उसके लिये बलि कहते हैं। नदीके दोनों ओरकी मिट्टी ले पुतला बना गन्ध, ताम्बूल, लाल फूल, लाल चन्दन, पाँच रङ्गकी पताकाएँ, पाँचदीपक, ५ स्वास्तिक, ५ पुत्तलियाँ, मछलियाँ, मास व शराबकी वायव्य दिशामें बलि देनी चाहिये और लशुन, बिल्लीके रोवें, काकविष्ठा, गोमास, गोशृंग, नीमकी पत्ती और घीसे धूप देनी चाहिये। " ॐ नमो नारायणाय चूर्णितहस्ताय मुञ्च मुञ्च स्वाहा " यह मन्त्र पढना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। तब बालक स्वस्थ होता है ॥ ९७ ॥

पिलिपिच्छिलिकाचिकित्सा ।

एकादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति पिलिपिच्छिलिका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः आहारं न गृह्णाति ऊर्ध्वदृष्टिर्भवति गात्रभङ्गो भवति । बलि तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । पिष्टकेन पुत्तलिका कृत्वा रक्तचन्दनरक्तं च तस्या मुख दुग्धेन सिञ्चेत् । पीतपुष्पं गन्धताम्बूलं सप्त पीतध्वजा सप्त प्रदीपा अष्टौ वटकाः अष्टौ शष्कुलिका. अष्टौ पूरिका मत्स्यमांससुराः पूर्वस्यां दिशि बलिर्दातव्य । शान्त्युदकेन स्नानं शिवनिर्माल्यगुग्गुलुगोश्रृङ्गसर्पनिर्मोकघृतैर्धूपयेत् । " ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च स्वाहा " चतुर्थदिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्ततः सुस्थो भवति बालकः ॥ ९८ ॥

ग्यारहवें दिन महीने वर्षमें पिलिपिच्छिलिका मातृका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही पहिले ज्वर आता है, आहार नही करता, आखें निकालता है, शरीर टूटता है। उसके लिये बलि कहते हैं। पिठीकी पुत्तलिका बनाकर उसका मुख लाल चन्दनसे रङ्गकर उसमें दूध छोडना चाहिये तथा पीले फूल, गन्ध, ताबूल, सात पीली पताकाएँ, सात दीपक, आठ बडे आठ पूडिया, आठ जलेबिया, मछली, मास व शराबकी पूर्व-दिशामें बलि देनी चाहिये। शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये तथा शिवनिर्माल्य, गुग्गुलु, गोशृंग, सापकी कैंचुल और घीसे धूप करना चाहिये। "ॐ नमो नारायणाय मुञ्च मुञ्च स्वाहा " यह मन्त्र पढना चाहिये। तब बालक सुस्थ होता है ॥ ९८ ॥

कालिकाचिकित्सा ।

द्वादशे दिवसे मासे वर्षे वा यदि गृह्णाति कालिका नाम मातृका । तया गृहीतमात्रेण प्रथमं भवति ज्वरः । विहस्य वादयाति करेण तर्जयति गृह्णाति क्रामति निःश्वसिति मुहुर्मुहुश्छर्दयाति आहार न करोति बलि तस्य प्रवक्ष्यामि येन सम्पद्यते शुभम् । क्षीरेण पुत्तलिकां कृत्वा गन्धं ताम्बूल शुक्लपुष्प शुक्लसप्तध्वजा सप्तप्रदीपा. सप्त पूपिका करस्थेन दधिभक्तेन सर्वकर्मबलि दद्याच्छात्युदकेन स्नापयेत् । शिवनिर्माल्यगुग्गुलुसर्षपघृतैर्धूपयेत् । " ॐ नमो नारायणाय[1] मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा" चतुर्थे दिवसे ब्राह्मणं भोजयेत्तत. सुस्थो भवति बालक ॥ ९९ ॥

बारहवें दिन, महीने या वर्षमें कालिकामातृका ग्रहण करती है। उसके ग्रहण करते ही ज्वर आता है। हँसकर तालिया बजाता है, उठता है, पकडताहै, चलता है, श्वास लेता है, बारबार वमन करता हैं आहार नहीं करता। उसके लिये बलि कहते हैं।

---

१ पूर्वोक्त समस्त मन्त्रोंमें नारायणके स्थानमे रावणाय अनेक प्रतियोमें मिलता है पर वह उत्तम नही प्रतीत होता। क्योंकि एक तो रावणको प्रणाम करनेकी लौकिक प्रथा नही, दूसरे एक मन्त्रमें चतुर्भुजाय विशेषण भी आया है जोकि विष्णुभगवानके लिये ही आता है अतः नारायणाय यही ठीक है पर नारायणके लिये दूसरोंके मास तथा शराब आदिकी बलि देना उचित नहीं प्रतीत होता अतः द्विजातियोंको ऐसे पदार्थ पृथक् कर ही पूजन करना चाहिये ॥

दूधके साथ पुतला बनाकर गन्ध, ताम्बूल, सफेद फूल, सफेद सात पताका, सात दीपक, ७ पुवा, तथा हाथमें दही भात लेकर समस्त बलिकर्म करना चाहिये। शान्तिजलसे स्नान कराना चाहिये तथा शिवनिर्माल्य, गुग्गुलु, सरसों और घीसे धूप देनी चाहिये। " ॐ नमोनारायणाय मुञ्च मुञ्च हन हन स्वाहा " यह मन्त्र पढना चाहिये। चौथे दिन ब्राह्मणभोजन कराना चाहिये। तब बालक स्वस्थ होता है ॥ ९९ ॥

इति बालरोगाधिकारः समाप्तः ।

अथ विषाधिकारः ।

सामान्यचिकित्सा ।

अरिष्टाबन्धनं मन्त्र प्रयोगाश्च विषापहा ,
दशन दशकस्याहेः फलस्य मृदुनोऽपि वा ॥ १ ॥

दंशसे चार अङ्गुल ऊपर वस्त्र या रस्सी आदिसे बांधना (तथा मन्त्रद्वारा बान्ध देना) मन्त्र, विषनाशक प्रयोग तथा काटनेवाले सर्पको ही पकडकर काट देना और यदि सर्प न मिले तो मुलायम फलोंको दातोंसे काटकर फेंकनेसे सर्पविष शान्त होता है ॥ १ ॥

प्रत्यङ्गिरामूलयोगः ।

मूल तण्डुलवारिणा पिबति य. प्रत्यङ्गिरासम्भव
निष्पिष्टं शुचि भद्रयोगदिवसे तस्याहिभीतिः कुत. ।
दर्पादेव फणी यदा दशति तं मोहान्वितो मूलपं
स्थाने तत्र स एव याति नियतं वक्त्र यमस्याचिरात् २

जो मनुष्य कण्टकिशिरीषकी जडके चूर्णको चावलके जलके साथ आषाढ मासमें उत्तम नक्षत्रादियुक्त दिनमें पीता है उसको सर्पका कोई भय नहीं रहता। यदि कोई साप दर्पसे उसे काटही ले तो तुरन्त उसी स्थानमें वह सर्प ही मर जाता है ॥ २ ॥

निम्बपत्रयोगः ।

मसूरानिम्बपत्राभ्यां खादेन्मेषगते रवौ ।
अब्दमेक न भीतिः स्याद्विषात्तस्य न सशय ॥ ३ ॥

१ काटनेवाले सापको ही काट खाना या मुलायम फल या मिट्टीका ढीला या ककड आदिको दातोंसे काटकर फेंकना सुश्रुतमें भी हितकर बताया है ।

जो मनुष्य मेषके सूर्यमें मसूरकी दालको नीमकी पत्तीके शाकके साथ खाता है उसे एक वर्षतक विषसे कोई भय नहीं होता ॥ ३ ॥

पुनर्नवायोगः ।

धवलपुनर्नवजटया तण्डुलजलपीतया च पुष्यर्क्षे ।
अपहरति विषधरविषोपद्रवमावत्सरं पुंसाम् ॥ ४ ॥

सफेद पुनर्नवाकी जडको पुष्यनक्षत्रमें चावलके जलके साथ पीस मिलाकर पीनेसे एक वर्षतकके लिये सर्पके विषके भयको दूर रखता है ॥ ४ ॥

सर्पदष्टचिकित्सा ।

गृहधूमो हरिद्रे द्वे समूलं तण्डुलीयकम् ।
अपि वासुकिना दष्ट पिबेद्दधिघृताप्लुतम् ।
कूलिर्कामूलनस्येन कालदष्टोऽपि जीवति ॥ ५ ॥
श्लेष्मण. कर्णगूथस्य वामानामिकया कृत ।
लेपो हन्याद्विषं घोर नृमूत्रासेचन तथा ॥ ६ ॥
शिरीषपुष्पस्वरसे भावितं श्वेतसर्षपम् ।
सप्ताहं सर्पदष्टाना नस्यपानाञ्जने हितम् ॥ ७ ॥
द्विपल नतकुष्ठाभ्यां घृतक्षौद्रं चतुष्पलम् ।
अपि तक्षकदष्टानां पानमेतत्सुखप्रदम् ॥ ८ ॥
वन्ध्याकर्कोटजं मूलं छागमूत्रेण भावितम् ।
नस्यं काञ्जिकसंयुक्तं विषोपहतचेतस ॥ ९ ॥

सांपके काटे हुएको गृहधूम, हल्दी, दारुहल्दी व समूल चौराईके कल्कमें घी व दही मिलाकर पिलाना चाहिये। तथा परवलकी जडके चूर्णके नस्यसे काले सापसे काटा भी जी जाता है तथा मुखके कफ अथवा कानके मैलको वाम हाथकी अनामिका अंगुलीसे लेकर दंशपर लेप करने तथा मनुष्यमूत्रका सिञ्चन करनेसे सर्पविष नष्ट होता है तथा सिरसाके फूलोंके स्वरसमें भावित सफेद सरसोंका चूर्ण कर पान, नस्य व अञ्जनके लिये सापके काटे हुए मनुष्योंको ७ दिनतक प्रयोग करना चाहिये। तथा तगर व कूठका मिलित चूर्ण ८ तो० और शहद व घी मिलित १६ तोला मिलाकर पीनेसे तक्षकसे काटा हुआ भी सुखी होता है तथा बाझखेखसाकी जड बकरेके मूत्रमें भावित कर काञ्जीमें मिलाकर विषसे बेहोश मनुष्यको नस्य देना चाहिये ॥ ५-९ ॥

महागदः ।

त्रिवृद्विशाले मधुकं हरिद्रे
मञ्जिष्ठवर्गो लवण च सर्वम् ।

कटुत्रिकं चैव विचूर्णितानि
शृङ्गे निदध्यान्मधुना युतानि ॥ १० ॥
एषोऽगदो हन्त्युपयुज्यमान
पानाञ्जनाभ्यञ्जननस्ययोगैः ।
अवार्यवीर्यो विषवेगहन्ता
महागदो नाम महाप्रभावः ॥ ११ ॥

निसोथ, इन्द्रायण, मौरेठी, हल्दी, दारुहल्दी, मञ्जिष्ठादिगणकी औषधिया, समस्त नमक व त्रिकटु सब महीन पीस कपडछान कर शहद मिलाकर सींगकी शीशीमे धरना चाहिये । यह पीने, अञ्जन, नस्य तथा मालिशसे विषके वेगको नष्ट करता है । इसका प्रभाव अनिवार्य होता है । यह महाप्रभावशाली महागद नामसे कहा जाता है ॥ १० ॥ ११ ॥

विविधावस्थायां विविधा योगाः ।

पीते विषे स्याद्वमन च त्वक्स्थे
प्रदेहसेकादि सुशीतलं च ॥ १२ ॥
कपित्थमामं ससिताक्षौद्रं कण्ठगते विषे ।
लिह्यादामाशयगते ताभ्यां चूर्णपलं नतात् ॥ १३ ॥
विषे पक्वाशयगते पिप्पलीरजनीद्वयम् ।
माञ्जिष्ठा च समं पिष्ट्वा गोपित्तेन नर पिबेत् ॥ १४ ॥
रजनीसैन्धवक्षौद्रसयुक्तं घृतमुत्तमम् ।
पानं मूलविषार्तस्य दिग्धविद्धस्य चेष्यते ॥ १५ ॥

विष पी लेनेपर, वमन तथा त्वचामे लग जानेपर शीतल लेप या सेक करना चाहिये तथा कण्ठतक पहुँचे विषमें कच्चे कैथेके गूदेको मिश्री व शहदके साथ मिलाकर चटाना चाहिये तथा आमाशयगत विषमें तगरका चूर्ण ४ तो० शहद व मिश्री मिलाकर चाटना चाहिये तथा पक्वाशयगत विषमें छोटी पीपल, हल्दी, दारुहल्दी, व मञ्जीठ समान भागले गोपित्तमें पीसकर पीना चाहिये तथा जो मूलविषसे पीडित है अथवा जो विष लिप्तशस्त्रसे विंध गया है उसे हल्दी व सेंधानमकका चूर्ण शहद व उत्तम घी मिलाकर पिलाना चाहिये ॥१२-१५॥

संयोगजविषचिकित्सा ।

सितामधुयुतं चूर्णं ताम्रस्य कनकस्य वा ।
लेह. प्रशमयत्युग्र सर्वसयोगजं विषम् ॥ १६ ॥
अङ्कोटमूलनिष्क्वाथफाणितं सघृत लिहेत् ।
तैलाक्त स्विन्नसर्वाङ्गो गरदोषविषापह. ॥ १७ ॥

ताम्र अथवा सोनेकी भस्मको मिश्री व शहद मिलाकर चाटनेसे समस्त सयोगज विष नष्ट होते हैं । तथा अकोहरकी जडके क्वाथको गाढाकर घी मिला चाटने तथा तैलकी मालिश कर समस्त शरीरके स्वेदन करनेसे गरदोष और विष नष्ट होते हैं ॥ १६ ॥ १७ ॥

कीटादिविषचिकित्सा ।

कटभ्यर्जुनशैरीयशेलुक्षीरिद्रुमत्वच. ।
कषायचूर्णकल्का. स्यु कीटलूताव्रणापहा: ॥ १८ ॥

मालकागनी, अर्जुन, कटसैला, लसोढा और दूधवाले वृक्षोंकी छालका कषाय अथवा चूर्ण अथवा कल्कमेंसे किसी एकका सेवन करनेसे कीडे, मकडी आदिके व्रण शान्त होते हैं ॥ १८ ॥

मूषकविषचिकित्सा ।

आगारधूममञ्जिष्ठारजनीलवणोत्तमैः ।
लेपो जयत्याखुविषं कर्णिकायाश्च पातनम् ॥ १९ ॥

गृहधूम, मञ्जीठ, हल्दी और सेंधानमकको पीसकर लगाया गया लेप कर्णिका (गाठ) को गिराता तथा मूषकविषको शान्त करता है ॥ १९ ॥

वृश्चिकचिकित्सा ।

य कासमर्दपत्रं वदने प्रक्षिप्य कर्णफूत्कारम् ।
मनुजो ददाति शीघ्र जयति विषं वृश्चिकार्तानां स २०॥
दंशे भ्रामणविधिना वृश्चिकविषहृत्कुठेरपादगुडिका ।
पुरधूपपूर्वमर्कच्छदमिव पिष्ट्वा कृतो लेप ॥ २१ ॥
जीरकस्य कृत कल्को घृतसैन्धवसंयुत ।
सुखोष्णो वृश्चिकार्तानां सुलेपो वेदनापह' ॥ २२ ॥
अमलाघर्षणं दंशे कण्टक च तदुद्धरेत् ।
करणे विषजे लेपात्फणिज्जकरसोऽथवा ॥ २३ ॥

जो कसौंदीके पत्तोंको मुखमें चबाकर कानमें फूंकता है वह बिच्छूके विषको शीघ्रही नष्ट करता है तथा बिच्छूके दंशके ऊपर तुलसीकी जडकी गोली घुमानेसे बिच्छूका विष शीघ्रही उतर जाता है । ऐसे ही गुग्गुलुकी धूप देकर आकके पत्तोंका लेप लाभ करता है, तथा जीरेके कल्कमें घी व सेंधानमक मिला गरम कर दंशपर गुनगुना लेप करनेसे वृश्चिकविषकी पीडा शान्त होती है । ऐसे ही दंशके काटेको निकालकर निर्मलीका घिसना लाभ करता है । अथवा मरुवाके रसका दंशके ऊपर लेप करनेसे लाभ होता है ॥ २२–२३ ॥

गोधादिविषचिकित्सा ।

कुङ्कुमकुनटीकर्कटपलहरितालै कुसुम्भसंमिलितैः ।
कृतगुडिकाभ्रामणतो विदष्टगोधासरटविषजित् ॥ २४ ॥

केशर, मनशिल, केकडेके मास, हरिताल तथा कुसु-

म्भके फूल मिलाकर बनायी गयी गोली दशपर फेरनेसे गोह या गिरगिटका विष नष्ट हो जाता है ॥ २४ ॥

मीनादिविषचिकित्सा ।

अङ्कोटपत्रधूमो मीनविषं झटिति विघटयेच्छृङ्गी ।
गोधावरटीविषमिव लेपेन कुटजकपालिजटा ॥ २५ ॥

अकोहरके पत्तोंका धुआँ शीघ्रही मीनाविषको नष्ट करता है तथा काकडाशिंगीका लेप भी यही गुण करता है । जैसे कि कुरैयाकी छाल और नरियलकी जटासे गोह और वर्रका विष नष्ट होता है ॥ २५ ॥

श्वविषचिकित्सा ।

कनकोदुंबरफलमिव तण्डुलजलपिष्टं पीतमपहरति ।
कनकदलद्रवघृतगुडदुग्धपलैकं शुनां गरलम् ॥ २६ ॥

धतूरा और गूलरके फल चावलके जलमें पीसकर पीनेसे या धतूरेके पत्तोंका रस घी, गुड व दूध मिलाकर ४ तोला पीनेसे कुत्तेका जहर मिट जाता है ॥ २६ ॥

भेकविषचिकित्सा ।

लेप इव भेकगरलं शिरीषबीजं स्नुहीपयः सिक्तैः ।
हरति गरलं त्र्यहमाशिताङ्कोटजटाकुष्ठसम्मिलिता २७ ॥

सिरसाके बीज, सेहुण्डके दूधके साथ अथवा काले अंकोहरकी जड और कूठका ३ दिन लेप करनेसे मण्डूकविष नष्ट होता है ॥ २७ ॥

लालाविषचिकित्सा ।

मरिचमहौषधवालकनागाह्वैर्मक्षिकाविषे लेपः ।
लालाविषमपनयतो मूले मिलिते पटोलनीलिकयोः ॥२८॥

काली मिर्च, सोंठ, सुगन्धवाला तथा नागकेशरको पीसकर बनाया गया लेप मक्खियोंके विषको तथा परवल और नीलकी जडका लेप लालाविषको नष्ट करता है ॥ २८ ॥

नखदंतविषे लेपः ।

सोमवल्कोऽश्वकर्णश्च गोजिह्वा हंसपाद्यपि ।
रजन्यौ गैरिकं लेपो नखदन्तविषापहः ॥ २९ ॥

सफेद कत्था, राल, गाउजुवा, हंसराज, हल्दी, दारुहल्दी और गेरूका लेप नख और दन्तविषको नष्ट करता है ॥ २९ ॥

कीटविषचिकित्सा ।

वचा हिङ्गु विडङ्गानि सैन्धवं गजपिप्पली ।
पाठा अतिविषा व्योषं काश्यपेन विनिर्मितम् ॥ ३० ॥
दशाङ्गमगदं पीत्वा सर्वकीटविषं जयेत् ।
कीटदष्टक्रियाः सर्वाः समानाः स्युर्जलौकसाम् ॥ ३१ ॥

वच, हींग, वायविडंग, सेंधानमक, गजपीपल, पाढ, अतीस, व त्रिकटु इन दश चीजोंका लेप दशाग अगद कहा जाता है । यह समस्त कीटविषोंको नष्ट करता है इसी प्रकार जोंकोंके विषमें भी समस्त कीटविषनाशक चिकित्सा करनी चाहिये ॥ ३० ॥ ३१ ॥

मृतसञ्जीवनोऽगदः ।

स्पृक्काप्लवस्थौणेयकाक्षीशैलेयरोचनातगरम् ।
ध्यामकं कुङ्कुमं मांसी सुरसात्रिफलैलकुष्ठघ्नम्॥ ३२ ॥
बृहतीशिरीषपुष्पश्रीवेष्टकपद्मचारटिविशाला ।
सुरदारुपद्मकेशरशावरकमनःशिलाकौन्त्यः ॥ ३३ ॥
जात्यर्कपुष्पसर्षपरजनीद्वयहिङ्गुपिप्पलीद्राक्षा ॥
जलमुद्गपर्णीमधूकदमनकमथ सिन्धुवाराश्च ॥ ३४ ॥
सम्पाकलोध्रमयूरकगन्धफलीलाङ्गलीविडंगाः ।
पुष्ये समुद्धृत्य समं पिष्ट्वा गुडिका विधेयाःस्युः ॥३५॥
सर्वविषघ्नो जयकृद्विषमृतसञ्जीवनो ज्वरनिहन्ता ।
पेयविलेपनधारणधूम्रग्रहणैर्गृहस्थश्च ॥ ३६ ॥
भूतविषजन्त्वलक्ष्मीकार्मणमन्त्राग्न्यशन्यरीन्हन्यात् ।
दुःस्वप्नस्त्रीदोषानकालमरणाम्बुचौरभयम् ॥ ३७ ॥
धनधान्यकार्यसिद्धिश्रीपुष्टिवर्णायुर्वर्धनो धन्यः ।
मृतसञ्जीवन एव प्रागमृताद्ब्रह्मणाभिहितः ॥ ३८ ॥

मालतीके फूल, केवटी मोथा, गठौना, फिटकरी, छरीला, गोरोचन, तगर, रोहिष, केशर, जटामासी, तुलसी, त्रिफला, छोटी इलायची, कत्था, बडी कटेरी, सिरसाके फूल, गन्धाविरोजा, कमल, भुइआमला, इन्द्रायण, देवदारु, कमलका केशर, शावरलोध, मनशिल, सम्भालूके बीज, चमेलीके फूल, आकके फूल, सरसो, हल्दी, दारुहल्दी, हींग, छोटी पीपल, मुनक्का, सुगन्धवाला, मुद्गपर्णी, मौरेठी, देवना, सम्भालू, अमलतास, लोध, अपामार्ग, प्रियगु, कलिहारी व वायविडंग समस्त द्रव्य समान भाग ले कूट पीसकर पुष्य नक्षत्रमें गोली बनानी चाहिये । यह समस्त विषोंको नष्ट करता, विषसे मरते हुएको बचाता तथा ज्वर नष्ट करता है । यह पीने, लेप करने, धारण करने, धूम पीने तथा घरमें रखनेसे भी लाभ करता है । तथा भूत, विष, क्रिमि, दरिद्रता, मन्त्रप्रयोग, अग्नि, वज्र और शत्रुओंके भय, दुःस्वप्न, स्त्रीदोष, अकाल मृत्यु, जल तथा चोरभयको दूर करता है । यह मृतसञ्जीवन धन, धान्य,कार्यसिद्धि, लक्ष्मी, पुष्टि, वर्ण और आयुको अधिक बढाता अतः धन्य है।इसे श्रीब्रह्माजीने अमृतके पहिले कहा है ३२-३८

इति विषाधिकारः समाप्तः ।

अथ रसायनाधिकारः ।

सामान्यव्यवस्था ।

यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ।
पूर्वे वयसि मध्ये वा शुद्धदेहः समाचरेत् ॥ १ ॥
नाविशुद्धशरीरस्य युक्तो रासायनो विधिः ।
नाभाति वाससि क्लिष्टे रङ्गयोग इवार्पितः ॥ २ ॥

जो औषध वृद्धावस्था व रोगको नष्ट करती है उसे रसायन कहते हैं । उसका प्रयोग बाल्यावस्था व युवावस्थामें शुद्ध शरीर (वमनादिसे)होकर करना चाहिये, शरीरकी शुद्धि विना रसायनप्रयोग लाभ नहीं करता, जिस प्रकार मैले कपडेपर रङ्ग नहीं चढता ॥ १॥२ ॥

पथ्यारसायनम् ।

गुडेन मधुना शुण्ठ्या कणया लवणेन वा ।
द्वे द्वे खादन्सदा पथ्ये जीवेद्वर्षशतं सुखी ॥ ३ ॥

गुड, शहद, सोंठ, छोटी पीपल, व नमक इनमेंसे किसी एकके साथ प्रतिदिन २ छोटी हर्रं खानेसे १०० वर्षतक नीरोग रहकर१००वर्षतक मनुष्य जीना है ॥३॥

अभयाप्रयोगः ।

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् ।
वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ॥ ४ ॥

रसायनकी इच्छा रखनेवालेको बडी हर्रका सेवन वर्षाकालमें सेंधानमकके साथ, शरदृतुमें शक्करके साथ, हेमन्तमें सोंठके साथ, शिशिरमें पिप्पलीके साथ और वसन्तमें शहदके तथा ग्रीष्ममे गुडके साथ करना चाहिये ॥ ४ ॥

लौहत्रिफलायोगः ।

त्रैफलेनायसीं पात्रीं कल्केनालेपयेन्नवाम् ।
तमहोरात्रिकं लेपं पिबेत्क्षौद्रोदकाप्लुतम् ॥ ५ ॥
प्रभूतस्नेहमशनं जीर्णे तस्मिन्प्रयोजयेत् ।
अजरोऽरुक्समाभ्यासाज्जीवेच्चापि समाः शतम् ॥ ६ ॥

त्रिफलाके कल्कका लेप नवीन लोहेके पात्रमें करना चाहिये । फिर रातादिन रहा हुआ वह लेप शहद और जल मिलाकर पीना चाहिये । इसके हजम हो जानेपर अधिक स्नेह मिला भोजन करना चाहिये । इस प्रकार एक वर्षके प्रयोग कर लेनेसे मनुष्य जवान तथा नीरोग रह कर १०० वर्षतक जीता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

पिप्पलीरसायनम् ।

पञ्चाष्टौ सप्त दश वा पिप्पलीः क्षौद्रसर्पिषा ।
रसायनगुणान्वेषी समामेकां प्रयोजयेत् ॥ ७ ॥
तिस्रस्तिस्रस्तु पूर्वाह्णे भुक्त्वाग्रे भोजनस्य च ।
पिप्पल्यः किंशुकक्षारभाविता घृतभर्जिताः ॥ ८ ॥
प्रयोज्या मधुसंमिश्रा रसायनगुणैषिणा ।
जेतुं कासं क्षयं श्वासं शोषं हिक्कां गलामयम् ॥ ९ ॥
अर्शांसि ग्रहणीदोषं पाण्डुतां विषमज्वरम् ।
वैस्वर्यं पीनसं शोषं गुल्मं वातबलासकम् ॥ १० ॥

रसायनके गुणोंकी इच्छा रखनेवालेको पीपल ५,८,७, १०, (अपनी प्रकृतिके अनुसार) प्रतिदिन शहद व घीके साथ सेवन करना चाहिये । यह प्रयोग एक वर्षका है । अथवा ढाकके क्षार जलसे भावित तथा घीमें भूनी गयी छोटी पीपल तीन तीनकी मात्रासे शहदमें मिलाकर प्रातःकाल, भोजनसे पहिले व भोजनके अनन्तर खानेसे कास, क्षय, श्वास, शोष, हिक्का, गलरोग, अर्श, ग्रहणीदोष, पाण्डुरोग, विषमज्वर, स्वरभेद, पीनस, गुल्म व वातबलासक, नष्ट होते हैं ॥ ७–१० ॥

त्रिफलारसायनम् ।

जरणान्तेऽभयामेकां प्राग्भक्तं द्वे बिभीतके ।
भुक्त्वा तु मधुसर्पिर्भ्यां चत्वार्यामलकानि च ॥ ११ ॥
प्रयोजयेत्समामेकां त्रिफलाया रसायनम् ।
जीवेद्वर्षशतं पूर्णमजरोऽव्याधिरेव च ॥ १२ ॥

अन्न हजम हो जानेपर १ हर्र, भोजनके पहिले दो बहेडे और भोजनके बाद ४ आँवलेका घी व शहदके साथ १ वर्षतक प्रयोग करनेसे मनुष्य युवा तथा नीरोग रहकर १०० वर्षतक जीता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

विविधानि रसायनानि ।

मण्डूकपर्ण्याः स्वरसः प्रयोज्यः
क्षीरेण यष्टीमधुकस्य चूर्णम् ।
रसो गुडूच्यास्तु समूलपुष्प्याः
कल्कः प्रयोज्यः खलु शङ्खपुष्प्याः ॥ १३ ॥
आयुःप्रदान्यामयनाशनानि
बलाग्निवर्णस्वरवर्धनानि ।
मेध्यानि चैतानि रसायनानि
मेध्या विशेषेण तु शङ्खपुष्पी ॥ १४ ॥

मण्डूकपर्णीका स्वरस अथवा दूधके साथ मौरेठीका चूर्ण अथवा गुर्चका रस, अथवा मूल व पुष्पसहित शङ्खपुष्पीका रस इनमेंसे किसी एकका प्रयोग करना

चाहिये । यह आयु बढानेवाले, रोग नष्ट करनेवाले, बल, अग्नि तथा वर्ण और स्वरको बढानेवाले तथा मेधाके लिये हितकर रसायन है इनमें भी शंखपुष्पी विशेष कर मेधाके लिये हितकर है ॥ १३ ॥ १४ ॥

अश्वगन्धारसायनम् ।

पीताश्वगन्धा पयसार्धमास
घृतेन तैलेन सुखाम्बुना वा ।
कृशस्य पुष्टिं वपुषो विधत्ते
बालस्य शस्यस्य यथाम्बुवृष्टिः ॥ १५ ॥

असगन्धके चूर्णका दूधके साथ अथवा घृत, तैल या गुनगुने जलमें से किसी एक के साथ सेवन करनेसे दुर्बलके शरीरको इस प्रकार पुष्ट करता है, जैसे जलवृष्टि छोटे धानोंको ॥ १५ ॥

धात्रीतिलरसायनम् ।

धात्रीतिलान्भृङ्गरजोविमिश्रान्
ये भक्षयेयुर्मनुजा क्रमेण ।
ते कृष्णकेशा विमलेन्द्रियाश्च
निर्व्याधयो वर्षशतं भवेयु ॥ १६ ॥

जो मनुष्य आँवला, तिल व भागराके चूर्णका सेवन करते हैं वे काले केशयुक्त इंद्रियशक्तिसम्पन्न १०० वर्षतक जीते हैं ॥ १६ ॥

वृद्धदारकरसायनम् ।

वृद्धदारकमूलानि श्लक्ष्णचूर्णानि कारयेत् ।
शतावर्या रसेनैव सप्तरात्राणि भावयेत् ॥ १७ ॥
अक्षमात्रं तु तच्चूर्णं सर्पिषा सह भोजयेत् ।
मासमात्रोपयोगेन मतिमाञ्जायते नर ॥ १८ ॥
मेधावी स्मृतिमांश्चैव वलीपलितवर्जित ।

विधाराकी जडका महीन चूर्ण कर शतावरीके रसकी ७ भावना देनी चाहिये । यह चूर्ण १ तोलेकी मात्रासे प्रतिदिन घीके साथ खाना चाहिये । इसके सेवनसे मनुष्य बुद्धिमान्, मेधावी, स्मृतिमान् तथा वलीपलितरहित होता है ॥ १७॥१८ ॥

हस्तिकर्णचूर्णरसायनम् ।

हस्तिकर्णरज खादेत्प्रातरुत्थाय सर्पिषा ॥ १९ ॥
यथेष्टाहारचारोऽपि सहस्रायुर्भवेन्नर ।
मेधावी बलवान्कामी स्त्रीशतानि व्रजत्यसौ ॥ २० ॥
मधुना त्वश्ववेगः स्याद्वलिष्ठ स्त्रीसहस्रग ।
प्रयोक्तव्यो भिषजा चाभिमन्त्रणे ॥ २१ ॥

"ओं नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धिं देहि रुद्रवचनेन स्वाहा " ॥ २२ ॥

जो मनुष्य प्रातःकाल भूरुलाभके चूर्णको घीके साथ चाटता है तथा यथेष्ट आहार विहार करता है वह १००० वर्षतक जीता है तथा मेधावी, बलवान् व कामी होकर १०० स्त्रियोंके साथ मैथुन करता है तथा इसीको शहदके साथ चाटनेसे हजारों स्त्रियोंको गमन करनेकी शक्ति हो जाती है तथा इस मन्त्रसे अभिमन्त्रण करना चाहिये । "ॐ नमो महाविनायकाय अमृतं रक्ष रक्ष मम फलसिद्धि देहि रुद्रवचनेन स्वाहा " १९–२२ ॥

धात्रीचूर्णरसायनम् ।

धात्रीचूर्णाढकं स्वस्वरसपरिगतं क्षौद्रसर्पिः समांश
कृष्णामानीसिताष्टप्रसृतयुतमिदं स्थापितं भस्मराशौ ।
वर्षान्ते तत्समश्नन्भवति विपलितो रूपवर्णप्रभावै-
र्निर्व्याधिर्बुद्धिमेधास्मृतिबलवचनस्थैर्यसत्त्वैरुपेत. २३ ॥

आवलेका चूर्ण ३ सेर १६ तोला, आवलेके स्वरससे ही ७ बार भावित कर शहद व घी समान भाग मिला तथा छोटी पीपल ३२ तोला, मिश्री ६४ तोला मिलाकर भस्मराशिमें गाड देना चाहिये । वर्षाकालके अनन्तर निकाल कर इसका सेवन करनेसे मनुष्य पलितरहित रूप, वर्ण और प्रभावयुक्त, नीरोग तथा बुद्धि, धारणाशक्ति, स्मरणशक्ति, बल व वचनकी स्थिरता तथा सत्त्वगुणसे युक्त होता है ॥ २३ ॥

गुडूच्यादिलेहः ।

गुडूच्यपामार्गविडङ्गशङ्खिनी-
वचाभयाकुष्ठशतावरीसमा ।
घृतेन लीढा प्रकरोति मानवं
त्रिभिर्दिनै श्लोकसहस्रधारिणम् ॥ २४ ॥

गुर्च, अपामार्ग, वायविडङ्ग, शखपुष्पी, वच, हर्र, कूठ और शतावरी समान भाग ले चूर्ण कर घीके साथ चाटनेसे ३ दिनके ही प्रयोगसे मनुष्य हजारों श्लोक कण्ठ करनेकी शक्तिसे सम्पन्न होता है ॥ २४ ॥

सारस्वतघृतम् ।

समूलपत्रामादाय ब्राह्मीं प्रक्षाल्य वारिणा ।
उलूखले क्षोदयित्वा रसं वस्त्रेण गालयेत् ॥ २५ ॥
रसे चतुर्गुणे तस्मिन्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ।
औषधानि तु पेष्याणि तानीमानि प्रदापयेत् ॥ २६ ॥

हरिद्रा मालती कुष्ठ त्रिवृता सहरीतकी ।
एतेषा पलिकान्भागाञ्शेषाणि कार्षिकाणि तु ॥ २७ ॥
पिप्पल्योऽथ विडङ्गानि सैन्धवं शर्करा वचा ।
सर्वमेतत्समालोड्य शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥ २८ ॥
एतत्प्राशितमात्रेण वाग्विशुद्धिश्च जायते ।
सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैः सह गीयते ॥ २९ ॥
अर्धमासप्रयोगेण सोमराजीवपुर्भवेत् ।
मासमात्रप्रयोगेण श्रुतमात्रं तु धारयेत् ॥ ३० ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि अर्शांसि विविधानि च ।
पञ्च गुल्मान् प्रमेहांश्च कासं पञ्चविधं जयेत् ॥ ३१ ॥
वन्ध्यानां चैव नारीणां नराणां चाल्परेतसाम् ।
घृतं सारस्वतं नाम बलवर्णाग्निवर्धनम् ॥ ३२ ॥

मूलपत्रसहित ब्राह्मी खोद जलसे धो ओखलीमें कूट-कर कपडेसे रस छानना चाहिये । इसप्रकार छने ६ सेर ३२ तो० रसमें १ सेर ९ छ. ३ तो० घी मिलाकर पकाना चाहिये तथा हल्दी, मालती, कूठ, निसोथ व हर्र, प्रत्येक ४ तोले तथा छोटी पीपल, वायविडंग, सेंधानमक, शक्कर व वच प्रत्येक १ तोलाका कल्क मिलाकर मन्द आँचमे पकाना चाहिये । सम्यक् पाकार्थ घीसे चौगुना जल भी छोडना चाहिये । यह घृत चाटनेसे ही वाणी शुद्ध करता है, इसका प्रयोग करनेवाला ७ दिनमें ही किन्नरोंके समान गानेवाला, १५ दिनमें चन्द्रमाकी किरणोंके समान शरीरवाला होता है । एक मास प्रयोग कर लेनेसे जो कुछ सुनता है उसे ही कण्ठ कर लेता है । यह अठारह प्रकारके कुष्ठ, अर्श, पाचों गुल्म प्रमेह तथा पाचों प्रकारके कास नष्ट करता है । वन्ध्या स्त्रियों तथा अल्पवीर्यान्वित पुरुषोंके लिये हितकर है तथा यह सारस्वत घृत बल वर्ण व अग्निको बढाता है ॥ २५–३२ ॥

जलरसायनम् ।

कासश्वासातिसारज्वरपिडककटीकुष्ठकोठप्रकारान्
मूत्राघातोदरार्शःश्वयथुगलशिरःकर्णशूलाक्षिरोगान् ।
ये चान्ये वातपित्तक्षतजकफकृता व्याधयः सन्ति जन्तो-
स्तांस्तानभ्यासयोगादपनयति पयः पीतमन्ते निशायाः ॥
व्यङ्गवलीपलितघ्नं पीनसवैस्वर्यकासशोथघ्नम् ।
रजनीक्षयेऽम्बुनस्यं रसायनं दृष्टिजननं च ॥ ३४ ॥

रात्रिके अन्तमें जल पीनेके अभ्याससे कास, श्वास, अतीसार, ज्वर, कमरकी पीडा, कुष्ठ, ददरे, मूत्राघात, उदर, अर्श, शोथ, गले, शिर, कान व नेत्रके रोग तथा अन्य वात, पित्त, कफ तथा रक्तसे उत्पन्न होनेवाले रोग नष्ट होते हैं । इसी प्रकार प्रातःकाल जलका नस्य लेनेसे झाई, झुर्रियां, बालोंकी सफेदी, पीनस, स्वरभेद, कास सूजन नष्ट होती है तथा यह रसायन नेत्रोंकी शक्तिको बढ़ाता है ॥ ३३ ॥ ३४ ॥

अमृतसारलोहरसायनम् ।

नागार्जुनो मुनीन्द्रः शशास यल्लोहशास्त्रमतिगहनम् ।
तस्यार्थस्य स्मृतये वयमेतद्विशदाक्षरैर्ब्रूमः ॥ ३५ ॥
मेने मुनिः स्वतन्त्रे भूयः पाकं न पलपञ्चकादर्वाक् ।
सुबहुप्रयोगदोषादूर्ध्वं न पलत्रयोदशकात् ॥ ३६ ॥
तत्रायसि पचनीये पञ्चपलादौ त्रयोदशपलान्ते च ।
लौहात्त्रिगुणा त्रिफला ग्राह्या षड्भिः पलैरधिका ॥३७॥
मारणपुटनस्थालीपाकास्त्रिफलैकभागसम्पाद्याः ।
त्रिफलाभागद्वितयं ग्रहणीयं लौहपाकार्थम् ॥ ३८ ॥

नागार्जुन मुनिने जो लोहशास्त्र अति कठिन तथा गम्भीर कहा है उसके स्मरणार्थ हम उसका विशद व्याख्यान करते हैं । मुनिने अपने शास्त्रमें पाच पलसे कम तथा तेरह पलसे अधिक लोहका एक बारमें प्रयोग नहीं कहा । उस लोहकी भस्म करनेके लिये जितना लोह हो उससे तिगुना छः पल अधिक मिलाकर (जैसे ५ पल लोहके लिये ५ के तिगुने १५ और ६ अर्थात् २१ पल इसी प्रकार १० पल लोहके लिये १० के तिगुने ३० और ६ अर्थात् ३६ पल) त्रिफला लेनी चाहिये उसके तीन भाग करने चाहिये एक भागसे मारण, पुटन और स्थालीपाक करना चाहिये । शेष २ भाग त्रिफला प्रधानपाकके लिये रखनी चाहिये ॥ ३५–३८ ॥

जलनिश्चयः ।

सर्वत्रायःपुटनाद्यर्थैकांशे शरावसंख्यातम् ।
प्रतिपलमेव त्रिगुणं पाथः क्वाथार्थमादेयम् ॥ ३९ ॥
सप्तपलादौ भागे पञ्चदशान्तेऽम्भसां शरावैश्च ।
स्याद्यैकादशकान्तैरधिकं तद्वारि कर्तव्यम् ॥ ४० ॥
तत्राष्टमो विभागः शेषः क्वाथस्य यत्नतः स्थाप्यः ।
तेन हि मारणपुटनस्थालीपाका भविष्यन्ति ॥ ४१ ॥
पाकार्थे तु त्रिफला भागद्वितये शरावसंख्यातम् ।
प्रतिपलमम्बुसमं स्यादधिकं द्वाभ्यां शरावाभ्याम् ॥४२॥

तत्र चतुर्थो भागः शेषो निपुणेन यत्नतो ग्राह्य' ।
अयस' पाकार्थत्वात्स च सर्वस्मात्प्रधानतमः ॥ ४३ ॥

समस्त लौहकर्ममें क्वाथ बनानेके लिये प्रतिपल ३ शराव (६ कुडव) जल छोडना चाहिये, तथा सात पल (पांच पल लोहके लिये गृहीत त्रिफलाके तृतीयांशभाग) से १५ पलतक त्रिफलामें जल पूर्वोक्त मानसे क्रमशः ३ से ११ शराव तक अधिक छोडना । जैसे ७ पलके लिये ७×३ = २१ और ३ शराव अधिक अर्थात् २४ शराव जल लेना चाहिये । ऐसे ही (६ पल लोहके लिये गृहीत त्रिफलाके तृतीयांश भाग) ८ पल त्रिफलाके लिये २४ शराव और ४ शराव अधिक अर्थात् २८ शराव जल लेना चाहिये । ऐसे ही क्रमशः जितने पल क्वाथ्य त्रिफला हो उससे त्रिगुण शराव जल तथा ९ पलमें ५, दश पलमें ६, ग्यारहमें ७, इसी प्रकार बढाते हुए १५ पलमें ११ शराव अधिक अर्थात् १५ के त्रिगुण ४५ और ११ और ५६ शराव जल छोडना चाहिये । तथा अष्टमांश क्वाथ शेष रखना चाहिये। इसीसे मारण, पुटन व स्थालीपाक करना चाहिये तथा प्रधान पाकके लिये बचे त्रिफलामें प्रतिपल १ शराव (अर्थात् त्रिफलासे अष्टगुण) जल और २ शराव अधिक छोडना चाहिये और चतुर्थांश शेष रखना चाहिये । प्रधानपाकमें सहायक होनेसे यह क्वाथ भी प्रधान है ॥ ३९–४३ ॥

दुग्धनिश्चयः ।

पाकार्थमश्मसारे पञ्चपलादौ त्रयोदशपलान्ते ।
दुग्धशरावद्वितयं पादैरेकादिकैरधिकम् ॥ ४४ ॥

लौहपाकके लिये ५ पलसे १३ पलतक लौहमें २ शराव और ¼ शराव दूध अधिक प्रतिपलमें लेना चाहिये । अर्थात् ५ पलमें २। शराव, ६ पलमें २॥ शराव, ७ पलमें २॥। शराव, ८ पलमें ३ शराव इसी प्रकार प्रतिपल लौहमें चौथाई शराव दूध बढा देना चाहिये ॥ ४४ ॥

लौहमात्रानिश्चयः ।

पञ्चपलादिकमात्रा तदभावे तदनुसारतो ग्राह्यम् ।
चतुरादिकमेकान्तं शक्तावधिकं त्रयोदशकात् ॥ ४५ ॥

सामान्यनियम पञ्चपलादिका है पर इसके अभावमे ४ पलसे १ पलतकका तथा शक्ति होनेपर १३ पलसे अधिक लौहका भी पाक कर सकते हैं ॥ ४५ ॥

प्रक्षेप्यौषधनिर्णयः ।

त्रिफलात्रिकटुकचित्रककान्तक्रामकविडङ्गचूर्णानि ।
अन्यान्यपि देयानि पलाशवृक्षस्य च बीजानि ॥ ४६ ॥
जातीफलजातीकोपैलाकक्कोलकलवङ्गानाम् ।
सितकृष्णजीरकयोरपि चूर्णान्ययस समानि स्यु ।
त्रिफलात्रिकटुविडङ्गा नियता अन्ये यथाप्रकृति ॥ ४७ ॥
कालायसदोषहृतेर्जातीफलादेर्लवङ्गान्तस्य ।
क्षेप प्राप्त्यनुरूपः सर्वस्योनस्य चैकाद्यै' ॥ ४८ ॥
कान्तक्रामकमेकं नि शेष दोषमपहरत्ययस' ।
द्विगुणत्रिगुणचतुर्गुणमाज्यं ग्राह्य यथाप्रकृति ॥ ४९ ॥
यदि भेषजभूयस्त्व स्तोकत्व वापि चूर्णानाम् ।
अयसा साम्यं संख्या भूयोऽल्पत्वेन भूयोऽल्पा ॥५०॥
एव धात्वनुसारात्तत्तत्कथितौषधस्य बाधेन ।
सर्वत्रैव विधेयस्तत्तदकथितस्यौषधस्योह. ॥ ५१ ॥

त्रिफला, त्रिकटु, चीतेकी जड, नागरमोथा, वायविडङ्ग, ढाकके बीज, जायफल, जावित्री, इलायची, कङ्कोल, लवङ्ग, सफेद जीरा, काला जीरा समस्त समान भागमें मिलित द्रव्योंका चूर्ण मिलकर लौहके बराबर लेना चाहिये । इनमेंसे त्रिफला, त्रिकटु और वायविडंग अवश्य डालना चाहिये । और द्रव्य प्रकृतिके अनुसार छोडना चाहिये तथा लोहके दोष दूर करनेके लिये जायफलसे लवगतक जितने द्रव्य गिनाये हैं वे एक दो न मिलनेपर जितने मिल सके उतने ही अवश्य छोडने चाहिये, तथा नागरमोथा अकेला ही लोहके सब दोष दूर करता है अतः उसे अवश्य छोडे तथा रोगीकी प्रकृतिके अनुसार (क्रमशः कफ, पित्त, वातमें) द्विगुण, त्रिगुण तथा चतुर्गुण घी छोडना चाहिये । यदि ओषधिया अधिक हों अर्थात् सब मिल जावें तो प्रत्येक चूर्ण थोडा और यदि कम मिले तो प्रत्येक चूर्ण अधिक छोडना चाहिये । अर्थात् औषधियोंकी सख्याके न्यूनाधिक्यसे चूर्णकी मात्रा कम या अधिक न होगी । वह प्रत्येक अवस्थामें मिलकर लोहके बराबर ही होनी चाहिये । इसी प्रकार रोगीकी प्रकृतिके अनुसार कही हुई औषधियोंको भी अलग करना तथा अनुक्त औषधिया भी छोडनी चाहिये ॥ ४६–५१ ॥

लोहमारणविधिः ।

कान्तादिलौहमारणविधानसर्वस्वमुच्यते तावत् ।
यस्य कृते तल्लौहं पक्तव्यं तस्य शुभे दिवसे ॥ ५२ ॥

---

१ उक्त प्रक्षेप्य औषधिया लोह सिद्ध हो जानेपर ही मिलाना चाहिये ।

समुद्दङ्गारकरालितनतभूभागे शिवं समभ्यर्च्य ।
वैदिकविधिना वह्निं निधाय हुत्वाहुतीस्तत्र ॥ ५३ ॥
धर्मात्सिध्यति सर्वं श्रेयस्तद्धर्मसिद्धये किमपि ।
शक्त्यनुरूपं दद्याद्द्विजाय सन्तोषिणे गुणिने ॥ ५४ ॥
सन्तोष्य कर्मकारं प्रसादपूगादिदानसम्मानैः ।
आदौ तदश्मसारं निर्मलमेकान्ततः कुर्यात् ॥ ५५ ॥
तदनु कुठारच्छिन्नात्रिफलागिरिकर्णिकास्थिसंहारैः ।
करिकर्णच्छदमूलकशतावरीकेशराजाख्यैः ॥ ५६ ॥
शालिंचमूलकाशीमूलप्रावृजभृङ्गराजैश्च ।
लिप्त्वा दग्धव्यं तद् दृष्टिक्रियलोहकारेण ॥ ५७ ॥
चिरजलभावितविमलं शालाङ्गारेण परित आच्छाद्य ।
कुशलाध्मापितभस्त्रानवरतमुक्तेन पवनेन ॥ ५८ ॥
वह्नेर्वाह्यज्वाला वोढव्या जातु नैव कुञ्चिकया ।
मृल्लवणसलिलभाजा किन्तु स्वच्छाम्बु सप्लुतया॥५९॥
द्रव्यान्तरसंयोगात्स्वां शक्तिं भेषजानि मुञ्चन्ति ।
मलधूलीमत्सर्वं सर्वत्र विवर्जयेत्तस्मात् ॥ ६० ॥
सन्दंशेन गृहीत्वान्तः प्रज्वालिताग्निमध्यमुपनीय ।
गलति यथायथमग्नौ तथैव मृदु वर्धयेन्निपुणः ॥ ६१॥
तलनिहितोर्ध्वमुखाङ्कुशलग्नं त्रिफलाजले ।
विनिक्षिप्य निर्वापयेच्छेषं त्रिफलाम्बु रक्षेच्च ॥ ६२ ॥
यल्लौहं न मृतं तत्पुनरपि पक्तव्यमुक्तमार्गेण ।
यन्न मृतं तथापि तत्त्यक्तव्यमलौहमेव तत् ॥ ६३ ॥
तदनु घनलौहपात्रे कालायसो मुद्गरेण सञ्चूर्ण्य ।
दत्त्वा बहुशः सलिलं प्रक्षाल्याङ्गारमुद्धृत्य ॥ ६४ ॥
तदयः केवलमग्नौ शुष्कीकृत्याथवातपे पश्चात् ।
लौहशिलाया पिष्यादसितेऽश्मनि वा तदप्राप्तौ ॥ ६५॥

अब कान्तादिलोहकी मारण विधि कहते हैं । जिस रोगीके लिये लोह बनाना है उसके लिये शुभ नक्षत्रादिसे युक्त दिनमे मिट्टी और अङ्गारोंको मिला लिपी गयी भूमिपर शंकरजीका पूजन कर वैदिकविधिसे अग्नि स्थापित कर आहुति करनी चाहिये । धर्मसे सर्व कार्य सफल होते हैं अतः धर्मार्थ किसी सन्तोषी गुणवान् ब्राह्मणके लिये शक्तिके अनुकूल दान करना चाहिये । फिर लुहारको सुपारी, पान तथा प्रसाद आदि देकर सम्मानित तथा सन्तुष्ट करना चाहिये । पहिले उस लोहको बिल्कुल शुद्ध कर लेना चाहिये (लोहशोधनकी कोई परिभाषा ग्रन्थकारने नहीं लिखी । यद्यपि शिवदासजीने लिखी है पर वह अतिविस्तृत होनेसे तथा अधिक कष्टसाध्य होनेसे छोडता हू और रसग्रन्थोंमें जो अनेक पद्धतियाँ बतलायी गयी हैं उनमेंसे एक यह है " चिञ्चापत्रजलक्काथादयोदोषमुदस्यति । यद्वा फलत्रयोपेते गोमूत्रे कथितं खलु " ॥ अर्थात् इमलीकी पत्तीके रससे स्वेदन करनेसे अथवा त्रिफला और गोमूत्रमे स्वेदन करनेसे भी लोह शुद्ध हो जाता है । विशेष उन्हीं ग्रन्थोंमें देखिये) इसके अनतर कन्द-गुडूची, त्रिफला, विष्णुक्रांता, अस्थिसंहार (हत्थाजोडी) हस्तिकर्णपलाशके पत्ते और जड तथा शतावरी व काला भागरा, शालिञ्चशाककी जड, काशकी जड, पुनर्नवा और भांगराके कल्कसे उस लोहपर लेप करना चाहिये और फिर उसे सुखा लेना चाहिये । फिर अधिक समयतक जलमें भावित कर साफ किये शालके कोयलोंको भट्टीमें बिछाकर धौंकनीसे धौंकना चाहिये । तथा अग्निकी लपट अधिक करनेके लिये मिट्टी, नमक आदि मिली कूञ्चीसे कोयलोंको न हटाना चाहिये किन्तु यदि हटानेकी आवश्यकता ही हो तो स्वच्छ जलमें धोकर सुखायी गयी कूँचीसे हटाना चाहिये । क्योंकि दूसरे द्रव्योंके मिल जानेसे ओषधियाँ अपना गुण छोड देती हैं । अतः कूडा या धूलि आदिको सदा बचाना चाहिये फिर लोहके पत्रोंको चिमटेसे पकडकर प्रज्वलित भट्टीके मध्यमें रखना चाहिये । ज्यों ज्यो लोहा गलता जावे त्यों त्यों और बढाते जाना चाहिये और गले हुए लौहको ऊर्ध्वमुखवाली अंकुश (कटोरी युक्त चम्मच) से निकाल कर पूर्वस्थापित त्रिफलाक्काथमें बुझाना चाहिये । शेष त्रिफलाक्काथ रख लेना चाहिये । और जो लोह इस प्रकार भस्म न हुआ हो उसे फिर इसी प्रकार पकाना चाहिये । फिर भी जो न मरे उसे छोड ही देना चाहिये क्योंकि वह लोह ही न होगा । फिर उस लौहको मजबूत लौहके खरलमें कूट बहुत जल छोड धोकर मिट्टी और कोयला साफ कर अग्नि अथवा धूपमे सुखाना चाहिये । फिर उसे लौहकी सिल अथवा काले पत्थरकी सिलपर पीसना चाहिये । (उपरोक्त धूपमें सुखा लेना ही लोहका भानुपाक कहा जाता है । तथा जो कद गुडूची आदि ओषधियाँ बतलायी हैं उनके साथ वैद्य, लोग लौहसे षोडशांश अथवा आधा स्वर्णमाक्षिक भी छोडते हैं) ॥ ५२-६५ ॥

स्थालीपाकविधिः ।

अथ कृत्वायोभाण्डे दत्त्वा त्रिफलाम्बुशेषमन्यद्वा ।
प्रथमं स्थालीपाकं दद्याद्द्रवक्षयात्तदनु ॥ ६६ ॥
गजकर्णपत्रमूलशतावरीभृङ्गकेशराजरसैः ।
प्राग्वत्स्थालीपाकं कुर्यात्प्रत्येकमेकं वा ॥ ६७ ॥

इसके अनन्तर लोहेकी कढाईमें शेष त्रिफलाजल व लौह छोडकर उस समयतक पकाना चाहिये जबतक द्रव निःशेष हो जावे। फिर हस्तिकर्णपलाशकी जड,शतावरी, भांगरा व काले भांगराका त्रिफलाके मानके अनुसार मिलित क्वाथ बना छोडकर पकाना चाहिये अर्थात् ५ पल लौहमें ७ पल ओषधियाँ २४ शराव जलमें पकाकर ३ शराव शेष रखना चाहिये । उसी क्वाथसे पाक करना चाहिये ॥ ६६ ॥ ६७ ॥

पुटपाकविधिः ।

हस्तप्रमाणवदनं श्वभ्रं हस्तैकखातसममध्यम् ।
कृत्वा कटाहसदृशं तत्र करीषं तुषं च काष्ठ च ॥ ६८ ॥
अन्तर्धनतरमर्द्धं शुषिरं परिपूर्य दहनमायोज्य ।
पश्चादयसश्चूर्णं श्लक्ष्ण पङ्कोपमं कुर्यात् ॥ ६९ ॥
त्रिफलाम्बुभृङ्गकेशरशतावरीकन्दमाणसहजरसैः ।
भल्लातककरिकर्णच्छदमूलपुनर्नवास्वरसैः ॥ ७० ॥
क्षिप्त्वाथ लोहपात्रे मार्दे वा लौहमार्दपात्राभ्याम् ।
तुल्याभ्यां पृष्ठेनाच्छाद्यान्ते रन्ध्रमालिप्य ॥ ७१ ॥
तत्पुटपात्रं तत्र श्वभ्रज्वलने निधाय भूयोऽपि ।
काष्ठकरीषतुषैस्तत्सञ्छाद्याहर्निशं दहेत्प्राज्ञः ॥ ७२ ॥
एवं नवभिर्भेषजराजैस्तु पचेत्सदैव पुटपाकम् ।
प्रत्येकमेकमेभिर्मिलितैर्वा त्रिचतुरान्वारान् ॥ ७३ ॥
प्रतिपुटनं तत्पिष्यात्स्थालीपाकं विधाय तथैव ।
तावद्दिनं च पिष्याद्विगलद्रजसा तु युज्यते यत्र ॥७४॥
तदयश्चूर्णं पिष्टं घृष्ट घनसूक्ष्मवाससि श्लक्ष्णम् ।
यदि रजसा सदृश स्यात्केतक्यास्तर्हि तद्भद्रम् ॥ ७५ ॥
पुटने स्थालीपाकेऽधिकृतपुरुषे स्वभावरुगधिगमात् ।
कथितमपि हेयमौषधमुचितमुपादेयमन्यदपि ॥ ७६ ॥

एक हाथका गोल गड्ढा खोदना चाहिये बीचमें बराबर रखना चाहिये। तथा उसका मुख कटाहके सदृश गोल बनाना चाहिये। इस गढेके नीचेके आधे भागको वनकण्डे, धानकी भूसी और लकडियाँ भरकर आग लगा देनी चाहिये ऊपरसे त्रिफलाके क्वाथ तथा भांगरा, नागकेशर, शतावरी, माणकन्द, भिलावाँ तथा एरण्डके पत्र और मूलके स्वरससे भावित कीचडके समान लौहको लौह या मिट्टीके शराव सम्पुटमें बन्द कर रखना चाहिये। ऊपरसे फिर वनकण्डे आदिसे ढककर रात-दिन आँच देनी चाहिये। इस प्रकार इन नौ ओषधियों-मेंसे प्रत्येकसे एक एक बार अथवा सब मिलाकर ३ या ४ पुट देना चाहिये। प्रतिपुटमें पीसना तथा स्थालीपाक करना चाहिये। पीसना इतना चाहिये कि कपडेसे छन जाय। फिर उसे महीन कपडेसे छानना चाहिये। यदि केवडेके रजके सदृश महीन हो जावे तो समझना चाहिये कि उत्तम लौहभस्म बन गयी। पर यह ध्यान रहे कि जिस पुरुषके लिये लौह बनाना है उसकी प्रकृति व रोगके अनुसार कही हुई औषधियाँ भी अलग कर देनी चाहिये और अनुक्त भी मिला देनी चाहिये। वैद्यको इसके लिये विशेष ध्यान देना चाहिये॥६८-७६॥

लौहपाकरसायनम् ।

अभ्यस्तकर्मविधिभिर्बालकुशाग्रीयबुद्धिभिरलक्ष्यम् ।
लौहस्य पाकमधुना नागार्जुनदिष्टमभिदध्मः ॥ ७७ ॥
लोहारकृतताम्रजकटाहे दृढमृण्मये प्रणम्य शिवम् ।
तदयः पचेदचपलः काष्ठेन्धनेन वह्निना मृदुना ॥ ७८॥
निक्षिप्य त्रिफलाजलमुदितं यत्तद्घृतं च दुग्धं च ।
सञ्चाल्य लौहमय्या दर्व्या लग्नं समुत्पाट्य ॥ ७९ ॥
मृदुमध्यखरभावैः पाकस्त्रिविधोऽत्र वक्ष्यते पुसाम् ।
पित्तसमीरणश्लेष्मप्रकृतीना मध्यमस्य समः ॥ ८० ॥

अब हम कुशाग्रबुद्धि तथा दृष्टकर्मा वैद्योंसे भी दुर्ज्ञेय महामान्य मुनि नागार्जुनद्वारा वर्णित लौहपाकविधि कहते हैं। शंकरजीको प्रणाम कर वह लौह व त्रिफलाजल तथा घी व दूध (उक्तमात्रामें) छोडकर लकडियों द्वारा मन्द आँचसे पकाना चाहिये । तथा कढाहीमें चिपकता हुआ कल्छीसे खुरचते जाना चाहिये। पाक तीन प्रकारका होता है। पित्तप्रकृतिवालेके लिये मृदुपाक, वातप्रकृतिवालेके लिये मध्यमपाक और कफप्रकृतिवालेके लिये खरपाक तथा समप्रकृतिवालेके लिये समपाक होना चाहिये ॥ ७७-८० ॥

त्रिविधपाकलक्षणम् ।

अभ्यक्तदर्वि लौहं सुखदु खस्खलनयोगि मृदुमध्यम् ।
उज्झितदर्वि खर परिभाषन्ते केचिदाचार्याः ॥ ८१ ॥
अन्ये विहीनदार्वीप्रलेपमाखूत्कराकृतिं ब्रुवते ।
मृदुमध्यमर्धचूर्णं सिकतापुञ्जोपमं तु खरम् ॥ ८२ ॥

जो कल्छीमें लिपा रहे उसे मृदु। जो कुछ कठिनतासे कुछ आसानीसे छूट जाय उसे मध्यम। जो कल्छीसे छूट जाय उसे खरपाक कहते हैं। दूसरे आचार्योंका सिद्धान्त है कि जो लौह कल्छीमें न चिपकते हुए भी मूसेकी लेंडीके समान हो जाय वह मृदु, जो आधा चूर्णसा हो जाय वह मध्य, जो रेतीके ढेरके समान हो जाय उसे खरपाक कहते हैं ॥ ८१ ॥ ८२ ॥

त्रिविधपाकफलम् ।

त्रिविधोऽपि पाक ईदृक् सर्वेषां गुणकृदेव न तु विफलः।
प्रकृतिविषये च सूक्ष्मौ गुणदोषौ जनयतीत्यल्पम् ८३

तीनों प्रकारका पाक सभीके लिये गुणकारी ही होता है, विफल नहीं । पर प्रकृतिके अनुसार कुछ विशेष गुण तथा कुछ थोडे दोष भी करता है ॥ ८३ ॥

प्रक्षेप्यव्यवस्था ।

विज्ञाय पाकमेव द्रागवतार्य क्षितौ क्षणान्कियतः ।
विश्रम्य तत्र लोहे त्रिफलादे प्रक्षिपेच्चूर्णम् ॥ ८४ ॥
यदि कर्पूरप्राप्तिर्भवति ततो विगलिते तदुष्णत्वे ।
चूर्णीकृतमनुरूपं क्षिपेन्न वा न यदि तल्लाभ. ॥ ८५ ॥

इस प्रकार पाक हो जानेपर पात्रको शीघ्रही भूमिमें उतार कुछ देर ठहरकर त्रिफला आदिका चूर्ण पूर्वोक्त मानमें छोडना चाहिये यदि उत्तम कर्पूर मिले तो उसे बिल्कुल ठण्ढा हो जानेपर मिलाना चाहिये और न मिले तो कोई आवश्यकता नहीं ॥ ८४ ॥ ८५ ॥

लोहस्थापनम् ।

पक्वं तदश्मसारं सुचिरघृतस्थित्यभाविरूक्षत्वे ।
गोदोहनादिभाण्डे भाण्डाभावे सति स्थाप्यम् ॥ ८६ ॥

इस प्रकार पका हुआ लोह उत्तम लोहके ही भाडमें और उसके अभावमें अधिक समयतक घी रखनेसे जिसकी रूक्षता मिट गयी है ऐसे मिट्टीके वर्तनमें अथवा गोदोहनी आदिमें रखना चाहिये ॥ ८६ ॥

लोहादूघृताहरणम् ।

यदि तु परिप्लुतिहेतोर्घृतमीक्षेताधिक ततोऽन्यस्मिन् ।
भाण्डे निधाय रक्षेद्भाव्युपयोगो ह्यनेन महान् ॥ ८७ ॥

यदि इस लौहमे घृत अधिक तैरता दिखायी दे तो उसे किसी दूसरे पात्रमें निकालकर रख दे और लौहके रूक्ष हो जानेपर इसे छोडे । इससे यही वडा काम होगा ॥ ८७ ॥

त्रिफलाघृतनिषेकः ।

अयसि विरूक्षीभूते स्नेहस्त्रिफलाघृतेन सम्पाद्यः ।
एतत्ततो गुणोत्तरमित्यमुना स्नेहनीय तत् ॥ ८८ ॥

लौहके विशेष रूक्ष हो जानेपर तथा लौहपाकसे बचा घी न रहनेपर त्रिफलाके क्वाथ तथा कल्कसे सिद्ध घृतसे स्नेहन करना चाहिये । यह त्रिफला घृत लोहपाकसे निकाले गये घृतसे भी अधिक गुणदायक होता है अतः इसीका निषिञ्चन करना चाहिये ॥ ८८ ॥

लोहपाकावशिष्टघृतप्रयोगः ।

अत्यन्तकफप्रकृतेर्भक्षणमयसोऽमुनैव शंसन्ति ।
केवलमपीदमशितं जनयत्ययसो गुणान्कियतः८९॥

तथा अत्यन्त कफ प्रकृतिवाले मनुष्यको इसी त्रिफला घृतके साथ लौहका सेवन करना चाहिये यह घृत अकेले सेवन करनेसे भी लौहके गुणोंको करता है ॥ ८९ ॥

लौहाभ्ररसायनम् ।

अथवा वक्तव्यविधिसंस्कृतकृष्णाभ्रकचूर्णमादाय ।
लौहचतुर्थार्द्धसमद्वित्रिचतु पचगुणभागम् ॥ ९० ॥
प्रक्षिप्याय प्राग्वत् पचेदुभाभ्यां भवेद्रजो यावत् ।
तावन्मानानुस्मृते. स्यात्त्रिफलादिद्रव्यपरिमाणम्॥९१॥
इदमाप्यायकमिदमाति-
पित्तनुदिदमेव कान्तिवलजननम् ।
स्तभ्नाति तृट्क्षुधौ तत्
परमधिकमात्रया युक्तम् ॥ ९२ ॥

अथवा आगे कही हुई विधिसे सस्कृत (सिद्ध) कृष्णाभ्रक भस्म लौहसे चतुर्थांश आधी समान, द्विगुण, त्रिगुण, चतुर्गुण अथवा पञ्चगुण ले एकमें मिलाकर मिलित लोहाभ्रसे पूर्वोक्त विधिसे त्रिफलादि क्काथ और दूध, घी मिलाकर पूर्वकी भांति ही पकाना चाहिये । यह रसायन शरीर वढाता, पित्त शान्त करता, कान्ति व वल उत्पन्न करता है पर अधिक मात्रामें सेवन करनेसे भूख प्यास कम कर देता है ॥ ९०-९२ ॥

अभ्रकभस्मविधिः ।

कृष्णाभ्रकमेकवपुर्वज्राख्यं चैकपत्रकं कृत्वा ।
काष्ठमयोदूखलके चूर्णं मुसलेन कुर्वीत ॥ ९३ ॥
भूयो दृषदि च पिष्टं वासः सूक्ष्मावकाशतलगालितम् ।
मण्डूकपर्णिकाया. प्रचुररसे स्थापयेत्त्रिदिनम् ॥ ९४ ॥
उद्धृत्य तद्रसादथ पिष्याद्धैमन्तधान्यभक्तस्य ।
अक्षोदात्यन्ताम्लस्वच्छजलेन प्रयत्नेन ॥ ९५ ॥
मण्डूकपर्णिकाया' पूर्वं स्वरसेनालोढनं कुर्यात् ।
स्थालीपाकं पुटनं चाद्यैरपि भृङ्गराजाद्यैः' ॥ ९६ ॥
तालादिपत्रमध्ये कृत्वा पिण्डं निधाय भस्त्राग्नौ ।
तावद्दहेन्न यावन्नीलोऽग्निर्दृश्यते सुचिरम् ॥ ९७ ॥
निर्वापयेच्च दुग्धे दुग्ध प्रक्षाल्य वारिणा तदनु ।
पिष्ट्वा घृष्ट्वा वस्त्रे चूर्णं निश्चन्द्रिकं कुर्यात् ॥ ९८ ॥

एक वर्णवाले काले वज्राभ्रकका लकडीके उलूखलमें मूसरसे चूर्ण करना चाहिये। फिर सिलपर पीसकर महीन कपडेसे छान लेना चाहिये। फिर मण्डूकपर्णीके बहुत रसमें ३ दिनतक रक्खे फिर उससे निकालकर हैमतिक (हेमन्तऋतुमें उत्पन्न होनेवाले) चावलोंके भातसे बनायी काञ्जीके अत्यन्त स्वच्छ जलके साथ घोटे। फिर मण्डूकपर्णीके स्वरसमें मिला मथकर स्थालीपाक और पुटपाक करे तथा पूर्व लौह रसायनमें कहे भृंगराज आदिके रसस भी स्थालीपाक और पुटपाक करे फिर ताड आदिके पत्तोंमें रखकर भट्टीमे रख धौंकनीसे धौंकते हुए उस समयतक आच दे जबतक कि अग्नि नीलवर्ण न प्रतीत होने लगे। फिर अग्निसे निकाले और दूधमें बुझावे, फिर दूधको पानीसे धोकर साफ करना चाहिये, फिर इस सिद्ध अभ्रकको महीन पीस कपडेसे छानकर निश्चन्द्र कर ले ॥ ९३–९८ ॥

लोहसेवनविधिः ।

नानाविधरुक्शान्त्यै पुष्ट्यै कान्त्यै शिव समभ्यर्च्य
सुविशुद्धेऽहनि पुण्ये तदमृतमादय लौहाख्यम् ॥९९॥
दशकृष्णलपरिमाण शक्तिवयोभेदमाकलय्य पुन ।
इदमधिक तदधिकतरमियदेव न मातृमोदकवत्॥१००॥
सममसृणामलपात्रे लौहे लौहेन मर्दयेद्दृढ भूय ।
दत्त्वा मध्वनुरूप तदनु घृत योजयेदधिकम् ॥ १०१ ॥
बन्ध गृह्णाति यथा मध्वपृथक्त्वेन पङ्कमाविशिपेत् ।
इदमिह दृष्टोपकरणमेतद् दृष्ट तु मन्त्रेण ॥ १०२ ॥
स्वाहान्तेन विमर्दो भवति फडन्तेन लोहबलरक्षा ।
सनमस्कारेण बलिर्भक्षणमयसो हीमन्तेन ॥ १०३ ॥
“ ओं अमृतोद्भवाय स्वाहा ।
ओं अमृते हीम्[1] फट् ओं नमश्चण्डवज्रपाणये ।
महायक्षसेनाधिपतये सुरगुरुविद्यामहाबलाय स्वाहा ।
ओं अमृते हीम्[3]” ॥ १०४ ॥

अनेक प्रकारकी पीडाकी शान्ति, पुष्टि और कांतिके लिये शंकरजीका पूजन कर उत्तम मुहूर्तमें यह लोहामृत रसायन सामान्यतः १० रत्तीकी मात्रा (मात्राका विशेष निश्चय करना चाहिये क्योंकि सबके लिये एक मात्रा नहीं हो सकती तथा यह मात्रा बहुत बडी होनेके कारण आजकलके लिये उपयोगी नहीं) तथा या अवस्थाके अनुसार कम या अधिक भी निश्चित करना चाहिये। माताके दिये लड्डुओंके समान सबके लिये बराबर ही मात्रा नहीं हो सकती। फिर, उस मात्राको चिकने साफ लौहके पात्रमें लौहके ही दण्डसे खूब घोटना चाहिये। फिर उसी मात्राके समान मधु तथा घी उससे अधिक छोडकर फिर घोटना चाहिये, जिसमें घी, शहद एकमें मिल जावे। इतने तो दृष्ट प्रयोग हैं अब अदृष्ट मन्त्र शक्तिका वर्णन करते हैं। “ॐ अमृतोद्भवाय स्वाहा” इस मन्त्रसे घोटना चाहिये अर्थात् घोटते समय इसका जप करना चाहिये “ॐ अमृते ह्रीम् फट् (किसी २ मे “ॐ अमृते हूम् फट्” यह पाठ है) इस मन्त्रसे लोहकी बलरक्षा करनी चाहिये। तथा “ॐ नमश्चण्डवज्रपाणये महायक्षसेनाधिपतये सुरगुरुविद्यामहाबलाय स्वाहा” इस मन्त्रसे बलि तथा “ॐ अमृते ह्रीम्”(किसी किसीमें “ॐ अमृते हूम्”) यह पाठ है। इस मन्त्रको पढकर लौह चाटना चाहिये ॥९९–१०४॥

अनुपानपथ्यादिकम् ।

जग्ध्वा तदमृतसार नीरं वा क्षीरमेव वानुपिबेत् ।
कान्तक्रामकममल संचर्व्य रसं पिबेन्न तु तत् ॥१०५॥
आचम्य च ताम्बूलं लाभे घनसारसहितमुपयोज्यम् ।
नात्युपविष्टो नाप्यतिभापी नातिस्थितस्तिष्ठेत् ॥१०६॥
अत्यन्तवातशीतातपयानस्नानवेगरोधादीन् ।
जह्याच्च दिवानिद्रासहित चाकालभुक्त च ॥ १०७ ॥
वातकृत पित्तकृत सर्वानृकट्वम्लतिक्तककपायान् ।
तत्क्षणविनाशहेतून्मैथुनकोपश्रमान्दूरे ॥ १०८ ॥

इस रसायनका सेवनकर ऊपरसे दूध अथवा जल पीना चाहिये। (अनुपानकी मात्राके सम्बन्धमें शिवदासजीने योग रत्नाकरकारका समर्थन किया है जो इस प्रकार है “अनुपान बुधाः प्राहुश्चतुःषष्टिगुणं सदा” पर और आचार्य लौहसे पञ्चगुण ही कहते हैं वह बहुत कम है) इसके अनन्तर नागरमोथाको चबाकर रस पी जाना चाहिये। कल्क बाहर फेंक देना चाहिये फिर आचमन (श्रतशीत अथवा हँसोदक जलसे) कर कर्पूरयुक्त पान खाना चाहिये। लौह सेवन कर न अधिक बैठना चाहिये। न अधिक बातचीत करनी चाहिये। न अधिक खडाही रहना चाहिये, अत्यन्त वायु, शीत, धूप, सवारी, स्नान, मूत्रपुरीपादिके वेगका रोकना, अकाल भोजन तथा वातपित्तको बढानेवाले कटु, अम्ल, तिक्त, कपायरस, मैथुन, क्रोध और थकावट आदि त्याग देना चाहिये। क्योंकि ये तत्काल विनाशके कारण हो जाते हैं ॥ १०५–१०८ ॥

(१,२,३) हूमिति पाठान्तरम् ।

भोजनादिनियमः ।

अशितं तदयः पश्चात्पततु न वा पाटवं छन्न प्रथताम् ।
अर्तिर्भवति न वान्त्रं कूजति भोक्तव्यमव्याजम् ॥१०९॥

उस लौहका सेवनकर लेनेपर वह कहीं गिर न जावे ऐसी निपुणता करनी चाहिये । भोजन ऐसा करना चाहिये कि जिससे न आन्तोंमे कुड़कुड़ाहट हो, न पेटमें पीडा हो तथा रुचिके अनुसार ही भोजन करना चाहिये ॥ १०९ ॥

भोजनविधिः ।

प्रथमं पीत्वा दुग्धं शाल्यन्नं विशदासिद्धमाक्लिन्नम् ।
घृतसंप्लुतमश्नीयान्मांसैर्विहङ्गमैः प्रायः ॥ ११० ॥
उत्तममूपरभूचरविष्किरमांसं तथाजमैणादि ।
अन्यदपि जलचराणां पृथुरोमापेक्षया ज्यायः ॥ १११ ॥
मांसालाभे मत्स्या अदोषला: स्थूलसद्गुणा ग्राह्या: ।
मद्गुररोहितशकुला दग्धाः पललान्मनागूना ॥११२॥

पहिले दूध पीना चाहिये । फिर स्वच्छ सूखा खिला हुआ चावलका भात घी मिलाकर पक्षियोंके मांसरसके साथ खाना चाहिये तथा ऊपरभूमिमें चरनेवाले अथवा विष्किर और बकरी हिरन आदिका मांस तथा जलचरोंका मास मोटे रोवेंवालोंकी अपेक्षा अधिक हितकर है तथा मासके न मिलनेपर मोटी, गुणयुक्त, दोष रहित मछलियां लेनी चाहिये । तथा भुने हुए मद्गुर और रोही मछलीके टुकडे मांससे कुछ कम गुणकारी होते हैं ॥ ११०–११२ ॥

फलशाकप्रयोगः ।

शृङ्गाटकफलकशेरुकदलीफलतालनारिकेलादि ।
अन्यदपि यच्च वृष्यं मधुरं पनसादिकं ज्यायः ॥११३॥
केवुकताडकरीरान्वार्ताकुपटोलफलदलसमठान् ।
मुद्गमसूरेक्षुरसान्दधसन्ति निरामिषेप्वेतान् ॥ ११४ ॥
शाकं प्रहेयमखिलं स्तोकं रुचये तु वास्तुकं दद्यात् ।
विहितनिषिद्धादन्यन्मध्यमकोटिस्थितं विद्यात् ॥११५॥

सिघाडा, कशेरू, केला, ताड, नरियल तथा दूसरे भी मधुर तथा वाजीकर कटहल आदि खाना चाहिये तथा नाडी, ताडकी करीर (नवीन अंकुर) बैंगन, परवलके फल, समठशाक तथा परवलकी पत्तीका शाक तथा मूग मसूर और ईखके रसका निरामिष भोजियोंको उपयोग करना चाहिये । इसके अतिरिक्त कोई शाक न खाना चाहिये । रुचिके लिये थोडा बथुवा खाना चाहिये । जो पदार्थ कहे गये अथवा जिनका निषेध किया गया उनको छोडकर शेष मध्य कोटिमें समझना चाहिये ॥ ११३–११५ ॥

कोष्ठबद्धताहरव्यवस्था ।

तप्तदुग्धानुपानं प्रायः सारयति बद्धकोष्ठस्य ।
अनुपीतमम्बु यद्वा कोमलफलनारिकेरस्य ॥ ११६ ॥
यस्य न तथा सरति स यवक्षारं जलं पिबेत्कोष्णम् ।
कोष्णत्रिफलाक्वाथसनाथं क्षारं ततोऽप्यधिकम् ॥११७॥

बद्धकोष्ठ (कब्जियत) वालोंको गरम दूधका अनुपान देना चाहिये तथा कोमल नरियलके फलके जलसे भी दस्त साफ आते हैं । जिसे इस प्रकार भी दस्त न आवें उसे जवाखार मिलाकर गुनगुना जल पिलाना चाहिये अथवा त्रिफलाके क्वाथमें जवाखार मिलाकर पीना चाहिये । यह भी अधिक गुण करताहै॥११६॥११७॥

मात्रावृद्धिह्रासप्रकारः ।

त्रीणि दिनानि समं स्यादह्नि चतुर्थे वर्धयेत्क्रमशः ।
यावच्चाष्टमाषं न वर्धयेत्पुनरितोऽप्यधिकम्॥ ११८॥
आदौ रक्तिद्वितयं द्वितीयवृद्धौ तु रक्तिकात्रितयम् ।
रक्तिपञ्चकपञ्चकमतऊर्ध्वं वर्धयेन्नियतम् ॥ ११९ ॥
वात्सरिककल्पपक्षे दिनानि यावन्ति वर्धितं प्रथमम् ।
तावन्ति वर्षशेषे प्रतिलोमं ह्रासयेत्तदयः ॥ १२० ॥
तेष्वष्टमाषकेषु प्रातर्माषद्वयं समश्नीयात् ।
सायं च तावदह्नोर्मध्ये माषद्वयं शेषम् ॥ १२१ ॥

प्रथम तीन दिन समान मात्रा लेनी चाहिये । फिर चौथे दिनसे क्रमशः बढाना चाहिये जबतक ८ मापा (वर्तमान ६ मापा) न हो जाय । इससे अधिक न बढाना चाहिये । प्रथम २ रत्तीका प्रयोग करना चाहिये। फिर प्रथम वृद्धिमें ३ रत्ती (प्रथम ३ दिन २ रत्ती चौथे दिनसे छठे दिनतक प्रतिदिन ३ रत्ती) द्वितीय वृद्धिमें (७ वेंसे ९ वे दिनतक) ५ रत्ती और फिर प्रति ३ दिनमें ५ रत्ती बढाना चाहिये । वर्षदिनके प्रयोगमें जितने दिन प्रथम बढकर ६ मासेकी मात्रा हुई है उतने ही दिन पहिलेसे उसी क्रमसे कम करना चाहिये । उस पूर्वोक्त पूर्णमात्राको दिनमें तीन वारमें इस भांति खाना चाहिये । प्रातःकाल १८ रत्ती, मध्याह्नमे १२ रत्ती और सायंकाल १८ रत्ती ॥ १८–१२१ ॥

अमृतसारलौहसेवनगुणाः ।

एवं तदमृतमश्नन्कान्तिं लभेत चिरस्थिरं देहम् ।
सप्ताहत्रयमात्रात्सर्वरुजो हन्ति किं बहुना ॥१२२ ॥

इस प्रकार इस अमृतका सेवन करनेसे शरीरकी कांति बढती और देह चिरकालके लिये दृढ हो जाता है। केवल २१ दिनके प्रयोगसे समस्त रोग नष्ट हो जाते हैं ॥ १२२ ॥

उपसंहारः ।

आर्याभिरिह नवत्या सप्तविधीनां यथावदाख्यातम् ।
अमतिविपर्ययसंशयशून्यमनुष्ठानमुपनीतम् ॥ १२३ ॥
मुनिरचितशास्त्रपारं गत्वा सारं ततः समुद्धृत्य ।
निबबन्ध बान्धवानामुपकृतये कोऽपि षट्कर्मा ॥१२४॥

इस प्रकार ९० आर्याछन्दोंमें लौहरसायनकी ७ विधियां (साध्यसाधनपरिमाणविधिः, स्थालीपाकविधिः, पुटनविधिः—प्रधाननिष्पत्तिः, पाकविधिः, अभ्रविधिर्भक्षणविधिश्च) ठीक वही गयी हैं। इसमें कोई बात ऐसी नहीं जो बुद्धिके विपरीत अथवा संशयात्मक हो। यह महामान्य मुनि नागार्जुनरचित लौहशास्त्रका पूर्णतया अनुशीलन कर बन्धुओंकी उपकारकामनासे किसी षट्कर्मा ब्राह्मणने अमृतसारनामक निबन्ध लिखा है ॥ १२३ ॥ १२४ ॥

सामान्यलौहरसायनम् ।

यत्र तत्रोद्भवं लौहं निःशेषं मारितं यदि ।
त्रिफलाव्योषसंयुक्तं भक्षयेद्वलिनाशनम् ॥ १२५ ॥

कहींका लोहा ले विधिपूर्वक भस्म कर त्रिफला व त्रिकटु मिला विधिपूर्वक सेवन करनेसे वलीपलित (झुर्रियां, बालोंकी सफेदी आदि बुढापेके चिह्न) नष्ट हो जाते हैं ॥ १२५ ॥

कान्तप्रशंसा ।

सामान्याद्द्विगुणं चौंड्रं कलिङ्गोऽष्टगुणस्ततः ।
तस्माच्छतगुणं भद्रं भद्राद्वज्रं सहस्रधा ॥ १२६ ॥
वज्रात्षष्टिगुणा पाण्डिर्निरविर्दशभिर्गुणैः ।
ततः कोटिसहस्रं वा अयस्कान्तं महागुणम् ॥ १२७ ॥

सामान्य लोहसे चौण्ड्र द्विगुण, कालिङ्ग इससे अष्टगुण, उससे भद्र शतगुण, भद्रसे वज्र सहस्र गुण और वज्रसे पाण्टि साठगुण और उससे निरवि दशगुण तथा कान्तलौह उससे करोडों गुण अधिक गुणशाली अतएव महागुणवाला होता है ॥ १२६ ॥ १२७ ॥

रसादिरसायनम् ।

रसतस्ताम्रं द्विगुणं ताम्रात्कृष्णाभ्रकं द्विगुणम् ।
पृथगेवैषां शुद्धिस्ताम्रस्य ततो द्विविधा ॥ १२८ ॥
पत्रीकृतस्य गन्धकयोगाद्वा मारणं तथा लवणैः ।
आक्ते ध्मापितताम्रे निर्गुण्डीकल्ककाञ्जिकनिमग्ने ॥१२९॥
यत्पतति गैरिकाभं तत्पिष्टं चार्धगन्धकं तदनु ।
पुटपाकेन विशुद्धं शुद्धं स्यादभ्रकं तु पुनः ॥ १३० ॥
हिलमोचिमूलपिण्डे क्षिप्तं तदनु मार्दसपुटे लिप्ते ।
तीक्ष्णं दग्धं पिष्टमम्लाम्भसा साधु चन्द्रिकारहितम् ॥१३१
रेचितताम्रेण रसः खल्वे घृष्ट्वा च पिण्डिका कार्या ।
उत्स्वेद्य गृहसलिलेन निर्गुण्डीकल्केऽसकृच्छुद्धौ ॥१३२
एतत्सिद्धं त्रितयं चूर्णिततताम्रार्द्धिकैः पृथग्युक्तम् ।
पिप्पलिविडङ्गमरिचैः श्लक्ष्णं द्वित्रिमाषिकं भक्ष्यम् ॥ १३३
शूलाम्लपित्तश्वयथुग्रहणीयक्ष्मादिकुक्षिरोगेषु ।
रसायनं महदेतत्परिहारो नियमतो नात्र ॥ १३४ ॥

शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध ताम्र २ भाग, तथा शुद्ध अभ्रक ४ भाग (इस प्रकार तीनों अलग अलग शुद्ध) लेना चाहिये। इसमें ताम्र २ प्रकारसे शुद्ध किया जाता है। प्रथम प्रकार—ताम्रके पत्रोंके समान भाग गन्धक मिलाकर पुटद्वारा भस्म। द्वितीय प्रकार-लवणोंसे लिप्त ताम्रके पत्रोंको तपाकर सम्भालूके कल्क व काञ्जीमें बुझाना चाहिये। इस प्रकार काञ्जीमे गिरे हुए गैरिकके समान वर्णवाले ताम्रसे आधे परिमाणमें गन्धक मिलाकर पुटद्वारा भस्म। उपरोक्त दो विधियोंमेंसे किसी एकसे ताम्र शुद्ध कर ल तथा अभ्रकको ल हिलमोचिकाकी जडके कल्कके पिण्डमें रखकर चूनेसे लिपे हुए मिट्टीके शरावसम्पुटमें रखना चाहिये। शराव सम्पुटमें विधिपूर्वक कपरमिट्टी कर गजपुटमें फूक देना चाहिये। स्वाग शीतल हो जानेपर निकालकर काञ्जी मिलाकर घोट लेना चाहिये। इस प्रकार अभ्रक निश्चन्द्र हो जाता है। यही शुद्ध अभ्रक हुआ तथा पारदशोधनकी विधि यह है कि पद्धतिसे शुद्ध किये ताम्रसे समान भाग पारद मिला खरलमें घोट गोला बना लेना चाहिये। उस गोलेको काञ्जीम स्वेदन कर सम्भालूके कल्कके साथ अनेक बार घोटना चाहिये। फिर इस गोलेसे (डमरूयन्त्र अथवा विद्याधरयन्त्रमें रखकर) पारद निकाल लेना चाहिये। यही शुद्ध पारद हुआ। इस प्रकार शुद्ध पारद १ भाग, शुद्ध ताम्र २ भाग, शुद्ध अभ्रक ४ भाग तथा छोटी पीपल

वायविडग, काली मिर्च प्रत्येक १ भाग ले चूर्ण कर सब एकमें घोटकर चूर्ण बना लेना चाहिये। इसे २ या ३ माशेकी मात्रासे खाना चाहिये। यह रसायन—शूल, अम्लपित्त, सूजन, ग्रहणी, यक्ष्मा और पेटके रोगोंको नष्ट करता है। यह महारसायन है। इसमें नियमतः कोई परहेज भी नहीं है ॥ १२८–१३४ ॥

ताम्ररसायनम्।

तनुपत्रीकृतं ताम्रं नैपालं गन्धकं समम्।
दत्त्वा चोर्ध्वमधो मध्ये स्थालिकामध्यसंस्थितम् ॥ १३५ ॥
कृत्वा स्वल्पपिधानेन स्थालीमध्ये पिधाय च।
शर्कराभक्तलेपेन लिप्त्वा सन्धिं तदूर्ध्वत. ॥ १३६ ॥
वालुकापूरितस्थाल्यां पिहितायां पुनस्तथा।
सुलिप्तायां च यामैकमधो ज्वाला प्रदापयेत् ॥ १३७ ॥
तत आकृष्टताम्रस्य मृतस्य त्विह योजना।
अथ कर्षं गन्धकस्य वह्निस्थलोहपात्रगम् ॥ १३८ ॥
शिलापुत्रेण समर्द्य द्रुतं घृष्टं पुन' पुनः।
कृत्वा देयं मृत ताम्र कर्षमानं ततः पुन' ॥ १३९ ॥
रसोऽम्लमथित शुद्धस्तावन्मात्र. प्रदीयते।
ततस्तथैव समर्द्य पुनराज्यं प्रदापयेत् ॥ १४० ॥
अष्टबिन्दुकमात्रं च मर्दयेन्मूर्च्छित यथा।
सर्वं स्यात्तत्समाकृष्य शिलापुत्रादितो दृढम् ॥ १४१ ॥
संहृत्यालम्बुषरसप्रसृतेन विलोडितम्।
पुनस्तथैव वह्निस्थलौहपात्रे विमर्दयेत् ॥ १४२ ॥
यावद्द्रवक्षयं पश्चादाकृष्य संप्रपेषितम्।
अलम्बुषारसेनैव गुडकं संप्रकल्पयेत् ॥ १४३ ॥
तत्पिण्ड वस्त्रविस्तीर्णे पिण्डे त्रिकटुजे पुन'।
वसनान्तरिते दत्त्वा पोट्टलीं कारयेद्बुध ॥ १४४ ॥
ततस्तां पोट्टलीमाज्यमग्ना कृत्वा विधारिताम्।
सूत्रेण दण्डसंलग्ना पाचयेत्कुशलो भिषक् ॥ १४५ ॥
यदा निष्फेनता चाज्ये पुटिका च दृढा भवेत्।
तदा पक्कं तमाकृष्य पञ्चगुञ्जातुलाघृतम् ॥ १४६ ॥
त्रिकटुत्रिफलाचूर्णं तुल्यं प्रातः प्रयोजयेत्।
तक्रं स्यादनुपान तु अम्लपित्तोच्छ्ये पुन ॥ १४७ ॥
त्रिफलैव समा देया कोष्णं वारि पिबेदनु।
सप्तमे दिवसे रक्तिवृद्धिस्ताम्रात्तु मापकम् ॥ १४८ ॥
यावत्प्रयोगश्च तथैवापकर्ष पुनर्भवेत्।
योगोऽयं ग्रहणीयक्ष्मपित्तशूलाम्लपित्तहा ॥ १४९ ॥
रसायन चैतदिष्टं गुदकीलादिनाशनम्।
न चात्र परिहारोऽस्ति विहाराहारकर्मणि ॥ १५० ॥

नैपाली ताम्रके पतले पत्र और गन्धक आमलासार समान भाग लेना चाहिये। फिर बडी भाडियोंमें आधा गन्धक नीचे, बीचमें ताम्र तथा आधा गन्धक ऊपर रखना चाहिये। फिर एक छोटे शिकोरेको ले ताम्र व गन्धकके ऊपर ढग देना चाहिये और उसकी सन्धियाँ मिट्टी व भातके लेपसे बन्द कर देनी चाहिये। उसके ऊपर बालू भर बडे ढक्कनसे हडीका मुख बन्द कर ऊपरसे कपडामिट्टी कर देनी चाहिये तथा हण्डीके नीचे भी कपरमिट्टी कर देनी चाहिये। जिससे हण्डी आंचसे फूट न जावे। कपडमिट्टीके सूख जानेपर भांडिया चूल्हे-पर चढ़ा कर नीचेसे ३ घण्टे तक आँच देनी चाहिये। फिर उसे स्वाङ्ग शीतल हो जानेपर उतारकर निकाल लेना चाहिये। इस प्रकार भस्मीभूत ताम्र १ तोला और शुद्ध गन्धक १ तोला ले गन्धकको लोहेके पात्रमें अग्निपर गरम करना चाहिये। गन्धक पिघल जानेपर उपरोक्त ताम्रभस्म १ तोला तथा काञ्जिसे शुद्ध पारद १ तोला मिलाकर घोटना चाहिये। खूब घुट जानेपर आठ बिन्दु घी छोडना चाहिये। जब सब मिल जावे तब उसे निकाल लेना चाहिये। तथा मुसलीमें लगा हुआ भी खुरच लेना चाहिये। फिर इसे मुण्डिका रस ८ तोला मिलाकर घोटना चाहिये। फिर उसे अग्निपर चढे लौहपात्रमें छोडकर उस समयतक घोटना चाहिये जब-तक कि द्रव क्षीण न हो जावे। फिर उसे निकाल पीस-कर मुण्डीके ही रससे घोटकर एक गोली बना लेनी चाहिये। फिर उस गोलीको एक महीन कपडेमें लपे-टना चाहिये और दूसरे कपडेमें गोलीके समान भाग ही मिलित सोंठ, मिर्च व छोटी पीपलका कल्क रखकर उसी कल्कमें गोलीवाली पोटली रखनी चाहिये। फिर इसी पोटलीको दोलायन्त्रकी विधिसे एक भाडियामें घी छोडकर उसीमें एक डोरेमें बाधकर भाडियाके मुखपर बीचोंबीच रखे हुए डडेमें बान्धकर लटका देनी चाहिये। पर यह ध्यान रहे कि पोटली घीमें डूबी रहे पर भाडि-याकी पेंदीमें बैठे नहीं किन्तु हिलती रहे। इस प्रकार भंडिया चूल्हेपर चढाकर नीचेसे आँच देनी चाहिये। जब घीसे झाग उठने बन्द हो जावे और गोलीकी पोटली दृढ हो जावे तब उतार ठण्डा कर ताम्रगोलीको निकालकर घोट लेना चाहिये। इस सिद्धरसकी ५ गुञ्जा (वर्तमानकालके आधी गुञ्जासे १ गुञ्जातक) घी ५ रत्ती त्रिकटु और त्रिफलाकी प्रत्येक ओषधिका चूर्ण ५ गुञ्जा मिलाकर सेवन करना चाहिये। ऊपरसे मट्ठा पीना चाहिये। तथा अम्लपित्तमें केवल

---

१ ताम्र व गन्धकको शराव सम्पुटमें रखकर बडी हाँडीमें रखना उत्तम होगा।

त्रिफलाका चूर्ण और गुनगुना जल ही देना चाहिये सातवें सातवें दिन १ गुञ्जा बढाना चाहिये । इसका प्रयोग १ माशे (६ रत्ती) तकका है फिर इसी प्रकार कम करना चाहिये । यह योग, यक्ष्मा,ग्रहणी, पित्तशूल, अम्लपित्त और अर्शको नष्ट करता तथा रसायन है इसमें आहार व विहारमें कोई परहेज नहीं है ॥१३५–१५०

शिलाजतुरसायनम् ।

हेमाद्याः सूर्यसन्तप्ताः स्रवन्ति गिरिधातवः ।
जत्वाभं मृदुमृत्स्नाच्छं यन्मलं तच्छिलाजतु ॥ १५१ ॥
अनम्लं चाकषायं च कटुपाकि शिलाजतु ।
नात्युष्णशीतं धातुभ्यश्चतुर्भ्यस्तस्य सम्भवः ॥ १५२ ॥
हेम्नोऽथ रजतात्ताम्राद्वरं कृष्णायसादपि ।

सोना आदि पर्वतके धातु सूर्यकी गरमीसे तपकर जो लाखके समान मृदु, चिकना और स्वच्छ मल छोड़ते हैं वही शिलाजतु कहा जाता है शिलाजतु खट्टा तथा कषैला नहीं होता और सब रस रहते हैं तथा पाकमें कडुआ होता है तथा न अति गरम न अधिक ठण्ढा ही होता है तथा सोना चान्दी ताम्बा और लोहा इनसे वह निकालता है । इनमेंसे लोहसे निकलनेवाला ही उत्तम होता है ॥ १५१ ॥ १५२ ॥

शिलाजतुभेदाः ।

मधुरं च सतिक्तं च जवापुष्पनिभं च यत् ॥ १५३ ॥
विपाके कटु तिक्तं च तत्सुवर्णस्य निःस्रवम् ।
राजतं कटुकं श्वेतं स्वादु शीतं विपच्यते ॥ १५४ ॥
ताम्रान्मयूरकण्ठाभं तीक्ष्णोष्णं पच्यते कटु ।
यत्तु गुग्गुलसङ्काशं तिक्तकं लवणान्वितम् ॥ १५५ ॥
विपाके कटु शीतं च सर्वश्रेष्ठं तदायसम् ।
गोमूत्रगन्धः सर्वेषां सर्वकर्मसु यौगिकः ॥ १५६ ॥
रसायनप्रयोगेषु पश्चिमं तु विशिष्यते ।

सुवर्णसे निकला शिलाजतु मीठा, तिक्त, जवापुष्पके समान लाल, विपाकमें कडुआ तथा तिक्त होता है । चॉदीसे निकला शिलाजतु कडुआ, सफेद, मीठा तथा विपाकमें शीतल होता है । ताम्रका शिलाजतु मयूरकण्ठके समान नील, चमकदार, तीक्ष्ण, गरम तथा विपाकमें कडुआ होता है । लौहसे निकला हुआ शिलाजतु गुग्गुलुके वर्णका, तिक्त, नमकीन तथा विपाकमें कडुआ तथा शीतल होता है । वही उत्तम होता है । सभी शिलाजतु गोमूत्र गन्धयुक्त होते हैं तथा सब कामोंके लिये प्रयुक्त हो सकते हैं पर रसायनप्रयोगोंमें लौहज ही उत्तम होता है ॥ १५३–१५६ ॥

प्रयोगविधिः परीक्षा च ।

यथाक्रमं वातपित्ते श्लेष्मपित्ते कफे त्रिषु ॥ १५७ ॥
विशेषेण प्रशस्यन्ते मला हेमादिधातुजाः ।
लोहं पिष्टायते यस्मात् विधूमं दह्यतेऽम्भसि ॥ १५८ ॥
तृणाग्रेण कृतं श्रेष्ठमधो गच्छति तन्तुवत् ।
मलिनं यत्तत्तप्य क्षालयेत्तत्त्वगाम्भसा ॥ १५९ ॥
लौहपात्रेषु विधिना ऊर्ध्वीभूतं च संहरेत् ।
वातपित्तकफघ्नैस्तु निर्यूहैस्तत्सुभावितम् ॥ १६० ॥
वीर्योत्कर्षं परं याति सर्वैरेकैकशोऽपि वा ।
प्रक्षिप्योद्धृतमाप्तानं पुनस्तत्प्रक्षिपेद्रसे ।
कोष्णे सप्ताहमेतेन विधिना तस्य भावना ॥ १६१ ॥
तुल्यं गिरिजेन जले चतुर्गुणे भावनौषधं क्वाथ्यम् १६२
तत्क्वाथे पादांशे पूतोष्णे प्रक्षिपेद्गिरिजम् ।
तत्समरसतां यातं संशुष्कं प्रक्षिपेद्रसे भूयः ॥ १६३ ॥
पूर्वोक्तेन विधानेन लौहैश्चूर्णीकृतैः सह ।
तत्पीतं पयसा दद्याद्दीर्घमायुः सुखान्वितम् ॥ १६४ ॥

सोनेका शिलाजतु वातपित्तमें, चान्दीका पित्तकफमें, ताम्रका कफमें और लोहेका शिलाजतु त्रिदोषमें हितकर है । उसकी प्रधान परीक्षा यह है कि अग्निमें छोडनेसे लौहकिट्टके समान विना धुऑके जलता है । जलमें छोडनेसे प्रथम तैरता फिर डोरोंके समान विखर कर नीचे बैठता है । जो शिलाजतु मलिन हो उसे उष्ण जलमें घोल छानकर लौहपात्रमें रखना चाहिये । जो ऊपर तैरता हुआ जमे उसे निकाल लेना चाहिये । वही शुद्ध शिलाजतु हुआ (इसी विधिसे शिलाजतुके पत्थरोंसे भी शिलाजतु निकाली जाती है) इसके अनन्तर वातपित्तकफनाशक दशमूल, तृणपञ्चमूल, पिप्पल्यादि द्रव्योंसे प्रत्येकसे अलग अलग अथवा मिलाकर भावना देनी चाहिये । इस प्रकार शिलाजतुकी शक्ति अधिक बढ जाती है । एक द्रवद्रव्यमें छोडकर घोटना चाहिये फिर उसे धूपमें रखना चाहिये । द्रव सूख जानेपर दूसरे पात्रमें रखा हुआ गुनगुना कषाय छोडना चाहिये । इस प्रकार जिन द्रवद्रव्योंसे भावना देनी हो प्रत्येकसे सात भावना देनी चाहिये । भावनार्थ क्वाथ बनानेके लिये शिलाजतुके समान औषधले चतुर्गुण जल मिलाकर क्वाथ करना चाहिये । चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर शिलाजतुमें मिलाना चाहिये और उस रसके सूख जानेपर और रस मिलाना चाहिये । इस प्रकार भावित शिलाजतु लौहभस्मके साथ दूधमें मिलाकर पीनेसे सुखयुक्त दीर्घ आयु प्रदान करता है ॥ १५७–१६४ ॥

शिलाजतुगुणाः ।

जराव्याधिप्रशमनं देहदार्ढ्यकरं परम् ।
मेधास्मृतिकरं धन्यं क्षीराशी तत्प्रयोजयेत् ॥ १६५ ॥
प्रयोगः सप्त सप्ताहास्त्रयश्चैकश्च सप्तक ।
निर्दिष्टस्त्रिविधस्तस्य परो मध्योऽवरस्तथा ॥ १६६ ॥
मात्रा पलं त्वर्धपलं स्यात्कर्षं तु कनीयसी ।

यह वृद्धावस्था तथा रोगको दूर करनेवाला, देहको दृढ करनेवाला तथा मेधा और स्मरणशक्तिको बढाने-वाला है । इसका प्रयोग करनेवाला दूधके साथ ही भोजन करे । इसका प्रयोग ७ सप्ताह अथवा ३ सप्ताह अथवा १ सप्ताहका है तथा इसकी ४ तोला, २ तोला या १ तोला (वर्तमानसमयानुकूल मात्रा ४ रत्तीसे २ माशेतक) क्रमशः उत्तम, मध्यम और हीन मात्रा है ॥ १६५ ॥ १६६ ॥–

पथ्यापथ्यम् ।

शिलाजतुप्रयोगेषु विदाहीनि गुरूणि च ।
वर्जयेत्सर्वकालं च कुलत्थान्परिवर्जयेत् ॥ १६७ ॥
पयांसि शुक्तानि रसाः सयूषा-
स्तोयं समूत्रं विविधाः कषायाः ।
आलोडनार्थे गिरिजस्य शस्ता-
स्ते ते प्रयोज्याः प्रसमीक्ष्य कार्यम् ॥१६८॥
चरकोक्तशिलाजतुनो विधानं सोपस्करं ह्येतत् ।

शिलाजतुके प्रयोगोंमें जलन करनेवाले तथा गुरु अन्न और कुलथीका सदाके लिये त्याग कर देना चाहिये । तथा शिलाजतुके अनुपानमें दूध, सिरका मांसरस, यूष, जल, गोमूत्र तथा अनेक (रोगीकी प्रकृतिके अनुकूल) प्रकारके क्वाथोंका प्रयोग करना चाहिये । यह चरकोक्त शिलाजतुका विधान आवश्यक अंग बढाकर लिखा गया है ॥ १६७ ॥ १६८ ॥–

शिवागुटिका ।

काले तु रवितापाढ्ये कृष्णायसजं शिलाजतु प्रवरम् १६९
त्रिफलारससंयुक्तं त्र्यहञ्च शुष्कं पुनः शुष्कम् ।
दशमूलस्य गुडूच्या रसे बलायास्तथा पटोलस्य ॥१७०॥
मधुकरसैर्गोमूत्रे त्र्यहं त्र्यहं भावयेत्क्रमशः ।
एकाहं क्षीरेण तु तच्च पुनर्भावयेच्छुष्कम् ।
सप्ताहं भाव्यं स्यात्क्वाथैरेषां यथालाभम् ॥ १७१ ॥
काकोल्यौ द्वे मेदे विदारियुग्मं शतावरी द्राक्षा ।
ऋद्धियुगर्षभवीरामुण्डितिकाजीरकेऽशुमत्यौ च ॥१७२॥
रास्नापुष्करचित्रकदन्तीभकणाकलिङ्गचव्याब्दाः ।
कटुकाशृङ्गीपाठा एतानि पलांशिकानि कार्याणि १७३॥
अब्द्रोणे साधितानां रसेन पादांशिकेन भाव्यानि ।
गिरिजस्यैवं भावितशुद्धस्य पलानि दश षट् च ॥१७४॥
द्विपलं च विश्वधात्र्योर्मागधिकायाश्च मरिचानाम् ।
चूर्णं पलं विदार्यास्तालीसपलानि चत्वारि ॥ १७५ ॥
षोडश सितापलानि चत्वारि घृतस्य माक्षिकस्याष्टौ ।
तिलतैलस्य द्विपलं चूर्णार्धपलानि पञ्चानाम् ॥ १७६ ॥
त्वक्क्षीरिपत्रत्वङ्नागैलानां च मिश्रयित्वा तु ।
गिरिजस्य षोडशपलैर्गुडिकाः कार्यास्ततोऽक्षसमाः १७७
ताः शुष्का नवकुम्भे जातीपुष्पाधिवासिते स्थाप्याः ।
तासामेका काले भक्ष्या पेयापि वा सततम् ॥ १७८ ॥
क्षीररसदाडिमरसाः सुरासवं मधु च शिशिरतोयानि ।
आलोडनानि तासामनुपाने वा प्रशस्यन्ते ॥ १७९ ॥
जीर्णे लघ्वन्नपयो जाङ्गलनिर्यूहयूषभोजी स्यात् ।
सप्ताहं यावदतः परं भवेत्सोऽपि सामान्य ॥ १८० ॥
भुक्त्वापि भक्षितेयं यदृच्छया नावहेद्भयं किञ्चित् ।
निरुपद्रवा प्रयुक्ता सुकुमारैः कामिभिश्चैव ॥ १८१ ॥

सूर्यकी किरणोंसे तपे हुए समयमें उत्तम लौह शिलाजतु ले त्रिफलाका रस मिलाकर तीन दिनतक भावना देनी चाहिये । फिर क्रमशः दशमूल, गुर्च, खरेटी, परवल, मौरेठीके रस तथा गोमूत्र प्रत्येकमें ३ तीन भावना देनी चाहिये । सूख जानेपर एक दिन दूधकी भावना देनी चाहिये । फिर ७ दिनतक नीचे लिखी ओषधियोंमें जो मिल सकें उनकी भावना देनी चाहिये । भावनाकी ओषधियाँ--काकोली, क्षीरकाकोली, मेदा, महामेदा, विदारी, क्षीरविदारी, शतावरी, मुनक्का, ऋद्धि, वृद्धि, ऋषभक, ब्राह्मी, मुण्डी, सफेद जीरा, स्याह जीरा, शाल-पर्णी, पृष्ठपर्णी, रासन, पोहकरमूल, चीतकी जड, दन्ती, गजपीपल, इन्द्रयव, चव्य, नागरमोथा कुटकी, काक-डाशिंगी व पाठा प्रत्येक द्रव्य एक पल लेकर एक द्रोण जलमें मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छान शुद्ध शिलाजतु १६ पल (६४ तोला) छोड ७ दिनतक भावना देनी चाहिये । यद्यपि यहांपर एक वार कषाय कर छोडना लिखा है । पर वासी कषाय खट्टा होकर खराब हो जाता है अतः प्रत्येक दिन ताजा कषाय ही छोड़ना चाहिये । अतः प्रत्येक द्रव्य प्रातिदिन १ पल न लेकर १ पलका सप्तमांश अर्थात् वर्तमान तौलसे ६ माशे ७ रत्ती और जल ३ सेर १०॥ छ० छोड़ पका चतुर्थांश शेष रख कपडेसे छानकर मिलाना चाहिये । इसप्रकार भावना समाप्त हो जानेपर नीचे लिखी ओष-धियाँ मिलानी चाहिये । सोंठ, मिर्च, छोटी पपिल, आंवला प्रत्येकका चूर्ण ८ तोला, विदारीकन्द ४ तोला,

तालीशपत्र १६ तोला, मिश्री ६४ तोला, घी १६ तोला, शहद ३२ तोला, तिलतैल ८ तोला, वंशलोचन, दालचीनी, तेजपात, छोटी इलायची, नागकेशर प्रत्येक २ तोलेका चूर्ण मिला घोटकर १ तोलेकी मात्रा (वर्तमानकालके लिये १ माशेकी मात्रा) से गुटिका बना सुखाकर चमेलीके फूलोंसे अधिवासित नवीन घडेमें रखना चाहिये। इसकी एक मात्रा खाना या द्रवद्रव्य मिलाकर पीना चाहिये। इसके अनुपान या आलोडनके लिये दूध, मांसरस, अनारका रस, शराब, शहद या ठण्ढा जल काममें लाना चाहिये। औषधका परिपाक हो जानेपर हल्का अन्न, दूध, जांगल प्राणियोंके मांसरस या यूषके साथ खाना चाहिये। सात दिनतक यह नियम रखना चाहिये। इसके अनन्तर सामान्य भोजन करना चाहिये। भोजन करनेके अनन्तर भी इस गुटिकाके खानेसे कोई हानि नहीं होती। सुकुमार प्रकृतिवाले बालक तथा कामी पुरुषोंको भी इससे कोई हानि नहीं होती ॥ १६९–१८१ ॥

शिवागुटिकागुणाः।

संवत्सरप्रयुक्ता हन्त्येषा वातशोणितं प्रबलम्।
बहुवार्षिकमपि गाढं यक्ष्माणं चाढ्यवातं च ॥ १८२॥
ज्वरयोनिशुक्रदोषप्लीहार्शःपाण्डुग्रहणिरोगान्।
ब्रध्नवमिगुल्मपीनसहिक्काकासारुचिश्वासान् ॥ १८३ ॥
जठरं श्वित्रं कुष्ठं पाण्डुं क्लैब्यं मदं क्षयं शोषम्॥
उन्मादापस्मारौ वदनाक्षिशिरोगदान्सर्वान् ॥ १८४ ॥
आनाहमतीसारं सासृग्दरं कामलाप्रमेहांश्च।
यकृदर्बुदानि विद्रधिं भगन्दरं रक्तपित्तं च ॥ १८५ ॥
अतिकार्श्यमतिस्थौल्यं स्वेदमथ श्लीपदं च विनिहन्ति॥
दंष्ट्राविषं समौलं गराणि च बहुप्रकाराणि ॥ १८६ ॥
मन्त्रौषधियोगादीन्विप्रयुतान्भौतिकान्भावान्।
पापालक्ष्म्यौ चेयं शमयेद्गुटिका शिवा नाम्नी॥१८७॥
बल्या वृष्या धन्या कान्तियशःप्रजाकरी चेयम्।
दद्यान्नृपवल्लभतां जयं विवादे मुखस्था च ॥ १८८ ॥
श्रीमान्प्रकृष्टमेधः स्मृतिबुद्धिबलान्वितोऽतुलशरीरः।
पुष्ट्योजोवर्णेन्द्रियतेजोबलसम्पदादिसमुपेतः ॥ १८९ ॥
वलिपलितरोगरहितो जीवेच्छरदां शतद्वयं पुरुषः।
संवत्सरप्रयोगाद्द्वाभ्यां शतानि चत्वारि ॥ १९० ॥
सर्वामयजित्कथित मुनिगणभक्ष्यं रसायनरहस्यम्॥१९१

समुद्रभूवामृतमन्थनोत्थः
स्वेदः शिलाभ्योऽमृतवद्गिरेः प्राक्।
यो मन्दरस्यात्मभुवा हिताय
न्यस्तश्च शैलेषु शिलाजरूपी ॥ १९२ ॥
शिवागुडिकेति रसायन-
मुक्तं गिरिशेन गणपतये।
शिववदनविनिर्गता यस्मा-
न्नाम्ना तस्माच्छिवागुडिकेति ॥ १९३ ॥

यह एक वर्ष सेवन करनेसे प्रबल वातरक्तको नष्ट करती है, तथा राजयक्ष्मा और ऊरुस्तभ भी नष्ट करती है तथा ज्वर, योनिदोष, शुक्रदोष, प्लीहा, अर्श, पांडु और ग्रहणीरोग, ब्रध्न, वमन, गुल्म, पीनस, हिक्का, कास, अरुचि, श्वास, उदर, सफेद कुष्ठ, नपुंसकता, मदात्यय, क्षय, शोष उन्माद, अपस्मार, मुखरोग, नेत्ररोग, शिरोरोग, आनाह, अतीसार, प्रदर, कामला, प्रमेह, यकृत्, अर्बुद, विद्रधि, भगन्दर, रक्तपित्त, अतिदुर्बलता, अतिस्थूलता, स्वेद, श्लीपद, दन्तविष, मूलविष, कृत्रिमविष, मंत्रौषधि आदिके प्रयोग, विरुद्धभोजनदोष, क्रिमिदोष, पाप तथा कुरूपता इससे नष्ट हो जाते हैं। यह सेवकके धन, कांति, यश और सन्तानको बढाती, बलकारक तथा उत्तम वाजीकरण है। मुखमें रखनेसे राजाओंको वश करती तथा विवादमें जय करती है। इसका सेवन करनेवाला श्री, मेधा, स्मृति, बुद्धि, बल, उत्तम शरीर, पुष्टि, ओज, वर्ण, इंद्रियशक्ति, तेज तथा सम्पत्ति आदिसे युक्त होकर वलीपलित रहित २०० वर्षतक जीता है। इतनी आयु केवल १ वर्षके प्रयोगसे होती है, दो वर्षके प्रयोग करनेसे ४०० वर्षकी आयु हो जाती है। समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाला मुनियोंने यह परमोत्तम रसायन आविष्कृत किया है। इसमें शिलाजतुका प्रयोग मुख्य है वह शिलाजतु सर्व प्रथम समुद्र मथन करते समय मन्दराचल पर्वतकी शिलाओंसे स्वेदरूपसे निकला था। उसे ब्रह्माजीने मानवजातिके हितार्थ पर्वतोंकी शिलाओंमें रख दिया था। यह शिवागुटिका रसायन श्रीशंकरजीने गणेशजीके लिये बताया। सर्व प्रथम शिवजीने इसे कहा अतः इसे शिवागुटिका कहते हैं॥ १८२–१९३ ॥

अमृतभल्लातकी।

सुपक्वभल्लातफलानि सम्यक्
द्विधा विदार्याढकसंमितानि।

विपाच्य तोयेन चतुर्गुणेन
चतुर्थशेषे व्यपनीय तानि ॥ १९४ ॥
पुनः पचेत्क्षीरचतुर्गुणेन
घृतांशयुक्तेन घनं यथा स्यात् ।
सितोपलाषोडशभिः पलैस्तु
विमिश्र्य संस्थाप्य दिनानि सप्त ॥१९५ ॥
ततः प्रयोज्याग्निबलेन मात्रां
जयेद्गुदोत्थानखिलान्विकारान् ।
कचान्सुनीलान्घनकुञ्चिताग्रान्
सुपर्णदृष्टिं सुकुमारता च ॥ १९६ ॥
जवं हयानां च मतंगजं बल
स्वरं मयूरस्य हुताशदीप्तिम् ।
स्त्रीवल्लभत्वं लभते प्रजा च
नीरोगमब्दद्विशतानि चायुः ॥ १९७ ॥
न चान्नपाने परिहार्यमस्ति
न चातपे नाध्वनि मैथुने च ।
उक्तो हि कालः सकलामयानां
राजा ह्ययं सर्वरसायनानाम् ॥ १९८ ॥
भल्लातकशुद्धिरिह प्रागिष्टचूर्णगुण्डनात् ।
घृताच्चतुर्गुणं क्षीरं घृतस्य प्रस्थ इष्यते ॥ १९९ ॥

३ सेर १६ तोला भिलावाँ लेकर प्रथम ईंटके चूरेके साथ खूब रगडना चाहिये । फिर गरम जलसे धोकर साफ कर लेना चाहिये । फिर एक एक भल्लातकके दो दो टुकडे कर चतुर्गुण जल (१२ सेर ६४ तो० द्रवद्वैगुण्यात् २५ सेर ९ छ० ३ तो०) में पकाना चाहिये चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्वाथके बराबर दूध तथा घी १ सेर ९ छ० ३ तो० मिलाकर पकाना चाहिये । अवलेह सिद्ध हो जानेपर उतारकर७ दिन तक उसे वैसे ही रखे रहना चाहिये । ७ दिनके अनंतर अग्निबलके अनुसार इसकी मात्रा सेवन करनी चाहिये । (इसकी मात्रा ६ माशेसे २ तोलेतक है) यह समग्र अर्शरोग नष्ट करता, बाल घने घुघुराले तथा काले बनाता तथा गरुडके समान दृष्टि तथा सुकुमारता बढाता, घोडोंके समान वेगवान्, हाथियोंके समान बलवान्, मयूरके सदृश स्वर, अग्नि दीप्त करता तथा स्त्रियोंकी प्रियता और सन्तान तथा २०० वर्षकी नीरोग आयु प्रदान करता है । इसमें भोजन मैथुन तथा मार्ग चलने आदिका कोई परहेज नहीं है । यह समस्त रोगोंके लिये काल तथा समस्त रसायनोंका राजा है । इसमें भल्लातकशुद्धि ईंटके चूरेमें रगडकर की जाती है और दूध घीसे चौगुना छोडा जाता है । और घी १ प्रस्थ (द्रवद्वैगुण्यात् २ प्रस्थ–१ सेर ९ छटांक ३ तोला) छोडा जाता है ॥ १९४–१९९ ॥

इति रसायनाधिकारः समाप्तः ।

अथ वाजीकरणाधिकारः ।

पिप्पलीलवणोपेतौ वस्ताण्डौ क्षीरसर्पिषा ।
साधितौ भक्षयेद्यस्तु स गच्छेत्प्रमदाशतम् ॥ १ ॥
वस्ताण्डसिद्धे पयसि साधितानसकृत्तिलान् ।
यः खादेत्स नरो गच्छेत्स्त्रीणां शतमपूर्ववत् ॥ २ ॥

बकरेके अण्डकोषको दूधसे निकाले गये घीमें तलकर छोटी पीपल व नमक मिला सेवन करनेसे मनुष्य १०० स्त्रियोंके साथ मैथुन कर सकता है । इसी बकरेके अण्डकोषसे सिद्ध दूधसे भावित तिल खानेसे १०० स्त्रियोंके साथ मैथुन करनेकी शक्ति होती है ॥ १॥२ ॥

विदारीचूर्णम् ।

चूर्णं विदार्याः सुकृतं स्वरसेनैव भावितम् ।
सर्पिःक्षौद्रयुतं लीढ्वा शतं गच्छेद्वराङ्गनाः ॥ ३ ॥

इसी प्रकार विदारीकन्दके चूर्णको विदारीकन्दके ही स्वरससे भावना देकर घी व शहद मिलाकर चाटनेसे सैकडों स्त्रियोंके साथ मैथुन करनेकी सामर्थ्य प्राप्त होती है ॥ ३ ॥

आमलकचूर्णम् ।

एवमामलकं चूर्णं स्वरसेनैव भावितम् ।
शर्करामधुसर्पिर्भिर्युक्तं लीढ्वा पयः पिबेत् ।
एतेनाशीतिवर्षोऽपि युवेव परिहृष्यते ॥ ४ ॥

इसी प्रकार आंवलेके चूर्णमें आंवलेके स्वरसकी ही भावना दे शक्कर, घी और शहद मिलाकर चाटना चाहिये ऊपरसे दूध पीना चाहिये । इससे ८० वर्षका बूढा भी जवानके समान मैथुनशक्तिसम्पन्न होता है ॥४॥

---

१ भल्लातकका प्रयोग सावधानीसे करना चाहिये । बनाते समय इसके तैलके छींटे पड जाने या पकाते समय इसकी भाप लग जानेसे शोथ हो जाता है, तथा—खानेसे भी किसी किसीको शोथ हो जाता है । ऐसी अवस्थामें तिल और गरीका उबटन तथा खाना लाभदायक होता है, तथा इम्लीके पत्तेके क्वाथसे स्नान करना चाहिये ॥

विदारीकल्कः ।

विदारीकन्दकल्कं तु घृतेन पयसा नरः ।
उदुम्बरसमं खादन्वृद्धोऽपि तरुणायते ॥ ५ ॥

विदारीकन्दका कल्क १ तोलेकी मात्रासे घी व दूधके साथ खानेसे वृद्ध भी जवानके सदृश होता है ॥ ५ ॥

स्वयंगुप्तादिचूर्णम् ।

स्वयंगुप्तागोक्षुरयोर्बीजचूर्णं सशर्करम् ।
धारोष्णेन नर. पीत्वा पयसा न क्षयं व्रजेत् ॥ ६ ॥

कौंचके बीज तथा गोखुरूके बीजोंका चूर्ण शक्कर मिला धारोष्ण दूधके साथ पीनेसे मनुष्य क्षीण नहीं होता है ॥ ६ ॥

उच्चटाचूर्णम् ।

उच्चटाचूर्णमप्येवं क्षीरेणोत्तममुच्यते ।
शतावर्युच्चटाचूर्णं पेयमेव सुखार्थिना ॥ ७ ॥

इसी प्रकार केवल उच्चटा (श्वेतगुञ्जामूल) का चूर्ण अथवा शतावरी व उच्चटा दोनोंके चूर्णको दूधके साथ पीनेसे कामशक्ति बढती है ॥ ७ ॥

मधुकचूर्णम् ।

कर्षं मधुकचूर्णस्य घृतक्षौद्रसमन्वितम् ।
पयोऽनुपानं यो लिह्यान्नित्यवेग. स ना भवेत् ॥८॥

१ तोला मौरेठीके चूर्णको घी व शहदमें मिला चाटकर ऊपरसे दूध पीनेसे मनुष्य नित्य वेगवान् होता है ॥ ८ ॥

गोक्षुरादिचूर्णम् ।

गोक्षुरकः क्षुरक. शतमूली
वानरिनागबलातिबला च ।
चूर्णमिदं पयसा निशि पेयं
यस्य गृहे प्रमदाशतमस्ति ॥ ९ ॥

गोखुरु, तालमखाना, शतावरी, कौंचके बीज गङ्गेरन व कघीके चूर्णको दूधके साथ रातमें उन्हें पीना चाहिये जिनके घरमें १०० स्त्रियां हैं ॥ ९ ॥

माषपायसः ।

घृतभृष्टो दुग्धमाषपायसो वृष्य उत्तम. ।

घीमें भूनकर उड़दकी दूधके साथ बनायी गयी खीर उत्तम वाजीकरण है ।

रसाला ।

दध्नः सारं शरच्चन्द्रसन्निभं दोषवर्जितम् ॥ १० ॥
शर्कराक्षौद्रमरिचैस्तुगाक्षीर्या च बुद्धिमान् ।
युक्त्या युक्तं ससूक्ष्मैलं नवे कुम्भे शुचौ पटैः ॥ ११ ॥
मार्जिते प्रक्षिपेच्छीतं घृताढ्यं षष्टिकौदनम् ।
अद्यात्तदुपरिष्टाच्च रसालां मात्रया पिबेत् ।
वर्णस्वरबलोपेतः पुमांस्तेन वृषायते ॥ १२ ॥

उत्तम दहीके सार (ऊपरकी मलाई) में शक्कर, शहद, काली मिर्च, वंशलोचन और छोटी इलायचीका चूर्ण मिलाकर नये कपडेसे साफ किये घडेमें रखना चाहिये । ठंडा भात घी मिलाकर खाना चाहिये । ऊपरसे यह रसाला पीनी चाहिये । इससे मनुष्य वर्ण, स्वर और बलसे युक्त होकर वेगवान् होता है ॥ १०–१२ ॥

मत्स्यमांसयोगः ।

आर्द्राणि मत्स्यमांसानि शफरीर्वा सुभर्जिताः ।
तप्ते सर्पिषि य. खादेत्स गच्छेत्स्त्रीषु न क्षयम् ॥ १३ ॥

गीले मछलीके मांस अथवा छोटी मछलियाँ घीमें भूनकर जो खाता है वह स्त्रीगमनसे क्षीण नहीं होता १३

नारसिंहचूर्णम् ।

शतावरीरजःप्रस्थं प्रस्थं गोक्षुरकस्य च ।
वाराह्या विंशतिपलं गुडूच्याः पञ्चविंशतिः ।
भल्लातकानां द्वात्रिंशच्चित्रकस्य दशैव तु ॥ १४ ॥
तिलानां शोधितानां च प्रस्थं दद्यात्सुचूर्णितम् ।
त्र्यूषणस्य पलान्यष्टौ शर्करायाश्च सप्ततिः ॥ १५ ॥
माक्षिकं शर्करार्धेन माक्षिकार्धेन वै घृतम् ।
शतावरीसमं देयं विदारीकन्दजं रजः ॥ १६ ॥
एतदेकीकृतं चूर्णं स्निग्धे भाण्डे निधापयेत् ।
पलार्धमुपयुञ्जीत यथेष्टं चापि भोजनम् ॥ १७ ॥
मासैकमुपयोगेन जरां हन्ति रुजामपि ।
वलीपलितखालित्यमेहपाण्ड्वाद्यपीनसान् ॥ १८ ॥
हन्त्यष्टादश कुष्ठानि तथाष्टावुदराणि च ।
भगन्दरं मूत्रकृच्छ्रं गृध्रसीं सहलीमकम् ॥ १९ ॥
क्षयं चैव महाश्वासान्पञ्चकासान्सुदारुणान् ।
अशीतिं वातजान्रोगांश्चत्वारिंशच्च पैत्तिकान् ॥ २० ॥
विंशतिं श्लैष्मिकांश्चैव संसृष्टान्सान्निपातिकान् ।
सर्वानर्शोगदान्हन्ति वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥ २१ ॥

स काञ्चनाभो मृगराजविक्रम-
स्तुरङ्गमं चाप्यनुयाति वेगतः।
स्त्रीणां शतं गच्छति सोऽतिरेकं
प्रकृष्टदृष्टिश्च यथा विहङ्गः॥ २२ ॥
पुत्रान्सञ्जनयेद्वीरान्नरसिंहनिभस्तथा।
नारसिंहमिदं चूर्णं सर्वरोगहरं नृणाम्॥ २३ ॥
वाराहीकन्दसंज्ञस्तु चर्मकारालुको मतः।
पश्चिमे घृष्टिशब्दाख्यो वराहलोमवानिव॥ २४ ॥

शतावरीका चूर्ण ६४ तोला, गोखरू ६४ तोला, वाराहीकन्दचूर्ण ८० तोला, गुर्च १०० तोला, भिलावां १२८ तोला, सोंठ, मिर्च, पीपल प्रत्येक ३२ तोला, विदारीकन्दका चूर्ण ६४ तोला सबका चूर्ण एकमें मिलाकर मिश्री २८० तोला, शहद १४० तोला, घी ७० तोला मिला एक चिकने घृतभावित घडेमें रखना चाहिये। इससे २ तोलेकी मात्रा (वर्तमानसमयमें ६ मासेसे १ तोला तक) प्रतिदिन खाना चाहिये तथा यथारुचि भोजन करना चाहिये। इसके १ मासके सेवनसे वृद्धावस्था तथा रोग दूर हो जाते हैं। झुर्रियां, पलित, इन्द्रलुप्त, प्रमेह, पाण्डुरोग, पीनस अठारह प्रकारके कुष्ठ, ८ प्रकारके उदररोग, भगंदर, मूत्रकृच्छ्र, गृध्रसी हलीमक, क्षय महाश्वास, पांचो कास अस्सी प्रकारके वातरोग, ४० प्रकारके पित्तरोग, २० प्रकारके कफरोग, द्वन्द्वज तथा सान्निपातिक रोग तथा समस्त अर्शोरोग इसके सेवनसे इस प्रकार नष्ट हो जाते हैं जैसे इन्द्रवज्रसे वृक्ष। इसका सेवन करनेवाला सोनेके समान कान्तिवाला, सिंहके समान पराक्रमी, घोडेके समान वेगवाला तथा सैकडों स्त्रियोंके साथ रमण करनेकी शक्तिवाला तथा पक्षियोंके सदृश दृष्टियुक्त होता है। इसके सेवनसे नृसिंहके समान वीर पुत्र उत्पन्न करनेकी शक्ति उत्पन्न होती है। यह समस्त रोगोंको नष्ट करनेवाला नारसिंह चूर्ण है। वाराहीकन्दनाम चर्मकारालूका है, पश्चिममें इसे घृष्टि कहते हैं, इसके कन्दके ऊपर शूकरकेसे लोम होते हैं॥ १४–२४ ॥

गोधूमाद्यं घृतम्।

गोधूमाच्च पलशतं निष्क्वाथ्य सलिलाढके।
पादावशेषे पूते च द्रव्याणीमानि दापयेत्॥ २५ ॥
गोधूमं मुञ्जातफलं माषद्राक्षापरूपकम्।
काकोली क्षीरकाकोली जीवन्ती सशतावरी॥ २६ ॥
अश्वगन्धा सखर्जूरा मधुकं त्र्यूषणं सिता।
भल्लातकमात्मगुप्ता समभागानि कारयेत्॥ २७ ॥
घृतप्रस्थं पचेदेकं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम्।
मृद्वग्निना च सिद्धे च द्रव्याण्येतानि निःक्षिपेत्॥२८॥
त्वगेलापिप्पलीधान्यकर्पूरं नागकेशरम्।
यथालाभं विनिक्षिप्य सिताक्षौद्रपलाष्टकम्॥ २९ ॥
शक्त्येक्षुदण्डेनालोड्य विधिवद्विनियोजयेत्।
शाल्योदनेन भुञ्जीत पिबेन्मांसरसेन वा॥ ३० ॥
केवलस्य पिबेदस्य पलमात्रां प्रमाणतः।
न तस्य लिङ्गशैथिल्यं न च शुक्रक्षयो भवेत्॥ ३१ ॥
बल्यं परं वातहरं शुक्रसञ्जननं परम्।
मूत्रकृच्छ्रप्रशमनं वृद्धानां चापि शस्यते॥ ३२ ॥
पलद्वयं तदश्नीयाद्दशरात्रमतन्द्रितः।
स्त्रीणां शतं च भजते पीत्वा चानुपिबेत्पयः॥ ३३ ॥
अश्विभ्यां निर्मितं चैतद्गोधूमाद्यं रसायनम्।
जलद्रोणे तु गोधूमक्काथे तच्छेपमाढकम्॥ ३४ ॥
मुञ्जातकस्य स्थाने तु तद्गुणं तालमस्तकम्।
कल्कद्रव्यसमं मान त्वगादेः साहचर्यतः॥ ३५ ॥

गेहूँ ५ सेर, जल २५ सेर ९ छ० ३ तो० छोडकर पकाना चाहिये। चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर क्काथ तयार करना चाहिये। उस क्काथमें गेहूं, मुञ्जातफल (मूंजके बीज), उडद, मुनक्का, फाल्सा, काकोली, क्षीरकाकोली, जीवन्ती, शतावरी, असगन्ध, छुहारा, मौरेठी, सोंठ, मिर्च, पीपल, मिश्री, कौंचके बीज व भिलावाँ प्रत्येक १ तोलेका कल्क तथा घी १ सेर ९ छ० ३ तो० और दूध ६ सेर ३२ तो० मिलाकर मन्द आँचसे पकाना चाहिये। सिद्ध हो जानेपर उतार छानकर दालचीनी, इलायची, छोटी पीपल, धनियाँ, कपूर, नागकेशर प्रत्येक एक तोलेका चूर्ण छोडना चाहिये, तथा मिश्री व शहद ३२ तो० (दोनों मिलकर) छोड कर ईखके दण्डसे मिलाकर रखना चाहिये। इसे शालिके भातके साथ खाना अथवा मांसरसमें मिलाकर पीना चाहिये अथवा केवल घृत ४ तोलेकी मात्रासे पीवे। इसके सेवनसे लिङ्ग शिथिल नहीं होता। न शुक्र ही क्षीण होता है। यह बल तथा वीर्य बढाता और वायुको नष्ट करता है तथा मूत्रकृच्छ्रको शान्त करता और वृद्धोंके लिये भी हितकर है। इसे ८ तोलेतककी मात्रामें १० दिनतक सावधानीसे सेवन करना चाहिये। इसे पीकर ऊपरसे दूध पीना चाहिये। यह गोधूमादि रसायन भगवान् अश्विनीकुमारोंने बनाया है इसमें गेहूँका क्काथ एक द्रोण (द्रवद्वैगुण्यात् २ द्रोण,) जलमें बनाना

चाहिये, चतुर्थांश क्वाथ रखना चाहिये । मुञ्जातकके न मिलनेपर ताडकी वाली छोडनी चाहिये । दालचीनी आदिका मान भी साहचर्यसे कल्कद्रवकी भाँति प्रत्येक १ तोला लेना चाहिये ॥ २५-३५ ॥

शतावरीघृतम् ।

घृतं शतावरीगर्भं क्षीरे दशगुणे पचेत् ।
शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं तद्वृष्यमुच्यते ॥ ३६ ॥

शतावरीका कल्क तथा घृतसे दशगुण दूध मिलाकर घी पकाना चाहिये । घी सिद्ध हो जानेपर उतार छान शक्कर व छोटी पीपलका प्रक्षेप उचित मात्रामें छोडकर सेवन करना चाहिये । यह उत्तम वाजीकरण है ॥३६॥

गुडकूष्माण्डकम् ।

कूष्माण्डकात्पलशतं सुस्विन्नं निष्कुलीकृतम् ।
प्रस्थं घृतस्य तैलस्य तस्मिंस्तप्ते प्रदापयेत् ॥ ३७ ॥
पत्रत्वग्धान्यकव्योषजीरकैलाद्वयानलम् ।
ग्रन्थिकं चव्यमातङ्गपिप्पलीविश्वभेषजम् ॥ ३८ ॥
शृङ्गाटकं कशेरुं च प्रलम्बं तालमस्तकम् ।
चूर्णीकृतं पलांशं च गुडस्य च तुलां पचेत् ॥ ३९ ॥
शीतिभूते पलान्यष्टौ मधुनः सम्प्रदापयेत् ।
कफपित्तानिलहरं मन्दाग्नीनां च शस्यते ॥ ४० ॥
कृशानां बृंहणं श्रेष्ठं वाजीकरणमुत्तमम् ।
प्रमदासु प्रसक्ताना ये च स्यु. क्षीणरेतसः ॥ ४१ ॥
क्षयेण च गृहीतानां परमेतद्भिषग्जितम् ।
कासं श्वासं ज्वरं हिक्कां हन्ति छर्दिमरोचकम् ॥ ४२ ॥
गुडकूष्माण्डकं ख्यातमश्विभ्यां समुदाहृतम् ।
खण्डकूष्माण्डवत्पात्र स्विन्नकूष्माण्डकद्रवः ॥ ४३ ॥

छिलके व बीजरहित पेठा उबाल रस निचोड अलग रखना चाहिये । फिर गायका घी ६४ तो० वा तिल-तैल ६४ तो० मिलाकर पूर्वोक्त विधिसे स्विन्न ५ सेर । पेठा भूनना चाहिये । जब पेठा अच्छी तरह भुन जावे अर्थात् सुर्खी आजाय और सुगन्ध उठने लगे उस समय वही पेठेका रस तथा ५ सेर गुड (गुड पुराना होना चाहिये । पर आज कल इसे मिश्री छोडकर बनाते हैं) मिला छानकर छोड देना चाहिये और उस समयतक पकाना चाहिये जबतक खूब गाढा न हो जाय । फिर तेजपात, दालचीनी, धनियाँ, त्रिकटु, जीरा, छोटी व बडी इलायची, चीतकी जड, पिपरामूल, चव्य, गजपीपल, सोंठ, सिंघाडा, कशेरु, ताडकी वाली प्रत्येक ४ तोले चूर्णको छोडकर उतार लेना चाहिये तथा ठण्डा हो जानेपर शहद ३२ तोला मिलाना चाहिये । यह कफ, पित्त और वायुको नष्ट करता तथा मन्दाग्निवालोंके लिये हितकर है तथा कृशपुरुषोंको पुष्ट करता और उत्तम वाजीकरण है । स्त्रीगमनसे जो क्षीण हो रहे हैं अथवा जो क्षयसे पीडित हैं उनके लिये यह उत्तम औषध है तथा यह काम, श्वास, ज्वर, हिक्का छर्दि तथा अरुचिको नष्ट करता है । इस गुडकूष्मांडक रसायनका आविष्कार भगवान् अश्वि-नकुमारोंने किया है । यहा स्विन्नकूष्मांडकका ही द्रव खण्डकूष्माण्डकी तरह १ आढक अथवा जितना निकले लेना चाहिये । इसकी मात्रा २ तोलेसे ४ तोले तक ॥ ३७-४३ ॥

सामान्यवृष्यम् ।

यत्किञ्चिन्मधुरं स्निग्धं जीवनं बृंहणं गुरु ।
हर्षणं मनसश्चैव सर्वं तद्वृष्यमुच्यते ॥ ४४ ॥

जितने द्रव्य, मीठे, चिकने, जीवन, बृंहण, गुरु तथा मनको प्रसन्न रखनेवाले हैं वे सब वृष्य हैं ॥ ४४ ॥

लिंगवृद्धिकरा योगाः ।

भल्लातकबृहतीफलदाडिमफलवल्कसाधितं कुरुते ।
लिङ्गं मर्दनविधिना कटुतैलं वाजिलिङ्गाभम् ॥ ४५ ॥
कनकरसमसृणवर्तितहयगन्धामूलविश्वपर्युषितम् ।
माहिषमिह नवनीतं गतबीजे कनकफलमध्ये ॥ ४६ ॥
गोमयगाढोद्वर्तितपूर्वं पश्चादनेन संलिप्तम् ।
भवति हयलिङ्गसदृश लिङ्गं कठिनाङ्गनादयितम्॥४७॥

भिलावां, बडी कटेरीके फल और अनारके फलकी छालके कल्कसे सिद्ध कडुआ तैल मर्दन करनेसे लिङ्ग घोडेके लिङ्गके, समान स्थूल होता है । इसी प्रकार धतूरके फलके बीज निकालकर उसी खाली फलमे धतू-रेके ही रससे महीन पिसी असगन्धकी जड और सोंठ तथा भैंसीका मक्खन तीनों मिलाकर रखना चाहिये । बासी हो जानेपर लिङ्गमें पहिले गायके गोबरका उब-टन कर इसका लेप करना चाहिये । इससे लिङ्ग घोडेके लिङ्गके सदृश स्थूल अतएव स्त्रियोंके लिये प्रेम पात्र हो जाता है ॥ ४५-४७ ॥

अश्वगन्धादितैलम् ।

अश्वगन्धावरीकुष्ठमांसीसिंहीफलान्वितम् ।
चतुर्गुणेन दुग्धेन तिलतैलं विपाचयेत् ।
स्तनलिङ्गकर्णपालिवर्धनं म्रक्षणादिदम् ॥ ४८ ॥

असगन्ध, शतावरी, कूठ, जटामासी तथा छोटी कटेरीके फलोंका कल्क और चतुर्गुण दूध मिलाकर सिद्ध तिलतैल मालिश करनेसे स्तन, लिङ्ग और कर्णपालियोंको बढाता है ॥ ४८ ॥ *

भल्लातकादिलेपः ।

भल्लातकबृहतीफलनलिनीदलसिन्धुजलशूकैः ।
माहिषनवनीतेन च करम्बितैः सप्तदिनमुषितैः ॥४९॥
मूलेन हयगन्धाया माहिषमलमर्दितपूर्वमथ ।
लिङ्गं भवति लघुकृतरासभलिङ्गं ध्रुवं पुंसाम् ॥ ५० ॥

भिलावाँ, बडी कटेरीके फल, कमलिनीके पत्ते, सेंधानमक व जोंकका कल्क कर भैंसीके मक्खनमें मिला ७ दिन रखकर प्रथम लिङ्गमें भैंसेके गोबरसे उबटन कर असगन्धकी जडसे इसका लेप करना चाहिये। इससे मनुष्योंका लिङ्ग गधेके लिङ्गसे भी मोटा हो जाता है ॥ ४९ ॥ ५० ॥

अन्ये योगाः ।

नीलोत्पलसितपङ्कजकेशरमधुशर्करावलिप्तेन ।
सुरते सुचिरं रमते दृढलिङ्गो भवति नाभिविवरेण॥५१॥
सिद्धं कुसुम्भतैलं भूमिलताचूर्णमिश्रितं कुरुते ।
चरणाभ्यङ्गेन रतेर्बीजस्तम्भाद् दृढं लिङ्गम् ॥ ५२ ॥
सप्ताहं छागभवसलिलस्थं करभवारुणीमूलम् ।
गाढोद्वर्तनविधिना लिङ्गस्तम्भं तथा दृढं कुरुते ॥ ५३॥
गोरेकोन्नतशृङ्गत्वग्भवचूर्णेन धूपितं वस्त्रम् ।
परिधाय भजति ललनां नैकाण्डो भवति हर्षार्तः॥५४॥

नील कमल, सफेद कमल, नागकेशर, शहद और शक्कर मिलाकर लेप करनेसे अधिक समयतक मैथुन करनेकी शक्ति प्राप्त होती और लिङ्ग दृढ होती है। यह लेप नाभिके ऊपर करना चाहिये। इसी प्रकार सूखे केंचुओंका कल्क छोडकर सिद्ध किया गया कुसुम्भका तैल पैरमें मालिश करनेसे वीर्यस्तम्भ तथा लिङ्ग दृढ होता है, इसी प्रकार बकरेके मूत्रमें ७ दिनतक भावित इन्द्रायणकी जडके चूर्णका लेप करनेसे लिङ्ग दृढ तथा वीर्य स्तब्ध होता है। इसी प्रकार गायके एक बडे सींगकी त्वचाके चूर्णसे धूपित वस्त्र पहिन कर मैथुन करनेसे मैथुनेच्छा शान्त नहीं होती ॥ ५१-५४ ॥

कुप्रयोगजषांढ्यचिकित्सा ।

समतिलगोक्षुरचूर्णं छागीक्षीरेण साधितं समधु ।
भुक्तं क्षपयति पाण्ढ्यं यज्जनितं कुप्रयोगेण ॥ ५५ ॥
योगजवराङ्गवद्धं मथितेन क्षालितं हरति ।
उन्मुखगोशृङ्गोद्भवलेपो ध्वजभंगं ह्युक्तः ॥ ५६ ॥

तिल और गोखुरूका चूर्ण समान भाग ले बकरीके दूधमें पका ठण्ढाकर शहद मिला खानेसे कुप्रयोग (दुष्टौषध अथवा हस्तक्रियादि) से उत्पन्न नपुंसकता नष्ट होती है। इसी प्रकार कुप्रयोगज नपुंसकता मट्ठेसे धोने तथा ऊर्ध्वमुख शृगके चूर्णको मट्ठेमें मिलाकर लेप करनेसे नष्ट होती है ॥ ५५ ॥ ५६ ॥

अथ मुखगन्धहरो योगः ।

कुष्ठैलवालुकैलामुस्तकधन्याकमधुकजः कवलः ।
अपहरति पूतिगन्धं रसोनमादिरादिजं गन्धम् ॥ ५७ ॥

कूठ, एलुवा, इलायची, नागरमोथा, धनियां तथा मौरेठीके चूर्ण अथवा क्वाथका कवल धारण करनेसे मुखसे आनेवाली लहसुन, शराब आदिकी दुर्गन्ध नष्ट हो जाती है ॥ ५७ ॥

अधोवातगन्धचिकित्सा ।

क्षौद्रेण बीजपूरत्वग्लीढाधोवातगन्धनुत् ॥ ५८ ॥

बिजौरे निम्बूकी छालके चूर्णको शहदके साथ चाटनेसे अधोवातज दुर्गन्ध नष्ट होती है ॥ ५८ ॥

इति वाजीकरणाधिकारः समाप्तः ।

---

* वराहवसायोगः-" मेदसा क्षौद्रयुक्तेन वराहस्य प्रलेपितम्।लिङ्गं स्निग्धं रतान्तेऽपि स्तब्धतां न प्रमुञ्चति॥" शूकरकी चर्बीको शहदके साथ मिलाकर लिङ्गमें लेप करनेसे मैथुनके बाद भी लिङ्गकी स्तब्धता नहीं मिटती। स्तम्भनम्-" बीजं बृहत्करञ्जस्य कृतमन्तः सुपारदम्। हेम्ना सुवेष्टितं न्यस्तं वदने बीजधृङ्मतम् ॥ " लताकरञ्जके बीजमें शुद्ध पारद भरकर ऊपरसे सोनेके पत्रसे मढवा देना चाहिये। इसको मुखमें रखकर मैथुन करनेसे वीर्यपात नहीं होता। अपरं स्तम्भनम्-"आज तुष्ट्रीक्षीर गव्यघृतं चरणयुगललेपेन। स्तम्भयति पुरुषबीज योगोऽयं यामिनीं सकलाम् " बकरीका दूध, ऊँटिनीका दूध और गायका घृत तीनों एकमें मिला पैरोंमें लेप कर मैथुन कर समग्र रात वीर्यपात नहीं होता ॥ यह तीनों प्रयोग कुछ पुस्तकोंमें हैं कुछमें नहीं।

अथ स्नेहाधिकारः ।

स्नेहविचारः ।

सर्पिस्तैलं वसा मज्जा स्नेहेषु प्रवरं मतम् ।
तत्रापि चोत्तमं सर्पिः संस्कारस्यानुवर्तनात् ॥ १ ॥
केवल पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ।
देयं बहुकफे चापि व्योपक्षारसमायुतम् ॥ २ ॥
तथा धीस्मृतिमेधाग्निकाङ्क्षिणां शस्यते घृतम् ।
ग्रन्थिनाडीक्रिमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥ ३ ॥
तैलं लाघवदार्ढ्यार्थी क्रूरकोष्ठेषु देहिषु ।
वातातपाध्वभारस्त्रीव्यायामक्षीणधातुषु ॥ ४ ॥
रूक्षक्लेशासहात्यग्निवातावृतपथेषु च ।
शेषौ वसन्ते सन्ध्यस्थिमर्मकोष्ठरुजासु च ।
तथा दग्धाहतभ्रष्टयोनिकर्णशिरोरुजि ॥ ५ ॥
तैलं प्रावृषि वर्षान्ते सर्पिरन्त्यौ तु माधवे ।
साधारणर्तौ स्नेहं पिबेत्कार्यवशादिह ॥ ६ ॥

स्नेहोंमें घी, तैल, चर्वी तथा मज्जा उत्तम हैं । इनमें भी घी सबसे उत्तम है क्योंकि घीसंस्कारका अनुवर्तन (अर्थात् घी जिन द्रव्योंके साथ सिद्ध किया जाता है उनके गुण उसमें आ जाते हैं और अपने भी गुण बने रहते हैं अतः) करता है । पैत्तिक रोगोंमें केवल घृत, वातिकमें नमक मिलाकर और कफजमें सोंठ, मिर्च, पीपल और क्षार मिलाकर देना चाहिये । तथा बुद्धि, स्मरणशक्ति, मेधा और अग्निकी इच्छा रखनेवालोंके लिये घी हितकर है । ग्रन्थि, क्रिमि, नाडीव्रण, कफ, मेद तथा वायुके रोगोंमें तथा लघुता और दृढताकी इच्छा रखनेवालों तथा क्रूर कोष्ठवालोंके लिये तैल हितकर होता है । वायु, धूप, मार्गगमन, भार उठाने, स्त्रीगमन अथवा व्यायामसे जिनके धातु क्षीण हो गये हैं तथा क्लेशको न सह सकनेवाले तथा तीक्ष्णाग्नि और वायुसे आवृत मार्गवालोंके लिये वसा और मज्जा हितकर है उनमेंसे वसाका प्रयोग सन्धि, अस्थि, मर्म और कोष्ठकी पीडामें तथा जले, आहत (चोट युक्त) और योनि, कान व शिरकी पीडामें भी करना चाहिये। तथा वर्षाऋतुमें तैल, शरदृतुमें घृत और वसन्तऋतुमें मज्जाका प्रयोग करना चाहिये।तथा आवश्यकतावश सभी ऋतुओंमें साधारण समयमें सब स्नेह प्रयुक्त किये जा सकते हैं ॥ १-६ ॥

स्नेहसमयः ।

वातपित्ताधिको रात्रावुष्णे चापि पिबेन्नरः ।
श्लेष्माधिको दिवा शीते पिबेच्चामलभास्करे ॥ ७ ॥

वातपित्ताधिक मनुष्य तथा उष्णकालमे भी रात्रिमें स्नेहपान करे तथा कफाधिक मनुष्यको और शीतकालमें दिनमें सूर्यके निर्मल रहनेपर ही स्नेहपान करना चाहिये ॥ ७ ॥

स्नेहार्हा अनर्हा वा ।

स्वेद्यसंशोध्यमद्यस्त्रीव्यायामासक्तचिन्तकाः ।
वृद्धा बालाबलकृशा रूक्षक्षीणास्रेरेतसः ॥ ८ ॥
वातार्तस्यन्दतिमिरदारुणप्रतिबोधिनः ।
स्नेह्या न त्वतिमन्दाग्नितीक्ष्णाग्निस्थूलदुर्बलाः ॥ ९ ॥
ऊरुस्तम्भातिसारामगलरोगगरोदरैः ।
मूर्च्छाछर्द्यरुचिश्लेष्मतृष्णामद्यैश्च पीडिताः ॥ १० ॥
आमप्रसूता युक्ते च नस्ये वस्तौ विरेचने ।

जिनका स्वेदन तथा संशोधन करना है तथा जो मद्यपान, स्त्रीगमन तथा व्यायाममें लगे रहते हैं तथा अधिक चिन्ता करनेवाले, वृद्ध, बालक, निर्बल, पतले, रूक्ष, क्षीणरक्त, क्षीणशुक्र, वायुसे पीडित, स्यन्द, तिमिरसे पीडित तथा अधिक जागरण करनेवाले पुरुष स्नेहनके योग्य है । तथा अतिमन्दाग्नि, तीक्ष्णाग्नि, स्थूल, दुर्बल, ऊरुस्तम्भ, अतिसार, आमदोष, गलरोग, कृत्रिम विष, उदररोग, मूर्छा, छर्दि, अरुचि तथा कफजतृष्णा और मद्यपानसे पीडित पुरुष स्नेहपानके अयोग्य है तथा जिस स्त्रीको गर्भपात हुआ है अथवा जिन्होने वस्ति, नस्य अथवा विरेचन लिया है उनके लिये स्नेहन निषिद्ध है ॥ ८-१० ॥-

स्नेहविधिः ।

स्नेहसात्म्यः क्लेशसहो दृढः काले च शीतले ॥ ११ ॥
अच्छमेव पिबेत्स्नेहमच्छपानं हि शोभनम् ।
पिबेत्संशमनं स्नेहमन्नकाले प्रकाङ्क्षितः ॥ १२ ॥
शुद्ध्यर्थं पुनराहारे नैशे जीर्णे पिबेन्नरः ।

जिसे स्नेहका अभ्यास है तथा जो स्नेहव्यापत्तिको सहन कर सकता है और दृढ है उसे तथा शीत कालमें केवल स्नेह पीना चाहिये । केवल स्नेहपान ही उत्तम है । दोषोंको शान्त करनेके लिये सशमन स्नेह भूख लगनेपर भोजनके समय पीना चाहिये तथा शुद्धिके लिये रात्रिका आहार पच जानेपर पीना चाहिये११॥१२

मात्रानुपाननिश्चयः।

अहोरात्रमहः कृत्स्नं दिनार्धं च प्रतीक्षते ॥ १३ ॥
उत्तमा मध्यमा ह्रस्वा स्नेहमात्रा जरां प्रति ।
उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे ॥ १४ ॥
जघन्यस्य पलार्धेन स्नेहक्वाथ्यौषधेषु च।
जलमुष्णं घृते पेयं यूषस्तैलेऽनुशस्यते ॥ १५ ॥
वसामज्ज्ञोस्तु मण्डः स्यात्सर्वेषूष्णमथाम्बु वा।
भल्लाते तौवरे स्नेहे शीतमेव जलं पिबेत् ॥ १६ ॥

दिनरातमें हजम होनेवाली स्नेहमात्रा उत्तम, केवल दिनभरमें हजम होनेवाली मध्यम तथा आधे दिनमे हजम होनेवाली स्नेहमात्रा हीनमात्रा कही जाती है। स्नेह तथा क्वाथ्य औषधियोंकी मात्रा क्रमशः उत्तम १ पल (४ तोले), मध्यम ३ कर्ष (३ तोले), हीन २ कर्ष (२ तोले) है। तथा घृतके अनन्तर गरम जल, तैलके अनन्तर यूष तथा वसा और मज्जाके अनन्तर मण्ड अथवा सबके अनन्तर गरम जल ही पीना चाहिये तथा भल्लातकतैल और तुवरकतैलमें शीतल जल ही पीना चाहिये ॥ १३-१६ ॥

स्नेहव्यापत्तिचिकित्सा।

स्नेहपीतस्तु तृष्णायां पिबेदुष्णोदकं नरः।
एवं चाप्यप्रशाम्यन्त्यां स्नेहमुष्णाम्बुनोद्धरेत् ॥ १७ ॥
मिथ्याचाराद्बहुत्वाद्वा यस्य स्नेहो न जीर्यति।
विष्टभ्य वापि जीर्येत्तं वारिणोष्णेन वामयेत् ॥ १८ ॥
ततः स्नेहं पुनर्दद्याल्लघुकोष्ठाय देहिने ।
जीर्णाजीर्णविशङ्कायां पिबेदुष्णोदकं नरः ॥ १९ ॥
तेनोद्गारो भवेच्छुद्धो रुचिश्चान्नं भवेत्प्रति ।
भोज्योऽन्नं मात्रया पास्यन्श्वः पिबन्पीतवानपि ।
द्रवोष्णमनभिष्यन्दि नातिस्निग्धमसङ्करम् ॥ २० ॥

स्नेहपान करनेवालोंको प्यासकी अधिकतामें गरम ही जल पीना चाहिये, यदि इस प्रकार शान्ति न हो तो गरम जल अधिक पीकर वमन कर डालना चाहिये। इसी प्रकार जिसका स्नेह मिथ्याचार या अधिक होनेके कारण हजम न होता हो अथवा ठहर कर हजम होता हो उसे भी गुनगुना जल पिलाकर वमन करा देना चाहिये। कोष्ठ हलका हो जानेपर फिर स्नेह देना चाहिये तथा स्नेह हजम हुआ या नहीं ऐसी शंकामें गरम जल पीना चाहिये। गरम जल पीनेसे डकार शुद्ध आती है और अन्नपर रुचि होती है तथा जिसे स्नेह कल पिलाना है या आज पिया है या कल पी चुका है उसे मात्रासे द्रव (पतला), उष्ण, अनाभिष्यन्दि (कफको बढाकर छिद्रोंको न भर देनेवाला) तथा न अधिक चिकना और न कई अन्न मिले हुए भोजन करना चाहिये ॥ १७-२० ॥

स्नेहमर्यादा।

त्र्यहावरं सप्तदिनं परन्तु
　स्निग्धः परं स्वेदयितव्य इष्टः।
नातः परं स्नेहनमादिशन्ति
　सात्मीभवेत्सप्तदिनात्परं तु ॥ २१ ॥
मृदुकोष्ठस्त्रिरात्रेण स्निह्यत्यच्छोपसेवया।
स्निह्यति क्रूरकोष्ठस्तु सप्तरात्रेण मानवः ॥ २२ ॥

कमसे कम तीन दिन (मृदुकोष्ठमें), अधिकसे अधिक ७ दिन (क्रूरकोष्ठमें) स्नेहन कर स्वेदन करना चाहिये। इससे अधिक स्नेहन नहीं करना चाहिये। क्योंकि ७ दिनके बाद स्नेह सात्म्य हो जाता है मृदुकोष्ठ पुरुष अच्छस्नेहपान कर ३ दिनमें और क्रूर कोष्ठवाले ७ दिनमें सम्यक् स्निग्ध हो जाते हैं ॥ २१[1]। २२ ॥

वमनविरेचनसमयः।

स्निग्धद्रवोष्णधन्वोत्थरसभुक्स्वेदमाचरेत्।
स्निग्धस्त्र्यहं स्थितः कुर्याद्विरेकं वमनं पुनः ॥ २३ ॥
एकाहं दिनमन्यच्च कफमुत्क्लेश्य तत्करैः ।

स्नेहन हो जानेपर स्नेहयुक्त, द्रव, उष्ण, जाङ्गल प्राणियोंका मांस भोजन करता हुआ ३ दिनतक स्वेदन करे। इस प्रकार ३ दिन ठहर कर विरेचन देना चाहिये और यदि वमन कराना हो तो एक दिन और ठहर अर्थात् चौथे दिन कफको बढानेवाले पदार्थ खिला कफ बढाकर वमन कराना चाहिये ॥ २३ ॥-

स्निग्धातिस्निग्धलक्षणम्।

वातानुलोम्यं दीप्तोऽग्निर्वर्चः स्निग्धमसंहतम् ॥ २४ ॥
स्नेहोद्वेगः क्लमः सम्यक् स्निग्धे रूक्षे विपर्ययः।
अतिस्निग्धे तु पाण्डुत्वं घ्राणवक्त्रगुदस्रवाः ॥ २५ ॥

१-पर ७ दिनमें भी जिसे ठीक स्नेहन न हो उसे बाद भी स्नेहपान करना चाहिये। जैसा कि वृद्ध वाग्भटने लिखा है " त्र्यहमच्छं मृदौ कोष्ठे क्रूरे सप्तदिनं भवेत्। सम्यक्स्निग्धोऽथवा यावदतः सात्मीभवेत्परम्॥"

ठीक ठीक स्नेहन हो जानेपर वायुका अनुलोमन अग्निदीप्त, मल ढीला व चिकना तथा स्नेहसे उद्वेग और ग्लानि होती है। ठीक स्नेहन न होनेपर इससे विपरीत लक्षण होते हैं । स्नेहनके अतियोगसे पाण्डुता तथा नासिका,मुख और गुदसे स्राव होता है॥२४॥२५॥

अस्निग्धातिस्निग्धचिकित्सा ।

रूक्षस्य स्नेहनं कार्यमतिस्निग्धस्य रूक्षणम् ।
श्यामाककोरदूषान्नतक्रपिण्याकसक्तुभिः ॥ २६ ॥

रूक्षतामें (स्नेहके अयोगमें) स्नेहन तथा अतिस्निग्धके लिये सावा कोदोंका भात, मठा, तिलकी खली और सत्तू खिलाकर रूक्षण कराना चाहिये ॥ २६ ॥

सद्यःस्नेह्याः ।

बालवृद्धादिषु स्नेहपरिहारासहिष्णुषु ।
योगानिमाननुद्वेगान्सद्यःस्नेहान्प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥

स्नेहके नियमोंको न पालन कर सकनेवाले तथा बालकों व वृद्धोंके लिये उद्वेग न करनेवाले तथा तत्काल स्नेहन करनेवाले इन योगोंका प्रयोग करना चाहिये २७

स्नेहनयोगाः ।

भृष्टे मांसरसे स्निग्धा यवागूः स्वल्पतण्डुला ।
सक्षौद्रा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥ २८ ॥

भूने मांसरसमें थोडेसे चावलोंकी यवागू बना स्नेह मिला शहदके साथ सेवन करनेसे तत्काल स्नेहन होता है ॥ २८ ॥

पाञ्चप्रसृतिकी पेया ।

सर्पिस्तैलवसामज्जातण्डुलप्रसृतैः शृता ।
पाञ्चप्रसृतिकी पेया पेया स्नेहनमिच्छता ॥ २९ ॥

घी, तैल, वसा, मज्जा तथा चावल प्रत्येक एक प्रसृत (८ तोला) छोडकर बनायी गयी (तथा उपयुक्त जल मिलाकर) पेया सद्यः स्नेहन करती है इसे पाञ्चप्रसृतिकी पेया कहते हैं ॥ २९ ॥

योगान्तरम् ।

सर्पिष्मती बहुतिला तथैव स्वल्पतण्डुला ।
सुखोष्णा सेव्यमाना तु सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥ ३० ॥
शर्कराघृतसंसृष्टं दुह्याद्गां कलशेऽथवा ।
पाययेदच्छमेतद्धि सद्यः स्नेहनमुच्यते ॥ ३१ ॥

अधिक तिल, थोडे चावल और घी मिलाकर (तथा उपयुक्त जलमें) बनायी गयी यवागू गरम गरम पीनेसे तत्काल स्नेहन होता है अथवा शक्कर, व घी दोहनीमें छोड ऊपर छन्ना रख गाय दुहकर तत्काल पीनेसे सद्यः स्नेहन होता है ॥ ३० ॥ ३१ ॥

स्नेहविचारः ।

ग्राम्यानूपौदकं मांसं गुडं दधि पयस्तिलान् ।
कुष्ठी शोथी प्रमेही च स्नेहने न प्रयोजयेत् ॥ ३२ ॥
स्नेहैर्यथास्वं तान्सिद्धैः स्नेहयेदविकारिभिः ।
पिप्पलीभिर्हरीतक्या सिद्धैस्त्रिफलया सह ॥ ३३ ॥

कुष्ठ, शोथ तथा प्रमेहसे पीडित पुरुषोंके लिये ग्राम्य, आनूप या औदकमांस, गुड, दही, दूध व तिलका प्रयोग स्नेहनके लिये न करना चाहिये । उनका उनके रोगोंको शान्त करनेवाली ओषधियों, पीपल, हर्र, त्रिफला आदिसे सिद्ध, विकार न करनेवाले स्नेहोंसे स्नेहन करना चाहिये ॥ ३२ ॥ ३३ ॥

उपसंहारः ।

स्नेहमग्रे प्रयुञ्जीत ततः स्वेदमनन्तरम् ।
स्नेहस्वेदोपपन्नस्य संशोधनमथान्तरम् ॥ ३४ ॥

पहिले स्नेहन करना चाहिये, फिर स्वेदन करना चाहिये । स्नेहन, स्वेदन हो जानेपर संशोधन, वमन विरेचन, करना चाहिये ॥ ३४ ॥

इति स्नेहाधिकारः समाप्तः ।

अथ स्वेदाधिकारः ।

सामान्यव्यवस्था ।

वातश्लेष्मणि वाते वा कफे वा स्वेद इष्यते ।
स्निग्धरूक्षस्तथा स्निग्धो रूक्षश्चाप्युपकल्पितः ॥ १ ॥
व्याधौ शीते शरीरे च महान्स्वेदो महाबले ।
दुर्बले दुर्बलः स्वेदो मध्यमे मध्यमो मतः ॥ २ ॥
आमाशयगते वाते कफे पक्वाशयाश्रये ।
रूक्षपूर्वो हितः स्वेदः स्नेहपूर्वस्तथैव च ॥ ३ ॥

वातकफमें स्निग्ध रूक्ष, केवल वातमें स्निग्ध तथा केवल कफमें रूक्ष स्वेद करना हितकर है । तथा शीतजन्य तथा बलवान् रोग और बलवान् शरीरमें महान् स्वेद और दुर्बलमें हीन तथा मध्यममें मध्य स्वेद हितकर है । तथा आमाशयगत वायुमें पहिले रूक्ष स्वेद फिर स्निग्ध स्वेद करना चाहिये । इसी प्रकार पक्का-

शयगत कफमें पहिले स्निग्ध स्वेद करना चाहिये अर्थात् आमाशय कफका स्थान है, अतः कफकी शान्तिके लिये पहिले रूक्ष स्वेद करके ही स्निग्ध स्वेद करना चाहिये। इसी प्रकार पक्वाशय वायुका स्थान होनेसे वहापर पहुँचे कफकी चिकित्सा करनेके लिये पहिले स्थानीय वायुकी शान्तिके लिये स्निग्ध स्वेद करके ही रूक्ष स्वेद करना चाहिये ॥ १–३ ॥

अस्वेद्याः ।

वृषणौ हृदयं दृष्टी स्वेदयेन्मृदु वा न वा ।
मध्यमं वङ्क्षणौ शेषमङ्गावयवमिष्टत ।
न स्वेदयेदतिस्थूलरूक्षदुर्बलमूर्च्छितान् ॥ ४ ॥
स्तम्भनीयक्षतक्षीणविषमद्यविकारिण ।
तिमिरोदरवीसर्पकुष्ठशोषाढ्यरोगिण ॥ ५ ॥
पीतदुग्धदधिस्नेहमधून्कृतविरेचनान् ।
भ्रष्टदग्धगुदग्लानिक्रोधशोकभयार्दितान् ॥ ६ ॥
क्षुत्तृष्णाकामलापाण्डुमेहिन पित्तपीडितान् ।
गर्भिणीं पुष्पिता सूतां मृदुर्वात्ययिके गदे ॥ ७ ॥

अण्डकोश हृदय और नेत्रोंका स्वेदन करना ही न चाहिये अथवा अधिक आवश्यकता होनेपर मृदु स्वेदन करना चाहिये । वङ्क्षणसन्धिमें मध्य तथा शेष अवयवोंमें यथेष्ट स्वेदन करना चाहिये । अतिस्थूल, रूक्ष, दुर्बल, मूर्छित, स्तम्भनीय, क्षतक्षीण, विष तथा मद्यविकारवाले, तिमिर, उदर, विसर्प, कुष्ठ, शोथ, ऊरुस्तम्भवाले तथा जिन्होंने दूध, दही, स्नेह या शहद पिया है अथवा जिन्होने विरेचन लिया है तथा जिनकी गुदा भ्रष्ट या दग्ध है तथा ग्लानि, क्रोध, शोक या भयसे तथा भूख, प्यास, कामला, पाण्डु, प्रमेह और पित्तसे पीडित तथा गर्भिणी, रजस्वला और प्रसूता स्त्रिया स्वेदनके अयोग्य हैं । अधिक आवश्यकता होनेपर इनका मृदु स्वेदन करना चाहिये ॥ ४–७ ॥

अनाग्नेयः स्वेदः ।

स्वेदो हितस्त्वनाग्नेयो वाते मेद कफावृते ।
निवात गृहमायासो गुरुप्रावरण भयम् ॥ ८ ॥
उपनाहाहवक्रोधभूरिपानक्षुधातपा ।
स्वेदयन्ति दशैतानि नरमग्निगुणादृते ॥ ९ ॥

मेद तथा कफसे आवृत वायुमें अनाग्नेय स्वेद हितकर है । वातरहित स्थान, परिश्रम, भारी रजाई, भय, पुल्टिस युद्ध, क्रोध, अधिक मद्यपान, भूख और धूप यह दश अनाग्नेय स्वेद अर्थात् अग्निके विना ही स्वेदन करते है ॥ ८ ॥ ९ ॥

सम्यक्स्विन्नलक्षणम् ।

शीतशूलव्युपरमे स्तम्भगौरवनिग्रहे ।
सञ्जाते मार्दवे स्वेदे स्वेदनाद्विरतिर्मता ॥ १० ॥

शीत और शूलके शान्त हो जाने, जकडाहट और भारीपन नष्ट हो जाने और शरीरके मृदु हो जानेपर स्वेदन बन्द कर देना चाहिये ॥ १० ॥

अतिस्विन्नलक्षणं चिकित्सा च ।

स्फोटोत्पत्ति पित्तरक्तप्रकोपो
मदो मूर्च्छा भ्रमदाहौ क्लमश्च ।
अतिस्वेदे सन्धिपीडा तृषा च
क्रिया शीतास्तत्र कुर्याद्विधिज्ञ ॥ ११ ॥

अतिस्वेदन हो जानेपर फफोले पित्तरक्तका प्रकोप, नशा, मूर्छा, चक्कर, दाह, ग्लानि तथा सन्धियोंकी पीडा और प्यास उत्पन्न होती है । इसमे विद्वानको शीतल क्रिया करनी चाहिये ॥ ११ ॥

स्वेदप्रयोगविधिः ।

सर्वान्स्वेदान्निवाते तु जीर्णान्ने चावचारयेत् ।
येषां नस्यं विधातव्य बस्तिश्चापि हि देहिनाम् ॥१२॥
शोधनीयास्तु ये केचित्पूर्वं स्वेद्यास्तु ते मता ।
पश्चात्स्वेद्या हृते शल्ये मूढगर्भानुपद्रवा ॥ १३ ॥
सम्यक्प्रजाता काले च पश्चात्स्वेद्या विजानता ।
स्वेद्या पश्चाच्च पूर्वं च भगन्दर्यर्शसस्तथा ॥ १४ ॥

समस्त स्वेद निवातस्थानमें तथा अन्न पच जानेपर करना चाहिये । तथा जिन्हें नस्य या बस्ति देना है अथवा जिनका शोधन करना है उनका पहिले ही स्वेदन करना चाहिये तथा मूढगर्भाके शल्य निकल जाने और कोई उपद्रव न होनेपर बादमें स्वेदन करना चाहिये तथा जिसके यथोक्त समयपर सुखपूर्वक बालक उत्पन्न हुआ है उसका भी बादमे स्वेदन करना चाहिये तथा भगन्दर और अर्शवालोंको शस्त्रक्रियाके पहिले तथा अन्तमें भी स्वेदन करना चाहिये ॥ १२–१४ ॥

स्वेदाः ।

तप्तैः सैकतपाणिकांस्यवसनैः स्वेदोऽथवाङ्गारकै-
र्लेपाद्वातहरैः सहाम्ललवणस्नेहैः सुखोष्णैर्भवेत् ।
एव तप्तपयोऽम्बुवातशमनक्वाथादिसेकादिभि-
स्तप्ते तोयनिषेचनोद्भवबृहद्बाष्पै शिलादौ क्रमात् १५
तापोपनाहद्रववाष्पपूर्वा
स्वेदान्ततोऽन्त्यप्रथमौ कफे स्त ।
वायो द्वितीय पवने कफे च
पित्तोपसृष्टे विहितस्तृतीय ॥ १६ ॥

गरम की हुई वालूकी पोटली, हाथ, कांस्यपात्र, कपडा, अगार अथवा वातहर पदार्थ, काञ्जी, नमक, स्नेह मिलाकर गरम किया लेप अथवा गरम जल, दूध अथवा वातनाशक क्वाथादिका सेक अथवा पत्थरको गरम कर ऊपरसे वातनाशक क्वाथ अथवा जल छोडकर उठी हुई भाप इनमेंसे यथायोग्य स्वेदन करना चाहिये। सामान्यतः ताप, उपनाह, द्रव और बाष्प भेदसे स्वेद ४ प्रकारका है। उनमें ताप और वाष्प कफमें, उपनाह वायुमें तथा पित्तयुक्त कफ या वायुमें द्रव स्वेद हितकर है ॥ १५ ॥ १६ ॥

इति स्वेदाधिकारः समाप्तः ।

अथ वमनाधिकारः ।

सामान्यव्यवस्था ।

स्निग्धस्विन्नं कफे सम्यक्संयोगे वा कफोल्बणे ।
श्वोवम्यमुत्क्लिष्टकफं मत्स्यमांसतिलादिभिः ॥ १ ॥
यथाविकारं विहितां मधुसैन्धवसंयुताम् ।
कोष्ठं विभज्य भैषज्यमात्रां मन्त्राभिमन्त्रिताम् ॥ २ ॥

कफज तथा कफप्रधान संयोगजव्याधिमें ठीक ठीक स्नेहन, स्वेदन कर पहिले दिन कफकारक मछलियाँ, मास और तिल आदि खिला कफ बढाकर दूसरे दिन प्रातःकाल रोगके अनुसार बनायी गयी औषधमात्रामें शहद व सैंधानमक मिला मंत्रद्वारा अभिमंत्रितकर रोगीको पिलाना चाहिये ॥ १ ॥ २ ॥

मन्त्रः ।

"ब्रह्मदक्षाश्विरुद्रेन्द्रभूचन्द्रार्कानिलानला ।
ऋषय. सौषधिग्रामा भूतसङ्घाश्च पान्तु ते ॥ ३ ॥
रसायनमिवर्षीणां देवानाममृतं यथा ।
सुधेवोत्तमनागानां भैषज्यमिदमस्तु ते" ॥ ४ ॥

यह मंत्र सार्थक है। मन्त्रार्थ--ब्रह्मा, दक्ष, अश्विनीकुमार, रुद्र, इन्द्र, भूमि, चन्द्र, सूर्य, वायु, अग्नि, ऋषि, ओषधियां और भूतगण तुम्हारी रक्षा करें। तथा यह औषध ऋषियोंके लिये रसायन, देवताओंके लिये अमृत तथा उत्तम नागोंके लिये सुधाके समान तुम्हें गुणकारी हो ॥ ३ ॥ ४ ॥

वमनौषधपाननियमः ।

पूर्वाह्ने पाययेत्पीतो जानुतुल्यासने स्थितः ।
तन्मना जातहृल्लासप्रसेकश्छर्दयेत्ततः ॥ ५ ॥
अंगुलीभ्यामनायस्तनालेन मृदुनाथवा ।

वमनकारक औषध प्रातःकाल पिलाना चाहिये तथा पीलेनेपर घुटनेके बराबर ऊँचे आसनपर वमन करनेके विचारसे बैठना चाहिये। फिर मिचलाई तथा मुखसे पानी आनेपर वमन करना चाहिये। यदि इस प्रकार वमन न हो तो अंगुली डालकर अथवा मृदु नालसे वमन करना चाहिये ॥ ५ ॥-

वमनकरा योगाः ।

वृषेन्द्रयवसिन्धूत्थवचाकल्कयुतं पिबेत् ।
यष्टीकषायं सक्षौद्रं तेन साधु वमत्यलम् ॥ ६ ॥
तण्डुलसलिलनिष्पिष्टं यः पीत्वा वमति पूर्वाह्ने ।
फलिनीवल्कलमुष्णं हरति गरं पित्तकफजं च ॥ ७ ॥
क्षौद्रलीढं ताम्ररजो वमनं गरदोषनुत् ॥ ८ ॥
आटरूषं वचा निम्बं पटोलं फलिनीत्वचम् ।
क्वाथयित्वा पिबेत्तोय वान्तिकृन्मदनान्वितम् ॥ ९ ॥

मोरेठीके क्वाथमें अडूसा, इन्द्रयव, सेंधानमक व वचका कल्क और शहद मिलाकर पीनेसे ठीक वमन होता है। इसी प्रकार प्रियंगुकी छाल चावलके जलमें पीस गरम कर गुनगुना २ पीनेसे कृत्रिम विष व पित्तकफज रोग शान्त होते हैं और वमन ठीक होता है तथा ताम्रभस्मको शहदके साथ चाटकर वमन करनेसे गरदोष (कृत्रिमविष) नष्ट होता है। इसी प्रकार अडूसाका पञ्चाङ्ग, वच, नीम, परवल व प्रियंगुकी छालका क्वाथ बना मैनफल मिला पीनेसे वमन होता है ॥ ६-९ ॥

वमनार्थं क्वाथमानम् ।

क्वाथ्यद्रव्यस्य कुडवं श्रपयित्वा जलाढके ।
चतुर्भागावशिष्टं तु वमनेष्ववचारयेत् ॥ १० ॥

१६ तो० क्वाथ्य द्रव्य ले जल ६ सेर ३२ तोला मिलाकर पकाना चाहिये, चतुर्थांश शेष रहनेपर उतार छानकर वमनके लिये काममें लाना चाहिये ॥ १० ॥

निम्बकषायः ।

निम्बकषायोपेतं फलिनीगदमदनमधुकसिन्धूत्थम् ।
मधुयुतमेतद्वमनं कफत. पूर्णाशये सदा शस्तम् ॥ ११ ॥

नीमकी पत्ती व छालके काढेमें प्रियङ्गु, कूठ, मैनफल, मौरेठी व सेंधानमकका कल्क और शहद मिला पीकर वमन करना कफपूर्ण कोष्ठवालेको सदा हितकर होता है ॥ ११ ॥

वमनद्रव्याणि ।

फलजीमूतकेक्ष्वाकुकुटजा. कृतवेधनः ।
धामार्गवश्च संयोज्याः सर्वथा वमनेष्वमी ॥ १२ ॥

वमनके लिये मैनफल, वन्दाल, कडुई तोम्त्री, कुडेकी छाल, कड्डुई तोरई और अर्रा तरोईका सब प्रकार (क्काथ, कल्क, चूर्ण, अवलेह आदिका) प्रयोग करना चाहिये ॥ १२ ॥

सम्यग्वमितलक्षणम् ।

क्रमात्कफ' पित्तमथानिलश्च
यस्यैति सम्यग्वमितः स इष्टः ।
हृत्पार्श्वमूर्धेन्द्रियमार्गशुद्धौ
तनोर्लघुत्वेऽपि च लक्ष्यमाणे ॥ १३ ॥

जिसके कफ, पित्त व वायु क्रमशः आते हैं, हृदय, पसलियां, मस्तक और इन्द्रियां तथा मार्ग शुद्ध होते हैं तथा शरीर हल्का होता है उसे ठीक वमित समझना चाहिये.॥ १३ ॥

दुर्वमितलक्षणम् ।

दुश्छर्दिते स्फोटककोठकण्डू-
वक्त्राविशुद्धिर्गुरुगात्रता च ।
तृण्मोहमूर्च्छानिलकोपनिद्रा-
बलातिहानिर्वमितेऽतिविद्यात् ॥ १४ ॥

वमन ठीक न होनेपर फफोले, ददरे या खुजली उत्पन्न हो जाती, मुख खराब तथा शरीरमें भारीपन होता है । तथा अतिवमन हो जानेपर प्यास, मोह, मूर्छा, वातकोप, निद्रा और बलकी बहुत हानि होती है॥१४॥

संसर्जनक्रमः ।

तत. सायं प्रभाते वा क्षुद्वान्पेयादिकं भजेत् ॥ १५ ॥
पेया विलेपीमकृत कृतं च
यूष रसं त्रिर्द्विरथैकशश्च ।
क्रमेण सेवेत विशुद्धकाय
प्रधानमध्यावरशुद्धिशुद्ध ॥ १६ ॥

फिर सायकाल अथवा प्रातःकाल भूख लगनेपर (वमन ठीक हो जानेपर) पेया आदिक क्रम प्रारम्भ करे । प्रधान, मध्य, और हीन शुद्धिमें क्रमशः तीन तीन अन्नकाल, दो दो अन्नकाल अथवा एक अन्नकालतक पेया, विलेपी, अकृतयूष, कृतयूष अथवा मांसरसका सेवन करना चाहिये ॥ १५ ॥ १६ ॥

हीनमध्योत्तमशुद्धिलक्षणम् ।

जघन्यमध्यप्रवरे तु वेगा-
श्चत्वार इष्टा वमने षडष्टौ ।
दशैव ते द्वित्रिगुणा विरेके
प्रस्थस्तथा द्वित्रिचतुर्गुणश्च ॥ १७ ॥

वमनमें क्रमशः चार, छः,आठ तथा विरेचनमें क्रमशः १०, २०, ३० वेग हीन, मध्यम, व उत्तम कहे जाते हैं तथा विरेचनमे २ प्रस्थ, ३ प्रस्थ अथवा४प्रस्थ, मलका निकलना हीन,मध्यम व उत्तम कहा जाता है१७

शुद्धिमानम् ।

पित्तान्तमिष्टं वमनं विरेका-
दर्ध कफान्त च विरेकमाहु. ।
द्वित्रान्सविट्कानपनीय वेगान्
मेयं विरेके वमने तु पीतम् ॥ १८ ॥

वमन करते करते जब पित्त आने लग जाय तब ठीक वमन समझना चाहिये तथा वमनमें विरेचनसे आधा मल (उत्तम २ प्रस्थ, मध्यम १॥ प्रस्थ, हीन१ प्रस्थ) निकलना चाहिये और विरेचनमें कफ आने लगे तब उत्तम विरेचन समझना चाहिये तथा विरेचनमें मलयुक्त २ या ३ वेग छोडकर गिनना चाहिये तथा वमनमें पीतमात्रको छोडकर गिनना चाहिये ॥ १८ ॥

प्रस्थमानम् ।

वमने च विरेके च तथा शोणितमोक्षणे ।
सार्धत्रयोदशपलं प्रस्थमाहुर्मनीषिणः ॥ १९ ॥

वमन, विरेचन तथा शोणितमोक्षणमें १३ ॥ पल अर्थात् ५४ तो॰का प्रस्थ विद्वान् लोग मानते हैं॥१९॥

अयोगातियोगचिकित्सा ।

अयोगे लङ्घनं कार्यं पुनर्वापि विशोधनम् ।
अतिवान्तं घृताभ्यक्तमवगाह्य हिमे जले ॥ २० ॥
उपाचरेत्सिताक्षौद्रमिश्रैर्लेहैश्चिकित्सक
वमनेऽतिप्रवृत्ते तु हृद्य कार्यं विरेचनम् ॥ २१ ॥

अयोग होनेपर लंघन करना चाहिये अथवा फिर शोधन करना चाहिये, तथा वमनका अतियोग होनेपर

घीकी मालिश कर ठण्ढे जलमें बैठाना चाहिये और मिश्री व शहद मिले लेह चटाना चाहिये तथा मृदु विरेचन देना चाहिये ॥ २० ॥ २१ ॥

अवाम्याः ।

न वामयेत्तैमिरिकं न गुल्मिनं
न चापि पाण्डूदररोगपीडितम् ।
स्थूलक्षतक्षीणकृशातिवृद्धा-
नर्शोर्दिताक्षेपकपीडितांश्च ॥ २२ ॥
रूक्षे प्रमेहे तरुणे च गर्भे
गच्छत्यथोर्ध्वं रुधिरे च तीव्रे ।
दुष्टे च कोष्ठे क्रिमिभिर्मनुष्यं
न वामयेदर्शसि चातिवृद्धे ॥ २३ ॥
एतेऽप्यजीर्णव्यथिता वाम्या ये च विषातुराः ।
अत्युल्बणकफा ये च ते च स्युर्मधुकाम्बुना ॥ २४ ॥

तिमिर, गुल्म, पाण्डु तथा उदररोगसे पीड़ित, मोटे, क्षतक्षीण, कृश, अतिवृद्ध, अर्श और आक्षेपसे पीडित, रूक्ष, प्रमेही, नवीन गर्भवती तथा ऊर्ध्वगामी रक्तपित्तसे पीडित व क्रिमिकोष्ठवाले तथा बढ़े हुए अर्शमें वमन नहीं कराना चाहिये । पर इन्हें भी यदि अजीर्ण या विषका असर हो गया हो तो वमन करा देना चाहिये तथा यदि कफ अधिक बढ़ा हुआ हो तो मौरेठीके क्वाथसे वमन करा देना चाहिये ॥ २२-२४ ॥

इति वमनाधिकारः समाप्तः ।

अथ विरेचनाधिकारः ।

सामान्यव्यवस्था ।

स्निग्धस्विन्नाय वान्ताय दातव्यं तु विरेचनम् ।
अन्यथा योजितं ह्येतद्ग्रहणीगदकृन्मतम् ॥ १ ॥

पूर्वोक्तविधिसे स्नेहन, स्वेदन तथा वमन कराकर विरेचन देना चाहिये अन्यथा विरेचन करानेसे ग्रहणीरोग उत्पन्न हो जाता है ॥ १ ॥

कोष्ठविनिश्चयः ।

मृदुः पित्तेन कोष्ठः स्यात्क्रूरो वातकफाश्रयात् ।
मध्यमः समदोषत्वाद्योज्या मात्रानुरूपतः ॥ २ ॥

पित्तसे मृदुकोष्ठ, वातकफसे क्रूरकोष्ठ तथा सम दोषोंसे मध्य कोष्ठ होता है । उसीके अनुसार मात्रा तथा औषध निश्चित करना चाहिये ॥ २ ॥

मृदुविरेचनम् ।

शर्कराक्षौद्रसंयुक्तं त्रिवृच्चूर्णावचूर्णितम् ।
रेचनं सुकुमाराणां त्वक्पत्रमरिचांशिकम् ।
त्रिवृच्चूर्णं सितायुक्तं पिबेच्छ्रेष्ठं विरेचनम् ॥ ३ ॥

निसोथका चूर्ण ४ भाग, दालचीनी, तेजपात, काली मिर्च इनका मिलित चूर्ण १ भाग मिश्री सबके समान मिला शहदके साथ सुकुमारोंको चटाना चाहिये । (चूर्णमात्रा ६ माशेसे १ तोलातक) अथवा केवल निसोथका चूर्ण मिश्री मिला (गरम दूध या जल आदिके साथ) पीना चाहिये । यह श्रेष्ठ विरेचन है ॥ ३ ॥

इक्षुपुटपाकः ।

छित्त्वा द्विधेक्षुं परिलिप्य कल्कै-
स्त्रिभण्डिजातैः परिवेष्ट्य बद्ध्वा ।
पक्वं तु सम्यक्पुटपाकयुक्त्या
खादेत्तु तं पित्तगदी सुशीतम् ॥ ४ ॥

पोंड़ेको बीचों बीचसे फाड़कर निसोथके कल्कका लेप करना चाहिये । ऊपरसे डोरेसे बांधकर पुटपाक विधिसे (अर्थात् ऊपरसे एरण्डादिपत्र लपेट मिट्टीसे लेपकर भुला) पकाकर ठण्ढा हो जानेपर पित्तरोगवालेको चूसना चाहिये ॥ ४ ॥

पिप्पल्यादिचूर्णम् ।

पिप्पलीनागरक्षारं श्यामा त्रिवृतया सह ।
लेहयेन्मधुना सार्धं कफव्याधौ विरेचनम् ॥ ५ ॥

कफज रोगमें, छोटी पीपल, सोंठ, जवाखार, निसोथ, काला निसोथका चूर्णकर शहदके साथ चटाना चाहिये । इससे विरेचन ठीक होता है ॥ ५ ॥

हरीतक्यादिचूर्णम् ।

हरीतकी विडङ्गानि सैन्धवं नागरं त्रिवृत् ।
मरिचानि च तत्सर्वं गोमूत्रेण विरेचनम् ॥ ६ ॥

बड़ी हर्रका छिल्का, वायविडंग, सेंधानमक, निसोथ, सोंठ तथा काली मिर्चके चूर्णको गोमूत्रके साथ पीनेसे श्रेष्ठ विरेचन होता है ॥ ६ ॥

त्रिवृतादिगुटिका लेहो वा ।

त्रिवृच्छाणत्रयसमा त्रिफला तत्समानि च ।
क्षारकृष्णाविडङ्गानि तच्चूर्णं मधुसर्पिषा ॥ ७ ॥
लिह्याद्गुडेन गुडिकां कृत्वा वाप्युपयोजयेत् ।
कफवातकृतान्गुल्मान्प्लीहोदरभगन्दरान् ॥ ८ ॥

इत्यन्यानपि चाप्येतन्निरपायविरेचनम् ।

निसोथ ९ माशे, त्रिफला ९ माशे, जवाखार, छोटी पीपल, वायविडंग तीनों मिलकर ९माशे चूर्ण कर शहद व घीके साथ चाटना चाहिये । अथवा गुडके साथ गोली बनाकर प्रयोग करना चाहिये । यह कफवातज गुल्म, प्लीहा, उदररोग, भगन्दर तथा अन्य रोगोको नष्ट करता है तथा आपत्तिरहित विरेचन है ॥७॥८॥–

अभयाद्यो मोदकः ।

अभया पिप्पलीमूलं मरिचं नागरं तथा ॥ ९ ॥
त्वक्पत्रपिप्पलीमुस्तविडङ्गामलकानि च ।
कर्षं प्रत्येकमेषां तु दन्त्याः कर्षत्रयं तथा ॥ १० ॥
षट्कर्षाश्च सितायास्तु द्विपलं त्रिवृतो भवेत् ।
सर्वं सुचूर्णितं कृत्वा मधुना मोदकं कृतम् ॥ ११ ॥
खादेत्प्रतिदिनं चैकं शीतं चानुपिबेज्जलम् ।
तावद्विरिच्यते जन्तुर्यावदुष्णं न सेवते ॥ १२ ॥
पाण्डुरोगं विषं कासं जङ्घापार्श्वरुजां तथा ।
पृष्ठार्तिं मूत्रकृच्छ्रं च दुर्नामसभगन्दरम् ॥ १३ ॥
अश्मरीमेहकुष्ठानि दाहशोथोदराणि च ।
यक्ष्माणं चक्षुषो रोगं क्रमं वैद्येन जानता ।
योजितोऽयं निहन्त्याशु अभयाद्यो हि मोदकः ॥१४॥

बडी हर्रका छिल्का, पिपरामूल, काली मिर्च, सोंठ, दालचीनी, तेजपात, छोटी पीपल, नागरमोथा, वायविडंग, आवलें प्रत्येक १ तोला, दन्तीकी छाल ३ तो०, मिश्री ६ तोला, निसोथ ८ तोला सबका चूर्णकर १तो० की गोली बना प्रतिदिन १ गोली खानी चाहिये । ऊपरसे ठण्डा जल पीना चाहिये । इससे उस समयतक दस्त आते हैं जबतक रोगी गरम जल नहीं पीता। यह पाण्डुरोग, विष, कास, जघा व पसलियोंके शूल पीठके दर्द, मूत्रकृच्छ्र, अर्श, भगन्दर, अश्मरी, प्रमेह, कुष्ठ, दाह, शोथ, उदररोग तथा नेत्ररोगको योग्य वैद्यद्वारा प्रयुक्त होनेपर नष्ट करता है इसे अभयादिमोदक कहते हैं ॥ ९–१४ ॥

एरण्डतैलयोगः ।

एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथेन द्विगुणेन च ।
युक्तं पीत्वा पयोभिर्वा न चिरेण विरिच्यते ॥ १५ ॥

एरण्डतैल (२ तोलेसे ४ तोले तककी मात्रामें ले) द्विगुण त्रिफलाक्वाथ अथवा दूधके साथ पीनेसे शीघ्र विरेचन होता है ॥ १५ ॥

सम्यग्विरिक्तलिंगम् ।

स्रोतोविशुद्धीन्द्रियसम्प्रसादौ
लघुत्वमूर्जोऽग्निरनामयत्वम् ।
प्राप्तिश्च विट्पित्तकफानिलानां
सम्यग्विरिक्तस्य भवेत्क्रमेण ॥ १६ ॥

ठीक विरेचन हो जानेपर शरीरके समस्त स्रोतस् शुद्ध, इन्द्रियां प्रसन्न, शरीर हल्का, अग्नि बलवान्, आरोग्यता तथा क्रमशः मल, पित्त, कफ और वायुका आगमन होता है ॥ १६ ॥

दुर्विरिक्तलिङ्गम् ।

स्याच्छ्लेष्मपित्तानिलसंप्रकोपः
सादस्तथाग्नेर्गुरुता प्रतिश्या ।
तन्द्रा तथा छर्दिररोचकश्च
वातानुलोम्यं न च दुर्विरिक्ते ॥ १७ ॥

ठीक विरेचन न होनेपर कफपित्त और वायुका प्रकोप, अग्निमान्द्य, भारीपन, जुखाम, तन्द्रा, वमन तथा अरुचि होतीहै और वायुका अनुलोमन नहीं होता॥१७॥

अतिविरिक्तलक्षणम् ।

कफास्रपित्तक्षयजानिलोत्थाः
सुप्त्यङ्गमर्दक्लमवेपनाद्याः ।
निद्राबलाभावतमःप्रवेशाः
सोन्मादहिक्काश्च विरेचितेऽति ॥ १८ ॥

विरेचनका अतियोग होनेपर कफ, रक्त व पित्तकी क्षीणतासे बढे वायुके रोग, सुप्ति, अङ्गमर्द, ग्लानि, शरीरकम्प, निद्रानाश, बलनाश तथा नेत्रोंके सामने अँधेरा छा जाना, उन्माद और हिक्का आदिरोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ १८ ॥

पथ्यानियमः ।

मन्दाग्निमक्षीणमसद्विरिक्तं
न पाययेत्तद्दिवसे यवागूम् ।
विपर्यये तद्दिवसे तु सायं
पेयाक्रमो वान्तवदिष्यते तु ॥ १९ ॥
यथाणुरग्निस्तृणगोमयाद्यैः
सन्धुक्ष्यमाणो भवति क्रमेण ।
महान्स्थिरः सर्वसहस्तथैव
शुद्धस्य पेयादिभिरन्तराग्निः ॥ २० ॥

विरेचन हो जानेके अनन्तर जिसकी अग्नि दीप्त नहीं हुई तथा रोगी क्षीण नहीं है उसे उस दिन पथ्य न देना चाहिये । इससे विपरीत होनेपर उसी

दिनसे वमनके अनुसार पेयादिक्रम सायकालसे प्रारम्भ कर देना चाहिये । जिस प्रकार थोडी अग्नि थोडे थोडे तृण या गोवर आदिसे धीरे धीरे बढानेसे बहुत समय तक रहनेवाली तथा सब कुछ जला देनेकी सामर्थ्य युक्त हो जाती है । इसी प्रकार शुद्धपुरुषकी अन्तराग्नि पेयादि सेवन करनेसे दीप्त हो जाती है ॥ १९ ॥ २० ॥

यथावस्थं व्यवस्था ।

कषायमधुरै: पित्ते विरेकः कटुकै. कफे ।
स्निग्धोष्णलवणैर्वायावप्रवृत्ते च पाययेत् ॥ २१ ॥
उष्णाम्बु स्वेदयेच्चास्य पाणितापेन चोदरम् ।
उत्थानेऽल्पे दिने तस्मिन्भुक्त्वान्येद्यु. पुन. पिबेत्॥२२॥
अदृढस्नेहकोष्ठस्तु पिबेदूर्ध्वं दशाहत. ।
भूयोऽप्युपस्कृततनुः स्नेहस्वेदैर्विरेचनम् ॥ २३ ॥
यौगिकं सम्यगालोच्य स्मरन्पूर्वमनुक्रमम् ।
दुर्बलः शोधितः पूर्वमल्पदोष कृशो नरः ।
अपरिज्ञातकोष्ठस्तु पिबेन्मृद्वल्पमौषधम् ॥ २४ ॥
रूक्षबह्वनिलक्रूरकोष्ठव्यायामसेविनाम् ।
दीप्ताग्नीनां च भैषज्यमविरेच्यैव जीर्यति ॥ २५ ॥
तेभ्यो वस्तिं पुरा दद्यात्ततः स्निग्धं विरेचनम् ।
अस्निग्धे रेचनं स्निग्धं रूक्षं स्निग्धेऽतिशस्यते ॥ २६ ॥

पित्तमें कषैले तथा मधुर द्रव्योंसे,कफमें कटु द्रव्योंसे, वायुमें चिकने, गर्म और नमकीन द्रव्योंसे विरेचन देना चाहिये । इस प्रकार दस्त न आनेपर ऊपरसे गरम जल पिलाना चाहिये तथा हाथोंको गरम कर पेटपर फिराना चाहिये । उस दिन कम दस्त आनेपर दूसरे दिन फिर विरेचन देना चाहिये । पर जो पुरुष दृढ तथा स्निग्ध-कोष्ठ न हो उसे दश दिनके बाद फिर स्नेहन, स्वेदनसे शरीर ठीक कर तथा पूर्वके क्रमको ध्यानमें रखते हुए ठीक ठीक विचार कर विरेचन देना चाहिये । दुर्बल पुरुष, पूर्वशोधित, अल्पदोष तथा कृशपुरुष और अपरिज्ञात कोष्ठवालेको पहिले मृदु व अल्पमात्र औषध देना चाहिये तथा रूक्ष, अधिक वायु, क्रूरकोष्ठ तथा व्यायाम करने वालोंको विना विरेचन किये ही औषध हजम हो जाती है अतः ऐसे लोगोंको प्रथम स्नेहवस्ति देकर फिर स्निग्ध विरेचन देना चाहिये । जो रूक्ष हैं उन्हें स्निग्ध विरेचन तथा जो अधिक स्निग्ध हैं उन्हें रूक्ष विरेचन देना चाहिये । जिसको स्नेहका अभ्यास है उसे पाहिले रूक्षण कर फिर स्नेहन करना चाहिये तब विरेचन देना चाहिये ॥ २१-२६ ॥

अतियोगचिकित्सा ।

विरूक्ष्य स्नेहसात्म्य तु भूयः स्निग्धं विरेचयेत ।
पद्मकोशीरनागाह्वचन्दनानि प्रयोजयेत् ॥ २७ ॥
अतियोगे विरेकस्य पानालेपनसेचनैः ।
सौवीरपिष्टाम्रवल्कलनाभिलेपोऽतिसारहा ॥ २८ ॥

विरेचनके अतियोगमें पीने, लेप तथा सिञ्चनके लिये पद्माख, खश, नागकेशर और चन्दनका प्रयोग करना चाहिये तथा काञ्जीमें पिसी आमकी छालका नाभिपर लेप करनेसे विरेचन बन्द होता है ॥ २७ ॥ २८ ॥

अविरेच्याः ।

अविरेच्या बालवृद्धश्रान्तभीतनवज्वराः ।
अल्पाग्न्यधोगपित्तास्रक्षतपाय्वतिसारिण ॥ २९ ॥
सशल्या स्थापितक्रूरकोष्ठातिस्निग्धशोषिण ।
गर्भिणी नवसूता च तृष्णार्तोऽजीर्णवानपि ॥ ३० ॥

बालक, वृद्ध, थके हुए, डरे, नवज्वरवाले, अल्पाग्नि तथा अधोगामी रक्तपित्तवाले तथा जिनकी गुदामें व्रण है, तथा अतीसारवाले, सशल्य तथा जिन्हें आस्थापन वस्ति दी गयी है तथा क्रूरकोष्ठवाले अति-स्निग्ध, राजयक्ष्मावाले, गर्भिणी, नवप्रसूता तथा अजीर्णी यह सब विरेचनके अयोग्य हैं, इन्हें विरेचन न करना चाहिये ॥ २९ ॥ ३० ॥

इति विरेचनाधिकारः समाप्तः ।

अथानुवासनाधिकारः ।

वातोल्बणेषु दोषेषु वाते वा वस्तिरिष्यते ।
यथोचितात्पादहीनं भोजयित्वानुवासयेत् ॥ १ ॥
न चाभुक्तवते स्नेह प्रणिधेयः कथञ्चन ।
सूक्ष्मत्वाच्छून्यकोष्ठस्य क्षिप्रमूर्ध्वमथोत्पतेत् ॥ २ ॥

वातप्रधान दोषोंमें तथा केवल वायुमें वस्ति देना चाहिये और भोजनका जैसा अभ्यास हो उससे चतुर्थांश कम भोजन कराकर वस्ति देना चाहिये । विना भोजन कराये स्नेहवस्ति न देना चाहिये । क्योंकि स्नेह सूक्ष्म होनेसे शून्यकोष्ठवाले पुरुषके शीघ्र ही ऊपर आ जाता है ॥ १ ॥ २ ॥

स्नेहमात्राक्रमः ।

षट्पली च भवेच्छ्रेष्ठा मध्यमा त्रिपली भवेत् ।
कनीयसी सार्धपला त्रिधा मात्रानुवासने ॥ ३ ॥
प्रागदेयमाद्ये द्विपलं पलार्ध-
वृद्धिर्द्वितीये पलमक्षवृद्धिः ।
कर्षद्वयं वा वसुमाषवृद्धि-
र्वस्तौ तृतीये क्रम एष उक्तः ॥ ४ ॥

छः पल (२४ तोला) की श्रेष्ठ, ३ पल (१२ तो०) की मध्यम और १॥ पल (६ तोला) की हीन इस प्रकार अनुवासनकी ३ मात्राएँ होती हैं । पर वस्तिमात्रा पहिलेसे ही पूर्ण न देनी चाहिये । श्रेष्ठ मात्रा पहिले २ पल देना फिर आधा आधा पल बढाना चाहिये । मध्यमात्रामें पहिले १ पल देना चाहिये फिर एक कर्षके क्रमसे बढाना चाहिये । हीनमात्रामें पहिले २ कर्ष फिर ८ माशे (वर्तमान ६ माशे) प्रतिदिन बढाते हुए पूर्णमात्रा करनी चाहिये । यह मात्रावृद्धिका क्रम है ॥ ३ ॥ ४ ॥

विधिः ।

माषमात्रं पले स्नेहे सिन्धुजन्मशताह्वयोः ।
स तु सैन्धवचूर्णेन शताह्वेन च संयुतः ॥ ५ ॥
भवेत्सुखोष्णश्च तथा निरेति सहसा सुखम् ।
विरिक्तश्चानुवास्यश्चेत्सप्तरात्रात्परं तदा ॥ ६ ॥

१ पल स्नेहमे सेंधानमक और सौंफ १ माशे मिलाना चाहिये और कुछ गरम कर वस्ति देना चाहिये इससे वस्ति शीघ्रही प्रत्यावर्तित हो जाता है तथा विरेचनके सात दिनके अनन्तर अनुवासन वस्ति देना चाहिये ॥ ५ ॥ ६ ॥

अथ वस्तिवस्तिनेत्रविधानम् ।

सुवर्णरूप्यत्रपुताम्ररीति-
कांस्यायसास्थिद्रुमवेणुदन्तैः ।
नलैर्विषाणैर्मणिभिश्च तैस्तैः
कार्याणि नेत्राणि सुकर्णिकानि ॥ ७ ॥
षड्द्वादशाष्टाङ्गुलसम्मितानि
षड्विंशतिद्वादशवर्षजानाम् ।
स्युर्मुद्गकर्कन्धुसतीनवाहि-
च्छिद्राणि वर्त्या पिहितानि चापि ॥ ८ ॥
यथा वयोऽङ्गुष्ठकनिष्ठिकाभ्यां
मूलाग्रयोः स्युः परिणाहवन्ति ।
ऋजूनि गोपुच्छसमाकृतीनि
श्लक्ष्णानि च स्युर्गुडिकामुखानि ॥ ९ ॥

स्यात्कर्णिकैकाग्रचतुर्थभागे
मूलाश्रिते वस्तिनिबन्धने द्वे ।
जारद्गवो माहिषहारिणौ वा
स्याच्छौकरो वस्तिरजस्य वापि ॥ १० ॥
दृढस्तनुर्नष्टशिरोविबन्धः
कषायरक्तः सुमृदुः सुशुद्धः ।
नृणां वयो वीक्ष्य यथानुरूपं
नेत्रेषु योज्यस्तु सुबद्धसूत्रः ॥ ११ ॥

सोना, चांदी, रांगा, तांबा, पीतल, कांसा, लोहा, हड्डी, वृक्ष, बांस, दांत, नरसल, सींग और मणि आदिमेंसे किसी एकसे उत्तम नेत्र (नल) बनाना चाहिये । नेत्रके अग्रभागमें चतुर्थांश छोडकर कर्णिका (अंकुर) रखना चाहिये और छः वर्षके बालकके लिये ६ अंगुल, बारह वर्षवालेके लिये ८ अंगुल और २० वर्षवालेके लिये १२ अंगुलका नेत्र (नल) बनाना चाहिये और उनमें क्रमशः मूंग, मटर और छोटे बेरके बराबर छिद्र होना चाहिये । नेत्रका मुख वत्तीसे बन्द रखना चाहिये, तथा अवस्थाके अनुसार न्यूनाधिकका भी निश्चय करना चाहिये । नेत्र सामान्यतः मूलमें अँगूठेके समान और अग्रभागमें कनिष्ठिकाके समान मोटा, गोपुच्छसदृश चढा उतार तथा चिकना बनाना चाहिये और मुखपर गुटिका बननी चाहिये । अग्रभागमें जो कर्णिका बनायी जाय वह चौथाई हिस्सा आगेका छोडकर बनाना चाहिये और मूलमें वस्ति बांधनेके लिये २ कर्णिका (कंगूरा) रहना चाहिये । वस्ति पुराने बैल, भैंस, हरिण, सुआ या बकरेकी दृढ, पतली, शिराओंरहित, कषायरङ्गसे रंगी हुई, मुलायम, शुद्ध तथा रोगीकी अवस्थाके अनुसार लेनी चाहिये और उसे सूत्रसे नेत्रमें बांधना चाहिये ॥ ७-११ ॥

निरूहानुवासनमात्रा ।

निरूहमात्रा प्रथमे प्रकुञ्चो वत्सरात्परम् ।
प्रकुञ्चवृद्धिः प्रत्यब्दं यावत्षट्प्रसृतास्ततः ॥ १२ ॥
प्रसृतं वर्धयेदूर्ध्वं द्वादशाष्टादशस्य तु ।
आसप्ततेरिदं मानं दशैव प्रसृताः परम् ॥ १३ ॥
यथायथं निरूहस्य पादो मात्रानुवासने ।

निरूहणकी मात्रा प्रथमवर्षमें ४ तोला फिर प्रतिवर्ष ४ तोला बढाना चाहिये जबतक ४८ तो० न हो जाय और फिर प्रति वर्ष ८ तो० बढाना चाहिये, जबतक कि ९६ तो० न हो जाय इस प्रकार १८ वर्षसे ७० वर्षतक यही मान अर्थात् ९६ तो० रखना चाहिये तथा ७० वर्षके बाद ८० तोला

की ही मात्रा देनी चाहिये । निरूहणकी चतुर्थांश मात्रा अनुवासन वस्तिकी देनी चाहिये । (क्वाथप्रधान वस्तिको निरूहणवस्ति और स्नेहप्रधान वस्तिको अनुवासन वस्ति कहते हैं) ॥ १२ ॥ १३ ॥

वस्तिदानविधिः ।

कृतचङ्क्रमण मुक्तविण्मूत्र शयने सुखे ॥ १४ ॥
नात्युच्छ्रिते न चोच्छीर्षे संविष्ट वामपार्श्वत ।
सकोच्य दक्षिण सक्थि प्रसार्य च ततोऽपरम् ।
वस्ति सव्ये करे कृत्वा दक्षिणेनावपीडयेत् ॥ १५ ॥
तथास्य नेत्रं प्रणयेत्स्निग्धे स्निग्धमुख गुदे ।
उच्छ्वास्य वस्तेर्वदन बद्ध्वा हस्तमकम्पयन् ॥ १६ ॥
पृष्ठवंशं प्रति ततो नातिद्रुतविलम्बितम् ।
नातिवेग न वा मन्द सकृदेव प्रपीडयेत् ।
सावशेष प्रकुर्वीत वायु शेषे हि तिष्ठति ॥ १७ ॥
निरूहदानेऽपि विधिरयमेव समीरित ।
तत प्रणिहिते स्नेह उत्तानो वाक्शत भवेत् ।
प्रसारितै सर्वगात्रैस्तथा वीर्य प्रसर्पति ॥ १८ ॥
आकुञ्चयेच्छनैस्त्रिस्त्रि सक्थियाह्व तत परम् ।
ताडयेत्तलयोरेन त्रींस्त्रीन्वाराञ्छनै शनै ॥ १९ ॥
स्फिचोश्चैन तत श्रोणि शय्या त्रिरुत्क्षिपेच्छनै ।
एव प्रणिहिते वस्तौ मन्दायासोऽथ मन्दवाक् ॥ २० ॥
अस्तीर्णे शयने काममासीताचारिके रत
योज्य शीघ्रं निवृत्तेऽन्य स्नेहोऽतिष्ठन्न कार्यकृत॥२१॥

थोडा चला फिराकर दस्त व लघुशङ्का साफ हो जानेपर सुखदायक, न बहुत ऊंची, न बहुत ऊंचे तकियेवाली शय्यापर रोगीको वाम करवट लिटा, दाहिना पैर समेट वाम पैर फैलाकर वैद्यको वाम हाथमें वस्ति लेकर दाहिने हाथसे दबाना चाहिये । वस्ति देनेके पहिले नेत्रमें तथा गुदामें स्नेह लगा लेना चाहिये तथा वस्तिका मुख फुला औषध भरकर बांध देना चाहिये । फिर हाथ न कपाते हुए न बहुत जल्दी न बहुत देरमें न बडे वेगसे न मन्द ही एक बारगी (आगे मुखकी बत्ती निकालकर) दबाना चाहिये तथा कुछ औषध रख छोडना चाहिये । क्योंकि शेषमें वायु रहती है । निरूहदानकी भी यही विधि है । इस प्रकार स्नेहवस्ति देनेपर १०० मात्रा उच्चारण कालतक समस्त अङ्ग फैलाकर उताने सोना चाहिये । इस प्रकार औषधकी शक्ति बढती है । इसके अनन्तर ३ वार धीरे धीरे हाथ, पैर समेटना व फैलाना चाहिये तथा तीन तीन वार पैरके तलुवो तथा चूतडोको ठोकना चाहिये, फिर ३ वार धीरे धीरे शय्या तथा कमर उठाना चाहिये तथा वस्ति देनेपर कम परिश्रम करना तथा कम बोलना चाहिये । बिछी हुई चारपाई पर सुखपूर्वक बैठना या सोना चाहिये । पर आचारका ध्यान रखना चाहिये । स्नेहवस्तिद्वारा प्रयुक्त स्नेह शीघ्र ही निकल जानेपर शीघ्र ही फिर स्नेहवस्ति देना चाहिये । क्योंकि स्नेह बिना कुछ देर रुके कार्यकर नहीं होता ॥ १४–२१ ॥

सम्यगनुवासितलक्षणम् ।

सानिल सपुरीषश्च स्नेह प्रत्येति यस्य वै ।
विना पीडा त्रियामस्थ स सम्यगनुवासित ॥ २२ ॥

जिसका स्नेह ९ घण्टेतक रहकर बिना पीडा किये वायु और मलके साथ निकलता है उसे ठीक अनुवासित समझना चाहिये ॥ २२ ॥

अनुवासनोत्तरोपचारः ।

क्वाथार्धमात्रया प्रातर्धान्यशुण्ठीजल पिबेत् ।
पित्तोत्तरे कदुष्णाम्भस्तावन्मात्र पिबेदनु ॥ २३ ॥
तेनास्य दीप्यते वह्निर्भक्ताकाङ्क्षा च जायते ।
अहोरात्रादपि स्नेह प्रत्यागच्छन्न दुष्यति ॥ २४ ॥
कुर्याद्वस्तिगुणांश्चापि जीर्णस्त्वल्पगुणो भवेत् ।
यस्य नोपद्रव कुर्यात्स्नेहवस्तिरनि सृत ॥ २५ ॥
सर्वोऽल्पो वा वृतो रौक्ष्यादुपेक्ष्य सविजानता ।

दूसरे दिन पडङ्गपानीय विधिसे सिद्ध धनियाँ और सोंठका जल क्वाथकी आधीमात्रामें देना चाहिये तथा पित्तकी प्रधानतामें केवल गुनगुना जल ही देना चाहिये । इससे अग्नि दीप्त होती तथा भोजनमें रुचि होती है । स्नेह यदि ९ घण्टेमें न आकर २४ घण्टेमें आ जावे तो भी कोई दोष नहीं होता और वस्तिके गुणोंको करता है । किन्तु स्नेह पचजानेपर गुण कम करता है । पर जिसका रूक्षताके कारण थोडा या सभी स्नेह न निकले उसकी उपेक्षा करनी चाहिये ॥ २३–२५ ॥–

स्नेहव्यापच्चिकित्सा ।

अनायान्तमहोरात्रात्स्नेहं सोपद्रवं हरेत् ॥ २६ ॥
स्नेहवस्तावनायाते नान्य स्नेहो विधीयते ।
अशुद्धस्य मलोन्मिश्र स्नेहो नैति यदा पुन ॥ २७ ॥
तदाङ्गसदनाध्मानशूला श्वासश्च जायते ।
पक्वाशयगुरुत्व च तत्र दद्यान्निरूहणम् ॥ २८ ॥

तीक्ष्णं तीक्ष्णौषधैरेव सिद्धं चाप्यनुवासनम्।
स्नेहवस्तिर्विधेयस्तु नाविशुद्धस्य देहिनः॥ २९॥
स्नेहवीर्यं तथाऽत्ते स्नेहो नानुविसर्पति।
अशुद्धमपि वातेन केवलेनाभिपीडितम्॥ ३०॥
अहोरात्रस्य कालेषु सर्वेष्वेवानुवासयेत्।
अनुवासयेत्तृतीयेऽह्नि पञ्चमे वा पुनश्च तम्॥ ३१॥
यथा वा स्नेहपक्तिः स्यादतोऽप्युल्बणमारुतान्।
व्यायामनित्यान्दीप्ताग्नींरूक्षांश्च प्रतिवासरम्॥ ३२॥
इतिस्नेहैस्त्रिचतुरैः स्निग्धे स्रोतोविशुद्धये।
निरूहं शोधन युञ्ज्यादस्निग्धे स्नेहनं तनो.॥ ३३॥
विष्टब्धानिलविण्मूत्रस्नेहो हीनेऽनुवासने।
दाहज्वरपिपासार्तिकरश्चात्यनुवासने॥ ३४॥

रातादिनमें वापिस न आनेवाले तथा उपद्रवयुक्त स्नेहको (सशोधनवस्तिद्वारा) निकाल देना चाहिये तथा स्नेहवस्तिके वापिस न आनेपर अन्य स्नेहवस्ति न देना चाहिये तथा जिसका संशोधन ठीक नहीं हुआ है ऐसे पुरुषका मलयुक्त स्नेह वापिस न आनेपर शरीरमे शिथिलता, पेटमें गुड़गुड़ाहट, शूल और श्वास उत्पन्न कर देता है। पक्वाशय भारी हो जाता है। ऐसी दशामे तीक्ष्ण निरूहणवस्ति अथवा तीक्ष्ण ओषधियोंसे सिद्ध स्नेहसे अनुवासनवस्ति देना चाहिये। जिसका ठीक शोधन नहीं हुआ उसे स्नेहवस्ति न देना चाहिये। क्योंकि ऐसी दशामे स्नेहकी शक्ति नष्ट हो जाती है अतएव स्नेह फैलता नहीं। परन्तु अशुद्ध पुरुष भी यदि केवल वायुसे पीडित हो तो उसे रातादिनमें किसी समय अनुवासन दे देना चाहिये। फिर उसे तीसरे या पांचवे दिन अनुवासन कराना चाहिये। अथवा जैसे स्नेहका परिपाक हो वैसे ही अनुवासन कराना चाहिये। अतएव जिनके वायु अधिक बढा हुआ है उन्हे तथा कसरत करनेवालों, दीप्ताग्नि और रूक्ष पुरुषोंको प्रतिदिन अनुवासन कराना चाहिये। इस प्रकार तीन चार स्नेहोंसे स्निग्ध हो जानेपर स्रोतोंकी शुद्धिके लिये शोधन निरूहण वस्ति देना चाहिये और यदि फिर भी स्नेहन ठीक न हुआ हो तो स्नेहनवस्ति ही देना चाहिये। हीन अनुवासनमे वायु, मल और मूत्र तथा स्नेह स्तब्ध हो जाता है तथा अति अनुवासनमें दाह, ज्वर, प्यास और बेचैनी होती है॥ २६-३४॥

विशेषोपदेशः।

स्नेहवस्तिं निरूहं वा नैकमेवातिशीलयेत्।
स्नेहात्पित्तकफोत्क्लेशो, निरूहात्पवनाद्भयम्॥ ३५॥

स्नेहवस्ति अथवा निरूहणवस्ति एक ही अधिक न सेवन करना चाहिये। केवल स्नेहवस्ति ही लेनेसे पित्त कफकी वृद्धि तथा केवल निरूहणमे वायुसे भय होता है॥ ३५॥

नानुवास्याः।

अनास्थाप्या येऽभिधेया नानुवास्यांश्च ते मताः।
विशेषतस्त्वमी पाण्डुकामलामेहपीनसाः॥ ३६॥
निरन्नप्लीहविड्भेदिगुरुकोष्ठाढ्यमारुताः॥ ३७॥
पीते विषे गरेऽपच्या श्लीपदी गलगण्डवान्।

जिन्हे आस्थापनका निषेध आगे लिखेंगे उन्हे अनुवासन भी न करना चाहिये और विशेषकर पाण्डु, कामला, प्रमेह और पीनसवाले, जिन्होंने भोजन नहीं किया उन्हें तथा प्लीहा, अतीसारयुक्त, गुरुकोष्ठ कफोदरवाले, अभिष्यन्दी, बहुत मोटे, क्रिमिकोष्ठ तथा ऊरुस्तम्भवाले तथा विष पिये हुए अथवा कृत्रिमविष, अपची, श्लीपद और गलगण्डवाले अनुवासनके अयोग्य हैं॥ ३६॥ ३७॥

अनास्थाप्याः।

अनास्थाप्यस्त्वतिस्निग्धः क्षतोरस्को भृशं कृशः॥ ३८॥
आमातिसारी वमिमान्संशुद्धो दत्तनावनः।
श्वासकासप्रसेकार्शोहिक्काध्मानाल्पवह्नय॥ ३९॥
शूनपायुः कृताहारो बद्धच्छिद्रदकोदरी।
कुष्ठी च मधुमेही च मासान्सप्त च गर्भिणी॥ ४०॥
न चैकान्तेन निर्दिष्टेऽप्यत्राभिनिविशेद् बुधः।
भवेत्कदाचित्कार्या या विरुद्धापि मता क्रिया॥ ४१॥
छर्दिहृद्रोगगुल्मार्ते वमनं सुचिकित्सिते।
अवस्थां प्राप्य निर्दिष्टं कुष्ठिनां वस्तिकर्म च॥ ४२॥

अतिस्निग्ध, उरःक्षती, बहुत पतले, आमातिसारी वमनवाले, सशुद्ध, नस्य लेनेवाले, श्वास, कास, हल्लास, प्रसेक (मुखसे पानी आना) अर्श, हिक्का, आध्मान, मन्दाग्नि तथा गुदशूलसे पीडित, आहार किये हुए, बद्धोदर, छिद्रोदर और दकोदरवाले तथा कुष्ठी व मधुमेही तथा सात मासकी गर्भिणी इन्हे आस्थापनवस्ति न देनी चाहिये, किंतु जिनके लिये आस्थापनका निषेध किया गया है, उनके लिये सर्वथा निषेध ही न मान लेना चाहिये। क्योंकि विरुद्ध क्रिया भी कभी अत्यावश्यक होनेपर अनुकूल अतएव कर्तव्य हो जाती है।यथा अवस्थाविशेषमें छर्दि,हृद्रोग व गुल्मवालोंके लिये वमन और कुष्ठवालोके लिये वस्ति कही गयी है॥३८-४२॥

इत्यनुवासनाधिकारः समाप्तः।

अथ निरूहाधिकारः।

सामान्यव्यवस्था।

अनुवास्य स्निग्धतनुं तृतीयेऽह्नि निरूहयेत्।
मध्याह्ने किञ्चिदावृत्ते प्रयुक्ते बलिमङ्गले ॥ १ ॥
अभ्यक्तस्वेदितोत्सृष्टमलं नातिबुभुक्षितम्।
मधुस्नेहनकल्काख्यकषायावापतः क्रमात् ॥ २ ॥
त्रीणि षड् द्वे दश त्रीणि पलान्यनिलरोगिषु।
पित्ते चत्वारि चत्वारि द्वे द्विपञ्चचतुष्टयम् ॥ ३ ॥
षड् त्रीणि द्वे दश त्रीणि कफे चापि निरूहणम्।

अनुवासनवस्तिद्वारा स्निग्ध पुरुषको तीसरे दिन निरूहण वस्ति देना चाहिये। उसका क्रम यह है कि कुछ दो पहर लौट जानेपर वलि मङ्गलाचरण आदि कर मालिश तथा स्वेदन करा मलत्याग किये हुए पुरुषको जिसे अधिक भूख न हो उसे आस्थापन वस्ति देना चाहिये आस्थापन वस्तिमें वातरोगीके लिये शहद १२ तो०, स्नेह २४ तो०, कल्क ८ तो०, क्वाथ ४० तो० और प्रक्षेप्र १२ तो० छोडना, पित्तरोगीके लिये शहद १६ तो०, स्नेह १६ तो०, कल्क ८ तो०, क्वाथ ४० तोला और आवाप १६ तोला तथा कफज रोगमें शहद २४ तो०, स्नेह १२ तो०, कल्क ८ तोला, क्वाथ ४० तो० और प्रक्षेप १२ तोला छोडकर देना चाहिये ॥ १-३ ॥-

द्वादशप्रसृतिको वस्तिः।

दत्त्वादौ सैन्धवस्याक्षं मधुनः प्रसृतद्वयम् ॥ ४ ॥
विनिर्मथ्य ततो दद्यात्स्नेहस्य प्रसृतद्वयम्।
एकीभूते तत स्नेहे कल्कस्य प्रसृतं क्षिपेत् ॥ ५ ॥
संमूर्च्छिते कषाये तु पञ्चप्रसृतसंमितम्।
वितरेत्तु यथावापमन्ते द्विप्रसृतोन्मितम् ॥ ६ ॥
वस्त्रपूतस्तथोष्णाम्बुकुम्भीवाष्पेण तापित.।
एवं प्रकल्पितो वस्तिर्द्वादशप्रसृतो भवेत् ॥ ७ ॥

पहिले १ तोला महीन पिसा सेंधानमक किसी पत्थर य कांचके पात्रमें छोड १६ तो० शहद मिला मथकर १६ तो० स्नेह मिलाकर फिर मथना चाहिये। इस प्रकार स्नेह मिल जानेपर ८ तोला कल्क छोडकर फिर मथना चाहिये। फिर कल्क मिल जानेपर क्वाथ ४० तोला छोडना चाहिये। फिर अन्तमें १६ तो० प्रक्षेप छोडना चाहिये। फिर इसे महीन कपडेसे छानकर गरम जल भरे हुए घडेके ऊपर रखकर उसी जलकी भाफमें गरम करना चाहिये। इस प्रकार सिद्ध वस्ति द्वादशप्रसृतिक कही जाती है। इसमें १ तो० सेंधवको छोडकर शेष १२ प्रसृत (९६ तो०) द्रव्य होते हैं ॥ ४-७ ॥

सुनियोजितवस्तिलक्षणम्।

न धावत्यौषधं पाणिं न तिष्ठत्यवलिप्य च।
न करोति च सीमन्तं स निरूहः सुयोजितः ॥ ८ ॥

औषध हाथोंमें न चिपके तथा लिपकर एक जगह बैठ न जाय और न किनारे बनें। यह सुनियोजित वस्तिके लक्षण हैं ॥ ८ ॥

वस्तिदानविधिः।

पूर्वोक्तेन विधानेन गुदे वस्तिं निधापयेत्।
त्रिंशन्मात्रास्थितो वस्तिस्ततस्तूत्कटको भवेत् ॥ ९ ॥
जानुमण्डलमावेष्ट्य कुर्याच्छोटिकया युतम्।
निमिषोन्मेषकालो वा तावन्मात्रा स्मृता बुधैः ॥ १० ॥
द्वितीयं वा तृतीयं वा चतुर्थं वा यथार्थतः।
सम्यङ् निरूढलिङ्गे तु प्राप्ते वस्तिं निवारयेत् ॥ ११ ॥

पूर्वोक्त (अनुवासनोक्त) विधानसे गुदामें वस्ति देना चाहिये। वस्तिदानके अनन्तर ३० मात्रा उच्चारणकालतक वैसे ही रहकर फिर उत्कुरुवा बैठना चाहिये। जानुमण्डलके ऊपर हाथ घुमाकर चुटकी बजाना या निमिषोन्मेष (पलक खोलना बन्द करना) के समान कालको १ मात्राकाल कहते हैं। इस प्रकार ३० मात्रा उच्चारण कालतक उत्कट बैठना चाहिये। इसके अनन्तर आवश्यकतानुसार दूसरी तीसरी या चौथी वस्ति देना चाहिये। सम्यङ् निरूढ लक्षण प्रगट होनेपर वस्ति देना बन्द कर देना चाहिये ॥ ९-११ ॥

सुनिरूढलक्षणम्।

प्रसृष्टविण्मूत्रसमीरणत्व-
रुच्यग्निवृद्ध्याशयलाघवानि
रोगोपशान्तिः प्रकृतिस्थता च
बलं च तत्स्यात्सुनिरूढलिङ्गम् ॥ १२ ॥
अयोगश्चातियोगश्च निरूहेऽस्ति विरिक्तवत् ॥ १३ ॥

विष्ठा, मूत्र और वायुका शुद्ध होना, रुचि, अग्निवृद्धि और आशयोंका हल्का होना, रोगकी शान्ति, स्वाभाविक अवस्थाकी प्राप्ति और बलका होना सुनिरूढके लक्षण होते हैं तथा निरूहमें अयोग और अतियोग विरिक्तके समान समझना चाहिये ॥ १२॥१३ ॥

निरूहमर्यादा।

स्निग्धोष्ण एकः पवने समांस
द्वौ स्वादुशीतौ पयसा च पित्ते ॥ १४ ॥
त्रयः समूत्रा कटुकोष्णरूक्षाः
कफे निरूहा न परं विधेया.।
एकोऽपकर्षत्यनिलं स्वमार्गात्
पित्तं द्वितीयस्तु कफं तृतीयः ॥ १५ ॥

वायुमें स्नेहयुक्त, उष्ण, मांससहित १ वस्ति, पित्तमें मीठे, शीतल पदार्थों तथा दूधके साथ २ वस्ति तथा कफमें मूत्रके सहित कटु तथा रूक्ष पदार्थोंसे निर्मित गरम कर ३ वस्ति देना चाहिये। एकवार वस्ति दिया गया वायुको (वाताशय समीप होनेके कारण) अपने स्थानसे निकालता, २ वार वस्ति देनेपर पित्तको (पित्ताशय, वाताशयकी अपेक्षा दूर होनेके कारण) निकालता तथा ३ वार वस्ति देनेपर कफ अपने आशयसे निकलता है। इसके अनन्तर वस्ति देना आवश्यक नहीं १४–१५

निरूहव्यापच्चिकित्सा।

अनायान्तं मुहूर्तान्ते निरूह शोधनैर्हरेत्।
निरूहैरेव मतिमान्क्षारमूत्राम्लसंयुतै ॥ १६ ॥
विगुणानिलविष्टब्धश्चिरं तिष्ठन्निरूहण.।
शूलारतिज्वराटोपान्मरण वा प्रयच्छति ॥ १७ ॥
न तु भुक्तवते देयमास्थापनमिति स्थितिः।
आमं तद्धि हरेद्भुक्तं छर्दिदोषाश्च कोपयेत् ॥ १८ ॥
आवस्थिक क्रमश्चापि मत्वा कार्यो निरूहणे।
अतिप्रपीडितो वस्तिरतिक्रम्याशयं तत.॥ १९ ॥
वातेरितो नासिकाभ्या मुखतो वा प्रपद्यते।
छर्दिहृल्लासमूर्च्छादीन्प्रकुर्याद्दाहमेव च ॥ २० ॥
तत्र तूर्णं गलापीडं कुर्याच्चाप्यवधूननम्।
शिर.कायविरेकौ च तीक्ष्णौ सेकांश्च शीतलान् ॥ २१॥

दो घडीतक वस्तिद्रव्य वापिस न आनेपर क्षार, मूत्र तथा काञ्जीयुक्त शोधन निरूहण वस्तियों द्वारा निकाल देना चाहिये। क्योंकि विकृत वायुसे रुका हुआ निरूहण द्रव्य शूल, बेचैनी, ज्वर, अफारा और मृत्यु-तक कर देता है और भोजन किये हुएको भी वस्ति नहीं देना चाहिये। क्योंकि वह आमभोजनको ही निकालता तथा छर्दि आदि दोष उत्पन्न कर देता है तथा रोगीकी अवस्था देखकर जैसा उचित प्रतीत हो व्यवस्था करनी चाहिये, तथा वस्ति देते समय अधिक जोरसे वस्ति न दवाना चाहिये, नहीं तो वह वस्तिद्रव्य आशयोंको लाघकर नासिका अथवा मुखसे निकलने लगता है। उस समय वमन, मिचलाई, मूर्छा और दाह आदि कर देता है। उसी समय शीघ्र ही धीरेसे गला दवाना तथा रोगीको हिला देना चाहिये तथा तीक्ष्ण शिरोविरेचन, कायविरेचन और शीतल सेक करना चाहिये ॥ १६–२१ ॥

सुनिरूढे व्यवस्था।

सुनिरूढमथोष्णाम्बुस्नात भुक्तरसौदनम्।
यथोक्तेन विधानेन योजयेत्स्नेहवस्तिना ॥ २२ ॥
तदहस्तस्य पवनाद्भयं वलवदिष्यते।
रसौदनस्तेन शस्तस्तदहश्चानुवासनम् ॥ २३ ॥

ठीक निरूहण हो जानेपर गरम जलसे स्नान करा मास व भातका भोजन कराना चाहिये। फिर यथोक्त विधिसे स्नेहवस्ति देना चाहिये। उस दिन उसे वायुसे विशेष भय रहता है अतएव उसी दिन उसे मांस और भातका भोजन कराना तथा अनुवासन वस्ति देना चाहिये ॥ २२ ॥ २३ ॥

अर्द्धमात्रिको वस्तिः।

दशमूलीकषायेण शताह्वाक्षं प्रयोजयेत्।
सैन्धवाक्षं च मधुनो द्विपलं द्विपलं तथा ॥ २४ ॥
तैलस्य पलमेकं तु फलस्यैकत्र योजयेत्।
अर्धमात्रिकसंज्ञोऽयं वस्तिर्देयो निरूहवत् ॥ २५ ॥
न च स्नेहो न च स्वेदः परिहारविधिर्न च।
आत्रेयानुमतो ह्येष सर्वरोगनिवारण' ॥ २६ ॥
यक्ष्मघ्नश्च क्रिमिघ्नश्च शूलघ्नश्च विशेषत।
शुक्रसञ्जननो ह्येष वातशोणितनाशन।
वलवर्णकरो वृष्यो वस्ति पुसवनः पर ॥ २७ ॥

दशमूलके काढेमे सौंफका चूर्ण व सेंधानमकका चूर्ण प्रत्येक १ तोला, शहद ८ तोला, तैल ८ तोला तथा मैनफल ४ तोला मिलाकर निरूहके समान ही देना

---

१ यद्यपि प्रथम " चतुर्थं वा प्रयोजयेत् " से ४ वस्तितकका विधान किया है। पर यहा३से अधिक वस्ति देना व्यर्थ वताते हैं यह परस्पर विरोधी होते हुए भी विरुद्ध न समझना चाहिये। प्रथमका विधान ३ वस्तियोंसे जो नहीं शुद्ध हुआ उसके लिये विशेष वचन है उत्तरका सामान्य वचन है।

चाहिये । इसे अर्द्धमात्रिकवस्ति कहते हैं । यह आत्रेयसे अनुमत समग्र रोग नष्ट करनेवाला है तथा विशेषकर यक्ष्मा, क्रिमि और शूलको नष्ट करता, शुक्रको उत्पन्न करता, वातरक्त नष्ट करता तथा बल, वर्ण उत्तम बनाता और वृष्य तथा सन्तान उत्पन्न करनेवाला है॥२४-२७॥

अनुक्तौषधग्रहणम् ।

स्नेहं गुड मासरसः पयश्च
अम्लानि मूत्र मधुसैन्धवे च ।
एतान्यनुक्तानि च दापयेच्च
निरूहयोगे मदनात्फल च ॥ २८ ॥
लवण कार्षिक दद्यात्पलमेकं तु मादनम् ।
वाते गुडः सिता पित्ते कफे सिद्धार्थकादय ॥ २९ ॥

निरूहणके प्रयोगमे न कहनेपर भी स्नेह, गुड, मासरस, दूध, काञ्जी, गोमूत्र, शहद, सेंधानमक और मैनफल छोडना चाहिये । सेंधानमककी मात्रा १ तो०, मैनफल ४ तोला छोडना चाहिये तथा वायुमें गुड, पित्तमें मिश्री और कफमे सरसों आदि मिलाकर निरूह वस्ति देना चाहिये ॥ २८ ॥ २९ ॥

अथ क्षारवस्तिः ।

सैन्धवाक्ष समादाय शताह्वाक्षं तथैव च ।
गोमूत्रस्य पलान्यष्टावम्लिकाया पलद्वयम् ॥ ३० ॥
गुडस्य द्वे पले चैव सर्वमालोड्य यत्नत ।
वस्त्रपूत सुखोष्णं च वस्ति दद्याद्विचक्षण ॥ ३१ ॥
शूल विट्सङ्गमानाह मूत्रकृच्छ्रं च दारुणम् ।
क्रिम्युदावर्तगुल्मादीन्सद्यो हन्यान्निषेवित ॥ ३२ ॥

सेंधानमक १ तोला, सौंफ १ तो०, गोमूत्र ३२ तोला, इमली ८ तोला, गुड ८ तो० सब यत्नसे एकमें मिला कपडेसे छान कुछ गरम कर वस्ति देना चाहिये । यह वस्ति शूल, मलकी रुकावट, अफारा, कठिन मूत्रकृच्छ्र, क्रिमिरोग, उदावर्त, गुल्म आदिरोगोको सेवन करनेसे शीघ्र ही नष्ट करता है ॥ ३०–३२ ॥

---

१ इसमें यद्यपि क्वाथकी मात्रा नहीं लिखी पर इसे अर्द्धमात्रिक कहते हैं, अतः पूर्वोक्त मानसे आधा क्वाथ अर्थात् २० तोला छोडना चाहिये, तथा नीचे लिखे अनुक्त औषध भी (गुडआदि) इतनी मात्रामे मिलाना चाहिये, जिसमें सब मिलकर ४८ तोला वस्तिका मान हो जाय अतः ६ तोला गुड आदि मिलकर होना चाहिये । क्योंकि ४८ तोला उपरोक्त द्रव्य हो जाते हैं ।

वैतरणवस्तिः ।

पलशुक्तिकर्षकुडवैरम्लीगुडसिन्धुजन्मगोमूत्रैः ।
तैलयुतोऽय वस्ति शूलानाहामवातहरः ॥ ३३ ॥
वैतरण. क्षारवस्तिर्भुक्ते चापि प्रदीयते ॥ ३४ ॥

इमली ४ तोला, गुड २ तोला, सेंधानमक १ तो०, गोमूत्र ३२ तोला तथा थोडासा तिलतैल मिलाकर दिया गया वस्ति वैतरणवस्ति कहा जाता है । यह वस्ति शूल आनाह और आमवातको नष्ट करता है । वैतरणवस्ति व क्षारवस्ति भोजन कर लेनेपर भी दी जाती है।३३।३४।

पिच्छिलवस्तयः ।

बदर्यैरावतीशेलुशाल्मलीधन्वनाङ्कुराः ।
क्षीरसिद्धा सुसिद्धा स्युःसास्रा पिच्छिलसंज्ञिता'३५
वाराहमाहिषौरभ्रवैडालैणेयकौक्कुटम् ।
सद्यस्कमसृगाजं वा देय पिच्छिलवस्तिषु ॥ ३६ ॥
चरकाद्यै समुद्दिष्टा वस्तयो ये सहस्रशः ।
व्यवहारो न तैः प्रायो निबद्धा नात्र तेन ते ॥ ३७ ॥

बेर, नागबला, लसोढ़ा, सेमर तथा धामिनके नये अङ्कुर इनमेसे किसी एक अथवा सबको अष्टगुण दूध तथा २४ गुण जलमें मिला (अत्र दुग्धस्याष्टेको भागः त्रयो भागाः जलस्येति शिवदासः) क्षीरपाकविधिसे पकाकर छानना चाहिये । फिर उसमे रक्त मिलाकर देना चाहिये । इन्हे पिच्छिलवस्तिया कहते हैं । सुअर, भैंसा, भेड, बिल्ली, कृष्णमृग, मुर्गा अथवा बकरा इनमेसे किसी एकका ताजा रक्त छोडना चाहिये ।(इसकी मात्रा अर्द्धमात्रिक वस्तिके समान देना चाहिये) चरकादिमे जो हजारों वस्तियाँ लिखी गयी है उनसे प्रायः व्यवहार नहीं होता अतः उनका वर्णन यहा नहीं किया गया ॥ ३५–३७ ॥

वस्तिगुणः ।

वस्तिर्वय स्थापयिता सुखायुर्बलाग्निमेधास्वरवर्णकृच्च ।
सर्वार्थकारी शिशुवृद्धयूना निरत्यय सर्वगदापहश्च ३८

वस्ति अवस्था स्थापित रखता तथा सुख, आयु, बल, अग्नि, मेधा और स्वर तथा वर्णको उत्तम बनाता, बालक, वृद्ध तथा जवान सबको बराबर लाभ करनेवाला, कोई आपत्ति न करनेवाला तथा समस्त रोगोंको नष्ट करता है ॥ ३८ ॥

इति निरूहाधिकारः समाप्तः ।

अथ नस्याधिकारः ।

नस्यभेदाः ।

प्रतिमर्शोऽवपीडश्च नस्य प्रधमनं तथा ।
शिरोविरेचनं चेति नस्तः कर्म च पञ्चधा ॥ १ ॥

प्रतिमर्श, अवपीड नस्य, प्रधमन और शिरोविरेचन ये नस्यके पाँच भेद हैं ॥ १ ॥

प्रतिमर्शविधानम् ।

ईषदुच्छिङ्घनात्स्नेहो यावान्वक्त्रं प्रपद्यते ।
नस्तो निषिक्तं तं विद्यात्प्रतिमर्शं प्रमाणतः ॥ २ ॥
प्रतिमर्शस्तु नस्यार्थं करोति न च दोषवान् ।
नस्तः स्नेहाङ्गुलिं दद्यात्प्रातर्निशि च सर्वदा ॥ ३ ॥
न चोच्छिङ्घेदरोगाणां प्रतिमर्शः स दार्ढ्यकृत् ।
निशाहर्भुक्तवान्ताहःस्वप्नाध्वश्रमरेतसाम् ॥ ४ ॥
शिरोऽभ्यञ्जनगण्डूषप्रस्रावाञ्जनवर्चसाम् ।
दन्तकाष्ठस्य हास्यस्य योज्योऽन्तेऽसौ द्विबिन्दुकः ॥ ५ ॥

जितना स्नेह कुछ जोरसे सूँघनेमे मुखमे पहुँच जाय उसे प्रतिमर्शका प्रमाण समझना चाहिये । प्रतिमर्शमे विशेषता यह है कि वह नस्यके गुणोंको करता है और कोई आपत्ति नहीं करता । प्रातःकाल तथा सायंकाल स्नेहमे अंगुलि डुबोकर दो बूंद नाकमें छोडना चाहिये और उसे ऊपर खींचकर थूकना चाहिये । यह आरोग पुरुषोंको बलवान् बनाता है । इसे रात्रि दिनके भोजन, वमन, दिननिद्रा, मार्गश्रम, शुक्रत्याग, शिरोऽभ्यङ्ग, गण्डूष, प्रसेक (मुखमे पानी आने), अञ्जन, मलत्याग, दन्तधावन तथा हँसनेके अनन्तर दो बिंदुकी मात्रामें प्रयुक्त करना चाहिये ॥ २–५ ॥

अवपीडः ।

शोधनः स्तम्भनश्च स्यादवपीडो द्विधा मतः ।
अवपीड्य दीयते यस्मादवपीडस्ततस्तु सः ॥ ६ ॥

अवपीडक नस्य शोधन व स्तम्भनभेदसे दो प्रकारका होता है यह अवपीडित (दवा निचोड) कर दिया जाता है अतः इसे अवपीडक कहते हैं ॥ ६ ॥

नस्यम् ।

स्नेहार्थं शून्यशिरसां ग्रीवास्कन्धोरसां तथा ।
बलार्थं दीयते स्नेहो नस्तः शब्दोऽत्र वर्तते ॥ ७ ॥
नस्यस्य स्नैहिकस्याथ देयास्त्वष्टौ तु बिन्दवः ।
प्रत्येकशो नस्तकयोर्नृणामिति विनिश्चयः ॥ ८ ॥
शुक्तिश्च पाणिशुक्तिश्च मात्रास्तिस्रः प्रकीर्तिताः ।
द्वात्रिंशद्बिन्दवश्चात्र शुक्तिरित्यभिधीयते ॥ ९ ॥
द्वे शुक्ती पाणिशुक्तिश्च देयात्र कुशलैर्नरैः ।
तैलं कफे च वाते च केवले पवने वसाम् ॥ १० ॥
दद्यान्नस्तः सदा पित्ते सर्पिर्मज्जा समारुते ।

जो स्नेह नासिका द्वारा शून्य मस्तिष्कवालोंके लिये तथा ग्रीवा, स्कन्ध और छातीके बलार्थ और स्नेहनार्थ दिया जाता है उसे नस्य कहते है । स्नैहिक नस्यकी मात्रा ८ बिन्दु प्रत्येक नासापुटमे छोडनेकी है तथा सामान्यतः शुक्ति, पाणिशुक्ति और पूर्वोक्त प्रत्येक नासापुटमें ८ बिन्दु इस प्रकार नस्यकी ३ मात्राएँ है । ३२ बिंदु शुक्ति तथा ६४ बिन्दु पाणिशुक्ति कही जाती है । कफ और कफवातजरोगमे तैल, केवल वायुमे चर्बी और वायुसहित पित्तमे घी और मज्जाकी नस्य देनी चाहिये ॥ ७–१० ॥

प्रधमनम् ।

ध्मापनं रेचनश्चूर्णो युञ्ज्यात्तं मुखवायुना ॥ ११ ॥
षडङ्गुलद्विमुखया नाड्या भेषजगर्भया ।
स हि भूरितरं दोषं चूर्णत्वादपकर्षति ॥ १२ ॥

ध्मापन रेचनचूर्णके नस्यको कहते हैं । इसके प्रयोगकी विधि यह है कि एक ६ अंगुल लंबी पोली नली लेकर औषध भरना चाहिये फिर उस नलीका एक शिरा मुखमे और दूसरी शिरा नासिकामें लगाकर मुखकी वायुसे फूंक देना चाहिये । यह चूर्ण होनेके कारण बहुत दोष निकालता है ॥ ११ ॥ १२ ॥

शिरोविरेचनम् ।

शिरोविरेचनद्रव्यैः स्नेहैर्वा तैः प्रसाधितैः ।
शिरोविरेचनं दद्यात्तेषु रोगेषु बुद्धिमान् ॥ १३ ॥
गौरवे शिरसः शूले जाड्ये स्यन्दे गलामये ।
शोषगण्डक्रिमिग्रन्थिकुष्ठापस्मारपीनसे ॥ १४ ॥
स्निग्धस्विन्नोत्तमाङ्गस्य प्राक्कृतावश्यकस्य च ।
निवातशयनस्थस्य जत्रूर्ध्वं स्वेदयेत्पुनः ॥ १५ ॥
अथोत्तानर्जुदेहस्य पाणिपादे प्रसारिते ।
किञ्चिदुन्नतपादस्य किञ्चिन्मूर्धनि नामिते ॥ १६ ॥
नासापुटं पिधायैकं पर्यायेण निषेचयेत् ।
उष्णाम्बुतप्तं भैषज्यं प्रणाड्या पिचुना तथा ॥ १७ ॥
दत्ते पादतलस्कन्धहस्तकर्णादि मर्दयेत् ।
शनैरुच्छिङ्घ्य निष्ठीवेत्पार्श्वयोरुभयोस्ततः ॥ १८ ॥
आभेषजक्षयाद्देवं द्विस्त्रिर्वा नस्यमाचरेत् ।
स्नेहं विरेचनस्यान्ते दद्याद्दोषाद्यपेक्षया ॥ १९ ॥

त्र्यहात्त्र्यहाच्च सप्ताहं स्नेहकर्म समाचरेत् ।
एकाहान्तरितं कुर्याद्रेचनं शिरसस्तथा ॥ २० ॥

शिरोविरेचन द्रव्य अथवा उन्हीं द्रव्योंसे सिद्ध स्नेहोंसे वक्ष्यमाण (शिरोविरेचनसाध्यरोगोंमें) शिरोविरेचन देना चाहिये । शिरोविरेचनसे शिरका भारीपन, पीडा, जडता, अभिष्यन्द, गलरोग, शोथ, गलगण्ड, क्रिमि, ग्रन्थि, कुष्ठ, अपस्मार और पीनसरोग नष्ट होते हैं । उत्तमांगका स्नेहन, स्वेदन कर पहिले मलमूत्रादि त्याग कर वातरहित स्थानमें जत्रुसे ऊपर स्वेदन करना चाहिये। इसके अनन्तर उत्तान सीधी देह सुला तथा पैर कुछ ऊँचे और शिर कुछ नीचे कर एक नासापुट बद कर दूसरेमें फिर दूसरा बद कर पहिलेमें पर्यायसे उष्ण-जलमें गरम की हुई औषधि नली अथवा फोहासे छोडना चाहिये । औषध छोड देनेपर पैरके तलुव, कंधे, हाथ और कान आदिका मर्दन करना चाहिये । फिर धीरेसे खींचकर दोनों ओर (जिधर सुविधा हो) थूकना चाहिये । जबतक औषधका अंश साफ न हो जावे । इस प्रकार दो तीन बार नस्य देना चाहिये और विरेचनके अनन्तर दोषादिके अनुसार स्नेहन नस्य लेना चाहिये । इस प्रकार तीसरे दिन विरेचन लेना चाहिये । बीचमें एक दिन स्नेहननस्य दूसरे दिन विरेचन इस प्रकार ७ बारतक विरेचननस्यका प्रयोग करना चाहिये॥१३-२०

सम्यक्स्निग्धादिलक्षणम् ।

सम्यक्स्निग्धे सुखोच्छ्वासस्वप्नबोधाक्षिपाटवम् ।
रूक्षेऽक्षिस्तब्धता शोषो नासास्ये मूर्धशून्यता ॥२१॥
स्निग्धेऽतिकण्डूगुरुताप्रसेकारुचिपीनसाः ।
सुविरिक्तेऽक्षिलघुतावक्त्रस्वरविशुद्धयः ॥ २२ ॥
दुर्विरिक्ते गदोद्रेकः क्षामतातिविरेचिते ।

ठीक स्नेहन हो जानेपर सुखपूर्वक उच्छ्वास, निद्रा, होश और नेत्रोंकी शक्ति प्राप्त होती है । रूक्षणमें (सम्यक् स्नेहन न होनेमें) नेत्रोंकी जकडाहट नासा व मुखमें शोष तथा मस्तकशून्यता उत्पन्न होती है तथा अतिस्नेहनमें खुजली, भारीपन, मुखसे पानी आना, अरुचि और पीनसरोग उत्पन्न हो जाते हैं तथा सम्यग्विरेचन हो जानेपर नेत्र हल्के तथा मुख और स्वर शुद्ध होते हैं । दुर्विरेचनमें रोगकी वृद्धि तथा अतिविरेचनमें शुष्कता होती है ॥ २१॥ २२ ॥-

नस्यानर्हाः ।

तोयमद्यगरस्नेहपीतानां पातुमिच्छताम् ॥ २३ ॥
भुक्तभक्तशिरःस्नातस्नातुकामसुतासृजाम् ।
नवपीनसरोगार्तसूतिकाश्वासकासिनाम् ॥ २४ ॥
शुद्धानां दत्तबस्तीनां तथानार्तवदुर्दिने ।
अन्यत्रात्ययिके व्याधौ नैषां नस्यं प्रयोजयेत् ॥ २५ ॥
न नस्यमूनसप्ताब्दे नातीताशीतिवत्सरे ।

जिन्होंने जल, शराब, कृत्रिम विष अथवा स्नेहपान किया है अथवा जिनकी पीनेकी इच्छा है अथवा जिन्होंने भात खाया या शिरसे स्नान किया है । या स्नान करनेकी इच्छा है तथा जिनका रक्त निकाला गया है तथा नये जुखामसे पीडित व सूतिका स्त्री तथा श्वास, कासवाले तथा शुद्ध (वमन विरेचन द्वारा) तथा जिन्होंने वस्ति ली है तथा अनार्तव दुर्दिन (वर्षाकालसे अतिरिक्त मेघोंसे आच्छन्न गगनमण्डलयुक्त दिन) में परमावश्यकताके सिवाय नस्य न देना चाहिये तथा ७ वर्षके पहिले और ८० वर्षके अनन्तर भी नस्य न देना चाहिये ॥ २४ ॥ २५ ॥-

धूमादिकालनिर्णयः ।

न चोनद्वादशे धूमः कवलो नोनपञ्चमे ॥ २६ ॥
न शुद्धिरूनदशमे न चातिक्रान्तसप्ततौ ।
आजन्ममरणं शस्तः प्रतिमर्शस्तु बस्तिवत् ॥ २७ ॥

बारह वर्षसे कम अवस्थामें धूमपान, पांच वर्षसे कम अवस्थामें कवलधारण तथा दश वर्षसे प्रथम और ७० वर्षके बाद शुद्धि न करना चाहिये । पर प्रतिमर्श वस्तिके समान जन्मसे मरण पर्यन्त हितकर है ।(वमन, विरेचन, अनुवासन वस्ति, आस्थापन बस्ति और नस्य यह पञ्चकर्म कहे जाते हैं) ॥ २६ ॥ २७ ॥

इति नस्याधिकारः समाप्तः ।



अथ धूमाधिकारः ।

धूमभेदाः ।

प्रायोगिकः स्नैहिकश्च धूमो वैरेचनस्तथा ।
कासहरो वामनश्च धूमः पञ्चविधो मतः ॥ १ ॥

प्रायोगिक, स्नैहिक, वैरेचन, कासहर तथा वमन करानेवाला पांच प्रकारका धूम होता है ॥ १ ॥

धूमनेत्रम् ।

ऋजुत्रिकोपफलितं कोलास्थ्यग्रप्रमाणितम् ।
बस्तिनेत्रसमद्रव्यं धूमनेत्रं प्रशस्यते ॥ २ ॥
साधर्म्यंशयुत पूर्णो हस्तः प्रायोगिकादिषु ।
नेत्रं कासहरे त्र्यंशहीनं शेषे दशाङ्गुलम् ॥ ३ ॥

वस्तिनेत्रके समान द्रव्यो (सोना, चाँदी आदि) से सीधा ३ स्थानोंसे घूमा हुआ तथा अग्रभागमे बेरकी गुठलीके बराबर छिद्रवाला धूमनेत्र उत्तम कहा जाता है तथा नेत्रकी लम्बाई प्रायोगिक धूमके लिये ३६ अंगुल, स्नैहिकके लिये ३२ अगुल, वैरेचनिकके लिये २४ अंगुल और कासहरके लिये १६ अगुल तथा वामक धूमके लिये १० अगुल होनी चाहिये ॥ २ ॥ ३ ॥

धूमपानविधिः ।

ओषधैर्वर्तिकां कृत्वा शरगर्भां विशोषिताम् ।
विगर्भामग्निसम्प्लुष्टां कृत्वा धूमं पिबेन्नर ॥ ४ ॥
वक्त्रेणैव वमेद् धूमं नस्तो वक्त्रेण वा पिबन् ।
उर कण्ठगते दोषे वक्रेण धूममापिवेत् ॥ ५ ॥
नासया तु पिबेद्दोषे शिरोघ्राणाक्षिसंश्रये ।

सींकको भिगोकर उसके ऊपर ओषधियोंके कल्कका लेप कर वत्ती बना सुखा सींक अलग निकाल कर वत्ती धूमनेत्रमें रख अग्निसे जलाकर धूम पीना चाहिये । रोगके अनुसार धूम नाक अथवा मुखसे पीना चाहिये पर धूमका वमन मुखसे ही करना चाहिये । उर तथा कण्ठगत दोषोंमें मुखसे धूम पीना चाहिये । तथा शिर, नासिका और नेत्रोंमे स्थित दोषोंमे नासिकासे धूम पीना चाहिये ॥ ४ ॥ ५ ॥–

धूमवर्तयः ।

गन्धैरकुष्ठतगरैर्वर्तिः प्रायोगिके मता ॥ ६ ॥
स्नैहिके तु मधूच्छिष्टस्नेहगुग्गुलुसर्जकैः ।
शिरोविरेचनद्रव्यैर्वर्तिर्वैरेचने मता ॥ ७ ॥
कासघ्नैरेव कासघ्नी वामनैर्वामनी मता ।

प्रायोगिकधूममें कुठ और तगरको छोड़कर शेष गन्धद्रव्योंसे बत्ती बनानी चाहिये तथा स्नैहिक धूममें मोम, स्नेह, गुग्गुलु और रालसे वत्ती बनानी चाहिये । विरेचन धूमके लिये शिरोविरेचनीय द्रव्योंसे तथा कासघ्न धूमके लिये कासघ्न द्रव्योंसे और वामकधूमके लिये वमनकारक द्रव्योंसे वत्ती वनानी चाहिये ॥ ६ ॥ ७ ॥–

धूमानर्हाः ।

योज्या न पित्तरक्तार्तिविरिक्तोदरमेहिषु ॥ ८ ॥
तिमिरोर्ध्वानिलाध्मानरोहिणीदत्तवस्तिषु ।
मत्स्यमद्यदधिक्षीरक्षौद्रस्नेहविषाशिषु ॥ ९ ॥
शिरस्यभिहते पाण्डुरोगे जागरिते निशि ।

पित्तरक्तवाले, विरिक्त, उदर और प्रमेहसे पीड़ित तथा तिमिर, ऊर्ध्ववात, अफारा और रोहिणीसे पीड़ित तथा जिन्हें वस्ति दी गयी है तथा मछलियाँ, मद्य, दधि, दूध, शहद, स्नेह और विष इनमेंसे कोई पदार्थ जिन्होंने खाया या पिया है तथा जिनके शिरमें चोट लगी है तथा पाण्डुरोगसे पीडित अथवा रात्रिजागरण करनेवाले धूमके अयोग्य हैं ॥ ८ ॥ ९ ॥–

धूमव्यापत् ।

रक्तपित्तान्ध्यबाधिर्यतृण्मूर्च्छामदमोहकृत् ॥ १० ॥
धूमोऽकालेऽतिपीतो वा तत्र शीतो विधिर्हित ।
एतद्धूमविधानं तु लेशत. सम्प्रकाशितम् ॥ ११ ॥

अकालमें तथा अधिक धूम पीनेसे रक्तपित्त, आन्ध्य, बहिरापन, प्यास, मूर्च्छा, मद, तथा मोह उत्पन्न हो जाते हैं । ऐसी दशामे शीत उपचार करना चाहिये । यह धूमपानविधान सक्षेपसे कहा गया ॥ १० ॥ ११ ॥

इति धूमाधिकारः समाप्तः ।

अथ कवलगण्डूषाधिकारः ।

सामान्यभेदाः ।

स्निग्धोष्णैः स्नैहिको वाते स्वादुशीतैः प्रसादन ।
पित्ते कट्वम्ललवणरूक्षैः संशोधन. कफे ॥ १ ॥
कषायस्वादुतिक्तैश्च कवलो रोपणो व्रणे ।
सुख सञ्चार्यते या तु सा मात्रा कवले हिता ॥ २ ॥
असञ्चार्या तु या मात्रा गण्डूषे सा प्रकीर्तिता ।
तावच्च धारणीयोऽयं यावद्दोषप्रवर्तनम् ॥ ३ ॥
पुनश्चान्योऽपि दातव्यस्तथा क्षौद्रघृतादिभिः ।

वातकी शान्तिके लिये स्निग्ध तथा उष्ण पदार्थोंमे स्नेहन, पित्तकी शान्तिके लिये मीठे और शीतल पदार्थोंसे प्रसादन तथा कफकी शातिके लिये कटु, अम्ल, लवण रसयुक्त तथा रूक्ष पदार्थोंसे सशोधन तथा व्रणशातिके लिये कषैले, मीठे और तिक्त पदार्थोंसे रोपण कवल धारण करना चाहिये । गण्डूष और कवलमे केवल इतना ही अन्तर है कि जो मात्रा मुखमें सुखपूर्वक घुमायी जा सके वह कवल और जो न घुमायी जा सके उसे गण्डूष कहते हैं तथा इनका धारण उस समयतक करना चाहिये, जबतक दोषोंकी प्रवृत्ति न होने लग जाय। पुनः दोषोंके निकल जानेपर फिर शहद तथा घी आदिका कवल धारण करना चाहिये ॥ १-३ ॥–

सुकवलितलक्षणम् ।

व्याधेरपचयस्तुष्टिर्वैशद्यं वक्त्रलाघवम् ॥ ४ ॥
इन्द्रियाणां प्रसादश्च कवले शुद्धिलक्षणम् ।

व्याधिकी हीनता, तुष्टि, मुखकी स्वच्छता, लघुता और इन्द्रियोंकी प्रसन्नता कवलधारणजन्य शुद्धिके लक्षण हैं ॥ ४ ॥–

विविधा गण्डूषाः ।

दाहतृष्णाव्रणान्हन्ति मधुगण्डूषधारणम् ॥ ५ ॥
धान्याम्लमास्यवैरस्यमलदौर्गन्ध्यनाशनम् ।
तदेवालवणं शीतं मुखशोषहरं परम् ॥ ६ ॥
आशु क्षाराम्लगण्डूषो भिनत्ति श्लेष्मणश्चयम् ।
सुस्थे हितं वातहरं तैलगण्डूषधारणम् ॥ ७ ॥

शहदका गण्डूष धारण करनेसे जलन, तृष्णा और व्रण नष्ट होते हैं । काञ्जीका गण्डूष मुखकी विरसता, मल और दुर्गन्धको नष्ट करता है तथा विना नमककी काञ्जीका गण्डूष ठण्ढा और मुखशोषनाशक होता है तथा क्षार मिली काञ्जीका गण्डूष सञ्चित कफको शीघ्र ही काट देता है तथा तैलका गण्डूष स्वस्थ पुरुषके लिये हितकर तथा शीघ्र ही वातको नष्ट करता है ॥ ५–७ ॥

इति कवलगण्डूषाधिकारः समाप्तः ।



अथाश्च्योतनाद्यधिकारः ।

आश्च्योतनविधिः ।

सर्वेषामक्षिरोगाणामादावाश्च्योतनं हितम् ।
रुक्तोदकण्डूघर्षाश्रुदाहरागनिबर्हणम् ॥ १ ॥
उष्णं वाते कफे कोष्णं तच्छीतं रक्तपित्तयोः ।
निवातस्थस्य वामेन पाणिनोन्मील्य लोचनम् ॥ २ ॥
शुक्त्या प्रलम्बयान्येन पिचुवर्त्या कनीनिके ।
दश द्वादश वा बिन्दून्द्व्यङ्गुलादवसेचयेत् ॥ ३ ॥
ततः प्रमृज्य मृदुना चैलेन कफवातयोः ।
अन्येन कोष्णपानीयप्लुतेन स्वेदयेन्मृदु ॥ ४ ॥

समस्त नेत्ररोगोंके लिये पहिले आश्च्योतन ही हितकर होता है । वह सुई चुभानेके समान पीडा, खुजली, किरकिरी, आँसू, जलन और लालिमाको नष्ट करता है । वह आश्च्योतन वायुमें गरम, कफमें कुछ कम गरम तथा रक्तपित्तमें शीत ही छोडना चाहिये । इस प्रकार तैयार किया हुआ आश्च्योतन रोगीको वातरहित स्थानमें लिटा वाम हाथसे आँख खोल दक्षिण हाथसे लम्बी शुक्ति या फोहे द्वारा दश या बारह बिन्दु २ अङ्गुलकी दूरीसे वैद्यको छोडना चाहिये । उसके अनन्तर मुलायम कपड़ेसे पोंछकर कफवातके लिये दूसरे गरम जलमें डूबे हुए कपडेसे मृदु स्वेदन करना चाहिये १–४

अत्युष्णादिदोषाः ।

अत्युष्णतीक्ष्णं रुग्रागदृङ्नाशायाक्षिसेचनम् ।
अतिशीतं तु कुरुते निस्तोदस्तम्भवेदनाः ॥ ५ ॥
कषायवर्त्मता घर्षं कृच्छ्रादुन्मेषणं बहु ।
विकारवृद्धिमत्यल्पं संरम्भमपरिस्रुतम् ॥ ६ ॥

अधिक गरम तथा तीक्ष्ण आश्च्योतन पीडा, लालिमा तथा दृष्टिनाशतक कर देता है तथा बहुत ठण्ढा आश्च्योतन सुई चुभानेके समान पीड़ा व जकड़ाहट उत्पन्न कर देता है तथा अधिक आश्च्योतन विर्त्नियोंकी जकड़ाहट, किराकिरी तथा कठिनतासे खुलना आदि दोष करता है तथा अति न्यून आश्च्योतन रोगको बढ़ाता तथा यदि वस्त्रसे साफ न किया जाय तो शोथ तथा लालिमा उत्पन्न कर देता है ॥ ५ ॥ ६ ॥

अञ्जनम् ।

अथाञ्जनं शुद्धतनोर्नेत्रमात्राश्रये मले ।
पक्वलिङ्गेऽल्पशोथार्तिकण्डूपैच्छिल्यलक्षिते ॥ ७ ॥
मन्दघर्षाश्रुरागेऽक्षिण प्रयोज्यं घनदूषिके ।
लेखनं रोपणं दृष्टिप्रसादनमिति त्रिधा ॥ ८ ॥
अञ्जनं लेखनं तत्र कषायाम्लपटूषणैः ।
रोपणं तिक्तकैर्द्रव्यैः स्वादुशीतैः प्रसादनम् ॥ ९ ॥

वमन, विरेचनादिसे शुद्ध पुरुषके केवल नेत्रमात्रमें दोषके रह जाने तथा सूजन, बेचैनी, खुजली, पिच्छिलाहट तथा किराकिरी, आँसू और लालिमा आदिकी कमीरूप पक्व लक्षण प्रकट होजानेपर और नेत्रमल (चीपर) कडा निकलनेपर अञ्जन लगाना चाहिये । अञ्जन लेखन (खुरचनेवाला) रोपण (घाव भरनेवाला) तथा दृष्टिप्रसादन (नेत्रको बल देनेवाला) इस प्रकार ३ प्रकारका होता है । लेखन अञ्जन कषैले, खट्टे, नमकीन व कटु पदार्थोंसे तथा रोपण अञ्जन तिक्त पदार्थोंसे और प्रसादन अञ्जन मधुर द्रव्योंसे बनाना चाहिये ॥ ७–९ ॥

शलाका ।

दशाङ्गुला तनुर्मध्ये शलाका मुकुलानना ।
प्रशस्ता लेखने ताम्री रोपणे काललोहजा ॥ १० ॥
अङ्गुली च सुवर्णोत्था रूप्यजा च प्रसादने ।

शलाका १० अङ्गुलकी मध्यमें पतली तथा कलीके समान मुखवाली बनानी चाहिये, तथा लेखन अञ्जनके लिये ताम्रकी शलाका, रोपणके लिये कृष्णलोहकी तथा प्रसादनके लिये अङ्गुली अथवा सोने या चांदीकी शलाका काममें लानी चाहिये ॥ १० ॥–

अञ्जनकल्पना ।

पिण्डो रसक्रिया चूर्णं त्रिधैवाञ्जनकल्पना ॥ ११ ॥
गुरौ मध्ये लवौ दोपे तां क्रमेण प्रयोजयेत् ।
अथानुन्मीलयन् दृष्टिमन्तः सञ्चारयेच्छनैः ॥ १२ ॥
अञ्जिते वर्त्मनी किञ्चिच्चालयेच्चैवमञ्जनम् ।
अपेतौषधसंरम्भं निर्वृतं नयनं यदा ॥ १३ ॥
व्याधिदोषर्तुयोग्याभिरद्भिः प्रक्षालयेत्तदा ।
दक्षिणाङ्गुष्ठकेनाक्षि ततो वामं सवाससा ॥ १४ ॥
ऊर्ध्ववर्त्मनि संगृह्य शोध्यं वामेन चेतरत् ।
निशि स्वप्नेन मध्याह्ने पानाद्नोष्णगभस्तिभिः ॥ १५ ॥
अक्षिरोगाय दोषाः स्युर्वर्धितोत्पीडितद्रुताः ।
प्रात' सायं च तच्छान्त्यै व्यभ्रेऽर्केऽतोऽञ्जयेत्सदा॥१६॥
कण्डूजाड्येऽञ्जनं तीक्ष्णं धूमं वा योजयेत्पुनः ।
तीक्ष्णाञ्जनाभितप्ते तु तूर्णं प्रत्यञ्जनं हितम् ॥ १७ ॥

गोली, रसक्रिया अथवा चूर्ण प्रक्रियाभेदसे ३ प्रकारका अञ्जन बनाया जा सकता है । उन्हें क्रमशः गुरु, मध्य और लघु दोषोंमें काममें लाना चाहिये तथा अञ्जन विन्नियोंमें लगाकर अन्दर ही अन्दर धीरे धीरे चलाना चाहिये । फिर औषधवेग शान्त हो जानें और नेत्रके साफ हो जानेपर व्याधिदोष तथा ऋतुयोग्य जलसे धोना चाहिये । फिर कपडे लिपटे दहिने अँगूठेसे बाया नेत्र और बाय अँगूठेसे दाहिना नेत्र ऊपरकी विन्निया पकड कर साफ करना चाहिये । रात्रिमें तथा मध्याह्नमें अञ्जन नही लगाना चाहिये । क्योंकि रात्रिमें सोनेके कारण और मध्याह्नमें अन्नपान तथा सूर्यकी किरणोंके कारण बढे हुए पीडित तथा चलित दोष नेत्ररोग उत्पन्न कर देते है । अतः सदा निर्मल आकाश होनेपर प्रातःकाल तथा सायङ्काल अञ्जन लगाना चाहिये । नेत्रोंकी खुजली और जकडाहटमें तीक्ष्णाञ्जन अथवा धूमका प्रयोग करना चाहिये तथा तीक्ष्णाञ्जनसे नेत्रोंमें दाह उत्पन्न हो जानेपर शीघ्र प्रत्यञ्जन (दाहशामक शीतल अञ्जन) लगाना चाहिये ॥ ११–१७ ॥

अञ्जननिषेधः ।

नाञ्जयेद्भीतवमितविरिक्ताशितवेगिते ।
क्रुद्धज्वरितभ्रान्ताक्षशिरोरुक्शोषजागरे ॥ १८ ॥
अदृष्टेऽर्के शिरःस्नाते पीतयोर्धूममद्ययोः ।
अजीर्णेऽप्यर्कसंतप्ते दिवास्वप्ने पिपासिते ॥ १९ ॥

डरे हुए, वमन किये हुए, विरेचन किये हुए, भोजन किये हुए तथा मूत्र पुरीष आदिके वेगसे पीडित, क्रोधी, ज्वरवाले, भ्रान्त नेत्रवाले (अथवा "तान्ताक्षः" इति पाठः तस्यार्थः सूर्य या सूक्ष्म पदार्थोंके अधिक देखनेसे विकृत नेत्रवाले) शिरःशूल, शोषसे तथा जागरणसे पीडित तथा शिरसे स्नान किये हुए अथवा धूम या मद्य पिये हुए तथा अजीर्णसे पीडित तथा सूर्यकी गरमीसे सन्तप्त होनेपर तथा दिनमें सोनेपर अनन्तर तथा पिपासित पुरुषोंको अञ्जन न लगाना चाहिये तथा जिस दिन मेघोंसे आच्छन्न होनेके कारण सूर्य न दिखलायी पडे उस दिन भी अञ्जन न लगाना चाहिये ॥ १८ ॥१९॥

तर्पणम् ।

निवाते तर्पणं योज्यं शुद्धयोर्मूर्धकाययोः ।
काले साधारणे प्रातः सायं वोत्तानशायिनः ॥ २० ॥
यवमाषमयीं पालीं नेत्रकोषाद्बहि' समाम् ।
द्व्यङ्गुलोच्चां दृढां कृत्वा यथास्वं सिद्धमावपेत् ॥ २१ ॥
सर्पिर्निमीलिते नेत्रे तप्ताम्बु प्रविलायितम् ।
नक्तान्ध्यवाततिमिरकृच्छ्रबोधादिके वसाम् ॥ २२ ॥
आपक्ष्माग्रादथोन्मेषं शनकैस्तस्य कुर्वत' ।
मात्रां विगणयेत्तत्र वर्त्मसन्धिसितासिते ॥ २३ ॥
दृष्टौ च क्रमशो व्याधौ शतं त्रीणि च पञ्च च ।
शतानि सप्त चाष्टौ च दश मन्थेऽनिले दश ॥ २४ ॥
पित्ते षट् स्वस्थवृत्ते च बलासे पञ्च धारयेत् ।
कृत्वापाङ्गे ततो द्वारं स्नेहं पात्रे निगालयेत् ॥ २५ ॥
पिबेच्च धूमं नेक्षेत व्योमरूपं च भास्वरम् ।
इत्थं प्रतिदिनं वाते पित्ते त्वेकान्तरं कफे ॥ २६ ॥
स्वस्थे च द्व्यन्तरं दद्यादातृप्तेरिति योजयेत् ।

तर्पणका प्रयोग वातरहित स्थानमें शिर और शरीरके शुद्ध होनेपर साधारण समयमें प्रातः और सायंकाल, उत्तान सुलाकर नेत्रकोषके बाहर चारों ओर २ अङ्गुल ऊँची तथा दृढ यव और उडदके आटेको पानीमें सानकर मेड बनाना चाहिये । फिर नेत्रोंको बन्दकर दोषोंके अनुसार सिद्ध घृत गरम जलके ऊपर ही गरम कर छोडना चाहिये तथा रतौंधी, वातज तिमिर तथा

कृच्छ्रबोधादिमें चर्बीका प्रयोग करना चाहिये । फिर धीरे धीरे नेत्र खोलना और बंद करना चाहिये तथा तर्पण छोडकर विन्नियोंके रोगमें १०० मात्रा उच्चारणकालतक, सन्धिभागमे ३०० मात्रा उच्चारणकालतक, सफेद भागके रोगमे ५०० मात्रा उच्चारणकालतक, कृष्णभागमें ७०० मात्रा उच्चारणकालतक दृष्टिरोगमें ८०० मात्रा उच्चारणकालतक, मन्थरोगमे १०००, अनिलरोगमें १०००, पित्तरोगमे ६००, स्वस्थवृत्तमे ६००, तथा कफरोगमें ५०० मात्रा उच्चारणकालतक रखना चाहिये । फिर अपाङ्गमें (नेत्रके बाहिरी कोनोंमें मेडका द्वार बनाकर स्नेह किसी पात्रमे गिरा लेना चाहिये । फिर धूमपान करे तथा आकाश और प्रकाशयुक्त पदार्थ (सूर्यादि) न देखे । इस प्रकार वायुमे प्रतिदिन, पित्तमें एकदिनका अन्तर देकर तथा कफ और स्वस्थवृत्तके लिये २ दिनका अन्तर देकर जबतक नेत्र तृप्त न हो जावे प्रयोग करना चाहिये ॥ २०–२६ ॥–

तृप्तलक्षणम् ।

प्रकाशक्षमता स्वास्थ्यं विशदं लघु लोचनम् ॥ २७ ॥
तृप्ते विपर्ययोऽतृप्तेऽतितृप्ते श्लेष्मजा रुजः ।

ठीक तर्पण हो जानेपर नेत्र स्वच्छ, हल्के तथा प्रकाश देखनेमें समर्थ और स्वस्थ होते हैं, तथा ठीक तर्पण न होनेपर इससे विपरीत और अतितृप्त हो जानेपर कफजन्य रोग उत्पन्न हो जाते हैं ॥ २७ ॥–

पुटपाकः ।

पुटपाकं प्रयुञ्जीत पूर्वोक्तेष्वेव यक्ष्मसु ॥ २८ ॥
सवाते स्नेहनः श्लेष्मसहिते लेखनो मतः ।
दृग्दौर्बल्येऽनिले पित्ते रक्ते स्वस्थे प्रसादनः ॥ २९ ॥
बिल्वमात्रं पृथक् पिण्डं मांसभेषजकल्कयोः ।
उरुबूकवटाम्भोजपत्रैः स्निग्धादिषु क्रमात् ॥ ३० ॥
वेष्टयित्वा मृदालिप्तं धवधन्वनगोमयैः ।
पचेत्प्रदीप्तैरङ्गाराभं पक्वं निष्पीड्य तद्रसम् ॥ ३१ ॥
नेत्रे तर्पणवद्युञ्ज्याच्छतं द्वे त्रीणि धारयेत् ।
लेखनस्नेहनान्त्येषु कोष्णं पूर्वौ हिमोऽपरः ॥ ३२ ॥
धूमपोऽन्ते तयोरेव योगास्तत्र च तृप्तिवत् ॥ ३३ ॥
तर्पणं पुटपाकं च नस्यानर्हे न योजयेत् ।
यावन्त्यहानि युञ्जीत द्विगुणं हितभाग्भवेत् ॥ ३४ ॥

पुटपाकका प्रयोग भी पूर्वोक्त (तर्पणोक्त) रोगोंमे ही करना चाहिये तथा वातजरोगमे स्नेहन, कफजमे लेखन तथा दृष्टिकी दुर्बलता और वायु, पित्त तथा रक्तके रोगमे व स्वस्थ पुरुषके लिये प्रसादन पुटपाक देना चाहिये तथा पुटपाकके लिये मांस और औषधका कल्क ४ तोले ले पिण्ड बना स्नेहनके लिये एरण्ड, लेखनके लिये बरगद और प्रसादनके लिये कमलके पत्तोंको पिटके ऊपर लपेट ऊपरसे मिट्टीका लेप कर सुखा धव, धामिन या कंडोंके अगारोंमें पकाना चाहिये । मिट्टी जब अग्निके अगारेके समान लाल हो जाय तब निकाल ठण्ढा कर औषधका रस निचोडकर नेत्रमें तर्पणके समान (मेड आदि बना) छोडना चाहिये तथा लेखनमे १०० मात्रा, स्नेहनमें २०० मात्रा और प्रसादनमे ३०० मात्रा उच्चारणकालतक आंखोंमे धारण करना चाहिये तथा स्नेहन व लेखन पुटपाकका रस कुछ गरम तथा प्रसादन पुटपाकका रस ठण्ढा छोडना चाहिये तथा स्नेहन व लेखनके ही अन्तमें धूमपान करना चाहिये इसमें योगायोगादि तृप्तिके समान ही समझना चाहिये तथा जिन्हें नस्यका निषेध है उन्हें तर्पण व पुटपाक भी नही देना चाहिये तथा जितने दिनतक तर्पण या पुटपाकका प्रयोग करे उससे दूने समयतक पथ्य सेवन करे ॥ २८–३४ ॥

इत्याश्च्योतनाद्यधिकारः समाप्तः ।

अथ शिराव्यधाधिकारः ।

अथ स्निग्धतनुं स्निग्धरसान्नप्रतिभोजितः ।
प्रत्यादित्यमुखः स्विन्नो जानूच्चासनसंस्थितः ॥ १ ॥
मृदुपट्टात्तकेशान्तो जानुस्थापितकूर्परः ।
अङ्गुष्ठगर्भमुष्टिभ्यां मन्ये गाढं निपीडयेत् ॥ २ ॥
दन्तसम्पीडनोत्कासगण्डाध्मानानि चाचरेत् ।
पृष्ठतो यन्त्रयेच्चैनं वस्त्रमावेष्टयन्नरः ॥ ३ ॥
कन्धरायां परिक्षिप्य न्यस्यान्तर्वामतर्जनीम् ।
एवमुत्थाप्य विधिना शिरां विध्येच्छिरोगताम् ॥ ४ ॥
विध्येद्धस्तशिरां बाहावनाकुञ्चितकूर्परे ।
बद्ध्वा सुखोपविष्टस्य मुष्टिमङ्गुष्ठगर्भिणीम् ॥ ५ ॥
ऊर्ध्वं वेध्यप्रदेशाच्च पट्टिकां चतुरङ्गुले ।
पादे तु सुस्थितेऽधस्ताज्जानुसन्धेर्निपीडिते ॥ ६ ॥
गाढं कराभ्यामागुल्फं चरणे तस्य चोपरि ।
द्वितीये कुञ्चिते किञ्चिदारूढे हस्तवत्ततः ॥ ७ ॥

बद्ध्वा विध्येच्छिरामित्थमनुक्तेष्वपि कल्पयेत् ।
तेषु तेषु प्रदेशेषु तत्तद्यन्त्रमुपायवित् ॥ ८ ॥
ततो व्रीहिमुखं व्यध्य प्रदेशे न्यस्य पीडयेत् ।
अङ्गुष्ठतर्जनीभ्यां तु तलप्रच्छादितं भिषक् ॥ ९ ॥
वामहस्तेन विन्यस्य कुठारीमितरेण तु ।
ताडयेन्मध्यमाङ्गुल्याङ्गुष्ठविष्टब्धमुक्तया ॥ १० ॥

जिसका शिराव्यध करना है उसे स्नेहन तथा स्निग्ध मांसरस भोजन करा सूर्यकी ओर मुख कराकर घुटनेके बराबर ऊँचे आसनपर बैठाल कर पसीना आ जानेपर बालोंको मुलायम कपडेसे बाँधना चाहिये । फिर शिरोगत शिराओंके व्यध करनेके लिये घुटनेपर दोनों कोहनिया रखकर अँगूठेके सहित बन्धी मुट्टियोंसे गलेके बगलकी शिराएँ जोरसे दबानी चाहिये तथा दाँतोंको कटकटाना, खासना और गालोंको फुलाना चाहिये । फिर रोगीके पीछे खडे हुए पुरुषको वस्त्र लपेटते हुए गरदन और दोनों हाथोंकी मुट्टियोंको अपने हाथकी वाम तर्जनी अँगुलीके बीचमें डाल कर बाँधना चाहिये । इस प्रकार शिरका उत्थापन कर शिरोगत शिराका व्यध करना चाहिये । इसी प्रकार हाथकी शिराका व्यध हाथ फैलाकर करना चाहिये, तथा सुखपूर्वक बैठाल अँगूठेके सहित मुठी बाध व्यध करनेके स्थानसे चार अङ्गुल ऊपर पट्टी बाँधकर शिराव्यध करना चाहिये तथा यदि पैरकी शिरा वेधनी हो तो एक पैरको बराबर रखकर जिस पैरमें व्यध करना है उसे दोनों हाथोंसे जोरसे गुल्फतक दबाकर कुछ समेट भूमिपर सुस्थिर रखे हुए पैरपर रख बाँधकर शिरा उत्थित हो जानेपर व्यध करना चाहिये । इसी प्रकार अनुक्त स्थानोंमें भी जिस प्रकार शिरा उठ सके उसी प्रकार बाँधकर शिराव्यध करना चाहिये । फिर व्यध करनेके स्थानमें व्रीहिमुख शस्त्र लगाकर अँगूठे व तर्जनी अगुलीसे दबाना चाहिये तथा तलसे ढका रखना चाहिये और यदि कुठारीसे शिराव्यध करना हो तो कुठारीको वामहस्तमें ले व्यध्यस्थानपर रखकर दहिने हाथके अगूठेके साथ मध्यमा अङ्गुली फसाकर जोरसे छोड देना चाहिये ॥ १-१० ॥

व्रीहिमुखकुठारिकयोः प्रयोगस्थानम् ।

मांसले निक्षिपेद्देशे व्रीह्यास्यं व्रीहिमात्रकम् ।
यवार्धमस्थ्नामुपरि शिरां विध्यन्कुठारिकाम् ॥ ११ ॥

मासल स्थानोंमें व्रीहिमुखनामक शस्त्रसे व्रीहिमात्र शस्त्र प्रविष्ट करना चाहिये, तथा हड्डियोंके ऊपर कुठारिकासे अर्द्ध व्रीहिमात्र व्यध करना चाहिये ॥ ११ ॥

अयोगादिव्यवस्था ।

असम्यगस्रे स्रवति वेल्लव्योषनिशानतैः ।
सागारधूमलवणतैलैर्दिह्याच्छिरामुखम् ।
सम्यक् प्रवृत्ते कोष्णेन तैलेन लवणेन च ॥ १२ ॥
अशुद्धं बलिनोऽप्यस्रं न प्रस्थात्स्रावयेत्परम् ।
अतिस्रुतौ हि मृत्युः स्याद्दारुणा वानिलामयाः ॥ १३ ॥
तत्राभ्यङ्गरसक्षीररक्तपानानि भेषजम् ।

ठीक रक्त न बहनेपर वायविडग, त्रिकटु, हल्दी, तगर, गृहधूम, लवण और तैल मिलाकर शिरामुखपर लेप करना चाहिये, तथा बलवान् पुरुषका भी एक प्रस्थसे अधिक रक्त न निकलने देना चाहिये । क्योंकि अधिक रक्त निकल जानेपर मृत्यु अथवा कठिन वातरोग हो जाते है । ऐसी अवस्थामें मालिश करना तथा मासरस,दूध, और रक्त पिलाना हितकर है॥१२॥१३॥-

उत्तरकृत्यम् ।

स्रुते रक्ते शनैर्यन्त्रमपनीय हिमाम्बुना ॥ १४ ॥
प्रक्षाल्य तैलप्लोतार्क्तं बन्धनयि शिरामुखम् ।
अशुद्धं स्रावयेद्भूयः सायमह्न्यपरेऽपि वा ॥ १५ ॥
रक्ते त्वतिष्ठति क्षिप्रं स्तम्भनीमाचरेत्क्रियाम् ।
लोध्रप्रियङ्गुपत्तङ्गमाषयष्ट्याह्वगैरिकैः ॥ १६ ॥
मृत्कपालाञ्जनक्षौमसमषीक्षीरित्वगङ्कुरैः ।
विचूर्णयेद्व्रणमुखं पद्मकादिहिमं पिबेत् ॥ १७ ॥
तामेव वा शिरां विध्येद्व्यधात्तस्मादनन्तरम् ।
शिरामुखं वा त्वरितं दहेत्तप्तशलाकया ॥ १८ ॥
सशेषमप्यसृग्धार्यं न चातिस्रुतिमाचरेत् ।
हरेच्छृङ्गादिना शेषं प्रसादमथवा नयेत् ॥ १९ ॥
मर्महीनं यथासन्नप्रदेशे व्यधयेच्छिराम् ।

रक्त निकल जानेपर धीरेसे यन्त्र खोल ठण्ढे जलसे धो तैलसे तर कपडेसे शिरामुख बाँधना चाहिये । यदि अशुद्ध रक्त रह गया हो तो सायङ्काल अथवा दूसरे दिन पुनः शिराव्यध करना चाहिये यदि रक्त रुकता न हो तो शीघ्र ही रक्त रोकनेका उपाय करना चाहिये । लोध, प्रियगु, लाल चन्दन, उडद, मौरेठी, गेरू, मिट्टीका खपडा, सुरमा,अलसीके वस्त्रकी भस्म तथा क्षीरिवृक्षोंकी छाल और अकुर सबका महीन चूर्ण कर व्रणके ऊपर डरना चाहिये । तथा पद्मकादि हिम पीना चाहिये ।

१ "पद्मकपुण्ड्रौ वृद्धितुगर्द्ध्यः शृङ्ग्यमृता दशजीवनसंज्ञाः। स्तन्यकरा घ्नन्तीरणपित्तं प्रीणनजीवनबृंहणवृष्याः" ॥

अथवा उसी शिराको व्यध्यप्रदेशसे कुछ ऊपर व्यधकर देना चाहिये। अथवा गरम शलाकासे शिरामुख दाग देना चाहिये, यदि कुछ दूषित रक्त रह जावे तो भी कुछ हानि नहीं पर अधिक स्राव न करना चाहिये। शेष रक्त सिंगी आदिसे निकालना अथवा शुद्ध कर देना चाहिये मर्मस्थानको छोड़कर जहांसे दूषित रक्त निकल सके वहां शिराव्यध करना चाहिये ॥ १४–१९ ॥–

शिराव्यधनिषेधः ।

नतूनषोडशातीतसप्तत्यब्दस्रुतासृजाम् ॥ २० ॥
अस्निग्धास्वेदितात्यर्थस्वेदितानिलरोगिणाम् ।
गर्भिणीसूतिकाजीर्णपित्तास्रश्वासकासिनाम् ॥ २१ ॥
अतिसारोदरच्छर्दिपाण्डुसर्वाङ्गशोफिणाम् ।
स्नेहपीते प्रयुक्तेषु तथा पञ्चसु कर्मसु ॥ २२ ॥
नायन्त्रितां शिरां विध्येन्न तिर्यङ्नाप्यनुत्थिताम् ।
नातिशीतोष्णवाताभ्रेष्वन्यत्रात्ययिकाद्गदात् ॥ २३ ॥

सोलह वर्षसे कम और ७० वर्षसे अधिक अवस्थावालेंकी शिरा न वेधनी चाहिये। तथा अस्निग्ध, अस्वेदित, अधिक स्वेदित तथा वातरोगवाले, गर्भिणी, सूतिका, अजीर्ण, रक्तपित्त, श्वास, कास, अतीसार, उदररोग, छर्दि, पाण्डुरोग तथा सर्वांगशोफवाले पुरुषोंकी शिरा न वेधनी चाहिय। तथा स्नेह पी लेनेपर व पञ्चकर्म कर लेनेपर शिराव्यध न करना चाहिये तथा विना यन्त्रण किये भी शिराव्यध न करना चाहिये तथा तिरछी या विना उठी शिरा न वेधनी चाहिये तथा अधिक आवश्यकता न होनेपर अतिठण्ढे, अतिगरम, अतिवायु तथा अतिमेघयुक्त समयमें शिराव्यध न करना चाहिये ॥ २०–२३॥

पथ्यव्यवस्था ।

नात्युष्णशीतं लघुदीपनीयं
रक्तेऽपनीते हितमन्नपानम् ।
तदा शरीरं ह्यनवस्थितासृक्
वह्निर्विशेषेण च रक्षणीयः ॥ २४ ॥
नरो हिताहारविहारसेवी
मासं भवेदाबललाभतो वा ।

रक्त निकल जानेपर न बहुत गर्म, न बहुत ठण्ढा, लघु तथा दीपनीय अन्न पान हितकर है। उस समय शरीरका रक्त संक्षुब्ध रहता है अतः अग्नि विशेषतः रक्षणीय है। इस प्रकार [illegible] न आ जाय, मनुष्यको हितकारक आहार विहार सेवन करना चाहिये ॥ २४ ॥–

विशुद्धरक्तिनो लक्षणम् ।

प्रसन्नवर्णेन्द्रियमिन्द्रियार्था-
निच्छन्तमव्याहतपक्तृवेगम् ।
सुखान्वितं तुष्टिबलोपपन्नं
विशुद्धरक्तं पुरुषं वदन्ति ॥ २५ ॥

जिसका रक्त शुद्ध हो जाता है उसकी इन्द्रियाँ प्रसन्न, वर्ण उत्तम तथा इन्द्रियोंके विषयोंकी इच्छा और अग्नि दीप्त होती है। तथा सुखयुक्त, बल व पुष्टियुक्त होता है ॥ २५ ॥

इति शिराव्यधाधिकारः समाप्तः ।

अथ स्वस्थवृत्ताधिकारः ।

दिनचर्याविधिः ।

ब्राह्मे मुहूर्त उत्तिष्ठेत्स्वस्थो रक्षार्थमायुषः ।
शरीरचिन्तां निर्वर्त्य कृतशौचविधिस्ततः ॥ १ ॥
प्रातर्भुक्त्वा च मृद्वग्रं कषायकटुतिक्तकम् ।
भक्षयेद्दन्तपवनं दन्तमांसान्यबाधयन् ॥ २ ॥
नाद्यादजीर्णवमथुश्वासकासज्वरार्दित ।
तृष्णास्यपाकहृन्नेत्रशिरःकर्णामयी च तत् ॥ ३ ॥

स्वस्थ पुरुषको आयुरक्षाके लिये ब्राह्ममुहूर्तमें उठना चाहिये तथा शरीरकी अवस्थाका विचारकर शौच आदि विधि करनी चाहिये। तदनन्तर कषाय कटु, या तिक्तरसयुक्त दन्तधावनको दाँतोंसे खूब चबाचबाकर मुलायम कूँची बना उसी कूँचीसे दाँतोंको इस प्रकार रगड़ना चाहिये कि दाँतोंके मांस न कट जावें। तथा जिसे अजीर्ण, वमन, श्वास, कास, ज्वर, प्यास, मुखपाक तथा हृदय, नेत्र, शिर या कर्णके रोग हैं उसे दन्तधावन न करना चाहिये ॥ १–३ ॥

---

१ "प्रातर्भुक्त्वा च" का अर्थ यद्यपि प्रातःकाल और भोजन कर है तथा चरकमें "द्वौ कालौ दन्तपवनं भक्षयेन्मुखधावनम्" से दो बार दन्तधावन बताया है। पर अधिकतरप्रचालित पद्धति प्रातःकालके लिये है अतः प्रातःकालके लिये ही लिखा है ॥

२ "रात्रेः पश्चिमयामस्य मुहूर्तो यस्तृतीयकः । स ब्राह्म इति विज्ञेयो विहितः स प्रबोधने"।

अञ्जनादिविधिः।

सौवीरमञ्जनं नित्यं हितमक्ष्णोः प्रयोजयेत्।
सप्तरात्रेऽष्टरात्रे वा स्रावणार्थं रसाञ्जनम्।
ततो नावनगण्डूषधूमताम्बूलभाग्भवेत्॥ ४॥
ताम्बूलं क्षतपित्तास्ररूक्षोत्कुपितचक्षुषाम्।
विषमूर्च्छामदार्तानामपथ्यं चापि शोषिणाम्॥ ५॥

कालासुरमा नेत्रोंके लिये हितकर है। अतः इसका प्रतिदिन प्रयोग करना चाहिये। तथा सातवें या आठवें दिन स्रावणके लिये रसौतका प्रयोग करना चाहिये फिर नस्य, गण्डूष, धूमपान और ताम्बूलका सेवन करना चाहिये। पर ताम्बूल व्रण, रक्तपित्त, रूक्ष, नेत्ररोग, विष, मूर्छा तथा नशासे पीडित और शोषवालोंके लिये हानिकर है॥ ४॥ ५॥

अभ्यङ्गव्यायामादिकम्।

अभ्यङ्गमाचरेन्नित्यं स जराश्रमवातहा।
शिरःश्रवणपादेषु तं विशेषेण शीलयेत्॥ ६॥
वर्ज्योऽभ्यङ्गः कफग्रस्तकृतसंशुद्ध्यजीर्णिभिः।
शरीरचेष्टा या चेष्टा स्थैर्यार्था बलवर्द्धिनी॥ ७॥
देहव्यायामसंख्याता मात्रया तां समाचरेत्।
वातपित्तामयी बालो वृद्धोऽजीर्णी च तं त्यजेत्॥ ८॥
उद्वर्तनं तथा कार्यं ततः स्नानं समाचरेत्।
उष्णाम्बुनाधःकायस्य परिषेको बलावहः॥ ९॥
तेनैव तूत्तमाङ्गस्य बलहृत्केशचक्षुषाम्।
स्नानमर्दितनेत्रास्यकर्णरोगातिसारिषु॥ १०॥
आध्मानपीनसाजीर्णभुक्तवत्सु च गर्हितम्।
नीचरोमनखश्मश्रुर्निर्मलाङ्घ्रिमलायनः॥ ११॥
स्नानशीलः सुसुरभिः सुवेषो निर्मलाम्बरः।
धारयेत्सततं रत्नसिद्धमन्त्रमहौषधीः॥ १२॥

मालिश प्रतिदिन करनी चाहिये। वह मालिश थकावट, वृद्धावस्था और वायुको नष्ट करती है तथा शिर, कान और पैरोंमें उसका प्रयोग विशेष कर करना चाहिये तथा कफग्रस्त, सशोधन कियेहुए और अजीर्णवालोंको अभ्यङ्ग न करना चाहिये। जो शरीरकी चेष्टा शरीरको बलवान् बनाती तथा स्थिर रखती है उसे व्यायाम कहते हैं। उसे मात्रासे करना चाहिये पर वातपित्तरोगयुक्त, बालक, वृद्ध और अजीर्णवालोंको व्यायाम न करना चाहिये। इसके अनन्तर उबटन लगाना चाहिये फिर स्नान करना चाहिये। शिरको छोड गरम जलसे स्नान करना पैरोंको बलवान् बनाता है पर उसीसे शिर धोना बालों और नेत्रोंके लिये हानिकर होता है। पर स्नान अर्दित, कर्णरोग, नेत्ररोग, मुखरोग, आध्मान (पेटका फूलना), पीनस तथा अजीर्णसे पीडित तथा भोजन कियेहुए पुरुषोंको न करना चाहिये तथा रोम, नख, दाढी, मूँछ छोटे रखना अर्थात् बनवाये रहना चाहिये तथा पैर और मलस्थान साफ रखना चाहिये। स्नान, सुगन्धयुक्त पदार्थोंका उपयोग, उत्तमवेष, विमलवस्त्र तथा सदा रत्न, सिद्धमन्त्र तथा औषधियां धारण करना चाहिये॥ ६–१२॥

सामान्यनियमाः।

सातपत्रपदत्राणो विचरेद्युगमात्रदृक्।
निशि चात्ययिके कार्ये दण्डी मौली सहायवान्॥ १३॥
जीर्णे हितं मितं चाद्यान्न वेगानीरयेद्बलात्।
न वेगितोऽन्यकार्यः स्यान्नाजित्वा साध्यमामयम्॥ १४॥
दशधा पापकर्माणि कायवाङ्मानसैस्त्यजेत्।
काले हितं मितं ब्रूयादविसंवादि पेशलम्॥ १५॥
आत्मवत्सततं पश्येदपि कीटपिपीलिकाम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्॥ १६॥
नक्तंदिनानि मे यान्ति कथंभूतस्य संप्रति।
दुःखभाङ्न भवत्येवं नित्यं सन्निहितस्मृतिः॥ १७॥

जूता पहिन तथा छाता लेकर बाहर जाना चाहिये तथा चार हाथ आगे देखकर चलना चाहिये। रात्रिमे आवश्यक कार्य होनेपर ही जाना चाहिये तथा हाथमें दण्डा रखना चाहिये। शिरमें साफा बांधकर जाना चाहिये और सहायक साथमें रखना चाहिये। अन्न पचजानेपर ही हितकारक तथा मात्रामे भोजन करना चाहिये। वेगोको बलपूर्वक न निकालना चाहिये तथा वेग उपस्थित होनेपर उससे निवृत्त होकर ही दूसरा काम करना चाहिये तथा साध्य रोगकी उपेक्षा न करनी चाहिये। सब कामोको छोडकर सर्व प्रथम रोगनिवृत्तिका उपाय करना चाहिये। शरीर, मन तथा वाणीसे दश प्रकार (हिंसा, चोरी, व्यर्थका काम, दूसरेका बुरा चाहना, चुगली, कठोर शब्द कहना, झूँठ बोलना असम्बद्ध प्रलाप, ईर्ष्या, दुःख देना बुरे भावसे देखना)के पाप त्याग देने चाहिये तथा समयपर हितकारक थोडा, मधुर तथा सन्देहरहित बोलना चाहिये। अपने ही समान दूसरे यहांतक कि कीडे तथा चीटियोंको भी जानना चाहिये। जो दूसरेका व्यवहार अपनेको बुरा लगे वह दूसरोंके साथ नहीं करना चाहिये। मेरे रात-

दिन किस प्रकार बीतते है उसका ध्यान रखनेवाला कभी दुःखी नहीं होता क्योंकि उसकी स्मरणशक्ति ताजी रहती है तथा बेकार नहीं रहता ॥ १३-१७ ॥

ऋतुचर्याविधिः ।

मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात्षडृतवः स्मृताः ।
शिशिरोऽथ वसन्तश्च ग्रीष्मवर्षाशरद्धिमाः ॥ १८ ॥

माघादि दो दो महीनोंसे ६ ऋतु होते है । उनके नाम क्रमशः शिशिर, वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद तथा हेमन्त हैं ॥ १८ ॥

हेमन्तचर्याविधिः ।

बलिनः शीतसंरोधाद्धेमन्ते प्रबलोऽनलः ।
सेवेतातो हिमे स्निग्धस्वाद्वम्ललवणान्रसान् ।
गोधूमपिष्टमासेक्षुक्षीरोत्थविकृतीः सुराम् ॥ १९ ॥
नवमन्नं वसां तैलं शौचकार्ये सुखोदकम् ।
युक्त्यार्ककिरणान्स्वेदं पादत्राणं च सर्वदा ॥ २० ॥
प्रावाराजिनकौशेयप्रवेणीकुथकास्तृतम् ।
उष्णस्वभावैर्लघुभिः प्रावृतः शयनं भजेत् ॥ २१ ॥
अङ्गारतापसंतप्तगर्भभूवेश्मनि प्रियाम् ।
पीवरोरुस्तनश्रोणीमालिङ्ग्यागुरुचर्चिताम् ॥ २२ ॥

हेमन्तऋतुमें बलवान् पुरुषका अग्नि शीतसे ढके रहनेके कारण बलवान् होता है । इसलिये इस ऋतु (मार्गशीर्ष, पौष) में चिकने, मीठे, खट्टे और नमकीन रसोंका सेवन करना चाहिये । अतः गेहूँ, उड़दकी पिट्ठी, मास, ईख और दूधसे बने पदार्थ, नवीन अन्न, चर्बी तथा तैलका अधिक उपयोग करना चाहिये । तथा युक्ति (जहां तक सहन हो तथा सूर्यकी ओर पीठ कर) से सूर्यकी धूपमें घमाना चाहिये और शौचादिके लिये गरम जलका उपयोग करना चाहिये, अग्नि तापनी चाहिये । पैरोंको सदा गरम रखना चाहिये । गद्दा, मृगचर्म, रेशमी वस्त्र, रेडी या कम्बल बिछी शय्यापर गरम स्वभाववाले तथा हल्के वस्त्र ओढकर सोना चाहिये । अगीठी रखकर गरम किये हुए कमरोंमें गर्भगृह तथा भूगृहमें शय्या (चारपाई) बिछाना चाहिये तथा अगुरुसे लिप्त स्थूल ऊरु, कुच तथा कमरयुक्त प्रियाका आलिंगन कर सोना चाहिये ॥ १९-२२ ॥

शिशिरचर्या ।

अयमेव विधिः कार्यः शिशिरेऽपि विशेषतः ।
तदा हि शीतमधिकं रौक्ष्यं चादानकालजम् ॥ २३ ॥

शिशिरऋतुमें भी यही विधि सेवन करनी चाहिये । उस समय शीत अधिक होता है और आदान काल जन्य रूक्षता बढ़ जाती है अतः अधिक उष्ण तथा स्निग्ध आहार विहार सेवन करना चाहिये ॥ २३ ॥

वसन्तचर्या ।

कफश्चितो हि शिशिरे वसन्तेऽर्कांशुतापितः ।
हत्वाग्निं कुरुते रोगानतस्तत्र प्रयोजयेत् ॥ २४ ॥
तीक्ष्णं वमननस्यादिकवलग्रहमञ्जनम् ।
व्यायामोद्वर्तनं धूमं शौचकार्ये सुखोदकम् ॥ २५ ॥
स्नातोऽनुलिप्तः कर्पूरचन्दनागुरुकुङ्कुमैः ।
पुराणयवगोधूमक्षौद्रजाङ्गलशूल्यभुक् ।
प्रपिबेदासवारिष्टसीधुमार्द्वीकमाधवान् ॥ २६ ॥
वसन्तेऽनुभवेत्स्त्रीणां काननानां च यौवनम् ।
गुरूष्णस्निग्धमधुरं दिवास्वप्नं च वर्जयेत् ॥ २७ ॥

शिशिरऋतुमें संञ्चित हुआ कफ वसन्त ऋतुमें सूर्यकी किरणोंसे तपनेसे पिघलकर अग्नि मंद करता हुआ अनेक रोग उत्पन्न कर देता है । अतः इस ऋतुमें तीक्ष्ण, वमन, नस्य, कवलग्रह, भोजन और अञ्जन प्रयुक्त करना चाहिये तथा व्यायाम, उबटन और धूमका प्रयोग करना चाहिये । शौचादिके लिये कुछ गुनगुना जल सेवन करना चाहिये । तथा स्नान कर कपूर, चंदन, अगर और केशरका लेप करना चाहिये तथा पुराने यव गेहूं, शहद तथा कोयलेपर पकाया जाङ्गल प्राणियोंका मास खाना चाहिये । और मुनक्का तथा शहद छोडकर बनाये गये आसव, अरिष्ट तथा सीधु पीना चाहिये । तथा इस ऋतुमें स्त्रियोंका तथा वनोंका आनंद लेना चाहिये । तथा भारी, गरम, चिकने और मीठे द्रव्य तथा दिनमें सोना त्याग देना चाहिये ॥ २४-२७ ॥

ग्रीष्मचर्या ।

मयूखैर्जगतः स्नेहं ग्रीष्मे पेपीयते रविः ।
स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्नपानं तदा हितम् ॥ २८ ॥
शीतं सशर्करं मन्थं जाङ्गलान्मृगपक्षिणः ।
घृतं पयः सशाल्यन्नं भजन्ग्रीष्मे न सीदति ॥ २९ ॥
मद्यमल्पं न वा पेयमथवा सुबहूदकम् ।
मध्याह्ने चन्दनार्द्राङ्गः स्वप्याद्धारागृहे निशि ॥ ३० ॥
निशाकरकराकीर्णे प्रवाते सौधमस्तके ।
निवृत्तकामो व्यजनैः पाणिस्पर्शैः सचन्दनैः ॥ ३१ ॥
सेव्यमानो भजेदास्यां मुक्तामणिविभूषितः ।
लवणाम्लकटूष्णानि व्यायामं चात्र वर्जयेत् ॥ ३२ ॥

ग्रीष्मऋतुमें सूर्यभगवान् अपनी किरणों द्वारा संसारका स्नेह खींच लेते हैं अतः इस ऋतुमें मीठे, शीतल, पतले तथा स्नेहयुक्त अन्नपान हितकर होते हैं। शक्कर व जल मिलाकर पतले सत्तू, जांगल प्राणियोंका मांस, घी, दूध और चावलका इस ऋतुमें सेवन करनेवाला दुःखी नहीं होता। मद्य पीना ही न चाहिये। और यदि पीवे ही तो थोड़ा पीना चाहिये और बहुत जल मिलाकर पीना चाहिये। मध्याह्नमें शरीरपर चन्दनका लेपकर फुहारे चलते हुए घरमें सोना चाहिये, रात्रिमें चन्द्रमाकी रोशनीसे युक्त हवा लगनेवाली महलकी अटारीपर चन्दनके जलसे तर, खसके पंखोंकी हवा खाते हुए मुक्ता मणिसे विभूषित कामका सेवन न करते हुए सोना चाहिये। नमकीन, खट्टे, कड़ुए और गरम पदार्थ त्याग देने चाहिये तथा व्यायाम न करना चाहिये॥२८-३२॥

वर्षाचर्या।

भूबाष्पान्मेघनिस्यन्दात्पाकादम्लाज्जलस्य च।
वर्षास्वग्निबले क्षीणे कुप्यन्ति पवनादयः॥ ३३॥
भजेत्साधारणं सर्वमूष्मणस्तेजनं च यत्।
आस्थापनं शुद्धतनुर्जीर्णं धान्यं कृतान्रसान्॥ ३४॥
जाङ्गलं पिशितं यूषान्मध्वरिष्टं चिरन्तनम्।
दिव्यं कौपं शृतं चाम्भो भोजनं त्वतिदुर्दिने॥ ३५॥
व्यक्ताम्ललवणस्नेहं संशुष्कं क्षौद्रवल्लघु।
नदीजलोदमन्थाहःस्वप्नायासातपांस्त्यजेत्॥ ३६॥

वर्षाऋतुमें पृथ्वीकी भाफ, मेघोंके बरसने और जलके खट्टे पाक होनेके कारण वातादिक दोष कुपित होते हैं। अतः इस ऋतुमें समस्त साधारण तथा अग्निदीपक पदार्थोंका सेवन करना चाहिये तथा आस्थापन वस्तिसे शुद्ध शरीर होकर पुराने धान्य, बनाये गये रस, जांगलमांस, यूष, पुराना मध्वरिष्ट तथा आकाशका वर्षा हुआ अथवा कुएका जल गरमकर सेवन करना चाहिये और अति दुर्दिनमें (जब मेघ घेरे ही रहें) अम्ल, लवण, स्नेह और शहद मिला हुआ सूखा भोजन करना चाहिये तथा वर्षाऋतुमें नदीका जल, सत्तुओंका मन्थ, दिनमें सोना, परिश्रम और धूप इनको त्याग देना चाहिये॥ ३३-३६॥

शरच्चर्या।

वर्षाशीतोचिताङ्गानां सहसैवार्करश्मिभिः।
तप्तानामाचितं पित्तं प्रायः शरदि कुप्यति॥ ३७॥
तज्जयाय घृतं तिक्तं विरेको रक्तमोक्षणम्।
तिक्तस्वादुकषायं च क्षुधितोऽन्नं भजेल्लघु॥ ३८॥
इक्षवः शालयो मुद्गाः सरोऽम्भः क्वथितं पयः।
शरद्येतानि पथ्यानि प्रदोषे चेन्दुरश्मयः॥ ३९॥
शारदानि च माल्यानि वासांसि विमलानि च।
तुषारक्षारसौहित्यदधितैलवसातपान्॥ ४०॥
तीक्ष्णमद्यदिवास्वप्नपुरोवातातपांस्त्यजेत्।

वर्षाऋतुमें कुछ शीतका अभ्यास रहता है पर शरद्ऋतुमें सहसा अङ्ग गरम हो जाते हैं। अतः सञ्चित पित्त कुपित हो जाता है। उसकी शान्तिके लिये तिक्तघृत, रक्तमोक्षण और विरेचन लेना चाहिये और भूख लगनेपर तिक्त, मीठा, कषैला और हल्का अन्न खाना चाहिये। तथा ईखके पदार्थ, चावल, मूँग, तालाबका जल, गरम दूध और सायङ्काल चन्द्रकिरणोंका सेवन करना ये सब इस ऋतुमें लाभदायक हैं और शरदऋतुमें उत्पन्न होनेवाले पुष्पोंकी मालाएँ तथा स्वच्छ वस्त्र धारण करना चाहिये तथा बर्फ, क्षार, तृप्तिपर्यंतभोजन, दही, तैल, मांसरस, धूप, तीक्ष्णमद्य, दिनमें सोना, पूर्वकी वायु और धूप त्याग देने चाहिये॥३७-४०॥

सामान्यर्तुचर्या।

शीते वर्षासु चाद्यांस्त्रीन्वसन्तेऽन्त्यान्रसान्भजेत्॥४१॥
स्वादून्निदाघे शरदि स्वादुतिक्तकषायकान्।
शरद्वसन्तयो रूक्षं शीतं घर्मघनान्तयोः॥ ४२॥
अन्नपानं समासेन विपरीतमतोऽन्यथा।
नित्यं सर्वरसाभ्यासः स्वस्वाधिक्यमृतावृतौ॥ ४३॥
ऋत्वोरन्त्यादिसप्ताहावृतुसन्धिरिति स्मृतः।
तत्र पूर्वो विधिस्त्याज्यः सेवनीयोऽपरः क्रमात्॥ ४४॥
इत्युक्तमृतुसात्म्यं यच्चेष्टाहारव्यपाश्रयम्।
उपशेते यदौचित्यादोकसात्म्यं तदुच्यते॥ ४५॥

शीत तथा वर्षामें मीठे, खट्टे और नमकीन पदार्थ, वसन्तऋतुमें कड़ुए, तिक्त और कषैले पदार्थ, ग्रीष्ममें मीठे और शरदऋतुमें मीठे तिक्त तथा कषैले पदार्थ सेवन करना चाहिये। यह सक्षेपतः अन्नपान बताया है। इसके विपरीत हानिकर समझना चाहिये। नित्य सभी रसोंका सेवन करना चाहिये। पर अपने अपने ऋतुमें अपने अपने रसकी अधिकता होनी चाहिये। दो ऋतुओंके मध्यके दो सप्ताह (बीतते हुए ऋतुका अन्तिम सप्ताह और आनेवाले ऋतुका प्रथम सप्ताह) ऋतुसन्धि कहा जाता है, उसमें क्रमशः पूर्वकी विधि छोड़नी और आगेकी विधि ग्रहण करनी चाहिये।

यह ऋतुसात्म्य चेष्टा और आहारके अनुसार बताया और जो अभ्यास होनेके कारण सदा लाभ ही करता है उसे ओकसात्म्य कहते हैं ॥ ४१-४५ ॥

उपसंहारः ।

देशानामामयानां च विपरीतगुणं गुणैः ।
सात्म्यमिच्छन्ति सात्म्यज्ञाश्चेष्टितं चाद्यमेव च ॥४६॥
तच्च नित्यं प्रयुञ्जीत स्वास्थ्यं येनानुवर्तते ।
अजातानां विकाराणामनुत्पत्तिकरं च यत् ॥ ४७ ॥
नगरी नगरस्येव रथस्येव रथी यथा ।
स्वशरीरस्य मेधावी कृत्येष्ववहितो भवेत् ॥ ४८ ॥

देश और रोगोंके गुणोंसे विपरीत गुणयुक्त कर्म तथा भोजन सात्म्य कहे जाते हैं। उस विधिका नित्य प्रयोग करना चाहिये जिससे स्वास्थ्यकी प्राप्ति हो और अनुत्पन्न रोग उत्पन्न ही न हों। जिस प्रकार नगरका स्वामी नगरके कार्योंमें तथा रथका स्वामी रथके विषयमें सावधान रहता है उसी प्रकार बुद्धिमान् मनुष्यको अपने शरीरकी रक्षाके लिये सावधान रहना चाहिये ॥ ४६--४८ ॥

इति स्वस्थवृत्ताधिकारः समाप्तः ।

ग्रन्थकारपरिचयः ।

गौडाधिनाथरसवत्यधिकारिपात्र-
नारायणस्य तनयः सुनयोऽन्तरङ्गात् ।
भानोरनुप्रथितलोध्रवलीकुलीन.
श्रीचक्रपाणिरिह कर्तृपदाधिकारी ॥ १ ॥
यः सिद्धयोगलिखिताधिकसिद्धयोगा-
नत्रैव निक्षिपति केवलमुद्धरेद्वा ।
भट्टत्रयत्रिपथवेदविदा जनेन
दत्तः पतेत्सपदि मूर्धनि तस्य शापः ॥ २ ॥

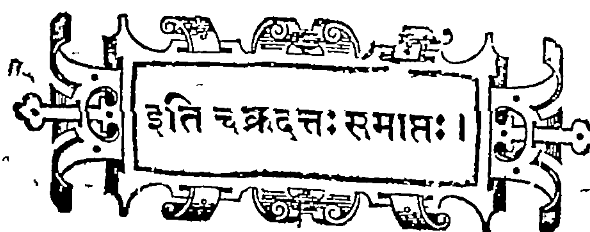
गौडाधिनाथ (नयपाल नामक नृपति) के पाकशालाके अधिकारी तथा प्रधान मन्त्री नारायणके पुत्र सुनीतिज्ञ तथा अन्तरङ्ग पदवी प्राप्त भानुके छोटे भाई, प्रसिद्ध लोध्रवशमें उत्पन्न श्रीचक्रपाणिजीने यह ग्रन्थ बनाया है जो पुरुष (वृन्दप्रणीत) सिद्ध योगसे आधिक लिखे गये इस ग्रंथके योगोंको सिद्ध योगमें ही मिला दे (सिद्धयोगके ही सब योग बता दे) अथवा इस ग्रन्थसे ही निकाल दे उसके ऊपर भट्टत्रय (कारिका, वृहट्टीका, चन्द्रटीका) और ऋग्यजुःसामरूप तीनो वेदोंके जाननेवालेका शाप पड़े ॥ १ ॥ २ ॥

इति श्रीमन्महामहिम--चरकचतुरानन--चक्रपाणि-
प्रणीतः चिकित्सासारसंग्रहापरनामकः
चक्रदत्तः समाप्तः ।

टीकाकारपरिचयः ।

उन्नाम (उन्नाव) नामास्ति विशालमण्डलं
ग्रामः पटीयानि (पटियारा) ति तत्र विश्रुतः ।
तत्राभवद्भूरितपा महात्मा
यो वाजपेयीत्युपमन्युवंश्य. ॥ १ ॥
श्रीद्वारकानाथ इति प्रसिद्ध.
पुत्रस्तदीयोऽयमतीव नम्र ।
श्रीयादवाद्वैद्यगणप्रपूजिता-
दधीत्य वेद खिलनित्यगस्य ॥ २ ॥
श्रीविश्वनाथस्य प्रिया प्रसिद्धा
काशीपुरी येन सुशोभतेऽद्य ।
श्रीविश्वविद्यालयनामकोऽस्ति
विद्यालयो विश्वविलब्धकीर्तिः ॥ ३ ॥
यस्थापको विदितविश्वजनीनवृत्तो
विच्छिन्नधर्मपथशुद्धिघृतावतारः ।
श्रीहिन्दुमानपरिरक्षणवर्द्धनोत्क
पूज्य सता मदनमोहनमालवीयः ॥ ४ ॥
अध्यापने तेन नियोजितोऽद्य
वैद्यो जगन्नाथप्रसादशर्मा ।
विशोधयन्निर्मितवान्सुबोधिनीं
श्रीचक्रदत्तस्य गतार्थटीकाम् ॥ ५ ॥
रामाष्टाङ्कमृगाङ्काब्दे व्यासपूजनवासरे ।
पूर्तिमाप्ता यतस्तस्मादर्पिता गुरुहस्तयो ॥ ६ ॥

इति श्रीमदायुर्वेदाचार्यपण्डितजगन्नाथप्रसाद-
शर्मणा प्रणीता सुबोधिन्याख्या चक्र-
दत्तस्य व्याख्या समाप्ता ।



क्रय्य पुस्तकें-वैद्यकग्रन्थाः ।

नाम.	की० रु० आ०
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) मूल, वाग्भटविरचित । इसमें सूत्रस्थान शारीरस्थान, निदानस्थान, चिकित्सास्थान, कल्पस्थान, उत्तरस्थान इत्यादिमें संपूर्ण रोगोंकी उत्पत्ति, निदान, लक्षण और क्वाथ, चूर्ण, रस, घी, तैल आदिसे अच्छी चिकित्सा वर्णित है.	४-०
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) भाषाटीकासहित । इस वाग्भटकृत मूलकी " शिवदीपिका " नामक भाषाटीका पटियाला राज्यके प्रधान चिकित्सक वैद्यरत्न पं० रामप्रसादजी राजवैद्यके सुपुत्र पं० शिवशर्मा आयुर्वेदाचार्यजीने ऐसी सरल बनाई है कि जो सर्वसाधारणके परमोपयोगी है.	१०-०
अष्टाङ्गहृदय-(वाग्भट) सूत्रस्थान-वाग्भटकृत मूल तथा अरुणदत्तकृत सर्वाङ्गसुन्दर, चन्दनदत्तकृत पदार्थचन्द्रिका, हेमाद्रिकृत आयुर्वेदरसायन और कठिन स्थलपर पटियाला-राजवैद्य वैद्यरत्न पं० रामप्रसादजीकृत टिप्पणीसहित. (शेष स्थान छप रहे है)	६-०
अष्टाङ्गहृदय (वाग्भट) सूत्रस्थान-वाग्भटविरचित तथा पटियाला राजवैद्य वैद्यरत्न पं० रामप्रसादजीके सुयोग्य पुत्र, विद्यालंकार शिवशर्मकृत भाषाटीका और संदिग्ध विषयोंपर संस्कृत टिप्पणीसहित	३-०
अमृतसागर-भाषा । इसमें सर्व रोगोंके वर्णन और यत्न हैं । इसके द्वारा विना गुरु वैद्य हो सकते हैं । ग्लेज कागज.	३-०
अमृतसागर-भाषा । उपरोक्त रफ कागज	२-८
अर्कप्रकाश-(लंकापति रावणकृत) भाषाटीकासहित इसमें नाना प्रकारके यन्त्रोंसे ओषधियोंका अर्क खींचना और गुणवर्णन भले प्रकारसे किया गया है.	१-८
अनुपानदर्पण-भाषाटीकासहित । इसमें रस-धातु बनानेकी क्रिया और रोगानुसार औषधोंके अनुपान वर्णित हैं.	१-०
अनुभूतयोगावली-चिकित्साग्रन्थ । इसमें अनुभव की हुई हरेक रोगकी उत्तम उत्तम ओषधियां वर्णित हैं	०-१२
अजीर्णतिमिरभास्कर-भाषा । चौबे क्याखूब रामप्रसादकृत, अजीर्णका निदान और अनुभूत चिकित्सा	०-६
अजीर्णमञ्जरी-भाषाटीकासहित । इसमें किन किन चीजोंका अजीर्ण किन किन चीजोंके सेवनसे दूर होता है इत्यादि विषय भले प्रकारसे लिखे हैं ।	०-४

नाम.	की० रु० आ०
आत्मसर्वस्व–आयुर्वेद महामहोपाध्याय रसायनशास्त्री पं० भागीरथ स्वामी -आयुर्वेदाचार्यसंगृहीत। इसमें सर्वसाधारण बडे बडे रोगोंपर १००० अनुभूत प्रयोगोंका संग्रह है	३–०
आयुर्वेदसुषेणसंहिता–भाषाटीकासहित। उन्हीं सुषेण वैद्यजीका बनाया है जिन्होंने शक्तिसे मूर्छित लक्ष्मणजीको संजीवनी द्वारा चैतन्य किया था। इसमें सामान्य औषधवर्ग, धान्यवर्ग, पयवर्ग आदिके गुण–दोष वर्णित हैं....	१–४
आयुर्वेदचिन्तामणि–अर्थात् अपूर्वनिघण्टुसंग्रह, भाषाटीकासहित। समस्त आयुर्वेदीय प्रामाणिक ग्रन्थोंसे स्व० पं० बलदेवप्रसाद मिश्र द्वारा संगृहीत और अनुवादित। इसमें प्रत्येक औषधका संस्कृत, हिन्दी, बंगला, गुजराती तथा मराठी नाम और गुण सहित प्रयोगविधि लिखी है	२–८
आयुर्वेदसूत्र–वैद्यरत्न पं० रामप्रसाद शर्मा पटियाला राजवैद्यकृत संस्कृत मूल और भाषाटीकासहित, वैद्यक विषयका सूत्राकार अपूर्व ग्रन्थ। इसके सूत्रोंमें भस्म आदि समस्त आयुर्वेदका विषय संकेत रूपसे आ गया है, अतः इसके देखनेसे आयुर्वेदका संपूर्ण विषय ज्ञात हो जाता है	०–८
आरोग्यशिक्षा–पं० मुरलीधरशर्मा राजवैद्यसंकलित (भाषा) इसमें चिकित्सातत्त्व चर्या, नैमित्तिक बर्ताव, चिकित्सासम्बन्धी सदुपदेश, ज्वरादि अनेक रोग, खानेपीनेकी वस्तु आदिके गुण इत्यादि आरोग्योपयोगी आहार विहार आदि उत्तम रीतिसे लिखे गये हैं	०–७
आदिशास्त्र अर्थात् रतिशास्त्र–भाषाटीकासहित। पद्मिनी आदि भेदसे स्त्रीपुरुषलक्षण, विवाहविचार, ऋतुविचार, समागमविचार, कामकलाविचार, वन्ध्याचिकित्सा, गर्भरक्षा, सुखप्रसवके उपाय, सूतिकारोगचिकित्सा, स्त्रीचिकित्सा, बालचिकित्सा, बालरक्षोपयोगी अनेक कवच, द्रव्यगुण, रसायनद्रव्य, स्त्रीधन, स्त्रीधनाधिकार, आशौचविचार, वस्त्रालंकारादिधारणविचार, स्त्रियोपयोगी व्रत, पूजा, प्रयोग और मन्त्र आदि गृहस्थोंके लिये परमावश्यक अपूर्व विषय हैं	०–१४
उपदंशतिमिर (गर्मी) नाशक–भाषा	०–३
औषधीक्रिया–भाषाटीकासहित। मराठीसे हिन्दीमें अनुवादित। "आर्यभिषक्-पुस्तकावली" से उद्धृत आर्यवैद्यककी पद्धतिसे औषधको किस रीतिसे तैयार करना तथा कौनसे रोगपर किस दवाका उपयोग करना इत्यादि इसके द्वारा सहजमें मालूम हो सकता है	०–१०
अञ्जननिदान–आगरानिवासि–रामेश्वरभट्टकृत भाषाटीकासहित। इसमें सुगमतासे रोगोंका निदान लिखा है	०–१०

कीं० रु० आ०

नाम,

चर्याचन्द्रोदय–भा० टी० सहित। चर्याविषयका सर्वोत्कृष्ट ग्रंथ है। इसमें उचित आहार, विहार, व्यञ्जन बनानेकी क्रिया व गुण तथा ऐसे अनुपम नियमोंका वर्णन है जिसके पालनसे दीर्घायु आरोग्य और सौभाग्य प्राप्त होता है। २–८

चरकसंहिता–वैद्यरत्न पं० रामप्रसाद राजवैद्यकृत भाषाटीकासहित। चरकके आठों स्थान एकसे एक अपूर्व होनेपर भी "चिकित्सास्थान" तो अद्वितीय ही है। उसमें नीरोग मनुष्यके लिये वे सहजप्रयोग लिखे हैं कि, वह कभी बीमार ही न हो और रोगी चिकित्सा करनेपर तत्काल नीरोग हो। पहलेसे अबकी बार बहुत बढ़ाया है, दो जिल्दों सहित. १६–०

चिकित्सासमूह–अर्थात् घरू और सफरी वैद्य–इसमें मनुष्य, तथा घोड़े, ऊँट हाथी, गाय, बैल, भैंस और बकरी आदिके रोग और उनकी अनुभूत औषध हैं। विशेषतः सरलहिन्दीके साथ २ अंग्रेजी होनेके कारण यह परमोपयोगी और अद्वितीय हो गयी है। ऐसी पुस्तक प्रत्येक गृहस्थके पास रहनी चाहिये १–४

चिकित्साक्रमकल्पवल्ली–काशीनाथ चतुर्वेदीकृत, मूल। इसमें सब रोगोंकी निदानसहित ऐसी सुविस्तृत और अद्भुत चिकित्सा लिखी है कि जैसी अन्य ग्रंथमें नहीं है। आयुर्वेदीय चिकित्साका चमत्कार देखना हो तो इसे अवश्य देखिये. ३–८

चिकित्साचक्रवर्ती–(मुजर्बात अकबरीका हिंदी अनुवाद) १–०

चिकित्साञ्जन–भाषाटीकासहित। इसमें ज्वर, खांसी, कुष्ठ, भगंदरादि कठिन रोगोंकी बहुत उत्तम चिकित्सा वर्णित है ०–१०

चिकित्साधातुसार–हिंदीभाषामें धातु फूँकनेके उत्तमोत्तम प्रयोग लिखे हैं. ०–६

जर्राहिप्रकाश–चारों भाग. १–८

ज्वरतिमिरनाशक–क्याखूब चौबे रामप्रसादजीकृत भाषाटीकासहित। इसमें आर्य–वैद्यक, यूनानी व डाक्टरीके अनुसार ज्वर आदि रोगोंकी चिकित्सा तथा सोडा, लेमनेड व अनेक शर्बत आदि बनानेकी विधि लिखी है. ... १–०

डाक्टरीचिकित्सासार–सरल हिन्दी भाषामें। इसमें रोगोंका आर्यवैद्यक व डाक्टरी मतसे निदान, चिकित्सा वर्णित है तथा संक्षिप्त डाक्टरी निघण्टु भी सम्मिलित है. ०–१०

डाक्टरीचिकित्सार्णव–बड़ा। इसमें डाक्टरी मतानुसार निदान तथा ऍलो–पैथी और होमियो–पैथी चिकित्सा सरल हिंदी भाषामें हिंदीनामों सहित लिखी–गयी है और डाक्टरी दवाओंके नाम गुण मात्रासहित लिखे हैं. २–०

तिब्बइहसानी– १–०

तिब्बअकबर–हकीम अकबर अलीखाँ–लिखित तथा देवीप्रसादद्वारा हिंदीभाषामें अनुवादित. ७–०